संस्कार चन्द्रिका ।

अर्थात्

'संस्कारविधि' की टीका ।

लेखक

पं० भीमसेन शर्म्मा (आगरा निवासी)

और

म० आत्माराम, (अमृतसरी)

पं० केशवराम स्वामी द्वारा "श्री स्वामी प्रेस"
देहरादून में मुद्रित हुआ ।

मूल्य २)

ओ३म्
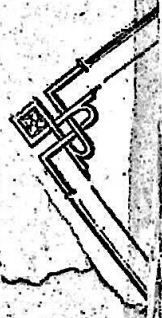
संस्कार चन्द्रिका

अर्थात्

महर्षिदयानन्दप्रणीत "संस्कार विधि" के संस्कृतभाग का अनुवाद तथा व्याख्या ।

(जिसको)

श्रीयुत पण्डित भीमसेन शर्म्मा, आगरा निवासी,
संस्कृतमुख्योपाध्याय, गुरुकुल, ज्वालापुर
(ज़ि० सहारनपुर)

तथा

रा० रा० आत्माराम राधाकृष्ण, एजुकेशनल इन्सपेक्टर,
(डिप्रेस्ड क्लास) स्कूल्स बड़ोदा राज्य, बड़ोदा–

ने

बना कर प्रकाशित किया ।

पं० केशवराम स्वामी के प्रबन्ध से "श्री स्वामी यन्त्रालय"
देहरा दून में मुद्रित ।

प्रथमावृत्ति २००० | संवत् १९७० वि० | मूल्य २) रु० डाक व्यय पृथक्

यह टाइटिल पेज गढ़वाली प्रेस देहरादून में छपा ।

विषय सूची

इति ॥

ओ३म्

भूमिका ।

यह संसार अनेक आश्चर्य पदार्थों से परिपूर्ण है। इस की विचित्र २ लीलाओं को देख कर बुद्धि दङ्ग हो जाती है। इसमें सहस्त्रों अद्भुत २ घटनाएँ हुईं, होंगी और हैं। इस पञ्चमहाभूतमय विचित्र नाटक का सूत्रधार न जाने क्या २ खेल खेला करता है? इस नाटक को देखते २ लोग थकते नहीं, किन्तु अधिकाधिक इस की रमणीयता बनाने में ही उत्सुक रहते हैं।

महाभारत से—प्राचीन भारत, प्रवृत्ति मार्ग में खूब निष्णात हो कर जिन २ विस्मय कारक कृत्यों को कर चुका है, उनका इस समय अनुमान करना भी कठिन है, इस के बचे बचाए खण्डहरों से इसकी कारीगरी, इस की उन्नता का पता लग सकता है। प्राचीन भारत ने बाह्य संसार को ही नहीं देखा किन्तु संसार के अभ्यन्तरीय आश्चर्योत्पादक यावत् पदार्थों के दर्शन कर लिए।

इन सब बातों का एक कारण था, बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता, उस उन्नति का भी तो कोई कारण होना चाहिए! क्रिया के लिए विज्ञान की आवश्यकता है, विज्ञान स्वतः नहीं मिलता, उसे कोई देने वाला चाहिए—अंकुर रूप से तो अवश्य ही देने वाला चाहिए, सृष्टि की आदि में अल्पज्ञ—परिमित बुद्धि वाले प्राणियों को, सिवाय उसके जिसने सूर्य को दिया, पृथिवी को दिया, वायु को दिया, अग्नि को दिया और कौन हो सकता है? सब जगत् को देकर भी यदि वह विज्ञानशक्ति हमें नहीं देता तो निःसन्देह यह संसार अन्धकारमय प्रतीत होता।

विज्ञान एक प्रकार का प्रकाश है वह मलिनान्तःकरणों में नहीं प्रकाशित हो सकता, सूर्यकी किरणें मलिन पत्थर पर नहीं चमकतीं, चमकती हैं स्वच्छ दर्पण पर। बिना अधिकारी के अधिकार नहीं दिया जाता, यदि अधिकार देने वाला पूर्णज्ञानी हो—निर्भ्रम बोधसंपन्न हो तो फिर वह अनधिकारी को अधिकार देही नहीं सकता, अधिकारियों में भी जो विशिष्ट उचित समझे जायँ उन्हें ही नियुक्त किया जाता है, यही कारण है कि अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक चार ऋषियों को ही, सृष्टि के

आदि में एक प्रकार का प्रकाश दिया उसी प्रकाश का नाम " वेद " है। विस्तर भय से अधिक न लिख कर इतना लिखना आवश्यक समझते हैं कि मनुष्य मात्र के हित की प्राप्ति और अहित का परिहार बतलाने वाला वेद है, यदि विज्ञान काण्ड का कर्मकाण्ड में अन्तर्भाव मान लिया जावे तो मुख्यतः वेद में तीन विषय मानने पड़ते हैं:—(१) कर्मकाण्ड (२) उपासनाकाण्ड (३) ज्ञानकाण्ड।

संसार के यावत् शुभ कर्म, कर्मकाण्ड में सम्मिलित हैं उनका बीजरूप से उपदेश वेदों में विद्यमान है, यहाँ तक आज्ञा है कि किसी अवस्था में भी स्वस्ववर्णाश्रमोचित धर्म्म कर्मों का परित्याग न करो "कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः" यजु० अ० ४० मं० २।

अर्थात् हे जीव ! कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा कर। निश्चेष्ट—आलसी होकर रहना महा अन्याय है । कर्म शब्दसे वे कर्म विवक्षित हैं जिनके द्वारा अपनी मनस्तुष्टि के साथ अन्यों का उपकार हो, अपनी भलाई के लिए तो सब ही की कुछ न कुछ स्वभावतः प्रवृत्ति होती ही है उस के लिए उपदेश की विशेष आवश्यकता नहीं ।

कर्मों के दो भेद हैं (१) सकाम और (२) निष्काम। ब्रह्मचारी और गृहस्थों को सकाम कर्म करने चाहिएँ और वानप्रस्थ तथा संन्यासियों को निष्काम। कर्मों को मुक्ति का साक्षात् साधन चाहे कोई न माने परन्तु परम्परया मुक्तिसाधनता, भगवच्छङ्कराचार्यादि सब को अभिप्रेत है, क्योंकि बिना वैदिक कर्मयोग के अन्तःकरण की शुद्धि नहीं हो सकती, राग द्वेषादि की निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना ऐसा हुए उपासना—ईश्वर की निरन्तर भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता और विना तादृश भक्तिके ब्रह्मतत्त्व साक्षात्कार कहाँ ! और बिना ब्रह्मस्थ होने के सांसारिक दुःखों की अर्थात् आध्यात्मिक,* आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति कहाँ ? प्रिय वाचकवर्ग ! वैदिक कर्मयोग, ब्रह्मप्राप्तिरूप उच्च-

* धातुवैषम्यनिमित्तक ज्वरादि और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषादादि " आध्यात्मिक " कहलाते हैं। मनुष्य, पशु, सर्पादिकों से होने वाले दुःखों का नाम " आधिभौतिक " है। वायु, वर्षा, गर्मी, सरदी, आदि के निमित्त से होने वाले दुःख "आधिदैविक" कहलाते हैं।

पद पर आरूढ होने के लिए पहली सीढ़ी है। भगवान् मनु ने लिखा है:—
"अहिंसयेन्द्रियासङ्गै र्वैदिकैश्चैव कर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्" । अर्थात्–किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाने से, इन्द्रियों को विषयों में आसक्त न करने से, वैदिक–वेदप्रतिपाद्य कर्मों के अनुष्ठान से, उग्र स्वाध्याय सत्यभाषणादिरूप तपों से, उस ब्रह्मपद को साधक लोग सिद्ध कर पाते हैं॥ अहिंसा आदि को जैसे ब्रह्मप्राप्ति के प्रति वा दुःख निवृत्ति के प्रति कारणता है वैसे ही वैदिक कर्मों को भी कारणता है। वैदिक कर्मों के सैकड़ों भेद हैं, वे विशेष अवस्थाओं में किये जा सकते हैं। परन्तु द्विजमात्र को अपने शरीर और मन की शुद्धि के लिए १६ संस्कार तो अवश्य कर्तव्य हैं "कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च" मनुः। परलोक और इसलोक में पवित्रता देने वाला, शरीर का–स्थूल और लिङ्ग शरीर का, संस्कार करना चाहिए। कैसे करना चाहिए? किन वस्तुओं से करना चाहिए! इन सब बातों का विचार प्राचीन महर्षिगण, स्वस्वबुद्ध्यनुसार कर गए हैं इन्हीं के विचारित ग्रन्थों का नाम "गृह्यसूत्र" वा "कल्प" है॥

"गृह्यसूत्र" बनाने वाले आचार्य पृथक् २ समयों में हुए हैं, उन्होंने वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में १६ संस्कारों को देखकर संस्कारपद्धतियों की कल्पनाएँ की हैं, मुख्य २ बातों में भेद न होने पर भी साधारण बातों में कहीं २ भेद दिखलाई देता है, मुख्य २ बातों में किसी का भी मत-भेद नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े संशोधक, वेदों के अपूर्व व्याख्याता यतिवर श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सब गृह्यसूत्रों तथा अन्यान्य ग्रन्थों को देख कर, षोडश संस्कारों की–जिन को समस्त वैदिकधर्माचार्यों ने स्वीकार किया है, संसार में प्रवृत्ति करने के लिए, गृह्यसूत्रादिकों के मिलावटी वा अनुपादेयभाग को छोड़ कर, १६ संस्कारों की रीति आदि का प्रदर्शक एक ग्रन्थ बनाया उसीका नाम "संस्कार विधि" है।

बड़े २ नास्तिकों का अपने अपूर्व युक्तिजाल से मुखमर्दन करने वाले निरर्थक और भ्रम विपर्यय दोषोंसे संवलित बातों का समूलोन्मूलन करने

वाले स्वामी दयानन्द जी का और प्राचीन ऋषिगण का १६ संस्कारों को मानना और प्रचरित करना ही हमारे लिए तो उन की युक्ति युक्तता में एक युक्ति है परन्तु जो सज्जन आप्तवाक्यों पर विश्वास नहीं रखते, जिनको युरोपीय महात्माओं के वाक्य ही वेदवाक्य हैं, जिन का सायँस ही सर्वस्व है, जो भारतीय किसी एक महात्मा की कहीं हड्डी मिलजावें तो उसके प्राप्त करने के लिए तो बड़ी उछल कूद मचावें परन्तु तपोधन वेदज्ञ ऋषियों के बतलाए आश्रमोचित शिखासूत्र ग्रहण का परित्याग कर अपने को पूरा नेचरिया दिखलावें उन को मार्ग पर लाना और उन के परमगुरु युरोपीय महात्माओं के वाक्यों से, भारतीय ऋषियों के वाक्यों का समर्थन करना, व्याख्यानवाचस्पति, सुप्रसिद्धवाग्मी स्वतन्त्रप्रज्ञ तार्किक शिरोमणि म० आत्माराम जी एज्यूकेशनल इन्सपेक्टर (बड़ोदा स्टेट) जैसों का ही काम है। आप देखेंगे कि किस ख़ूबी के साथ--किस योग्यता के साथ उक्त महाशय जी ने संस्कारों के महत्त्व को दर्शाया है।

इस बात की आर्य्यसज्जनों को बहुत दिनों से बड़ी अभिलाषा थी कि "संस्कारविधि" की कोई उपयुक्त टीका हो और उस के ऊपर होने वाली शङ्काओं का जवाब दिया जाय। गुरुकुल-महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के महोत्सव में जब उक्त मास्टर जी पधारे थे उस समय बहुत से प्रतिष्ठित आर्य सज्जनों ने मास्टर जी से यही प्रार्थना की थी इस आवश्यक और बड़े कार्य को सम्पादन करने के पूर्व संस्कारविधि में आए हुए मन्त्रों (वेदमन्त्र तथा ब्राह्मणादि के वाक्यसमूह गौण मन्त्रों) का अर्थ करने के लिये, मास्टर जी ने मुझे नियुक्त किया। मैं ऐसे ज़िम्मेवारी के काम को - जिस में विशेष पाण्डित्य की आवश्यकता है लेना नहीं चाहता था, क्यों कि न मुझ में लिखने की शक्ति, न मन्त्रार्थ करने की योग्यता! कहाँ गूढ़ाशय वेदादि के मन्त्र! और कहाँ मेरी तुच्छ बुद्धि! परन्तु प्रेमवश मास्टर जी की आज्ञा मानने में मुझे सङ्कोच नहीं हुआ और जैसा मन्त्राद्यर्थ मुझ से हो सका वैसा आप के संमुख प्रस्तुत है। संस्कारविधि में आए हुए मन्त्रादिकों के अर्थ करने के पूर्व मुझे यह आवश्यकता हुई कि संस्कारविधि की लिखित क्रियाएँ प्राचीन आर्षग्रन्थों के अनुकूल हैं? वा स्वकल्पित हैं? इस बात का पता लगाने के लिए

और मन्त्रों के अर्थ करने में सहायता लेने के लिये । (१) पारस्कर गृह्यसूत्र (२) आश्वलायन गृह्यसूत्र (३) कुमारिलभट्टप्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका (४) गोभिलीय गृह्यसूत्र (५) सामवेद मन्त्रब्राह्मण (६) तैत्तिरीयारण्यक (७) आपस्तम्बधर्मसूत्र (८) निघण्टु, निरुक्त (९) चारों वेद, सायणाचार्य, स्वामी दयानन्द, उव्वट आदि के भाष्य सहित (१०) मानव गृह्यसूत्र और आपस्तम्बीय गृह्यसूत्रादि को इकट्ठा किया । इन में से बहुत सी पुस्तकें मन्त्री आर्यसमाज मुम्बई तथा डाक्टर कल्याणदास जे० देसाई बी० ए० एल० एम० एण्ड० एस० मन्त्री आर्य विद्यासभा मुम्बई और वैद्याचार्य पण्डितवर श्री यादवजी त्रीकम जी, एडीटर आयुर्वेदीय ग्रन्थ माला होली चकला, मुम्बईकी कृपासे मिलीथीं; इस लिए इन सज्जनों को मैं कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देताहूँ । उक्त ग्रन्थोंसे मिलान करने पर मालूम हुवा कि जिन विधियोंका संग्रह स्वामीजी ने कियाहै वे सब आर्षग्रन्थों में विद्यमान हैं, स्वामी जी, चूंकि सारग्राहीथे इस लिये सारभूत बातें उन्होंने सब रखदी हैं, कहाँ२ से कौन२ बात ली है, इस का पता बड़े परिश्रम से लगाकर हमने स्थान निर्देश करदियाहै इससे किसीको यह भ्रान्ति न होगी कि यह निर्मूल है । २–३ जगह ऐसी हैं जहाँ की विधि का परिश्रम करने पर भी हमें पता नहीं लगा कि यह वाक्य किस ग्रन्थ से संगृहीत हैं, परन्तु आप्तोक्त होने से उन वाक्यों को भी प्रामाणिक समझ लेना चाहिए, विशेष अन्वेषण करने पर उन का भी मूल मालूम हो सकता है ।

यतिवर स्वामी दयानन्दजी ने आर्षग्रन्थों के शुद्ध रूपसे मुद्रणार्थ और उनके प्रचारार्थ "वैदिक प्रेस" स्थापित किया था जो इस समय अजमेर में है । वैदिक प्रेस में यह संस्कार विधि ६–७ बार छपी है, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि वह कई स्थानों में बराबर अशुद्ध छपती रही पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया ! उदाहरण के लिए हम केवल तीन स्थानों का निर्देश करते हैं :—

(१) "चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धि यौवनं सम्पूर्णता किंचित्परिहाणिश्चेति । तत्राषोडशाद्वृद्धिः । आचतुर्विंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता । ततः किंचित् परिहाणिश्चेति ॥ अर्थः—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पचीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं

की पूर्ण पुष्टि और उससे आगे किंचित् २ धातु वीर्य की हानि होती है (संस्कार विधि, पृ० ३३–३४ गर्भाधान प्रकरण, वैदिक प्रेस में छठीवार मुद्रित) ।

मालूम नहीं यह किस ग्रन्थ का संस्कृत वाक्य है ! ऐसा ही पाठ फिर वेदारम्भ प्रकरण में लिखा है इतना भेद है कि इस में "आचतुर्विंशतेः" है वहाँ "आपञ्चविंशतेः" है । वहाँ के नीचे की भाषा देखने से यह पता लगताहै कि यह सुश्रुतका पाठहै (शायद पाठभेद हो) परन्तु सुश्रुतमें (जो इस समय मिलता है) इसका कहीं पता नहीं ! और यह तो देखिए इस देह की ४ अवस्था हैं १६ वर्ष से आगे २५ वर्ष तक वृद्धि अवस्था, २५ से ४० तक युवावस्था फिर धातुओं की हानि ही होने लगती है फिर तीसरी सम्पूर्णताऽवस्था कहाँ रही ! हमने इस की जगह असली सुश्रुत का पाठ–भाषासहित दे दिया है । आगे चलिए—

(२) गर्भाधान प्रकरण पृ० ३६ छठीवार मुद्रित सं० वि० में पाठ है:—

"जो पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कह आए हैं इत्यादि" पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कहाँ कह आए हैं ! केवल ६ रात्रियों को निन्दित कहा है । अस्तु, हमने संस्कृतानुसार भाषा ठीक करदी है ।

(३) पूर्वोक्त संस्कारविधि पृ० ५४ सीमन्तोन्नयन प्रकरण में ५ वाँ मन्त्र बड़ा ही अशुद्ध छपगया था, मन्त्र का आधा भाग ही उलटा होगया! यह मन्त्र, सामवेद मन्त्रब्राह्मण का है, पण्डित श्रीसत्यव्रत सामश्रमी जी ने इसको सन् १८७३ में द्वैपायन प्रेस कलकत्ते में छपवाया था उस में भी वैसा ही गड़बड़ पाठ छपा था, यदि सामश्रमी जी की टीका नीचे न होती तो पाठ का शोधन करना हमें बहुत कठिन पड़ जाता । शायद उसी पाठ को देखकर संस्कारविधि का पाठ भ्रष्ट हुआ हो ! छः छः वार संस्कारविधि छपे और पाठ शुद्धि पर किसी का ध्यान न जाय ! अब हमने मूल ग्रन्थों से पाठों का मिलान करके जहाँ तक हम से हो सका है पाठ शुद्ध कर दिए हैं ।

निरुक्तकार का मत है कि "जो वेद को पढ़ता है पर उसके अर्थ से अनभिज्ञ है वह केवल भारहार पशु के तुल्य है, और जो अर्थज्ञ है वह कल्याण को प्राप्त होता है" संस्कारविधि में जिन पर मूलकारका शब्दार्थ वा भावार्थ कुछ नहीं है ऐसे क़रीब ४०० के लगभग मन्त्रादि हैं उन का

अर्थ साथ होने से निरुक्तोक्त दोष का भागी अब न होना पड़ेगा और उन के लेखानुसार कल्याण की उपलब्धि होगी।

"संस्कारविधि" का अनुवाद गुजराती भाषा में हुआ है उसकी छपाई आदि का ढँग अनुवादक ने अच्छा रक्खा है परन्तु उस में भी कहीं २ त्रुटियाँ हैं। सब से पूर्व श्री० स्वामी जी ने सेठ केशव लाल निर्भयराम जी की सहायता से "एशियाटिक प्रेस" मुम्बई में संस्कारविधि छपाई थी उस की अनुपादेयता का हेतु, स्वामी जी ने अपनी भूमिका में स्वयं ही लिखा है। मैंने उसे मँगाकर देखा तौ उस में मुझे कुछ विशेष न मिला।

ऊपर हम लिख आए हैं कि हम ने संस्कारविधिस्थ मन्त्रादि के अर्थ करने में इन ग्रन्थों की सहायता ली है। यदि ये ग्रन्थ हमारे पास न होते तौ इस कठिन काम को हम कभी न कर सकते। अपनी समझ से व्याकरण, निघण्टु आदि के द्वारा जिन मन्त्रों के ऊपर किसी का भाष्य नहीं है उन मन्त्रादि का भी भाष्य कर दिया है और जहाँ कहीं अन्य आचार्यों का भाष्य मौजूद था उसे भी सर्वत्र ज्यों का त्यों रखना उचित नहीं समझा किन्तु अपने तौर पर उसके सहारे से अर्थ किया गया है, प्रकरणादि वश से एक मन्त्र के अनेक अर्थ हो सकते हैं—यह बात उन को विदित है जिन्होंने ऋग्वेदादि के सायणादिकृत भाष्यों को देखा है।

सायणाचार्य ने "चत्वारि शृङ्गा०" ऋ० म० ४ अ० ५ सू० ५८ म० ३ इस मन्त्र की पाँच प्रकार की व्याख्या स्वीकार करके भी निरुक्तोक्त छठे प्रकार को स्वीकार किया है, फिर लिखा है "शाब्दिकास्तु शब्दब्रह्म परतया ००० व्याचक्षते, अपरे त्वपरतया, तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम्"।

"चत्वारि वाक् परिमिता"० ऋग्० म० १ अ० २२ सू० १६४ म० ४५ की व्याख्या में भी सायणाचार्य ने स्वीकार किया है कि यहाँ शाब्दिक—वैयाकरण, याज्ञिक, तथा अन्यान्य, अन्य प्रकार से व्याख्या करते हैं। यह सब कुछ है पर मेरी समझ ही कितनी है! उस पर भी आधि व्याधि ग्रस्तता! ऐसी दशा में मैं समझता हूँ, दृष्टिदोष से, वा प्रमादादि से एक नहीं, दो नहीं किन्तु कई त्रुटियाँ रह गई होंगी, जिन के लिए मैं आर्य विद्वन्मण्डली से केवल क्षमा न माँग कर प्रेमपूर्वक सूचना देने की अभ्यर्थना करता हूँ जिससे कि द्वितीयावृत्ति में, स्खलितदर्शक सज्जनों को धन्यवाद देकर ठीक कर दिया जावे।

"अयुक्तमस्मिन् यदि किंचिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा।
औदार्यकारुण्य विशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत्परिमार्जनीयम्"।

इस के प्रकाशन का श्रेय श्रीयुक्त मा० आत्माराम जी को ही देना चाहिए क्योंकि यदि वे अपनी युक्तिपूर्ण उपवृत्ति वा हिन्दीभाष्य-व्याख्या लिखने का कष्ट न उठाते तो मैं शायद इसे कभी न लिखता। मेरी पूर्व इच्छा थी कि संस्कारों के कर्तव्य के ऊपर, एक उन की सप्रयोजनता सिद्ध करने के लिए छोटासा लेख लिखूँ; परन्तु जब उस कार्य को श्री० मास्टर जी ने स्वयं कर लिया तब मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं रही। "हवन प्रत्येक संस्कार में क्यों किया जाता है! छोटे बड़ों का सत्कार क्यों किया जाता है! अमुक २ संस्कार में अमुक २ अवान्तरविधि का क्या फल है! साथ २ ईश्वरप्रार्थनापरक वा प्रयोजनीय वस्तु के गुणदोषदर्शक मन्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है! इत्यादि प्रश्नों का उत्तर स्वयं श्री० मास्टर जी ने दे दिया है।

हा! आर्य जाति, इतनी पतित हो गई कि उसे प्राचीन आचार्यों के स्पष्ट ही सभ्यताद्योतक और जातीयता की वृद्धि के द्योतक, और अपने अन्तःकरण की शुद्धि के दर्शक कार्यों पर भी सन्देह होने लग गया! "किन्तु दुःखमतःपरम्"।

अन्त में हम फिर इतनी प्रार्थना किये देते हैं कि जितना हम से हो सका "संस्कारविधि" की उपादेयता बढ़ाने में यत्न किया, परन्तु संशोधकों के दृष्टि दोष, असावधानता, से तथा प्रेस के कर्मचारियों की असावधानता से इसमें बहुत सी अशुद्धियाँ रह गई हैं*। कहीं २ मात्राएँ उड़ गई हैं, कहीं २ हेडिंग रखने आदि में, भूलें हुई हैं—जिनके लिये क्षमा प्रार्थना के अतिरिक्त हम क्या कर सकते हैं! अस्तु, पाठक "शुद्धि पत्र" से मिलान कर के पढ़ें, द्वितीयावृत्ति में सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की चेष्टा की जायगी।

अनुग्राह्य—भीमसेनशर्मा

मुख्याध्यापक—म० विद्यालय, ज्वालापुर,

O. R. R.

---

*ऐसी अशुद्धियाँ, "शर्मा मेशीन प्रिंटिङ्ग प्रेस मुरादाबाद" के छपे फार्मों में हों (जो "गर्भाधान" से लेके "वेदारम्भ" संस्कार तक छपे हैं) रही हैं। "वानप्रस्थ" और "अन्त्येष्टि" संस्कार 'गढ़वाली प्रेस' देहरा दून में और शेष सब ग्रन्थ श्री 'स्वामी प्रेस' देहरादून में छपा है।

ओ३म् नमः।

भूमिका।

(श्री० म० आत्माराम जी लिखित)

वेद, विद्या वा यथार्थ ज्ञान का नाम है। विद्या के नाना भाग उपयोग के कारण होते हैं। युरोप में प्रत्येक पदार्थ की विद्या को 'सायंस' कहते हैं। जब उस सायंस का उपयोग शिल्पादि में किया जाता है तब शिल्पशास्त्र को "आर्ट" (कर्म) बोधक विद्या कहते हैं। युरोप वालों को अभी जड़ प्रकृति का ज्ञान ही हुआ है, इसलिये उन के यहाँ ज्ञान [सायंस] और कर्म [आर्ट] दो काण्ड ही विद्या के पाये जाते हैं। जब उन को ब्रह्म का ज्ञान होगा तब तत्सम्बन्धी कर्मों के लिये तीसरा उपासना काण्ड माननाही पड़ेगा। जिसको "एक्सपीरियेंस" [अनुभव] कहते हैं वह ज्ञान की परिपक्व अवस्था का नाम है।

वेद के जो ४ काण्ड, भिन्न २ उपयोग के कारण हैं उनके नाम ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान हैं। ज्ञान काण्ड में सर्वप्रकार के सायंस हैं। कर्मकाण्ड में सर्वप्रकार के उत्तम व्यवहार तथा सर्वहितकारी कला कौशल हैं। उपासना काण्ड में चेतन जीव सम्बन्धि विद्या तथा कर्मों का वर्णन है जो चेतन ब्रह्म की प्राप्ति के लिये मनुष्यमात्र को अनुष्ठेय हैं "विज्ञान काण्ड" एक्सपीरियेंस वा अनुभवात्मक-ज्ञान वा संशयरहित वा परिपक्व ज्ञान का नाम है॥

कई पण्डित तथा स्मृतिकार विज्ञान को ज्ञान के अन्तर्गत समझकर ज्ञान, कर्म और उपासना यह तीन ही वेदों के काण्ड मानते हैं। वास्तव में बात एक ही है किन्तु प्रयोग शैली में भेद है॥

ज्ञानकाण्ड का दूसरा नाम विद्याकाण्ड, कर्मकाण्ड का दूसरा नाम यज्ञकाण्ड, और उपासना काण्ड का दूसरा नाम ब्रह्मभक्ति है। वास्तव में यह चारों काण्ड, एक विद्याकाण्ड के ही अन्तर्गत हैं इसलिये वेद कहने से चारों ही काण्डों का बोध होता है। सर्वप्रकार के सिद्धान्तों

का ज्ञानकाण्ड में समावेश हो जाता है । प्रत्येक मत वाले अपने २ सिद्धान्त रखते हैं-और प्रत्येक मत वाला बड़े गौरव से यह कहता है कि हमारे ही मत के सिद्धान्त, विद्यामय और सत्य हैं । वैदिक धर्मी भी यही कहते हैं कि वेद मन्त्रों में जो २ विद्या वा सिद्धान्त दर्शाए गये हैं वे सब सत्य हैं वैदिक धर्मियों का यह कथनमात्र, किसी प्रकार अन्य मतों के उपदेशकों के कथन से बढकर नहीं हो सकता । यदि मतान्तरों के उपदेशकों से पूछा जावे कि आपके सिद्धान्त क्यों सत्य हैं ! तो वे यह कहते हैं कि [१] हमारे बाप दादा ऐसा कहते चले आये हैं । [२] हमारी धर्म पुस्तक में लिखा हैकि यह सत्य सिद्धान्तों का पुस्तक है । (३) हमारे मतके प्रवर्त्तक वा आचार्य्य हमें कह रहे हैं कि यह सत्यहै ।

यदि इस के उत्तर में कहा जावे कि आप के बाप दादा ने भूल नहीं की, इसका निश्चय आपने कैसे किया ? क्या धर्म पुस्तक में यदि आपको प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाण द्वारा कोई विरुद्ध बात प्रतीत हो तो फिर भी क्या आप उस पुस्तकको सर्वांशमें सत्यही मानोगे ? इनके उत्तरमें उनकी ओर से यही कहा जाता है कि धर्मके सिद्धान्तों पर शङ्का करने की आवश्यकता क्या है ? । धर्म में तर्क वा प्रमाण द्वारा उस का क्यां अनुसन्धान करें ? जैसा मानते चले आये हैं वैसा ही विश्वास रक्खेंगे ।

पर यदि कोई हम से उक्त प्रश्न करे तो हम उस के उत्तर में कहेंगे कि वेद इस लिये सत्य है कि हम उन को युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा भी सत्य पाते हैं । और स्वयं वेदों ने ही संवाद करने और प्रत्यक्ष अनुमानादि ही प्रमाण द्वारा सत्यको मानने वा अनुसंधान करने का उपदेश दिया है । ऋग्वेद की समाप्ति पर "संवदध्वम्" यह कह कर संवाद करने का उपदेश दिया है । यजुर्वेद में "सप्तऋषयः परिहिताः शरीरे" इत्यादि शब्दों द्वारा बतलाया है कि प्रत्येक मनुष्यके पास सात ऋषि वा सात ज्ञान दर्शक हैं अर्थात् बुद्धि, मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणादि इन सप्तऋषियों के ही ज्ञान वा व्यावहारिक क्रियाओं के नाम हैं । इसी लिये महर्षि निरुक्त कार ने 'तर्क' को 'ऋषि'

कहा और क्यों न कहता, जब कि स्वयं यजुर्वेद ने "बुद्धि" को जो तर्क करतीहै "ऋषि" दर्शाया । इस लिये हम यह कह सकते हैं कि वैदिकधर्म, ज्ञानमूलक वा सत्य धर्म है अथवा "रेशनलईज़्म' है ॥

वेदों में जो कर्मकाण्ड है वह जहाँ सत्य वा ज्ञानमूलक है वहाँ उस का दूसरा लक्षण यह है कि वह मनुष्य ही नहीं किन्तु प्राणीमात्र के हितकारी कर्मकरने का बोधन करा रहा है। सर्वहितकारी कर्मों का दूसरा नाम वैदिकपरिभाषा में "यज्ञ" है और यज्ञ किन प्रकार के कर्मों को कहते हैं इसका उत्तर यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में **'श्रेष्ठतमकर्म'** कह कर दिया है ।

पशु हिंसा आदि दुष्टकर्म यज्ञका अङ्ग नहीं हो सकते, यह **'श्रेष्ठतमकर्म'** शब्द पर विचार करने से ही सिद्ध है । इसके अतिरिक्त इसी प्रथम मन्त्रने "पशून् पाहि" यह कह कर दर्शा दिया कि पशुहिंसा यज्ञकाण्ड में नहीं ! इसके सिवाय ऋग्वेद मण्डल १, अ० १ सू० १ म० ४ में "यं यज्ञमध्वरम्" जो शब्द आये हैं वह यज्ञ को हिंसा से रहित कर्म दर्शा रहे हैं ॥

अतः सर्वहितकारी, हिंसा चोरी आदि रहित, एकमात्र शुभकर्मों वा **'श्रेष्ठतमकर्मों'** का नाम "यज्ञ" है, यह हमें याद रखना चाहिये ।

जिस प्रकार सत्यज्ञान की परीक्षा संवाद और प्रमाण से हो सक्ती है, जिस प्रकार वैदिक कर्मों का लक्षण यह है कि वह **श्रेष्ठतमकर्म** हों, उसी प्रकार वैदिक उपासना जहाँ ज्ञानमूलक है वहाँ उसका महत्त्व यजुर्वेद में हमें यह मिलता है कि उपासक को मोह और शोक नहीं ग्रसते ।

"तत्र को मोहः कः शोकः" यह यजुर्वेद के वचन बतला रहे हैं कि एक सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना करने वाला मोह (मानसिक आसक्ति दोष) और शोक (मानसिक पीड़ा) से मुक्त हो जाता है-अर्थात् मानसिक बल की प्राप्ति ब्रह्मोपासना का फल है ।

आज युरुप पुराने आर्यों के मार्ग में चलता हुआ "ओबज़रवेशन एन्ड एक्सपेरीमेंट„ (प्रत्यक्ष प्रमाण) के सहारे सायंस का आरम्भ करके अब अनुमान प्रमाण से काम लेता हुआ फिलोसोफी में उन्नति करने लगा है ।

युरुप में सायंस को सत्यज्ञान वा शास्त्र के अर्थों में लिया जाता है। ज्ञान सत्य हो, इस के लिये वहाँ संवाद आदि सर्वदा किये जाते हैं, मानो वैदिक ज्ञानकाण्ड रूपान्तर में युरुप में फैल रहा है। कर्मकाण्ड के लेखक आज वहाँ मान गये कि जो न केवल एक समाज के लिये "यूटि-लेटी" लाभदायक हों किन्तु मनुष्यमात्र को जो लाभदायक हों, ऐसे कर्म करने चाहियें।

उपासना काण्ड में अभी उन्होंने विशेष वृद्धि नहीं की। अस्तु:—

उन वेदों के सिद्धान्तों पर मनन करने से जो कि एकमात्र सत्य और सर्वहितकारी हैं, पुराने ऋषियों ने कल्पशास्त्र की रचना की थी। कल्पशास्त्र में बीज तो वेदमन्त्र का भाग ही है पर उस बीज पर मनन करने से उन्होंने ज्ञानरूपी शाखादि से युक्त अपने शास्त्र को बना लिया था। जितने भी गृह्यसूत्र इस समय मिलते हैं यह कल्पशास्त्र के नाना ग्रन्थ हैं। उन में से चार वेदों पर जो ४ प्रसिद्ध गृह्यसूत्र हैं, मुख्यकरके उन के आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने संस्कारविधि को रचा। इन सूत्रों में, वेद, मन्त्र ब्राह्मण तथा उपनिषद् आदि के वाक्यों की जो २ प्रतीकें रक्खी हैं, वे प्रायः संस्कारविधि में उल्लिखित पाई जाती हैं। यदि आज भारतदेश की भाषा संस्कृत होती और केवल पुराने गृह्यसूत्रों के मुख्य उद्देश्यों का ही प्रचार होता तो महर्षि दयानन्द जी को इस ग्रन्थ के निर्माण करने की आवश्यकता न होती, किन्तु दुर्भाग्य-वश इस समय लोगों में संस्कारों की प्रथा बहुत कुछ लुप्त हो गई और जो संस्कार प्रचलित भी हैं उनका मुख्य उद्देश्य लोग भूल कर केवल बाह्य क्रियामात्र को ही संस्कार मान रहे हैं। इस दशा में महर्षि दयानन्द जी ने जो वेदों के अद्वितीय पण्डित और वैदिक धर्म के मर्मज्ञ थे और जिन के हृदय में यह लक्ष्य था कि आर्य्य संतान और मनुष्य मात्र ऋषियों की उत्तम बातों को जलाञ्जलि न दे बैठे, उन्होंने संग्रहरूप ग्रन्थ "संस्कारविधि" रच कर पुराने आर्य्यों के १६ संस्कारों का मुख्य उद्देश्य मनुष्यमात्र के आगे रख दिया।

कहीं२ संस्कारों में उन्हों ने अनेक वेदमन्त्र और धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) के श्लोक तथा आयुर्वेद के प्रमाण अपने विषय के समर्थन में नये दिये हैं जिन की प्रतीक सूत्र ग्रन्थों में नहीं हैं और ऐसा करने से उन्हों ने कुरीतियों के निवारण करने में आर्यमात्र को बड़ी सहायता दी है। यह संस्कारविधि जैसा कि उस का नाम ही दर्शा रहा है कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य एकमात्र मनुष्य जाति को वास्तविक वा श्रेष्ठ मनुष्य जाति बनाने का है।

इस ग्रन्थ में उन सोलह संस्कारों का साररीति से वर्णन है जिन के द्वारा प्राचीन काल में मनुष्य जाति के आदि पितृ–ऋषि लोगों ने मनुष्य जाति को श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना रक्खा था। "यूजेनिक्स" पश्चिमीयशास्त्र इस समय कह रहा है कि मनुष्यजाति को विवाह आदि की उत्तम प्रथा नियत करने से हम श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना सकते हैं।

मनुष्य, श्रेष्ठमनुष्य उत्पन्न हों इस लिये विवाह तथा गर्भाधान संस्कार ऋषियों ने रक्खे थे। मनुष्य के बच्चे का बालकपन सुख से व्यतीत हो और भावी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के बीज उस में अङ्कित किये जावें इस लिये पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म तथा कर्णवेध संस्कार ऋषियों ने रक्खे। मनुष्य का बच्चा, विद्या का अनुरागी हो इस के लिये यज्ञोपवीत संस्कार रक्खा। मनुष्य का बालक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके बलवान्, विद्वान् और मनुष्य जाति का प्रेमी हो सके इस के लिये "वेदारम्भ संस्कार" था।

ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी विद्यालय से जब लौटें तब उनको गृहस्थ के लिये तैयार करने को समावर्त्तन संस्कार किया जाता था। गृहस्थी की जब वृद्धावस्था आरम्भ हो तब उस को जितेन्द्रिय, तपस्वी, जिज्ञासु और प्रेमद्वारा मनुष्यजाति की उत्तमता से सेवा करने योग्य बनाने के लिये वानप्रस्थ संस्कार था। वानप्रस्थी ईश्वरवत् निष्काम रीति से परोपकार करता हुआ सत्यज्ञान और प्रेम की धारा बहा कर मनुष्यजाति को सत्य ज्ञान से उन्नत और प्रेम से आनन्दित कर सके और अपने

धार्मिक जीवनसे जीवन दे सके इस लिये संन्यास संस्कार रक्खा था । मृतक शरीर को भस्म करने से मनुष्यजाति को सञ्चारक रोगों से बचने के लिये अन्त्येष्टि संस्कार था । संस्कार रस्म व रिवाज का नाम नहीं, किन्तु मानसिक (लिङ्गशरीर) शुद्धि तथा शारीरिक व स्थूलशरीर की शुद्धि के लिये जो क्रियाएँ भली प्रकार (ज्ञानपूर्वक) की जावें उन को ऋषि लोगों ने "संस्कार" का नाम दिया था ।

इस संसारविधि ग्रन्थों में संस्कृत प्रमाण जो दिये गये हैं उन का भाषानुवाद प्रायः नहीं है और भाषा के बहुत से स्थल ऐसे सूत्र रूप हैं कि सर्वसाधारण को बिना व्याख्या समझ में नहीं आ सकते । इस लिये संस्कृत भाग का अनुवाद हो तथा वह प्रमाण किन २ ग्रन्थों के हैं उन का अन्वेषण किया जाय और मूल ग्रन्थ के संस्कृत तथा भाषा लेख में जो अशुद्धि यन्त्रालय के किसी कर्मचारी वा लेखक के दृष्टिदोष के कारण रह गई है उनका अनेक ग्रन्थों के अन्दोलन द्वारा परिशोधन किया जाय यह एक काम था । तथा इस संस्कृत के अनुवाद के साथ पूर्व की विद्यमान सूत्ररूप भाषा का व्याख्यान हो और संस्कार का मुख्य उद्देश्य दर्शाया जावे यह दूसरा काम था ।

आज से दो वर्ष पूर्व गुरुकुल देवलाली के प्रथम महोत्सव पर श्रीयुत विद्वद्वर्य पण्डित भीमसेन जी शर्म्मा आगरा निवासी, आचार्य गुरुकुल देवलाली से मेरी भेट हुई तो बात चीत में मैंने उनसे कहा कि यदि आप मूल संस्कृत का अनुवाद करने तथा ग्रन्थ परिशोधन का काम अपने शिर पर लेवें तो व्याख्या भाग का काम मैं पूर्ण करके ग्रन्थ को यथाशक्ति शीघ्र निकाल सकता हूँ । उन्होंने यह समझकर कि ऐसा करने से ऋषि सन्तान में संस्कारों की प्रथा दृढ़ होगी कृपापूर्वक यह बात स्वीकार की और छः मास के पश्चात् ही अपना भाग पूर्ण कर के मुझे भेज दिया । इस अनुवाद भाग से उन के अमभय अन्वेषण, उच्चपाण्डित्य, युक्तिपूर्ण संगति तथा उत्तम अर्थों का परिचय विद्वन्मण्डल को मिलेगा । मेरे व्याख्या भाग का मूल व आधार उन का अनुवाद भाग ही है । उक्त

पण्डित जी की संस्कृत की उच्चयोग्यता, वह लोग भली प्रकार जानते हैं जिन्होंने उन की बनाई हुई संस्कृत रीडरें जो अनेक गुरुकुलों में पढ़ाई जाती हैं, देखी हैं। संस्कृत के जिन अनेक पण्डितों ने आर्यसमाज में रह कर संस्कृत साहित्य के प्रचारार्थ अनेक प्रकार के कष्ट सहन किये उनमें से निस्संदेह पण्डित भीमसेन जी आगरा निवासी भी एक हैं। आज कल वह महाविद्यालय ज्वालापुर (जिला सहारनपुर) में संस्कृत के न केवल मुख्य उपाध्याय ही हैं किन्तु महाविद्यालय सभा ज्वालापुर के उपमन्त्री भी हैं।

जिन महानुभाव आर्य समाज के भूषण रूप प्रसिद्ध विद्वानों ने मुझे अपनी अमूल्य सम्मति, विचार, परामर्श आदि द्वारा वा किसी अन्य प्रकार से ग्रन्थ रचना में सहायता दी है उन के शुभनाम धन्यवादपूर्वक नीचे प्रकाशित किये जाते हैं।

(१) श्रीयुत राय ठाकुरदत्त जी प्रधान प्रबन्धकर्त्री सभा गुरुकुल गुजराँवाला, पेन्शनर डिस्ट्रिक्ट जज लाहौर।

(२) श्रीयुत पं० जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न प्रधान आर्य समाज अमृतसर।

(३) श्रीयुत डाक्टर कल्याण दास जी, जे, देसाई बी० ए० एल० एम० एन्ड० एस० मन्त्री आर्य विद्यासभा बम्बई।

(४) श्रीयुत पण्डित शिवदत्त जी काव्य तीर्थ बनारस।

(५) श्रीयुत महाशय जगनलाल जी इंग्लिशटीचर बड़ोदा।

(६) श्रीयुत पण्डित श्रीराम जी शर्म्मा हिन्दीप्रोफ़ेसर मेलट्रेनिंग कालेज बड़ोदा।

(७) श्रीयुत पण्डित रघुवर दयालु जी शर्म्मा हिन्दी प्रोफ़ेसर फीमेलट्रेनिंग कालेज बड़ोदा।

इन के अतिरिक्त पूज्यवर महात्मा श्री स्वामि विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती तथा पूज्यवर महात्मा श्री स्वामि नित्यानन्द जी सरस्वती, जो भारतवर्षीय आर्यसमाजों के प्रसिद्ध महोपदेशक तथा विचारक हैं और

जिन्होंने कई अवसरों पर अपने सत्संग का मुझे लाभ दे कर प्राचीन शास्त्रों की महत्त्वसूचक अनेक बातें दर्शाईं, मैं इन सब को विशेष धन्य-वाद देता हूँ ।

अन्त में मुझे केवल यही निवेदन करना है कि यह "संस्कार चन्द्रिका" ग्रन्थ उन लोगों के लिये जो शास्त्रोक्त संस्कार सुधार (सोशियल रिफार्म) शुभकाम में लगे हुये हैं एक उपयोगी तथा सहायकग्रन्थ सिद्ध होगा और जो महोदयगण धार्मिकरीति से कुरीतियों के संशोधन में लगे हुए हैं उन के लिये भी काम देगा ॥ ओम् शान्तिः ३ ॥

बड़ोदा
ता० १ माघ संवत् १९६९ वि०

पाठकों का शुभचिन्तक—
आत्माराम
(अमृतसर निवासी)

ओ३म्

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय॥

महर्षिदयानन्दसरस्वती कृत - संस्कारविधि की टीका-

संस्कारचन्द्रिका

—:*:*:*:—

विश्वस्थितिप्रलयकारण मादिदेवं, योगीन्द्रवृन्दपरिषेवितचित्स्वरूपम्॥
संस्कारविध्यखिलमन्त्रपदार्थसार्थप्रोद्बोधनाय सततं शरणीकरोमि ॥१॥
श्री १०८ मद्दयानन्दसरस्वतीति, ख्यातिं दधानो यतिधर्मवीरः ॥
स्फारो जनानां हृदयान्धकारो, निराकृतो येन स कैर्न नम्यः ! ॥ २ ॥
वेदान्तविज्ञानविशुद्धसत्त्वान्, दुर्दान्तदुर्वादिकरीन्द्रसिंहान् ॥
श्री ६ काशिनाथादिपदाभिधेयान् गुरूनहं चेतसि भावयामि ॥ ३ ॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजुः अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे [सवितः] सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्रैश्वर्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा,सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह सब हम को (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यजुः अ० १३ । मं० ४ ॥

अर्थः-जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एकही चेतन स्वरूप (आसीत्) था जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) सो [इमाम्] इस [पृथिवीम्) भूमि [उत] और [द्याम्] सूर्यादि को [दाधार] धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] शुद्ध परमात्माके लिये [हविषा] ग्रहणकरने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से [विधेम] विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य० अ० २५ मं० १३ ॥

अर्थः [यः] जो [आत्मदाः] आत्मज्ञान का दाता [बलदाः]शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा [यस्य] जिसकी [विश्वे] सब [देवाः] विद्वान् लोग [उपासते] उपासना करते हैं और [यस्य] जिसका [प्रशिषम्] प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं [यस्य] जिस का [छाया] आश्रय ही [अमृतम्] मोक्षसुखदायक है [यस्य] जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करनाही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःखका हेतुहै हम लोग उस [कस्मै] सुख स्वरूप [देवाय] सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव । य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ य० अ० २३ मं० ३ ॥

अर्थः—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एकः, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीरकी (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्रीसे (विधेम) विशेष भक्ति करें॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० अ० ३२ मं० ६ ॥

अर्थः—(येन) जिस परमात्माने (उग्रा) तीक्ष्णस्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और [येन) जिस ईश्वर ने (नाकः] दुःखरहित मोक्ष को धारण कियाहै (यः) जो [अन्तरिक्षे] आकाश में [रजसः] सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़तेहै वैसे सबलोकोंका निर्माणकरता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये [हविषा] सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजाके स्वामी परमात्मा (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकोंको (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हमलोग (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥ य० अ० ३२ मं० १० ॥

अर्थः—हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगोंको (बन्धुः) भ्राताके समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामोंका पूर्ण करने हारा (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोक मात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मोंको (वेद) जानताहै और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥ य० अ० ४० मं० १६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकलसुखदाता परमेश्वर आप जिस से (विद्वान्) संपूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) संपूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमउक्तिम्) नम्रता पूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा कियाकरें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥१॥

(पुरोहितम्) पूर्वसे ही जगत् को धारण करने वाले (यज्ञस्य) हवन, विद्यादि दान और शिल्प क्रिया के (देवम्) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारम्) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देनेवाले (रत्नधातमम्) रमणीय रत्नादिकों के पोषण करनेवाले (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की (ईडे) मैं उपासक स्तुति करताहूँ [भौतिकअग्निपर कभी इस मन्त्र का अर्थ होता है पर यहां यही ग्राह्य है]॥ १ ॥

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व । सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥२ ॥

ऋ०। मं० । १ । सू० १ । मं० १ । ६ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (सः) लोकवेदप्रसिद्ध आप (सूनवे पिता,इव) पुत्र के लिए पिता जैसे, (नः) हमारे लिए (सूपायनो, भव) सुखके हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिए । और (नः) हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिए (सचस्व) मेल कराइए ॥ २ ॥

स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ । स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ३ ॥

हे ईश्वर! (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (मिमीताम्) करें (भगः) ऐश्वर्य रूप आप, वा वायु (स्वस्ति) सुख का सम्पादन करें । (अदितिः) अखण्डित (देवी) प्रकाश वाली विद्युत् विद्या (अनर्वणः) ऐश्वर्य रहित हम लोगोंके लिए कल्याणकरे । (पूषा) पुष्टिकारक (असुरः) प्राणों का देने वाला मेघादि (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देवे । (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त हुए (नः) हमारे लिए [स्वस्ति] कल्याण कारी हों ॥ ३ ॥

स्वस्तये॑ वा॒युमुप॑ब्रवामहै॒ सोमं॑ भु॒वन॑स्य॒ यस्पति॑ः। बृह॒स्पतिं॒ सर्व॑गणं स्व॒स्तये॑ स्व॒स्तय॑ आदि॒त्यासो॑ भवन्तु नः॥ ४॥

हे परमेश्वर! (स्वस्तये) शान्ति के लिए हम [वायुम्] वायु विद्या को [उप, ब्रवामहै] कहें वा उपदेश करें और [सोमम्] शान्त्यादि ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की भी हम स्तुति करते हैं [यः] जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से [भुवनस्य] संसार की [पतिः] रक्षा करने वाला है। [बृहस्पतिम्] बड़े कर्मों के रक्षक (सर्वगणम्) सम्पूर्ण समूह वाले आप का (स्वस्तये) कल्याण के लिए आश्रयण करते हैं (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले ब्रह्मचारी, आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के बीच (भवन्तु) उत्पन्न हों॥ ४॥

विश्वे॑ दे॒वा नो॑ अ॒द्या स्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑। दे॒वा अ॑वन्त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्ति नो॑ रु॒द्रः पा॒त्वंह॑सः॥ ५॥

हे परमात्मन्! (अद्य) आज यज्ञ के दिन (नः) हमारे (स्वस्तये) आनन्द लिए (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग हों। और (वैश्वानरः) सब मनुष्योंके काम में आने वाला और सर्वत्र बसने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मंगलके लिए हो। (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिए ही (रुद्रः) दुष्टों को रुलानेवाले आप (अंहसः) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्ति पूर्वक हमारी रक्षा करो॥ ५॥

स्व॒स्ति मि॑त्रावरुणा स्व॒स्ति प॑थ्ये रेवति। स्व॒स्ति न॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ स्व॒स्ति नो॑ अदिते कृधि॥ ६॥

हे (अदिते!) अखण्डितविद्य! परमेश्वर! (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो। (च) और (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) विद्युत् (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण करे। (पथ्ये-रेवति) शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग में हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण हो। और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण कारी हों॥ ६॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० । मं० ५ । सू० ५१ ॥

* हे ईश्वर ! (पन्थाम्) मार्ग में (स्वस्ति) आनन्द से (अनुचरेम) हम लोग विचरें । (सूर्याचन्द्रमसाविव) जैसे सूर्य और चन्द्र विना किसी उपद्रव के विचरणकरते हैं (पुनः) फिर (ददता) सहायता देनेवाले (अघ्नता) किसी को दुःख न देने वाले (जानता) ज्ञानसम्पन्न समझदार बन्धु आदि के साथ (संगमेमहि) हम मेल करें ॥ ७ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ ऋ० । मं० ७ । सू० ॥ ३५ ॥

(ये) जो (यज्ञियानां, देवानाम्) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं और (मनोर्यजत्राः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृताः) जोवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज यागदिनमें (उरुगायम्) बहुत कीर्ति वाले विद्याबोध को (नः) हमारे लिए (रासन्ताम्) देवें और (यूयम्) तुम सब [स्वस्तिभिः] कल्याण कारी पदार्थों से [सदा] सब काल में [नः] हमारी [पात] रक्षा किया करो ॥ ८ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए (माता) सब की निर्माण करने वाली पृथिवी [मधुमत्, पयः] माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को [पिन्वते,] देती है और [अदितिः] अखण्डनीय [अद्रिबर्हाः] मेघोंसे बढ़ाहुआ [द्यौः] अन्तरिक्ष लोक [पीयूषम्] सुन्दर जलादिको देताहै, उन [उक्थशुष्मान्] अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करनेवाले [स्वप्नसः] शोभनकर्म वाले (तान्, आदित्यान्) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) उपद्रव न होने के लिये (अनुमद) प्राप्त कराइये ॥ ९ ॥

---

* अथ स्वस्तिवाचनम्—ऋद्धि पूर्तेषु स्वस्त्ययनं वाचये दित्याचार्यः । ऋद्धि विवाहान्ता अपत्य संस्काराः, प्रतिष्ठाद्यापने पूर्तमिति आश्वलायन गृह्य परिशिष्टे । 'अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत ' इत्याश्वलायनः १-८-१५ नोट स्वस्तिवाचनके प्रारम्भ कीजिये।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १०॥

(नृचक्षसः) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्य रहित (अर्हणः) लोगों के पूजनीय (देवासः) विद्वान् लोग हैं जोकि (बृहत्) बड़े (अमृतत्वम्) अमरण धर्मको [आनशुः] प्राप्तहो चुकेहैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं और (ज्योतीरथाः) सुन्दर प्रकाशमय रथोंसे युक्तहैं (अहिमायाः) [जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सक्ता ऐसे (अनागसः) पापरहित वे आदित्य ब्रह्मचारी जोकि (दिवः) अन्तरिक्ष लोक के (वर्षमाणम्) ऊंचे देश को [वसते] ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, वे [स्वस्तये] हमारे कल्याण के लिए हों ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमायुयुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥

[सम्राजः] अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान [सुवृधः] ज्ञानादि से वृद्ध [ये, देवाः] जो विद्वान् लोग (यज्ञम्) यज्ञ को (आययुः) प्राप्त होते हैं और जो (अपरिह्वृताः) किसी से भी अपीड़ित देवता लोग (दिवि) द्यु-लोकवर्ती बड़े २ स्थानों में [क्षयम्] निवास को [दधिरे] करते हैं [तान्] उन [महो, आदित्यान्] गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियोंको और [अदितिम्] अखण्डनीय आत्म विद्या को [नमसा] हव्यान्नके साथ और [सुवृक्तिभिः] अच्छी स्तुतियों के साथ [स्वस्तये] कल्याण के लिए [आ, विवास] सेवन कराओ ॥ ११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥

यह ईश्वरमुखोपदेश है—हे [विश्वे देवासः] समस्त विद्वानो ! [यम् जुजोषथ] जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो उस [स्तोमम्] सामवेदोक्त स्तुति समूह को [वः] तुम लोगों के बीच में [कः] कौन [राधति] बनाता है ! और हे [तुविजाताः] अनेक प्रकार के जन्म वाले [मनुषः] मननशील वि-द्वान् लोगो [यति, स्थन] जितने तुमहो उन [वः] तुम सब के बीच में [कः] कौन (अध्वरम्) यज्ञ को [अरम्, करत] अलंकृत करता है ! [यः] जो यज्ञ

(नः) हमारे (अंहः) पाप को (अति) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पर्षत्) पालन करता है (इस का विचार करो) ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिद्धाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सातहोताओं से (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है अर्थात् जिनके लिये विद्वान् लोग बड़े २ यज्ञों द्वारा सन्मान करते हैं (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं, शर्म) भयरहित सुख को (यच्छत) देवें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुगा) अच्छे प्रकार प्राप्तव्य (सुपथा) शोभनवैदिकमार्गों को (कर्त) करें ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) अच्छे ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जाननेवाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जंगम (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोक के (ईशिरे) मालिक बनते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

हे ईश्वर ! (अंहोमुचम्) पापके हटाने वाले [सुहवम्] जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे [इन्द्रम्] शक्तिशाली विद्वान् को [भरेषु] सङ्ग्रामों में [हवामहे] अपनी रक्षा के लिये बुलावें और [सुकृतम्] श्रेष्ठकर्मवाले [दैव्यं] आस्तिक [जनम्] पुरुष को बुलावें और [सातये] अन्नादिलाभ के लिये [स्वस्तये] अनुपद्रव के लिये [अग्निम्] अग्नि विद्या को [मित्रम्] प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्) सेवनीय जल विद्या को और [द्यावापृथिवी] अन्त-

रिक्ष और पृथिवी की विद्याको [मरुतः] वायुविद्या को (हम सेवन करें) ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

[सुत्रामाणम्] अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली [पृथिवीम्] लम्बी चौड़ी [अनेहसम्] उपद्रवरहित [सुशर्माणम्] अच्छा सुख देने वाली [अदितिम्] जो टूट न सके [सुप्रणीतिम्] जो अच्छे प्रकार बनाई गई है [द्याम्] अन्तरिक्षलोकस्थ [स्वरित्राम्] सुन्दर यन्त्रों से युक्त [अस्रवन्तीम्] दृढ़ [दैवीम्, नावम्] विद्युत्सम्बन्धी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग [स्वस्तये] सुख के लिये [आरुहेम] चढ़ें ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

हे [विश्वे, यजत्राः] पूजनीय विद्वानो ! [ऊतये] हमारी रक्षा के लिये [अधिवोचत] आप उपदेश किया करें और [अभिह्रुतः] पीड़ा देने वाली [दुरेवायाः] दुर्गति से [नः] हमारी [त्रायध्वम्] रक्षा करो [देवाः] हे विद्वान् लोगो ! [शृण्वतः] हमारी स्तुति सुनने वाले आप को [सत्यया] सच्ची [वः] तुम्हारी [देवहूत्या] देवताओं के योग्य स्तुति से हम [अवसे] शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और [स्वस्तये] सुख के लिये [हुवेम] बुलाया करें ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

हे [देवाः] विद्वान् लोगो ! [अमीवाम्] रोगादि को [अप] पृथक् करो । [विश्वाम्] सब [अनाहुतिम्] मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धिको [अप] पृथक् करो । [अरातिम्] लोभबुद्धि को [अप] पृथक् करो । [अघायतः] पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की [दुर्विदत्राम्] दुष्ट बुद्धि को दूर करो । [द्वेषः] द्वेष करने वाले सबों को [अस्मत्] हम से [आरे] दूर [युयोतन] पृथक् करो । [नः] हमारे लिए [उरु-शर्म] बहुत सुख [स्वस्तये] कल्याण के लिए [यच्छत] देओ ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासोनयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १८ ॥

हे (आदित्यासः) आदित्य ब्रह्मचारियो ! (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सबपापों को (अति) उल्लङ्घन कर के (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः, विश्वः, मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न हो कर (एधते) बढ़ते हैं और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) बाद (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से (प्र,जायते) अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥

हे (मरुतो, देवासः) मितभाषी देवता-विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्नके लाभ के लिये(यं,रथम्)जिस रमणीय गमन साधन—वाष्पयानादि की (अवथ) रक्षा करते हो और (हिते, धने) रक्खे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यन्त्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) चढ़ें ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

[मरुतः] मितभाषी विद्वान् लोगो ! [नः] हमारे लिये [पथ्यासु] मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (धन्वसु) जलरहित देशों में [स्वस्ति] जलकी उत्पत्तिरूप कल्याण करो और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो और (नः) हमारे [पुत्रकृथेषु] पुत्रों के करने वाले [योनिषु] उत्पत्ति स्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो और [राये] गवादि धन के लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥ २१ ॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० सू० ६३ ॥

[या] जो पृथिवी, जाने वालों के [प्रपथे] अच्छे मार्ग के लिये [स्वस्तिः, इत्, हि] कल्याणकारिणी ही होती है और जो [श्रेष्ठा] अति सुन्दर [रेक्णस्वती] धन वाली है तथा [वामम्] सेवन के योग्य यज्ञ को [अभि, एति] प्राप्त होती है [सा] वह पृथिवी [नः] हमारे [अमा] गृह को [नि, पातु] रक्षा करे [सा, उ] वही पृथिवी [अरणे] वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और [देवगोपा] विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये [स्वावेशा।] अच्छे स्थान वाली [भवतु] हो। [परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिए सुन्दर मार्ग वाली, अन्नादि धन पैदा करने वाली, वनादि में जिसका सुप्रबन्ध हो ऐसी, और विद्वानों (इञ्जिनियरों) से जिसमें अच्छे स्थान बनाए जावें ऐसी पृथिवी प्राप्त हो] ॥२२॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १ मं० १ ॥

हे ईश्वर ! [इषे] अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिये [त्वा] तुमको (आश्रयाम इतिशेषः) आश्रयण करते हैं और (ऊर्जे) बलादि के लिए (त्वा) तुम को आश्रयण करते हैं।

हे वत्स जीवो ! तुम (वायवः) वायुसदृश पराक्रम करनेवाले (स्थ) हो। (सविता देवः) सब जगत् का उत्पादक देव* (श्रेष्ठतमाय† कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठ

---

* यह भगवदुक्ति, महाभाष्यकारकी "गोनर्दीयस्त्वाह" इस उक्ति की तरह से है।

† कर्म चार प्रकार का होता है, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम। अप्रशस्त—चौर्यादि। प्रशस्त—बन्धु पोषणादि। श्रेष्ठ—धर्मार्थ स्थान बनाना आदि। श्रेष्ठतम—यज्ञ। क्योंकि यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से शुद्ध अन्न की उत्पत्ति और रोगादि की निवृत्ति होती है।

कर्म के लिए (वः) तुम सबोंको (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे । उस यज्ञद्वारा (इन्द्राय भागम्) अपने ऐश्वर्य के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ । यज्ञसंपादन के लिए (अघ्न्याः) न मारनेयोग्य (प्रजावतीः) बछड़ों सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित (अयक्ष्माः) यक्ष्म–तपेदिक़ आदि बड़े रोगों से शून्य (गौएँ संपादनकरो) [वः] तुम लोगों के बीच जो [स्तेनः] चौर्यादि दुष्ट गुणयुक्त हो, वह उन गौओं का [मा, ईशत] मालिक न बने और [अघ शंसः] अन्य पापी भी [मा] उन का रक्षक न बने । ऐसा यत्न करो जिस से [बह्वीः, ध्रुवाः] बहुत सी चिरकालपर्यन्त रहने वाली गौएँ [अस्मिन् गोपतौ] निर्दुष्ट गोरक्षक के पास [स्यात] बनी रहें । और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू [पाहि] रक्षा कर । इस मन्त्र में कई वाक्य हैं, कोई वाक्य जीवमुखोपदेश परक है और कोई ईश्वरमुखोपदेशपरक, यह बात यथायोग्य रीति से जान लेनी चाहिए । वाक्यसंपत्ति के लिए उचित अध्याहार भी करना पड़ा है । अर्थान्तर भी पूर्वाचार्यों ने किये हैं परन्तु हमें यह सर्वोत्तम मालूम होता है ॥ २३ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथासदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २४ ॥

हे ईश्वर ! [नः] हम को [भद्राः] स्तुति के योग्य [क्रतवः] सङ्कल्प [आ, यान्तु] प्राप्त हों [विश्वतः] सब ओर से [अदब्धासः] किसी से अविघ्नित (अपरीतासः) सर्वोत्तम [उद्भिदः] दुःखनाशक [देवाः] विद्वान् लोग [यथा] जैसे [नः] हमारी [सदम्] सभा में वा सर्वदा [वृधे, एव] वृद्धि के लिए ही [असन्] हों, वैसे ही [दिवे दिवे] प्रतिदिन [अप्रायुवो, रक्षितारः] प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥ २४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳯं रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाᳯं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥

हे भगवन् [ऋजूयताम्] सरलतया आचरण करने वाले [देवानाम्] विद्वानों की [भद्रा] कल्याण करने वाली [सुमतिः] अच्छी बुद्धि [नः] हम को [अभि-निवर्तताम्] प्राप्त हो और [देवानां, रातिः] विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान [प्राप्त हो]। [देवानाम्] देवों—विद्वानों के (सख्यम्) मित्रभाव को [वयम्] हम [उपसेदिम] प्राप्त हों। जिससे कि वे [देवाः] देवता लोग [नः] हमारी [आयुः] अवस्था को [जीवसे] दीर्घकालपर्यन्त जीने के लिए [प्र तिरन्तु] बढ़ावें ॥ २५ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

[वयम्] हम लोग [ईशानम्] ऐश्वर्य वाले [जगतस्तस्थुषस्पतिं] चर और अचर जगत् के पति [धियंजिन्वम्] बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की [अवसे] अपनी रक्षा के लिये [हूमहे] स्तुति करते हैं। [यथा] जैसे कि वह [पूषा] पुष्टिकर्ता [वेदसाम्] धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (असत्) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों का साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिए हो (वैसे ही हम स्तुति करते हैं) ॥ २६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

(वृद्धश्रवाः) बहुतकीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे। और (पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर [नः] हमारे लिए [स्वस्ति] कल्याण को धारण करे [तार्क्ष्यः] तीक्ष्णतेजस्वी [अरिष्टनेमिः] दुःखहर्ता ईश्वर [नः] हमको [स्वस्ति] कल्याण करे। [बृहस्पतिः] बड़े २ पदार्थों का पति [नः] हमारे लिये [स्वस्ति] कल्याण को (धारण करे) ॥ २७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८॥ यजु० अ० २५ मं० १४। १५। १८। १९। २१॥

हे [यजत्राः] संग करने योग्य [देवाः] विद्वान् लोगो ! हम [कर्णेभिः] कानों से [भद्रम्] अनुकूल ही [शृणुयाम] सुनें [अक्षभिः] नेत्रों से [भद्रम्] अच्छी वस्तुओं को [पश्येम] देखें । [स्थिरै रङ्गैः] दृढ़ अङ्गों से [तुष्टुवांसः] आप की स्तुति करने वाले हम लोग [तनूभिः] शरीरों से या भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिए कल्याण कारी (यद्,आयुः) जो आयु है उस को (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

२ ३ १ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २२ २ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ।२९।

हे [अग्ने] प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! [वीतये] कान्ति—तेजोविशेष के लिए [गृणानः] प्रशंसित हुए आप [हव्यदातये] देवताओं के लिए हव्य देने को [आयाहि] प्राप्त हूजिए [होता] सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप [बर्हिषि] यज्ञादि शुभकार्यों में स्मरणादिद्वारा हमारे हृदयों में [नि, सत्सि] स्थित हूजिए । [भौतिकाग्निपरक भी इस का व्याख्यान होता है] ॥२९॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥
सा० छन्द आ० प्रपा० १ मंत्र १ । २ ॥

हे [अग्ने] पूजनीयेश्वर ! [त्वं] तू [विश्वेषां, यज्ञानाम्] छोटेबड़े सब यज्ञोंका [होता] उपदेष्टाहै । [देवेभिः] विद्वान् लोगोंसे [मानुषे,जने] विचारशील पुरुषोंमें भक्त्युत्पादन द्वारा, तुम [हितः] स्थित किए जाते हो ॥ ३० ॥

ये त्रि॑ष॒प्ताः प॑रि॒ यन्ति॒ विश्वा॑ रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तः । वा॒चस्पति॒र्बला॒ तेषां॑ त॒न्वो॑ अ॒द्य द॑धातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० का० १ । वर्ग १ । अनु० १। प्रपा० १ । मं० १ ॥

[त्रिषप्ताः] तीन-रजस्, तमस्, और सत्त्वगुण, तथा सात-ग्रह; अथवा तीनसात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण [ये] जो [विश्वा, रूपाणि] सब चराचरात्मक वस्तुओं को [बिभ्रतः] अभिमतफल दे कर पोषण करते हुए [परि,यन्ति] यथोचित लौट पौट होते रहते हैं [तेषाम्] उनके सम्बधी [मे,तन्वः] मेरे शरीर में [बला] बलों को [अद्य] आज [वाचस्पतिः] वेदात्मकवाणी का पति परमेश्वर [दधातु] करे ॥३१॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिप्रकरणम् ।

**शन्नं इन्द्राग्नी भंवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहंव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुवितायं शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजंसातौ ॥ १ ॥**

[इन्द्राग्नी] विद्युत् और अग्नि [अवेभिः] रक्षणादिद्वारा (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों । (रातहव्या) ग्रहण योग्यवस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों । (इन्द्रासोमा) विद्युत् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए और (शंयोः) शान्ति हेतुक और विषय हेतुक सुख के लिए (शम्) प्रसन्नताधायक हों । (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (नः) हमारे लिए (वाजसातौ) युद्धमें वा अन्नलाभ विषय में (शम्) कल्याण कारक हों ॥१॥

**शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥**

(नः) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुखाधायक हो और (नः) हमारे लिए (शंसः) प्रशंसा (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (अस्तु) हो । हमारे लिए (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि (शम्) सुख कारक हो (रायः) धन (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हों । (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो । (नः) हमारे लिए (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देनेवाला (अस्तु) हो ॥ २ ॥

**शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्नं उरूची भंवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥**

(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्ति कारक हो (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (नः) हमारे लिए (अस्तु) हो । (नः) हमारे लिए (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याण कारक (भवतु) हो । (बृहति) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष

सहित पृथिवी, वा प्रकाश सहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाली हो। (अद्भिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों और (नः) हमारे लिए (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥

(ज्योतिरनीकः) प्रकाश ही है अनीक–मुख वा सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो । मित्राव-रुण) प्राण और उदानवायु (नः) हमको (शम्) सुखकारक हों (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुँचाने वाले हों। (सुकृताम्) धर्मा-त्माओं के (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुखदेने वाले (सन्तु) हों। (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता-हुआ (अभि, वातु) बहे ॥ ४ ॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

[द्यावापृथिवी] विद्युत् और भूमि [पूर्वहूतौ] पूर्वपुरुषों की प्रशंसा जिस में हो ऐसी क्रिया में [नः] हमारे लिए [शम्] शान्तिदायक हों। अन्तरि-क्षम्] अन्तरिक्षलोक [दृशये] ज्ञान सम्पत्ति के लिए [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति दायक [अस्तु] हो। [ओषधीः] ओषधियां और [वनिनः] वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णु) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदेनेवाला[अस्तु]हो ॥५॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

[देवः] दिव्य गुणयुक्त [इन्द्रः] सूर्य [वसुभिः] धनादि पदार्थों के साथ [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [अस्तु] हो [आदित्येभिः] संवत्सरीय मासों के साथ [सुशंसः] शोभन प्रशंसावाला [वरुणः] जलसमुदाय [शम्]

सुखकारक हो। (जलाषः) शान्तस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देनेवाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदेने वाला हो। (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से (ग्नेतिवाङ् नाम निघण्टौ १।११) (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिए (शृणोतु) सुनावे (अन्तर्भावितण्यर्थः) ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

(नः) हमारे लिए (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो। (नः) हमारे लिए (ब्रह्म) अन्नादि रूप-तत्त्व [शम्] शान्तिदायक हो [ग्रवाणः] शुभकार्यों के साधनभूत प्रस्तर-पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों। (यज्ञाः) सब प्रकार के यज्ञ (शम्,उ) शान्ति ही के लिए (सन्तु) हों। (स्वरूणाम्) यज्ञस्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखा-धायक (भवन्तु) हों। (नः) हमको (प्रस्वः) ओषधियां (शम्) सुख देने-वाली हों। (वेदिः) यज्ञ की वेदि कुण्डादिक (शम्,उ) शान्ति ही के लिए (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिस के ऐसा (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुख पूर्वक [उद्,एतु] उदय को प्राप्त हो। [चतस्रः] चारों [प्रदिशः] पूर्वादि बड़ी दिशाएँ वा ऐशानी आदि प्रदिशाएँ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों। (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों। और (नः) हमारे लिए (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (शम् शान्तिदायक हों (आपः) जलमात्र वा प्राण (शम्,उ) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हों ॥ ८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएँ (नः) हमारे लिये (शमन्त) शान्ति के लिए (भवतु) हों । [स्वर्काः] शोभन विचार वाले [मरुतः] मितभाषी विद्वान् लोग [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति के लिए [भवन्तु] हों । [विष्णुः] व्यापक ईश्वर [नः] हमको [शम्] शान्त्याधायक हो । [पूषा] पुष्टि कारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार [नः] हमको [शम्, उ] शान्ति के लिये ही [अस्तु] हो । [भवित्रम्] अन्तरिक्ष, वा—जल, वा—भवितव्य [नः] हमको [शम्] सुख कारक हो । [वायुः] पवन [शम्, उ] शान्ति ही के लिए [अस्तु] हो ॥ ९ ॥

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं न॒ः क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥१०॥

[सविता] सर्वोत्पादक [देवः] परमेश्वर [त्रायमाणः] रक्षा करता हुआ [नः] हमारे लिए (शम्) सुख कारक हो । (उषसः) प्रभात वेलाएँ (विभातीः) विशेष दीप्ति वाली (नः) हमारे लिए (शम्) सुख कारक (भवन्तु) हों । (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिए (शम्, भवतु) कल्याण कारी हो । (क्षेत्रस्य) जगत् रूपी क्षेत्र का (पतिः) स्वामी (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो ॥ १० ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु । श॒म॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शन्नो॒ अप्याः॑ ॥ ११ ॥

(देवाः) दिव्यगुणयुक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिए (शम् भवन्तु) सुख देने वाले हों । (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तमबुद्धियों के (सह) साथ (शम्, अस्तु) सुखकारिणी हो । (अभिषाचः) यज्ञ के सेवक वा आत्मदर्शी (शम्) शान्ति दायक हों (रातिषाचः) विद्याधनादि के दान का सेवन करने वाले (शम्, उ) शान्ति ही के लिए हों । (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों । (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों ॥११॥

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥ १२ ॥

[सत्यस्य,पतयः] सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक [नः] हमारे लिए [शम्,भवन्तु] सुखकारी हों [अर्वन्तः] उत्तम घोड़े [नः] हमको [शम्] सुखद हों । [गावः] गौएँ [शम्,उ] शान्ति ही के लिए [सन्तु] हों । [ऋभवः] श्रेष्ठबुद्धिवाले [सुकृतः] धर्मात्मा [सुहस्ताः] अच्छे कामों में हाथ देने वाले [नः] हमारे लिए [शम्] सुखद हों । [हवेषु] हवनादि सत् कर्मों में [पितरः] माता पिता आदि [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [भवन्तु] हों ॥१२॥

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्य॑ः॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा ॥ १३ ॥

ऋ० मं ७ सू० ३५ मं० १-१३ ॥

(एकपात्) जगत् रूप पाद वाला अर्थात् जिस के अंश में सब जगत् है वह अनन्त स्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए (अस्तु) हो । (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए हो । (समुद्रः) सागर [शम्] सुखकारी हो । (अपाम्) जलों की [नपात] नौका (नः) हमको (शम्,पेरुः) सुख पूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो । (देवगोपा) देव रक्षक है जिस में ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थल [नः] हमको (शम्,भवतु) सुखकारक हो ॥१३॥

इन्द्रो॒ विश्व॑स्य राजति॒ शं नो॑ऽअस्तु द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥१४॥

हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौआदि के लिए (शम्) सुख होवे ॥ १४ ॥

शं नो॒ वातः॑ पवता॒ᳪ शं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ । शं नः॒ कनि॑क्रद-
द्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ऽअ॒भि व॑र्षतु ॥ १५ ॥

हे परमेश्वर ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (तपतु) तपै । (कनिक्रदद्) अत्यन्त शब्द-करता हुआ (देवः) उत्तम गुणयुक्त विद्युत्‌रूप अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ, हमारे लिए (अभि, वर्षतु) भली प्रकार वर्षा करे ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳरात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतां अवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥

हे परमेश्वर ! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की [सुविताय) प्रेरणा के लिए [नः] हमारे अर्थ [अहानि] दिन [शम्] सुखकारी [भवन्तु] हों [रात्रीः] रातें [शम्] कल्याण के [प्रति] प्रति [धीयताम्] हम को धारण करें [इन्द्राग्नी] बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी [भवताम्] होवें [रातहव्याः] ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त हुआ वे [इन्द्रावरुणा] विद्युत् और जल [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी हों [वाजसातौ] अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में [इन्द्रापूषणा] विद्युत् और पृथिवी [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी हों [इन्द्रासोमा] बिजली और ओषधियाँ [शम्] सुखकारिणी हों ॥ १६ ॥

शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

हे जगदीश्वर ! [अभिष्टये] इष्ट सुख की सिद्धि के लिए [पीतये] पीने के अर्थ [देवीः] दिव्य उत्तम [आपः] जल [नः] हमको [शम्] सुखकारी [भवन्तु] होवें और वे [नः] हमारे लिए [शंयोः] सुख की वृष्टि [अभि, स्रवन्तु] सब ओर से करें ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

हे परमेश्वर ! [द्यौः] प्रकाशयुक्त सूर्यादि [अन्तरिक्षम्] सूर्य और पृथ्वी के बीच का लोक [पृथिवी] भूमि [आपः] जल [ओषधयः] सोमलता आदि ओषधियाँ [वनस्पतयः] बनस्पति—वट आदि वृक्ष [विश्वे देवाः] सब विद्वान् लोग [ब्रह्म] वेद [सर्वम्] सब वस्तु [शान्तिः] शान्ति—सुखकारी निरुपद्रव हों । शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है। [शान्तिरेव शान्तिः] स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो और [सा] वह (शान्तिः) शान्ति [मा] मुझ को (एधि) हो—वा प्राप्त हो ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् । पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्रब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ १९ ॥ यजु० अ० ३६ मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । २४ ॥

हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर ! आप (देवहित) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र तुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादि काल से (उत्, चरत्) अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं (तत्) उस आप को हम (शतंशरदः) सौ वर्ष तक *(पश्येम) ज्ञान द्वारा देखें और आप की कृपा से [शतंशरदः] सौ वर्ष तक [जीवेम] हम जीवें । [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [शृणुयाम] सच्छास्त्रों को सुनें [शतं शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें और [शतंशरदः] सौ वर्ष तक [अदीनाः] दीनता रहित [स्याम] हों [च] और [शतात् शरदः] सौ वर्ष से [भूयः] अधिक भी [देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें] ॥१९॥

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ । दू॒रं॒ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वसं॑कल्पमस्तु ॥ २० ॥

हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से [यत्] जो [दैवम्] दिव्य गुणों से युक्त (दूरंगमम्) दूर २ जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला [ज्योतिषाम्] विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का [ज्योतिः] प्रकाश करने वाला [एकम्] अकेला [जाग्रतः] जागनेवाले के [दूरम्] दूर २ (उत, ऐति) अधिकतया भागता है [उ] और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (मे, मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे २ विचार वाला (अस्तु) हो ॥ २० ॥

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑ । यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वसं॑कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

हे जगत्पते ! (येन) जिस मन से (अपसः) सत्कर्म निष्ठ (मनीषिणः) मन को दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्नि होत्रादि धार्मिक कार्यों में और (विदथेषु) वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं । और (यत्) जो (अपूर्वं,)

* [ईश्वर को ज्ञानदृष्टि से मनन करने ... तात्पर्य यहां "पश्येम" शब्द से है]

अद्भुत (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) श्रेष्ठ संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य स्वरूप (च) और (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है (यस्मात्) जिस के (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) शुद्ध विचारवाला (अस्तु) हो ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥

हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) जिस नाश रहित मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत् सर्वमिदं परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिस से [सप्तहोता] जिसमें सात होता हों ऐसा [यज्ञः] अग्निष्टोमादि यज्ञ (अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं) [तायते] विस्तृत किया जाता है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसंकल्पम्] मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला [अस्तु] हो ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचः, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें (यजूꣳषि) यजुर्वेद [और अथर्ववेद भी] (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि--पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध

है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥ य० अ० ३४ । मं० १—६ ॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः, अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथि (अभी शुभिः) रस्सियों से (वाजिनइव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीतिशिवः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत् प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २५ ॥

स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम० उत्तरार्च्चिके० प्रपा० १ मं० ३ ॥

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुख कारक हों । (जनाय) मनुष्यमात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों । (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों । (ओषधीभ्यः) गेहूँ आदि ओषधियों के लिए हमें (शम्, पवस्व) शान्ति दीजिए ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे । (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें । (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो । (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे और नीचे से (नः) हम को (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५ । ६ ॥

हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो । (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो । (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो । (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो । (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएँ (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ॥ २८ ॥

इति शान्तिप्रकरणम् ।

अथ सामान्यप्रकरणम् ॥

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये । परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि यहां पूर्वोक्त और इतना अधिक करना ॥

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो ॥

यज्ञशाला*—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो; यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उस में शुद्ध मट्टी भरें । यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगा कर उन पर छाया करें वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० दस हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पताका, पल्लव आदि बांधें, नित्य मार्जन

*इस विषय का प्रमाण देखना हो तो पारस्कर गृह्य सूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये । मङ्गलेषुचसर्वेषु मण्डपो गृहवामतः । कार्यः षोडशहस्तोवा न्यूनहस्तो दशावधिः । स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठिते इत्यादि, अनेक मतान्तरुल्लिख गदाधर पारस्कर गृ० कं० ४ कां० १ ॥

तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हलदी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें । मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें इसीलिये निम्न लिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें ॥

यज्ञकुण्ड का परिमाण ।

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहै इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना, और जो पचास हज़ार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे, दश हज़ार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हज़ार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है, यदि इस में २५०० ढाई हज़ार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हज़ार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की हज़ार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पन्द्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावे । और यह तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें ॥

यज्ञसमिधा * ।

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व, आदि की समिधा

---

* प्रमाण देखना हो तो पार० गृ० सू० प्रथम का० प्र० क० के गदाधर भाष्य में देख लेना चाहिए ।

वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें । परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें ।

होम के द्रव्य चार प्रकार ।

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, आदि (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द,-अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द, आदि (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुहारे, दाख आदि (चौथे—रोगनाशक) सोमलता और गिलोय आदि ओषधियाँ॥

स्थालीपाक ।

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे, इसका प्रमाण:—

ओ३म् । "* देवस्त्वा सविता पुनातु०" यजु० १—३ ।

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डाल कर, मोहनभोग बनाना; इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक, आदि होम के लिये बनावें । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि †) अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मूठी चावल आदि ले के [ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि यजु० १—१३] अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धो के पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे, जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें, और उस पर घृत सेचन करें ।

---

* (सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्वा) तुझ यज्ञ को अपनी दी हुई पवित्र कारक वस्तुओं से (पुनातु) पवित्र करे वा करावे ।

† ऐसे बोलने की वैदिकों की परिपाटी है, देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १, १०वीं कण्डिका सू० ६ ।

यज्ञपात्रों के लक्षण और आकृति मूल 'संस्कारविधि' में देख लेनी चाहिये।

अथ ऋत्विग्वरणम् ।

यजमानोक्तिः *(ओमावसोः सदने सीद) इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे (ऋत्विगुक्तिः) ओं सीदामि । बैठता हूं ऐसा कह के जो उस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे (यजमानोक्तिः) †अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे (ऋत्विगुक्तिः) वृतोऽस्मि । मैं स्वीकार करता हूं । ऋत्विजों का लक्षण-अच्छे विद्वान् धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले वेदवित्, एक दो तीन अथवा चार का वरण करें, जो एक हो तो उस का पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित, ३ हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन में से कोई हो इन का आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ‡ ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने २ जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हैं वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ बार आचमन करें वे मन्त्र ये हैंः—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इस से एक,

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इस से दूसरा,

---

* "आसने उपविशति-आवसोः सदने०" गोभि०गृ०सू०प्र०१ का० ६ सू० १५ (वसोः) अग्नि वा यज्ञ के (सदने) स्थान में (आ, सीद) बैठिए ।

† मैं आज कहे हुए-संकल्पित काम को करने के लिए आप को स्वीकार करता हूँ ।

‡ दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्यैति पार० गृ० सू० १ का० ? क० परिशिष्टपदार्थक्रमे

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥ [मानवगृह्य सू० प्रथमपुरुष ९वां खण्ड]

इस से तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रोंद्वारा जल से अङ्गों का स्पर्श करे ।

ओं वाङ्म ऽआस्येऽस्तु ॥ (पारस्कर गृ० का० १ क० ३ सू० २५) इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से *दाहिने हाथ से जल स्पर्श कर के सब शरीर में मार्जन करना, पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें, पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ ‡

इस मन्त्र का उच्चारण कर के ब्राह्मण, †क्षत्रिय वा वैश्य× के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ यजु० अ० ३ मं० ५ ॥

---

* सजलहस्तेनेति पारस्करभाष्ये हरिहरः । का० १ क० ३ ।

‡ भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रणयन्ति । गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० १ सू० ११

† ....आगाराद् ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा० गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० १ सू० ६ ।

× "वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य" पा० गृ० सू० का० १ क० २ सू० ३ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उन में से एक २ नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें। ये मन्त्र ये हैं:—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥ १ ॥ *

इस मन्त्र से एक। (आश्वलायन गृ० प्रथम अध्याय, कण्डिका १०वीं सू० १२)

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ इस से और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ २॥ इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य, स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥ यजु० अ० ३ मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिदाधान कर के होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चाँदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदि के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि

* "अयन्त इध्म" इस मन्त्र से एक घृत की आहुति दी जाय और आगे के तीन मन्त्रों से तीन समिधाएँ घृत में भिगो कर छोड़ी जावें ऐसा कई विद्वान् मानते हैं।

उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामाग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटाँक भर की आहुति देवे यही आहुति का परिमाण है। उस घृत में से चमसा कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी॥

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में, अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे; उस के ये मन्त्र हैं:—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥	इस मन्त्र से दक्षिण से पूर्व,	आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २, सू०, ४ पटल १
ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥	इस से पश्चिम से उत्तर	
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥	इस से उत्तर से पूर्व, और	

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ यजु० अ० ३० मं० १॥ (पूर्वोक्त आपस्तम्ब)

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें, इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियाँ दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

* **ओं अग्नये स्वाहा** (य० अ० २२ मं० २७)॥ **इदमग्नये—इदन्न मम॥**

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

---

* आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २ सू० ६। भाषा में लिखे आहुतियों के नामादि भी आपस्तम्ब, पारस्करादिकों में विद्यमान हैं। कहीं प्रकार भेद है।

ओं सोमाय स्वाहा (य० २२—२७) ॥ इदं सोमाय—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी तत्पश्चात्

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ य० अ० १८ मं० २८ ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ य० अ० २२ मं० २७ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उस के पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके जब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥ पार० का० १ कं० ५ सू० ३—४ ।

ये चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये उस का मन्त्रः—

‡ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे, सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥ शत० का० १४ अ० ८ प्र० ७ क० ५ ।

इस से एक आहुति करके "प्राजापत्याहुति" नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये ।

---

† ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥

अयमेव पाठक्रमो गृह्यसूत्रानुगुणत्वात्समञ्जसः प्रतिभाति ।

‡ आपस्तम्ब ख० २ सू० १

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

इस से मौन †कर के एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्व । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ मं० १० ॥

इस से घृत की ४ आहुति करके "अष्टाज्याहुति" निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में ८ आठ आहुति देवें परन्तु किस २ संस्कार में में कहाँ २ देनी चाहियें यह विशेष बात उस २ संस्कार में लिखेंगे ॥

*ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वन्हितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ । ५ ॥

---

† तूष्णीं द्वितीये उभयत्र, आश्वलायन गृ० प्र० १ क० ९ सू० ८ ऐसे ही मौन हो कर आहुति देने का अन्यत्र भी विधान है ।

* पार० का० १ क० २ सू० ८ ।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय--इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २५ मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय--इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

† ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे--इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च । इदन्न मम ॥ ७ ॥ ऋ० मं० १ सू० २४ । मं० १५ ॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां--इदन्न मम ॥ ८ ॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति स्रुवा को घृत से भर के करे--

† पराशरादिसंमत, ये दोनों शाखान्तरीय मन्त्र हैं ।

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥ ‡

इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा दे के सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें ॥

मङ्गलकार्य ।

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान* अवश्य करें, वे मन्त्र ये हैं ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ ३ २ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा ।
२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र २र ३
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्योमदानां
१ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २
मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः ।
३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥
३ र ४ २ ४र ५ १ र
महावामदेव्यम् ॥ काऽ५या । नश्चा३ इत्रा३ आभुवात् । ऊ । ती
२ १र २ १ २ र २ १ १ र २ १
सदावृधः सखा । औ३ होहाइ । कया२३ शचाई । ष्ठयौहो३ हुम्मा२ ।
२ १ र ४ २ ४ ५ १
वार तो३ऽ५हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हि-
२र १ २ २ र २ १ २ ३ र २
ष्ठोमात्सादन्ध । सा । औ३होहाइ । दृढा२३ चिदा । रुजौहो ३ ।
१ १ २ ३ र ४ ५ ४ ५
हुम्मा२ । वाऽ३सो३ऽ५हाइ ॥ (२) आऽ५भी । षुणा३ः साऽ३खीनाम् ।
१ २र १ २र १ र २ १ २
आ । विता जरायितॄ । णाम् । औ२३ हो हायि । शता२३ म्भवा ।

---

‡ (सर्वम्) सब (वै) निश्चयरूप से (पूर्णम्) पूरा हो ।

* अपवृत्ते कर्मणि वामदेव्यगानम् शान्त्यर्थं शान्त्यर्थम् । गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० ९ सू० २९ ।

३ र २ १ १ २
सियौहो३ । हुम्मार । ता॒ऽ२यो३ऽ५हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ४ । मं० ३ । ४ । ५ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तने वाले हों उन को नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें, अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें, सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्ता और कर्म कराने वाले शान्ति धीरज और विचारपूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें ॥ यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्तव्य है ॥

इति सामान्यप्रकरणम् ॥

सामान्य प्रकरण के संस्कृत भाग का क्रम से भाषार्थ—

[पृ० २८] (क) हे [अमृत] सुखप्रदजल ! तू [उपस्तरणम्] प्राणियों का आश्रयभूत [असि] है [स्वाहा] यह हमारा कथन शोभन हो ।

(ख) हे [अमृत !] तू [अपिधानम्] निश्चय पोषक [असि] है ।

(ग) [मयि] मुझ में [सत्यं] सचाई [यशः] कीर्ति [श्रीः] शोभा [श्रीः] लक्ष्मी [श्रयताम्] स्थित हो [ओम्, यह परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है, व्याकरण से इस का "रक्षकादि" अर्थ होता है ।]

[मे] मेरे [आस्ये] मुख में [वाक्] वागिन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [नसोः] दोनों नासिका छिद्रों में [प्राणः] प्राणवायु वा घ्राणेन्द्रिय स्थिर [अस्तु] हो । [मे] मेरे [अक्ष्णोः] नेत्र गोलकों में [चक्षुः] चक्षुरिन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [कर्णयोः] दोनों कानों में [श्रोत्रम्] श्रवणेन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [बाह्वोः] दोनों भुजाओं में [बलम्] बल-शक्ति [अस्तु] हो । [मे] मेरी [ऊर्वोः] जङ्घाओं में [ओजः] वेग [अस्तु] हो । [मे] मेरा [तनूः] देह और [मे, तन्वाः] मेरे देह के [अङ्गानि] अवयव [सह] साथ ही [अरिष्टानि] अनुपहत अबाधित [सन्तु] हों ।

विशेष–नासिकाओं के दोनों छिद्रों को और दोनों नेत्रगोलकों को एक२ ही बार मन्त्र बोल कर स्पर्श किया जाता है परन्तु कान और बाहुओं में पूर्व दक्षिण कान और बाहु को फिर वाम कर्ण, बाहु को स्पर्श करना चाहिए और मन्त्र दो दो बार बोलने चाहिएँ । ऊरुद्वय के ऊपर एक साथ ही तथा सर्वाङ्ग के ऊपर एक साथ ही जल के हाथ से स्पर्श किया जाता है ऐसी पूर्वाचार्यों की परिपाटी है । यह अङ्ग स्पर्श, जिसे गृह्यसूत्रकारों ने लिखा है, अथर्व वेद का० १९ अ० ७ सू० ६०, ६१ के प्रमाण से किया जाता है:—

"वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः । अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥ ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा । अरिष्टानिमे सर्वात्मानि भृष्टः । अथर्व० का० १९ अ० ७ सू० ६० । तनूस्तन्वा मे भवेदतः सर्वमायुरशीय" अथर्व० का० १९ अ० ७ सू० ६१ ॥

[पृ० २९] "भूः, भुवः, स्वः" ये तीनों नाम परमात्मा के हैं इन की व्याख्या आगे लिखी है ॥

हे [देवयजनि] विद्वान् लोग जिस में यज्ञ करते हैं ऐसी [पृथिवि] पृथिवि ! [तस्यास्ते] प्रसिद्ध तेरी [पृष्ठे] पीठ पर [भूः, भुवः, स्वः] पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में स्थित [भूम्ना, द्यौरिव] नक्षत्रों के बाहुल्य से जैसे आकाश विराजमान है ऐसे ज्वाला बाहुल्य से विराजमान [वरिम्णा, पृथिवी व] अपने बड़प्पन से जैसे पृथिवी सब का आधार है वैसे सर्वाश्रयभूत [अन्नादम्] यवादि अन्न को भस्म करने वाले [अग्निम्] अग्नि को [अन्नाद्याय] शुद्ध, भक्षणयोग्य अन्नोत्पत्ति के लिये [आदधे] मैं यजमान, स्थापित करता हूं ॥

हे [अग्ने] अग्ने ! तू [उद्बुध्यस्व] प्रकट हो और [प्रति, जागृहि] खूब प्रकाशित हो । [अयम्, त्वं च] यह यजमान और तू [इष्टापूर्ते] यज्ञादि कार्य, और धर्मार्थ स्थान बनाना आदि शुभ कार्यों को [संसृजेथाम्] उत्पन्न करो । [अस्मिन्, सधस्थे] इस अग्नि सहित स्थान में तथा [अधि, उत्तरस्मिन्] इस से भी उत्तम स्थान में ईश्वर करे कि [विश्वे, देवाः] सब विद्वान् लोग [यजमानश्च] और यजमान [सीदत] बैठें ॥ [इन मन्त्रों का अन्यान्य अर्थ भी हो सकता है ।]

हे [जातवेदः] अग्ने ! [अयम्, इध्मः] यह काष्ठ [ते, आत्मा] तेरा आधार है [तेन] इस काष्ठ से [इध्यस्व] प्रदीप्त हो [वर्द्धस्व, च] और बढ़। [अस्मान्, च] और हम को [इत, ह] अवश्य ही [प्रजया] पुत्रादि से [वर्धय] बढ़ा। और [पशुभिः] पशुओं से [ब्रह्मवर्चसेन] बड़ी कान्ति से [अन्नाद्येन] अन्नआदि से हमें [सम्, एधय] अच्छे प्रकार बढ़ा। [स्वाहा] यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो। [इदमग्नये, जातवेदसे, इदन्न, मम] यह दिया हुआ पदार्थ जात वेदा [उत्पन्न हुए सब पदार्थों के साथ सम्बन्ध करने वाले] अग्नि के लिए है, मेरे लिए नहीं। अन्त्यवाक्य का ऐसा ही अर्थ सर्वत्र समझ लेना चाहिए।

[पृ० ३०] हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) लकड़ियों से (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यत) सेवन किया करो और उस अग्नि को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य समझ कर (घृतैः) घृतादिकों से (बोधयत) प्रकाशित करो। (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सब प्रकार का शाकल्य (आ, जुहोतन) होमो-डालो ॥ १ ॥

हे मनुष्यो ! (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार जलाए हुए (शोचिषे) दीप्ति वाले-शुद्ध (जातवेदसे) सबों में विद्यमान (अग्नये) अग्निके लिए (तीव्रं, घृतम्) सब प्रकार शुद्ध किए घृत को (जुहोतन) होमो ॥ २ ॥

हे (अङ्गिरः) सब को प्राप्त होने वाले, वा गमनशील अग्ने ! (तम्, त्वा) गार्हपत्य, आहवनीय आदि रूप से प्रसिद्ध तुझ को (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत से (वर्द्धयामसि) बढ़ावें। हे अग्ने ! (बृहत्) प्रकाश, छेदनादि गुणों के कारण बड़े और (यविष्ठ्य) अति बलवान् तुम (शोच) प्रकाशित होओ ॥ ३ ॥

हे (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन् ! आप हमें अहिंसादि सम्पादनार्थ (अनुमन्यस्व) अनुकूलमति दीजिए। हे (अनुमते) अनुगत--व्यापक ज्ञानस्वरूप ! (अनु०) पूर्ववत्। हे (सरस्वति) प्रशस्तज्ञानस्वरूप ! (अनु०, पूर्ववत्।

हे (देव) प्रकाशक ! (सवितः) सर्वोत्पादक ! ईश्वर ! आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञम्) शिल्पादि विविधयज्ञों को (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए और (यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक राजा को भी (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए। आप (दिव्यः) शुद्ध (गन्धर्वः) पृथिवी के धारक (केत पूः) विज्ञान के

पवित्र कर्त्ता हो (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करो और आप (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी हो अतः (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ ॥

[पृ० ३१] १. अग्नये—प्रकाशक परमात्मा के लिये वा भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो।

२. सोमाय—सोमरसादि के लिए वा परमात्मा की प्रीत्यर्थ (स्वाहा) सुहुत हो।

३. प्रजापतये—प्रजाओं के पालक के लिए०।

४. इन्द्राय—ऐश्वर्य सम्पन्न के लिए०।

[१] अग्निरूप ईश्वर के लिए० [२] वायुव्यापक ईश्वर के लिए० [३] आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए० [४] पूर्वोक्त सर्वगुण सम्पन्नों के लिए०।

[पृ० ३२] (यत्)जो (अस्य, कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम्] मैंने अधिक किया (यद्वा) अथवा (न्यूनम्, इह) यहाँ थोड़ा (अकरम्) किया गया। (सर्वं, स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिए (सुहुतम्) अच्छे प्रकार हुतं (करोतु) करे। और (स्विष्टकृते) [शोभनयज्ञसम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले (कामानाम्) इष्यमाण (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को (समर्द्धयित्रे) बढ़ाने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए, [सुहुतहो]। हे ईश्वर! (नः) हमारे (सर्वान्, कामान्) सब अभिलषित पदार्थों को (समर्द्धय) बढ़ाओ ॥ शेष पूर्ववत्।

हे (अग्ने) अग्ने तू (आयूंषि) जीवनों को (पवसे) रक्षा करता है, तू (नः) हमारे लिए (ऊर्जम्) बल को (च) और (इषम्) अन्नादि को (आ, सुव) प्राप्त कराइए। हमारे (दुच्छुनाम्) राक्षस को, हम से (आरे) दूर (बाधस्व) पीड़ित कीजिए ॥ १ ॥

(अग्निः) अग्नि (ऋषिः) सर्वत्र व्याप्त है (पवमानः) शोधक है (पाञ्चजन्यः] चारों वर्णाश्रमी और तदितर जन एवं पाँचों प्रकार के मनुष्यों में कार्य साधक है, (पुरोहितः) ऋत्विगादिकों से अपने संमुख इष्टसिद्धि के लिए रक्खा जाता है (तम्, महागयम्) उस विद्वानों से स्तुति के योग्य अग्नि से हम [ईमहे] धनादि की याचना करते हैं ॥ २ ॥

हे [अग्ने] अग्ने तू [स्वपाः] सुन्दर काम करने वाला है [अस्मे] हममें [सुवीर्यम्] अच्छे बल वाले [वर्चः] तेज को [पवस्व] प्राप्त कराओ । [मयि] मुझ में [रयिम्] धनादि को और [पोषम्] गवादि की पुष्टि को [दधत] धारण करो ॥ ३ ॥

[प्रजापते ०] इस मन्त्र का अर्थ पूर्व आ गया है ॥ ४ ॥

[पृष्ठ ३ ।] हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! तू (विद्वान्) हमारे सब कार्यों को जानने वाला है (देवस्य) दिव्य गुणों वाले (वरुणस्य) परमात्मा के (हेळः) अनादर से (त्वम्) तू (नः) हम को (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख, अर्थात् आप ऐसी कृपा करें जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें (यजिष्ठः) तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और (वह्नितमः) हविरादि उपयोगी पदार्थों के प्राप्त कराने वाले हो (शोशुचानः) अत्यन्त तेज वाले हो अतः तुम (अस्मत्) हमसे (विश्वा, द्वेषांसि) सब द्वेष के कारण पापों को (प्रमुमुग्धि) अच्छी तरह से हटाओ ॥ १ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! (स, त्वम्) पूर्वोक्त गुणों वाला तू (ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्या, उषसः) इस प्रभातकाल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो । (नः) हमारे (वरुणम्) आवरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने वालों के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले इस हविः शेषभाग को (वीहि) स्वीकार कीजिये और (नः) हमारे (सुहवः) सुन्दर आह्वान से युक्त (एधि) हो ॥ २ ॥

हे (वरुण) प्रशंसनीय पराजन्‡ ! (मे) मेरे (इमम्, हवम्) इस स्तुति समूह को (श्रुधि) आप सुनें (च) और (अद्य) आज यज्ञ दिनमें (मृडय) हम सब को सुखी करें (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करता हुआ मैं (त्वाम्) आप की (आ, चके) सम्मुख स्तुति करता हूं ॥३॥

हे (वरुण) जगदीश्वर ! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस आयु को (त्वा) तुझसे (यामि) चाहता हूं (तत्) उसी आयु को (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता है । (इह) इस यज्ञादि कर्म में (अहेडमानः) हमारा अनादर न

‡ इस स्थान में ईश्वर वा विद्वान् का भी ग्रहण हो सकता है ।

करता हुआ तू (बोधि) हमारी इच्छा को समझ ! हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति करने के योग्य ! (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा, प्रमोषीः) मत नष्ट कर ॥ ४ ॥

हे (वरुण) स्वीकार योग्य जगदीश्वर ! (ये, ते) जो वे (शतम्) सैकड़ों और (ये, सहस्रम्) जो हज़ारों [यज्ञियाः] यज्ञसम्बन्धी (महान्तः) बड़े (पाशाः) प्रतिबन्धक-रुकावट (वितताः) फैले हुए हैं (तेभिः) उनसे (नः) हमको (अद्य) आज (सविता, उत, विष्णुः) सर्वोत्पादक और व्यापक आप और (वश्वे, स्वर्काः, मरुतः) सब अच्छे पूजनीय देवता विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

[पृष्ठ ३४] हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! [त्वम्] तुम (अयाः) बाहर और भीतर सर्वत्र स्थित (असि) हो (च) और (अनभिशस्तियाः) जिनके दोष न रहे ऐसे प्रायश्चितयोग्य पुरुषों के पालक हो (च) और (त्वम्) तुम (अया, असि) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यम्, इत्) सचही है हे (अयाः) कल्याणकारक अग्ने ! तुम (अयाः) हमारे आश्रय होकर (यज्ञम्) यज्ञके साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिये [वहासि] लेजाते हो इस लिये [नः] हमारे लिये [भेषजम्] दुःख नाशरूप सुख को [धेहि] देओ ॥ ६ ॥

हे [वरुण] स्वीकार करने योग्य ईश्वर ! [अस्मत्] हम लोगों से [अधमम्] छोटे और [मध्यमम्] विचले दर्जे के [उत्] और [उत्तमम्] ऊंचे दर्जे के [पाशम्] बन्धन को [व्यवश्रयाय] अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये [अथ] और हे [आदित्य] अविनाशी ईश्वर ! [तव, व्रते] तेरे आज्ञा पालन रूपी व्रत में स्थित [वयम्] हमलोग [अनागसः] अपराध रहित हो कर [अदितये] मुक्ति सुख के लिये [स्याम] नियत होवें ॥ ७ ॥

[नः] हम लोगों के बीच में [अरेपसौ] पापरहित [समनसौ] समानमन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक [सचेतसौ] समान बुद्धि वाले स्त्री पुरुष [भवतम्] हों और वे दोनों [यज्ञम्] यज्ञ का [मा, हिंसिष्टम्] लोप न करें और [मा, यज्ञपतिम्] यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुंचावें । [अद्य] आज यज्ञ के दिन, ऐसे ही स्त्री पुरुष [नः] हमारे लिए [शिवौ] शान्तरूप [भवतम्] हों ॥ ८ ॥

वामदेव्य गान

[पृ० ३५] [सदा वृधः] सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होने वाला [चित्रः] पूजनीय [सखा] मित्रभूत, इन्द्र-परमात्मा [कया, ऊती] कैसी रक्षा से और [कया,-वृता] कैसे बर्ताव से [नः] हमारे [आ, भुवत्] संमुख हो ? (उत्तर) [शचिष्ठया] श्रेष्ठ बुद्धि युक्त से । परमात्मा ने इस मन्त्र में प्रश्नोत्तररूप से जीवों के प्रति यह उपदेश किया है कि परमात्मा की अनुकूलता, अच्छे बुद्धि युक्त बर्ताव और अपनी आप रक्षा—चौकसी के बिना नहीं हो सकती ॥ १ ॥

[दृढा, चित्] दृढ भी [वसु] शत्रुओं के किले आदि को [आरुजे] तोड़ने को (सदानाम्) हर्षकारी वस्तुओं के बीच में [मंहिष्ठः] सर्वोत्तम [सत्यः] यथार्थ, प्रसन्न करने वाला [कः] कौन है जो हे जीव ! [त्वा] तुझे [मत्सत्] हर्षित करे ? (उत्तर) [अन्धसः] केवल अन्न का रस । पुष्टि कारक और शत्रुओं के बल का नाशक अन्न से बढ़ कर कोई नहीं, इस बात का उपदेश प्रश्नोत्तररूप से इस मन्त्र में है ॥ २ ॥

हे परमात्मन् ! तुम [सखीनाम्] समान प्रसिद्धि वाले साधारण प्राणियों के और (जरितॄणाम्) ज्ञानादि से वृद्ध असाधारण प्राणियों के (अविता) रक्षक हो अतः तुम (नः, शतम्) हम सैकड़ों प्राणियों की (ऊतये) रक्षा के लिए (सु, अभि, भवासि) अच्छे प्रकार, अभिमुख होओ ॥ ३ ॥

सामान्यप्रकरण पर एक दृष्टि—

यज्ञ देश उपद्रव रहित ऐसे स्थान में यज्ञ करना चाहिये जिस की वायु तथा भूमि पवित्र हो । यद्यपि पुराने समय में मकानों की रचना इस प्रकार की होती थी कि उन के आस पास आज कल के बँगलों की नाईं कुछ न कुछ ख़ाली भूमि रहे । अथवा जैसे दक्षिणी लोग मकान के द्वार के बाहर कुछ ख़ाली भूमि रखते हैं । उत्तर हिन्द में मकानों के बीच में आँगन (खुली जगह) प्रायः होती है और कभी २ इस आँगन में नीम का पेड़ लगाते हैं । आज कल कई जगह किराये के लोभ से जो मकान बनाये जाते हैं उन में कहीं भी खुली जगह रखने की मर्यादा नहीं रही । ऐसी अवस्था में हवन कोठरियों और कमरों ही में करना पड़ता है और जिस मकान के चारों ओर खुली जगह तथा बीच में आँगन है

वह मकान सर्वोत्तम प्रकार का होने से यज्ञ का उत्तम स्थान हो सकता है । वेद मन्त्रोंमें मकान बनाने का जो विधान है--जैसे गृहाश्रम प्रकरणके अन्तर्गत शाला कर्म विधि में पाया जाता है उससे यही सिद्ध होता है कि मकान के चारों ओर द्वार हों और ये तभी हो सकते हैं जबकि चारों ओर खुली जगह हो । यज्ञ का त्याग करने से लोग मकानों के बीच में आंगन और चारों ओर खुली जगह रखना भूल रहे हैं ।

यज्ञ शाला कच्ची भूमि की इस लिये बनाई जाती है कि भिन्न २ संस्कारों के अवसरों तथा अपनी शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक-आहुतियों के लिये, तदनुसार छोटा या बड़ा हवन कुण्ड बनाया जा सके । यदि एक सहस्र आहुतियें किसी समय देनी अभीष्ट हों तो यज्ञ कुण्ड उसी के परिमाण में बनाना होगा परन्तु दूसरे समय यदि लक्ष आहुतियें देने का सामर्थ्य हो-गया तो उस छोटे से हवनकुण्ड से काम नहीं चल सकेगा । चूना, गच्च, पत्थर व पक्की ईंटों की यज्ञशाला बनाने में कुण्डका प्रमाण बदलते समय उस को तोड़ने आदि से निस्सन्देह बहुत द्रव्यहानि होगी ।

यज्ञ शाला

यज्ञ शाला विषयक लेख पारस्कर गृह्य सूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये । (पारस्कर गृ० कं० ४ कां० १ ।)

मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवामतः । कार्यः षोडशहस्तो वा न्यूनहस्तो दशावधिः ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठितः ।

इत्यादि वाक्यों के आधार से संस्कार विधि में यज्ञशाला का विधान किया गया है उस के भेद और प्रकार यह हैं:—

[१] सोलह हाथ लम्बी १६ हाथ चौड़ी निम्न खचित चित्रानुसार जिस में २० खम्भे छाया करने के लिये हों—

इस चित्र में दक्षिण की ओर समान अन्तर पर ६ खम्भे लगाये गये हैं।

उत्तर द्वार
१६ १५ १४ १३ १२ ११
१७ १०
१८ ९
पश्चिम द्वार हवनकुण्ड पूर्व द्वार
१९ ८
२० ७
१ २ ३ ४ ५ ६
दक्षिण द्वार
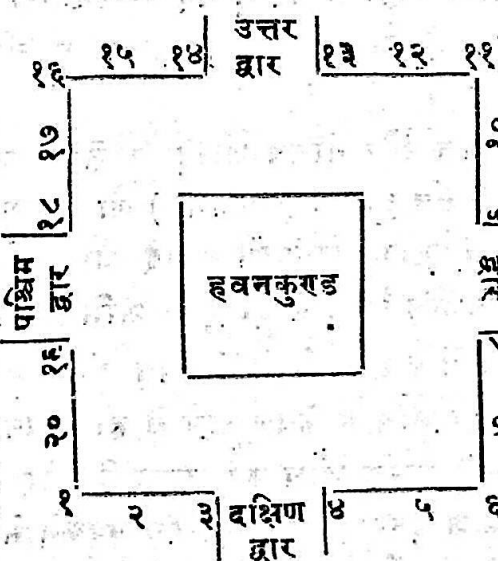
इन में तीसरी और चौथी संख्या के खम्भे दक्षिण दिशा के द्वार का काम देंगे । पूर्व की ओर पाँच अन्य खम्भे लगाये जावें और इन में आठवीं और नवीं संख्या के खम्भे पूर्वदिशा के द्वार का काम देंगे ।

इसी प्रकार १३–१४ संख्या के खम्भे उत्तर के द्वार तथा १८–१९ संख्या के खम्भे पश्चिम द्वार का काम देंगे । १६ हाथ लम्बी और १६ हाथ चौड़ी और १० हाथ ऊँची यज्ञशाला को एक अच्छा शामियाना समझना चाहिये परन्तु यह शामियाना चारों ओर से खुला होगा खम्भों के ऊपर फूस आदि से छत्त करनी चाहिये ।

[२] आठ हाथ लम्बी और ८ हाथ चौड़ी यज्ञशाला बनानी हो तो उस में १२ खम्भे होने चाहियें जिस का चित्र उसी नियम के अनुसार निम्न प्रकार है ।

७	६	५	४
८			३
९			२
१०	११	१२	१

दोनों प्रकार की यज्ञशालाओं के चारों ओर ध्वजा [झंडे] पताका (झंडियें) पल्लव [पत्ते] बांधे तथा बंधन बारी से सुशोभित करें । इस के दो उद्देश्य हैं । एक तो यज्ञशाला को सुंदर बनाना और दूसरे लोगों में यज्ञशाला की सूचना देना ताकि बाहर से आने वाले मित्र अतिथि आदि यज्ञशाला के झण्डों आदि से पहिचान लें और लोगों में ये पताकाएँ विज्ञापन का काम दें । खम्भों के ऊपर छत डालने का उद्देश्य, धूप, वर्षा आदि से वेदी तथा मनुष्यों की रक्षा करना है । पत्ते जो रस्सी में लगाये जाते हैं उस को बन्धन वारी कहते हैं परन्तु यह बन्धनवारी काग़ज़ आदि की नहीं होनी चाहिये किन्तु आम, अशोक, जामन व मौलसरी आदि के पत्तों की होनी चाहिये ।
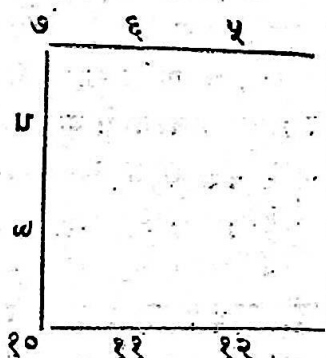
यज्ञशाला में मार्जन और गोमय आदि से लेपन करने का विधान है : मार्जन के लिये उत्तम बुहारी (मार्जनी) की आवश्यकता है जो भिन्न २ देशों में घास पत्ते, सींक आदि की बनाई जाती है । यज्ञशाला के लिये कच्ची भूमि के विधान करने में दो मुख्य अभिप्राय हैं (१) सुविधा का होना (२) सर्व ऋतुओं में इस पर बैठने से ताप शीत आदि अधिक कष्ट की निवृति । जिस कच्ची भूमि में केवल मट्टी से ही लेपन किया जाता है वह मट्टी के रूखे पन के कारण शीघ्र फट जाता है और पिस्सू नामक जन्तु के रहने को अवकाश देता है । इंजीनिरिंग महकमे में इंजीनियर आदि कच्ची दीवारों तथा फर्शों पर मट्टी तथा गोबर का लेपन कराते हैं ।

हाथी, ऊँट, गधे की लीद में उतनी चिकनाइट नहीं होती जितना कि गाय भैंस के गोबर में होती है परन्तु भैंस के भी गोबर से अधिक चिकनाहट तथा मट्टी को पकड़ने की शक्ति गाय के गोबर में है। भैंस के गोबर का लेपन गाय के गोबर के लेपन से कम टिकाउ देखा गया है इस लिये मिट्टी के साथ गोमय मिला कर लेपन करना उपयोगी है। गुजरात देश में सब लोग इस बात को भली भांति जानते हैं कि गाय के गोबर में भैंस के गोबर से एक विशेष गुण यह है कि जहाँ गाय के गोबर का लेपन किया जाता है वहां चांचर (पिस्सू) अधिक नहीं आते परन्तु भैंस के गोबर के लेपन से पिस्सू बहुत बढ़ जाते हैं इस लिये गाय, बैल का गोबर अधिक उत्तम है। काठियावाड़ में घोड़े की लीद प्रायः दीवार बनाने या मिट्टी के लेपन को अधिक पकड़ने के उपयोग में लाई जाती है और उसमें ग्रहण शक्ति गाय के गोबर से अधिक है परन्तु पिस्सू आदि जन्तुओं को वह उत्तमता से निवारण नहीं करती जितना कि गाय का गोबर करता है। बैठने वाले स्थानों पर गाय के गोबर का लेपन अधिक लाभकारी है क्यों कि यह अधिकजन्तु उत्पन्न नहीं होने देता गन्ध भी और पशुओं के गोबर की अपेक्षा इस में कम ही है वेदी के इधर उधर के स्थान को कुंकुम (रोली) हल्दी और मैदा की रेखाओं से सुभूषित करना चाहिये। दक्षिणी गुजराती, पारसी लोगों में वेदी को कुंकुम आदि से सजाने की बहुत प्रथा है पारसी लोग मैदे के स्थान में एक प्रकार की श्वेत पिसी हुई खड़िया काम में लाते हैं और रेखा शृङ्गार को गुजराती लोग साथिया पूरना कहते हैं वेदी के अतिरिक्त पारसी लोग अपने घरके दरवाजों और उनकी सीढ़ियों को शृङ्गारित करते हैं। जो रङ्ग विरंगी रेखायें वेदी को सजाने के लिये खैंची जांय उनके इरद गिरद एक अंगुल चौड़ी हल्दी की रेखा चारों ओर खैंचनी चाहिये क्यों कि चींटियें (पिपीलिका) हल्दी से हटती हैं। और इस लिये हवनकुण्ड में नहीं आसक्तीं।

रेखाओं द्वारा केवल फूल, पत्रके चित्र ही होने चाहियें 'ओ३म्' अथवा मन्त्र लिखने की अवश्यकता नहीं और किसी मनुष्य, पशु पक्षी आदि प्राणी तथा नव ग्रहादि के चित्र की भी आवश्यकता नहीं। मुख्य करके चींटी आदि को शृङ्गारित रेखाओं द्वारा वेदी से दूर रखना भी प्रयोजन है

इस लिये संस्कारविधि में हल्दी, कुंकुम और मैदा से रेखाएँ खैंचने का विधान है। कुंकुम (रोली) हल्दी, चूना और नींबू के रस की बनती है और इसी लिये इस से भी चींटियाँ हटती हैं। मैदा को चींटियें खाती हैं उस का यहाँ रखना भी एक अभिप्राय रखता है। वेदी के बाहर की ओर की जो रेखाएँ हों वे हल्दी की होनी चाहियें। उसके पीछे अन्दर की ओर आनेवाली दूसरी रेखायें वा चित्र रोली के और तीसरी रेखा वेदी के निकट आटे वा मैदे की होनी चाहिये जिस से कि चींटियाँ हल्दी और रोली के रेखाओं से पीछे हटी रहें और यदि कोई हठीली चींटी दैवयोग से इन दोनों रेखाओं के पार आजावे तो आटे वा मैदे के खाने के लोभ में उसी रेखा तक रह जावे और कुण्ड में न जा सके। कई लोग हल्दी कुंकुम और आटा इन से रेखाएँ न खींच कर नाना प्रकार के दूसरे चमकते रँग बजार से ले आते हैं परन्तु ऐसा कभी न करना चाहिये।

यज्ञकुण्ड का परिमाण।

खुली भूमि पर लकड़ियों का ढेर लगा कर उस में घी और चरु डालने से लकड़ी और सामग्री जल तो सकती है परन्तु वायु के अधिक लगने से एक तो बहुत जल्दी जल जावेंगी दूसरे आग चारों ओर फैल जावेगी जिस से लोगों के वस्त्र और शरीर जलने का भय है तीसरे यह कि घृतादि पदार्थों का अधिकांश भाग बाहर निकल कर व्यर्थ जावेगा अतः वेदी अथवा कुण्ड बनाने की आवश्यकता है जो उक्त दोषों को भली प्रकार निवारण कर सके। जो लोग तापने के लिये कोयले जलाते हैं वह भी नाना प्रकार की अँगीठियें इसी लिये बनाते हैं कि कोयलों की अग्नि, सुरक्षित रहती हुई अधिक समय तक बनी रहे।

यज्ञकुण्ड कई प्रकार के बनाये जा सकते हैं जैसे (१) कूपवत् गोलाकार (२) टीन के डब्बे की नाईं ऊपर नीचे से सम चौरस (३) सन्दूक अथवा पेटी की नाईं लम्बा चौरसा।

कूपाकार हवनकुण्ड बनाने में समिधा और सामग्री का जलना ठीक नहीं हो सकता। टीन के डब्बे के आकार वाले में कोनों में सामग्री का अभाव हो जाने से जलने की व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। सन्दूक

के आकार के कुण्ड होने में आमने सामने के होता अग्नि के मध्य भाग से अधिक निकट हो जावेंगे जिस से उन को अधिक ताप लगेगा । अब जो कि तालाब के आकार का हवनकुण्ड है वह सब से उपयोगी सिद्ध हुआ है । यह हवनकुण्ड चतुष्कोण इस प्रकार बनाना चाहिये कि उस का तल चारों ओर चार २ अंगुल का हो तो ऊपर को क्रमशः बढ़ते हुए चारों ओर १६–१६ अंगुल हो और गहराई अर्थात् तल से डोरी सीधी खड़ी की जावे तो वह १६ अंगुल होनी चाहिये ।

"संस्कार विधि" में एक लक्ष दो लक्ष, पचास हज़ार, पच्चीस हज़ार दश हज़ार, पांच हज़ार घृताहुतियें देने के हिसाब से विशेष परिमाण के हवनकुण्ड बनाने का विधान है । और उस के आगे चल कर घृत मोहन-भोग अथवा खीर की आहुति देने की दशा में उस के दुगने से कुछ अधिक हवनकुण्ड बनाने का विधान किया है जितना कि केवल घृत आहुति के लिये चाहिये था । उदाहरणार्थ २५०० घृताहुतियाँ देनी हों तो उक्त नियमानुसार ऐसा हवनकुण्ड बनाना चाहिये जिस का तल सवा चार अंगुल और गहराई तथा ऊपर के चारों कोनों की लम्बाई पौन २ हाथ हो । यदि इस के साथ मोहनभोग आदि की आहुति देनी हों तो उस दशा में यदि पौन हाथ समचौरस का दूना किया जाय तो डेढ़ हाथ समचौरस होता है किन्तु 'संस्कारविधि' में दो हाथ गहरा चौड़ा समचौरस कुण्ड बनाने का विधान है जिस का अभिप्राय यह है कि घृत और चरु की मिली हुई अवस्था में उस के दुगने से कुछ अधिक परिमाण का कुण्ड चाहिये जो केवल घृताहुति के लिये बनाना था नैमित्तिक यज्ञों के हवनकुण्डों की बनावट में जो पांच २ अंगुल की मेखला यज्ञशाला की भूमि से ऊपर को बनाने को लिखा है उस का प्रयोजन विशेष कर यज्ञकर्ता मनुष्यों को आंच का अधिक ताप न लगना है ।

यज्ञसमिधा—

जो लकड़ी जलने में अधिक धुआँ और दुर्गन्धि न दे वही लकड़ी यज्ञ समिधा का काम उत्तम प्रकार से दे सकती है । जैसे पलाश, शमी पीपल बड़, गूलड़, आम और बेल आदि ।

अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्ताल आदि देशों में बदाम की लकड़ी भी यज्ञसमिधा में उत्तम प्रकार से उपयोग में आ सकती है। इङ्गलेण्ड आदि देशों में शाहबलूत की लकड़ी से काम ले सकते हैं। और जर्मनी में लेवेण्डर की लकड़ी से तथा इटली में यूक्लिप्टिस की लकड़ी से भी काम लिया जा सकता है।

होम के द्रव्य ।

(१) सुगन्धित–यथा कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, तुलसी, कपूर, कपूरकचरी, जटामांसी (बालछड़) गूगल, कश्मीरी धूप, छलपुड़ी (छाड़छबीला) लवङ्ग, नागरमोथा आदि सुगन्धित पदार्थ होम द्रव्य के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं। कस्तूरी के विषय में जहाँ तक हमने आन्दोलन किया है उस से तो यही निश्चित हुआ है कि शिकारी लोग कस्तूरी मृग को कस्तूरी लेने के लोभ से जान से मार देते हैं इस लिये कस्तूरी का उपयोग हिंसापरक होने से उचित प्रतीत नहीं होता। धर्मवीर स्वर्गवासी श्रीयुत पं० लेखराम जी कहा करते थे कि जब कस्तूरीमृग, मद को प्राप्त होता है तो उस समय कस्तूरी की गाँठ को पत्थरों से रगड़ता है तो उस से बहुत कुछ कस्तूरी गिर जाती है और ऐसी गिरी हुई को लेने में कोई भी दोष नहीं। आशा है कि विचारशील आर्य्य पुरुष इस विषय में विशेष आन्दोलन करते रहेंगे। एक समय जब कि मदरास में प्लेग फैल रहा था तो डाक्टर किङ्ग० एम० एस० ने हिन्दू विद्यार्थियों को उपदेश दिया था कि यदि तुम घी और केसर से हवन करो तो महामारी का नाश हो सकता है। अगर, तगर के विषय में कुछ वर्ष हुए कि "सिविल० एण्ड० मिलिटरी गज़ट" लाहौर में बङ्गाल के एक अंग्रेज़ विद्वान् के लेख निकले थे, जिस में उस ने दर्शाया था-कि अगर तगर की सुगन्धि से कई प्रकार के विषैले छोटे २ जन्तु वायु में रहने वाले दूर भाग जाते हैं—

श्वेत चन्दन का तेल निकाल कर सूजाक तथा आतशक जैसे भयङ्कर रोग में उस के विष को निवारण करने के लिये अमरीका के कई डाक्टर तथा भारत के वैद्यादि उपयोग करते हैं। इसी प्रकार जटामांसी, जायफल, जावित्री, कर्पूरादि जहाँ सुगन्धित द्रव्य हैं वहाँ इन का धूम, वायु

को शुद्ध करता है बम्बई के प्रसिद्ध मासिक पत्र "सत्य" में तुलसी के मलेरिया नाशक होने के विषय में एक उत्तम लेख निकला है जिस में दर्शाया गया है कि "कई वर्ष हुये बम्बई में एंग्लो इण्डियन अधिकारी सरजार्जवर्डवुड ने "टाइम्स" में एक पत्र लिख कर प्रगट किया था कि जब बम्बई में विक्टोरिया बाग़ तथा एलबर्ट संग्रहालय बनाया गया तब मज़दूर लोगों को मलेरिया ताप आने लगा जब बाग़ के चारों तरफ़ तुलसी बोने में आई तब शीघ्र ही मलेरिया* नष्ट हो गया।

पंढरपुर में बिठोबा के मन्दिर के आस पास की जगह की आरोग्यता का कारण यही है कि उस के चारों तरफ़ तुलसी का जङ्गल है। ('सत्य' पुस्तक जिल्द १ अङ्क ४)

दूसरे पुष्टिकारक पदार्थ ।

घी, सुगन्धित पदार्थों की तीव्रता और रूखे पन को नाश करता है

घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, [चावल गेहूँ, उड़द, जौ,] सुगन्धित पदार्थ, यदि बिना घृत के मिलाये अग्नि में जलाये जायँ तो उन की सुगन्धि में तीव्रता और रूखापन अधिक रहने से जुकाम [प्रतिश्याय] आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु जिस समय सुगन्धित पदार्थ घृत से मिला हुआ जलाया जाता है उस समय जुकाम आदि किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता और सुगन्धि की तीव्रता मर्यादा के रूप में आ जाती है। इस लिये शास्त्रों की आज्ञा है कि सामग्री, बिना घृत के मिलाये हवनकुण्ड में न डाली जाय।

घी विष नाशक है

घी का एक अपूर्व गुण यह है कि यह विष नाशक पदार्थ है जैसा कि सुश्रुत में लिखा है।

प्लेग [ताऊन] का टीका निकालने वाले डाक्टर हेफ़किन का वचन है कि घी विषनाशक पदार्थ है यह हमने अनुभव किया है।

घी अग्नि को प्रदीप्त करता है

घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है। घी में अग्नि के प्रदीप्त करने की जो शक्ति है वह सब जानते ही हैं।

---

* तुलसी के तीन पत्ते और सात काली मिर्च आधी छटांक पानी में पीस कर प्रातःकाल तीन दिन तक पीना मलेरिया ज्वर को हरता है।

जब तक अग्नि प्रज्वलित न की जाय तब तक रोग निवृत्ति का पूर्ण साधन नहीं बन सक्ती। मट्टी का तेल, [कैरोसिन ऑइल] सरसों अथवा तिल का तेल यह भी अग्नि प्रदीप्त करने के पदार्थ हैं परन्तु यह घृत की अपेक्षा दुर्गन्धि वाले पदार्थ हैं इस लिये कभी भी हवन में जलाने योग्य नहीं। घी के अणु वर्षा वर्साने के अपूर्व साधन हैं पानी और घी दो ऐसे पदार्थ हैं कि जो सर्दी से जम जाते और गर्मी से पिघलते हैं परन्तु पानी से भी बढ़ कर घी में सर्दी से जम जाने का गुण अधिक है। जैसे कि सर्दी के दिनों में जब कि पानी नहीं जमता परन्तु घी जम जाता है। हवन में जब घी के अणु सूक्ष्म होकर ऊपर चढ़ते हैं तो वायु में डालने वाले बादलों के धरातल के पास ही पहुंच कर स्वयं जम जाने से उन को जमाने और बर्साने का काम देते हैं। पश्चिमीय सायंसदाँ कहते हैं कि बादलों के नीचे के भाग [अर्थात् धरातल] में यदि कृत्रिम रीति से सर्दी पहुंचाई जा सके तो बादल बरस सक्ता है और इस के लिये वह कई प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाते हैं किन्तु घी में बादलों के निचले भाग में ठण्ड की जामन लगाने का अधिक गुण है जैसा कि अभी लिख चुके हैं इस लिये विशेष घृत का हवन करने से वर्फ होने में सहायता हो सक्ती है। इस का प्रयोजन यह नहीं है कि घृत के हवन से बादल बन जाते हैं। अनन्त हवन कुण्डों के समान सूर्य की किरणों से समुद्र का जल बादलरूप में आता है।

कई लोग ऐसी आशङ्का करते हैं कि यदि हम हवन न करें तो क्या बादल न बनें और वर्षा न होगी? इस का उत्तर यह है कि वर्षा होने का कारण तो जल का सूक्ष्म से ऊपर जा कर बादल बनना है। हमारा प्रयोजन यह है कि हवन जो घी का मुख्य भाग है वह यदि ऐसी अवस्था में ऊपर पहुँचे जहाँ बादल किसी रूप में हों तो वह अपने जमजाने के स्वभाव को तो छोड़ नहीं सकता और जिस प्रकार पानी की भाप ऊपर जाकर ठंड पाकर जमजाती है अनुकूल गुण अथवा उसके शीघ्र जम जाने का गुण घी के सूक्ष्म रूप में रहेगा जिस से वह वर्षा का सहायक हो सक्ता है निवारक नहीं। हवन का मुख्य प्रयोजन तो वायुमण्डल की शुद्धि है।

दूध, बादाम, केला, नाशपाती, सेव, नारियल, तथा नारियल का घृत, शकरकन्दी, यह सर्व पुष्टि कारक पदार्थ हैं इन के जलाने से जल और मिष्ट

के अणु वायु में फैल कर सब रोगों की निवृत्ति करते हुए पुष्टि देते हैं। कोई ऐसा फल जो कि खट्टा अथवा क्षारगुण वाला हो वह हवन में नहीं डालना चाहिये क्योंकि—क्षार (सोडा, सज्जी, नमकादि) और खट्टी चीज़ों के जलाने से अनेक प्रकार के खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अन्न भी घृतादि के समान पुष्टि कारक पदार्थ है इसी लिये विवाह संस्कार में लाजा होम रक्खा है जिसमें एक प्रकार से चावलों की खीलें घृत के साथ होमकी जाती हैं प्रायः संस्कारों में स्थालीपाक जो बनाया जाता है उस में खीर (दूध में पके हुये चावल) अथवा मोहनभोग (हलुवा) जो कि गेहूं के आटे, घी और शक्कर से बनता है पुष्टि कारक होने से उपयोग में लाया जाता है कभी २ याज्ञिक लोग यव (जौ) भी हवन में डाला करते हैं।

गेहूं, जौ, चावल, और मोहनभोग यह सब अन्न जब घी के साथ अथवा बिना घी के आग पर भूने जाते हैं तो एक प्रकार की सुगन्धि देते हैं इस लिये उत्तम उत्तम प्रकार के अन्न जो पुष्टि कारक होने के अतिरिक्त सुगन्धित भी हों हवन में डालने चाहियें।

तीसरे मिष्टपदार्थ।

शक्कर, शहद, छुहारे दाख, आदि। सुगन्धित पदार्थों के साथ मिठास रहता है सुगन्धित पुष्पों पर मधुमक्खी फूलों के अन्दर के मिठास के लेने को ही आती हैं शर्करा (शक्कर) गुड़, खाँड, मिश्री के जलने से मन्द २ सुगन्धि आती है परन्तु जब शक्कर खाँड आदि के साथ घी भी जलता है तो सुगन्धि और भी रोचक और उत्तम प्रकार की हो जाती है अमरीका के एक मासिकपत्र में एक विद्वान् ने लिखा था कि आग में शक्कर के जलाने से 'हे फीवर' अर्थात् एक प्रकार के ज्वरों का नाश होता है। छुहारे, खजूर, द्राक्षा आदि फल जिन में मिठास अधिक होता है वह भी हवन में डाले जा सकते हैं।

चतुर्थ—रोगनाशक पदार्थ।

गिलोय भारतवर्ष में "क्वीनाइन" का काम देती है। ज्वर के विष को नाश करती और शरीर को आरोग्यता देती है।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर साहब की किताब "फिजीकल रिलीजन" के पाठ से विदित होता है कि यवन देश के तत्ववेत्ता स्तूयकों ने आग को वायु शोधक माना है। और इस पर उक्त प्रोफेसर साहब लिखते हैं कि आग जलाने की रीति गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में पाई जाती थी। तथा आयरलैण्ड और दक्षिणी अमेरिका में महामारी के लिये अग्नि जलाने की प्रथा प्रचलित रह चुकी है मैक्समूलर की पुस्तक के पाठ से सिद्ध होता है कि हवन यज्ञ का प्रचार एक समय सर्वभूमण्डल पर रह चुका है।

जापान और चीन में होम को घोम कहते हैं और मन्दिरों में सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं। जर्मनी में लवेंडर की बत्ती जलाई जाती है। ईरान के पार्सी लोग हवन यज्ञ को हिन्दुओं की तरह उत्तमता से करते हैं।

हवन की उपयोगिता में मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर का अपूर्व साक्ष्य।

आर्य लोग जो हवन की आवश्यकता दर्शाते हैं वहाँ पर एक प्रमाण यह भी देते हैं कि प्राणियों के मल मूत्र से दुर्गन्धि उठ कर वायु को अशुद्ध कर देती है—उस दुर्गन्धि को आग से दूर करने और आग के द्वारा सुगन्धि फैलाने के लिये जो कार्य किया जाता है वही हवनयज्ञ है। जो अंग्रेज़ी पुस्तक "ब्यूबानिकप्लेग" नामी पायनियर प्रेस प्रयाग से निकली है उस में लिखा है कि २५ मार्च सन् १८९८ को मदरास यूनिवर्सिटी (महाविद्यालय) के ग्रेजुएट (बी० ए० आदि) विद्यार्थियों को कर्नल किङ्ग आई० एम० एस० सैनीटरी कमिश्नर मद्रास ने एक उपदेश दिया था उस का सारांश हेनकिन महाशय ने "ब्यूबानिकप्लेग" नामी पुस्तक में उन के ही शब्दों में लिखा है हम उस का अभिप्राय यहाँ पर लिखते हैं:—इस पुस्तक के पृष्ठ २२ पर लिखा है कि महाशय कमिश्नर ने भगवती पुराण (देवी भागवत) का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उस में महामारी का वर्णन है—रोग की दशा में चूहों के गिरने का वर्णन है—और उस के दूर करने के लिये घी चावल और केसर आदि के हवन का विधान है जिस को शान्ति होम के नाम से पुकारा है—और अन्य कई बातें जैसे धूप बत्ती का जलाना आदि भी लिखा है उस पुराण के हवन की रीति को वर्णन करते हुए पुस्तक निर्माता ने प्रकट किया है कि हवन की वर्तमान रीति मेडिकल

सायन्स के अनुकूल है और लिखा है कि हवन का करना लाभदायक और बुद्धिमानी की बात है—इस पुस्तक की भूमिका डबलू एम० हैफ़किन महाशय बम्बई वाले ने लिखी है—इस पुस्तक के पढ़नेसे यह भी ज्ञात होता है कि फ्रान्स देश में रूकस महाशय ने जो टीका प्लेग का माद्दा निर्मित किया था वह अत्यन्त विषैला था हैफ़किन महाशय ने घी में मिलाने से उस का विष दूर कर दिया है इस से सुश्रुत के कथन की पुष्टि डाक्टर हैफ़किन की परीक्षा से हो गई कि घी विषनाशक है ।

बड़ोदा के महाराज का एक प्रशंसा योग्य कार्य्य ।

बड़ोदा राज्य के सरकारी गज़ट (आज्ञापत्रिका) में श्रीमन्त महाराजा श्री सया जी राव गायक वाड़ सेना ख़ास खेल शमसैर बहादुर के हुकम से तथा राज्य के सुयोग्य डाक्टरों की सम्मति द्वारा नीम के पत्तों की धूनी के लाभों पर प्रजा का ध्यान दिलाया गया है । इस की धूनी, रोग मच्छर आदि को दूर करने वाली है । हवन में इस के पत्ते इस लिये नहीं डालते कि इस का धूआँ कड़ुवा होता है । हवन से पूर्व इस की धूनी देने से लाभ ही है ।

मीठा भात, खीर, लड्डू, मोहन भोग यह पदार्थ जो हवन के लिये बनाये जाते हैं इनको 'परिभाषा' में स्थालीपाक कहते हैं । इस से प्रथम इस बात पर ध्यान दिलाया गया है कि चावल, आटा, घी, शक्कर आदि पदार्थों को पहिले भली भाँति उजाले में देख लेना चाहिये ताकि किसी प्रकार जीता वा मरा हुआ जन्तु अथवा कंकर आदि अनिष्ट पदार्थ रह न जाय और चलनी आदि से छानने, धोने सुखाने तपाने आदि अनेक प्रकार की यथायोग्य क्रियाओं से शुद्ध कर लेना चाहिये फिर मोहन भोग इन से बनाना चाहिये ।

आटा अथवा मैदा २ सेर में, घी १ सेर, मीठा २ सेर जल ४ सेर, केशर १ माशा जायफल १ माशा, जावित्री १ माशा, सेर भर दूध की खीर बनाने के लिले चावल १ छटाँक मीठा १॥ छटाँक इलायची ३ माशे होनी चाहिये ।

एक सेर, बेसन अथवा आटे के लड्डू बनाने के लिये सेर भर घी, ६ मासे इलायची, मीठा १४ छटाँक, होने चाहियें । मीठे भात के लिये जितने चावल हों उतना ही मीठा डालना चाहिये ।

'संस्कार विधि' में स्थालीपाक शीर्षक के नीचे जो मन्त्र दिया है उस में से "ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनातु" इतना भाग यजुर्वेद अ० १-मं० ३ का है और शेष का पता नहीं चलता ।

इस मन्त्र में बतलाया है कि सूर्य पदार्थों को पवित्र करता है और यज्ञ के पदार्थों में कोई छिद्र अर्थात् अनिष्ट पदार्थ न रह जाय इस लिये सूर्य की रश्मियों में अर्थात् उजाले में पदार्थों को देख भाल तथा शुद्ध कर लेना चाहिये रात को अथवा अन्धकार में पूरी शुद्धि नहीं हो सकती । "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि"—यह विधि चरू बनाने की है इस का अर्थ यह है कि अग्नि के लिये तुझ को प्रीति से डालता हूँ इस का अभिप्राय यह है कि—अग्निहोत्र के लिये जो सामग्री तय्यार की जाय वह बेगार काटने की तरह न हो किन्तु मन लगा कर उस सामग्री को उचित परिमाण में शुद्ध करके डालनी चाहिये । 'अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि'—अर्थात् तुझ अग्नि के लिये प्रीति पूर्वक छोड़ता हूं अर्थात् जिस समय आग के ऊपर बर्त्तन में पकने के लिये स्थालीपाक डाला जाय उस समय भी मन लगा कर पाकविधि को पूर्ण करना चाहिये ।

यज्ञपात्रों के लक्षणः—

यज्ञपात्रों के लक्षण, आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा सूत्र, शाङ्खायन श्रौतसूत्रादिकों के अनुसार लिखे गए हैंः—

चार प्रकार की स्रुक् होती हैं ("ध्रुवोपभृज्जुहूनां तु स्रुवो भेदाः स्रुचः स्त्रियामिति श्रौतव्यवहारमूलक कोशाद् ध्रुवोपभृज्जुहूस्रुवाणां चतुर्णां वाचकः स्रुक्शब्दः" इति श्रौतपदार्थनिर्वचनकारः पृ० ११) १ ध्रुवा, २ उपभृत्, ३ जुहू, ४ स्रुव । ये चारों स्रुचाएँ डेढ़ २ हाथ मात्र लम्बी हों, हाथ के चिह्न के बराबर जिनके मुख का गहराव हो, त्वग् भागकी ओर से जिनका मुख ६ अंगुल खोदा गया हो अर्थात् चीर कर भीतर से जिन का मुख न खोदा हो, तथा हंस के मुख के समान घृत गिराने के लिये एक ढालू पनाली जिन में बनी हों और मूल की ओर जिनका दण्ड हो अर्थात् काष्ठ के अग्रभाग की ओर उन में मुख किया गया हो, ऐसी स्रुचा होनी चाहिएँ । "जुहू" ढाक की लकड़ी की बनानी चाहिए । "उपभृत"

पीपल की लकड़ी की और "ध्रुवा" विकङ्कत वृक्ष (कटाई) की तथा "स्रुव" खदिर —खैर (जिस का कत्था बनाया जाता है) का बनाना चाहिये। जिस से अग्नि में आहुतियां दी जावें उसे "जुहू" कहते हैं, जुहू के पास रहने वाली स्रुचा का नाम "उपभृत्" है इसे अध्वर्यु अपने बायें हाथ में रखता है। "ध्रुवा" यह जुहू जैसी होनी चाहिये हवन के लिए घी इस में रक्खा जाता है,यज्ञ समाप्ति पर्यन्त बराबर रक्खी रहती है। 'स्रुव' यह २४ अंगुल लम्बा होना चाहिए, अँगूठे के पोरे के प्रमाण इस का गोल बिल होना चाहिए , यह भी घृत डालने के काम में आता है। यदि अधिक आहुति देनी हों तो दूसरा 'स्रुव" विकङ्कत का बनाना चाहिए। "स्रुव" विशेषतया दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में ही काम आता है। " अग्निहोत्र हवणी" साधारण अग्निहोत्र में काम आती है ।यह लम्बाई में २४ अंगुल की बनानी चाहिए और इसका आठ अंगुल परिमाण का गोलबिल होना चाहिए इसी "अग्निहोत्र हवणी" में "प्रोक्षणी" नामक जल, जिनसे चावल आदि शुद्ध किए जाते हैं—प्रोक्षित होते हैं, रक्खे रहते हैं।

अग्नि होत्र हवणी के नीचे रखने के लिए, डेढ़ हाथ लम्बा, मगर कोसी मूर्तिका, वरना--वारुणी वृक्ष (इसके पत्ते कड़ुवे होते हैं) का "कूर्च" बनाना चाहिए।

२४ अँगुल का खैर के वृक्ष का तलवार जैसा "वज्र" बनाना चाहिए यह कुवारे आदि तोड़ने के काम में आता है। जो होम के समय में काम नहीं आते ऐसे यज्ञपात्र--ओखली मूसल आदि, सामान्यतया वरना वृक्ष के बनाने चाहिएँ। उलूखल-ओखली, नाभि के बराबर हो और मूसल शिर के बराबर। अथवा मूसल और उलूखल, किसी ठोस काष्ठ के सुन्दर, जैसे लम्बे चौड़े इष्ट हों वैसे ही बना लेवें। इस विषय में याज्ञिक लोग कहते हैं—मूसल खैर का और उलूखल ढाक का हो अथवा दोनों वरना के हों यदि खैर और वरना न मिलें तो अन्य किसी वृक्ष के बनाये जायँ शूर्प-सूप (छाज) बाँस का ही हो अथवा सिरकी या नल नामक घास का हो पर उस में चमड़ा न लगाया जाय। यज्ञ में चावल आदि जो हवि के काम में आते हैं उनके तुष आदि को हटाने के लिए यह बनाया जाता है। १२ अंगुल लम्बी, वरना वृक्ष की एक "शम्या" बताई जाती है।

यह हविष् के पेषण समय में शिला के नीचे उत्तर को अग्रभाग करके लगा दी जाती है। जिस से शिल ऊँची रहे ।

काले हरिण का चर्म, यज्ञोपयोगी चावल आदि के कूटने के समय में ओखली के नीचे रक्खा जाता है उसे "कृष्णाजिन" कहते हैं; वह खण्डित न हो। शिला और लोढ़ा, यज्ञोपयोगी सामग्री पेषण के लिए पत्थर के बनाये जायँ। हुत हविष् के शेष भाग को, जो इडा पात्र में रक्खा जाता है 'इडा' कहते हैं। "इडा पात्र" में यजमानादि के लिए पाँच भाग निकाल कर रक्खे जाते हैं। यह 'इडा पात्र' वा 'इडा पात्री' वरना वृक्ष की, १॥ हाथ की वा २४ अंगुल लम्बी, बीच में खुदी हुई और बीच में पतली होनी चाहिए। यही 'पञ्चावत्त इडा' कहलाती है। ब्रह्मा, होता यजमान और उसकी धर्मपत्नी के लिए २४ चौबीस २ अंगुल के चतुष्कोण आसन-पटड़े बनाने चाहिएँ। मुञ्ज-मूंज की, तीन लर वाली, दोनों भुजाओं के बीच का जितना परिमाण है उतनी लम्बी चौड़ी एक रस्सी बनाई जाती है। अध्वर्यु के कहने से 'आग्नीध्र' इसे यजमान पत्नी को कटिदेश में पहरने के लिए देता है। इसी का नाम "योक्त्र" है। १२ अँगुल लम्बी और ८ अँगुल चौड़ी, ६ अँगुल बीच में खुदी हुई दो "पुरोडाश पात्री" हविष् के धरने की बड़ी पात्री (वर्तन) बनानी चाहिएँ। १२ अँगुल लम्बा, २ अँगुल चौड़ा; अग्रभाग जिसका तेज हो ऐसा "शृतावदान" बनाना चाहिए। शृत-पके हुए पुरोडाश के अवदान-टुकड़े करने में यह काम देता है।

दर्पण के तुल्य--गोल, वा चमस (सोमरस पीने का पात्र वा चम्मच) के तुल्य चौकोन "प्राशित्र हरण" नामक पात्र बनाना चाहिए इसी में ब्रह्मा के लिए हविर्भाग रक्खा जाता है। दोनों ओर खाने वाला, कंघी के आकार जैसा ६ अंगुल का (या १२ अंगुल का) "षडवत्त" पात्र बनाया जाता है जिस में "अग्नीध्" के खाने को दो भाग रक्खे जाते हैं। आधे चन्द्रमा के समान १२ अंगुल का ८ अंगुल ऊँचा एक "अन्तर्धानकट" बीच में बनाना चाहिए। यजमान पत्नियों के आहुति देते समय यह अन्तर्धानकट, अग्नि से बचाव करने के लिये खड़ा किया जाता है। अग्नि के अङ्गार सम्हालने के लिये २४ अंगुल लम्बा एक "उपवेश" नामक पात्र

बनाना चाहिए। रस्सी मुञ्ज की, यज्ञोपयोगिनी है। खैर के १२ बारह २ अंगुल लम्बे, जिन का चार २ अंगुल का मस्तक हो और जिन का अग्र-भाग पैना हो ऐसे "खूंटे" बनाने चाहिएँ ये यज्ञमण्डप बनाने में और यज्ञोपयोगी गौओं के बाँधने के काम में आते हैं। "यजमान पूर्णपात्र" और "यजमानपत्नी पूर्णपात्र" बारह २ अँगुल लम्बे और चार २ अंगुल चौड़े तथा चार २ अँगुल गहरे खुदे हुए बनाने चाहिएँ। इन दोनों पात्रों में हुत हविष् का भाग यजमान और उस की पत्नी के खाने के लिए रक्खा जाता है। पीपल की लकड़ी का, ८ अंगुल गहरा और १२ अंगुल लम्बा "प्रणीतापात्र" बनाना चाहिए। हवन कार्यार्थ अर्थात् कुशों से मार्जनाद्यर्थ जल इसी में से लिया जाता है। "आज्यस्थाली" घृत रखने का पात्र १२ अँगुल लम्बा और १२ अँगुल ही ऊँचा बनाना चाहिए। 'आज्य-स्थाली' जैसी ही "चरुस्थाली" हव्यान्न रखने की पात्री बनवानी चाहिए। "अन्वाहार्यपात्र" ऐसा बनवाना चाहिए जिस में चार पुरुषों (ऋत्विजों) के लिये पर्याप्त भोजन समाजाय। यज्ञ होनेके बाद दक्षिणाग्नि में अन्वा-हार्य पात्र को रख कर अच्छी तरह पकाया हुआ भात आदि, चारों ऋ-त्विज् इसी में से लेकर खाते हैं। अग्नि को पूर्व प्रदीप्त करने के लिए ढाक की वा अन्य योग्य वृक्ष (पीपल आदि) की समिधाएँ रखनी चाहिएँ। हविष् पात्रों के नीचे रखने को और वेदी के चारों तरफ फैलाने को कुशों को विशेष रचना से रक्खा जाता है इसी रचना का नाम "बर्हिः" है। ऋत्विजों के वरण के लिये, सोने के कुण्डल और अँगूठी तथा सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिएँ। यजमान और उस की पत्नी को पहिरने के लिए, क्षौम रेशम के चार सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिएँ। जो यज्ञपात्र नहीं हैं वे यज्ञोपयोगी होने से यहाँ प्रसङ्गवशात् लिख दिए हैं। अन्य 'अभ्रि' आदि यज्ञोपयोगी २-३ पदार्थों का याज्ञिक ग्रन्थों में स्वरूप बतला दिया है। जिन का स्वरूप नहीं बतलाया उन का कल्पना कर लेना चाहिये।

यज्ञ पात्र।

यज्ञ पात्र चाँदी अथवा काष्ठ के बनाने को संस्कार विधि में लिखा है परन्तु उपयोग में काष्ठ के अधिक उत्तम और सस्ते होसकते हैं। इन पात्रों के नाम, प्रकार परिमाण और काष्ठादि की जाति पर विचार, करने

से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्यलोग वनस्पति शास्त्र और शिल्प क्रिया में कैसे निपुण थे । एक स्थलपर ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के कुण्डल (बाले) और अँगूठी देने का विधान है इस से पाया जाता है कि उस समय पुरोहित लोग कुण्डल और अँगूठी धारण करते होंगे जो कि यथासमय वह इस को बेच कर अन्य उपयोगी पदार्थ लेते हों ।

यजमान और उस की पत्नी के लिये रेशम के वस्त्रों का विधान होने से स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार था यह सिद्ध है । रेशमी वस्त्र के यज्ञ समय में दो लाभ प्रतीत होते हैं ।

(१) यह कि कहीं दैवयोग से आग लग जाय तो उस से बहुत बचाव हो सके क्योंकि रेशम और उन के बने हुए वस्त्रों का यह गुण है कि उन में आग थोड़ी जगह में जलकर बुझ जाती है और अधिक नहीं बढ़ती (२) यह कि गर्मी की ऋतु में रेशमी वस्त्र धारण करने से पसीना अधिक नहीं आता । रेशम कई प्रकार से बनाया जाता है एक प्रकार ऐसा है कि जिस में कीड़े मारे न जायँ और प्राप्त होसके परन्तु आज कल लोभी लोग कीड़ों को प्रायः मार ही देते हैं ।

यज्ञ पात्रों की सूची देख कर कई लोग कहदेते हैं कि यज्ञ करने केलिये इतना जगड्वाल कौन करे पन्तु यह उन की भूल है वह दफ़्र बनाने के लिये कुर्सियें, मेजें, अलमारियें, दरियें, सन्दूक, दवात, कलम, कागज़, पेपर-वेट, रजिस्टर (पत्रक) फाइल (तार) घड़ी, केलेंडर चिक, पंखा, रग, आदि अनेक पदार्थों को कभी जगड्वाल नहीं कहेंगे जहाँ कि उन को बैठ कर लिखने का काम करना है । जब लिखने के काम के लिये एक कमरा और इतने सामग्री की आवश्यकता है तो हवन करने के लिये यज्ञशाला और यज्ञ पात्रों की क्या आवश्यकता नहीं ?

ऋत्विग्वरणम् ।

यजमान ऋत्विज् को काम करने के लिये और अपने आसन (सीट) पर बैठने के लिये प्रार्थना करे । आज कल भी सभ्य संसार में कोई सभा समाज हो तो वहां सभापति को आसन ग्रहण करने इत्यादि के लिये प्रार्थना की जाती है और सभापति उसका उत्तर स्वीकृति में देता है । यहाँ भी यजमान और ऋत्विज को वैसे ही कार्य्य करने के लिये विधान है ।

आगे चल कर होता, अध्वर्य्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, का आसन वेदी के चारों ओर लगाने का विधान है अर्थात् होता का आसन पूर्वमुख हो, अध्वर्य्यु का दक्षिण मुख, उद्गाता का पश्चिममुख और ब्रह्मा का उत्तरमुख शङ्का करने वाला कह सकता है कि इन आसनों का क्रम बदला जाय तो क्या दोष है। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जो क्रम आप निश्चय करेंगे उस पर भी यह शङ्का की जा सकती है कि वह क्रम बदला जाय तो क्या दोष है! अन्त को अव्यवस्था हो जायगी। व्यवस्था को और उपयोगिता को दृष्टि में रख कर ऐसे आसनों का क्रम कार्य्य सिद्धि के लिये निश्चय किया गया है।

आगे तीन मन्त्रों से आचमन करने का विधान है। युरोप आदि देशों में यह रीति है कि जब कोई वक्ता कोई विशेष बोलने का काम करने लगता है तो उसकी मेज़ पर पानी का गिलास किसी समय पर पीने के लिये रख दिया जाता है जोकि उसको आचमन का काम देताहै। पुराने आर्य्य लोगों ने वेदपाठ इत्यादि के आरम्भ से पूर्व ही आचमन करना कण्ठ कोमलता आदिके लिये नियत किया था और बीच बीच में कई बार किसी क्रिया का कोई अङ्ग समाप्त कर लेने पर वह आचमन करते थे।

आचमन के पहिले मन्त्र में जल को अमृत और प्राणों का आधार बतलाया गया है। इस बात को स्मरण में रखने और तदनुसार आचरण करने से कितने शारीरिक रोग नष्ट हो सकते हैं। कितना रुपया और श्रम लोगों को इस बात के समझाने पर लगता है कि लोग गन्दे कूओं, सड़े हुए तालाबों और ख़राब नदियों का पानी, जो विषरूप है उपयोग में न लावें। जल को अमृत दशा में रखने के लिये कई स्थलों में (Water works) अर्थात् नल भी जारी किये जाते हैं। जिन नलों में कुओं अथवा तालाबों का पानी आता है यदि वह कूप और तालाब अमृत जल से भरपूर नहीं है तो नल का पानी भी क्या कर सकता है! पुराने समय में खुले जंगल में किसी बाग़ अथवा स्वच्छ स्थान में पीने के कूप खोदे जाते थे। और उन को स्वच्छ रखना धर्म्म का अङ्ग समझा जाता था। परन्तु आज स्वच्छता का भाव विद्या हीन होने से नष्ट हो रहा है और पानी अमृत के स्थान में विष सा बन रहा है। स्वच्छ अथवा निर्मल जल की महिमा को नित्य प्रति स्मरण कराने के लिये आचमन का यह पहिला मन्त्र पढ़ा जाता था।

दूसरे आचमन मन्त्र में जल को निश्चित रीति से पोषक कहा गया है । आज लोग शराब आदि पदार्थों को पौष्टिक समझते हुए निर्मल जल का महत्त्व भूल गये हैं । किन्तु जिस समय आर्य्य लोगों को नित्य प्रति स्मरण कराया जाता था कि जल पौष्टिक वस्तु है तो उस समय मद्य-पान आदि का प्रचार देश में न था । जापानी लोग पीने के जल पर बहुत ध्यान देते हैं । और कहा जाता है कि उन के शारीरिक बल का एक मुख्य कारण निर्मल जल भी है ।

तीसरे आचमन मन्त्र में बताया है कि शारीरिक पुष्टी का उद्देश्य सत्य प्राप्ति और शुभ कामों के करने से कीर्ति और धर्म्मानुकूल धन प्राप्ति है । सत्य और उत्तम कर्म द्वारा धन प्राप्ति की यज्ञ करने कराने वालों के लिये भारी आवश्यकता है इस को बार २ स्मरण कराया जाता था ।

आगे सात मन्त्रों से जल द्वारा अङ्गस्पर्श करने का विधान है । रात को कोई मनुष्य गाढ़ निद्रा में सो रहा हो तो उस के सामने कितने दीपक और कितनी ही आवाजें दी जायँ तौभी उस का उठना कठिन है परन्तु आप जल के छींटे बिन बोले उस के किसी अङ्ग पर डाल दीजिये तुरन्त उठ खड़ा होगा । इस से सिद्ध हुआ कि आलस्य निवृत्ति के लिये जल बड़ा उपयोगी है । यज्ञ करने वाले आलस्यतन्द्रा आदि दोषों में ग्रस्त न हो जायँ इस लिये जल के छिड़कने की आवश्यकता है । जल रुधिर के कोप को शान्त करता है जिस पुरुष को क्रोध चढ़ रहा हो उस को ज़रा हाथ मुंह धुला दीजिये फिर देखिये कि क्रोध कहाँ तक शान्त होता है । इस लिये न केवल आलस्य किन्तु नाना अङ्गोंमें शान्ति संचार के लिये भी जल छिड़का जाता है । बौद्ध लोगों ने मार्जन की यह रीति उत्तम बतलाई है और उन के अनुयायी ईसाई लोगों ने शिरोमार्जन अथवा बपतिस्मा को धर्म का अङ्ग ठहराया है ।

मार्जन के पहिले मन्त्र में मुख तथा वाक् इन्द्रिय को आरोग्य रखने की स्मरणरूपी प्रार्थना है । दूसरे में घ्राण इन्द्रिय, तीसरे में नेत्र तथा चक्षु इन्द्रिय, चौथे में दोनों कान तथा श्रवण इन्द्रिय, पाँचवें में दोनों भुजायें तथा बल शक्ति, छटे में दोनों जङ्घाएँ तथा वेग पराक्रम, सातवें में सारी देह और उस के सब अवयव ।

आज कल लोग उपहास करते हैं कि पुराने आर्य्य केवल मृत्यु का ही चिन्तन करते थे । शरीर उन्नतिके शत्रु थे । परन्तु इन सात मन्त्रों को नित्य प्रति स्मरण करने वाले आर्य्य कहाँ तक शारीरिक उन्नति के महत्त्व को समझे हुए थे इस पर अधिक लेख करने की आवश्यकता नहीं । आज कल स्कूलों में सैनेटरी प्राइमर्स (Senetry Primers) पढ़ने वाले स्वच्छ जल और आरोग्यता के नियमों को कुछ समझते हैं परन्तु पुराने समय में यह दश मन्त्र हाईजीव के मुख्य सिद्धान्तों का काम देते थे (Will Power) मानसिक शक्ति पर किताबें लिखने वाले अमरीका आदि सभ्य देशों में बतलाते हैं कि यदि मनुष्य रोगी है और वह ऐसी इच्छा नित्य-प्रति करे कि मेरे अमुक अङ्ग में रोग न रहे तो उस की इच्छा शक्ति इस प्रकार के अभ्यास से बहुत प्रबल हो जावेगी और वह उन साधनों को उपयोग में ला सकेगा जिस से स्वस्थ रह सकता है । प्रार्थना का वह एक बड़ा फल मानसिक शक्ति को प्रबल करना मानते हैं । परन्तु इन सात मन्त्रों में न केवल शारीरिक उन्नति के महत्त्व का ही स्मरण कराया गया है किन्तु इच्छा शक्ति को प्रबल करने का मानो अभ्यास करा रहे हैं । प्रार्थना करने का फल मानसिक बल की प्राप्ति है । और इसी लिये वेदों में प्रार्थना की शैली प्रायः बहुत से मन्त्रों में देखने में आती है कई मत ऐसे हैं जो प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि के अतिरिक्त और कुछ भी मानते हैं । परन्तु पुराने आर्य्य प्रार्थना, उपासना आदिसे अन्तः-करण की पवित्रता और उसमें बल प्राप्ति होना मानते चले आये हैं ।

समिधा चयन ।

" ओ३म् भूर्भुवः स्वः " यह नाम परमात्मा के हैं । इन का उच्चारण कर के द्विज के घर से अग्नि लाने अथवा घृत दीपक जला उस से अग्नि प्रज्वलित करने का विधान है । पुराने समय में द्विजों के घर में गार्ह्य-पत्य अग्नि पारसियों की अग्यारी की तरह सदैव जागृत रहती थी । गुण कर्म्म से जो शूद्र होते थे वह इस अग्नि को जागृत नहीं रख सकते थे और न अब कोई गुण कर्म्म से बना हुआ शूद्र उतने कर्तव्य पालन कर सकता है जितना कि द्विज ।

दूसरी विधि घृत का दीपक जला कर अग्नि जलाने की कही गई है। केरोसिन आयल कोलगेस आदि के दीपक, घृत दीपक की अपेक्षा अधिक दुर्गन्धि वाले होते हैं इस लिये हवनकुण्ड के समीप इन का जलाना ठीक नहीं मोमबत्ती में दुर्गन्धि प्रायः नहीं होती परन्तु सब मोमबत्तियें चर्बी के मेल से बनाई जाती हैं। और चर्बी विना हिंसा के प्राप्त नहीं होती। जहाँ घृत न मिल सके वहाँ नारियल का घृत उपयोग में ला सकते हैं जैसे कि बंगाल में नारियल के घृत के दीपक जलाते हैं। यह तो आपत्काल की बात रही, सदैव घृत का ही दीपक जलाना नारियल के घृत से अधिक लाभ दायक है।

आगे जिस मन्त्र को पढ़ कर अग्नि रखने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के गुणों का विधान है। दूसरे मन्त्र को पढ़ कर व्यजन (पंखे) से अग्नि प्रदीप्त करने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के वैसे ही उत्तम गुणों का विशेष विधान है अर्थात् बतलाया गया है कि हे अग्ने! तू भली प्रकार प्रकाशित हो। इस से पाया जाता है कि अत्यन्त जलती हुई, आग में हवन करने की आज्ञा है और किसी प्रकार की बुझी हुई अथवा मन्द अग्नि में हवन करने का निषेध है। डाक्टर भगलराम साहनी एम० डी० कश्मीर ने जो प्लेग निवारक अँगीठी बनाई थी उसका मूल आधार यही नियम था कि अग्नि की ज्वाला बहुत प्रचण्ड रूप धारण कर सके क्यों कि प्रचण्ड अग्नि में ही मलिन वायु को गरम करके दूर भगाने की शक्ति अधिक रहती है। इस मन्त्र में, अग्नि सहित स्थानों में रहने का विधान होने से पुराने आर्य्यों में अग्नि को सदैव घर में जागृत रखने के उपाय किये थे।

अगले मन्त्र में जिस से पहिली समिधा अग्नि में दी जाती है बतलाया गया है कि अग्नि प्रचण्ड काष्ठ आदि द्वारा ही हो सकती है। और यह प्रचण्ड अग्नि पुत्र आदिकों के रोगों को तथा पशुओं के रोगों को और वीर्य्य के रोगों को दूर करने से उनकी वृद्धि का तथा वृष्टि द्वारा अन्न वृद्धि का कारण है। इसी मन्त्र के शेष भाग में यज्ञ की अग्नि, जो परोपकार का साधन है, उसके निमित्त आहुति देने तथा स्वार्थ परित्याग का विधान है जैसे यह कहते हुए कि यह आहुति अग्नि के लिये है मेरे

लिये नहीं। यदि हवन करने से वर्षा सब के घरों पर पड़ेगी तो उसके घर में भी जो "होता" है वर्षा ज़रूर पड़ेगी अर्थात् सर्वोपकार अथवा परोपकार के अन्दर अपना भला भी हो जाता है किन्तु स्थूलदर्शी मनुष्य औरों के उपकार के अन्तर्गत अपना उपकार न समझने के स्थान में केवल अपना उपकार के लिये ही प्रार्थना करता है जिस से अपना उपकार भी पूर्ण रीति से सिद्ध नहीं करसकता औरों का तो करना ही क्या है। सामाजिक उन्नति का यही एक नियम है कि सब का उपकार चाहे अपने उपकार का ध्यान न करे और ईश्वरीय नियमों से उस का उपकार भी हुए बिना नहीं रहेगा। इस उत्तम उपदेश को मन में दृढ़ करने के लिये इस प्रकार के वाक्य उच्चारण कराने का पुराने समय में अभ्यास डाला जाता था और तभी तो आर्य्य लोग परोपकारी कहलाते थे।

आगे के दो मन्त्रों से दूसरी आहुति देने का विधान है। वादी कह सकता है कि यदि एक मन्त्र से दूसरी आहुति दी जाती तो क्या हानि थी। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि कुछ विश्राम लेकर दूसरी आहुति डालने के लिये एक के स्थान में दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है ताकि पहिला काष्ठ जो डाला था वह भली प्रकार जल जाय और धूआँ न होने पावे। हम रोज़ देखते हैं कि जिस वक्त चूल्हे में पहिले अग्नि प्रदीप्त करने के लिये बत्ती प्रवेश की जाती है तो ज़रा ठहरना पड़ता है पूर्व इस के कि अधिक इंधन उन के निकट लाया जावे। उसी भाव को अर्थात् ज़रा थम कर दूसरी समिधा डालने के लिये दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है। इन दो मन्त्रों में समिधा के साथ घृत डालने का विधान है क्यों कि घृत अग्नि को प्रचण्ड करने का परम साधन है।

अगले एक मन्त्र से तीसरी समिधा अग्नि में छोड़ने का विधान है और उस मन्त्र में भी अग्नि को भली प्रकार प्रचण्ड करने की ताकीद है।

इन तीन समिधाओं के बाद पाँच आहुति घृत की अथवा मोहन-भोग आदि सामग्री की देने को लिखा है। इन पाँच घृत आहुतियों का उद्देश्य यह है कि अग्नि पूर्णरूप से जल उठे और वेदी में रक्खी हुई समिधाएँ भली प्रकार जलने लगें। इस के पीछे वेदी के चारों तरफ पानी छिड़कने अथवा बनी नालियों में पानी भरने का विधान है। प्रश्न हो

सकता है कि पहिले ही पानी क्यों न छिड़क लिया ? इस का उत्तर यह है कि यदि कुण्ड के अन्दर कोई जन्तु लकड़ियों से निकल कर छिप कर बैठ रहा है तो वह प्रचण्ड अग्नि होने पर कुण्ड से बाहर स्वाभाविक भागने की चेष्टा करेगा । कई बार देखने में भी आया है कि पाँच घृत आहुतियों के समाप्त होने से पहिले कोई न कोई जन्तु गर्मी से घबड़ा कर कुण्ड से बाहर को भाग निकलता है । जब वह भाग निकला अर्थात् जब पाँच आहुतियें पूर्ण हो गईं और अग्नि पूर्णरूप से जल उठी तो फिर वह अन्दर छिपा हुआ रह नहीं सकता । इस लिये पाँच घृत आहुतियों के पश्चात् अर्थात् जन्तु को भाग जाने के लिये लग भग पाँच मिनट का अवकाश दिया जाता है और फिर ज्यों ही कि जन्तु भाग जाय अथवा पँच घृत आहुति समाप्त हो जायँ तो उस को अथवा अन्य किसी जन्तु को अग्नि की तरफ आने से बचाने के लिये चारों तरफ से पानी छिड़कने वा पानी की छोटी सी नाली भर देने से उस को रोका जाता है । और चार मन्त्र जिन को पढ़ कर चारों तरफ़ जल छोड़ा जाता है उन पहिले तीनों में ईश्वर को अदिति, अनुमति और सरस्वति आदि नामों से प्रार्थना करते हुए अहिंसाव्रतधर्म करने का विधान है ।

और चौथे मन्त्र में सविता नाम परमात्मा का ले कर प्रार्थना की गई है कि तीन वस्तुएँ हम को यज्ञ की रक्षा के निमित्त सदा प्राप्त होती रहें । (१) यज्ञपति अर्थात् क्षत्रि आदि सुप्रबन्ध कर्त्ता लोग (२) दूसरे पवित्र बुद्धि अर्थात् छल कपट से रहित सत्य ज्ञान (३) वाणी की मधुरता अर्थात् प्रिय भाषण ।

आगे बतलाया है कि " आघारावाज्याहुति " उन आहुतियों को कहते हैं कि जो कुण्ड के उत्तर और दक्षिण भाग में दी जाती हैं ।

कुण्ड के मध्य में जो आहुतियाँ दी जाती हैं उन को " आज्यभाग्याहुति" कहते हैं ।

यह जो लिखा है कि स्रुवे को अँगूठा (पहिली अंगुली) मध्यमा (तीसरी अंगुली) अनामिका (चौथी, अंगुली) इन से पकड़ कर घृत आहुति दे यह इस लिये कि ऐसी दशा में जो चीज़ पकड़ी जायगी वह दृढ़ता से पकड़ी न रहेगी किन्तु ढीली अवस्था में होगी, ऐसी

पकड़ने को ढीला पकड़ना हम कह सकते हैं और इस लिये स्रुवे को इस प्रकार पकड़ने का विधान किया गया है कि घृत को अग्नि में छोड़ना है और छोड़ने में सरलता हो ।

उत्तर भाग में आहुति अग्नि तत्त्व की वृद्धि के लिये
दक्षिण „ „ „ जल की शुद्धि के लिये देने का विधान है । युरोप के विद्वान् मानते हैं कि उत्तर और पूर्व वेदों (Positive) अर्थात् अग्नि प्रधान दिशाएँ हैं और दक्षिण तथा पश्चिम ऐसी दिशाएँ हैं जो(Negative) अर्थात् अग्नि प्रधान नहीं हैं । उक्त आहुति में जो उत्तर दिशा को दी जाती है वह अग्नि के निमित्त कही गई है और दक्षिण भाग में जो आहुति दी जाती है उस को सोम अर्थात् जल के निमित्त कहा है । यह वर्णन वस्तुओं के स्वाभाविक गुणों का प्रकाशक है ।

फिर वेदी के मध्य में जो दो आहुतियाँ दी जाती हैं उन को प्रजापति और इन्द्र अर्थात् गृहस्थी और ऐश्वर्य्य के निमित्त कहा गया है । फिर व्याहृति की चार आहुतियों का वर्णन है । इन चारों में ईश्वर के अनेक नाम लेकर उस की महिमा प्रकाश करने के लिये इन चार आहुतियों का विधान है फिर स्विष्टकृत् नामी एक आहुति एक मन्त्र से देने का विधान है उस मन्त्र का तात्पर्य्य यह है कि हमारी कामनाएँ सिद्ध हों और भौतिक वा शारीरिक प्रायश्चित का उत्तम साधन अग्नि है ।

फिर प्राजापत्याहुति को मौन कर के देने का विधान है मौन करने का अभिप्राय यह है कि मन में उस मन्त्र पर विशेष विचार किया जाय । वास्तव में यह समाप्ति की आहुति है इस के आगे जो चार आज्याहुति और अष्ट आज्याहुति लिखी हैं वह विकल्प से कई संस्कारों में दी जाती हैं । पूर्व इसके कि विकल्प की आहुतियाँ जो कि मुख्य अङ्ग नहीं है आरम्भ हों प्रजापति की आहुति पर यज्ञ समाप्त समझा जाता है अर्थात् समाप्ति पर मौन हो कर आहुति देने का विधान है जिस का अभिप्राय यह है कि यज्ञ करने वाला यज्ञ का मुख्य उद्देश्य जो प्राजापत्य अर्थात् प्रजा के पालक माता, पिता, गुरु उपदेशक आदि तथा चारों वर्ण हैं उन की उन्नति का साधन यज्ञ है इस प्रकार समझें ।

आज्याहुति के चार मन्त्रों का तात्पर्य्य ।

(१) पहिले मन्त्र में अग्नि को दीर्घायु तथा बल का कारण बताया है और यह सब जानते हैं कि जब तक शरीर में अग्नि तत्त्व प्रधान रहता है तब तक ही यौवन अवस्था बनी रहती है जब अग्नि तत्त्व शरीर में मन्द हो जाता है तब वृद्ध अवस्था आरम्भ हो जाती है । इस मन्त्र में दुष्ट प्राणी अग्नि से दूर भागते हैं,इसका भी उपदेश मिलता है सिंह, सर्प, भालू, मच्छर आदि अग्नि की ज्वाला से निस्संदेह भागते हैं ।

(२) इस मन्त्र में अग्नि को शोधक बतलाया है और इसी बात को लेकर आज युरोप के विद्वान् प्लेग आदि से ग्रसित घरों में अग्नि के जलाने पर जोर दे रहे हैं । यह अग्नि का शुद्धि करने का गुण एक देशीय नहीं किन्तु सर्व देशीय है इस को दर्शाने के लिये मन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवें अति शूद्र अर्थात् सब मनुष्यों के रोगों का शमन अग्निहोत्र करता है । जो लोग कहते हैं कि वेद में शूद्रों के लिये यज्ञ अथवा संस्कार करने का विधान नहीं वह इस मन्त्र को भली प्रकार पढ़ें ।

(३) यहाँ अग्नि से परमेश्वर के गुणों का वर्णन है कि वह परमात्मा चेतन होने से शुभ कामना करने वाला है और सब का पतितपावन है उसीके नियमों पर चल कर एक नीच से नीच मनुष्य उन्नति को प्राप्त हो सकता है क्योंकि मन्त्रमें सयि शब्दके प्रयोग से पाया जाता है कि एक तुच्छ व्यक्ति उस की उपासना तथा यज्ञ आदि के करने से उन्नत हो सकता है ।

(४) चौथा मन्त्र भी ईश्वर प्रार्थना संबन्धी है और उस का अर्थ तथा व्याख्या पहिले आ चुकी है ।

अष्ट—आज्याहुतियों के मन्त्रों का तात्पर्य्य ।

(१) पहिले मन्त्र में राजदण्ड का महत्त्व दर्शाते हुए बतलाया गया है कि लोग किसी से द्वेष जो कि सर्व पापों का मूल है न करे ।

(२) दूसरे मन्त्र में प्रभात समय में अग्निहोत्र करने का विधान किया गया है और क्षत्रिय आदि राजपुरुषों को यज्ञ आदि की रक्षा के

लिये यज्ञ स्थल पर बुलाकर बिठाने का विधान है ताकि क्षत्रिय आदि शासकजनों के विद्यमान होने से कोई दुष्टजन किसी प्रकार का उपद्रव न कर सके।

(३) तीसरे मन्त्र में राजा आदि शासक पुरुषों से प्रत्यक्ष होकर बात चीत करने का विधान है। ताकि वह भली प्रकार यजमानों की इच्छानुसार सुप्रबन्ध कर सकें।

(४) चौथे मन्त्र में बतलाया है कि ईश्वर उपासना और अग्निहोत्र कर्म्म से आयु की वृद्धि होती है यह बात दर्शाई गई है।

(५) पाँचवें मन्त्र में बतलाया गया है कि यज्ञ आदि शुभ कर्म्मों के करने में अनेक प्रकार के विघ्न मनुष्यों को प्राप्त होते हैं और वर्तमान काल में उन विघ्नों का शमन सदाचारी विद्वान् ही कर सकते हैं। इस लिये कई प्रकार के विघ्नों को दूर करने के लिये सदाचारी विद्वानों का आश्रय लेना चाहिये।

(६) छठे मन्त्र में यज्ञ की अग्नि प्रायश्चित योग्यपुरुषों के दोषों का निवारक कहा गया है।

(७) सातवें मन्त्र में तीन अर्थात् अधम, मध्यम और उत्तम प्रकार के विघ्नों को बतलाते हुए उनके नाश करने का उपाय, ईश्वर की आज्ञा का पालन बतलाया गया है। वास्तव में पाप, दुख और विघ्न क्या है? सृष्टि नियम अथवा ईश्वरीय आज्ञा के अनुकूल न चलना। पाप पहिले बीजरूप से मन में उत्पन्न होता है फिर वाणीद्वारा शाखारूप में आता है और कायिक कर्मद्वारा फलरूपी अवस्था को प्राप्त होता है। मानसिक पाप अधम अवस्था में, वाणी के पाप मध्यम अवस्था में, और कायिक पाप उत्तम अवस्था में समझने चाहियें।

(८) आठवें मन्त्र में मनुष्य की उन्नति का रहस्य बतलाया गया है कि जो लोग परस्पर छल नहीं करते, एक दूसरे की सहायता करते और एक उद्देश्य को लक्ष में रखने वाले होते हैं वही यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म्मों को कर सकते हैं दूसरे नहीं कर सकते।

वामदेव्य गान।

(१) पहिले मन्त्र में दो प्रश्न हैं पहिला यह कि परमात्मा की अनुकूलता और रक्षा किस प्रकार मनुष्य को प्राप्त हो सकती है? उस

के उत्तर में कहा गया है कि श्रेष्ट बुद्धियुक्त बर्ताव से; अर्थात् बुद्धि, बल और स्वाश्रयावलम्बन महत्त्व दर्शाया गया है ।

(२) दूसरे मन्त्र में दिखलाया गया है कि शारीरिक बल का मुख्य साधन अन्न है ।

(३) तीसरे मन्त्र में परमात्मा को ही 'Savioier' अर्थात् एकमात्र रक्षक और तारक कहा गया है । किसी मनुष्य को रक्षक और तारक न मानने का इसमें उपदेश है । एक ईश्वर को रक्षक तथा तारक मानना यह सच्चा विश्वास आत्मिक बल का परम साधन है ।

इन तीन मन्त्रों में जो सामगायन संबन्धी हैं अक्षर गणित (Algebra) के मूल सिद्धान्तों का बोधन कराया गया है क्योंकि अक्षरों के ऊपर १, २, ३ और रा आदि चिन्ह किये गये हैं जैसे कि अक्षर गणित वा बीजगणित में देखते हैं ।

हवनयज्ञ सम्बन्धी प्रश्नोत्तर ।

रथ बनाना, गृह बनाना, सड़कें बनाना, विमान रचना आदि सब यज्ञ हैं, जैसा कि वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता है पर वह कर्म जिस के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक उन्नति सब प्रजा की मुख्य करके हो उस को हवनयज्ञ कहा गया है और उसका महत्त्व सब से अधिक है । इसका यह अर्थ नहीं है कि हवनयज्ञ करने पर रेल, तार, विमान, घर, सड़क आदि बनाने की ज़रूरत नहीं रहती किन्तु जैसे शरीर में नेत्र होने से कान, नाक हस्त, पग आदि सब की ज़रूरत रहती है पर नेत्रों को प्रधान इन्द्रिय कहने में आता है । इसी प्रकार "हवनयज्ञ" अनेक यज्ञों में प्रधान यज्ञ है । यह वायु शुद्धि और मानसिक प्रसन्नता का प्रबल साधन है ।

अंग्रेज़ी भाषा में जो हाईजिन शब्द है जिसके अर्थ स्वास्थ्यरक्षा के हैं, निःसन्देह वह हवन यजन का अपभ्रंश है । परन्तु प्रयोजन हाईजिन और हवनयज्ञ का मुख्य करके एक ही है अर्थात् स्वास्थ्यरक्षा ॥

हवन सम्बन्धी आशङ्काएँ और उन का उत्तर—

(प्रश्न) हवन करने वाले कहते हैंकि हवन वायु को शुद्ध करता और सुगन्ध फैलाता है हमारे विचार में यह बड़ी खेंच तान है । सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य सर्व मादक द्रव्यों की भाँति [illegible] क्षण में बल देती है

और पीछे निर्बलता उत्पन्न करती है । और सुगन्ध हवन से बहुत न्यून उत्पन्न होती है सबसे अधिक "कार्बनडायी अक्साईड" पैदा होती है जो हानिकारक है। एक समय था जब कि भारतवर्ष में जँगल अधिक और मनुष्य सँख्या बहुत न्यून थी उन दिनों घी और अन्य "हाईड्रोकार्बन" पदार्थों का जलाना वनस्पति की वृद्धि में कुछ थोड़ा सा साहाय्यकारी हो सकता था इस लिये कि इस से "कार्बनडाई अक्साईड" जो वनस्पति का वायु रूप भोजन है उत्पन्न होता था परन्तु आज कल दशा सर्वथा परिवर्त्तित हो गई है सच पूछो तो हमारे यहाँ जँगल नहीं रहे और देश में आबादी घनी हो गई जिस कारण वायु में अत्यन्त "कार्बनडाई अक्साईड" उपस्थित रहता है जो कि लोगों को सुस्त बना देता है। इन दिनों भारत वासियों को अधिक आक्सीजन और "ओज़ून" की आवश्यकता है न कि "कार्बनडाई अक्साईड" की ।

(उत्तर) वादी का जो यह कथन है कि सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य मादक द्रव्यों की नाईं उस क्षण में बल देती और पीछे निर्बलता उत्पन्न कर देती है इन शब्दों के अन्दर एक भ्रान्ति काम कर रही है। प्रतीत होता है कि प्रश्नकर्त्ता हवन अथवा जँगल की सुगन्धित वायु और अतर की सुगन्ध को एक ही अर्थों में ले रहे हैं । वास्तव में सब जानते हैं कि जँगल अथवा उद्यान की सुगन्धित वायु के सूंघने से मस्तिष्क को बल और मन को आनन्द मिलता है और पीछे भी कोई निर्बलता उत्पन्न नहीं होती । जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल वायु सेवन करने का स्वभाव रखते हैं वे इसके साक्षी हो सकते हैं । यह सच है कि फूल अथवा अतर को नाक के निकट लगा कर नित्य सूंघने से नज़ला या जुकाम पैदा हो जाता है और उसका कारण यह है कि मर्यादा से रहित बहुत सुगन्ध अन्दर चली जाती है और इस लिये कि बिना वायु संसर्ग के केवल फूल ही सूंघा जाता है। इसी लिये बुद्धिमान् और अनुभवी पुरुषों ने गुलदस्ते सूंघने की बजाय फूलों के कुण्ड कुछ दूरी पर रक्खे रहें और उस दूर से आने वाली हवा का श्वास लिया जाय जिस में उनकी सुगन्धि बस गई है । ऐसी हवा का सूंघना पीछे नज़ला या जुकाम नहीं करता । कई अंग्रेज़ अपनी कोठियों के इर्द गिर्द फूल दूर २ रखते हैं ताकि उनकी सुगन्धि अकेली मस्तिष्क में आने के स्थान में हवा से होकर आवे और

हवा में गुजरते समय हवा साथ मिल जाय ताकि वह तीव्रसुगन्ध ख़राबी पैदा न करे । अतर औषधि के तौर पर उपयोग में लाना दूर से अधिक लाभकारी हो सकता है । अतर और फूल को निकट से सूंघने से दोष उत्पन्न हो सकता है । यूक्लिप्टस् आईल को अकेला सूंघने के स्थान में एक दो बिन्दु रुमाल पर छिड़क कर रुमाल को कोट की पाकेट में दूर रक्खा जाता है ताकि थोड़ी २ सुगन्धि हवा के साथ मिल कर आती रहे और इससे डाक्टर लोग नज़ले और जुकाम को दूर करते हैं ।

जिस प्रकार हर एक वस्तु का योग्य व्यवहार सदैव लाभदायक हुआ करता है उसी प्रकार किसी सुगन्धि अथवा फूल या अतर के विषय में जानना चाहिये । अनुभव द्वारा प्रत्येक मनुष्य इस बात का निर्णय कर सकता है कि विधिपूर्वक अर्थात् घृत तथा सुगन्धित द्रव्योंद्वारा हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि कभी भी आरम्भ में सुख और पीछे दुःख नहीं देती । कौन कहता है कि मकान के दर्वाजे बन्द करके हवन करो जिस से तुम को केवल ऐसी सुगन्धि के सूँघने का अवसर मिले जिस में वायु मिलाहुआ नहीं । विधिपूर्वक हवन या तो खुली जगह में या दर्वाजे खोल कर किया जाता है और उस दशा में हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि के साथ वायु पर्य्याप्त मिल जाती है । कभी भी किसी मनुष्य के लिये वह सुगन्धित वायु जो हवन द्वारा उत्पन्न होता है आरम्भ में बल और अन्त में निर्बलता का कारण नहीं हुआ और घृत सुगन्धि की तीव्रता और उस तीव्रता के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को निःसंदेह शमन करता है ।

यह जो शङ्का की जाती है कि हवन करने से सुगन्धि बहुत थोड़ी उत्पन्न होती और सब से अधिक " कार्बनडाई अक्साईड " पैदा होता है इस के उत्तर में पहिले यह सोचना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता सुगन्धि की उत्पत्ति को तो स्वीकार करता है हम आगे चल के दिखायेंगे कि सुगन्धि भी कम नहीं किन्तु अधिक उत्पन्न होती है और प्रश्नकर्त्ता इस बात को सिद्ध करने के लिये कि " कार्बनडाई अक्साईड " अधिक उत्पन्न होता है किसी सायंस की पुस्तक का प्रमाण तो देते ही नहीं । क्या कोई भी किसी पदार्थ विज्ञान अथवा रसायन शास्त्र की पुस्तक का प्रमाण दे कर कह सकता है कि चन्दन, घी, खाँड, गिलोय, कपूर, केसर, अगर, तगर,

मुश्कवाला, जटामांसी, धूप, और यवादि को प्रदीप्त अग्नि में जलाने से कार्बनडाई अक्साईड की अधिक उत्पत्ति होती है ! और सुगन्धि उस की अपेक्षा में बहुत कम ! नासिका इन्द्रिय रखने वाला प्रत्येक मनुष्य हवन के स्थान में सुगन्धि प्रतीत करता है न कि दुर्गन्धि ।

हाँ यह ठीक है कि जलने की क्रिया से "कार्बनडाई अक्साईड" भी उत्पन्न हुआ करता है किन्तु इस का परिमाण भिन्न २ वस्तुओं के जलने से भिन्न प्रकार का होता है न कि एक जैसा । तम्बाकू, लाल मिर्च, गन्धक, कोयला, घी, और चन्दन, प्रत्येक वस्तु जल सकती है परन्तु प्रत्येक के जलने से समान परिमाण में "कार्बनडाई अक्साईड" का उत्पन्न होना कोई विद्वान् नहीं मान सकता ! यतः—हवन में सुगन्धित द्रव्य और डिसइनफेक्टेंट (रोगनाशक) वस्तुयें जलती हैं इसलिये आक्सीजन और ओज़ून (शुद्ध तथा सुगन्धि वायु) "कार्बनडाई अक्साईड" की अपेक्षा बहुत होता है । जो थोड़े से परिमाण में "कार्बनडाई अक्साईड" उत्पन्न होता है उस के प्रभाव को सुगन्धित तथा रोग नाशक पदार्थ नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं । बाग़ अथवा फुलवाड़ी के अन्दर जब हम सैर करते हैं तो वहाँ भी हवन भूमि की तरह आक्सीजन और ओज़ून बहुत होता है परन्तु उस का यह अर्थ नहीं कि "कार्बनडाई अक्साईड" का अत्यन्त अभाव होता है ।

सृष्टि में यह अद्भुत नियम है कि 'कार्बनडाई अक्साईड' (दुर्गन्धित वायु) यदि साधारण अथवा स्वच्छ वायु के साथ भी मिला हुआ हो तो भी बीमारी अथवा दोष का कारण नहीं होता किन्तु जब दुर्गन्धि अथवा सड़ाइन्द के साथ मिला हुआ हो तो उस समय दोष उत्पन्न करता है । हमारे कथन की पुष्टि "हाईजीन" नामक पुस्तक से जो महाशय जे० लैन० नाटर एम० ए० एम० डी० आर० एच० फर्थ० एफ० आर० सी० एस० जो लंडन के लॉगमैन ग्रीन एंड० को० ने प्रकाशित की है उस के पृष्ठ १३ पर लिखा है कि:—

" यद्यपि बहुत काल ऐसी कोठरियों में ठहरे रहना जिन में बहुत से आदमी हों अथवा खिड़कियाँ पर्य्याप्त न हों और जिनका वायु विशेष करके दोषयुक्त हो उसमें "कार्बोनिकएसिड" अधिक परिमाण में होता

है। और जिन स्थानों में शिर पीड़ा, मूर्च्छा, शिर चकराना आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं उनका कारण गरमी अथवा " कार्बनडाई अक्साईड" की उपस्थित ही नहीं है। यह दोष वास्तव में वायु के अन्दर आक्सीजन के न्यून हो जाने से और कुछ वायु में मानुषी अथवा पशु प्राणियों के मलिन परमाणुओं के कारण जो फेफड़े वा त्वचा द्वारा निकलते हैं, पैदा होते हैं "।

फिर इस बात को दिखाने के लिये कि मनुष्य अथवा पशुओं के मलिन परमाणुओं का परिणाम कहाँ तक हानि कारक होता है, डा० लैन नाटर उसी पृष्ठ पर लिखते हैं कि—

" उस वायु का दम लेने से जिसमें मलिन अणु मिल रहे हों भारीपन, आलस्य, शिरःपीडा, आदि रोग उत्पन्न होते हैं। पशुओं पर जो प्रयोग (तजुरबा) किये गये उन में वाष्य और कार्बोनिकडाई अक्साईड को वायु से पृथक् कर लिया गया केवल मलिन अणुओं को हवा में मिला हुआ रहने दिया तो प्रतीत हुआ कि यह मलिन अणुओं (मलिनता) से युक्त वायु बड़ा विषमय है यहाँ तक कि एक चूहा ४५ मिनट में मर गया "।

इत्यादि प्रमाणों से हम यह कह सकते हैं कि " कार्बनडाई अक्साईड " से भी बढ़कर हानिकारक मलिनता के अणु हुआ करते हैं और इन मलिन अणुओं को हलका करके दूर २ तक भगा देने में हवन करने अथवा अग्नि के जलाने के सिवाय और कोई उत्तम साधन है ही नहीं हवन के यह लाभ हैं:—

(१) हवन करने से सुगन्धि फैलती है जिसकी साक्षी प्रत्येक नासिका रखने वाला नीरोग मनुष्य दे सकता है और इस सुगन्धि के कारण वायु में आक्सीजन अथवा ओज़ून भर जाता है। (२) कार्बनडाई अक्साईड हवन करने से नाममात्र उत्पन्न होता है इस का प्रत्यक्ष-प्रमाण यह है कि हवन स्थान में कोई मनुष्य दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता और जो यह सुगन्धि के साथ मिला हुआ थोड़ा सा कार्बोनिकडाई अक्साईड (दुर्गन्धित वायु) होता है वह स्वयं किसी प्रकार के रोग का कारण नहीं होता जैसा कि हम ऊपर डा० नाटर के लेख से दिखा चुके हैं। (३) वे मलिन-अणु जो अत्यन्त विषमय होते हैं और जिन के कारण चूहे तक

भर जाते हैं उन को हलका और सूक्ष्म बना कर घरों से बाहर अन्तरिक्ष में पहुंचाने का साधन हवन की अग्नि है । प्रश्नकर्त्ता ने जो यह कहा था कि कार्बनडाई अक्साईड ही मनुष्यों को आलसी बना देता है सो यह बात सर्वांश में सत्य नहीं जैसा कि हाईजिन के प्रसिद्ध कर्त्ता के लेखानुसार मनुष्यों अथवा पशुओं के मलिन अणु आलस आदि अनेक रोगों के कारण होते हैं । यतः प्रश्नकर्त्ता कहते हैं कि आज कल लोगों को आक्सीजन और ओज़ून की ज़रूरत है अतः हम हाईजिन के प्रमाणों से दिखाना चाहते हैं कि आक्सीजन और ओज़ून क्या ? वहाँ मिलता है जहाँ सुगन्धि होती है अथवा और कहीं पर ?

" कार्बोनिक एसिड " को कभी २ कार्बनडाई अक्साईड कहते हैं इस के स्वाद और गन्ध में किञ्चित अम्लाश होती है और आक्सीजन के विरुद्ध इस का काम जीवन की क्रिया और अग्नि के जलाने को सहायता न देने का है " ।

" यह गैस (सूक्ष्म धूम) बहुत भारी होता है पानी में यह घुल जाती है स्थान और ऋतु के अनुसार यह सदैव वायु में उपस्थित रहती है । लंडन की गलियों में प्रतिसहस्त्र भाग पीछे में ३६ अंश के परिमाण में पाई जाती है और ग्रामीण स्थानों अथवा पहाड़ों की चोटियों पर प्रतिसहस्त्र ·३ अंश के परिमाण में उपस्थित रहती है " ।

यदि स्वच्छ वायु के १००० भाग हों तो उसमें ·४ भाग कार्बोनिक एसिड के सदैव पाये जायेंगे जब तक कार्बोनिक एसिड इस अवधि से बढ़ न जाय तब तक यह वायु को विषमय नहीं करता (देखो पृष्ठ ४० नाठरकृत हाईजिन) इस से यह बात प्रगट है कि हवन की सुगन्धि के साथ जो बहुत अल्प परिमाण में कार्बनडाई अक्साईड उत्पन्न होता है उसका होना ज़रूरी है और सदैव निर्मल वायु में भी प्रति सहस्त्र ·४ अंशके परिमाण में पाया ही जाता है ।

" आक्सीजन की एक बदली हुई दशा जो कि वायुमंडल में थोड़ी २ पाई जाती है उस का नाम (Oczone) 'ओज़ून' है । यह बड़ी उपयोगी गैस है और एक प्रकार की तीव्र आक्सीजन है निर्मल वायु में यह बहुत अधिक पाई जाती है और उन स्थलों में जहाँ पर मनुष्य अथवा पशुओं

की मलिनता के अणु बहुत वहाँ यह अत्यन्त न्यून पाई जाती है और जहाँ पर मनुष्य अथवा पशु बहुत बसे हुए हैं वहाँ भी होती है । जब कभी वायु में बिजली का प्रसार हो तब ओज़ून पैदा हो जाता है फिर यही ओज़ून साधारण आक्सीजन के रूप में अग्नि की क्रिया से बदल जाता है । ओज़ून की पहिचान उसका गन्ध है जो कि बहुत तीक्ष्ण होती है यहाँ तक कि यदि वायु के पच्चीसलाख भाग हों और उस में ओज़ून का भाग एक हो तो फिर भी उस की उपस्थिति प्रकट हो सकती है । जङ्गल का खुला वायु और समुद्र के वायु में उसकी तीव्रता विशेष कर के प्रतीत होती है " (देखो हाईजिन नाठर कृत पृष्ठ ३०) ।

इस से प्रकट होता है कि जिस को पश्चिमीय डाक्टरों की परिभाषा में ओज़ून कहा गया है उस को संस्कृत भाषा में सुगन्धित वायु अथवा शुद्ध प्राणवायु कहते हैं ।

इस लिये कि ओज़ून निर्मल वायु में मिली रहती है यथा जङ्गल और समुद्र के तट पर उस को उष्णता दी जाय तो यह ओज़ून आक्सीजन का रूप बन जाती है परन्तु उस की सुगन्धि यहाँ तक तीव्र होती है कि— २५००००० (पच्चीस लाख) भागों में एक भाग होने पर भी अपना प्रभाव प्रकट किये विना नहीं रहे गी ।

इसी कारण थोड़े भी सुगन्धित द्रव्यों का हवन किया हुआ सुगन्धि को सर्वत्र मकान में अथवा गली कूचों में फैला देता है और जिस प्रकार जङ्गल अथवा बाग़ की हवा से मस्तिष्क आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार उस स्थल की वायु से जहाँ हवन हो रहा अथवा हो चुका है मस्तिष्क आनन्द अनुभव करने लग जाता है अतएव हवन करने से निस्सन्देह ओज़ून और आक्सीजन की वृद्धि होती है ।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि (Carbonic Acid or Carbondi Oxide,) "कारबोनिक एसिड वा कारबनडाइ ओक्साईड" कहाँ २ पाया जाता है और उस की पहचान किस प्रकार हो सकती है ? सोडावाटर के कारखानों में जहाँ "कारबोनिक एसिड" बहुत तय्यार होता है वहाँ की वायु में प्रति सहस्र भाग में से १० भागों तक मिलता है । जब "कारबोनिक एसिड" सहस्र भागों में ७५ भाग पाया जावे तो उस समय यह

विषरूप हो जाता है और जब सहस्र भाग पीछे १५ भाग इस के वायु में हों तो शिरःपीड़ा, मूर्छा, शिर चकराना और श्वास उखड़ने की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। जब प्रति सहस्र १० भागों तक पाया जावे तब तो स्वास्थ्य पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं दिखाता। जब बहुत परिमाण में हो तब मूर्छा रोग उत्पन्न कर देता है। हम सब उस दुर्गन्धित वायु को जानते हैं जो कि बिना खिड़कियों के कमरों वा उन कोठरियों से आती है जिन में बहुत से मनुष्य तङ्ग बैठे हुए रहते हैं। जब यह "कारबोनिक एसिड" सहस्र भाग पीछे छः दशमलव के परिमाण में हो तो इस के होने का पता तक नहीं प्रतीत होता क्यों कि इतना परिमाण वायु के साथ मिल कर प्रतीत होने वाली दुर्गन्धि नहीं बनती और इतने परिमाण का हवा में होना आवश्यकीय है और यह परिमाण हानि कारक नहीं। जब कि "कार्बोनिक एसिड" इस परिमाण से बढ़ जाता है तब साथ के मलिन अणु जो हवा में होते हैं प्रतीत होने लगते हैं।" (देखो हाईजीन पृष्ठ १३)।

जो लोग कहा करते हैं कि हवन करने से "कार्बनडाई अक्साईड" बहुत पैदा होता है वह कभी भी किसी सायँसदाँ का प्रमाण अथवा युक्ति नहीं दे सकते। उपरोक्त लेख से यह प्रकट ही है कि जब 'कार्बोनिक एसिड' अथवा 'कार्बनडाई अक्साईड' मर्यादा से अधिक बढ़ जाता है तब मलिन अणु नासिकाद्वारा दुर्गन्धिके रूपमें प्रतीत होने लगते हैं और प्रति सहस्र अणु भाग (छः दशमलव) के परिमाण में उस का रहना कुछ भी हानि नहीं करता। यतः हवन करते समय अथवा उस के पश्चात् कोई भी मनुष्य कभी दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता इस लिये हम पूर्वोक्त पश्चिमीय प्रमाण द्वारा कह सकते हैं कि हवन करने से 'कार्बनडाई अक्साईड' कभी भी अधिक उत्पन्न नहीं होता जिस से कि हानि के भय की सम्भावना हो प्रत्युत बड़ी भारी सुगन्धि फैलती है जो कि सर्वथा रोग-निवारक है।

युरोपादि में जितने प्रकार आजकल वायु शुद्धि के प्रचलित हैं उन में प्रायः "फायर स्टोव्ज़" (अंगीठियों) का उपयोग किया जाता है यतः दूषित वायु उष्ण हो कर फैले और हलकी बन कर गृह की खिड़की अथवा भिन्न मार्गों से दूर निकल जावे और उस की जगह तात्कालिक ठंडी वायु

नीचे के द्वारों से आ सके यही नियम हवन के करने में पाया जाता है भेद इतना है कि स्टोव्ज़ (अंगीठी) की दशा में आकाश में सुगन्धि नहीं फैल सकती जब कि हवन की दशा में घर और वायुमण्डल सुगन्धि से महक उठता है ।

(प्रश्न) गन्धक जलाने तथा फेनाइल छिड़कने से रोग के त्रसरेणु तथा अणु नष्ट होते हैं इस लिये हवन के साथ इन का भी उपयोग किया जाय तो अधिक लाभ रहेगा ।

(उत्तर) गन्धक के जलाने अथवा फेनाइल के छिड़कने की आवश्यकता नहीं, हवन का करना ही पर्याप्त है । गन्धक जलाने से कई प्रकार के रोगोत्पादक अणु दूर हो सकते हैं किन्तु गन्धक की जो विलक्षण दुर्गन्धि है वह मस्तिष्क के लिये बहुत हानिकारक है और गन्धक का धूम लेने से खाँसी तथा छींकें आती हैं यह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभव करता है । जब कि वह दीवासलाई की सींक का धूआँ असावधानी से ले बैठता है। फेनाइल में अति दुर्गन्ध होती है और जहाँ पर यह छिड़का जाय वहाँ पर आने वाले मनुष्य को अवश्य शिर पीड़ा प्रतीत होने लगती है इस लिये इस के उपयोग की आवश्यकता नहीं । हवन की सामग्री गन्धक और फेनाइल से बढ़ कर गुणदायक होने पर किसी प्रकार के रोग को जो कि गन्धक या फेनाइल, खाँसी और शिर पीड़ा के रूप में करते हैं नहीं करती । जो लोग गरम कपड़ों में अथवा जेब में फेनाइल की गोलियाँ रखते हैं वह कभी भी उस की भयङ्कर दुर्गन्धि से बच नहीं सकते जेब में कपूर की टिकिया रखना सर्वोत्तम है । वस्त्रों में जटामांसी रखने से उस से बढ़ कर प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ।

हवन विषयक पश्चिमीय विद्वानों का साक्ष्य

हवन का करना एक ऐसी सायँस की बात है कि इस के विरुद्ध आज कल कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता । "दी इण्डियन रिव्यू" (The Indian Review) अप्रैल सन् १९१२ के अंक ३६५ पर जो 'होम की सफलता' विषयक अंग्रेज़ी में लेख प्रकाशित हुआ है उसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है जिससे निष्पक्ष पाठक स्वयं जान लेंगे कि पश्चिमीय विद्वानों का मत हवन के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है ।

पदार्थ-विज्ञान से होम की सफलता ।

"एक विद्वत्तापूर्ण 'अनिश्चितज्ञान और पदार्थ-विज्ञान' सम्बन्धी लेख जो ६ सितम्बर के पायोनियर में मुख्य भाग में निकला है उस में निम्नलिखित वचन हैं:—

यह सिद्धान्त कि सर्वजनीन स्थानों में अग्नि जलाने से जनविध्वंस कारक रोगशमन होते हैं ऐसा सिद्धान्त था कि जिस की नींव साधारण अनिश्चित अवलोकन पर थी । इस का सम्बन्ध मानवीय उन्नति सम्बन्धी एक बड़े प्रसिद्ध आविष्कार से था कि धूनी देने से प्राणियों के शारीरिक पदार्थ, विकार पाने से रुकते हैं । यह सर्वथा अकस्मात् आविष्कार हुआ और केवल हमारे समय में तथा पश्चिम में धैर्यशील प्रयोग से यह बात निश्चित हुई कि धूम का प्रभाव रोगनाशक है अथवा यों कहो कि लकड़ी के धूम में कुछ वस्तु है कि जो विकारोत्पादक जन्तुओं के लिये हानिकारक है । मि० ट्रिलिट् ने मालूम किया है कि अमुक परिमाण में खांड के शीघ्र जलने से 'फार्मिक एलडि हाईड' नामी वाष्प उत्पन्न होती है जो रोग के सूक्ष्म जन्तुओं के नाश के लिये प्रबल ओषधि है । यह रोगनाशक वस्तु जलाये जाने योग्य लकड़ी के धूम में होती है । १ सेर चीड़ की लकड़ी के धूम में फी सैकड़ा ३२ अंश, शाहबलूत की लकड़ी में फी सैकड़ा ३५ अंश, शुद्ध खांड में फी सैकड़ा ७७ अंश और साधारण धूप में फी सैकड़ा १८ अंश "एलडिहाइड" के होते हैं । महामारी के समय जो अग्नि प्रज्वलित की जाती है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शारीरिक तथा रासायनिक होता है । उस आध्यात्मिक प्रभाव के अतिरिक्त जो लोगों को निराशा, भय और आलस्य से बचने के लिये कुछ करना सिखाता है । अतः प्राचीन भारत वासियों का होमकरना निष्फल न था ।"

इति ।

अथ गर्भाधानविधिः ॥

मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधि पूर्वक अन्त्येष्टि*संस्कार करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उनमें से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

"गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन-गर्भाशय में स्थिर करना जिसमें वा जिससे होता है उसे गर्भाधान कहते हैं। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम संस्कृत बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्थापर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ सोलह वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष, ब्रह्मचर्ययुक्त अवश्य हो और इससे अधिकवय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है। क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता, और २५ पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता, इसमें यह प्रमाण है:—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ॥
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥
सुश्रुते, सूत्रस्थाने, अध्याय ३५ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ॥
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥
सुश्रुते, शारीरस्थाने, अ० १० ॥

---

* अन्त्येष्टि संस्कार, केवल स्थूल शरीर का होता है, अन्य सब स्थूल शरीर और लिंग शरीर दोनों के होते हैं अतः १६ संस्कार कथन का व्याघात नहीं ॥

देखिये सुश्रुतकार परम वैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे गर्भाधान का समय, न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, यह लिखते हैं। जितना सामर्थ्य पच्चीसवें २५ वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥१॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है ॥२॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उस के अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों, इस लिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥३॥

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहैं तो कन्या १६ सोलह वर्ष की और पुरुष २५ पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का २० बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चालीस वर्ष और उत्तम समय कन्या का २४ चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहैं वे १६ सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें यही सब सुधार का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवे ॥

ऋतुदान का कालः—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २ ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्य्ययः ॥ ५ ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥
मनुस्मृतौ अ० ३। श्लो० ४५–५०॥

अर्थ :—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में ही स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहै जो स्त्रीवृत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहितपुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती, वह पुरुष, जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ सोलह दिनों में पौर्णमासी अमावास्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस को छोड़ देवे इन में स्त्रीपुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ सोलह रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ सोलहवें दिन तक ऋतु समय है उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहै क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दितहैं और बाकी रहीं दश रात्रियां सो ऋतुदान में श्रेष्ठ हैं॥३॥ जिन को पुत्रकी इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं बारहवीं, चौदहवीं, और सोलहवीं, ये छः रात्रियां, ऋतुदान में उत्तमजानें परन्तु इनमें भी उत्तर २ श्रेष्ठ हैं और जिन को कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं, सातवीं, नवीं, और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें *इस से पुत्रार्थी युग्मरात्रियों में ऋतुदान देवे ॥ ४ ॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसकपुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ६ रात्रि हैं तथा अन्य ८ आठ रात्रि हैं उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥आश्व० अ० १ क० १३ सू० १॥

जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखाहै वैसा करना चाहिये अर्थात् शास्त्रोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ सोलहवें और २५ पच्चीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विहित है ॥

अथ गर्भाधान ॐ स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वं ॐस्नात्वा विरजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति"॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है—ऐसा ही गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी विधानहै। स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित हो उस दिन वा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उस से पूर्व दिन में (आदित्यं गर्भमिति) † इत्यादि मन्त्रों से सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व

---

* रात्रिगणना इसलिये की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ॥

† आगे ये मन्त्र इसी संस्कारमें लिखेहैं ।

सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी चाहिए, यहां पत्नी, पति के वामभाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख, वा पूर्व, दक्षिण, वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथासुख बैठें ॥

(१) ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याःपापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा-इदमग्नये-इदन्नमम१ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम॥ ५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं सूर्य्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सूर्य्याय-इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्य इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे

---

(१) सामवेद मन्त्र ब्रा०प्र० १ ख० ४ म०१-५। तथा पारस्कर गृ० सू० का० १ क० ११ सू० २। इन्हीं मन्त्रों की आवृत्ति की गई है, गदाधरभाष्य में इस स्थान पर कुछ इक्कवातें गर्भाधान विषय में लिखी हैं ॥

इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥१३॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय–इदन्न मम ॥१४॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयःस्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्य इदन्न मम ॥१५॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ।इदमग्नये इदन्न मम ॥१६॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या-तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम ॥१७॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय–इदन्न मम ॥१८॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय–इदन्न मम ॥१९॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवा-युचन्द्रसूर्येभ्य इदन्न मम ॥२०॥

इन वीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी * । और वीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवे इस के पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चाँदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाय पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में का शेष, आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे ॥

---

* इन वीस आहुति देते समय बधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कंध पर स्पर्श कर रक्खे ॥ अग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुती जुहोति "अग्ने प्रायश्चित्ते" इति चतुः। गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ५ सू० २। यहां "चतुः" शब्द वीप्सित है और मन्त्र भी वीप्सित है। एवं २० आहुतियाँ होजातीहैं। यह बात चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारके गोभि० गृ० सूत्रभाष्य में स्पष्ट है ॥

(१) ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय–इदन्न मम ॥ १॥ ओं अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पावकाय–इदन्न मम ॥२॥ ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये–इदन्न मम ॥३॥ ओं अदित्यै स्वाहा । इदमदित्यै–इदन्न मम ॥४॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये–इदन्न मम॥५॥ ओं (२) यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते–इदन्नमम ॥६

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवे तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवे तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवे ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥ २ ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० १० । सू०१८४ । म० १–३ ।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् (पार० का० १ क०११ सू० ९) पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥५॥ यजुर्वेदे अ० ३६ म०२४ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ॥ एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा॥६॥यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्॥एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥७॥यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥९॥ अथर्व० कां० ६ । सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहन भोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चौर घृताहुति देवे ॥

---

(१) कातीय श्रौतसूत्र ९ क०५ तथा पारस्करगृ० का०१ क०२ सू०७ हरिहरभाष्येऽप्येवम् ।

(२) इस का अर्थ पूर्व सामान्यप्रकरण में लिख दिया ।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम ॥३॥ ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से भी घृत की दो आहुति देनी ॥

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा। इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इदन्न मम ॥१॥ ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥२॥

इन आहुतियों के पश्चात् सामान्य प्रकरणोक्त "ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं०" इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे इन मंत्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए काँसेके उदक पात्र में इकट्ठा करते जावें जब आहुति हो चुके तब उन आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नखसे लेके शिर पर्य्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्धवस्त्र से शरीर पोंछ शुद्धवस्त्र धारणकरके कुण्ड के समीप आवे तब दोनों वधूवर कुण्डकी प्रदक्षिणा करके सूर्य्य का दर्शन कर, उस समय--

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमᳪंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १॥ य० अ० १३ म०४१ सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥ जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥३॥ चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥ सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः ॥६॥ ऋ० मं० १० अ० १२ सूक्त १५८ म० १—५ ॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू —

ओं (अमुक (१) गोत्रा, शुभदा, अमुकनाम्नी (२) अहं भो भवन्तमभिवादयामि)

ऐसा वाक्य बोल के अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उन को भी इसी प्रकार वन्दन करे इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात्

---

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के वामदेव्यगान करें तत्पश्चात् यथाशास्त्रोक्त (१) भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन करा के आदरपूर्वक सब को बिदा करें ॥

इस के पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी, गर्भाधान क्रिया का समय प्रहररात्री के गये पश्चात् प्रहररात्री रहे तक है। जब वीर्य के गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवदन, * मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रियको ऊपर संकोच और वीर्य को खेंच कर स्त्री गर्भाशय में स्थित करे तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफर, जावित्री, छोटी इलायची, डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें यदि स्त्रीपुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया, तो उस के दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक

---

(१) उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त, पथ्यूवर के आहार पर निर्भर है इस लिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आँबाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी "चन्दन,, मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) कुष्ट जटामांसी, मोरवेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) सिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब औषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठ के पात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मंथनी से मंथन करके उस में से मक्खन निकाल उस को ताय, घृत करके उसमें सुगंधित द्रव्य केशर कस्तूरी, जायफल इलायची,जावित्री,मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक २ मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से सामान्यप्रकरणोक्त आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और इसो संस्कार में पृ०६ में लिखे [विष्णु यों नि०]इत्यादि ७ सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहाशब्द उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उस के दिन में होम करके उसी अवशिष्ट घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें इस प्रकार गर्भ स्थापन करे तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के पात्रमें जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तमगुणयुक्त कन्या होवे "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः,, छान्दोग्योप० अ०७ ख० २६ म० २।

* अथ यामिच्छेत्—गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाप्य मुखेन मुखᳲ संधायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण रेतसा ते रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति। शतपथब्रा० का० १४ अ० ६ प्र०७ ब्रा० ४ क० १०॥

महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय (स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है) अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे *

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥२॥ दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० ५ सू० ७८ मं० ७ । ८ । ९ । ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायु रेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥१॥ यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगम ँ स्वाहा ॥२॥ यजुः० अ० ८ । मं० २८ । २९ ॥

पुमाँसौ मित्रावरुणौ पुमाँसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥१॥ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः । पुमाँसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥२॥ सा० वे० मन्त्र ब्रा० प्र० १ खं० ४ मं० ८—९ ।

आठवें पृष्ठ का नोट (१) का शेषांश—

१ अर्थात् शुद्ध आहार मद्यमांसादि रहित, घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अंतःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधि से प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल, नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होता जाय । जब रजस्वला होने के समय में १२—१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम संतान होवे, जैसे सब पदार्थों की उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे संतान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि और नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ॥

* यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायँ अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे, तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति दे के पूर्णाहुति देवे पुनः स्त्री के, भोजन छादन का सुनियम करे। कोई मादक, मद्य आदि रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्षचणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्चा आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता, अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं उर्द, मूंग तुअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे, उस में ऋतु २ के मसाले, गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और शरदी में केशर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करे। युक्तआहारविहार सदा किया करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन, स्त्री, विशेष किया करे जिस से सन्तान अतिबुद्धिमान् रोगरहित, शुभगुण कर्म स्वभाव वाला होवे ॥

इति गर्भाधानविधिः॥

और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा ले के इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में दे के उस से पति पूछे "किं पिबसि" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन वार बोल के उत्तर देवे और उस का प्राशन करे इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति, पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति—

ओ३म् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ॥

अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥ पार० कां०१ कं० १३सू० ३॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे, यह सूत्रकार का मत है ॥

(त्रायमाणा) प्रयोगकरने वालों की रक्षा करने वाली (सहमाना) दोषों को सहन करके भी नाश करने वाली और (सरस्वती) अपने कारणरूप जल से सम्बन्ध रखने वाली (इयम्) यह ओषधि, दोषों को जलानेवाली दवा है (अस्याः) इस (बृहत्याः) पुत्रादि देकर बढ़ाने वाली के (प्रभाव से) (अहंपुत्रः) मैं पुत्र (इव) जैसे (पितुः नाम) पिता के नामको (जग्रभम्) गहण कर चुका हूं, "वैसेही यह पैदा होने वाला पुत्र "मैं इसका पुत्र हूं" इस प्रकार मेरे नाम को प्रसिद्ध करे" ॥

[परिशिष्ट] पृ० ३ में "अथ गर्भाधानम्" इत्यादि पारस्कर गृ० सू० का वचन लिखा है परन्तु, हमें अनेक पार० गृ० सू० देखने परभी इसका पता नहीं लगा इस विषयमें आर्यसिद्धान्तों के मर्म्मज्ञ बहुश्रुतश्री नारायण दलपतभक्त छोटा उदयपुर ने लिखा है कि यह वचन मैंने अहमदाबाद की लाइब्रेरी में रक्खी हुई पार० गृ० सू० की पुस्तकमें देखा है, वह पुस्तक ज्येष्ठाराम मुकन्दजी मुम्बई ने पूर्व छपाई थी।

गर्भाधानसंस्कार

भाग पहला।

संस्कारविधि के गर्भाधान संस्कार में आये हुये मन्त्र तथा संस्कृत प्रमाणों का हिन्दी भाष्य और पाठभेद।

वयस्तु त्रिविधं—बाल्यं, मध्यं, वृद्धमिति। तत्रोनषोडशवर्षा बालाः। तेऽपि त्रिविधाः—क्षीरपाः, क्षीरान्नादा इति तेषु संवत्सरपराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः परतोऽन्नादा इति षोडशसप्तत्योरन्तरे मध्यं वयः। तस्य विकल्पो—वृद्धि, यौवनं, संपूर्णता, हानिरिति। तत्र आविंशतेर्वृद्धिः, आत्रिंशतो यौवनम्, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबलवीर्यसंपूर्णता, अत ऊर्द्ध्वमीषत्परिहाणिर्यावत्सप्ततिरिति। सप्ततेरूर्ध्वं क्षीयमाणधात्विन्द्रियबलवीर्योत्साहमहन्यहनि वलीपलितखालित्यजुष्टं कासश्वासप्रभृतिभिरभिभूयमानं सर्वक्रियासु असमर्थं जीर्णागारमिवाभिवृष्ट मवसीदन्तं वृद्धमाचक्षते। २६।

सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ३५।

अर्थ—अवस्था तीन प्रकार की होती है—१ बाल्य, २ मध्य, ३ वृद्ध। १६ वर्ष से कम अवस्था वाले-बाल-बाल्यअवस्थापन्न होते हैं, वे तीन प्रकार के हैं-१ क्षीरप २ क्षीरान्नाद, ३ अन्नाद। १ वर्ष तक-क्षीरप-दुग्धपीने वाले, २ वर्ष तक—क्षीरान्नाद—दुग्ध और अन्न का सेवन करने वाले और २ वर्ष बाद "अन्नाद" कहलाते हैं। १६ से ७० वर्ष तक मध्य अवस्था होती है। उस के ४ भेद हैं—१ वृद्धि, २ यौवन, ३ सम्पूर्णता, ४ हानि। उन में २० तक वृद्धि, ३० तक यौवन, ४० तक सब धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य की पूर्णता। इस के बाद ७० तक धात्वादि की कुछ २ हानि होने लगती है। ७० वर्ष के बाद-जिस के धात्वादि क्षीण होने लगते हैं और जो प्रतिदिन, वलियों से, बालों की सफेदी से, शिर की चांद से घिरजाता है, जिसे खांसी आदि दबा लेते हैं, जिस पर वर्षा हुई हो ऐसे पुराने स्थान की नाईं जो सब कामों में असमर्थ हो जाता है, उस दुःख पाने वाले को वैद्यलोग "वृद्ध" कहते हैं॥

(प्रायश्चित्ते) सर्वदोषनिवारक ! (अग्ने) हे अग्ने ! (त्वम्) तू (देवानाम) सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (प्रायश्चित्तिः असि) दोषों का नाशक है, अतः (नाथकामः) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं (ब्राह्मणः) ब्रह्म को मानने वाला (त्वा) तेरा (उपधावामि) सेवन करता हूं। और तू (अस्याः) इस वधू की (या, पापी, लक्ष्मी स्तनूः) जो बुरी शरीर की शोभा है (अस्याः, ताम्) इस की उस दुष्ट कान्ति को (अपजहि) दूर कर। यहाँ पारस्कर गृ. सू. में पाठ भेद है— "याऽस्यै पतिघ्नीतनू स्तामस्यै नाशय,, इत्यादि पाठ है। पारस्कारसंमत पाठ को भी मन्त्रों में रक्खा है पर कुछ २ भेद है ही। आगे के मन्त्रों में ईश्वर के नामों में ही भेद है, जैसे-वायु-व्यापक, सूर्य—सूर्य वत् प्रकाशमान, चन्द्र—प्रसन्न करने वाला। अतः सब मन्त्रों का अर्थ जाना जा सकता है। अव्याख्यातशब्दों का यह अर्थहै—

(१) अपुत्र्याः—बन्ध्यापन आदि दोष से दूषित।

(२) अपशव्याः—पशुओं के लिए अहितकारिणी।

(पृ०६में) पवमान, पावक, शुचि, ये तीन नाम ईश्वर और भौतिक अग्निके हैं, इन का अर्थ है- शुद्ध करनेवाला; शोधकशक्ति दोनों में है। अदिति शब्द का अर्थ— अखण्डित है।

हे वधु ! (विष्णुः) व्यापकदेव-ईश्वर (ते) तेरे (योनिम्) गर्भस्थान को (कल्पयतु) गर्भग्रहणके उपयुक्त करे (त्वष्टा) सर्वोत्पादक वही ईश्वर (रूपाणि) गर्भ के आकारों को (पिंशतु) प्रकाशित करे और (प्रजापतिः) संसार का रक्षक (आ सिञ्चतु) जीवनीशक्ति से सेचन करे और (धाता) धारण करने वाला वही देव (गर्भम्) गर्भ की (दधातु) पुष्टि करे ॥ १ ॥

हे (सिनीवालि !) चन्द्रशक्ते ! प्रसन्नकरनेवाली शक्ति से सम्पन्न वधु ! तू (गर्भम्) गर्भ को (धेहि) धारण कर। हे (सरस्वति !) सुन्दरज्ञान वाली ! तू (गर्भन्धेहि) गर्भ को धारण कर (पुष्करस्रजौ) आकाश से व्याप्त (अश्विनौ, देवौ) दिव्य सुंदर प्राण और अपानवायु (ते गर्भम्) तेरे गर्भ को, ईश्वर करे कि (आधत्ताम्) पोषणकरें२

(हिरण्ययी) सुवर्णवत् शुद्ध (अरणी) प्राप्त करने योग्य (अश्विना) प्राण और अपानवायु (यम्) जिस गर्भ को (निर्मन्थतः) शोधन करते हैं (तं, ते, गर्भम्) वैसे ही तेरे गर्भ का हम लोग (हवामहे) आह्वान करते हैं (दशमे, मासि, सूतवे) दशवें महीने में उत्पन्न होने के लिए ॥ ३ ॥

(इन्द्रियम्) गर्भोत्पत्ति का हेतु पुरुषेन्द्रिय (योनिं, प्रविशत्) योनि में प्रविष्ट होता हुआ (रेतः) वीर्य को पृथक् (वि, जहाति) छोड़ता है और (मूत्रम्) मूत्र को पृथक् छोड़ता हैं (इन दोनों का यद्यपि निकलने का द्वार एक है परन्तु इनका स्थान भिन्न२ है) (जरायुणा) जरायु-जेर से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भ (जन्मना) जन्म होने से (उल्वम्) गर्भ के ढकने वाले चमड़े को (जहाति) छोड़ता है (ऋतेन) बाह्य वायु के सम्बन्ध से, वही गर्भस्थ जीव (अन्धसः) आवरण को हटाकर (सत्यम्) यथार्थ (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (शुक्रम्) शुद्ध (इन्द्रस्य) जीवसम्बन्धी (इन्द्रियम्)

जीव से ही स्वकर्म द्वारा उत्पादित द्रव्य को और (इदम, मधु, पयो, ऽमृतम्) इस प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन, मिष्ट दुग्धरूप अमृत के तुल्य (इन्द्रियम्) चक्षुरादि को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

हे (सुसीमे !) शोभनकेशपद्धतिवाली वधु ! (यत, ते, हृदयम्) जो तेरा हृदय (दिवि, चन्द्रमसि, श्रितम्) आकाशस्थ चन्द्रमा में स्थित है अर्थात् आल्हादयुक्त है (तत् अहम् वेद) उस को मैं समझूँ और (तत, मां, विद्यात्) वह मन मुझे समझे अर्थात् हमतुम दोनों के मन परस्पर समझें और हम सौ वर्ष, देखें, जीवें, सुनें, बोले, दीन-कंगाल नहों और सौ वर्ष से ऊपर भी ये सब कार्य सम्पादन करें ॥ ५ ॥

हे वधु ! (यथा) जैसे (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) भूमि (भूताना-म्) पंचमहाभूतों के (गर्भम्) गर्भ को (आदधे) रखती है अर्थात् जैसे अपने बीच में शांति के साथ पंचमहाभूतों को पृथिवी रक्खे हुए है (ते, गर्भः) तेरा गर्भ भी (एवा) वैसे ही (ध्रियताम्) ईश्वर करे कि शांति से स्थित हो। (अनु, सूतुम्) अनुकूल-पूर्वक दशवें महीने उत्पन्न होने के लिये और (सवितवे) ऐश्वर्य के लिये ॥ ६ ॥

(यथा इयम्) जैसे यह पृथिवी, (मही) विस्तृत पृथिवी (इमान्, वनस्पतीन्) इन वनस्पतियों को वा वटादिको (दाधार) धारण करती है। वैसे ही० शेष पूर्ववत् ॥७॥

(यथा, इयम्) जैसे यह (पृथिवी, मही) विस्तृत पृथिवी (पर्वतान्, गिरीन्) सब प्रकार के पर्वतों को (दाधार) धारण करती है, वैसेही० शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

(यथा, इयम्) जैसे यह (पृथिवी, मही) विस्तृत पृथिवी (विष्ठितं, जगत् । वि-शेष रूप से स्थित जगत् को (दाधार) धारण करतीहै, वैसे ही शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

हे (गातुविदो देवाः) यज्ञ के जान ने वाले विद्वान् लोगो ! (अग्नेः) अग्नि स-म्बन्धी, जो (वषट् कृतम्) हवन किया है तथा (यत्, कर्मणः, अत्यरीरिचम्) जो कर्तव्य कर्म से अधिक मैं करचुका हूँ वह सब (अयासि) अविनश्वर हो।

हे ईश्वर ! (सहस्रस्य, प्रतिमाम्) हजारों मनुष्यों की उपमा वाले (विश्वरूपम्) जगत् का निरूपण करने वाले (आदित्यम्) रसों का ग्रहण करने वाले(गर्भम्) इस गर्भ को (पयसा) दुग्धादि रसों से (समङ्ग्धि) कान्तियुक्त करो। (हरसा) वीर्या-पहारक तेज से, इसको (परिवृङ्ग्धि) हटाओ (मा, अभिमंस्थाः) इसे पीड़ित मत करो (चीयमानः) प्रतिदिन बढने वाले इसको(शतायुषम्)सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण करने वाला (कृणुहि) करो ॥ १॥

हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से (सूर्यः) सूर्य (दिवः) द्युलोकस्थ बाधक से (नः) हमारी (पातु)रक्षाकरे और(अन्तरिक्षात)द्युलोकऔर पृथिवीलोकके बीचलोकके बाधक से (वातः) वायु, हमारी रक्षा करे। (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी में होने वालेशत्रु आदि से(नः) हमारी [अग्निः] अग्नि, रक्षा करे ॥२॥

[सवितः] सर्वोत्पादक ईश्वर! (जोष) हमसे प्रीतिकर ! (यस्य, ते) जो तेरा (हरः) तेज (शतं, सवान्) बहुत से यज्ञों के प्रति [अर्हति] योग्य होता है या सहायता देता है ! ऐसे तेजवाला तू (पतत्र्याः) शत्रु आदि से फेंकी गई

(दिद्युतः) बिजली वा बिजली के बने शस्त्र से (नः) हमारी [पाहि] रक्षा कर ॥३॥
(सविता: देवः) सर्वोत्पादक देव (नः) हमारे लिए (चक्षुः) प्रकाशक हो।
(उत) और (पर्वतः) पूर्ण परमात्मा देव (नः) हमारे लिए (चक्षुः) वस्तुओं का
प्रकाशक हो। (धाता) जगत् का धारण करने वाला परमात्मा (नः) हमारी (चक्षुः)
नेत्रेन्द्रिय को (दधातु) पोषण करे ॥४॥

हे ईश्वर ! (नः) हमारी (चक्षुषे) नेत्रेन्द्रिय के लिए (चक्षुः) प्रकाशक तेज को
(धेहि) दीजिए (तनूभ्यः) हमारे पुत्रों के लिये (विख्यै) प्रकाश के लिए (चक्षुः)
अपने प्रकाश को दीजिए, जिससे कि हमलोग (वि, इदम्, च २ सम्, पश्येम)
विविध प्रकार के इस जगत् को बार २ अच्छे प्रकार देखें ॥५॥

हे (सूर्य) सब के प्रेरक ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छी
तरह सब प्राणियों को देखने वाले (त्वा) तुम को (प्रतिपश्येम) प्रत्येक देखें और
आपकी कृपा से (नृचक्षसः) मनुष्यों से देखने योग्य सब पदार्थों को (वि,पश्येम)
विशेष रूप से देखें ॥६॥

हे वधु ! (यथा) जैसे (वातः) वायु (सर्वतः) सब तरफ से (पुष्करिणीम्)
नदी आदिको (समिङ्गयति) अच्छी तरह चलाता है। (एवा) ऐसेही (ते, गर्भः) तेरा
गर्भ (एजतु) हिलै चले फिरे और ईश्वर करे कि (दशमास्यः) दश मास का हो-
कर (निरैतु) बाहर निकले ॥१॥

हे (दशमास्य) दस मास तक रहने वाले गर्भस्थजीव ! (यथा, वातः) वायु जैसे स्व-
तंत्रता से (एजति) चलता है (यथा, वनम्) वन जैसे सेवनीय होता है (यथा, समुद्रः)
समुद्र जैसे गाम्भीर्य, धैर्य के साथ चलता है (एव) ऐसे ही (त्वम्) तू (जरायुणा,)
जरायु—गर्भ के ढकने वाले चमड़े के साथ (अवेहि) ईश्वर करे कि प्राप्त हो ॥२॥

हे परमात्मन् ! (दशमासान्) दश महीने तक (अधि, मातरि) माता के उदर में
(शशयानः) सोने वाला (कुमारः, जीवः) कुमार संज्ञा जिस की होगी ऐसा यह गर्भ
स्थ जीव (जीव) प्राण धारण करता हुवा (जीवन्त्या, अधि) जीती हुई अपनी माता में
(अक्षतः) विना किसी दुःख के अर्थात् सुखपूर्वक (निरैतु) बाहर निकले ॥३॥

[दशमास्यः] दश महीने तक उदर में रहने वाला यह [गर्भः] गर्भ [जरायुणा, सह]
जरायु के साथ ही [एजतु] क्रम २ से बढे [यथा] जैसे [अयं, वायुः] यह वायु
[एजति] चलता है और [यथा, समुद्रः, एजति] जैसे समुद्र शान्ति के साथ चलता है
[एव] ऐसे ही [अयम्] यह [दशमास्यः] दशमास तक रहने वाला गर्भ [जरा-
युणा, सह] जरायु के साथ ही [अस्रत्] उत्पन्न हो ॥१॥

हे सौभाग्यवति ! [यस्यै, ते] जिस तेरा [गर्भः] गर्भ [यज्ञियः] यज्ञ का
हितकारक है और [यस्यै] जिस तेरा [योनिः] गर्भाशय [हिरण्ययी] रोगरहित
शुद्ध है और [यस्य] जिस गर्भ के [अङ्गानि] अवयव [अह्रुता] अकुटिल—
सीधे हैं [तम्] उस गर्भ को [मात्रा] पूर्वोक्त लक्षणविशिष्ट उस गर्भमाता के
साथ ही [स्वाहा]धर्मयुक्त क्रिया से [सम्, अजीगमम्] ईश्वर करे कि मेल
रक्खूं ॥

हे सुभगे ! परमात्मा करेकि [मित्रावरुणौ] दिन और रात्रि तेरे लिए [पुमांसौ] उत्पादनशक्तिवाले हों और [उभा,अश्विनौ] दोनों प्राण और अपान वायु [पुमांसौ] उत्पादनशक्ति वाले हों। [च] और [अग्निः] अग्नि [च] और [वायुः] वायु, उत्पादकशक्तिसम्पन्न हों। [तव उदरे] तेरे पेट में [गर्भं] गर्भ भी [पुमान्] उत्पादकशक्ति वाला हो।

हे देवि ! [अग्निः] पूजनीय [इन्द्रः] ऐश्वर्य वाला [देवः] दिव्यगुणयुक्त [बृहस्पतिः] बड़े २ पदार्थों का पति-परमात्मा तेरे लिए [पुमान् ३] उत्पादक शक्ति वाला हो ३। और तू [पुमांसम् पुत्रम्] उत्पादकशक्तिसम्पन्न वा वीर्य्यवान् संतानको, ईश्वरकृपा से [विन्दस्व] प्राप्त हो। और [तम्, अनु] उस संतान के पश्चात् भी [पुमान्, जायताम्] वीर्यवान् संतान उत्पन्न हो॥

इति हिन्दीभाष्यम्।

भाग दूसरा

"संस्कारविधि" के गर्भाधान संस्कार के संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य की व्याख्या

१६ संस्कार कौन कौन से हैं ?

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० अ० २ श्लोक १६ ॥

इस श्लोक से निश्चय होता है कि पहिला संस्कार गर्भाधान और अन्तिम अंत्येष्टि है।

मनुस्मृतिमें संस्कारों का जो वर्णन है वह इस प्रकार है।

मनुस्मृति अध्याय		श्लोक		
”	२	”	२६ से २८ तक	गर्भाधान=१ ।
”	२	”	२९ से ३३ तक	जातकर्म २ । नामकरण ३
”	२	”	३४ से ३५ तक	निष्क्रमण ४ अन्नप्राशन ५ चूड़ा कर्म ६
”	२	”	३६ से ४०	उपनयन ७
”	४	”	९५	
”	२	”	६५	केशान्त ८
”	२	”	१०७ से १०८	समावर्तन ९
”	३	”	१-४	विवाह १० ।
”	४	”	१	
”	४	”	२५७	वानप्रस्थ ११
”	६	”	१	
”	६	”	३३	संन्यास १२
”	२	”	१६	अंत्येष्टि १३

उपरोक्त संस्कारों की गणना करने से पता लगता है कि मनुस्मृति में १३ संस्कार वर्णन किये गये हैं।

जिसको महर्षि मनुने केशान्त संस्कार का नाम दिया है उसीको महर्षि दयानंदजी संस्कारविधि में वेदारम्भ संस्कार का नाम देते हैं। यह बात कि केशांत संस्कार का

दूसरा नाम वेदारम्भ संस्कार है गोभिल गृह्यसूत्र, प्रपाठक ३ करिडका १ के पठन से निश्चय होताहै। गोभिल गृह्यसूत्र में इसी संस्कार को उपनयनके पीछे वर्णन किया है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के पढ़ने से निम्नलिखित ११ संस्कारों का वर्णन हम उस में पाते हैं

१	विवाह	२	गर्भालम्भन ।
३	पुंसवन	४	सीमन्तोन्नयन ।
५	जातकर्म	६	नामकरण ।
७	~~निष्क्रमण~~ चूड़ाकर्म	८	अन्नप्राशन ।
९	उपनयन	१०	समावर्तन ।
११	अन्त्येष्टिकर्म		

आश्वलायन गृह्यसूत्र में ~~नामकरण~~ वेदारम्भ, निष्क्रमण, वानप्रस्थ और संन्यास इन ४ संस्कारों का वर्णन नहीं है । यदि ये ४ संस्कार मनु जिनका मनुस्मृति में वर्णन है वे ११ में जोड़दिये जावें तो संस्कारों की गणना १५ होजाती है ।

~~मनुस्मृति में~~ पुंसवन और सीमन्तोन्नयन इन दो संस्कारों का वर्णन उक्त आश्वलायन गृह्यसूत्र में है। यदि मनु में यह दो संस्कार जोड़ दिये जावें तो संस्कारों की गणना १५ ठहरती है।

पारस्कर गृह्यसूत्र के पाठ से निम्नलिखित १२ संस्कारों का पता मिलता है—

१	विवाह	२	गर्भाधान
३	पुंसवन	४	सीमंतोन्नयन
५	जातकर्म	६	नामकरण
७	निष्क्रमण	८	अन्नप्राशन
९	चूड़ाकर्म	१०	उपनयन
११	केशान्त	१२	समावर्तन

आश्वलायन में जो ~~नामकरण~~ वेदारम्भ और निष्क्रमण संस्कारोंका वर्णन नहीं था वह इस पारस्कार में है, किन्तु वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि इन तीन संस्कारों का इस में वर्णन नहीं।यदि यह तीन संस्कार इसमें जोड़ दिये जावैंतो संस्कारों की गणना १५ हो जावेगी ॥

मनुष्यगणना—बाबत १९०१ खंड १८ अध्याय ३ पृष्ठ १३१ पर लिखा है कि सोलह संस्कारों में से निम्नलिखित १२ हिन्दू लोगों में प्रचलित हैं।

१	गर्भाधान	२	पुंसवन	३	सीमन्तो०
४	जातकर्म	५	नामकरण	६	सूर्याअवलोकन
७	अन्नप्राशन	८	चूड़ाकर्म	९	उपनयन
१०	समावर्तन	११	विवाह	१२	अंत्येष्टि

यदि इनमें वेदारम्भ, वानप्रस्थ, संन्यास और कर्णवेध की गणना हम करें तो १६ संस्कार होते हैं।

भिन्न२ पूर्वोक्त ग्रन्थों के दर्शाये हुये संस्कारों की गणना मिलाकर करने से हमें १५ संस्कारों के नाम तथा उनका वर्णन मिलता है। अब एक संस्कार जिसका नाम "संस्कारविधि में कर्णवेध दिया गया है। उसका वर्णन कहाँ मिलता है उस पर विचार करने पर हम १६ संस्कारों की गणना पूरी कर सकेंगे। सुश्रुत, सूत्रस्थान अध्याय १६ सूत्र १ में निम्नलिखित वचन आता है जिससे प्रतीत होता है कि कर्णवेध संस्कार भी होता था वह वचन यह है—

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते।
षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्ल-पक्षे प्रशस्तेषु ॥

श्रीमान् पण्डित शिवदत्तजी काव्यतीर्थ ने बनारस से हमारे इस संस्कार संबंधी प्रश्न के उत्तर में जो पत्र लिखा था उसमें वह लिखते हैं कि कात्यायन गृह्यसूत्र में कर्णवेध संस्कार का वर्णन वा विधान है। बड़ोदा के पुस्तकालय में यद्यपि उक्त सूत्रग्रन्थ है पर अभी तक हमको उसके देखने पढ़ने का अवसर नहीं मिला। यदि यहाँ वा अन्यत्र बम्बई आदि कहीं पर भी कात्यायन सूत्र हम देख सके तो उसके संबंध में विशेष लेख कर्णवेध संस्कार की व्याख्या में कर सकेंगे। इस समय इतना लिखना पर्याप्त है कि कर्णवेध संस्कार का विधान सुश्रुत में होने से निश्चय होता है कि सोलहवाँ संस्कार कर्णवेध ही होसक्ता है।

संस्कार विधि में "गृहाश्रम„ को एक संस्कार और अन्त्येष्टि संस्कार को अन्त्येष्टिकर्म लिखा गया है। संस्कारविधि के गर्भाधान संस्कार के अन्तर्गत मनु का यह वाक्य सब से पहिले दिया गया है कि—

निषेकादिश्मशानान्तः..........................

और इसकी व्याख्या में यह लिखा है कि "गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टिपर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक १६ प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं „

फिर अन्त्येष्टिकर्मविधि के अध्याय में यह लिखा है कि:—

"अंत्येष्टिकर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अंत का संस्कार है, जिसके आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है, इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग भी कहते हैं „

इत्यादि वचनों के पढ़ने या विचार करने से प्रतीत होता है कि महर्षि दयानंदजी अंत्येष्टि कर्म को अंत्येष्टिसंस्कार लिख रहे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि संस्कारविधि में "गृहाश्रम संस्कार„ को संस्कारों की गणना से हटाकर अंत्येष्टि कर्म को संस्कारों में प्रविष्ट करना चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि गृहाश्रम कर्म के स्थान में संस्कार का शब्द शीर्षक क्यों लिखा गया हमारे विचार में किसी संशोधक की सहजदृष्टि के कारण।

इसके अतिरिक्त जो गृहाश्रमसंस्कार के नाम से लेख "संस्कारविधि में" है वह संस्कार के रूपमें नहीं यह और भी प्रबलयुक्ति है। इस लिये संस्कारविधि से किसी संस्कार को उड़ाने वा कम करने की जरूरत नहीं,केवल गृहाश्रम संस्कार के स्थानमें गृहाश्रमकर्म और अंत्येष्टि कर्मविधिके स्थान में "अन्त्येष्टि संस्कार यह,, शब्द लिखनेकी जरूरत है। सूत्रग्रन्थों में अन्त्येष्टि को संस्कार, मनुके समान मानाहै और यह हो नहीं सक्ता कि महर्षि दयानन्द की संस्कारविधि उसको संस्कार न गिने जब गिनेगी तो गृहाश्रमसंस्कार गृहाश्रमकर्म के रूप में विवाह के अन्तर्गत हो जावेगा जैसा कि कई सूत्रग्रंथों में भी विवाह के अंतर्गत है। अब हम दर्शाना चाहते हैं कि संस्कारविधि में जो १६ संस्कार, संस्कार के रूप में लिखे गये हैं उनका वर्णन सूत्रग्रंथों, मनु तथा सुश्रुत ग्रंथ में मिलता है।

१	गर्भाधान	९	कर्णवेध
२	पुंसवन	१०	उपनयन
३	सीमंतोन्नयन	११	वेदारम्भ
४	जातकर्म	१२	समावर्तन
५	नामकरण	१३	विवाह
६	निष्क्रमण	१४	वानप्रस्थ
७	अन्नप्राशन	१५	संन्यास
८	चूड़ाकर्म	१६	अंत्येष्टि

कई लोग कहते हैं कि शूद्रों को षोड़श संस्कार नहीं करने चाहियें; यह उनकी भूल है। जब शूद्र विवाह और सन्तानोत्पत्ति की योग्यता वा चेष्टा बराबर रखते हैं तो फिर उनको संस्कार जो मर्यादा पूर्वक उत्तम बनाने की क्रिया है उसके करने से रोकना सृष्टिनियम के विरुद्ध है। न केवल यही परंच वे सब संस्कारों को द्विजों के समान करसक्ते हैं इसलिये यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है कि शूद्र संस्कारों के अधिकारी नहीं। यदि गिलोय राजा का विष हरती है तो शूद्र के लिये वह कभी विष नहीं हो सक्ती। इसी प्रकार यदि होम करने,उत्तम लाभकारी नियमों पर चलने से द्विज अपनी तथा अपनी सन्तति की भावी उन्नति का बीज बो सकते हैं तो शूद्रों के लिये यह क्रियायें हानिकारक नहीं हो सक्तीं। यह बात शास्त्रों के अनेक प्रमाणों से

पुरुषार्थ प्रकाश में शास्त्रीय प्रमाण

आर्यसमाज के भूषण श्री स्वामी विश्वेश्वरानंद जी सरस्वती तथा श्री स्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती ने अपनी जगद्विख्यात पुस्तक "पुरुषार्थप्रकाश" नामीमें अति उत्तमतासे सिद्ध कर दिया है कि स्त्री और शूद्रोंको वेदाध्ययन और यज्ञकरने के पूर्ण अधिकार हैं। हम नहीं चाहते कि उन प्रमाणों को हम यहाँ उद्धृत करें किंतु जिज्ञासुओं को उचित है कि वह एक बार पुरुषार्थ-

प्रकाश में इस विषय को पढ़ जावें और फिर उन को हमारे साथ यह बात मुक्तकण्ठ से स्वीकार करनी पड़ेगी कि स्त्री तथा शूद्रों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार है अथवा यों कहो कि कन्याओं को चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदारम्भ समावर्तन का पुत्रों के समान और शूद्रों को षोड़श संस्कारों के करने का द्विजों के समान पूर्ण अधिकार है। भला, अन्त्येष्टिकर्म सोलह संस्कारों में से एक संस्कार है वा नहीं? मानना पड़ेगा कि यह एक संस्कार है, फिर जब शूद्र तक अपने मुर्दे जलाते हैं तो इस से सिद्ध हुआ कि वह एक वैदिकसंस्कार के अधिकारी हैं। जब एक के हैं तो शेष संस्कारों के क्यों नहीं!

इन संस्कारों के अवशेष चिन्ह

निस्सन्देह एकही समय था जब कि भारतवर्षमें ब्राह्मणों से लेकर शूद्र तक षोड़श संस्कारों के अधिकारी थे और अबभी भारतीय आर्य जाति की पहिचान कई संस्कारों से ही हो सक्ती है। रेल में जब कोई नया मुसाफिर आ बैठे और वह हिन्दू आर्य्य है वा मुसल्मान! इस बात के जानने के लिये पहिले उस के वेष की पड़ताल की जाती है। यदि उसके वस्त्रों के नाम संस्कृत वा किसी संस्कृतजन्यभाषा के हों तो वह आर्य समझा जाता है। इसके पीछे उसके मूंछ आदि बाह्यचिन्ह देखे जाते हैं। फिर उसका नाम पूछा जाता है जो यदि संस्कृत या संस्कृतजन्यभाषा का हो तो उसे आर्य कहा जाता है, पश्चात् उसके शिर पर जटा वा चोटी देखी जाती है। तत्पश्चात् यज्ञोपवीत देखने से निश्चय किया जाता है। जब ये व्यक्तिगत चिन्ह देख लिये जाते हैं तो फिर सामाजिक चिन्हों की पड़ताल की जाती है अर्थात् उसका विवाह संस्कृत वा संस्कृतजन्यभाषा के शब्दों को पढ़कर किया जाता है वा कैसे! और वह माता पिता के गोत्रों को छोड़ कर होता है या नहीं। फिर पूछा जाता है कि उनके समाज में मृतक शरीरों को जलाया जाता है या नहीं।

विद्वान् लोग कहते हैं कि हिन्दुमण्डल के मनुष्यको परखने के लिये इस समय में उक्त चिन्ह काम देते हैं।

ब्राह्मण से लेकर अति शूद्र तक "चोटी" जो मुण्डनसंस्कारका एक विकल्पित रूप से चिन्ह है, सब रखते हैं और ब्रह्मचारी वानप्रस्थी, तथा स्त्रियाँ जटा वा केशधारी होती हैं—अर्थात् शिरपर थोड़े बाल (चोटी) वा बहुत बाल [केश वा जटा] एक व्यक्तिगत चिन्ह का काम दे रही हैं जोकि मुण्डनसंस्कार का एक चिन्ह है। नाम में संस्कृत वा संस्कृतजन्य शब्दों का होना "नामकरण" सँस्कार के खण्डरात समझना चाहिये। यज्ञोपवीत का होना उपनयन वा वेदारम्भसंस्कार का चिन्ह है। स्वगोत्र में विवाह न करना, फिर कर फेरेलेना वा प्रतिज्ञा करना विवाहसंस्कार के चिन्हों के दर्शक हैं। मुर्दे का जलाना अन्त्येष्टि संस्कार है। यह चिन्ह भिन्न भिन्न संस्कारों के रूप का स्मरण करा रहे हैं कि एक समय था जब कि शूद्र तक भी वैदिक संस्कार करतेथे। शूद्र और अतिशूद्र भी स्वगोत्र में विवाह नहीं करता यह बातें क्या सिद्ध नहीं कररहीं हैं कि वैदिक विवाह के नियमों पर अतिशूद्र भी एकअंश में चल रहे हैं। भंगी तक चोटी

रखते हैं जोकि मुण्डनसंस्कार का एक विकल्परूप से चिन्ह है। कैई मुसल्मान वा ईसाई भाई आज एक हिन्दू [आर्य्य] का यह लक्षण करते हैं कि हिन्दू वह है जिसके शिर पर चोटी वा केश हों अथवा जो अपने मुर्दों को जलाएँ। यह बातें सिद्ध कर रही हैं कि आज तक भी संस्कार किसी न किसी रूप में हिन्दू वा आर्य्य सन्तान कर रही है। यह सत्य है कि वह उसके मर्म को भूल गई, किन्तु रूप तो रह गया। गुजरात और महाराष्ट्र के द्विजों में बहुत संस्कार पाये जाते हैं और इन्हों देशों के भंगी चमार आदि अछूत हिन्दुओं तक में सीमन्तोन्नयन संस्कार मिलता है जिसको वे श्रीमन्तसंस्कार कहते हैं। और पञ्जाब देश में पुंसवन को 'छोटी रीतें चढ़ना, और सीमन्तोन्नयन को 'वड़ी रीतें चढ़ना, बोलते हैं।

इस समय कैई संस्कार तो किये जाते हैं परन्तु उनका प्रयोजन क्या था! इस बात को वर्तमान प्रजा भूल गई है। इस से संस्कार करते हुये भी लोगों की हानि हो रही है। इसी हानि को रोकने और संस्कारों की प्रथा को सुधारने के लिये श्रीमहर्षि स्वामी दयानन्द जी का शुभ उद्योग था।

मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव आर्य्य प्रजा पर पड़ा

जब मुसलमान शासक भारत में अपनी सभ्यता लाये तो उस सभ्यता में कितनी ही बातें ऐसी थीं कि जो सृष्टि नियम से विरुद्ध होने से मुसल्मान और हिन्दू सबको हानिकारक थीं। उनकी सभ्यता में स्त्रियों का पवित्र रहने के लिये मुख ढांपने की ज़रूरत थी। गर्भाधान आदि नियमों का वर्णन करना उनकी सभ्यता में 'फ़हश' अर्थात् अश्लील गिनागया! यही कारण है कि आजतक भारतवर्ष में विवाह और गर्भाधान सम्बन्धी नियमों के दर्शक पुस्तकें माननीय विद्वानों की ओर से नहीं लिखे जाते, और इन गुप्त विषयों का कोई शिक्षण नहीं दिया जाता।

महर्षि दयानन्द जी का लेख और पाश्चात्य विद्वानों की अनुकूलता

अंग्रेज़ी शुभराज्य अपने साथ अपनी सभ्यता लाया। ऋषिवर स्वामि दयानन्द ने पुराने ऋषियों के वचन उद्धृत कर मनुष्य शरीर के सब अंगों का कर्ता ईश्वर को बतलाते हुए इनकी पवित्रता का बोधन कराया। और इन अंगों की विद्या में शरम, लज्जा और अश्लीलता के झूठे ढकोसलों को उड़ाकर घूंघट की कुरीति का खण्डन करते हुये गर्भाधान-आदि के नियम शास्त्रीयरीत्यनुसार दिखाये। वह आर्य लोग जिनको पुराने ऋषियों पर अथवा वेदादि सत्यशास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धा थी उन्होंने इन बातों को ज्ञानमयी समझ कर उपयोगी समझा और आज वे लोग षोडश संस्कारों के किये जाने पर ज़ोर दे रहे हैं। परन्तु जिन पुरुषों के मानसिक संस्कारों में मुसल्मानी सभ्यता के अशुभ विचार स्त्रीजाति संबन्धी घुस रहे थे उन्होंने इन बातों को अश्लील समझा।

इन मनमाने यावनी विचारों को विशेष धक्का पाश्चात्य सभ्यताने भी लगाया। Sexual Physiology [गर्भाधान विद्या] सम्बन्धी अनेक पुस्तकें इंगलिश भाषा में आये दिन निकलती हैं जिनमें उपस्थेन्द्रिय, योनि, गर्भाशय का स्वरूप उनके कर्म, उद्देश्य और रोग आदि से बचने का विद्यामय उपदेश होता है। शर्म, लज्जा और अश्लीलपन का कृत्रिम भ्रम इन विद्यामय अंग्रेज़ी पुस्तकोंने दूर भगा दिया है। जगह

जगह मैडिकल पुस्तक नर नारियों के हाथों में देखी जारही हैं जो उनको गुह्येन्द्रियों की योग्य चेष्टाओं और उद्देश्यों से अंग्रेज़ी भाषा में विज्ञ कर रही हैं । इन गुह्येन्द्रिय सम्बन्धी विद्या की बातों को सर्वसाधारण के कानों तक पहुँचानेके लिये पादरी सिलवेनस स्टाल डी० डी० ने यह किताबें अंग्रेज़ी में लिखी हैं—(१) एक छोटे लड़के को क्या जानना चाहिये ! [२] एक युवा पुरुष को क्या जानना चाहिये ! [३] एक युवपति को क्या जानना चाहिये !

इसके अतिरिक्त मिसेसमेरी वुड एलन एम० डी० ने इसी प्रकार की ३ पुस्तकें कन्याओं तथा स्त्रियों के हितार्थ लिखी हैं । यह पश्चिमी उद्योग दर्शा रहे हैं कि जिस मार्ग पर हमारे ऋषि चले थे वह मार्ग सत्य और सर्वहितकारी था और अब उसी मार्ग पर यूरुप के विद्वान् और डाक्टर आगये हैं अर्थात् इन्होंने मान लिया है कि बाल्यावस्था में भी बच्चे को इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिये जिससे वह क्रीडा द्वारा मैथुन वा हस्त मैथुन न करने पावे और लड़की रजस्वला होने के दिनों में स्नान न करे और उसको फोड़े का रुधिर समझ करउसपर पानी न डाले किन्तु एकांत में शान्त रहे । इन अनेक अंग्रेज़ी पुस्तकों ने युवा स्त्री और पुरुषों को विवाह का उद्देश्य, गर्भाधानविधि, गर्भरक्षा आदि अनेक बातों का स्पष्ट उपदेश सुनाया । आओ हम उन के वचनों में इस भाव को दर्शावें :—

हैरीगेज़ साहब सरीखे विद्वान् अपनी पुस्तक में * लिखते हैं कि "गर्भाधान सम्बन्धी विज्ञान की आजकल बड़ी आवश्यकता है,,

स्टाल साहब लिखते हैं * कि?'मुझे निश्चय है कि कोई विचारशील मनुष्य, मनुष्य शरीर की विद्या उपलब्ध करते समय ज़रूर विचार करेगा कि गुप्त इन्द्रियाँ परम पवित्र इन्द्रियाँ हैं । जिसे ईश्वर ने बनाया है उसे हमें आदर दृष्टि से देखना चाहिये ।

यूरुप के स्टॉल आदि अनेक महाशयों को अनेक पुस्तकों के पाठ से जो सिद्धान्त प्राप्त होते हैं वह हमारे ऋषियों ने बालकों के लिये वेदारम्भसंस्कार में उपदेशरूप से तथा विवाह और गर्भाधान संस्कारों में लिखदिये हैं । यदि कोई मनुष्य यज्ञोपवीत वेदारम्भ, विवाह और गर्भाधानइन चार संस्कारों के मर्म को समझले तो उसे इतना ज्ञान होजावे जो यूरुप के कई डाक्टरों की अनेक पुस्तकों में लिखा गया है ।

अश्लीलपन क्या है ?

माता, पिता, अध्यापक तथा शास्त्रों का छोटे वा बड़े बालकों, युवा पुरुषों वा युवा स्त्रियों को उनके गुप्त अंगों सम्बन्धी नाना विधि उपदेश करना कभी अश्लीलता नहीं हो सकती, क्योंकि उस उपदेश का आशय उनको विज्ञ बनाने का है । जब यथार्थ ज्ञान के स्थान में गुप्तांगों का प्रयोजन ऐसा बताया जावे जो वास्तविक न हो और जिससे केवल विषयासक्ति की वृद्धि हो और सन्तान-उत्पत्ति की हानि, तब उस ज्ञान वा उपदेश को अश्लील कह सकते हैं । गर्भाधान संस्कार के मन्त्रों में इन इन्द्रियों के प्रयोजन और सन्तान उत्पत्ति के नियम दर्शाये हैं विषयासक्ति की वृद्धि वा सन्तानोत्पत्ति की हानि करने के लिये इस संस्कार में एक अक्षर भी नहीं तो फिर जो लोग इस

---

*How to live for ever. By Horry Gaze. What a yong oy ought
*to know? By Sylvanus Stale, D.D.

संस्कार को अश्लील कहते हैं वह अश्लीलशब्द का अर्थ ही नहीं जानते। उर्दू वा संस्कृत के ऐसे काव्य ग्रन्थ वा अंग्रेज़ी के नाविल जो विषयवासना की वृद्धि का प्रबल कारण हैं वे सब ग्रन्थ अवश्य अश्लील कहे जासकते हैं।

विद्वान् लोग बैठने,सोने, खाने, व्यायाम करने, स्नान करने आदि सब शारीरिक कार्य्यों को विधिपूर्वक करने की आज्ञा देते हैं और उन की विधि अनेक पुस्तकों में पाई जाती है। जब शरीर के सब अंगों के लिये काम करने की विधि होती है तो गुप्त इन्द्रियों द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की भी विधि होनी चाहिए जिस के न जानने से या तो दम्पती अपने शरीर की हानि कर बैठते हैं वा उनके सन्तति उत्पन्न नहीं होती परमपवित्र वेदों में वह मन्त्र आते हैं जोकि पवित्रऋषियों ने गृहाश्रम में उपयुक्त किये हैं। *

गर्भाधान के ज्ञान की आवश्यकता

इंगलेंड के प्रसिद्ध प्रामाणिक डाक्टर एक्टनकी पुस्तक से लेकर अमेरीका के ट्रॉल और कॉवन आदि अनेक लेखकों के पुस्तकों से यह बात भली प्रकार सिद्ध होतीहै कि जैसा प्रो० मेअर बी० एस,सी का सिद्धान्तहै कि मनुष्योत्पत्तिकी विधि सम्बन्धी प्रश्न सदैव उपस्थित होते हैं और यदि इनके उत्तर बुद्धिमान् और सदाचारी मनुष्योंके द्वारानहीं दियेजायंगे तो मलिन आत्मा और अर्धशिक्षित मनुष्यों से युवा पुरुष उत्तर पायंगे ही। श्रृंगीऋषि से भोले भाले बच्चे आये दिन पैदा होते ही रहते हैं और सच पूछो तो बाल्यावस्था अबोधपन या भोलेपन का दूसरा नाम है। बच्चे सृष्टि में पशु पक्षियों को गर्भाधान करते देख लेते हैं और यही प्रश्न उनके मन में जम जाते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति कैसे होती है। अमेरीका के तत्ववेत्ता तथा योगी एण्ड्रो जैक्सन डेविस ने एक सच्ची कथा लिखी है कि जब एक गृह में एक बचा पैदा हुआ तो घर वालों ने बड़े बच्चे के इस प्रश्न को कि छोटा बच्चा कहां से आया झूट बोलकर टालना चाहा। डेविस साहिब उपदेश करते हैं कि बच्चों को कभी झूटे उत्तरों से नहीं टालना चाहिये और जो प्रश्न आज कई वर्षों के स्वाभाविक उठते हैं वा उठने वाले हैं उन के उत्तर युवा पुरुषों को यथार्थ उनकी योग्यतानुसार मिलने चाहियें।

पादरी स्टॉल साहिब अपनी एक पुस्तक में ऐसी कहानी लिखते हैं कि जिस में एक बड़े बच्चे ने जब कि उन के घर बच्चा पैदा हुआ पूछा था कि यह नया बच्चा कहां से आया और अन्त को उसकी मातामही की ओर से सच्चा, सरल और संक्षिप्त उत्तर दियागया। जो उत्तर डेविस वा स्टॉल ने लिखा है उन से भी बढ़ कर सरल परन्तु वैसे ही गूढ़ आशयका ऋषि सदैव आशीर्वादरूप से इस मन्त्र द्वारा देते रहे हैं:—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि, हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्। निरुक्त ३। ४।

---

* देखो—विवाहसंस्कार—पृष्ठ १३८ [संस्कार विधि]।

अर्थात्-हे बालक ! अङ्गसे उत्पन्न होने वाले रज, वीर्य और कामनासे तेरे श-रीर का आरम्भ हुआ, तू माता पिता का परम प्यारा है इसलिये सौ वर्षतक जी ।

हमने अपने जीवन में एक कालिज के विद्यार्थी को जो सदाचारी और बुद्धिमान् था, एकदिन उसको यह प्रश्न करते पाया कि उसने आज तक किसी भी पुस्तक में गर्भाधान की विधि नहीं पढ़ी । उसका विवाह होगया था इसलिए उस को बड़ी चिन्ता होरही थी कि वह क्या करे ! उसको यथार्थ उत्तर हमने दिया और पढ़ने योग्य पुस्तकें बताईं । एक विद्वान् पुरुष की पुत्री को जब उसे पहिली ऋतु आई, यह ज्ञान नहीं था कि यह क्याहै और उसने फोड़े का लोहू समझ कर बर्फ का ठन्डा पानी उसपर डाला और थोड़े ही पीछे उस को एक भयंकर रोग होगया और वर्षों के इलाज से उसकी जान बची ।

स्कूलों और कालिजों के अन्दर साठ प्रति सैकड़ा पुरुष ऐसे निकलते हैं कि जो केवल अज्ञान वश हो दूसरे दुराचारी लड़कों की नक़ल करते हुये हस्तमैथुन जैसी कु-चेष्टा में ग्रस्त होजाते हैं और जब कुछ वर्ष पीछे उसका भयंकर परिणाम उनके शरीर पर किसी न किसी रूप में प्रकट होने लगता है तो सदैव उनके मुखसे यही निकलता है कि हाय ! हम को किसीने गुप्तेन्द्रियों के सम्बन्ध में कुछ भी यथार्थ उपदेश किया होता ! वह ऋषि धन्यवाद के योग्य थे जो यज्ञोपवीत के साथ अविधि मैथुन की व्याख्या करके उससे बचने का उपदेश विद्यार्थियों को देते थे, और योरोप के वह विद्वान् जो बच्चों और सन्तानों को उनकी गुप्तेन्द्रिय का ज्ञान देकर बचाते हैं ध-न्यवाद के योग्य हैं । यदि युवा पुरुष और स्त्रियों को भयंकर रोगों से बचाना है तो गर्भाधान संस्कार के एक एक शब्द की व्याख्या करके समझाओ नहीं तो भारत स-न्तान की भारी हानि होगी ।

एक पुरुष सेव लाकर घड़े में रख छोड़ता है और बच्चों को भूख लगनेपर नहीं देता जब बच्चे चोरी करके एक सेव खाजाते हैं तो उनको मार २ कर अधमुआ कर देता है। वास्तव में दोष बाप का है न कि बच्चों का जो जिस का आहार है उसे आहार को यदि विधि पूर्वक खाने न दोगे तो वह अवश्य कहीं से चोरी करके खायेगा। आज हमारे देश में मनु, चरक और संस्कारविधि आदि पुस्तकों का प्रचार नहीं रहा इसी लिये लोग मनमानी बातें सुनाकर लोगों के गर्भाधान आदि विषयक प्रश्नों को शान्त करना चाहते हैं और प्रायः लाभ के स्थान में हानि अधिक कर बैठते हैं—

युवा पुरुष वा स्त्री के हृदय में जब उनके शरीर में युवावस्था के चिह्न प्रकट होनेलगते हैं तो अपनी गुप्तेन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता प्रतीति होने लगती है परन्तु ऋषि मुनियों की वाणी और विद्वानों की व्याख्याद्वारा उपदेश न पाकर वह मलीन आत्माओं की बातचीत से विषय वासना वर्द्धक ज्ञान पाकर अन्त को अपनी हानि कर बैठते हैं जापान में माता पिता और गुरू का कर्तव्य होता है कि उचित अवस्था में अपने बच्चों को शिष्यों को इस प्रकार का उपदेश करदें कि जिससे बड़े होकर उनको यह कहनेका अवसर न मिले कि हमको किसी ने अमुक विषय का ज्ञान नहीं दिया था ।

पाँच वर्ष के बच्चे को रेखागणित सिखाना वैसाही निरर्थक है जैसे कि छोटे

अवस्थानुसार शिक्षण वा ज्ञान की आवश्यकता

बच्चों को विवाह वा गर्भाधान संस्कार की बातें वा नियम बतलाना निरर्थक है। छोटे बच्चों को ऐसी बातें जिससे उनके ब्रह्मचर्य की हानि होनी सम्भव हो स्पष्ट रीति से बताना अत्यन्त आवश्यक है अपने उपदेश और उस से बढ़कर अपने आचरण द्वारा सन्तान और शिष्यों को ब्रह्मचर्य का महत्व दिखलाना चाहिये ताकि वह पूर्ण ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होसकें।

जिस युवा लड़के और युवा लड़की का विवाह करना है उसको विवाह से तीन मास पूर्व विवाह सँस्कार, गर्भाधान सँस्कार और गृहाश्रम सम्बन्धी अनेक गून्थों का अभ्यास कराना चाहिए।

पाठभेद

गर्भाधान सँस्कार में 'चतस्रोऽवस्था ....',इत्यादि जो लेख सुश्रुत का लिखा है वह पाठभेद से सूत्र स्थान अध्याय ३५ में जैसा मिलताहै वैसा हिन्दी भाष्य के पृष्ठ में पूर्व लिख आए हैं।

गर्भाधान संस्कार

संस्कार विधि में लिखा है कि जिस रात्रि में गर्भाधान करना हो उससे पूर्व दिन में अर्थात् यदि आज रात्रि में गर्भाधान करना हो तो आज दिन प्रातःकाल हवन का आरम्भ करे। और पत्नी पति के वाम भाग में बैठे। योरोप आदि देशों में भी पत्नी पति के वाम भाग में बैठा करती है। यह मर्य्यादा प्राचीन समय से चली आरही है। योरोप आदि देशों के विद्वान् मुक्त कण्ठ से इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्त्री कोमल अंगों वाली होने से पुरुष से जो दृढ़ अंगो वाला है, रक्षणीय होनी चाहिए। परन्तु इसी भावके बोधक पत्नी और पति शब्द हैं—पत्नी अर्थात् रक्षा के योग्य है और पति अर्थात् जो रक्षा करे। शरीर के अन्दर सबसे कोमल और प्रेम का आधार भूत अंग हृदय है जो वामभाग में ईश्वर ने रखा है। इसीलिए ऋषियोंने पत्निको कोमल तथा प्रेम मूर्ति समझ कर ही हृदय समान वामभाग में बिठाया है।

हवन करते समय बीस विशेष मन्त्रों से जो इस संस्कार सम्बन्धी हैं आहुति देने का विधान है।

मनुजी ने * लिखा है कि इस संस्कार के होम से रजवीर्य के दोष निवृत्त होते हैं। और वास्तव में हवन में यह शक्ति है कि वह पुरुष, और स्त्री को शक्तिमान करसके।

(१) पहिले मन्त्र में अग्नितत्व को शरीर में धारण करनेसे रोग दूर होते हैं यह कहा गया है। वास्तव में अग्नि को शरीर में धारण करने के लिये शरीर द्वारा क्रिया कर्म पुरुषार्थ वा श्रम करने की ज़रूरत है। जो लोग शरीर से श्रम करते हैं, परन्तु मनकी प्रसन्नता पूर्वक नहीं करते उनका श्रम भली प्रकार अग्नि को शरीर में स्थापन नहीं

* मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २७।

कर सका—उनका श्रम क़ैदियों वा वेगारियों के श्रम के समान पूरा लाभ नहीं देगा । इस शरीर में अग्नि तत्व के स्थिर करने के लिए सदैव मनकी प्रसन्नता पूर्वक श्रम रूपी क्रिया करते रहना चाहिये । चलने फिरने, व्यायाम करने क़वायद करने कुश्ती लड़ने, चक्की पीसने, पानी खेंचने, झाड़ू लगाने, बर्तन मांजने, आटा गूंदने, रोटी पकाने, हल चलाने, कल चलाने इत्यादि से शरीर को श्रम मिलता है । इस श्रम से शरीर में अग्नि तत्व उत्पन्न होता रहता है और जब इस प्रकार अग्नितत्व शरीर में दृढ़ होता है तो प्रस्वेद (पसीना) आने लगता है । पसीने द्वारा रुधिर का मल रूपी विष निकलता है जिसके रुक जाने से ज्वर आदि अनेक रोग हो जाते हैं । इसलिये शरीर में अग्नितत्व को स्थापन करने के लिये ज़रूरी है कि पुरुष स्त्री सदैव मन की प्रसन्नता पूर्वक श्रम करें और मर्यादा का उल्लंघन न करें ।

इस श्रम के फल मुख्य करके यह हैं (१) प्रस्वेद द्वारा रोगों के कारण विषैले तत्वों का निर्मूल होना (२) श्रम करने वालों की भूख रूपी जठराग्नि बढ़ती रहेगी । जो श्रम नहीं करते उनकी जठराग्नि अथवा भूख मन्द होजाती है और लाखों रुपयों से भी कोई इस भूख वा जठराग्नि को नहीं खरीद सका (३) श्रम करने वालों को ही निद्रा भली प्रकार आती है । जिससे शरीर तथा मनके अनेक रोग नष्ट होते हैं । (४) श्रम करने वाले पुरुषार्थी लोग ही बलवान् होते हैं, बिना श्रम किये बल प्राप्ति हो नहीं सक्ती (५) धन प्राप्ति का एक मात्र साधन निस्सन्देह पुरुषार्थ वा श्रम ही है । (६) जो स्त्रियां श्रम को प्रसन्नता और मर्य्यादा पूर्वक करने वाली हैं उनको प्रसव में बहुत कष्ट नहीं होता, और उनकी सन्तान भी दीर्घायु को प्राप्त करती है । (७) श्रम करने वाली स्त्रियों की कान्ति सदैव मनोहर होती है और सुन्दर कान्ति आरोग्यता का चिन्ह है

जहाँ न्यून श्रम से पूरा लाभ नहीं होता वहां अधिकश्रम से भी हानि होती है । इस लिये श्रम सदैव मर्य्यादा पूर्वककरना चाहिये । थकावटश्रम की सीमा है । जो थक जाता है और फिरभी श्रम करता है वह मर्य्यादाका उल्लंघन करताहै इसलिये थकजाने से कुछ पूर्व हीश्रम छोड़ देना हित है । (एडवाइस टू एवाइफ़) (भार्याहित) * नाम के ग्रन्थ में उसके कर्ता वधुओं को चला फिरी और घरका धंधा करने का उत्तम उपदेश देते हैं ।

गर्भाधान संस्कार करने से पूर्व अग्नि में आहुति देनेके साथ साथ दम्पती मानों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सदैव श्रमी होंगे और इस भारी सचाई का इस प्रकार पाठ करतेहैं कि "हे सर्व दोष निवारक अग्ने ! तू सब देवताओं अर्थात् दिव्य गुण युक्त पदार्थों में

* भार्याहित—यह हिन्दी में (एडवाइस टू एवाइफ़) का अनुवादहै । नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मिल सका है प्रत्येक युवती के पढ़ने योग्यहै ।

दोषों का नाशक है। अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं (ईश्वर को मानने वाला) तेरा सेवन करता हूं। तू इस वधू को शरीर की बुरी शोभा वा उसकी दुष्ट कान्ति को दूर कर"

इससे पाया जाता है कि पुरुष कह रहा है कि मैं अग्नि सेवन करूंगा ताकि मैं धन कमाने के योग्य हो सकूं और मेरी स्त्री सुन्दर कान्ति को प्राप्त होती रहे।

यहां तक तो हम आभ्यन्तरिक अग्नि के विषय में लिख चुके अब बाह्य अग्निसेवन अग्निहोत्र का करना तथा अग्नि जला कर उत्तम भोजन बनाना इत्यादि है।

(२) दूसरे मन्त्र में वायु को सम्बोधन करके वायु सेवन का महत्व दर्शाया है। आज योरोप के सर्व डाक्टर कहते हुये नहीं थकते कि प्रातःकाल में खुली वायु सेवन करने वालों के अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। शिर पीड़ा और छाती के अनेक रोगों को शुद्धवायु दूर करती है। मल मूत्र, धूम, मिट्टी के तेल (गैसलिट) और पत्थर के कोयला आदि के जलने से वायु मलिन होती है। शुद्ध वायु सेवनार्थ खुले जंगलों और बागों में जाना चाहिये। घरों में चोक ज़रूर हों। कोठे दालान आदि में पवन आने जाने के लिए द्वार पुष्कल हों और दोकाल गृह में हवन करने से दुर्गन्धित वायु को निकाल शुद्धवायु का प्रवेश कराते रहना चाहिए। सोने के कमरों में गैस वा मिट्टी के तेल के लैम्प न जलने चाहियें किन्तु सरसों वा अरंडी के तेल के दीपक अधिक उत्तम हैं।

वायु सेवन भी दोप्रकार से हो सक्ताहै—एक आभ्यन्तरिक और दूसरा बाह्य। आभ्यन्तरिक वायु सेवन के लिये श्रम करना शिर और शरीर पर तेल लगाना, दूधमलाई घृत, बादाम आदि स्निग्ध पदार्थ विधि पूर्वक खाते हैं। बाह्यवायु सेवन के लिये उन स्थानों में रहना, सोना, फिरना जहां का वायु शुद्ध हो, जरूरी हैं। चौमासे की वायु में मकान की दूसरी वा तीसरी छत पर सोना जहां की वायुतल के सम्बन्ध से हीन हो, हितकर हैं।

(३) चन्द्र का प्रभाव समुद्र जल पर उस के वृद्धि के रूप में प्रत्यक्ष देखने में आता है। औषधियों में रसकी वृद्धि का एक हेतु चन्द्र है। कई फूल और औषधियां शुक्ल पक्ष में चन्द्र समान बढ़ती हैं। स्त्रीके गर्भाशय और रुधिर पर भी चन्द्र का प्रभाव पड़ता है। युवा लड़कियों को प्रायः शुक्ल पक्ष में मासिक धर्म होना आरम्भ होता है। पुरुष स्त्री के शरीर में रक्त आदि धातुओं की वृद्धि तथा शुद्धि में चन्द्र ज्योति सहायता देती है। यह तो चन्द्र के उस प्रभाव का वर्णन है जो शरीर के अन्दर पड़ता है। गिलोय आदि औषधियां सेवन करने, फल खाने तथा दूध पीने से रुधिर की शुद्धि और वृद्धि होती है। बाह्यरीति से चन्द्र सेवन उसकी प्रभा में कुछ समय चलने, फिरने, खेलने गाने, आदि द्वारा हो सक्ताहै जिस से मन को शान्ति आती और रात्रि का सृष्टि सौन्दर्य दृष्टि पड़ता है। चान्द की ज्योति में कभी पढ़ना, सीना वा टिकटिकी लगा कर उस की ओर विशेष देखना नहीं चाहिये। इस से आँखों की शक्ति न्यून हो जाती है पुराने समय में वर्ष पौर्णमास के दिन विशेष हवन करके शारीरिक लोहु आदि की शुद्धि की

जाती थी और अनध्याय रखने से चन्द्र की ज्योति का प्रभाव समुद्र आदि पर देखने वा सैर करने से मन की शान्ति बढ़ाते थे।

(४) सूर्य में ऊष्णता तथा तेज दो पदार्थ हैं। वायु के स्पर्श आदि द्वारा मनुष्य सदैव सूर्य की ऊष्णता का सेवन करता ही रहता है। और इस ऊष्णता से शरीर के अंग बल वा दृढ़ता को प्राप्त होते हैं और प्रस्वेद आता है।

सूर्य सेवन की दूसरी विधि उसके तेज को अपने शरीर पर प्रातः काल में लेने की है। छाती पर इस के तेज के लगने से बहुत लाभ होता है। पीठ सेकने से वात रोग नाश होते हैं। प्रातः काल जब सूर्य उदय हो रहाहो उस समय खुली वायु में भ्रमण करने से उसका मन्द मन्द तेज शरीर पर लगता और मुख की कान्ति को उज्वल करता है। सूर्य के तेज में ओढ़ने पहनने के वस्त्र और खाट आदि रखने से विषैले जन्तु भाग जाते हैं। जिन गृहों में सूर्य का तेज दिन के पहले और पिछले पहर में पड़ता है उन में भारी रोग नहीं होने पाते।

जर्मनी के डक्टर लूई कूनी लिखते हैं कि यदि किसी वृक्ष या वस्त्र की छाया में सूर्य का प्रकाश शरीर पर लिया जावे तो अनेक रोग दूर होसक्ते हैं। इसी लिये प्राचीन ऋषियों ने एक धोती वा एक कम्बल ओढ़कर प्रातःकाल पूर्व को मुंह कर के गायत्री जपने का विधान किया है। स्नान के पीछे जो सूर्य का तेज छाती पर पड़ता है उससे क्षयरोग नहीं होने पाता इसी लिए पारसी लोग सूर्य दर्शन को पुण्य समझते हैं। चन्द्र और सूर्य को कभी आँख ऊपर उठाकर विशेष नहीं देखना चाहिए नहीं तो नेत्र रोग हो जावेंगे।

(५) पांचवें मन्त्र में फिर अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य का बोधन कराया है और इन से स्त्रियों के लिए शरीर की बुरी कान्ति को दूर करने और सुन्दर कान्तिलाने का उपदेश है। आज योरोप में करोड़ों रुपये साबुन खरीदने में लगाए जाते हैं और नाना विधि से स्त्रियें सुन्दर बनने के लिये शृंगार करती हैं, किन्तु इन मन्त्रों में अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के सेवन को सुन्दरता का मूल कारण बतलाया गया है।

प्रसंग से होने वाले रोगों की शान्ति

छठे, सातवें, आठवें, नवें, और दशवें, मन्त्रों में यह बतलाया गयाहै कि यदि स्त्रीको कोई रोग होगा तो उससेउस की होने वाली सन्तानकी जहां हानि होगी वहाँ उसके पति को भी रोग लग जानेका भयहै। इसलिए गर्भाधान करने से पूर्व स्त्री को अग्नि, वायु, सूर्य, और चन्द्र सेवन से अपने शरीर से रोगों को निर्मूल करना चाहिये जिससे उसके रोग पति की हानि का कारण न बनें।

बन्ध्यापन के रोकने की अपूर्व विधि

ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह और पन्द्रहवें वाक्यों में बतलाया गया है कि जो कन्या अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र का सेवन करती रहेगी उस तपस्विनी कन्या को कभी बन्ध्यापन का दोष नहीं लगेगा। सब डाक्टर लोग मानते हैं कि मिहनत मजूरी करने वाले लोगों में बन्ध्या स्त्री बहुत कम होती हैं। और विचार दृष्टि से देखें तो पता लगेगा कि मजूर स्त्रियां दिनभर खुली वायु, और खुले सूरज में काम करती हैं—चन्द्र की ज्योति में उठती बैठती हैं अमीर घरों में जहां स्त्रियें तपस्विनी नहीं होती, वहां आपको अधिक बन्ध्या मिलेंगी। इसी लिये जन श्रुति है कि 'जहां धन है वहां सन्तान नहीं और जहां सन्तान है वहां धन नहीं।,

सोलह से २० तक के मन्त्रों में अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के सेवन से जहाँ पुरुष धन कमाने के योग्य हो सक्ता है वहां स्त्री, पशुपालन के योग्य होसक्ती है क्योंकि जो स्त्री अग्नि आदि का सेवन करने वाली है वह सब प्रकार से निरोग और बलवान् होगी। पुरुषार्थी स्त्री ही पशुओं का हित कर सक्ती है आलस्य युक्त और रोगी स्त्री नहीं।

दूध, मलाई, घृत से बढ़कर कोई पौष्टिक पदार्थ आजतक इस सँसार में नहीं है और न होगा। कौडलिवर आयल से बढ़कर लाभ मलाई पहुंचाती है। जिनको दूध, मलाई और घृत अन्न के साथ साथ मिलता है उनको मानो पूर्ण आहार मिल रहा है। दूध, घृत को देने वाले गौ, भैंस आदि पशु ही हैं। पुराने समय में गौ से बढ़कर विवाह संस्कार के समय और कोई दाज (दहेज वा (डौरी) नहीं समझी जाती थी। लड़की अपने माता पिता के घर से गाय लेकर आती थी। उस गाय को वह भले प्रकार तभी पालन करने योग्य हो सक्ती थी जब वह अग्नि आदि सेवन करके पुरुषार्थी हो, इसी लिये इन अन्त के पांच वाक्यों में बताया है कि जो स्त्री अग्नि आदि का सेवन करने वाली है वही पशुओं का हित करके दूध, मलाई घृत आदि अमृत पदार्थों की प्राप्ति कर सक्ती है। आज बड़े अमीर घरों की स्त्रियां स्वयँ रोगी रहने के कारण गौ, आदि पशुओं को रख ही नहीं सक्ती और बाज़ार का अपवित्र दूध पान करके उल्टी रोगों की वृद्धि करती हैं। चाय, तमाकू, शराब आदि व्यसनों में आज लोगों का पैसा जा रहा है और दूध, घृत से रहित हो जाने के कारण लोग बलहीन तथा निर्वंश होते चले जा रहे हैं। गर्भाधान करने वालों के लिये दूध, मलाई, घृत से बढ़कर कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं है।

इन बीस मन्त्रों से आहुति देने के समय बधू अपने दक्षिण हाथ वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ऐसा संस्कार विधि में लिखा है। यह क्रिया एक उच्चभाव को प्रकट करने को की जाती है। अर्थात् ऐसा करने से पुरुष, स्त्री के हाथ को अपने कन्धे पर सहारा देता है जिसका अर्थ यह है कि उसका पतिकर्म करता हुआ सदैव समझे कि मेरा स्वपत्नी को आश्रय वा आधार देना 'पति, शब्द को सार्थक करता है स्त्री का हाथ ऊपर और कन्धा नीचे है जिसका एक मात्र उद्देश्य यह है कि स्त्री को कष्ट न हो उसकी रक्षा की जावे और यही पति का धर्म (ड्यूटी) है।

इन बीस आहुतियों को देते हुये स्त्री जिस हाथ से हवन रूपी कर्म करती थी वह हाथ अपना स्वतन्त्र कर्म के स्थान से हटाकर पति की वाह्य जगत् में कर्म करने वाली भुजा के मूल स्कन्ध का थामे हुये है। यह थामना क्या है? उसको कोमल रूप से सहारा देना है—उसकी कमर ठोकना है जो पत्नी होने पर उसका कर्तव्य है। इसका प्रयोजन यह है कि पति दिन भर धन कमाने के कर्म करता रहे पर जो उसकी कर्म करने की शक्ति है उसको विश्राम रूपी सहारा देना जिस से वह अपने श्रम को भूल जाय और उसका मन इस बात को अनुभव करे कि मेरी भुजा को कोमल सहारा देने वाली मेरी स्त्री है दोनों ही ऐसा करने से परस्पर सहायता के भाव और कार्य के विभाग प्रगट कर रहे हैं अर्थात् पत्नी—धर्म का बोधन करा रहे हैं।

यूरूप आदि सभ्य देशों में मर्य्यादा है कि जब पति पत्नी दोनों बाग वा गृह में सैर करते हों तब पत्नी अपना हाथ वा भुजा पति की भुजा वा कन्धे के ऊपर ढीली रखकर चलती है। और यूरूप के विद्वान् लिखते हैं कि यह वह उस लिये करती है कि उसका धर्म पति से अबला होने के कारण सहारा लेने का है। यही नहीं परञ्च जब गाड़ी आदि यानों में अंग्रेज़ पति पत्नी चढ़ने लगें तो पति सदैव स्वपत्नी के हाथ या कमर को पकड़ कर सहारा देता है—इस लिये नहीं कि वह विना पति की सहायता के चढ़ नहीं सक्ती किन्तु वह ऐसा करने से पतिव्रत धर्म का चिन्ह प्रगट करता है जो आज सभ्यता का चिन्ह माना जाता है और वही उत्तम चिन्ह इन बीस मन्त्रों द्वारा आहुति देते समय प्रगट किया जाता है।

भात की छः आहुति

इन छः आहुतियों के देते समय स्रुवा में का शेष घृत आगे धरे कांसे के बर्तन में जिसमें पानी भरा हो छोड़ना चाहिये। यह इस लिये कि स्रुवा के घृत में मन्द मन्द सुगन्ध बस जाती है और जब गरम घी के बिन्दु उदकपात्र में छोड़े जावेंगे तो वह मक्खन की तरह जमकर पानी के ऊपर तैरते रहेंगे। यह घृत शरीर पर मलने के लिये बहुत गुणकारी होता है क्योंकि यह सुगन्धि से छोंका घृत है।

(मन्त्र १) हे जठराग्ने! तू पवमान अर्थात् रोगों को शरीर से रहित करने वाली है हम शुभकर्म करें।

(२) हे हवन कुण्ड की प्रचंड ज्वाला (अग्नि)! तू पावक (डि इनफैकृैण्ट) अर्थात् वायु को दूषित करने वाले भयंकर रोगों की नाशक है। हम शुभ कर्म करें।

(३) हे विद्युत रूपी अग्नि! तू शुचिकारक है। हम शुभ कर्म करें।

---

* सन्ध्या आदि जप करने के समय काष्ठ की चौकी पर, ऊर्ण वा कुश का आसन बिछा कर बैठजाते हैं। यह इसी लिए कि सूखा काष्ठ तथा बाल वा ऊर्ण वा सूखी घास कुश आदि अवाहक गुण वाले (नौन कण्डकृर) हैं अर्थात् शारीरिक बिजली के प्रवाह को बाहर जाने से और बाहिर की बिजली को शरीर में प्रवेश करने से रोकते

सृष्टि में तथा शरीर में विद्युत भारी काम कर रही है। शरीर में फुर्तीलापन शरीर की बिजली के कारण होता है शरीर की विद्युत् की रक्षा करनी और बाहिर की विद्युत् के आघात, संचार तथा अकस्मात प्रवेश से शरीर को बचाते रहना चाहिए।

विवरण

जिस समय बादल हों वा बिजली चमके उस समय लोहे कांसे आदि धातु के वर्त्तन खुली जगह में से उठा कर अन्दर कोठे में रख लेने चाहियें पुरानी बूढ़ी हिन्दू माताये सब कहा करती हैं कि बिजली, तवे कढ़ाई आदि लोहे के काले वर्त्तनों पर और चमकने वाली सफेद धातु काँसा आदि के वर्तनों पर गिरती है।

(४) आदित्य (सूर्य) से उपकार लेने के लिये हम शुभ कर्म करें।
(५) प्रजापति (वायु) से उपकार लेने के लिये हम शुभ कर्म करें।

हैं जिस समय बिजली चमक रही हो उस समय यदि कोई धातु की चौकी पर बैठेगा तो उसके शरीर में ज़मीन की बिजुली धातु द्वारा सञ्चार करके उस को अति कष्ट देगी। उपासना के समय ऊर्ण कम्बल, लोई वा शाल इसी हेतु से पवित्र मानकर ओढ़ी जाती है।

सूत के बुने हुए वा निवाड़ी पलंग जिनके पाये मुरादाबादी कलईमय पीतल के होते हैं उन पर सोना इसी लिये हानिकारक है। खाट के पाये काष्ठ के होने चाहियें और निवाड़ के स्थान में मुञ्ज (वान) से जो एक प्रकार का तृण है बुनी हुई खाट अधिक उपयोगी है और अन्दर बाहर की बिजली को अधिक रोकने वाली है। खाट कभी दीवार के साथ लगाकर नहीं सोना चाहिये; कहीं ऐसा न हो कि दीवार के संसर्ग से बाहिर की बिजली खाट में प्रवेश करके हानि का कारण बनै। एक और हानि दीवार में खाट लगा कर सोने से यह है कि सर्प बिच्छू कानखजूरा इत्यादि जन्तु भी खाट पर दीवार के सहारे चढ़ सक्ते हैं।

आजकल कलई चाँदी के पायों की खाटों का हानिकारक रिवाज तो दूर हो रहा है किन्तु लोहे के पायों की खाटें जो हस्पतालों में केवल इस प्रयोजन से चली होंगी कि जल्दी टूटें नहीं, उनका रिवाज सर्वत्र हो चला है जो हानिकारक है। उसको त्याग कर काष्ठ के पायों के मुञ्ज से बुने हुये खाटों का उपयोग करना चाहिये।

पग में काष्ठ की खड़ावें रखने के अनेक लाभों में से एक लाभ यह है कि यह काष्ठ बिजली के संचार को पग द्वारा शरीर में जाने से रोकती हैं। वह जूते जिनकी तली में काष्ठ हो वा चमड़ी की तली के जूते भी उपयोगी हैं और इसी लिये मृगचर्म वा अन्य सूखे चमड़े भी स्मृति ग्रन्थों में शुचि माने गये हैं। परन्तु चर्म में दुर्गन्धी रहती है इस लिये चर्म के जूते को हाथ लगाकर हाथ को धोने की आवश्यकता है।

शरीर में बाल उन अंगों की विजुली से रक्षा करते हैं जिनपर वे उगे हुये हैं भ्रकुटि या नाक के बाल कभी नष्ट नहीं करने चाहियें। बगल के बालों का मुडाना हितकारी नहीं है। शरीर पर रोम प्रस्वेद के निकालने का भी काम देते हैं।

(६) इस मन्त्र में बतलाया है कि 'मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानी और कर्मकाण्डी हो तथापि वह अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला होने से उसका कर्म न्यूनता अथवा अधिकता रूपी दोषों से सर्वथा रहित नहीं हो सक्ता ! एक मात्र सर्वज्ञ और सब शक्तिमान ईश्वर ही पूर्ण हैं ! और उनका कर्म रूपी वह ब्रह्माण्ड छिद्ररहित पूर्ण है इस तत्वज्ञान के मर्म को बोधन करते हुये और अभिमान से बचने के लिये इस मन्त्र का पाठ किया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि 'जो इस कर्म के विषय में मैंने अधिक किया अथवा थोड़ा किया सब इष्ट वस्तुओं को जानने वाला और अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला ईश्वर उस सब को मेरे लिये अच्छे प्रकार करे और शोभन यज्ञ सम्पादक सुहुत को गृहण करने वाले, कामना वाले सब शुद्धि सम्बन्धी आहुतियों को बढ़ाने वाले भौतिक अग्नि के लिये सुहुत हों—हे ईश्वर ! हमारे सब अभिलषित पदार्थों को आप बढ़ाइये ।

पुनः अष्ट आज्याहुति तथा— नव आज्य और मोहनभोग की आहुति ।

पहले बीस फिर छः फिर सामान्यप्रकरणोक्त आठ आज्याहुति पुनः देने के पश्चात् नौ आज्य और मोहन भोग की आहुति वद मन्त्र पढ़कर देनी चाहिये । इनका भावार्थ यह है :—

(१) प्रथम मन्त्र में बतलाया है कि (क) योनि, गर्भधारण करने योग्य और नीरोग हो—जब कन्या को पुष्प (मासिक धर्म) आने लगते हैं तब से लेकर कम से ३६ बार जो रजस्वला हो चुकी हो और जिसने पुष्पवती होने के दिनों में असावधानी नहीं की उसकी योनि नीरोग होगी । छत्तीसवार वा तीन वर्ष तक पुष्पवती होने से योनि की अधिक गर्मी जो गर्भ को नहीं रहने देती निकल जाती है और योनि अंग, उन्नत अवस्था को भी प्राप्त हो जाता है । इस गुप्त अंग की उन्नति को प्रगट करने के लिए युवा कन्या के स्तन हैं—ये भी गर्भाशय की उन्नत के साथ साथ उन्नत होते हैं । कड़ी वा तंग चोली को कसकर पहिनने से भी स्तनों की वृद्धि में हानि होती है । चोली आदि ढीली पहननी चाहिये । पथ्यपान से भी योनिरोग नष्ट होते हैं

(ख) गर्भ के आकार उत्तमता से बनें, (ग) गर्भ पुष्टि को प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना और तद्वत् ही यत्न दोनों को करना चाहिये ।

(२) इस मन्त्र में पत्नी को चन्द्र की उपमा दी गई है और दर्शाया है कि वह विदुषी प्रसन्नता पूर्वक गर्भ धारण करे ।

और बल युक्त होने के कारण प्राण और अपान वायु से गर्भ को पोषण करे । जो जीवन शक्ति को बढ़ाता है वह प्राण वायु है और जो मलमूत्र को त्यागने में सहायता देता है वह अपान वायु है ।

आज कल शिक्षित पुरुष और स्त्रियों को कुपच वा कोष्ठबद्ध अर्थात् बदहज़मी वा कब्ज़ियत सताती रहती है। जिनके शरीर में प्राण तथा अपान वायु बराबर काम करते हैं वह इन रोगों से रहित होते हैं। मन्त्र बतलाता है कि गर्भाधान करने वाली स्त्री में ये योग्यतायें होनी चाहियें अर्थात्ः—

(१) कोमलपन के चिन्हों से युक्त होने के कारण वह चन्द्र समान है । (२) उसको भूख न लगना, बदहज़मी और कब्ज़ के रोग न होने पावें और उचित आहार बिहार करके इन रोगों को वह दूर करती रहै। (३) वह सरस्वती अर्थात् विदुषी हो (४) मन की इच्छा से गर्भ धारण करै। बिना इच्छा से गर्भ धारण किया हुआ गर्भ गिर जाता है वा कभी कभी मरा हुआ बालक उत्पन्न होता है।

(३) तीसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि जो गर्भिणी स्त्री अपच और कोष्ठ बद्ध आदि रोगों से मुक्त रहती है उस नारी के गर्भ के दोषों को प्राण और अपान शुद्ध करते रहते हैं और वह पूरे दिन पीछे अर्थात् सौर वर्ष के ९ मास हो जाने पर दसवें मास में प्रसव होती है जिस से उसका बालक चिरञ्जीव होता है ।

जिसको भूख की रुचि होती है उसका प्राण ठीक काम कर रहा है अर्थात् प्राण भोजन शरीर में डालता है । उस भोजन को पचाकर जो उसका दूषित अंश है वह मल मूत्र के रूप में यदि नियम पूर्वक निकलता रहै तो समझो कि अपान ठीक काम कर रहा है । भूखलगने पर भोजन खाना और हज़म होकर पीछे उस में से मलमूत्र निकलना आरोग्यता है। गर्भगत बालक का जीवन माता के आहार के पचने पर निर्भर है क्योंकि उसे रस आदि तबही मिलते रहेंगे जब उसकी माता खाती और पचाती रहेगी । खाना और पचाना यही माता और उसके गर्भ की आरोग्यता समझो ।

देखने में आता है कि पहिले वा दूसरे मास में गर्भिणी को भोजन में अरुचि हो जाती है और कभी कभी खाया हुआ अन्न वमन द्वारा निकल जाता है। इससे घबराने की कोई बात नहीं है । ऐसी दशा में और गर्भ के पहिले तीन मास में अन्न आदि के स्थान में विशेष रोचक और हितकर फलाहार कराना चाहिये वा थोड़े से अन्न के साथ विशेष फल ही खावे । यदि केवल सेव आदि उत्तम फल ही खावे और कभी कभी इलायची युक्त दूध पीवे और प्रातःकाल भ्रमण करे तो बहुत लाभ होता ह । फिर तीनमास के पीछे ज्यों ज्यों कै बन्द होती जावे त्यों त्यों फलातिरिक्त अन्न भी यथा रुचिखावे। गर्भिणी को फलाहार अधिक उपयोगी होता है । भोजन के साथ गर्भिणी पानी न पीवे और कुछ काल ठहर कर पीछे पीवे तो भोजन के पचने में सहायता मिलती है । कै आदि को तुच्छ समझ कर गर्भिणी चिन्ता ज़रा भी न करै और कभी स्वप्न में भी घबरावे नहीं और नहीं कै को रोके।

मन्त्र ४

यह वह मन्त्र है जिस में गुप्तेन्द्रियों के कार्य दर्शाये हैं। सेक्सन फिजीयोलोजी के नाम से जो ग्रन्थ उत्तम और विद्वान् डाक्टरों के मिलते हैं उनमें मानों उस मन्त्र की सचित्र व्याख्या होती है। मन्त्र बतलाता है कि (१) गर्भ उत्पत्ति के हेतु पुरुषेन्द्रिय योनि में प्रविष्ट होता हुआ वीर्य रेचन करता है। यद्यपि वीर्य और मूत्र के निकलने का अन्तिम द्वार एकही है तथापि जिस समय वीर्य निकलता है उस समय मूत्र नहीं निकलता। वीर्य अण्डकोषों से आता है और मूत्र गुर्दों से। गर्भाधान क्रिया करने से पूर्व स्त्री पुरुषों को पेशाब करलेना चाहिये।

(२) जरायु (जेर) गर्भ की रक्षा करता है और जब बालक बाहर निकलता (जन्मता) है तब जरायु को अन्दरः छोड़ः आता है पीछे कुछ काल में वह जरायु बाहर निकलता है कभी कभी विदुषी दाइयों की सहायता वा औषध—प्रयोग से जरायु के बाहर निकलने में सहायता मिलती है।

(३) जन्मे हुये बालक के लिये माता का दूध स्वादिष्ट और अमृत समान है इस लिये माता को चाहिये कि बच्चे को दूध पिलाने के बड़े अधिकार को प्राप्त होवे।

मन्त्र ५

इस मन्त्र में पति को सूचना दीगई है कि वह कभी स्त्री की इच्छा वा प्रसन्नता के विरुद्ध विषय न करे। मन्त्र कहता है कि पति को जान लेना चाहिये कि स्त्री स्वयं इस के लिये प्रसन्न है और जिन चिन्हों द्वारा पति यह बात जाने उनका वर्णन किया है—प्रथम यह कि स्त्रीने केशोंका शृंगार किया है या नहीं। आजतक पृथवी के सर्व देशों में यह रीति पाई जाती है कि स्त्रियां रात्रि में पुरुष संग करने से पूर्व दिनमें नाना प्रकार के केशादि शृंगार करती हैं। यदि स्त्रा की रुचि उस दिन किसी कारण से न होगी तो वह शृंगार युक्त न होगी। दूसरे यह कि मानो स्त्रीने अपना शृंगार किया ह परन्तु सन्ध्या समय किसी रोग वा दुष्ट समाचार के कारण उस का मन शोक युक्त होगया है। क्या ऐसी अवस्था में पुरुष उस में गमन करे! कदापि नहीं। यद्यपि उसका शारीरिक शृंगार किया हुआ है किन्तु हर्षरूपी शृंगार से उसका मन शून्य है। इसलिये पुरुष को सदैव उसके शारीरिक शृंगार और मनके अतीव हर्ष से यह निश्चय करलेना चाहिये कि मैं उसका संग करूँ। यदि दोनों में से एक शृंगार नहीं है तो वह गर्भाधान न करे। तीसरी बात यह है कि स्त्री को भी वेद उपदेश देता है कि वह भी उन दो चिन्हों से पुरुष की प्रसन्नता को समझले अर्थात् पुरुष की भी शारिरिक दशा नीरोग तथा स्वच्छ है और उसका मन भी शोक आदि से ग्रस्त तो नहीं है। परस्पर एक दूसरे के मन को समझें यह वेद कह रहा है। चौथी बात वेद यह बतलाता है कि जो स्त्रीपुरुष शारीरिक आरोग्यता और स्वच्छता तथा मानसिक आरोग्यता अर्थात् हर्ष की दशामें गर्भाधान क्रिया करेंगे उनके बलकी हानि नहीं होगी प्रत्युत वह बली ही बने रहेंगे और पूरी १०० वर्षकी आयु में भी दृढ़ इन्द्रियों वाले रहेंगे।

संसार को इस महान् आवश्यक उपदेश के समझने की कितनी ज़रूरत है। बुखार चढ़ा हुआ है, सिर दर्द हो या पेट दुख रहा है और कामी पुरुष स्त्री से बल पूर्वक संग करना चाहता है। अन्त को स्त्री रोगों में ग्रस्त होजाती है। पुरुष की दुकान में घाटा पड़ा है वा किसी अन्य हानि आदि के कारण उसका मन दुखी है, वह पत्नी को अपने दुख की कथा सुनाता है और मूर्खा स्त्री उससे संग करना चाहती है। ऐसी दशा में शिर दर्द आदि अनेक रोग पुरुष को लग जाते हैं और उसे पागल बना देते हैं। संसार सुख रूप होजावे यदि वेद की इस सचाई को घर घर सुना दिया जावे।

इस मन्त्र में स्त्री की अपूर्व दैवी शक्ति का वर्णन है। बतलाया गया है कि स्त्री

मन्त्र ६

अपने आपको तुच्छ न समझे और गर्भ धारण तथा रक्षण के कार्य को बड़ा भारी धर्म और पवित्र काम समझे। वेद कहता है कि स्त्री निश्चय करले कि जिस प्रकार धैर्य स्वरूप पृथिवी भूतों को धारण किये हुए उनको पोषण करती है। उसी प्रकार मैं धैर्य से गर्भ को धारण करके उसका धैर्य से पोषण करूंगी और यदि स्त्री गर्भ का धारण किये हुए अनेक विघ्न आने पर भी सदैव उसकी रक्षा और वृद्धि अटल धैर्य द्वारा करेगी तो उसका महान् फल उसको यह मिलेगा कि उस को प्रसव समय अधिक कष्ट न होगा अर्थात् धैर्य्यवती माता के बच्चा दसवें महीने में अनुकूलता (सुख) पूर्वक उत्पन्न होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि स्त्री धैर्य का महत्व अनुभव करे और निश्चय रखे कि ईश्वर कृपा से उसका प्रसव सुगम तथा पूरे दिनों में होगा। केवल एक मात्र साधन यही है कि वह पृथिवी के समान धैर्य धारण करे और प्रसव को साधारण बात समझे। जिस प्रकार पृथिवी बड़े २ गर्भ धारण किये हुए शान्त हैं। इसी प्रकार प्रसव समय धैर्य धारण करने वाली जननी को प्रसव पीड़ा बहुत कष्ट नहीं देगी।

बालक नन्हे पन में बड़ा सरल होता है। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि यदि बा-

मन्त्र ७

लक को चोट लगे तो वह स्वाभाविक रीति से उतना ही रोवेगा जितना उसका दुख है परन्तु यदि उस के माता पिता उस की जरासी चोट को ऊं ऊं करके अति का रूप देवें तो बच्चे की मानसिक सहन शक्ति कम होजाती है मूर्ख लोगों में ज़रासे दुख को बहुत दुख कहने और फिर उस दुख को विस्मरण करने के स्थान में चिन्तन करने की रुचि होती है, इससे उनको ऐसा मालूम होता है कि हम बड़े दुखी हैं। ईश्वर की विचित्र सृष्टि में गाय घोड़ी बकरी आदि अनेक प्राणी प्रसव होते हैं और अपने दृष्टान्त से दिखा रहे हैं कि प्रसव पीड़ा उतनी कठिन नहीं है जितनी मूर्खा स्त्रियां कल्पना करलेती हैं। श्रम करने और सदैव प्रसन्न रहने वाली ग्रामीण स्त्रियों को भी प्रसव

पीड़ा अधिक कष्ट नहीं देती * जो शहरों की स्त्रियां श्रम नहीं करतीं उनको प्रसव समय कुछ अधिक कष्ट होता है परन्तु उनकी अनाड़ी सखिएं ऊहा करके प्रसव पीड़ा का भय युक्त चित्र नई वधू के मन में डाल देती हैं परन्तु जो वधू की माता वा कोई सच्ची हितकारिणी होती है वह सबसे बड़ा काम यह करती है कि गर्भिणी स्त्री को अनेकविधि अपने दृष्टान्त देकर समझाती है कि तू भय न कर धैर्य रख और स्त्री जाति में जो धैर्य का अपूर्व गुण है उसे जागृत करती हुई उसके मानसिक बल को बढ़ा उस को दुख पर जय पाने योग्य बना देती है। बच्चे के पालन में कितने धैर्य्य की आवश्यकता है? बाप में उतना धैर्य नहीं जितना मा में होता है। रातभर गीले वस्त्र पर सोकर किस प्रकार माता अपूर्व धैर्य और प्रेम को सिद्ध करती है। जिन स्त्रियों में धैर्य होता है वा जिन को शिक्षण द्वारा धैर्य करना सिखाया जाता है वह प्रसव पीड़ा से लाखों श्रम जीवी स्त्रियों की नाईं घबराती ही नहीं हाँ, जिस प्रकार शूरवीर मन के हारजाने से हारजाता है उसी प्रकार स्त्री मन को निर्बल करने से प्रसव समय बहुत घबराती है। ज़रूरत है कि स्त्रियाँ मन को दृढ़ करें और धैर्य धरें इस लिए फिर दूसरा वेद मन्त्र उन्हीं भाववाले शब्दोंमें कहता है कि जैसे यह बड़ी पृथिवी बड़े २ वृक्षों को धारण किए हुए वैसेही तेरा गर्भ भी ईश्वर करे शान्ति से स्थित हो और अनुकूलता पूर्वक दशमें महीने में उत्पन्न हो।

मन्त्र ८

लोग कहते हैं कि यदि स्त्री को जनते समय और पुरुष को कमाते समयकष्टसहन न करना पड़ता तो अच्छा होता। ऐसे वचन आलसी और अज्ञानियों के हैं। जब प्रसव समय आता तो गर्भ नीचे को सरकने लगता है; यदि एक दम सरक कर आ सकता तो ६ मास कदापि ठहरा नरहता इस लिये जो वस्तु ६ मास एक जगह रहती हैं उसे वहां से ६ घंटे में निकालना कोई बड़ा समय नहीं है और इस में भी पूरे ६ घंटे पीड़ाके नहीं होते। उस करुणा निधान की दया से पहले पानी गिरने लगता है फिर धीरे धीरे कभी पीड़ा होती है और कभी बन्द हो जाती है। जिस समय बच्चा जन्मने को होता है उससे पूर्व प्रसव पीड़ा ठहर ठहर कर अधिक होती है परन्तु धैर्य से सब स्त्रियों ने उसे जीता है और धैर्य से वह जीती जा सकेगी। इसी लिये जैसे प्रसव समय माता अपनी बेटी को उन स्त्रियों के नाम ले लकर जिन्हों को उनकी पुत्री जानती है यह बतलाती है कि उन्हों ने धैर्य से काम लिया है। उसी प्रकार जगत् जननी वेद के पवित्र वचनों में कभी प्राणियों का दृष्टान्त देती है जो सबभूत (प्राणी) धैर्य से बच्चे जनते हैं। कभी यह जगन्माता अपनी पुत्रियों को पृथिवी की सहन शक्तिका दृष्टान्त देती है जो वृक्षों को धारण किये हुए हैं और इस मन्त्र में फिर यह कह रही है कि हे पुत्रियो! जिसःप्रकार यह बड़ी पृथिवी बड़े और छोटे पर्वतों को धैर्य पूर्वक धारण

---

* कितनी ही ग्रामीण स्त्रियाँ जंगल में प्रसव क्रिया करके सन्ध्या समय लौट आती हैं।

किये है उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ शान्ति से स्थित हों और धैर्य गुण के प्रताप से जो नारी मात्र का स्वभाविक भूषण है वह दशम मास में सुख पूर्वक उत्पन्न हों।,,

मन्त्र ६ मनुष्य को ज्वर आता है तो उस के लिये ओषधि सेवन ज़रूरी है स्त्री को प्रसव समय कुछ घण्टे ठहर ठहर कर पीड़ा उठती है। इस कष्ट की अपूर्व ओषधि पृथिवी समान धैर्य को धारण करना है। इसी लिये फिर परम कृपाल जगन्माता वेद वचन में अपनी पुत्रियों को आशीर्वाद देती है कि:—

"हे पुत्रियो! जैसे यह विस्तृत पृथिवी विशेष रूप से स्थित जगत को धारण करती हैं उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ भी शान्ति से स्थित हों और दशम मास में अनुकूलता पूर्वक उत्पन्न हों।,,

इन अनेक मन्त्रों में दो बातों का विशेष उपदेश मिलता है।

(१) यह कि स्त्री गर्भ को दश मास तक धारण करने का यत्न करै जिन हानिकारक क्रियाओं चेष्ठाओं रेचक ओषधियों वा कुपथ्य आलस तथा मनकी कमज़ोरी से गर्भ के गिरने की सम्भावना होसकती है। उन उन बातों को छोड़ देवे और (२) धैर्यव्रत तथा अनुभवी स्त्रियों वा दाइयों का संग, उचित आहार विहार, ईश्वर उपासना आदि कार्यों से सदैव यह योग्यता धारण करै जिससे उसको प्रसव समय अधिक कष्ट न होने पावे और जैसे श्रमप्रिय धीरवती और आनन्दवती स्त्रियां सुख पूर्वक बच्चे जनती हैं वैसे ही वह जन सके।

चार घृताहुति — प्राणरूपी (जीवन दाता) जठराग्नि से लाभ लेने के लिये हम शुभ कर्म करैं।

(विवरण)स्वाहा शब्द के अर्थ शुभ कर्म वा सत्यकर्म के हैं। शुभ हो वा शुभ कर्म करैं ऐसे २ भावों का यह बोधक है। अंग्रेज़ी में जो (हुर्राह) शब्द 'शुभम्, भाव को प्रकट करने के लिये उपयोग किया जाता है वह स्वाहा शब्द का अपभ्रंश है। सकोह से तो लोग बदल ही देते हैं और फिर उच्चारण भेद से स्वाहा के स्थान में हुर्राह होगया।

(२) अपान रूपी रोग नाशक वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभ कर्म करैं
(३) सूर्य समान तेजस्वी व्यान रूपी आलस नाशक वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभ कर्म करैं।

(४) अग्नि, वायु, आदित्य, प्राण, अपान, व्यान की अपने शरीर में उन्नति करने के लिये हम शुभ कर्म करैं।

घृत की २ आहुति — (१) इस मन्त्र में बतलाया है कि हवन जैसे कर्म में ऐसे विद्वान्लोग जो यज्ञ के मर्म को भले प्रकार जानते हों वह अवश्य उपस्थित रहैं जिस से उन ईर्षा द्वेष से रहित पूर्ण ज्ञानी लोगों

की अनुमति अनुसार यज्ञ होता रहे और ऐसा होने की दशा में यज्ञ अवश्य सफल होगा।

(२) प्रजापति अर्थात् वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभ कर्म करें।

एक स्विष्टकृत आहुति

यदस्य कर्मणो इत्यादि ×:

इस मन्त्र से जो मनुष्य की अल्पज्ञता और अल्पशक्ति का बोधन कराने वाला है और मिथ्या अभिमान का नाशक है पढ़कर एक घृताहुति दें।

स्नान

शेषघृत को लेकर वधू स्नानागार में अकेली जाकर पग के नख से लेकर शिर पर्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करै, ऐसा लेख है। इस का अभिप्राय यह है कि शरीर में शुष्कता न रहै और खाज आदि दूर हों शरीर नीरोग, सुन्दर और कोमल बनै। सुश्रुत में गर्भाधान करने वालों के लिये उस क्रिया से उचित काल पूर्व शरीर पर घृत मलने का विधान है जिसके लाभ प्रत्यक्ष हैं।

तत्पश्चात् शुद्ध अंगोछे से शरीर पोंछना लिखा है। लोग शुद्ध अंगोछे की आवश्यकता कम समझते हैं। अंगोछा यदि रोज़ साबुन आदि लगाकर धोया जावे तो उत्तम है। योरोप आदि सभ्य देशों में जिस अंगोछे से एक वार शरीर पोंछ लिया उसे फिर बिना साबुन से धोये उपयोग में नहीं लाते।

फिर शुद्ध वस्त्र धारण करने का विधान है। आजकल शुद्ध और उपयोगी वस्त्रों का लाभ नई नई वधू भूलगई हैं। गोटा किनारी, बादला, कमख्वाब, ज़री आदि से जटित चमकते हुए अतलस, सिटन, चिकन, मखमल आदि कपड़ों को चाहे वह पसीने से सड़रहे हों दिखाव के लिए पहिनना ऐसे शुभ अवसरों पर उचित समझती हैं। इतना धन इस प्रकार के वस्त्रों पर जो केवल दिखावे के काम के हों और शरीर रक्षा में पूरी सहायता न कर सकें लगाना बुद्धिमत्ता नहीं है। शुद्ध और उपयोगी वस्त्र ही सुन्दर और रोचक समझने चाहिये उन शुद्ध वस्त्रों के पहिनने का विधान किया गया है।

'वस्त्र धारण करके वधू के आने पश्चात् वधूवर दोनों कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करैं' ऐसा लेख है। इसका तात्पर्य यह है कि अग्नि प्रकाश स्वरूप होने से पदार्थों का यथार्थ बोधन कराती हुई सत्यका सिमीहोल (चिन्ह) समझना चाहिये। आनन्द का चिन्ह चन्द्र और शान्ति का चिन्ह जल इत्यादि लोग जानते ही हैं और हवन कुण्ड की प्रदक्षिणा करने का अर्थ यह है कि एक काम को आरम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त समाप्त करने की प्रतिज्ञा की जावे। प्रदक्षिणा में हम एक स्थल से चलकर फिर उसी स्थलपै दूसरी तरफ से पहुंच जाते हैं अर्थात् किसी कर्म वा क्रिया का आरम्भ करके जहां वह समाप्त होसकती है वहां पर समाप्त करना प्रदक्षिणा। इस बाह्यचिन्ह से बोध कर लेना चाहिये कि हम जो अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं तो मन में यह भाव धारण कर कि जैसे अग्नि सत्य प्रकाशक है वैसे ही हमसत्य

कर्म का आरम्भ करके उसे समाप्ति पर्यन्त पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं या यों कहो कि किसी काम को आरम्भ करके पूर्ण करने की सत्य प्रतिज्ञा का धारण करना है।

आरम्भशूर तो दुनियाँ में अनेक हैं परन्तु एक शुभ कर्म को आरम्भ करके उसे समाप्ति तक पहुंचाना बड़े धर्मात्मा, धीर वीर और ईश्वर विश्वासी स्त्री पुरुषों का ही काम है। गर्भाधान जैसे कर्म को जो सन्तान उन्नति का साधन है आदि से अन्त पर्यन्त अर्थात् जब तक सन्तान का जन्म न हो सफलता पूर्वक पूरा करना निस्सन्देह वीर पुरुष और धीर नारियों का ही कर्तव्य होसक्ता है।

सूर्य दर्शन और मन्त्रोच्चारण

सूर्य का दर्शन करके छः मन्त्र वधूवर उच्चारण करें, सूर्य का दर्शन करके मन्त्र पढ़ने का अभिप्राय यह है कि सूर्य की सुन्दर कान्ति को वे दोनों अनुभव करें और इस अनुभव का विशेष फल स्त्री के मनमें पड़ने से सन्तान का सुन्दर और तेजस्वी होना सम्भव है योरोप में आज कल माना गया है कि गर्भिणी जिन दृश्यों का प्रभाव मनमें धारण करती है उसी प्रभाव को लिए हुए सन्तति उत्पन्न होती है। डाक्टर कावन् गर्भधारण से पूर्व महान् भावयुक्त बनाने का उपदेश करते हैं। भारतीय आर्य ऋषि इसबात का अनुभव कर चुके थे कि रजस्वला होने के दिनों में और उसके पीछे गर्भाधान से पूर्व तथा गर्भावस्था में स्त्री के मन पर संस्कार डालने से विचित्र गुणयुक्त सन्तान होती है। गर्भाधान से पूर्व यदि स्त्री यह भाव धारण करै कि मेरी सन्तान अपूर्व गुणों के कारण एक होने पर हजारों में सूर्य के समान यश व तेज को प्राप्त हो तो निस्सन्देह वह महान् गुण युक्त सन्तान को उत्पन्न कर सक्ती है। इस लिये सूर्य का दर्शन करने के पश्चात् इन सार गर्भित मन्त्रों को एकाग्र मनसे उच्चारण करने की आवश्यकता है:—

(१) (क) हे ईश्वर! उस गर्भ को जो बड़ी उपमा वाला है और बड़े गुणों से युक्त है तथा आदित्य के समान तेजस्वी है उसे गर्भ दशा में पोषक रसों से कांति युक्त करो (ख) हरने वाले तेज से उसे बचाओ (ग) उसे पीड़ित न करो। प्रतिदिन उस बढ़ने वाले को १०० वर्ष की आयुवाला करो।

भावार्थ—प्रार्थना शुभ संकल्प और ईश्वरीय सहायता के मनमें धारण करने का दूसरा नाम है। जहां प्रार्थना से निस्सन्देह मानसिक बल और अन्तःकरण की शुद्धि ईश्वर करते हैं वहाँ प्रार्थी को सदैव अपनी प्रार्थना के अनुसार कायिक कर्म और पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है इसलिये (क) स्त्री को स्वयं ऐसे रस पान करने चाहियें जो गर्भ की वृद्धि में सहायता करें (ख) जहाँ परमेश्वर से सदैव प्रार्थना की आवश्यकता है कि हरने वाले तेज से वह इसे बचावे वहाँ पुरुष का धर्म है कि वह कदापि गर्भिणी गमन से गर्भ के तेज को नष्ट न करै और इस कुचेष्टा से दोनों बचें (ग) जिन कर्मों से यथा अधिकभार उठाने पहाड़ी- अथवा बहुत ऊंची नीची सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने, उछलने कूदने, रेचक पदार्थ

खाने तथा चोट आदि लगने भयभीत होने आदि गर्भ को पीड़ा पहुंचाने वाले कर्मों से उसकी रक्षा करै जिससे तेजस्वी गर्भ वाला बच्चा जन्म कर सौ वर्ष की आयु धारण करने वाला हो। स्त्री को स्वयं भी निर्भय और तेजस्वी रहना चाहिये।

(२) फिर प्रार्थना करें कि सूर्य द्युलोक सम्बन्धी पीड़ाओं से अर्थात् ऋतुओं की विषमता से हमको बचावे। वायु अन्तरिक्ष में होने वाले उपद्रवों से रक्षाकरै यथा ओले पड़ना, वायु में विषैले कृमियों का मरजाना और अग्नि पृथिवी में होने वाले उपद्रवों (शत्रु) तथा हिंसक प्राणी आदि से हमारी रक्षा का साधन बनै।

(३) तीसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि गर्भिणी की विशेष रक्षा करनी चाहिये क्योंकि शत्रु आदिकों के वज्रप्रहार अथवा अग्निमय अस्त्रों के नाद से गर्भपात होजाते हैं। इसीलिये गर्भिणी स्त्रियों को यथाशक्ति सुरक्षित देश में रखना और रखाना चाहिये और परमेश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिये कि वह इन विघ्नों से दूर रक्खे।

(४) इस मन्त्र में बतलाया गया है कि ईश्वर को अपना नायक और ज्ञानदाता माने तथा शरीर में जो चक्षुरूपी सूर्य है उसकी सदैव रक्षा करते रहैं जिससे सन्तान उत्तम नेत्रों से युक्त होने के कारण अधिक ज्ञानी हो सके।

(५) इस मन्त्र में चक्षु इन्द्रिय से यथावत् काम लेने तथा उसकी रक्षा करने के अतिरिक्त यह बतलाया है कि सन्तान भी उत्तम चक्षुओं से युक्त और ईश्वरीयज्ञान रूपी प्रकाश को हम और हमारी सन्तान इस जगत् को अवलोकन करने के लिये धारण करै।

(६) इस मन्त्र में चक्षु इन्द्रिय ज्ञान का प्रबल साधन है यह बात बताई है इस लिए प्राणियों के ज्ञान को धारण करके उससे बचने का उपाय इस इन्द्रिय द्वारा हो सक्ता है। और पदार्थों को विशेष रूप से देखकर उनके गुणों को धारण करने से अनेक प्रकार के कला कौशल तथा अस्त्र शस्त्र निर्माण करने से रक्षा कर सक्ते हैं। अतः शरीर का परम रक्षक चक्षुइन्द्रिय है।

पत्नी का गोत्रबदल कर पति का हो जाता है।

मनु अध्याय ३ श्लोक ५ के अनुसार वीर्य की क्षेत्रपर प्रधानता प्रतीत होती है और इसी नियम को डाक्टर ट्राल ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३० पर स्वीकार किया है जिस का सार यह कि, सन्तान उत्पन्न करने में स्त्री का रज, वीर्य की रक्षा करने का काम देता है और नवीन गुण पुरुष के वीर्य के प्रभाव से होते हैं। देखने में भी आयाहै कि अनेक प्रकार के बीज एक ही क्षेत्र में बोनेसे अपना भिन्न भिन्न स्वरूप स्थिर रखते हैं। यह सच है कि ऊषर भूमि में अच्छा बोया हुआ बीज भी फली भूत नहीं होता इससे क्या सिद्ध हुआ कि ऊषर भूमि बांझपन का नाम

हैं परन्तु ऊषर न होने की अवस्था में वह बीज अनुकूल सिद्ध होता है अर्थात् उर्वरा भूमि बीज के सहायक होने में उसकी प्रधानता को मानो स्वीकार कर रही है। इस विश्वव्यापक नियम के अनुसार पत्नी पति के गोत्र में आनी ही चाहिये। और इसी लिये वह अपने पति के गोत्र को अपना गोत्र बना अपने शुभ नाम को प्रकट करती हुई पहिले पति और पीछे अन्य सब माननीय स्त्री पुरुषों को नमस्कार करती है। कोई कह सकता है कि पत्नी पति को पहिले नमस्कार क्यों करे ? यह इस लिये कि संस्कार की मुख्यनायिका (हेरोइन) वही है और उसको पहिले वन्दन करना और सब से आशीर्वाद लेना योग्य ही है। पति के पिता और पितामह आदि को वन्दन करने से यह तो स्पष्ट ही हो गया कि प्राचीन कालीन स्त्रियों में पर्दा और घूंघट की रीति न थी और परिवार के पुरुषों से वह बात चीत कर सक्ती थी जो प्रणाली आज पर्य्यन्त दक्षिणी स्त्रियों में विद्यमान है।

अन्त में वामदेव्य गान के पश्चात् संस्कार में आये हुये पुरुष स्त्रियों को आदर पूर्वक विदा करें और पुरोहित आदिकों को भी भोजन और दक्षिणादि से यथाशक्ति सन्तुष्ट करें।

यह तो संस्कार की क्रिया समाप्त हुई, आगे गर्भाधान क्रिया की विधि है। गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि गये पश्चात् से प्रहर रात्रि रहे तक है।

आरोह तल्पं सुमनस्य मानेह प्रजा जनये पत्ये अस्मै। इन्द्राणिव सुबुधा बुध्यमाना ज्योति रग्रा उषसः प्रति जागरासि।

अथर्व० काण्ड १४ अ० २ सू० २।

(संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण)

इस में दर्शाया गया है कि पुरुष स्त्री गर्भाधान क्रिया के निमित्त एक पर्यंक, (खाट) पर इकट्ठे शयन करें और साथ ही यह भी बतलाया है कि जब २ वह गर्भाधान करें तब तब दोनों की प्रसन्नता हो। फिर अगला मन्त्र यह है कि—

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनभिः।

अर्थात् वे गर्भाधानकरनेवाले दम्पती एक दूसरे के शरीर से अपने शरीर का स्पर्श करें। फिर निम्न लिखित मन्त्र यह उपदेश दे रहा है।

तां पूषं छिवतमामे रयस्व यस्यां बीजं मनुष्या २ वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः। संस्कारविधि गृहा० प्रकरण।

अर्थात् स्त्री पुरुष की कामना करती हुई अपनी जंघा पुरुष के ऊरू पर रखती है और पुरुष उस की गुप्तेन्द्रिय में उपस्थेन्द्रिय का प्रहार करता है ताकि मनुष्य का बीज बोया जावे।

"अथ यामिच्छेत्। गर्भं दधीतेति तस्यामथ निष्ठाय्य मुखेन मुखँ सन्धायाोपान्याभिमाणादिन्द्रियेण रेतसा तेरेत अदधामीति गर्भिण्येव भवति।।"

बृहदारण्यक उ०

इसी का भावार्थ संस्कारविधि के पृ० ४४ पर लिखा है कि "जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों प्रसन्न वदन, मुख के सामने मुख नासिका के सामने नासिका आदि सब सूधा शरीर रक्खें ।„

वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करै। जब उपस्थेन्द्रिय स्त्री की योनि में प्राप्त हो उस समय अपना वायु (गुदा) और योनि इन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खींचकर गर्भाशय में स्थित करे,

फिर कुछ ठहर कर पुरुष मूत्र त्याग के लिये जावे और स्त्री विशेष ठहर कर मूत्र त्याग को जावे । पश्चात् हाथ आदि धो, गुन गुनासा दूध यथा रुचि पीवें

स्नान

इस दूध में छोटी इलायची उबालते समय डाली हुई होनी चाहिये । दूध से बढ़ कर वाजीकरण औषधि अन्य कोई नहीं हैं । जिस पुरुष वा स्त्री की प्रकृति वात कफ प्रधान हो वह यदि दूध में केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री औटाये हुए दूध में पीये तो हितकर हैं। पित्त प्रधान प्रकृति वाले को केवल इलायची वाला दूध ही ठीक है। कस्तूरी १ चावल भर (अर्थात् १ रत्ती के ८वें भाग से अधिक न हो) जायफल जावित्री १।१ मासा और इलायची छोटी ३ मासे जबकि दूध १ सेर हो । इसके पश्चात् पृथक् पृथक् खाट पर शयन करें और सदैव अपने अपने सोने के लिये पृथक् पृथक् खाट रक्खें। प्रातःकाल शौच आदि से निवृत हो स्नान करें ।

दूसरे दिन अथवा दूसरे मास अर्थात् जिस दिन गर्भ का निश्चय हो जावे उसदिन

"गर्भ के निश्चय होने पर विशेष हवन„

अथवा दूसरे मास के आरम्भ में निम्न लिखित ७ मन्त्रों से होम करके आहुति दें । यदि दूसरे मास के आरम्भ में स्त्री रजस्वला हो तो इन मन्त्रों से आहुति देने की आवश्यकता नहीं है किन्तु जब किसी समय गर्भस्थिति का निश्चय हो जावे तो इन मन्त्रों से आहुति देना चाहिये । इन मन्त्रों का अभिप्राय गर्भस्थ बालक की दशा और फड़कने तथा हिलने झुलने का वर्णन करना है ।

मन्त्र १

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि नदी वा सरोवर पर वायु के लगने से जिस प्रकार लहरें उठती हैं उसी प्रकार माता को प्रायः तीसरे मास के पश्चात् बच्चा गर्भ में फड़कता या हिलता जुलता मालूम देता है और साथ ही इस मन्त्र में बतलाया है कि बच्चा गर्भ में पूरे दशमास का होकर बाहर आवे । जहां दशमास का उल्लेख है वहां दश चान्द्रमासों से अभिप्राय है। दो सौ अस्सी २८० दिन बच्चा गर्भ में रहता है और चान्द्र मास २८ दिन का होता है । इस लिये दस मास में २८० दिन पूरे हो जाते हैं।

इस से पहिले कई मन्त्रों में ऐसा वर्णन आया है कि बच्चा १० वें मास में उत्पन्न हो तो वहां सौर मास समझना चाहिये और सौर मास के ६ महीने और १० दिन

प्रायः स्त्री जानती हैं कि ६ मास और ६ दिन पीछे प्रसव तिथि आती है। गर्भाधान की तिथि को लिख रखने से प्रसव के दिन का पता लगजाता है।

मन्त्र २ — दूसरे मन्त्र में विशेष करके यह बतलाया है कि गर्भगत बालक के उत्पन्नहोने के पीछे जरायु भी भले प्रकार निकलना चाहिये। जो स्त्री गर्भ की दशा में नीरोग रहती है उसका जरायु बालकउत्पत्ति के पीछे सुगमता से निकल आता है।

मन्त्र ३ — तीसरे मन्त्र में यह बतलाया है कि गर्भगत बालक को चोट आदि से बचाने के लिये बहुत आवश्यकता है और इसी लिये वैद्यक शास्त्र में गर्भिणी स्त्री को अधिक भार न उठाना, अधिक ऊँचे न चढ़ने आदि अनेक कर्मों से बचने को कहा गया है जिन से गर्भ की क्षति पहुंचने की संभावना है।

मन्त्र ४ — चौथे मन्त्र में यजुर्वेद के वचनों में उन्हीं भावों को प्रकट किया गया है। एक बात कोही भिन्नभिन्न मन्त्रों द्वारा प्रकट करने का अभिप्राय उस के महत्व को दर्शाने और ताकीद करने का है।

मन्त्र ५ — पांचवें मन्त्रमें बतलायाहै कि जिस स्त्री की योनि रोग रहित होगी उस के गर्भस्थ बच्चों के ठीक ठीक अंग और प्रत्यंग बनने की सम्भावना है

मन्त्र ६ — इस में बतलाया है कि जो स्त्री दिन में परिश्रम करती है और रात को ठीक ठीक निद्रा लेती है — जिस के प्राण और अपान नियमानुकूल काम करते हैं—जिसे भूख लगती है और बल की प्राप्ति होती है वही स्त्री वीर्यवान् अर्थात् उत्पादन शक्ति से युक्त होती है।

मन्त्र ७ — अन्तिम मन्त्र में कहा गयाहै कि जो स्त्री उत्पादन शक्ति युक्त होगी उस की एक के पीछे दूसरी सन्तान भी वैसी ही वीर्यवान् होगी अर्थात् वह आयु में कई उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने योग्य होसक्ती है। वेद में 'पुत्र' शब्द सन्तान के अर्थ में आता है।

विवरण (नोट) इस संस्कार सम्बन्धी विषय में संस्कारविधि में एक नोट दिया गया है जिस में सर्वौषधी सेवन करने का विधान है। लिखा है कि २ खंड अम्बा हल्दी अर्थात् भाग२ अम्बा हल्दी लेनी चाहिये। पं० दत्तराम चौबे ने अपनी पुस्तक अभिनव निघण्टु के पृष्ठ ५६ पर अम्बा हल्दी के और नाम इस प्रकार लिखे हैं।

संस्कृत—आम्रगन्धा।

हिन्दी—कपूर हल्दी—आंबाहल्दी।

बंगला— आम आदा।

मरहठी–आवे हलद।

गुजराती–आंबाहरदर।

२ खाने की हल्दी १ भाग

३ चन्दन १ भाग; इसे गुजराती में सूखड़ भी कहते हैं। ४ मुरा एक भाग। अन्य भाषाओं में मुरा के नाम –:

सं० मुरा।

हिं० कपूर कचरी।

बं० मरा० एकांगीमुरा।

गु० मुरा० कपूर कोचली।

५ कुष्ठ एक भाग। इस के अन्य नाम –:

सं० कुष्ठ।

हिं० कूठमीन।

बं० कुड।

म० कोष्ठ।

गु० कठ

६ जटा मासी १ भाग। अन्य नाम –:

सं० जटा मांसी।

हिं० बालछड़।

गु० जटामांसी।

७ मोर वेल। इस के अन्य नाम –:

सं० मूर्वा।

हिं० चुरन हार।

बं० मर्वा।

गु० मोर वेल; मुर्दे विलूडी।

म० गोनस पत्रा, मोरबेल।

८ शिलाजीत १ भाग। यह सर्वत्र इसी नाम से प्रसिद्ध है। ६ कपूर एक भाग। १० मुस्ता १ भाग –:

सं० मुस्ता।

हिं० मोथा।

गु० मोथ।

११ भद्रमोथ १ भाग। अन्य नाम —:

सं० भद्रमुस्तक।

हिं० नागर मोथा।

गु० नागर मोथा।

इन सब औषधियों को समचूर्ण कर उदुम्बर अर्थात् गूलर की लकड़ी के बने हुये पात्र में डाल कर गाय के दूध के साथ उसे दही जमाना लिखा है। गूलर की लकड़ी पौष्टिक है इस लिये उसका बना हुआ पात्र लेने को कहा गया है। जैसे पात्र में जो औषधि रक्खी जावेगी रसायन योग से उस पात्र का गुण अवश्य औषधि में आता है।

फिर लिखा है कि गूलर की लकड़ी की मन्थनी से उस में से मक्खन निकाले और मक्खन को गर्म कर उसका घी बनाकर उसमें निम्न लिखित सुगन्ध वाले द्रव्य मिलावे—केशर, कस्तूरी, जायफल इलायची, और जावित्री। सेरभर दूधमें उक्त सम्पूर्ण चीजें १ छटांक हों।

पूर्वोक्त जो सर्वौषधि लिख आये हैं उन में से आंबा हल्दी १० माशे और शेष दश औषधियां पाँच पाँच माशे लेनी चाहियें जिस से सब मिलाकर ६० माशे या ५ तोला अर्थात् १ छटांक हों।

और दूध जिस में डालकर दही बनानी है वह एक सेर पक्का अर्थात् ८० तोला लेना चाहिये। इस प्रकार जितना घी बनै उस में कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ इस परिमाण से डाले कि यदि सेर भर घी हो तो कस्तूरी १ रत्ती, केशर १ माशे, जायफल १ माशा, इलायची १ माशा और जावित्री १ माशा डाली जावे।

एक सेर दूध से यदि एक छटांक घी बने तो उस दशा में रत्ती का सोलहवाँ भाग कस्तूरी और आधी रत्ती केशर आदि डालेजावें।

नित्य प्रातःकाल इस सर्वौषधि घृत तथा सुगन्धित द्रव्योंसे बने हुये घृत को लेकर ग्यारह मन्त्रों से होम करने का विधान है। जिस रात्रि में समागम करना हो, उस दिन होम करके अर्थात् प्रातःकाल दोनों जने खीर भात (पके हुये चावल) मिला कर यथा रुचि भोजन करें। ऋषियों का कथन है कि इस प्रकार उत्तम आहार तथा हवन करने के पश्चात् समागम करने से अपूर्व गुणयुक्त सन्तान होगी अक्षरशः सत्य है।

अनुमान है कि शृंगीऋषि ने महाराज दशरथ को यही घृत खिलाया होगा औरइसी से हवन विशेष कराया होगा।

यदि कन्या उत्पन्न करने की इच्छा हो तो लिखा है कि पूर्वोक्त प्रकार से घी सिद्ध करके जल में पके हुये चावलों में डाल कर उसके साथ गूलर के पात्र में जमाए हुये साधारण दही को खाना चाहिये। उस विधि से अपूर्व कन्या होनी सम्भव है।

मांस, मदिरा, अण्डे आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि लिखा है कि आहार के शुद्ध होने से वीर्य शुद्ध होता है और वीर्य के शुद्ध होने से बुद्धि की शक्तियां महान् होती हैं।

फिर लिखा है कि रजस्वला होने में १२ । १३ दिन रहने पर शुक्ल पक्ष में बारह दिन तक पूर्वोक्त घृत मिलाकर खीर का भोजन करै और साथ ही १२ दिन का व्रत भी करै अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत पाले । इसका यह प्रयोजन नहीं कि वे दोनों काल खीर ही खावें। हाँ प्रातःकाल यथारुचि खीर खाना ही चाहिये और जो अन्य पदार्थ खाने के हों उन में भी मिताहार के नियम को लक्ष्य में रक्खें। आगे लिखा है कि जब दो ऋतुकाल व्यर्थ जावें तो तीसरे मास में ऋतु दान का दिन पुष्य नक्षत्र युक्त निश्चय करना चाहिये। जब चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र युक्त होता है तो जल के समान रस आदि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है जिस से जलतत्व रस और वीर्य जो रस का सार है कुछ वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस दिन प्रातःकाल प्रथम प्रसूता गौ का दही (यह इस लिये कि प्रथम प्रसूता गाय का दूध उसकी तरुण अवस्था के कारण अधिक गुणवाला है) दो माशे, यव के भुने हुये दाने पीस कर दो माशे, इन दोनों को मिला कर पत्नी के हाथ में देना चाहिये। फिर पति पूछे कि "किं पिबसि" अर्थात् क्या ग्रहण करती हैं। इस प्रकार तीन बार पूँछे जिस से उस के मन पर मेस्मेरिज्म के समान प्रभाव पड़े और उस की इच्छाशक्ति प्रबल होजावे और उस के विचार में सन्तति का ध्यान बँध जावे और वह उत्तर में कहवे कि 'पुंसवनम्' अर्थात् वीर्यवान् सन्तान को ग्रहण करती हूँ। इस वाक्य को वह उत्तर में तीन बार बोले और फिर उस दही और यव को खा जावे। इसी रीति से पुनः पुनः तीन बार यह क्रिया करनी चाहिये जिस से स्त्री की मानसिक शक्ति बढ़े। तत्पश्चात् शंखाहुली जिस के भिन्न २ नाम इस प्रकार हैं—:सं० शंखपुष्पी, हिं० संखाहुली, बं० चोरकाँचली म० शंखाहुली और गुजराती शंखावली तथा भटकटाई ओषधि जिस के भिन्न २ नाम हि० कटेली, बं० कण्टकारि, मराठी में रिंगणी और गुजराती में भोरिंगणी तथा राजपूतानी में कटाली या कटियाली कहते हैं। इन दोनों ओषधियों को लेकर जल में बारीक घिस कर उस का रस कपड़े में छानकर ३ माशे के लग भग पति पत्नी की दहिने नथुने में सेचन करै। इस नस्य का फल शीघ्र ही नसों द्वारा धारण शक्ति गर्भाशय में और वीर्य को बढ़ाता है।

"भटकटई,, यह अपूर्व गुण युक्त ओषधि है जिसके सेवन से वीर्य वृद्धि होती है। और दिमाग की निर्बलता अर्थात् पागलपने का रोग तक मिट जाता है। भटकटई जो यहाँ लेनी चाहिये इसका हिन्दी नाम सफ़ेद कटेली है तथा अन्य संस्कृत नाम 'चन्द्रहासा, 'लक्ष्मण, 'क्षेत्रदूतिका, 'गर्भदा, 'चन्द्रमा, हैं। इसका गुण वैद्यक शास्त्र में गर्भकर्ता लिखा हैं।

उत्तर हिन्दुस्तान में इस लक्ष्मण औषधि का गुण इतना प्रसिद्ध है कि वैद्य इस के सेवन से शर्तिया सन्तान उत्पन्न कराते हैं।

शंखा हुली के विषय में आयुर्वेद में लिखा है कि इसका दूसरा नाम शंखपुष्पी है और गुण स्मरणशक्तिवर्द्धन तथा वीर्य प्रगट करना है। जब दो अपूर्व औषधियें ऐसी हैं जिनका गुण वीर्यवर्द्धन और गर्भधारण कराना है तो फिर सन्तान के होने में क्या सन्देह है!

जादू टौना

पति के स्त्री से प्रश्न पूंछने और यव दही खिलाने तथा नस्य देने की क्रिया को लोग 'जादू टौना, कहते हैं। प्रश्न पूंछने से स्त्री के मन को सन्तान उत्पत्ति की तरफ़ लगाना ही अभिप्राय है। प्रार्थना से भी यही मानसिक वल प्राप्त होता है अतः लोग इस प्रार्थना और सम्वाद को 'जादू, कहते हैं, और जो नस्य द्वारा लक्ष्मण औषधि का सेवन कराना है, उसे उसके अपूर्व फल देख कर 'टौना, कहते हैं। वास्तव में जादू टौना कुछ नहीं है। प्रथम क्रिया योगका अंग वा मेस्मेरिज्म है जिससे मनकी वृत्तियाँ दृढ़ होती हैं और सन्तान उत्पन्न करने के लिये स्त्री के मन में रुचि दृढ़ होजाती है। जो स्त्री पुरुष सन्तानोत्पत्ति के लिये रुचि ही नहीं रखते उनके, चाहे वे कितने ही वलवान् हों उत्तम सन्तान कम होती है। इच्छा शक्ति को दृढ़ करने के अतिरिक्त दूसरी क्रिया जो यव खिलाने और नस्य प्रयोग की है वह निस्सन्देह स्त्री के शरीर में वीर्य तथा गर्भाशय के अंगों में धारणाशक्ति बढ़ातेहैं। इस नसवार को टौंना नहीं समझना चाहिये किन्तु औषध सेवन कराने की एक विधि मात्र। जो औषधियाँ नस्य अथवा हवन के धूम से नासिका द्वारा शिर में जाती हैं वह तत्काल प्रभाव पहुंचाती हैं इसीसे अज्ञानी लोग उन्हें टौना कह देते हैं।

गर्भाधान संस्कार पर एक दृष्टि।

पुरुष स्त्री को मित्र समझते हुए और विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है इन दो मुख्य नियमों को दृष्टि में रखते हुए ही अन्य विषयों पर विचार किया गया है और किया जायगा...दम्पतीव्रत को वहुविवाह पर इसलिये उत्कृष्टता है कि दम्पती व्रत के धारण करने वाले इसी रीति पर चलते हुये सन्तानों की सबसे अच्छी और उत्तम रीति से पालन कर सकते और साथही परस्पर मित्र रहसकते हैं—स्वयम्वर करने वालों को यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि हमने विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिए करना है और जो गुण या कर्म कि सन्तानों के आत्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य में भेद डालने वाला है उस गुण अथवा कर्म के रखने वाले पुरुष स्त्री से विवाह का सम्बन्ध उत्पन्न न किया जाय—स्वयम्वर जहाँ पुरुष स्त्री को परस्पर मित्र चुनने का उत्तम अवसर देता है वहाँ उत्तम मित्रों का सबसे महान् गुण यह बतलाया है कि वह सबसे उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रखते हों—आयु सम्बन्धी विचार करते हुए याद रखना चाहिये कि जहाँ यौवन की अवस्था वाले एक दूसरे के श्रेष्ठ मित्र हो सकते हैं वहाँ यही अवस्था है जो कि उत्तम सन्तान उत्पन्नकर सकी है—विवाह का परमोद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है—विवाह करने वाले एक दूसरे के मित्र हैं और संतानोत्पत्ति की विधि सिखाना गर्भाधान संस्कार का काम है। यह हमें भूलना न चाहिये।

गर्भाधान संस्कार क्या है

यदि किसी साँचे में कोई वस्तु ढालनी हो तो पहिले इसके कि सामग्री साँचे में ढाली जाय आवश्यकीय है कि इस साँचे की मुख्य रीति पर उत्तम निर्माण किया जाय-प्राचीन आर्य्य

लोग वीय रूपी सामग्री को गर्भाशय रूपी साँचे में डालने से पहिले दोनों की शुद्धि और दृढ़ता करते थे-पुरुष स्त्री दोनों गर्भाधान करने से कई दिन पहिले इस प्रकार का भोजन अथवा औषधियाँ सेवन करते थे जिनसे कि इच्छित उद्देश्य भली भाँति प्राप्त हो सके।

यह सिद्ध ही है कि प्राचीन आर्य गर्भाधान करने से तेरह दिन पहिले इस काम के लिए तैयारी करते थे और ऋतु बन्द होने के दूसरे दिनकी रात्रि को अथवा ऋतु बन्द होने के पश्चात् जिस उचित रात्रि में गर्भाधान करना होताथा उस रात से पहिले दिन के समय सुगंधित और पुष्टिकारक द्रव्य अग्निमें जलाकर इन के धूम्र से मस्तिष्क और शरीर को बल पहुंचाते थे और हवन करते समय उन वेदमंत्रों को जो कि सेक्सूयल फिजियालोजी (समागम विधि) जेनट्यालोजी, अम्ब्रिआलोजी इत्यादि विद्याओं के महान् और सत्य सिद्धान्तों को वर्णन कररहे हैं साथ ही पढ़ते जाते थे ताकि दोनों के चित्त में गर्भाधानके समय से लेकर सन्तान उत्पन्न होने के समय तक के सर्व कर्म्मों का कर्तव्य अंकित होता जाय इसके अतिरिक्त सामगान करने से आत्मिक स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त करते थे—

एवं गर्भाधान संस्कार वह विधि सिखलाता है कि जिस पर बर्ताव करने से सन्तान उत्तम उत्पन्न होसके—यह बतलाया है कि गर्भाधान करनेसे पहिले पुरुष स्त्री को मुख्य तैयारी करनी चाहिये—इसी संस्कार का दूसरा नाम पुत्रेष्टियज्ञ है—आदि सृष्टि से लेकर महाभारत के समय तक आर्य लोग इसी रीति पर सन्तानोत्पत्ति करते थे परन्तु इस समय भूगोलभर में सन्तान उत्पन्न करने के लिए कोई विशेष तैयारी नहीं की जाती—वर्तमान पश्चिमी देशों के कई बड़े २ विद्वान् इस संस्कार की आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं परन्तु वह पूर्णविधि जो कि ऊपर वर्णन कीजा-चुकी है अभीतक उनको पूरी २ ज्ञात नहीं है—

इस संस्कारकी आवश्यकता पश्चिम में अनुभव होनेलगीहै

डाक्टर ट्राल लिखते हैं कि:—

"गर्भाधान जो कि अत्यन्त महत् कार्य है इस लिये मुख्य तैयारी इस सम्बन्धी करनी चाहिये,,

डाक्टर कौवन का वचन है कि:—"आरम्भिक तैयारी का समय गर्भाधान क्रिया से चार सप्ताह पहिले होना चाहिए इस समय में माता पिता के विचार और कर्त्तव्य उच्च श्रेणी के होने चाहिये—माता पिता को परस्पर प्रेम रखते हुए धैर्यता से उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के साधन करने चाहिए—यदि इन में शारीरिक अथवा आत्मिक निकृष्ट स्वभाव हों तो दृढ़ इच्छा से इनको दलन करना चाहिये और उनके स्थान में श्रेष्ठ यथार्थ पवित्र और स्वभाव उत्पन करना चाहिए,, (१५३ पृष्ठ से:)

"इस प्रकार की तेयारी करते हुए निर्बल माता पिता अपनी न्यूनतायें सन्तान में जाने से रोक सकते हैं,, पृष्ठ (१५२)

एमरीकन डाक्टर हौलविरुक महाशय लिखते हैं कि:—

"श्रेष्ठ सन्तान का उत्तमता से उत्पन्न करना सब से उच्चश्रेणी का काम है जो कभी इस पृथिवी पर हुआ हो हम हैरेट होस्मर की प्रशंसा के पुल बांध देते हैं जिस ने कि जेनूविया के पत्थर की मूर्त्ति घड़ी है परन्तु उस पुरुष और स्त्री की जितनी प्रशंसा करें उतनी ही थोड़ी है जो कि संसार में श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करते हैं,,

इसी संस्कार के बोधक अन्य वैदिक प्रमाण
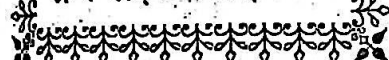
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः। प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधा पितृभ्यः॥

(यजु० अ० १६ मं० ८७)

(कुम्भः) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण—
(वनिष्ठः) सम विभाग करनेहारी
(जनिता) सन्तानों का उत्पादक
(शचीभिः) उत्तम कर्मों करके
(यस्मिन्) जिस
(अग्रे) नवीन
(योन्याम्) गर्भाशय के
(अन्तः) जो बीच होता है रक्षा करे (कैसे करें इसका उत्तर यह है कि)
(प्लाशिः) अच्छे प्रकार भोजन कराने वाला
(व्यक्तः) अनेक प्रकार की पुष्टिकारक औषधियों से युक्त
(शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त
(उत्सः) जिस से गीला किया जाता है उस कूप के समान
(दुहे) पूर्त्ति करने हारे व्यवहार में स्थित के
(न) समान
(कुम्भी) कुम्भी के सदृश जो स्त्री है इन दोनों को योग्य है कि
(स्वधाम्) अन्न देवें।
(पितृभ्यः) पितरों को अर्थात् पूर्वजों को
(भावार्थ) इस मन्त्र में प्रथम बतलाया है कि पुरुष स्त्री दोनों अपने शरीर को वीर्यादि धातुओं से भरपूर करें जैसे कि घड़ा पानी से भरपूर होता है—

(२) बतलाया है कि नवीन गर्भाशय के बीच जो गर्भ धारण होता है उसकी रक्षा करें—नवीन गर्भाशय से प्रयोजन यह है कि जब स्त्री रज रोग से रहित हो जाय— तब गर्भाधान करें और उसकी रक्षा करें—

(३) इस प्रश्न के उत्तर में कि किस प्रकार पुरुष स्त्री वीर्यादि से भरपूर हों उत्तर दिया है कि वह अच्छे प्रकार भोजन करें—पुष्टिकारक औषधियों का उचित सेवन करें ताकि दोनों के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त हो सके इसी वैदिक आशय को लेकर

उपनिषदों में और संस्कारविधि में पुष्टिकारक औषधियें और मुख्य प्रकार का भोजन खाने का विधान गर्भाधान के लिये किया गया है ॥

(४) इस मंत्र के अन्तिम भाग में यह शिक्षा है कि जहां गृहस्थी उत्तम भोजनादि से आप पुष्ट होते रहें वहां उत्तम भोजन से पूर्वजों की भी सेवा करते रहें ॥

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ।
सशुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥
[ऋ० मं० २ सू० ३५ मंत्र ४]

(अथ) वह पुरुष (शिक्वभी) शुद्ध गुण और (शुक्रेभिः) वीर्य से युक्त होकर हमारे मध्य में अपने तुल्य स्त्री को प्राप्त हो।

पुरुष को गर्भाधान के लिये उत्तम आहार व्यवहार से शुद्ध वीर्य से युक्त होने की आवश्यकता मन्त्र के इस भाग में दर्शाई गई है।

सुपुत्रां .... कृणु (ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४५)

(अर्थ) हे पुरुष ! तू सर्वगुणसम्पन्न सन्तान को उत्पन्न कर—

दोनों की प्रसन्नता जानने के लिये यह संस्कार उत्तम विधि है

जो कि स्त्री पुरुष दोनों मित्र हैं इसलिये आवश्यकीय है कि इन में से एक दूसरे पर अन्याय न करे—यदि स्त्री की इच्छा गर्भाधान के लिये विशेष समय नहीं तो पुरुष का इस पर बलात्कार करने का कोई स्वत्व नहीं—इसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को दवा नहीं सकती—यदि कोई अप्रसन्नता से गर्भाधान करेगा तो उत्तम सन्तान उत्पन्न नहीं होगी—प्राचीन आर्यों ने ज्ञात होता है कि परस्पर प्रसन्नता जानने की गर्भाधान संस्कार ही उत्तम रीति नियत की हुई थी—इस संस्कार सम्बन्धी हवन यज्ञ उस दिन किया जाता था जिस रात्रि को गर्भाधान करना हो इसलिये यदि स्त्री की इच्छा नहीं है तो वह पति को बड़ी सभ्यतापूर्वक कह सकती थी कि अब के गर्भाधान संस्कार नहीं किया जायगा—और इसी प्रकार पुरुष कहसकता था—परन्तु कोई किसी पर गर्भाधान के लिये कदापि बलात्कार नहीं करता था—आज कल एशिया और अफ़रीका में तो स्त्रियाँ पुरुषों ने विषयभोग का यन्त्र मान ही रक्खी हैं परन्तु यूरोप आदि देशों में जहाँ स्त्री को मित्र समझाजाता है वहाँ के भी बर्ताव की रीति से उन के साथ मित्रवत् शुश्रूषा नहीं कीजाती और जिस प्रकार कोर्टशिप में स्त्री की प्रसन्नता आवश्यकीय नहीं समझीजाती उसी प्रकार गर्भाधान के लिये भी स्त्री की प्रसन्नता का तनिक विचार नहीं किया जाता—हमारे इस कथन का अनुमोदन निम्नलिखित साक्षी से होरहा है:—

"परफेक्ट मैनहुड" नामी पुस्तक में मिसेज़ डफ़ी महाशयाके वचन इस प्रकार लिख हैं कि हे पुरुषो !

"निस्सन्देह निर्बल अर्द्ध भाग (अबला नारियाँ)तुम्हारे वशमें हैं—तुम्हारे बल और दातृत्व से यह प्रार्थना करती हैं कि तुम स्त्रियों के साथ अपनी आवश्यकताओं में मनुष्य बनो पशु * मत बनो,, क्या एक लेडी (स्त्री) की यह प्रार्थना सचमुच दुःख-दायी नहीं है—क्या इस स्थलपर कभी गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य पूर्ण होसकता है जहाँ कि पुरुष स्त्रियों से बलात्कार पशुत्व रीति पर सन्तानोत्पत्ति करते हों—जब-तक अन्याय के स्थान पर प्रसन्नता का नियम काम नहीं करेगा तब तक गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य कदापि पूर्ण नहीं होसकेगा—जहाँ बलात्कार का नियम काम कर-रहा है वहाँ बर्ताव से दासत्व प्रचलित है—जहाँ बर्ताव में मित्रता है वहाँ अन्याय और दासत्व ठहर नहीं सकता—

डाक्टर ट्राल अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०२ पर लिखते हैं कि:—

प्रत्येक को यह जानना चाहिये कि जब पुरुष स्त्री दोनों में से एक प्रसन्न न हो तो उस समय समागम करना अन्याय है—जब दोनों प्रसन्न हों तब ही गर्भाधान करना चाहिये और बिना प्रसन्नता के किया जायगा तो यह हानियें उत्पन्न होंगी:—

(अ) एक अथवा दोनों के गुप्त स्थान के रोग—

(ब) परस्पर वैमनस्य—

(ज) गन्दी और बुरी सन्तान और निर्जीव सन्तान—

साथ ही यह भी लिखते हैं कि इस से बढ़कर अनुचित सिद्धान्त क्या होसकता है कि ईश्वर हमारे पापों को क्षमा करता है-ईश्वर सदैव दण्डनीय को दण्ड और धर्मात्मा की रक्षा करता है पापी की कभी रक्षा नहीं करता ॥

डाक्टर कौवन महाशय ने अपनी पुस्तक के बाईसवें अध्याय में गर्भहत्या के विषय में लिखते हुए एलन आदि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि पश्चिमी देशों में इतनी गर्भहत्या होती है कि हत्या करने वालों पर "घातकों की जाति,, का शब्द यथार्थ आसकता है और जो लोग कहते हैं कि गर्भ निर्जीव होता है उनके खण्डन में पुस्तक "मेडीकेल जूरिस पिरुडेन्स" के रचियता डाक्टर बैक महाशय का प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि गर्भस्थिति के समय से ही गर्भ सजीव होता है और दर्शाया है कि यदि गर्भ में जीव आरम्भ समय से न हो तो वह गर्भाशय में सड़ जाय,गर्भ सजीव होता है इस लिये गर्भहत्या करनेवालों को वह घातक ठहराते हैं ॥

आगे चलकर पृष्ठ २८० पर लिखते हैं कि इस भारी गर्भहत्या का मुख्य कारण यह है कि पुरुष अपनी स्त्रियों की प्रसन्नता के बिना उनसे समागम करते हैं—स्त्रियाँ उस गर्भ को गिरा देती हैं जो कि बलात्कार में उनको धारण करना पड़ता है और इस

---

*ब्रूट शब्दका अनुवाद पशु किया गयाहै परन्तु यह स्मरण रहे किपशुओंमेंनर कभी ऐसी नारी के साथ समागम नहीं करता जिसको इच्छा नहीं,एवं वास्तविक मनुष्य पशु से भी गिरा हुआ है ॥

महान् गर्भहत्या के रोकने का मुख्य उपाय वह यही बतलाते है कि गर्भाधान कभी भी स्त्री प्रसन्नता के विना न किया जाय—फिर पृष्ठ ३०३ पर एक उपाय बतलाते हैं कि प्रत्येक महाविद्यालय (कालिज़) विद्यालय (स्कूल) में जहाँ और शिक्षा दीजाती है वहाँ लड़के लड़कियों को फ़िज़िआलोजी (शरीरतंत्रविद्या) और गर्भाधान सम्बन्धी शिक्षा भी आवश्यकीय दी जानी चाहिये ताकि गृहस्थी बनकर वह विषय भोग विवाह का उद्देश्य न समझें और गर्भाधान कभी स्त्री प्रसन्नता के विना न करें—यही ग्रन्थकर्ता पृष्ठ ३०४ पर बतलातेहैं कि इन स्त्रियों को अपने इन पतियों से पृथक्ता करलेनी उत्तम हैं जो कि विना इनकी प्रसन्नता के इनसे समागम करते हैं स्त्री की विना प्रसन्नता गर्भाधान करने से जो दुःख पश्चिमी देशों में फैलरहे हैं उनका अत्यन्त भयानक परन्तु सच्चा चित्र डाक्टर महाशय ने कई पृष्ठों में खेंचा है इनके लेख का सार यह है कि गर्भाधान कभी भी स्त्री की प्रसन्नता के विना न करना चाहिये ॥

दूध का जला छाछ फूंक २ कर पीता है

डाक्टर कौवन महाशय के लेख में जहाँ तहाँ इस वात पर भी बल दियागया है कि स्त्री की प्रसन्नता के विना गर्भाधान न किया जाय और दर्शाया है कि स्त्री "जब चाहे" पति को गर्भाधान के लिये प्रेरणा करे और पति को उसकी प्रेरणा स्वीकार करनी चाहिये—डाक्टर महाशयके इस लेख में त्रुटि है—उत्तम होता यदि यह डाक्टर महाशय इस वात पर बल देते कि गर्भाधान दोनों की प्रसन्नता से होना चाहिये—इस समय जो स्वत्व कि पतियों को पश्चिमी देशों में प्राप्त है इस स्वत्व का स्त्रियों को दिलाना यद्यपि समयानुसार एक सीमा तक न्याय है परन्तु पतियों को इस स्वत्व से सर्वथा निराश करने का यत्न करना सत्य न्याय से दूर है जिस प्रकार दूधका जला छाछ फूंक २ पीता है उसी प्रकार पश्चिमी विद्वान् काम कररहे हैं—परन्तु वैदिक उपदेश और वैदिक ऋषियों की शिक्षा में यह दोष नहीं हैं—वह पुरुष स्त्री के समान स्वत्व सन्तानोत्पत्ति के विषय में दर्शाते हैं उनकी निष्पक्ष शिक्षा यह है कि पुरुष स्त्री दोनों परस्पर प्रसन्नता से गर्भाधान करें यदि एक भी प्रसन्न नहीं है तो यह संस्कार नहीं है वा यह संस्कार नहीं करना चाहिये—मनुस्मृति के अध्याय तीन में मनुजीका उपदेश इस विषय में कैसा उत्तम है उनके लेख में कौवन आदि पश्चिमी विद्वानों के इस पक्षकी कि स्त्री जब चाहे पुरुष को दवा सकती है खण्डन पाया जाता है—मनुजी बतलाते हैं कि यदि पुरुष दवाव से गर्भाधान करेंगे तो सन्तान उत्पन्न नहीं होसकेगी मानो जिस प्रकार वर्त्तमान दशा में स्त्रियों की प्रसन्नता के विना गर्भाधान करने से निर्जीव वालक उत्पन्न होते अथवा गर्भ गिरजाते हैं इसी प्रकार पुरुषों की प्रसन्नता के विना गर्भाधान करने से भी निर्जीव सन्तान उत्पन्न होगी इसलिये दोनों की परस्पर प्रसन्नता आवश्यकीय है:—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥
(मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ६० व ६१)

(अर्थ) जिस कुल में नित्य स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है; उस कुल में निश्चय कल्याण होताहै ॥ ६० ॥ यदि स्त्री शोभित न हो और पति को प्रसन्न न करसके तो पुरुष के प्रसन्न न होने से शरीर में कामोत्पत्ति कभी न होकर सन्तान नहीं होती है। यदि होती है तो दुष्ट होती है--।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥
(मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ५६, ५७)

(अर्थ) जिस कुल में स्त्रियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में इन का पूजन नहीं होता वहां सम्पूर्ण क्रिया निष्फल हैं—

(विवरण) जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार होता है वहां देवता क्रीड़ा करते ह-अर्थात् वहां ऐसी उत्तम प्रशंसा से प्रशंसित सन्तान उत्पन्न होतीहैं जो देवता कहलाती हैं और जहाँ स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल जाती हैं—सब अन्य क्रियाओं में से गर्भाधान की क्रिया भी निष्फल जायगी यदि स्त्री सत्कार अर्थात् उस की प्रसन्नता के बिना कीजायगी—श्लोक ५६।

(अर्थ) जिस कुल में स्त्रियें अपने पुरुषों के वेश्यागमन व्यभिचार आदि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है और जिस कुल में स्त्रीगण पुरुषों के उत्तम आचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ५७।— (देखो संस्कारविधि गृहाश्रम पृ० १६१)

(विवरण) महर्षि दयानन्दजी ने स्त्रियों के शोकातुर होने का एक भारी कारण दर्शाया है जिस के दो विभाग हो सकते हैं (१) वेश्यागमन (२) व्यभिचार—व्यभिचार आवश्यकीय नहीं कि अन्य स्त्री से ही हो प्रत्युत एक विवाहित स्त्री से उसकी प्रसन्नता के विना विषयभोग के लिये जो समागम करना है वह भी व्यभिचार है*और यह भी स्त्रियों के अप्रसन्न रहने का एक कारण है।जिस कुल में स्त्रियें अपने अन्यायी

* व्यभिचार के निवचन के लिये देखो, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला-संख्या ७८।

और विषयलम्पट पतियों के अन्याय के कारण मन में दुःखी रहेंगी वह कुल निःसन्देह शीघ्र नाश को प्राप्त होगा—प्रथम तो वह दुःखिता स्त्री निर्जीव बालक उत्पन्न करेगी जिस से कि कुल की वृद्धि हो ही नहीं सकेगी, द्वितीय स्त्री के मन में पीड़ा होने के कारण गर्भपात हो जायगा अथवा एमरीकानिवासी स्त्रियों के सदृश वह स्वयम् ही गर्भ गिरादेगी, तृतीय यदि सन्तान जीवित उत्पन्न हो भी गई तो माता की दुर्दशा के कारण सर्वदा रोगी रहेगी और यह सन्तान बड़ी होकर आगे वंश बढ़ाने के अयोग्य होगी। मानो स्त्रियों के दुःखी होने की दशा में प्रत्येक प्रकार से कुल नष्ट भ्रष्ट होने का मुँह देखेगा। विरुद्ध इस के जिस कुल में स्त्रियें प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है, कुल का बढ़ना यही है कि सन्तान जीवित उत्पन्न होकर दीर्घायु को भोगे इस लिये प्रसन्नचित्त स्त्री ही उत्तम सन्तान को जो कि गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य है, उत्पन्न करने से कुल की उन्नति व भलाई का कारण बनती है॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥
(मनुस्मृति अ० ९ श्लो० २६)

(अर्थ) सन्तानोत्पत्ति के लिये महाभाग उदय करनेवाली पूजा के योग्य गृहाश्रम को प्रकाश करती सन्तानोत्पत्ति करने करानेहारी घरों में स्त्रियें हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मी स्वरूप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी शोभा धन और स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है (संस्कारविधि पृ० १६२)

(विवरण) इस श्लोक में जहां सन्तानोत्पत्ति का वर्णन है इस के साथ ही स्त्रियों को पूजा अर्थात् सत्कार के योग्य बतलाया गया है क्या वह पति जो स्त्री को पूजा के योग्य समझता है वह कभी उस पर अन्याय करसकता है अथवा क्या वह कभी विना अपनी स्त्री की प्रसन्नता के गर्भाधान करने का साहस करसकता है—नहीं कदापि नहीं। ऋषियों का यही उपदेश है कि किसी दशा में स्त्री पर किसी प्रकार का अन्याय न किया जाय और कभी भी विना परस्पर प्रसन्नता के सन्तानोत्पत्ति न कीजाय

वेदमन्त्र परस्पर प्रसन्नता सेही गर्भाधान करनेकी आज्ञा देते हैं ॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं १ विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः ।
(ऋ० मं० १० सू० ७१ मं० ४)

......"सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करती अपने पति की कामना

करती हुई स्त्री अपने शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है,, (देखो सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३)

इस मन्त्र के पिछले भाग में दर्शाया है कि स्त्री को गर्भाधान तब ही करना चाहिये जब कि उसके मन में पति संग करने की कामना हो और वेदमन्त्र में इस भाव का बोधन कराने वाले शब्द "पत्य उशती,, विद्यमान हैं—

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या। वपन्ति या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥
(ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ३७)

(अर्थ) हे वृद्धिकारक पुरुष ! जिसमें बीज बोया जावे जो मेरी(उशती)कामना करती हुई (ऊरू)ऊरुओं को सुन्दरता से (विश्रयाते) विशेष कर आश्रय ले अर्थात् गर्भाधान करती है (यस्याम्) जिसमें (उशन्तः) सन्तान की कामना करता हुआ मैं (शेपम्) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहराम) प्रहरण करता हूं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अत्यन्त कल्याण करने हारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये (एरयस्व) प्रेम से प्रेरणा करूं—

इस मन्त्र में (उशती) और (उशन्तः) इन दो शब्दों से दर्शाया है कि गर्भाधान करने वाली स्त्री, पुरुष की कामना करनेवाली हो और गर्भाधान करनेवाला पुरुष, स्त्री की कामना करनेवाला हो अर्थात् जब दोनों परस्पर प्रसन्न हों तबही गर्भाधान करना चाहिये—

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्ना उषसः प्रति जागरासि ॥
(अथर्व कां० १४ अ० २ मं० ३१)

हे स्त्री तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर (तल्पम्) पर्यंक पर (आरोह) चढ़कर शयन कर और (इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रह कर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां जनय) प्रजा को उत्पन्न कर (सुबुधा) सुन्दरज्ञानी (बुध्यमाना) उत्तम शिक्षा को प्राप्त सूर्य की कान्ति के समान तू उषा कालसे पहिले ज्योति के तुल्य प्रत्यक्ष सब कामों में जागती रह।

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः। सशुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥
(ऋ० मं० २ सू० ३५ मं० ४)

जैसे जलरूपी नदी समुद्र को स्वयम् प्राप्त होती है वैसे युवति कन्यायें हमको (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

इस वेदमन्त्र में स्त्री की प्रसन्नता को किस उत्तमता से नदी के अलंकार से वर्णन किया है-नदी स्वयम् विना किसी की प्रेरणा के समुद्र की ओर जाती है-इस से मन्त्र में यह दर्शाया है कि गर्भाधान के लिये जब स्त्री स्वयम् प्रसन्न हो तब ही गर्भाधान करना चाहिये-

वधूरियं पति मिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥
(ऋ० मं० ५ सू० ३७ मं०३)

हे मनुष्यो! जो (ईम) सब प्रकार की परीक्षा करके (महीषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभगुण रूप सुशीलता आदि युक्त (इषिराम्) वरकी इच्छा करने हारी हृदय की प्रिया स्त्री को पति (एति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) पति की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई यह (वधूः) स्त्री अपने पति को (एति) प्राप्त होती है वह सब प्रकार से आनन्दित होते हैं—

इस मंत्र में बतलाया है कि जो परस्पर प्रसन्नता से गर्भाधान करते हैं वे ही आनन्द को प्राप्त होते हैं—

इस मंत्र में दर्शाया है कि स्त्री गर्भाधान करने के लिये प्रसन्नचित्त होकर पर्यंक पर आरूढ होवे मानो अपनी प्रसन्नता से गर्भाधान करे।

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ। सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥
(अथर्व० कां १४ अ० २ सू० २ मं० ४३)

"हे स्त्रि और पुरुष! जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभात वेलाको प्राप्त होता है वैसे सुख से घर के मध्य में (अधि बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने हारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलने से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्र वाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवन को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारों के पार हो,,
(देखो संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण)—

इस मंत्र में दर्शाया है कि स्त्री पुरुष दोनों बड़े प्रेम से हँसी प्रमोद और प्रसन्नता के साथ उत्तम सन्तान को उत्पन्न करें—(हसामुदौ) और (मोदमानौ) ये दोनों द्विवचन शब्द हैं इसलिये पुरुष स्त्री दोनों को हास्य प्रमोद और प्रसन्नता

के साथ सन्तानोत्पत्ति आदि करने की आज्ञा वेद मन्त्र देता है—परस्पर प्रसन्नता और परस्पर प्रमोद के नियमों का वर्णन किस उत्तमता से वेदमंत्र कर रहा है वही पुरुष इस उत्तमता को अनुभव कर सकते हैं जोकि मन्त्रों के विचार के लिये कुछ समय निकाल सकते हैं—

अस्मैतिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्व सूनाम् ॥
(ऋ० १ म० २सू० ३५ मं० ५)

जैसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्वभावयुक्त विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित—(देवाय) काम के लिए (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करती हैं (कृताइव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिए स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उपपसस्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है—(स हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती हैं जैसे जलों में अमृत रूप रसको प्रथम प्रसूता स्त्रियों का बालक दूध पीकर बढ़ता है वैसे इस ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं—

(संस्कार विधि पृष्ठ १४४)

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि उत्तम मध्यम और अधम तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य करने वाली अर्थात् भिन्न २ आयुओं में विवाही गई सर्व स्त्रियों को प्रसन्नता से गर्भाधान करना चाहिये और गर्भाधान को पीड़ा से रहित कामकी उपमा देने से पाया गया कि गर्भाधान क्रिया बिना पीड़ा के करनी चाहिये—क्योंकि जिसकी प्रसन्नता के विरुद्ध क्रिया की जाय उसको अवश्य पीड़ा पहुंचेगी—इस मन्त्र में यह भी बतलाया गया है कि ये सब बातें बिना शिक्षा के प्राप्त नहीं होसकतीं वही स्त्री पुरुष गर्भाधानसंस्कार कर सकते हैं जोकि शिक्षा पाये हुये हैं इसलिए लड़के लड़कियों को गर्भाधान विद्या की शिक्षा देने की आवश्यकता मन्त्र ने दर्शाई है फिर मन्त्र उपदेश करता है कि जो स्त्री पुरुष पीड़ा के स्थान प्रीति से एक दूसरे से सम्बन्ध (गर्भाधान) करते हैं वही आनन्द को पाते हैं और इससे अधिक ऐसे गर्भाधान से उत्पन्न हुई सन्तान अवश्य बढ़ती अर्थात् जीवित और पुष्ट रहती है और जो सन्तान जीवित और पुष्ट होगी वह आगे भी वंश चला सकेगी—

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् । आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि ॥ (ऋ० ५ मं० २ सू० ५ मं० ६)

(अर्थ) "वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को (द्रुहः) विरुद्धादि दुर्गुण और (रिषः) हिंसादि पाप (न सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं उनके इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है,, (संस्कारविधि पृष्ठ ११४)

इस मंत्र में पहिले बतलाया है कि स्त्री पुरुष के मध्य द्रोह कदापि नहीं रहना चाहिये—फिर दर्शाया है कि उत्तम स्त्री पुरुषों को हिंसादि पाप सम्बन्ध नहीं करने अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुष हिंसा से बचते हैं—यदि पुरुष बलात्कार स्त्री से संग करता है तो वह निस्सन्देह हिंसाका भागी होता है—यदि स्त्री ऐसा करती है तो वह भी हिंसा दोष से बच नहीं सकती स्त्री गर्भहत्या करती है तो भी वह हिंसा करती है अथवा यदि पुरुष स्त्री माँस अण्डे खाते हैं तौ भी हिंसा के भागी होते हैं इसलिये वेदमंत्र ने सिद्धान्त की रीति पर सब प्रकारकी हिंसाका निषेध कर दिया है, यह प्रकट रहे कि हिंसा और द्रोह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। एवं वेदका उपदेश है कि पुरुष स्त्री माँसाहार गर्भहत्या और परस्पर द्रोहका त्यागकर आनन्द पूर्वक गर्भाधान करें और किसी प्रकार के हिंसारूपी पाप के भागी न बनें—

ऋतुदान गर्भाधान संस्कार का वर्णन करते हुए हमने दर्शाया है कि जहाँ स्त्री पुरुष को इस संसार के लिये विशेष तैयारी की आवश्यकता है वहाँ इन के लिये आवश्यकीय है कि परस्पर प्रसन्नता से गर्भाधान करें नहीं तो सन्तान कभी उत्तम उत्पन्न नहीं हो सकेगी—अब हम दिखाना चाहते हैं कि गर्भाधान कब करना चाहिये—

सृष्टि में जहाँ उत्पत्ति का नियम विदित होता है वहाँ उसके साथ ऋतु का सम्बन्ध लगाहुआ पाया जाता है—गेहूं बोने की मुख्य ऋतुहै, पशु मुख्य ऋतु में आपस में मिलते हैं—ऋतुपर बोयाहुआ बीज कभी निष्फल नहीं जाता—बीजकी रक्षा और बढ़ती के लिये जो वस्तु आवश्यकीय होती हैं वह विशेष ऋतु में ही उत्तमता और सहज से प्राप्त होती हैं-इसलिये कृषिकार सब ऋतुपर ही पौदे लगाते अथवा बीज बोते हैं-जब साधारण माली अथवा कृषिकार अपने बीज को नष्ट करना नहीं चाहतेतो क्या मनुष्य को अपने परम धातु अर्थात् वीर्य को ऋतु काल के विना बो कर नष्ट करदेना चाहिये! नहीं कदापि नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिये मनुष्य को जहाँ परस्पर प्रसन्नता के नियम पर चलने की आवश्यकता है वहाँ साथही ऋतुकाल के नियम पर चलना जरूरी है इस विषय में महर्षि मनुजी का उपदेश इस प्रकार है:-

(विवरण) १-रस रक्त आदि सप्तधातु आयुर्वेद में बतलाई गई हैं उनमें सातवाँ अर्थात् महान् उत्कृष्ट धातु वीर्य कहाता है-धातु शब्द के अर्थ यहाँ पर धारण करने वाले पदार्थ के हैं-अंग्रेज़ी शब्द बेसिस्आफ लाइफ धातु शब्द का अनुवाद समझना चाहिये—पश्चिमी लोग प्रोटोपिलाज्म (वीर्यरूपी ओज) को फ़िज़िकल बेसिस आफ़ लाइफ़ ठहराते हैं एवं वीर्य अत्युत्तम धातु है प्रोटोपिलाज्म को संस्कृतमें

ओज जो कि वीर्यकी एक मुख्य अवस्था है कहागया है—डाक्टर ट्रालने जो अपनी नवीन मुद्रित पुस्तक के पृष्ठ २६५ पर वीर्यका वर्णन किया है उस में उन्होंने प्रोटोपिलाज्म को वीर्य के अर्थों में लिखा है—जिस से भी इस बात की पुष्टि होसकती है कि पश्चिमी देशों के अनेक विद्वान् वीर्य और प्रोटोपिलाज्म में न्यून अन्तर पाते हैं—सुश्रुत में लिखा है कि अष्टममास में जो बालक उत्पन्न होता है वह इसलिये जीवित नहीं रहता कि इस में ओज पुष्ट नहीं होता यदि प्रोटोपिलाज्म जीवनाधार है जैसा कि पश्चिमी विद्वान् बतलाते हैं तो इस ओज को जो कि वीर्य ही से बनता है जीवनाधार समझना चाहिये—

सप्तधातु, ये हैं ।

(१) रस	(1) Chyle
(२) रक्त	(2) Blood
(३) मांस	(3) flesh
(४) मेदा	(4) Fat
(५) अस्थि	(5) Bone
(६) मज्जा	(6) Marrow
(७) वीर्य	(7) semen

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥
पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।

ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥

(मनु० अ० ३ श्लो० ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०)

(अर्थ) " सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री से समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे—जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती—पुरुष जब ऋतुदान देता हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पूर्णमासी, अमावस, चतुर्दशी, व अष्टमी आवें उसको छोड़ देवे इन में स्त्री पुरुष रतिक्रिया कभी न करें (४५) स्त्रियों की स्वाभाविक ऋतुकाल की सोलह रात्रियाँ हैं अर्थात् रजोदर्शन के दिन से सोलहवें दिन तक ऋतुसमय है—उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेकर चार दिन निन्दित हैं—प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् इस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहे क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महान् रोग कारक है—रज अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीप व रुधिर निकलता है वैसा है,, (४६)

"जैसे प्रथम की चार चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित हैं और शेष रही दश रात्रि सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं,, (४७)

"जिनको पुत्र की इच्छा होवे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इन में भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा होवे पाँचवी, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं यह चार रात्रि उत्तम समझें इस से पुत्रार्थी युग्म रात्रि में ऋतुदान देवे,, (४८)

(विवरण) "रात्रि गिनना इस लिये है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है,,

"पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण अल्प वीर्य्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिरजाना,, (४९)

"जो पूर्व निन्दित आठ रात्रि कह आये हैं उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसताहुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है,, (५०)

(देखो संस्कारविधि गर्भाधान प्रकरण)

उन श्लोकों की व्याख्या

(१) पर्वतिथि पर गर्भाधान का निषेध

पर्वतिथियों पर गर्भाधान का निषेध है इसकी व्याख्याः प्राकृतिक भूगोल विद्या (फ़िज़िकल जौग्राफी) के पश्चिमीय विद्वान इस

सिद्धान्त का भली प्रकार स्वीकार करते हैं कि चन्द्र के आकर्षण का विशेष प्रभाव पृथिवी के जल पर पड़ता है और इसी लिये पूर्णमासी और अमावस्या को समुद्र के तट पर जल का भारी उभार देखने में आता है। कृष्ण तथा शुक्लाष्टमी को जल में वह उभार अथवा वह वृद्धि नहीं रहती किन्तु उस के स्थान में ह्रास अर्थात् जल का उतार समुद्र तट पर दृष्टिगोचर होता है। इस का कारण पश्चिमी विद्वान् यही मानते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वीस्थ जल पर भारी प्रभाव डालता है। पश्चिमीय विद्वानों ने यह भी माना है कि पूर्णमासी अमावस्या इस प्रकार की अधिकता और शुक्ल तथा कृष्णाष्टमी इस प्रभाव की न्यूनता को बोधन कराने वाली तिथि हैं। प्राचीन आर्य तो अति प्राचीन काल से इस बात को जानते थे कि चन्द्रमा रसोत्पादक है, इस का जल पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और न केवल समुद्र जल में ही वृद्धि और ह्रास यह लाता है किन्तु वनस्पतियों में रसवृद्धि और मनुष्य शरीर के रस रक्त आदि जलप्रधान धातुओं पर भी भारी प्रभाव डालता है। पूर्णमासी और अमावस्या के दिन मनुष्य शरीर के रसरक्त में अति क्षोभ वा अति वृद्धि होती है और शुक्ल तथा कृष्ण अष्टमी को मानवीय शरीर के रस रक्त में ह्रास होने से निर्बलता रहती है अथवा यों कहो कि पूर्णमासी अमावस्या और दोनों अष्टमियों को मनुष्य का रक्त विषम दशा को प्राप्त होजाता है, इस लिये इन पर्व तिथियों पर समागम करने से यदि गर्भ रहगया तो नये बालक के रक्त आदि दोषयुक्त होंगे अर्थात् वह दाद और फोड़े फुन्सी आदि रक्त रोगों से अधिक पीड़ित रहेगा। इस लिये मनुष्य को कभी भी पर्व तिथियों पर गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त स्त्री पुरुषों को अधिक निर्बल होने की सम्भावना है। क्योंकि इन दिनों रक्त आदि में विषमता रहती है। इसी विषमता दोष को दूर करने तथा सृष्टि सौन्दर्य अनुभव करने के लिये प्राचीन आर्य इन तिथियों पर अनध्याय रक्खा करते थे और व्यवसायी लोग (दूकानदार) भी दूकान बन्द कर छुट्टी मनाते थे।

पर्व के ६ दिन

पूर्णमासी, अमावस्या, शुक्ल और कृष्णाष्टमी यह चार तो प्रसिद्ध पर्व हैं ही। इन के अतिरिक्त दो चतुर्दशी भी अर्थात् एक अमावस्या का पहिला दिन और एक पूर्णिमा का पहिला दिन आर्य लोग पर्वतिथि मानते थे कारण कि शुक्ल चतुर्दशी में भी पौर्णिमा का सा और कृष्ण चतुर्दशी में अमावस्या का सा प्रभाव होता है।

रात्रिगमन की व्यख्या—उपरोक्त श्लोकों में मनुजी ने ये शब्द लिखे हैं कि:-

प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

अर्थात् गर्भाधान के लिये "दश रात्रियें उत्तम हैं,,।

मनुजी ने गर्भाधान के लिये दश दिन नहीं लिखे प्रत्युत रात्रियें लिखी हैं दिन में गर्भाधान करने से उष्णता अति बढ़जाती और बुद्धि मन्द होजाती है—शास्त्रकार लिखते हैं कि गर्भाधान के पश्चात् उचित समय पर स्नान करना चाहिये क्योंकि गर्भ क्रिया से शारीरिक उष्णता उत्तेजित होजाती है और इस के उत्तेजित हो जाने से

मस्तिष्क में आलस्य सा छाजाता है जैसा कि आषाढ़ के मास में दोपहर के समय जब कि उष्णता अधिक प्रबल होजाती है तो तन्द्रा (ऊंघ) सी आने लगती है-गर्भ क्रिया के पश्चात् यदि उचित समय पर स्नान न किया जाय तो शरीर शिथिल और रोगी होजाता है—यदि दिन के समय जोकि उष्णता का समय है गर्भाधान कियाजाय तो उष्णताके अत्यन्त उत्तेजित होजाने से पगलापन रोग का होजाने तक का सन्देह है—जो लोग दिन को गर्भाधान करते हैं वह भद्दे और आलसी होजाते हैं उन का चित्त काम कार्य्य को सर्वथा नहीं चाहता—

पश्चिमी देशों के अनेक डाक्टर गर्भाधान के लिये दिन का ही समय बतलाते हैं—डाक्टर ट्राल औ: कौवन-तो विशेषता से दिन के समय में ही गर्भाधान करने का उपदेश देरहे हैं—इनको अभी तक पता ही नहीं कि गर्भाधान का समय दिन अच्छा है अथवा रात्रि और हो भी क्योंकर जबतक व" वैदिक ज्योति से एक सीमा तक अपनी अश्रद्धा के कारण लाभ उठाना नहीं चाहते-- यह डाक्टर दिन के समय गमन करने के लाभ बुद्धिपूर्वक कुछ नहीं वतलाते अधिकतर, एक भ्रान्ति के कारण दिवस गमन पर बल देरहे हैं- इनका विचार यह है कि लोग जो रात्रि को गमन करते हैं वह कदाचित् इसलिये करते ह कि गर्भाधान कोई पाप कर्म्म है जिसको छिपाकर रात्रि के समय करना पड़ता है—और जो कि इन डाक्टरों के विचार में गर्भाधान पाप कर्म्म नहीं इसलिये इस को दिनधौलेमें करने की यह शिक्षा देते हैं-हम यहांतक तो इन डाक्टरों से सहमत हैं कि गर्भाधान पापकर्म्म नहीं है परन्तु हम पूछते हैं कि क्या रात्रि के समय जो कर्म्म किये जाते हैं वह सब पाप कर्म्म ही होते हैं!--और क्या दिन को जो कर्म कियेजाते हैं वे सब पुण्यरूप ही होते हैं। वह कभी इस बात को सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि दिनमें पाप नहीं किया जा सकता और रात्रि में पुण्य कर्म नहीं हो सकता जब यह बात है तो इन का यह कारण यथार्थ नहीं है-दूसरी और अन्तिम तर्क डाक्टर कौवन महाशय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १७१ पर दिवस गमन सम्बन्धी यह दी है कि दिन के बारह बजे तक मनुष्य में पूर्ण बल होता है इस कारण दिनके समय अर्थात् दोपहरको गर्भाधान करना चाहिये-यहां पर डाक्टर महाशय से भूल इस कारण से हुई है कि प्रथम उन्होंने इस बात का विचार नहीं किया कि गर्भाधान क्रिया से कितनी उष्णता मस्तिष्क में बढ़जाती है- दिन के समय जब कि पहिले ही मस्तिष्क उष्ण होता है उस समय इस क्रिया के करने से शिरःपीड़ा और अनेक दशाओं में सन्निपात अथवा विक्षिप्तता आदि कई प्रकार के रोगों के होजाने का सन्देह है। द्वितीय मस्तिष्क शक्ति और शारीरिक शक्ति में इन्होंने अन्तर नहीं रक्खा-अर्द्ध रात्रि से लेकर दिन के बारह बजे तक मनुष्य की मानसिक शक्ति और दिनके बारह बजेसे लेकर अर्द्ध रात्रितक शारीरिक शक्ति पूर्णताको पहुंचती है-गर्भाधान कई रेखा गणित की साध्य (शकल) का साधन (हल) नहीं जिसमें कि अधिक तर मस्तिष्क अथवा मानसिक शक्तिसे काम लेना है वरन् यह कर्म्मेन्द्रियों का कार्य है जो कि विशेषकर

शारीरिक अवस्था से सम्बन्ध रखाता है इसलिये उसका समय दिन के स्थान में रात्रि का होना चाहिये था–डाक्टर कौवन् महाशय के विचारका खण्डन एमरीका के फिलासफर डेवस महाशय के निम्नलिखित लेख से भी होरहा है:-

"दो पहर के उपरान्त का समय शारीरिक कामों के लिये अत्यन्त योग्य है रात्रि का समय विचार व शोच और पठन के लिये ठीक नहीं वरन साधारण कार्य और मेल जोल के लिये उचित है—रात्रि के नौ बजे का समय प्रेम के भोग (गर्भाधान) के लिये स्वाभाविक और उचित है,, (देखो पुस्तक हारमोनिया जिल्द ४ पृ० १७८ व २९९)

परन्तु सब से पुष्ट कारण यह है जैसा कि उपरोक्त संक्षेप रीति पर लिख आये हैं कि रात्रि गमन से मस्तिष्क में उष्णता अधिक नहीं बढ़ती—गर्भक्रिया से शारीरिक उष्णता प्रबल हो जाती है और दिन के समय जब कि पित्त का राज्य है यह क्रिया करती शिरः पीड़ा और रोग उत्पन्न करदेती है—दिन के समय में सोने से क्यों शिरः पीड़ा होने लगती और शरीर निर्बल हो जाता है इसका कारण यह है कि सोने से मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है और मस्तिष्क में जब उष्णता अधिक हो जाय तो शिरः पीड़ा होने लगती है—इस बात की पुष्टि में कि गर्भक्रिया से उष्णता उत्तेजित हो जाती है हम महर्षि सुश्रुतकार जी का वचन लिखते हैं:—

तत्र स्त्री पुंसयोःसंयोगे तेजः शरीराद्वायु रुदीरयति मतस्तेजोनिलसन्निपातात् शुक्रम् ॥ २ ॥

(सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३)

(अर्थ) स्त्री पुरुष के संयोग होने पर जो उष्णता उत्पन्न होती है वह शरीरमें वायु को उत्कट करती है फिर उस गर्मी और वायु के मेल से पुरुष का वीर्य निकलता है-

नियम सं० ३ रजस्वला से समागम का निषेध और ऋतुकाल का निश्चय

सारे विद्वान् इस विषय में सहमत हैं कि रजस्वला स्त्री से समागम न कियाजाय नहीं तो दोनों को कठिन रोग होने का भय है—स्वास्थ्य की दशा में स्त्रियों का प्रायः चौथे दिन रज बन्द होजाताहै—इस लिये चौथे दिन के पश्चात् गर्भाधानका समय आरम्भ होताहै—लेडी डाक्टर—मैरी बैल फोर, महाशया लिखतीहैं कि "ऋतु के दिनों में गर्मी और सर्दी से बचाव करना चाहिये—नाच—खेल—कूद अथवा व्यायाम नहीं करना चाहिये यदि भारी काम करैगी तो रक्त की थैली फट जायगी,, इसी कारण से ऋषि लोग वतलाते हैं कि इन दिनों स्त्री पृथक् बैठी रहे और किसी वस्तु को न स्पर्श करै—फिर वही लेडी डाक्कर लिखतीं हैं कि:—"ऋतु के दिनों में शीतल जल से स्नान करना अथवा पग धोना अत्यंत हानिहारक है—इन दिनों बुद्धि मलिन और शरीर शिथिल होता है—इन दिनों मैं पढ़ना या पाठशाला में जाना ठीक नहीं

वर्फ का पानी पीना अत्यन्त हानि कारक है जो स्त्रियें कि रज को रोकने का यत्न करती हैं उनका गर्भाशय सूझ जाता है और बहुत दुःख पाती हैं,,

मनुजी के वचनानुसार ऋतुकाल की अवधि सोलह रात्रि तक है जिस में से चार रजकी रातें ग्यरहवीं और तेरहवीं रात त्यागने के योग्य बतलाई गई हैं शेष जो दश रात्रियें रह जाती हैं उनको गर्भाधान के लिये उत्तम बतलाया गया है—

इस विषय में डाक्टर ट्राल महाशय अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०६ पर लिखते हैं कि "पन्द्रह वर्ष हुए कि मैंने यह नियम प्रकाशित किया था और सहस्रों मनुष्यों ने इसकी परीक्षा की और वह कृतकार्य हुए थोड़े से अकृतकार्य रहे—और वह नियम यह है कि "रज बन्द हो जाने के पश्चात् एक प्रकार की आर्त्तव स्त्री के गर्भाशयसे निकलनी आरम्भ होती है और दशबारह दिन तक जारी रहती हैं-यदि रज के बन्द हो जाने के दिन से लेकर इन दश या बारह दिनों के मध्य समागमन किया जाय तो गर्भस्थिति कभी नहीं होगी-,,

इस में डाक्टर ट्राल ने बारह दिन ऋतुकाल की अवधि बतलाई है और यहीमनु जी ने दर्शाई है-परन्तु मनु जी ने इन बारह दिनों में से ग्यारहवीं और तेरहवींरात्रि जिन में प्राय, गर्भस्थिति की कम आशा है त्यागनी दर्शाई हैं सहस्रों परीक्षाओं के पश्चात् पश्चिमी डाक्टर यहां तक पहुंचे हैं अभी सहस्रों परीक्षा और करने पर पश्चिमी विद्वानों को ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि में वीर्य दानकी निष्फलता सिद्ध होगी-तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे ऋषि सिद्धान्त के अति निकट आ रहे हैं-

यदि ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि में समागम करने से वीर्य व्यर्थ जाता जिस प्रकार कि पर्व तिथि पर समागम करते से होता है तो मनुजी इस का निषेध पर्वतिथि के साथ २ करते परन्तु जो कि उन्होंने ऐसा नहीं किया इस लिये ज्ञात होता है कि इन रात्रियों में स्त्री का आर्तव निर्बल होता होगा और यदि इन रात्रियों में गर्भस्थिति होजाय तो बलवान् सन्तान उत्पन्न नहीं होसकेगी-इसी कारण से इसको त्यागने योग्य कहागया है ऐसा प्रतीत होता है—डाक्टर ट्राल महाशय ने (पृष्ठ २०८) पर जो यह लिखा है कि इससे हमको यह अनुमान करने में सहायता मिलती है कि ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि की आतव निवल होता होगा--

"सहस्रों परीक्षाओं से यह ज्ञात हुआ कि एक चौथाई स्त्रियों की दशा में आर्तव पांचवें—छटे और सातवें दिन रज बन्द होजाने के पश्चात् योनि के मुख की ओरउतरा—जिन का छटे दिन उतरा उनकी संख्या सबसे अधिक थी औरःशेष आठवें चौथे—नवें—तीसरे और दशवें दिन,,

इस लेख से पायाजाता है कि एक मुख्य दिन स्त्रियों की संख्या गर्भधारण करने के अति योग्य थी—यदि किसी मुख्य दिन गर्भधारण करने की योग्यता स्त्रियों में अधिक होती है तो क्या इस के विरुद्ध एक अथवा दो दिन ऐसे नहीं होसकते जिनमें कि स्त्रियों में गर्भधारण करने की योग्यता सबसे कम हो और वह दिन हमें ग्यारहवें और तेरहवें प्रतीत होते हैं—

मनोकामनानुसार सन्तानोत्पत्तिकरना

वर्त्तमान पश्चिमी देशों के विद्वानों की अपेक्षा महर्षिगण उत्तमता से परीक्षा करने की योग्यता रखतेहुए किसी सिद्धान्त का सहज से निश्चय करसकते थे—ऋषियों को अपनी परीक्षाओं में सिद्धि शीघ्र इसकारण होती थी कि वे बाह्यसाधनों के अतिरिक्त योगवल का अन्तरीय साधन भी रखते थे—जो कि अभी पूर्ण अवस्था में पश्चिमी विद्वानों के पास नहीं है—ऋषियोंने योगवल से और परीक्षा करके इस बात का निश्चय किया था कि पांचवीं—सातवीं—नवीं और पन्द्रहवीं रात्रि को स्त्री को पुरुष आर्तव पुरुष केवीर्य की अपेक्षा अधिक होता है-

और यदि इन रात्रियों में गर्भाधान हो तो कन्या उत्पन्न होगी उन्होंने यहभी अनुभव किया था कि छटी आठवीं दशवीं बारहवीं—चौदहवीं और सोलहवीं रात्रि को स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा कम बलवान होता है इस लिए इन रात्रियों में गर्भाधान करने से लड़के का जन्म होसकता है—जहां उन्होंने यह अनुभव किया था वहांपर उन्होंने यह भी प्रतीत किया था कि ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि को स्त्री का आर्तव सर्वथा निर्वल होता है जिसका प्रतिफल सन्तान निर्वल—बन्ध्या या नपुंसक उत्पन्न हो—जोकि ऋषि हमें स्वयम् सन्तानोत्पत्ति का सिद्धान्त निम्नलिखित प्रकार दर्शाते हैं इस लिये इस सिद्धान्त से हम यह अनुमान करते हैं कि अमक दिन स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा न्यून या अधिक बलवान होता होगा।

यह रात्रि मीमांसा जिस सिद्धान्तकी व्याख्या है अब हम उस सिद्धान्त का वर्णन करते हैं—और वह यह है किः—

"पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव अधिक होने से कन्या—तुल्य होने से नपुंसक पुरुष व बन्ध्या स्त्री क्षीण वीर्य से गर्भ का रहना वा रहकर गिरजाना होता है,, (५)

लड़का लड़की कैसे उत्पन्न होते हैं ? इस आवश्यकीय प्रश्न का नियमानुसार उत्तर यह है कि पुरुष के वीर्य की अधिकता के कारण लड़का और स्त्री के आर्तवकी अधिकता के कारण लड़की होती है—और किस किस दिन पुरुष का वीर्य अधिक बलवान् होता वा किस रात स्त्री का आर्तव अधिक होता है—किस भोजन से वीर्य अधिक बनता और किस भोजन से आर्तव अधिक उत्पन्न होता है इन सब बातों का वर्णन इस सिद्धान्त की व्याख्या समझनी चाहिये किसी मुख्य स्त्री का आर्तव अधिक होता है न केवल इस को ही ऋषियों ने दर्शाया है वरन अनेक प्रकार के भोजन की विधि भी बतलाई है—एक प्रकार का वह अग्निवर्द्धक भोजन है जिससे कि पुरुष में अधिक वीर्य उत्पन्न होता है कि वह लड़को उत्पन्न करसके—दूसरा वह भोजन है जिस में जल का अंश अधिक है और इस के सेवन से स्त्री में आतव अधिक उत्पन्न होसके ताकि कन्या उत्पन्न की जाय—प्राचीन समय में जो कि आयगण इन नियमों के गुणों को जानते थे इसलिये वह इच्छानुसार पुत्र कन्या उत्पन्न करने में समर्थ होतेथे।

पश्चिमी देशों में वैदिक सिद्धान्तों की जय हुई और होगी।

जो लोग सच्चे विद्यासम्बन्धी नियमों में उन्नति मानते हैं उनको इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि कभी सच्चे विद्यासम्बन्धी सिद्धान्तों में उन्नति वा अवनति नहीं होती क्या दो और दो मिलाकर चार के स्थान में उन्नति करते हुए कभी पांच कहला सकते हैं!—शास्त्रकारों का यह सिद्धान्त प्राचीन समय से उनकी पुस्तकों में लिखा था कि यदि पुरुष का वीर्य अधिक होगा तो लड़का और यदि स्त्री का आर्तव अधिक होगा तो कन्या उत्पन्न होगी—यह सिद्धान्त ज्यों का त्यों बना रहा—इस शताब्दी में पश्चिमी देशों में जर्मनी के डाक्टर सिक्स्ट महाशय उठे और उन्होंने बतलाया कि जो वीर्य, दायें अण्डकोश में बनता है वह लड़के की उत्पत्ति और बायें अण्डकोश का वीर्य कन्या की उत्पत्ति का कारण होता है—इन के सिद्धान्तानुसार ग्वालोंने पशुओं के एक अण्डकोश को निकम्मा बनाने का यत्न किया ताकि मनोकामना पूर्ण करसकें—

पश्चिमी देशों में बहुतसी परीक्षायें इस सिद्धान्त के लिये कीगईं और भिन्न-२ सम्मतियें इस विषय में प्रकाशित कीगई हैं—जिन चतुष्पादों के बाम अण्डकोश निकम्मे करदिये गये थे उनके वीर्य से नरनारी दोनों प्रकार के पशु उत्पन्न हुए और जिन स्त्रियों का एक ओर का अन्तरीय योनि अंग न था उन्होंने भी नरनारी दोनों जने—एवं सिक्स्ट महाशय का सिद्धान्त यथार्थ सिद्ध न हुआ—और दीर्घकालतक पश्चिमदेश निवासी इस बात का और कोई कारण न बतलासके कि लड़का लड़की के भेद का कारण क्या होता है!—सन् १८८६ से लेकर सन् १८९६ तक अन्य डाक्टरों ने बहुतसी परीक्षायें कीं और अधिक अनुसन्धान के पश्चात् इस प्रतिफल पर पहुंचे कि दायें वा बायें अण्डकोशों को निकम्मा बनाने की आवश्यकता नहीं यदि पुरुष का वीर्य स्त्री के आर्तव से अधिक है तो लड़का उत्पन्न होगा और दूसरी दशा में लड़की, सन् १८९७ में जो पुस्तक कि डाक्टर ट्रोल, एम, डी' ने शोधन करके छपवाई है उस में इस अन्वेषण का वर्णन है जो कि इसी विषय सम्बन्धी है। हम अत्यन्त ही संक्षिप्त शब्दों में उन के लेख का सार लिखते हैं—वह लिखते हैं कि

मिस्टर कार्ल ड्यूरिंगने इस विषय सम्बन्धी आन्दोलन किया और वह इस प्रतिफल पर पहुंचे हैं कि सृष्टि में एक नियम समानता से पाया जाता है—यदि स्वाभाविक समानता में किसी प्रकार का अन्तर डाला जायगा तो उतनीही संख्या शीघ्र उत्पन्न होजाती है इस प्रकार की जिस में कमी होगई है—पशु पक्षी सृष्टि के मध्य में ही नहीं वरन् मनुष्यों के मध्य में भी यही दशा है—युद्ध में जो कि पुरुष अधिक मारे जाते हैं इस लिये युद्ध के पश्चात् प्रायः लड़के अधिकता से उत्पन्न होते हैं—शान्ति और सभ्यता के समय में स्त्रियों की संख्या अधिक होती है.........
आगे चल कर डाक्टर ट्रोल लिखते हैं कि.........

"क्यों कभी लड़का और कभी लड़की उत्पन्न होती है मेरी सम्मति में जो दोनों में अधिक बलवान् है सन्तान उसके अनुसार होगी—यदि स्त्री का आर्तव अधिक बलवान् है और उस में वीर्य अधिक है तो कन्या उत्पन्न होगी यह केवल बल का प्रश्न है यह वही नियम है जो कि हम सर्वत्र सृष्टि में पाते हैं—यदि दो विरुद्ध शक्तियें परस्पर मिलें तो इनमें से जो अधिक बलवान् होगी वह अधिक प्रभाव उत्पन्न करेगी ………………… यदि पुरुष आयु और बल में स्त्री से अधिक है तो सन्तान अधिकतर नर उत्पन्न होगी—यदि स्त्री बल में पुरुष से अधिक है तो कन्यायें उत्पन्न होंगी—इस सिद्धान्तकी पुष्टि दायभाग के नियम से भी होरही अर्थात् यह कि पिता के शरीर का अधिक भाग लड़कों के और माता का लड़कियों के दाय भाग में आता है—

फिर लिखते हैं कि क्या मनोकामना अनुसार लड़का लड़की उत्पन्न करसकते हैं—और उत्तर यह देते हैं कि:—

'हमारी विद्यमान विद्यासम्बन्धी दशा हमें एक मार्ग बतलाती है और वह यह है कि हम ऋतुकाल के अनुसार चलें बहुतायत से साक्षियें इस बात की मिलती हैं कि पहिले दिनों में गर्भाधान करने से लड़कियाँ और पिछले दिनों में समागम करने से लड़के उत्पन्न होते हैं,, (देखो पृष्ठ ३२१)

डाक्टर ट्राल के इस कथन से ये बातें सिद्ध होती हैं:—

(१) यदि पुरुष का वीर्य अधिक है तो लड़का उत्पन्न होगा और स्त्री के आर्तवकी अधिकता से लड़की उत्पन्न होती है—यह ऋषिसिद्धान्तकी सर्वथा पुष्टि है—

(२) उन्होंने बहुतसी साक्षियों से इस बात को अनुभव किया है कि ऋतुकाल के दिनों का विचार करके समागम करना चाहिये ताकि लड़का लड़की मनोकामनानुसार उत्पन्न किये जायँ—और यह दर्शाया है कि पहिले दिनों के गर्भाधान करने से लड़कियें होती हैं यद्यपि यह बात उनकी ऋषिसिद्धान्त की पूर्ण पुष्टि में नहीं है परन्तु वह अति निकट आगये हैं—निश्चय है कि विशेष अन्वेषण करने से वह इस बात को शीघ्र मानलें कि पहिले दिन समागम करने से लड़की और दूसरे दिन के समागम करने से लड़का उत्पन्न होता है जिस प्रकार तीस वर्ष के अन्वेषण के पश्चात् पश्चिमी विद्वानों ने अन्त को इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि पुरुष के वीर्य की अधिकता से लड़का उत्पन्न होता है और जब कि वह ऋतुकाल मनुजी के सदृश ऋतु के बन्द होने से बारह दिन का मानतेहै और यहांतक अनुभव कर चुके कि ऋतुकाल के मुख्य दिनों में समागम करने से लड़का होता है तो हमें आशारखनी चाहिये कि अन्त को विशेष अन्वेषण से उन पर युग्म और अयुग्म रात्रियों का भेद भी खुलेगा।

प्रायः डाक्टर लोग डाक्टर बनशा के सदृश अपनी पुस्तकों में पुरुष स्त्रीका साप्ता-

ऋतुगमन के महत्व सम्बन्धी एक और साक्षी ॥

हिक समागम करने की शिक्षा देते रहे हैं परन्तु जब से पश्चिम के कई विद्वान् डाक्टरों ने विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति समझ लिया है उस दिन से इनके लेखों की काया पलट गई है—परन्तु वर्ताव की रीति पर यूरोप या एमरीका में ऋतु गमन का अति न्यूनवर्ताव है—डाक्कर ट्राल या डाक्टर कौवन् प्रभृति विद्वानों के विचार यहां सर्व साधारण को आश्चर्य के समुद्र में डाल रहे हैं—डाक्टर कौवन ऋतुकाल में अर्थात् मास में केवल एक वार सन्तानोत्पत्ति के अभिप्राय से समागम की आज्ञा देते हैं और ऋतुगामी पुरुष की प्रशंसा अपनी पुस्तक के पृष्ठ ११७ व १६४ पर इस प्रकार करते हैं कि

"वह पुरुष ऋतुगामी कहलाता है जिसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है और जो अपने धार्मिक जीवन और धृति के कारण केवल ऋतुकाल में सन्तानोत्पत्ति के लिये स्त्री से समागम करता है—और गर्भस्थिति के पश्चात् दो या तीन वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता है जो लोग यह कहते हैं कि तीन वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने से पुरुष की इन्द्रिय निकम्मी हो जायँगी वह भूल पर हैं—जो लोग ऋतुगामी नहीं होते उनकी शक्ति संघात निर्बल हो जाती है—फिर शक्ति संघात के निर्बल साधन पाचक शक्ति को निर्बल कर देते हैं और परिणाममें बद्धकोष्ठ कुपच-गठिया—राजयक्ष्मा आदि सारे रोग उत्पन्न हो जाते हैं । ऋतु गामी पुरुष स्त्री सदैव परस्पर प्रेम और आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते हैं,,

कौन ऋतुगामी नहीं हो सकते।

डाक्टर ट्राल पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं कि जिस प्रकार मद्यप या पेटू की भूख वारम्वार खाने से तृप्त नहीं होती इसी प्रकार जो पूर्ण स्वास्थ्य की दशा में नहीं उसका चित्त वार वार विषय भोग को चाहता है परन्तु उसकी तृप्ति कभी नहीं होती ॥

डाकूर कौवन पृष्ठ (३६४) पर लिखते हैं कि जो पुरुष स्त्री पृथक् २ पर्यंक (पलंग) पर नहीं सोते उसके लिये ऋतुगामी होना कठिन है इस लिये प्रत्येक को अलग अलग सोना चाहिये ॥

जैसा कि पुरुष स्त्री के लिये आहार आवश्यकीय है वैसा ही इनके लिये काम काज में लगे रहना आवश्यकीय है जो पुरुष स्त्री निकम्मे रहते हैं वह ऋतुगामी नहीं हो सकते (कौवन पृष्ठ १२६)

---

† (विवरण) फ्रान्स के वैज्ञानिक ग्रिन महाशय का वचन है कि यदि पुरुष स्त्री से बढ़कर बलवान् और वीर्य्यवान् है तो लड़का उत्पन्न होगा और इसके विरुद्ध होने से लड़की । जिनीवा नगर के प्रोफेसर थरे महाशय इस बात को मानते हैं कि विशेष दिनों के गर्भाधान करने से लड़का और विशेष दिनों के गर्भाधान करने से लड़की उत्पन्न होती है ।

जो लोग किसी प्रकार का श्रमवा व्यायाम नहीं करते वह ऋतुगामी नहीं हो सकते सबसे उत्तम व्यायाम शीघ्रता के साथ प्रातः काल पांच था दश मील भ्रमण करना है (कौवनः-पृष्ठ १२३, १२५, १३० ।

जिस समय प्रातः काल निद्रा से जाग्रत अवस्था में आवे तुरन्त शय्या छोड़ कर शौचादि के लिये जाना चाहिये-

वस्ति के भरे हुए होने के कारण से अथवा शौच के उतरनेके कारण इन्द्रिय गतिमान होजाती है और मूर्ख लोग समझते हैं कि हमें इस समय स्त्री संग की आवश्यकता है यद्यपि इस समय उनको मलमूत्र त्यागने की आवश्यकता है- इस लिये प्रातःकाल जिस समय कोई बुरा स्वप्न आये शीघ्रउठ कर शौचादि के लिये जाना चाहिये-जोलोग प्रातः नहीं उठते उनके लिये ऋतुगामी होना कठिन ह (कोवनः पृष्ठ १२५)

तम्बाकू-मदिरा-पेट भर अधिक खाना-रात्रि को देर से खाना मिष्ठान्न-मांस-अचार-चरवी त्याग देनी चाहिये (कोवनः पृष्ठ १२७)

प्रातः सायं ईश्वरोपासना करनी चाहिये (पृष्ठ १३०)

यद्यपि डाक्टर कौवन ईसाई ह परन्तु यह ईसाइयों की प्रचलित प्रार्थना का खण्डन करते हैं जैसा कि पृष्ठ २१३ पर लिखते हैं किः-

"जबतक मनकी शुद्धि न करलो तब तक केवल वाणीद्वारा प्रार्थना करने से परमेश्वर के साथ हास्य करना है,' फिर पृष्ठ १५६ पर लिखते हैं किः—

"सत्य धर्म सिखलाता है कि माता पिता श्रेष्ठ बनने की इच्छा धारण करें... ....और सच्चे मन से निकली हुई इच्छा जो कि प्रातः और सायं दोहराई जाय वह कर्म करने की शक्ति उत्पन्न करदेगी-प्रातः और सायं पुरुष स्त्री को अपनी इच्छा के प्रकाश करने का व्यायाम करना और साथही ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये"

डाक्टर कौवन के इन वचनों से सिद्ध है कि वह ईसाइयों की पाठमयो प्रार्थना को अयोग्य होने के कारण स्वीकार नहीं करते बरन इसके स्थान में मनकी इच्छा प्रकाश करने अथवा धारण करने का नाम प्रार्थना रखते हैं और वास्तविक यही वैदिक प्रार्थना है-वेद मंत्रों में इस प्रार्थना का नाम शिव संकल्प है और शिव संकल्प का अर्थ उत्तम इच्छा--(कल्याणकारक) इच्छा के हैं इस विषय को हम अपनी पुस्तक ब्रह्मयज्ञनामी में विस्तार पूर्वक वर्णन करचुके हैं इस लिये यहां पर अधिक लेखकी आवश्यकता नहीं है-

ऋतुगामी पुरुष स्त्री ही वानप्रस्थ और संन्यास का आनन्द भोगसक्ते हैं

डाक्टर ट्राल (पृष्ठ ३८३) पर लिखते हैं किः

"संसार में इस से बढ़कर क्या भूल होसकती है कि लोग युवावस्था को आनन्द भोगने का सबसे उत्तम समय बतलाते हैं वास्तविक युवावस्था का समय उन्नति करने का है बुढ़ापा आनन्द भोग करने का समय ह ईश्वरीय नियम

यही बतलाता है मनुष्य चाहे किसी प्रकार मानें। बेखटके आनन्द भोगने के लिये बुढ़ापे से बढ़कर कौनसा समय उत्तम समय होसकता है! मानसिक शक्ति इस समय वश में होती है सुनीति की शक्तियें पूर्णप्रकार से उन्नति पाये हुए होती हैं बुद्धि विद्या निधि से भरपूर होती है अर्द्ध शताब्दी तक ठोकरें खाते-और भूल करते हुए बुद्धिमत्ता के शिखरपर पहुंचे हुए होते हैं इस समय सत्यासत्य के निश्चय करने का अवसर होता है वही समय है जब कि सृष्टि के सब पदार्थों का यथायोग्य उपयोग कर सकते हैं शीतोष्णकाल के सहस्त्रों परिवर्तनसे नाश रहित आत्मा अत्यन्त दृढ़ता और उत्तम विश्वास से भावी जीवन को स्वीकार करनेवाला होता है सब मनुष्यों और सृष्टि पालक के साथ ठीक २ वर्ताव तबही कर सकते हैं

यदि कोई मनुष्य जान लेता है कि बुढ़ापे का समय शारीरिक कष्ट— मानसिक सोच—विसमरण और सुनीति के तिमिरका है तो इस का कारण यह है कि वह:—

बेलगाम स्वभाव

का अनुचर रहचुका है—जो शक्तियें कि दुग्ध पानकी अवस्था में तीव्र थीं—बचपन की दशा में वे विगड़ सकती थीं—युवावस्था में इन का अयोग्य सेवन कियागया —यौवन में वह अत्यन्त बलिष्ठ दशा में थीं वें अब बुढ़ापे के समय पर साम्यावस्था पर आगईं-पवित्र बनगयीं—सुनीति और मानसिक शक्तियों का मार्ग विस्तृत होगया —ऐसे पुरुष स्त्रियोंके असंख्य दृष्टान्त मिलते हैं जिनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य व बल सत्तर—अस्सी—नब्बे— सौ और इस से भी अधिक वर्ष तक अच्छा रहा—जिन लोगोंने कि जीवन सृष्टिनियमानुसार व्यतीत किया वे स्वयम् ही प्रसन्न नहीं रहे प्रत्युत मरण पर्य्यन्त लाभ दायक बनेरहे वे औरों की सहायता करनेवाले नवयुवाओं के मार्ग में दीपक का काम देनेवाले और मध्य अवस्था वालों के लिये शिक्षक सिद्धहुए—

क्या यह कथन इस बात का अनुमोदन नहीं करता कि केवल संन्यासी ही पूर्ण मनुष्य होने के कारण उपदेशक होने के योग्य हैं। और संन्यासाश्रम का समय सबसे अधिक आनन्द भोग का समय है। क्या इस से यह नहीं पायाजाता कि वानप्रस्थ का समय गृहस्थ से एक भाग बढ़कर आनन्द भोगका है और दोनों समय उनको ही प्राप्त होसकते हैं जोकि युवावस्था में "बेलगाम स्वभाव" के अनुचर नहीं बनते वरन ऋतुगमन के उत्तम नियम पर चलते हुए वीर्य को जो कि परम बल है स्थिर रखते हैं—

ऋतुगमन के लाभ सम्बन्धी कई अन्य डाक्टरों की सम्मतियें
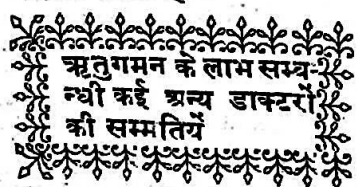
डाक्टर बैलफोर महाशय का वचन है कि:—

"विवाहित लोगोंके मध्य में अत्यन्त विषय सेवन मानो यथार्थ रूप से व्यभिचार है,, (पृष्ठ) ५३

पुस्तक "परफेक्टमन हुड,, का रचयिता लिखता है कि:—

'जबर वीर्य उत्पन्न होता है तब २ मनुष्य के मनमें समागम की इच्छा उत्पन्न

होती है परन्तु यह इच्छा इस योग्य नहीं कि प्रत्येक अवसर पर इसको पूर्ण किया जाय—यदि पूरा किया जायगा तो वीर्य को शरीर में दुबारा शोषण का अवसर नहीं मिलेगा—और ऐसा न होने की दशा में मस्तिष्क और शरीर की शक्ति देने वाला रत्न खोया जायगा,,

डाक्टर एक्टन महाशय का वचन है कि:—

"जो विवाह की आड़ में वीर्य जैसे अत्यन्त लाभकारी रत्न को नष्ट कर देते हैं वह अपनी शारीरिक उन्नति के मूल पर कुल्हाड़ा मारते हैं,,

डाक्टर फोलर महाशय कहते हैं कि:—

"उन लोगों में जो अत्यन्त विषय भोग करते हैं वही निस्तेजपन छाजाता है जो कि हस्तमैथुन करने वालों में पाया जाता है—अत्यन्त विषयभोग करने वाले प्रेम-भाव को नष्ट कर बैठते हैं और एक दूसरे को घृणा करने लग जाते हैं,,

एक डाक्टर लिखते हैं कि:-"इंगलिस्तान में आठ स्त्रियों में से एक बन्ध्या है अर्थात् १२॥ प्रति सैकड़ा अंग्रेज़ी स्त्रियों के यहाँ सन्तान नहीं होती-कारण यह है-

(१) प्रायः निर्बलता जोकि विषय भोग से होती है (२) गर्भाशय का अपने स्थान से गिरजाना जोकि विषयभोग का प्रतिफल है।

(३) अत्यन्त मोटा होना-,,

ऋतुगमनके नियम सुश्रुत के अनुसार

एवम् शुक्रः शुद्धार्तवा ऋतौ प्रथम दिव-सात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नांजनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यंगनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् ॥३॥

(सुश्रुत शरीर स्थान अध्याय २)

(अर्थ) इस प्रकार कथन किये हुए शुद्धवीर्य और शुद्ध आर्तव के होने से सुन्दर गर्भ होता है-स्त्री को चाहिये कि रजस्वला होने के पहिले दिन से लेकर अन्त होने तक ब्रह्मचारिणी रहे-और दिन में सोना-अञ्जन लगाना-अश्रुपात करना अर्थात् रोना-स्नान करना चन्दन लगाना अथवा उबटन मलना-तैल का मर्दन करना-नख काटना-दौड़कर चलना हँसना-अधिक बोलना-तीक्ष्ण शब्द सुनना-उल्लेखन अर्थात् कंघी से केश सुधारना अथवा भूमि कुरेदना-प्रचण्ड वायु खाना-परिश्रम करना इन सब को न करे किन्तु त्यागदे-

किं कारणम्। दिवास्वपन्त्याः स्वापशीलोऽञ्जनादन्धो रोदना-द्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद्दुःखशीलस्तैलाभ्यंगात्कुष्ठी नखाप-कर्तनात् कुनखी प्रधावनाच्चंचलो हसनाच्छ्यावदंतौष्ठतालु जि-

हृवा प्रलापी चातिकथनादतिशब्द श्रवणाद्धिराऽवलेखनात्ख- लति मारुतयाम सेवनान् मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत्२

(अर्थ) यदि रजस्वला अवस्था में दिन के समय सोवे तो उस ऋतु में गर्भ रहे तो वह बालक बहुत सोने वाला उत्पन्न हो-और काजल अथवा सुरमा लगाने से अन्धा-रोने से विकृत दृष्टि-स्नान और अनुलेप से दुःख शील-तैल के मर्दन से कुष्ठी नख कतरने वाली का बुरे नख वाला-दौड़ने से चंचल-हँसने से काले दांत काले ओष्ठ और तालुतथा जिह्वा वाला-बहुत बोलने से बकवादी-भुशुण्डी इत्यादि की धमक सुनने से बहरा-कंघी करने से गंजा अधिक वायु खाने, कष्ट करने से उन्मत्त (मतवाला) बालक उत्पन्न होता है अतएव रजस्वला स्त्री इन कामों को त्याग दे-

जब किसी को जुलाव दिया जाता है तब उस पुरुष व स्त्री को शरीर के शृंगार करने अथवा रोज के काम करने से रोका जाता हैं। आराम से बैठने में दिन व्यतीत किया जाता है। इस का कारण यह है कि शारीरिक प्रकृति शरीर में से मल के निकालने में लगी हुई है यदि इस प्रकृति और मनोवृति को किसी और तरफ लगाया जायगा तो मल के रुकजाने का भय है। इस दशा में शरीर के शृंगार करने से रुधिर विशेष करके उस अंग की ओर जावेगा जोजो रूधिर से मल जुलाब द्वारा निकल रहा है उस मल का कुछ सूक्ष्म भाग अंग विशेष में रह जायगा और उस अंग को दूषित अथवा रोगी करदेगा। विशेष श्रम तथा काम काज करने से भी यही हानि निस्संदेह होगी देखा गया है कि जुलाब की दशा में कामधंधे में लगजाने से जैसा जुलाब लगना चाहिये नहीं लगता और लड़ने झगड़ने से शिर पीड़ा बहुत दिनों थोड़ी बहुत चलती रहती है। इसी लिये परम विद्वान् महर्षि धन्वन्तरि का उपदेश है कि रजस्वला स्त्री चार दिन कोई शृंगार अथवा कुचेष्टा न करे क्योंकि जिस अंगका वह शृंगार करेगी उस अंग में रुधिर के जाने से मल अंश साथही ज़रूर जायगा और रोग का बीज उस अंग में बोया जायगा और जो संतान इस स्त्री के, उत्पन्न होगी उस के वह अंग रोगी अथवा निर्बल होंगे रजस्वला स्त्री के काम करने पढ़ने स्कूल जाने सीने पिरोने आदि से भी अवश्य दोषउत्पन्न होंगे। इस लिए ऐसा जान कर स्त्री श्रम और काम धंधा भी न करे किन्तु यह जाने कि उस को ईश्वर ने जुलाब दे रक्खा है और तद्वत् आचरण करे ।

दर्भ * संस्तरशायिनीं करतल शरावपर्णा न्यमत भोजिनीं हविष्यं त्र्यहं भर्त्तु संरक्षेत ॥ २५ ॥

* दर्भ अर्थात् कुश घास की खाट इस लिये बतलाई है कि शुष्क घास चुम्बक की शक्ति को नहीं निकलने देती—बान की खाट इस लिये हितकर है। लोहे के पग वाला अथवा निवाड़ी पलंग खराब है। क्यूंकि लोहे वा धातु के पाये वाले खाट में धातु के द्वारा बिजुली प्रवेश करके हानि पहुंचाती है। दीवार (भीत) के साथ भी खाट डालकर कभी नहीं सोना चाहिये—ताकि बिजुली दीवार में से प्रवेश न करे ॥

रजस्वला स्त्रीको रजस्वला अवस्थामें कुशके खाट पर सोना हथेली अथवा मिट्टी के वर्तन अथवा पत्तों की पत्तल इन में से किसी में रखकर हविष्य अर्थात् यव जौ चावल-गेहूं-उड़द मूंगादि जिस में मांस न हो खाना चाहिये और पुरुष के मिलाप से सर्वथा बचना चाहिये—

ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्य हतवाससमलंकृतां कृत मंगल स्वास्तिवाचना भर्तारं दर्शयेत तत् कस्य हेतोः ॥ २६ ॥

फिर चौथे दिन शुद्ध स्नान कराके वस्त्र पहन कर आभूषण धारण कराके मंगलाचरण स्वस्तिवाचन करके वैद्य पति का दर्शन करावे इसका कारण क्या है ?

पूर्वं पश्येद्दृतु स्नाता यादृशं नरमंगना ।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः ॥ २७ ॥

ऋतु स्नान करते ही पुरुष के दर्शन का कारण कहते हैं कि ऋतु से शुद्ध स्नान करके स्त्रीजैसे पुरुषको पहले दर्शनकरे उसकेवैसीही आकृति की संतान उत्पन्नहोती है

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत् ।
कर्मांते चक्रमं ह्येन मारभेत विचक्षणः ॥ २८ ॥

तब उपाध्याय (पण्डित) सन्तान की कामना के अर्थ विधान (पुत्रेष्टियज्ञ) करावे और पुत्रेष्टि यज्ञ के पीछे इस कर्म्म का आरम्भ करे—

ततो पराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैल माषोत्तराहारां नारी मुपेयाद्रात्रौ सामादिभिर्विश्वास्य विकल्प येयं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्र कामः॥२६॥

पुत्रेष्टि यज्ञ करके अपराह्णकाल में महीने भर से ब्रह्मचारी रहा हुआ पुरुष शरीर में घृत का मर्दन करके घृत और दूध के संग चावल के भात का भोजन करके और महीने भरसे ब्रह्मचारिणी रही स्त्री शरीर में तेल का मर्दन करके तैल औरमाष (उड़द) प्रधान भोजन करे जो ऐसी स्त्री के समीप रात्रि में गमन करे—और पुरुष प्रेम के वचनों से स्त्री की प्रसन्नता से विचार कर रजस्वला होने के दिन से चौथी—छठी आठवीं दसवीं और बारहवीं रात्रि को पुत्र की इच्छा वाला गर्भाधान करे—

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ।
प्रजा सौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै ॥ ३० ॥

इन चौथे-छटे-आठवें-आदि दिनोंमें उत्तरोत्तर आयुआरोग्य सौभाग्य ऐश्वर्य तथा वल सन्तान में होता है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् रजस्वला होने के दिन से जितना २ पीछे गर्भ धारण होगा उतना ही अधिक श्रेष्ठ बालक होगा—

अतः परं पंचम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यांञ्च स्त्रीकाम, त्रयोदशी प्रभृतयो निंद्या ॥ ३१ ॥

इस के अतिरिक्त जिस की इच्छा कन्या की हो वह पांचवीं—सातवीं नवीं और ग्यारहवीं रात्रि में गमन करे—और तेरहवीं इत्यादि रातें निन्दित हैं—

ऋतु गमन के नियम

संख्या २ (सुश्रुत शरीर स्थान अध्याय ३)

गर्भाशय में वीर्य की अधिकता के कारण लड़का होता है ।

और आर्तव की अधिकता से कन्या उत्पन्न होती है—तथा दोनों की समता से नपुंसक सन्तान होती है,, (४)

यजुर्वेद अध्याय १९ के ८७ मंत्र में यह शब्द आये हैं

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः। प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥

(अर्थात्) (यस्मिन्) जिस (अग्रे) नवीन अर्थात् रजस्वला होने के पश्चात् (योन्याम्) गर्भाशय के (अन्तः)बीच (गर्भः) गर्भधारण किया जाता है इसकी निरन्तर रक्षा करें—इस मंत्र से ऋतुकाल का बोधन होता है क्योंकि यहाँ पर बतलाया गया है कि जब जब स्त्री की योनि नवीन अर्थात् रज रोग से शुद्ध होती है तब २ ही ऋतुकाल का निश्चय किया है जैसा कि सुश्रुत शरीर स्थान के अध्याय ३ के वाक्य ८ में महर्षि धन्वन्तरिजी का उपदेश इस प्रकार लिखा है कि:—

"जिस प्रकार दिन के व्यतीत होजाने पर कमल बन्द होजाता है उसी प्रकार ऋतु अर्थात् सोलह रात्रि व्यतीत होजाने पर स्त्री की योनि अर्थात् गर्भाशय का मुख बन्द होजाता है,,—८—

(विवरण) गर्भाशय का मुख ऋतु के दिन से खुलता है और सोलह दिन तक खुला रहता है इसी लिये इस का नाम ऋतुकाल कहा गया है—

"वह आर्तव जब एक मास भर से एकत्र होता रहता है तब कुछ काला और दुर्गन्धयुक्त धमनियों द्वारा योनि के मुख पर बाहर आजाता है (इसी को रजो दर्शन कहते हैं),, —९—

"वह अनुमान बारह वर्ष की अवस्था से पीछे स्त्रियों को होता है—और जब बुढ़ापे से शरीर पकजाता है तब पचास वर्ष की अवस्था होजाने पर क्षय होजाता है.,१०

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला।

पुष्प काले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ ११ ॥

(अर्थ) सम दिनों में (वीर्य की प्रबलता होने से) पुत्र उत्पन्न होता है और विषम दिनों में (रज की प्रबलता के कारण) कन्या होती है इस से पुष्प काल (ऋतुकाल) में सन्तान की इच्छा वाला पुरुष पवित्र होकर स्त्री गमन करे,,—००—

रजस्वलामकामाञ्च मलिनाम प्रियां तथा ।
वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥
हीनाग्ङीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् ।
सगोत्रां गुरूपत्नीञ्च तथा प्रव्रजितामपि ॥
सन्ध्यापर्वस्वगम्याञ्च नोपेयात्प्रमदी नरः ॥

[सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय २४]

महर्षि धन्वन्तरिजी कहते हैं कि निम्न लिखित दशाओं में स्त्री से कभी समागम न करे—

(१) रजस्वलासे
(२) अकामा अर्थात् जिस की इच्छा गर्भाधान के लिए न हो—
(३) मलिन अर्थात् मैला रहने वाली ।
(४) अप्रिय अर्थात् जो प्रिय न हो ।
(५) वर्ण वृद्धा अर्थात् जो अपने से वर्ण में उत्तम हो—
(६) वयोवृद्धा अर्थात् जो अपने से आयु में अधिक हो—
(७) रोगग्रस्त—अर्थात् रोगी
(८) हीनाङ्गी अर्थात् लँगड़ी इत्यादि—
(९) गर्भिणी—अर्थात् जिस को गर्भ हो
(१०) विवर्ण जो घृणा करने वाली हो
(११) योनि दोष वाली अर्थात् जिसकी योनि के वाह्याभ्यन्तर किसी प्रकार का रोग हो—
(१२) सगोत्रवाली अर्थात् चचा इत्यादि की कन्या को न विवाहे
(१३) गुरुपत्नी गुरु की स्त्री से भी पुनर्विवाह अथवा नियोग न करे—
(१४) प्रव्रजिता अर्थात् वह स्त्री जिसने संन्यास धारण किया हो
(१५) अगम्य अर्थात् भगिनी—पुत्रवधू-लड़की आदि से कभी विवाह नकरे—
(१६) सन्ध्याकाल और पर्वकाल में कदापि स्त्री संग नकरे ऋतुगमन के नियमों का महर्षि मनुजी के कथनानुसार वर्णन करते हुए हम ने दर्शादिया कि किस प्रकार पश्चिम के विद्वान् इनकी पुष्टि करते और इतने निकट आरहे हैं—इन्हीं नियमों की विशेष पुष्टि महर्षि धन्वन्तरिजी के वचनों से भी दर्शाने के पश्चात् अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि इन सब सिद्धान्तों की मुख्य निधि वेद है—

ऋतुगमन के नियमों के बोधक वेद मंत्र

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजानूधो देया योषसो मघोनीः
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्व बुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ (ऋ० ४ अ० ५ सू० ५१ मं० ३)

(अचित्रे | आश्चर्य रहित | पर्वरात्रि के अतिरिक्त
तमसः | रात्रि के |

(विमध्ये) मध्य में
(उषसः) उषा के समान अर्थात् हराभरा
(मघोनीः) सत्कार किया धन का जिन्होंने उनकी स्त्रियां
(उच्छन्ती) उत्तम प्रकार बास देतीहुई
(अन्तः) मध्य में
(ससन्तु) सुख से सोयें अर्थात् गर्भाधान करें—व्याख्याः—

जिस को मनुजी ने पर्व रात्रि कहा है उस के विषय में हम पश्चिमी साक्षियों द्वारा लिखचुके हैं अर्थात् पर्व रात्रि वह है जब कि पृथ्वी पर आश्चर्य का प्रकाश हो—अमावस—पूर्णमासी और अष्टमी के दिन चन्द्र सूर्य्य के कौतुक समुद्र के ज्वार भाटे केस्वरूप में प्रत्येक को आश्चर्य में डालते हैं प्रत्येक चतुर्दशी—अमावस और पूर्णिमा के अन्त गंत रहती है—अमावस अथवा पूर्णिमा से पहिले दिन का नाम चतुर्दशी है—चतुर्दशी और इस के दूसरे दिन क्या २ कौतुक समुद्र की धरातल पर दिखाई देते और सूर्य्य चन्द्र का आकर्षण और प्रभाव को बतलाते हैं उसे वे ही जान सकते हैं जिन्होंने कि कभी समुद्र का दर्शन किया है—अष्टमी के विषय में हम ऊपर लिखचुके ह कि क्यों यह पर्व रात्रि है ?

अब हमें इस बात को समझ लेना चाहिये कि जिस को पर्व रात्रि कहते हैं वेद मंत्र ने इसी को चित्र रात्रि अर्थात् आश्चर्यमय रात्रि कहा है और उपरोक्त मंत्र में "अचित्रे तमसः" इन शब्दों द्वारा बतलाया है कि "आश्चर्य रहित रात्रि के मध्य" गर्भाधान करना चाहिये अर्थात् उस रात्रि को गर्भाधान चाहिये जोकि आश्चर्य से रहित हो क्या प्रयोजन कि पर्व तिथि की रात्रि छोड़कर अन्य किसी रात्रि में गर्भाधान करना उचित है—

यही नहीं कि इस वेदमंत्र ने पर्वरात्रि पर गर्भाधान का निषेध किया है वरन् साथ ही गर्भाधान का समय भी बतला दिया है अर्थात् यह दर्शाया है कि दिन का समय गर्भाधान के लिये नहीं प्रत्युत रात्रि को गर्भाधान करना चाहिये क्योंकि "तमसः—विमध्ये" शब्दों के अर्थ रात्रि के मध्य के हैं एवं यह वेद मंत्र ऋतुगमन के दो निम्न लिखित नियमों का बोधन कराहा है

(प्रथम) पर्वरात्रि के अर्थात् पूर्णिमा—अमावस (चतुर्दशी) और अष्टमी इन में गर्भाधान न करना चाहिये—

(द्वितीय) गर्भाधान रात्रि के समय में करना चाहिये—

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमान् नु जाय ताम् । भवासि पुत्राणा माता जातानां जनयांश्च यान् ॥

(अथर्ववेद का ० ३ अ० ५ सू० २३ मं० ३)

(अर्थ) पुमान् पुत्र (लड़का) उत्पन्न कर जो कि पुरुष के वीर्य अधिक होने से होता है............इस मंत्र ने जतला दिया कि लड़का पुरुष के वीर्य के अधिक होने से होता है अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध हुआ कि पुरुषकेवीर्यकम होने से लड़की होती है—इस मंत्र में इस वड़े भारी प्रश्न को कि लड़का लड़की उत्पन्नहोने का कारण क्या है किस उत्तमता से उत्तर दिया गया है।

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषण संसृज ॥

(अथर्व० का० ३ अ० २ सू० १० मं०३)

(अर्थ) सम्वत्सर के जो मुहूर्तादि माप के साधन हैं तुझको रात्रि में प्राप्त होते हैं वह स्त्री आयु और ऐश्वर्यवाली सन्तान भली प्रकार उत्पन्न करे—

इस मंत्र की व्याख्या ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के , ग्रन्थ प्रमाण „ विषय में भी लिखी है—यह मंत्र विद्या के कई निमयों का वोधन करा रहा है इन सब के अतिरिक्त एक यह भी है कि गर्भाधान रात्रि में करना चाहिये और बतलाया है कि रात्रि में गर्भाधान करने से आयु और धन की उन्नति करने वाली सन्तान उत्पन्न होती है—

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा । महान्तोअस्यों महिमानो अन्तर्वधूर्जिगायनवगज्जनित्री ॥ (अथर्व ० कां० ३ अ० २ सू० १० मं ० ४)

(अर्थ) वह स्त्री जो पहिले दिनों से इतर (दूसरों) में प्रवेश कर के (पति) को प्राप्त होती है वह बड़ी महिमा से युक्त होवे वह सुख से रहने वाली स्त्री नयेपन को प्राप्त हुई उत्पन्न करने वाली होती है—

इस मंत्र में बतलाया है कि रजस्वला स्त्री से समागम नहीं करना चाहिये—जब स्त्री रजरोग से रहित होकर शुद्ध होजाती है तभी वह गर्भाधान करने के योग्य होती है—ऋतुकाल का पहिला समय अर्थात् जो रजस्वला होने के दिन हैं वह त्याग देने चाहियें—ऋतुकाल का आरम्भ जो रजोदर्शन के दिन से प्रारम्भ होता है और ऋतुकाल का पहिला समय त्यागने योग्य है ॥

ऋ तून् यज ऋतुपनी नार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥

(अथर्व० का० ३ अ० १ सू० १० मं० ६)

(अर्थ) हे पुरुष ऋतुकाल में समागम किया कर और ऋतुओं के पालन करने वाले आर्तववान् (आर्तव रखने वाले या आर्तव प्रधान) जो दिन समय सम्वत्सर मास हैं उनको भूतों अर्थात् प्राणियों के पति परमात्मा की आज्ञानुसार भोग-

इस मंत्र में बतलाया गया है कि सदैव ऋतुगामी होना चाहिये और साथही दर्शाया है कि आर्तव प्रधान रात्रियों का अनुसन्धान करके गर्भाधान करना चाहिये। इससे पहिले ऊपर के एक मन्त्र में बतलाया जाचुका है कि पुरुष के अधिक वीर्य होने से लड़का होता है इस मंत्र में कन्या उत्पन्न करने के लिये उन रात्रियों की ओर ध्यान दिलाया गया है जो कि आर्तवप्रधान होती हैं इस प्रकार के मंत्रों के आशय को लेकर हीं मन्वादि ऋषियों ने बतलाया है एकम रात्रियां (विषम रात्रियें) आर्तव प्रधान होती हैं-

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पुरय प्रति गृहणाहि नो हविः ॥
(अथर्व ० कां ० ३ अ० २ सू० १० मं० १३)

(अर्थ) लक्ष्मी से पवित्र करने वाली और कोमलता से पवित्र करने वाली दुहिता कन्या होती है प्रजापते! हमारी कामनाओं को पूर्ण कर हमारा वीर्य अमोघ हो इस से पहले एक मन्त्र में बतलाया जा चुका है। कि आर्तव प्रधान रात्रियों पर विचार करो-

इस मन्त्र में बतलाया है कि कन्या लक्ष्मी और शान्ति का हेतु है। इसी आशय को लेकर मनुस्मृति में लिखा गया है कि स्त्री और लक्ष्मी में कुछ भेद नहीं है। जहां एक मंत्र में लड़के को "पुमान् पुत्र„ अर्थात् वीर्यवान् होने से लड़का बतलाया गया था और नर की विशेषता वीर्य की अधिकता दर्शाई थी। वहाँ इस मंत्र में लड़की की विशेषता कोमलता वर्णन की है। न केवल यही वरन दर्शाया है कि लड़के लड़कियां अपनी कामनानुसार उत्पन्न कर सकते हो यदि ऋतुगमन के नियमों पर चलो ——

उखा कृणोतु शक्तया बाहुभ्योम दितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं विभर्तु गर्भ आमखस्य शिरोऽसि॥
[यजु० अ० ११ मं० ५७]

अर्थः—हे गृहस्थ ! जिस कारण तू यज्ञ के शिर के समान है इस कारण बुद्धि वा कर्म्म से पवित्र विद्या के सामर्थ्य और दोनों बाहु से (उखाम्) स्थाली पाक को सिद्ध कर जो आपकी स्त्री है वह अपने गर्भ में जैसे माता अपनी गोद में सन्तान को धारण करती है वैसे (अग्निम्) अर्थात् "अग्निमिव वर्त्तमानवीर्यम्„ अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य को (विभर्तु) धारण करे—

इस मंत्र का जो भावार्थ महर्षि दयानन्दजी ने संस्कृत में लिखा है उस का आशय यह है कि उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिये उत्तम २ ओषधियों के पाक सेवन करने चाहियें और विधि पूर्वक गर्भाधान करके पथ्य से रहना चाहिये—

इस मंत्र में पुरुष के वीर्य को अग्नि से उपमा दी गई है और यह उपमा अत्यन्त

योग्य है—पश्चिमी डाक्टरों ने परीक्षाओं से निश्चय किया है कि वीय पर यदि पानी डालाजाय तो वह मध्यम पड़जाता है और उत्पन्न शक्ति खो वैठताहै —पानी अग्नि को शान्त करता है—वीर्य जो कि अग्निमय होता है वह पानी के संसर्ग से निकम्मा हो जाता हैं वीर्य के त्रसरेणुओं को जब कोई पश्चिमी डाक्टर खुर्दबीनों (निकट वीक्षण) से देखते हैं तो उनको कृमि से प्रतीत होते हैं वास्तव में वह कृमि नहीं होते प्रत्युत त्रसरेणु होते हैं जो कि गति कर रहेहैं डाक्टर ट्राल अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं कि:--

(स्परमेटोजुआ) अर्थात् वीर्य में कीड़े नहीं होते और जिस प्रकार कि रक्त के बिन्दुओं को कीड़े नहीं मानसकते उसी प्रकार वीर्य के विन्दुओं को कीड़े नहीं मान सकते,, जो गतिमान् सूक्ष्म प्रकृति कि त्रसरेणुओं के स्वरूप में हो उस को (कीड़े) कहना पश्चिमी विद्वानों की परिपाटी होगई है इसी प्रकार अर्थात् स्त्री के वह गिल्टियें जो गर्भाशय के नीचे होती हैं वह अण्डे नहीं हैं यद्यपि अण्डों का शब्द उनपर पश्चिमी लोग खचित कररहे हैं--डाक्टर ट्राल भी इन्हें जीवधारी अंडे नहीं मानते

जो पाक कि लड़का उत्पन्न करने के समय खाया जाता हैं उस में अग्निकी प्रधानता और वीर्य उत्पन्न करने वाले द्रव्यों की अधिकता रहती है—इस बात का बोधन मंत्र ने करादिया कि वीर्य अग्निमय होताहै— और गर्भाधान के लिये इस बात को विचारकर स्थालीं पाक बनाना चाहिए मानो जब पुत्र उत्पन्न करना हो तो उस समय उनपदार्थों का पाक बनाना चाहिए जो कि वीर्य और अग्निके बढ़ाने वालेहों।

गर्भाधान संस्कार सम्बन्धी जो पाक अर्थात् पुष्टिवर्द्धक औषधियों का सेवन करने की शिक्षा शास्त्रों में पाई जाती है उन का मूलवत् उपदेश मंत्र में पाया जाता है—

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चासि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥

(यजु० अ० ८ मं० २)

(अर्थ) मैं स्त्री भाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देने वाले आपका आश्रय करती हूं—

उपरोक्त मंत्रमें बतलाया है कि महीने में केवल एक वार ऋतु काल में गर्भाधान करना चाहिए—

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥

(अथर्व० कां० १४ अ० २ मं० ३७)

(अर्थ) हे स्त्री पुरुषो ! तुम (पितरौ) बालकों के जनक (ऋत्विये) ऋतु समय में सन्तानों को (सं सृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो.........

(देखो संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण) इस मन्त्रमें भी ऋतुकाल में ही सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दीगई है—

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्यमयी । अङ्गान्यहुता यस्य तम्मात्रा सम जीगम ॐ स्वाहा ॥

(यजु० अ० ८ मं० २९)

(अर्थ) हे स्त्री (यस्य) जो (ते) तेरा (हिरण्यमयी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और जो तेरा यज्ञके योग्य गर्भ है-जिस गर्भ के सुन्दर सीधे अंग हैं उसको (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके धर्मयुक्त क्रिया से अच्छी प्रकार प्राप्त होऊं

इस मंत्र में बतलाया है कि जब स्त्री रजस्वला होने के पश्चात् शुद्ध होजाय जिस समय उसका गर्भाशय रज रोग से रहित हो उस समय अर्थात् ऋतुकाल में गर्भाधान करना चाहिये—

अपत्ये तायवो यथानक्षत्रायन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्व चक्षसे ॥ (ऋ०मं० १ सू ० ५० अ० १० मं ०२)

इस मन्त्र में दर्शाया गया है कि जिस प्रकार पानी का वाष्प (भाप) से भरा हुआ पवन (ऋतुकी वायु) नियत समय पर चलता है इस प्रकार पुरुष स्त्री को गर्भाधान नियत ऋतुकाल पर करना चाहिये और जिस प्रकार सूर्य अस्त होने पर तारागण रात से मेल और सूर्योदय पर उससे वियोग करते हैं उसी प्रकार गृहस्थी को गर्भाधान के लिये रात के समय स्त्री से समागम करना और दिन के समय उससे न करना चाहिये—

यह मन्त्र दो नियमों का उपदेश दे रहा है (१) यह कि पुरुष स्त्री सदा ऋतुगामी हों (२) गर्भाधान का समय रात का है दिनका नहीं—

इसी मन्त्र की अत्युत्तम व्याख्या श्रीमान् पण्डित गुरुदत्त जी ने अपनी गृहस्थ नामी पुस्तक में भी की है और उसका सारांश यही है जोकि हम ऊपर लिख चुके हैं—

ऋतुगामी होने केलिये और किन नियमों पर चलना आवश्यकीय है

प्रथम उपासनाः—

उपासना करने वाला ही अपनी इन्द्रियों को जीतकर ऋतुगामी हो सकता है—

आत्मिक बल अथवा मानसिक शक्ति जिससे कि इन्द्रियें जीती जायँ बिना उपासना के प्राप्त नहीं होती-इसलिये जो ऋतुगामी होना चाहे उसको वैदिक स्तुति-प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये पश्चिमी देशों के विद्वान् लोग ईसाई मत से मुख मोड़कर नास्तिक और प्रकृति उपासक हो रहे हैं-और यही एक कारण है कि वह विवाह के आदर्श पर चल नहीं सकते-ऋतुगमन के नियम तबही वरते जासकते हैं जब इन पर चलने वाले आत्मबल से युक्त हों-और आत्मबल बिना ईश्वर उपासना के नहीं आसकता इसलिए क्या पूर्व क्या पश्चिम सभी देशों के रहने वालो को ईश्वरोपासना उत्तमतासे करते हुए आत्मबल प्राप्त करना चाहिए-

उपासना के गुण महर्षि दयानन्द जी समुल्लास सात में इस प्रकार लिखते है:-जो आठ पहर में एक घड़ीभर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त होजाता है वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं इसलिए परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये.........आत्मा का बल इतना बढेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा क्या यह छोटी बात है अब हम वेद मन्त्र इसी विषय का बोधक लिखते हैं--

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः ।
अग्ने ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्या भरत् ॥
(यजु० अ० ११ मं० १)

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि उपासक जब अपने मनको ईश्वर में लगाते हैं तो ईश्वर अपनी कृपा से उनकी बुद्धियों को अपने में युक्त कर लेता है और वह ईश्वर के प्रकाश को निश्चित धारण करते हैं अर्थात् जो उपासना करते हैं उनमें अवश्य प्रकाश आता है और यह ईश्वरीय प्रकाश ही आत्मा का बल है—

(२) व्यायाम अर्थात् शारीरिक श्रमः—

संसार में व्यायाम करने के इतने प्रकार के यन्त्र और रीतें प्रचलित हैं कि यदि हम उनको केवल गिनाने लगें तो कई पृष्ठ इस प्रयोजन के लिये आवश्यकीय होंगे—

सेन्डो से पश्चिमी मल्ह किसी मुख्य यन्त्र का व्यायाम के लिये होना इतना आवश्यकीय नहीं बतलाते वह केवल इस नियम का उपदेश देते हैं कि:—

वही व्यायाम बल देसकता है जो कि मनलगाकर कियाजाय—जिस उत्तमता से व्यायाम जैसे आवश्यकीय विषय सम्बन्धी महर्षि धन्वन्तरि जी ने सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के अध्याय २४ में उपदेश किया है कि उसका एक २ शब्द स्वर्णमय पानी से लिखने के योग्य है—

सौन्दर्य्यता—सुडौलपन—पाचक शक्ति—आनन्द—बल दीर्घायु आदि सब गुण व्यायाम करने वाले को प्राप्त होसकते हैं इसको अति उत्तमता और योग्यता

(विवरण) काम इत्यादि दोष कहलाते हैं— यह दोष उपासकके उपासना के प्रताप से छूट सकते हैं अर्थात् उपासक ही ऋतुगामी होसकता है ।

(विवरण सं २) सब डाक्टर बतलाते हैं कि आत्मबल (विलपावर) के बिना ऋतुगामी होना कठिन है जिस व्यायाम से यह आत्मबल प्राप्त होता है उस का नाम उपासना है—

के साथ सुश्रुतकार ने वर्णन किया है एक स्थल पर वह भी वर्णनकियाह कि किस प्रकार के मनुष्य व्यायाम न करें— जैसे—

रक्त पित्ती कृशः शोषी श्वास काश क्षतातुरः।
भुक्तवान् स्त्रीषु च क्षीणो भ्रमार्तश्च विवर्जयेत्॥

(अर्थ) रक्त पित्त वाला। कृश (दुबला) शोष रोगी—श्वास खांसी और घाववाला भोजन किया हुआ—स्त्रियोंके संसर्ग से क्षीण और भ्रमार्त इतने मनुष्य व्यायाम को त्याग दें—

कैम्ब्रज में बलवान् विद्यार्थियों को कठिन व्यायाम कराया जाता है और साधारण शरीरवाले विद्यार्थियों को दो घन्टे भ्रमण के लिये दिये जाते हैं जिनमें कि वह प्रायः आठमील का चक्कर लगा लेते हैं पण्डित गुरुदत्त जी महर्षि दयानन्दजी सदृश भारतवर्षीय व्यायाम की रीति को उत्तम बतलाते और उस पर वर्ताव भी करते थे—

सुश्रुतकार ने चिकित्सा स्थान अध्याय २४ में व्यायाम की प्रशंसा इन प्रकार की है:

"जिस से शरीर के सब अंगोको श्रम (थकावट) होवे उस कर्म को व्यायाम कहते हैं" इस से सिद्ध होता है कि व्यायाम श्रम का साधन है श्रम व्यायाम का फल है साथही धन्वन्तरी जी उपदेश करते हैं कि जब थकावट अनुभव होने लगे तो उस समय अवश्य व्यायाम करना बन्द करदेना चाहिये नहीं तो लाभके स्थानमें हानिका सन्देह है—

इस श्रम को धारण करने का उपदेश वेद में इस प्रकार दिया गया है:—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तिते श्रता॥
(अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० १)

(अर्थ) तुम लोग श्रम और तप से युक्त रहो—अर्थात् व्यायाम और प्राणायाम करते रहो आजकलके पश्चिमी मल्लों के व्यायाम और प्राणायाम साथही सम्मिलित होता है—परन्तु प्राचीन आर्य्य लोग व्यायाम से पृथक् प्राणायाम उपासना के समय किया करते थे—

जो कि मनुजी ने प्राणायाम को परम तप कहा है (देखो मनुस्मृति अ० ६ श्लो० ७०)

इस लिये महर्षि दयानन्दजी ने संस्कार विधि में इस मंत्रका अर्थ करते हुए तप के अर्थ प्राणायाम के किये हैं जो कि सर्वथा यथार्थ हैं—

यदि उपासना आत्माका व्यायाम है तो श्रम शरीर का व्यायाम ह उपासना से, आत्मा में बल आता है, और व्यायाम करने से सारे शरीर में बल आता और वीर्य को भीतर शोषण करने का अवसर मिलता है इस लिये ऋतुगामी मनुष्य के लिये व्यायाम का करना अत्यावश्यकहै।

३—प्राणायामः—प्राणायाम करने की शिक्षा उपरोक्त मंत्र में दीगई है—प्राणायाम

को डाक्टर एलिन्सन् महाशय छाती के रोगदूर करने की एक परम स्वाभाविक महौषधि बतलाते हैं—

कई डाक्टर समुद्रीय यात्रियों को इसकी शिक्षा करते हैं ताकि वमन (कै) कम आवे—डाक्टर एन्डरो जक्सन डेविस महाशय इस को आमाशय और छाती के कई रोगों का दूर करनेवाला लिखते हैं परन्तु किसी भी पश्चिमी विद्वान् ने इस की उत्तमता और गुणों को इस सीमातक अनुभव नहीं किया जिस सीमातक कि ऋषि लोग कर चुके हैं—मनुजी इसको मन आदि इन्द्रियों के विकारों को दूर करने का महान् साधन बतलाते और दर्शाते हैं कि जिस प्रकार धातु अग्नि में डालने से शुद्ध होजाता है इसी प्रकार प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियें पवित्र होजाती हैं देखो मनुस्मृति अ० ६ श्लोक७१।

प्राणायाम के करने से पचानेके साधन और फेफड़ोंके दोष जहां एक ओर दूरहोते हैं वहां दूसरे ओर मन आदि इन्द्रियों के विकार नष्ट होजाने से मनुष्य ऊर्द्धरेता होसकता और इन्द्रियों को जीत सकता है जो मनुष्य वर्षों ब्रह्मचारी रहना चाहे वह उपासना व्यायाम प्राणायाम आहार और काममें लगे रहने के कारणरह सक्ताहैप्राणायामके लाभों का वर्णनइस प्रकारमहर्षि दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाश समुल्लास तीन में किया हैः—

"प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियें भी स्वधीन होते हैं —पुरुषार्थसे बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है-इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल —पराक्रम—जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित करलेगा।स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करें',-

प्राणायाम करने की विधि सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पूर्ण दी हुई है उसी के अनुसार प्राणायाम करना चाहिये—

निम्नलिखित वेद मन्त्र प्राणायाम के महत्व का बोधन करारहाहै और मन्वादि महर्षियों के आशय को मूलवत् दर्शा रहा है—

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । [यजु० अ० १३ मं०५५]

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि "स्त्री पुरुषों को जानना चाहिए कि प्राण का मन और मन का प्राण संयम करने वाला है ऐसा जान कर प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें,, (देखो यजुर्वेद भाष्य)

४ आहारः—पश्चिमी देशों के बड़े २ प्रसिद्ध विद्वान् माँस और मदिरा को हानिकारक स्वास्थ्य का बतलाते हुए—दूध-मेवा- फल-अनाज (अन्न) खाने पर बल देरहे हैं—मांसभक्षी और सुरापानी कभी ऋतुगामी नहीं होसकते—क्योंकि मांस मदिरा इन्द्रियों को दुष्ट करने और मनको विगाड़ ने वाले पदार्थ हैं—

मांस मदिरा में बल देने का भी तत्व अति न्यून है—दूध मदिरा से और दालें मांस से बहुत बढ़कर पुष्टिकारक हैं बलकारक और स्वास्थ्य रक्षक आहार सदैव

वह होता है जो दीर्घायु का कारण हो—यदि किसी मैशीन के पुर्जे दृढ़ होंगे तो प्रकट है कि वह मैशीन (यन्त्र) चिरकाल तक काम देती रहेगी इसलिए जो आहार कि मनुष्य के शरीर के पुर्जों को बल देता है वह वही होसक्ता है जोकि मनुष्य की दीर्घायु का कारण सिद्ध हो सके—सब डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं—कि मांसाहारी मनुष्य की आयु अधिक नहीं होती-एवं मांस बल कारक भोजन नहीं है। सिपाहियों और क्षत्रियों को भी इसकी सर्वथा आवश्यकता नहीं क्योंकि इसमें कोई भाग दाल से बढ़ कर पुष्ट नहीं है—इस विषय में डाक्टर कौवन की नवीन साक्षी आनन्द दायक होगीः—

"वेल्स-नार्वे-स्वीडन-रूस-डेनमार्क-पालैन्ड—जरमनी—रूस-यूनान—स्वीटज़रलैंएड और पुर्त्तिगाल के कृषीकारक लोग रूस के उत्तरीय सिरेके रहने वालों से लेकर जिवराल्टर द्वीपतक अधिक तर लोग फल अन्न के भोजन पर जीवन व्यतीत करते हैं—स्पार्टा के बलवान योद्धा जोकि अपने डील डौल बल व शक्ति और धैर्यताके लिये सृष्टि की जातियों में अद्वितीय हो चुके हैं वह मांसाहारी न थे-यनान और रूम की फौजें अपने पराक्रम की दशामें मांसाहारी न थीं आदि सृष्टि से लेकर आजतक मनुष्य जाति का एक बड़ा भाग अर्थात् (दो तिहाई) से तीन चौथाई तक मांस के विना जीवन व्यतीत करता चला आया है„

अब हम माँस मदिरा का खण्डन और दूध फल अन्न की पुष्टि में वेद मंत्रों के प्रमाण देंगे—

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥
[अथर्व० कां०१२ अ० ५ सू० ५ मं० १०]

(पय) दूध—जल—(रस) फल-घी—

(अन्न) सब प्रकार के अन्न जैसे गेहूं—चावल—चने—मूंग—उड़द लोविया आदि को तुम खाते रहो (देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका) धर्म्मविषय।

धानाना ँ रूपं कुवलं परीवापस्यं गोधूमाः ।
सक्तूना ँ रूपम्बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥
[यजुः० अ ०१६ मंत्र २२]

इस मंत्र में धान अर्थात् भुनेहुए जौ इत्यादि अन्न
(परीवापस्य) आटा

(गोधूमाः) गेहूं—सक्तू (सत्तू) और दही मिले हुए भोजन खाने की शिक्षा है
उत्सक्थ्य अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् य स्त्रीणां जीव भोजनः ।।
यजु० अ० २३ मं० २१]

"(जीव भोजनः) जीवा भोजनं भक्षणं यस्य सः"

* तक्र के गुण सब जानते हैं। युरुप के सब डाक्टर छाछ की आयु वृद्धि का कारण कह रहे हैं।

हे (वृषन्) शक्तिमान् राजन् (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीव-भोजनः) प्राणियों का मांस खानेवाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और इस स्त्री को बाँध कर (उत्तकथ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर करके ताड़ना कर और अपनी प्रजा के मध्य (अवगुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अंजिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भली भांति चलाओ—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसोवृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोधि वत्से निहन्यताम् ॥ (अथर्व० कां० ६ अ० ७० मं० १)

इस मंत्र में बतलाया गया है कि मांस और मदिरा का सेवन मन को अपवित्र करदेता है.........इस लिये मनुष्यों को माँस और मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिये

न तद्रक्षा ँ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ँ ह्येतत् ।
[यजु० अ० ४४ मं० ५१]

"(रक्षांसि)—अन्यान्य प्रपीड्य स्वात्मानमेव ये रक्षंति ते । (पिशाचाः) ये प्राणिनां पेशितं रुधिरादिकमाचामन्ति भक्षयन्ति ते हिंसकाम्लेच्छाचारिणो दुष्टाः।

राक्षस वह है जो औरों को पीड़ा देकर अपना मनोरथ पूरा करे और पिशाच व हैं जो जीव धारियों के लोहू मांस खाने वालेहिंसक म्लेच्छ आचरण वाले दुष्ट हों— एवं ऋतुगमन के नियम पर चलनेवालों केलिएमांसादि से सर्वथा बचना उचित है

५ कार्य में लगारहना—ऋतुगामी पुरुष स्त्री के लिये कामकाज में लगा रहना आवश्यक है कर्म्म करने से मनुष्य जहां पाप से बचता है वहाँ गृहस्थ के व्यवहार चलाने के लिये धनोपार्जन कर सकता है—इस लिये वेद में आज्ञा है कि मनुष्य जब तक जीवे कर्म का त्याग कभी न करे—मानो जीवन का एक कर्तव्य कर्म है—

कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥ [यजु अ० ४० मं० २]

इस मंत्र में बतलाया गया है कि मनुष्य इस संसार में धर्मयुक्त कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष जोने की इच्छा करे—अर्थात् कभी आलसी बनकर और कर्म्म त्यागकर निष्कार्य्य न रहे—

गृहस्थों के लिये दिनचर्य्या के नियमोंपर चलना आवश्यकीय है प्रत्येक काम नियतसमय पर करना चाहिये इस विषय में संस्कारविधि के गृहाश्रम विषयमें ऐसालिखाहै-

"शौच—दन्तधावन मुख प्रक्षालन करके स्नान करे—पश्चात् एक कोस डेढ कोस एकान्त जंगल में जाकर योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदय पर्य्यन्त अर्थात् आध घड़ी दिन चढ़ेतक घर में आकर सन्ध्योपासन आदि नित्य कर्म नीचे लिखे प्रमाण यथाविधि उचित समय में किया करे„

संक्षेप यह है कि वही पुरुष स्त्री ऋतुगामी होसकते हैं जो ज्ञानकर्म उपासना में समान उन्नति करते रहें और यही बात दिखाने के लिये हमने उपासना,व्यायाम-प्राणायाम-आहार और काम में लगा रहने के विषय का संक्षेप से वर्णन किया है-

व्यायाम—प्राणायाम—आहार—व्यवहार ये सब कर्मकाण्ड के अन्तर्गत हैं एवं हमने इन पांच विषयों में कर्म्म और उपासना दो साधन बतला दिये अब ज्ञान का वर्णन अत्यन्तही संक्षेप शब्दों में करते हैं—पुरुष स्त्री को पढ़ने सुनने से अपना ज्ञान विज्ञान सदैव बढ़ाते रहना चाहिए—उपनिषद में कथा आती है कि गृहस्थाश्रम के सब व्यवहार करते हुए पढ़ने पढ़ाने का उत्तम कार्य जारी रखना चाहिए—इस का विस्तार पूर्वक वर्णन सत्यार्थप्रकाश समुल्लास तृतीयमें लिखा है एवं वेदादि सत्शास्त्र और वेद के अनुकूल आप्त ग्रन्थों और अन्य देशों के बुद्धिमानों के लेखों को पढ़ने सुनने से ज्ञान विज्ञान को बढ़ाते रहना चाहिये—

ऋतुगमन के नियम पर चलने वाले जितेन्द्रिय पुरुषों को उपन्यास अर्थात प्रेमासक्तीय पुस्तकों को कभी हाथभी लगाना नहीं चाहिये—मनको कुमार्गगामी बनाने के लिए कोई वस्तु प्रेमासक्त कहानियों से बढ़कर आजतक आविष्कार नहीं हुई—वेश्याओं के नृत (नाच) और थियेटर के कौतुकों से जितेन्द्रिय पुरुषों को सदैव भागते रहना चाहिये मन वहलाने के लिये वाटिका और जंगल सृष्टि के थियेटर विद्यमान हैं और प्रत्येक स्थान में मिलसकते हैं—जिन ग्रामों में थियेटर का कौतुक करनेवाले भी नहीं जासकते वहां पर भी सृष्टि के ये दृश्य पायेजाते हैं इस लिये इन सब ईश्वरीय थियेटरों से मन वहलाते हुए सृष्टिकर्ता की महिमा का अनुभव करना चाहिए जिनके अपने अथवा पड़ोसियों के वालक विद्यमान हैं उनको थियेटर के कौतुक देखने की आवश्यकता क्या है ! यदि गृहस्थी रात्रि को एक घण्टा भी बाल बच्चों से खेल ले तो उसका चित्त प्रफुलित होजाता है—मन वहलाने के लिये बड़े २ मनुष्य अपने अथवा दूसरों के बच्चों के साथ खेलना बुरा नहीं समझते परन्तु अनेक मनुष्यों को बड़ी धत है कि घर में बच्चों को छोड़कर अर्द्ध रात्रि तक चित्त विनोद के लिये थियेटरों में भटकते फिरते हैं—
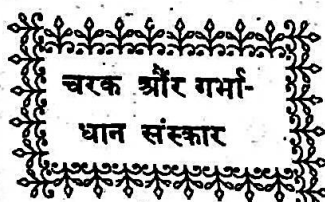
चरक और गर्भाधान संस्कार

चरक के शारीर स्थान के अष्टम अध्याय में १ से २८ सूत्रों में गर्भाधान संस्कार सम्बन्धी बहुत सी बातों का वर्णन है जिन में मुख्य बातें यह हैं (क) पुरुष स्त्री के रज वीर्य की निर्दोष होने की आवश्यकता (ख) ऋतुस्नान से लेकर ८ दिन तक मनको प्रसन्न शान्त, पवित्र रखने के अतिरिक्त शरीर को उत्तम सात्विक आहार से पुष्ट करना (ग) जिस प्रकार की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो वैसे ही शुभ संस्कार मनमें स्त्री धारण करे और तद्वत् आचरण करै वैसे हीं दृश्यों को देखे और कथाओं को सुने। पुरुष भी इन आठ दिन में वैसा ही शुभ आचरण करै। (घ) आठवें दिन पुत्रेष्टि यज्ञ अर्थात् एक प्रकार का विशेष

हवन करने का विधान है। (ङ) युग्म और अयुग्म रात्रियों के विचार से पुत्र अथवा कन्या की उत्पत्ति के निमित्त ७ दिन पीछे स्त्री सहवास करना।

अब हम यही पूर्वोक्त बातें उन्हीं सूत्रों के आधार पर नीचे लिखते हैं:—

चतुर्थसूत्र में लिखा है कि रज बन्द होने पर स्त्री शरीर से तेल लगाकर शिरसहित स्नान करै। और सुन्दर, स्वच्छ वस्त्र पहन कर फूलमाला आदि स्त्रीपुरुष दोनों धारण करैं (जिस से उनकी सन्तानोत्पत्ति की इच्छा और मानसिक हर्ष प्रकट हो) फिर वैद्य कीसम्मति लेकर (जो अवश्य स्वास्थ्य के ठीक होने पर अपनी सम्मतिदेगा) निम्नलिखित अवस्था वाली स्त्री को छोड़ कर समागम करै ऐसी अवस्था वाली स्त्री जो गमन के लिये त्याज्य हैं यह है:—१ जिसने अधिक भोजन किया हो (२) जो भूखी प्यासी हो (३) भय भीत हो (४) जिसको इच्छा मैथुन करने की न हो (५) शोकार्त (६) क्रोध वाली (७) दूसरे पुरुष की इच्छा रखने वाली और (८) मर्य्यादा रहित मैथुन की इच्छा वाली । कारण कि ऐसी अवस्था में स्त्रियों को प्रथम तो गर्भ ही नहीं ठहरता और जो ठहर गया तो संतान कुरूपा और दुर्गुणी होगी। तथा (९) अतिछोटी अवस्था वाली (१०) अतिवृद्ध अवस्था वाली (११) दीर्घ रोगिणी वा अन्य किसी विकार वाली स्त्री भी सम्भोग में त्याज्य है (सूत्र ८९) इसी प्रकार उक्तदोषों वाले पुरुषों को भी मैथुन में त्याज्य बताया है ।

स्त्री गमन की विधि—स्त्री औंधी (उल्टी) लेटकर वा दायें बायें करवट से लेटकर मैथुन न करे कारण कि औंधी होने से वायु योनि को पीड़ित करता है । दायें करवट लेटने से कफ टपक कर गर्भाशय को ढक लेता है और बायें कर्वट लेटने से पीड़ित हुआ पित्त रज और वीर्य को दूषित करता है। इस लिये 'उत्तान, अर्थात् सीधी चित्त लेटे हुये गर्भाशय को तकिया या वस्त्र का नीचे से आश्रय लेकर उन्नत किये हुये वीर्य का ग्रहण करे। इस प्रकार समागम करने से सम्पूर्ण दोष अर्थात् वात, पित्त और कफ अपने अपने स्थानों में स्थित रहते हैं। तत्पश्चात् न्यून से न्यून १ प्रहर पीछे स्त्री शीतल जल से नेत्र मुख तथा योनि धोवे। सूत्र ७।

जिसे गौर वर्ण, सिंहके समान पराक्रमी, तेजस्वी, विद्वान् और धार्मिक पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा हो उसके लिये निम्न विधान है:—

ऋतु स्नान से शुद्ध होने के पश्चात् यव का मन्थ बनाकर घी और मधु मिला श्वेतवर्ण गौ के दूध के साथ चांदी वा काँसे के पात्र में सात दिन तक वह स्त्री नित्य खावे और भोजन भी शालिधान यव के आटे का बना पदार्थ दही,मधु,घृत दुग्ध आदि का करे। और सायं समय सुसज्जित गृह में उत्तम शय्या आदि आसन पर आराम करै। तथा सुन्दर वस्त्र आभूषण आदि धारण किया करे। सायं प्रातः श्वेतवर्ण के बड़े बैल को तथा चन्दन चर्चित सफेद अश्व को देखा करै। अपने मन को सब प्रकार वस्तुओं से प्रसन्न और पवित्र रक्खे इसी प्रकार पुरुष भी मनको प्रसन्न रखने के लिये यथावत् आचरण करै । तथा दोनों सुन्दर दैवी वस्तुओं (प्राकृतिक दृश्य) को देखा करें। स्त्री की अन्य सहचारिणियाँ भी उससे हित और

प्रेम की बातें कर किन्तु इन सात दिवसों में वे सम्भोग न करें । फिर आठवें दिन शिर सहित स्नान करके सुन्दर नवीन वस्त्राभूषण धारण करें । सूत्र १४ से १६ तक।

फिर दोनों पुत्रेष्टि यज्ञ (अर्थात् सन्तानोत्पत्तिके लिये हवन विशेष) करें और यज्ञ में रहे शेष घृत को (जो थोड़ा ही होता है) भोजन में दोनों खावें और उस रात्रि को सहवास करें । इस प्रकार करनेसे मनोऽनुरूप सन्तान उत्पन्न होगी । सूत्र १८से२०तक।

और जो श्यामवर्ण, लाल नेत्र;विशालस्कन्ध और महाबाहु सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा होतो उक्त विधिसे यज्ञादि करनेके अतिरिक्त जहाँ यज्ञमें श्वेतवस्त्र तथा श्वेत चर्मका उपयोग कहा है वहाँ जैसे पुत्र की इच्छाहो उसी के अनुरूप उसी रंगके चर्म वस्त्र आदि तथा भोजन होम करने चाहिये। वैसे ही आशीर्वाद कथा आदि का स्मरण करें । जिस देश के मनुष्यों के समानपुत्र उत्पन्न करना हो उसी देशके मनुष्योंके समान अपना भी आचार व्यवहार रक्खें । गर्भाधान के समय माता पिता का मन जैसा होता है सन्तान का मन भी वैसा ही होगा। गर्भवती स्त्री जिस प्रकार की कथा और आशीर्वाद गर्भ की अवस्था में श्रवण स्मरण करेगी, सन्तान के मन के विचार भी वैसे ही होंगे । और उसकी वृत्तियें भी उसी प्रकार के कर्मों की ओर झुकी हुई होंगी । सूत्र २३ और २५ ।

गर्भाधान के समय तेज, उदक तथा अन्तरिक्ष—इन धातुओं की अधिकता में सन्तति गौर वर्ण की, पृथ्वी और वायु की अधिकता में कृष्णवर्णकी और सब धातुओं के समान होने पर श्याम वर्ण की उत्पन्न होती है। सूत्र २४ ।

रज वीर्य के शुद्ध हुये विना गर्भ स्थिर नहीं हो सक्ता । तथा श्रेष्ठ रज वीर्यसे श्रेष्ठ सन्तान ही उत्पन्न होगी । सूत्र २६ से २८ तक ।

२६ से २८ में कहे हुए वचन का सार यह है कि गर्भाधान करने वालोंको रज और वीर्य अवश्य शुद्ध करना चाहिये । इस के चार उपाय हैं प्रथम औषध सेवन जिस के अन्तर्गत स्नेहन, स्वेदन, आस्थापन, अनुवासन, वमन और विरेचन हैं।

तेल वा घृतादि द्वारा शरीर की मालिश स्नेहन कर्महै। जिस कर्म वा औषध सेवन से पसीना आवे वह स्वेदन है । भापद्वारा स्नान करना इसी प्रयोजन के लिये है और लुई कूने जर्मन डाक्टर इस पर बहुत ज़ोर देते हैं । गुदा द्वारा जल, तेल अथवा औषधयुक्त जल की पिचकारी लेना वस्ति कर्म हैं उसी वस्ती कर्म के आस्थापन और अनुवासन मानों दो रूप हैं । वमन यह भी खाये हुये विष को वा विगड़े हुये दोषों को निकालने कीएक प्रबल विधि है । विरेचन यह जगत प्रख्यात विधि है । इन में से किसी एकवा अनेक प्रकार से रोगों की निवृत्ति करना दम्पती का धर्म हैं (२)दूसरा उपाय सात्विक आहार करना है।आयुर्वेद के अनुसार चावलों में साठी व शालि चावल उत्तम हैं । दालों में मूंग, अन्नों में गेहूं तथा जौ पौष्टिक पदार्थों में गायका दूध घृत तथा उर्द की दाल लवणों में सेंधा वा लाहौरी नमक, मिठास में ईख वा गन्ना और, मिश्री, जलों में आकाश जल ।यदि आकाश जल न मिल सके तो शुद्ध कूप के जल को खूब औटा छान वर्तनमें ढांक कर पीने को रक्खे । फलोंमें आम,बादाम अनार,सेब,किशमिश,अंगूर,छुहारा,नासपाती,नारियल,खजूर,केला आदि फल । शाकों

में परवल, करेला, ककोड़ा, लोकीघिया, तोरी आदि शाक। खटाई में नींबू, अमचूर अनारदाना। तीक्ष्ण रस में कालीमिरच, आदि।

(३) तीसरा उपाय—मानसिक विकारों का छोड़ना और प्रसन्न रहना है, भय शोक क्रोध आदि मानसिक विकार यत्न से छोड़ने चाहिये।

(४) चौथा उपाय—गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य्य पालना है। गर्भाधान करने वाले जितने देर के ब्रह्मचर्य्य के बाद गर्भाधान करेंगे उतनी अधिक सम्भावना सन्तानोत्पत्ति की है।

इति गर्भाधान व्याख्या।

अथ पुंसवनम्

पुंसवन संस्कार का समय, गर्भस्थिति ज्ञान काल से दूसरे वा तीसरे महीनेमें है उसी समय पुंसवनसंस्कार करना चाहिये। जिस से पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे और बालक के जन्म हुये पश्चात् जब तक दोवर्ष न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रह कर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन, छादन शयन जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से कर जिससे वीर्य स्थिर रहै और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे ॥

अथ प्रमाणानि ॥

(१) पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥

(२) पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम् ॥ २ ॥
सामवेद मं० ब्रा० प्र० १ खं० ४। ८—९॥

(३) शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥

(४) पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥

(५) प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधादिह ॥
अथर्व० कां० ६ अनु० २ सू० ११ मं० १, २, ३, ॥

इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये।

(क) अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥ १ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ ख० १३ सू० ५-६ ।

(ख) प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥

(ग) गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वट वृक्ष की जटा वा उसकीपत्ती लेके स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गिलोय वा ब्राह्मीओषधि खिलावे ।

[घ] अथ पुंसवनम् ॥१॥ पुरा स्पन्दत[१]इति मासे द्वितीये तृतीये वा । पार० गृ० सू० का० १ क० १४ सू० १-२ ॥

इसके अनन्तर, पुंसवन को कहते हैं । पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार किया जाता है इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है ।

अथ क्रियारम्भः ॥

पहले पूर्वोक्त "विश्वानि देव०„ इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहाँ उपस्थित हों वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें और " स्वस्तिवाचन" तथा "शान्तिकरण„ का पाठ करके और यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि पूर्वोक्त रीति से ठीक करके फिर "अयन्त इध्म०„ इत्यादि से "ओं अदिते„ इत्यादि तक कर्म, और आघारावाज्यभागाहुति ४ चार तथा व्याहृति आहुति ४ चार देकर फिर "ओं प्रजापतये स्वाहा„ "ओं यदस्य कर्मणो०„ इनसे दो आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवे ।

ओं आते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषुधिम् । आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा * आश्वा० गृ० अ० १ ख० १३ सू० ६ ॥

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यैप्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥ २ ॥ सामवेद मं० ब्रा० प्र० १ ख० १ मं० ६ ।

इन दोनों मन्त्रों को बोल के दो आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नी के हृदय पर हाथ धरके यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले—

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ । मन्येहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघन्नियाम् ॥ अश्व० गृ० १ अ० १ ख० १३ सू० ७

---

[१] पुरा-स्पन्दिष्यते-चलिष्यति, यावत्पुरानिपातयोर्लडिति भविष्यदर्थे वर्तमानप्रयोगः पुरा गर्भस्पन्दनाद् भवतीति हेतोः, शुद्धे द्वितीये वा तृतीये मासे गर्भाधानादुभवतीति टीका„ । गर्भ के चलने से पूर्व यह होता है ।

* इसी आश्व० सू० में "अग्निरैतु„ यह अग्रिम मन्त्र भी है ।

तत्पश्चात् सामान्यप्रकरणोक्त सामवेद आर्चिक और महावामदेव्यगान गा के जो जो पुरुष वा स्त्री संस्कार समय पर आये हों उनको विदा करदे पुनः वट वृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुँघावे *तत्पश्चात्

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
य० अ० १३। मं० ४ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ २ ॥
य० अ० ३१ मं० १७ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धर के यह मन्त्र बोले—

सुपर्णोसि गुरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोमऽआत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोसि गुरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ १ ॥ य० अ० १२। मं० ४ ॥

इस के पश्चात् स्त्री सुनियम से युक्ताहार विहार करै। विशेष कर गिलोय ब्राह्मी ओषधी और शुंठी को दूध के साथ थोड़ी २ खाया करे।

और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक, हरड़े आदि न खावे। सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे।

इति पुंसवनसंस्कारविधिः ॥

---

*या सींचे—डाले। पारस्कर गृ० सू० का० १ क० १४ सू० ३।४ में इन निम्नस्थ तीनों मन्त्रों की प्रतीकें हैं।

ओ३म् नमः

अथ पुंसवनम् ॥

(वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न करने की विधि)

"पुंसवन" संस्कार का समय गर्भ स्थितिज्ञान हुएसे दूसरे वा तीसरे मासमें है। उसी समय पुंसवनसंस्कार करना चाहिये। जिस से पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ हो"।

व्याख्या—पश्चिम के आधुनिक सब विद्वानों ने अपने अन्वेषण से सिद्ध कर दिया है कि भूगोलपर आधी संख्या स्त्रियों की है और आधी पुरुषों की। जब यह बात है तो 'पुंसवन' के अर्थ, कोई लोगों का पुत्रप्राप्ति मान लेना क्या कभी युक्ति संगत होगा? वा इस संस्कार का कभी कोई भी सार्थक बना सक्ता है! क्या यह अन्धेर की बात नहीं है कि ईश्वर तो सदैव आधे पुत्र और आधी पुत्रियाँ उत्पन्न करता रहा है किन्तु वे लोग जिन के विचार में स्त्री शूद्र गर्हणीय हैं—वह अपने अनोखे विचार से इस संस्कार के द्वारा पुत्री को पुत्र बनाया चाहते हैं! भला कोई उन से पूँछे कि जब गर्भ में कन्या है तो उस दशा में यह संस्कार जिसे वह 'लड़के बनाने का संस्कार' समझ रहे हैं व्यर्थ न हो जावेगा! क्योंकि लड़की का लड़का कभी नहीं बनेगा। ऋषि दयानन्द योगी थे, पण्डित थे और निष्पक्षपात विद्वान् थे उन्होंने पुराने ऋषियों के समान 'पुंसवन' के अर्थ वह किये हैं जो सृष्टि में ईश्वर कार्य रूपमें कररहा है। उन्होंने लिखा है कि "पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ हो"। महर्षि दयानन्द जी के इस युक्तियुक्त अर्थने इस संस्कार का महत्व दर्शा दिया—इसको सार्थक बनादिया सर्व संशय मानों उन्होंने इस अर्थ द्वारा मिटादिये।

छापे की भूल "यावत् बालक के जन्म हुये पश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन छादन, शयन जागरण आदि व्यवहार उसी प्रकारसे करे जिससे वीर्य स्थिर रहै और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे"।

उक्त लेख में एक बड़ी और एक साधारण भूल शोधक वा लेखक की असावधानी से रहगई प्रतीत होती है। 'यावत्' के स्थान में और शब्द अधिकता का अर्थ सूचक होने से होना चाहिये। और 'दो महीने' के स्थान में 'दो वर्ष' यह शब्द निस्सन्देह होने चाहियें। जिन्होंने ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थ पढे हैं वे समझ सक्ते हैं कि दो महीने के स्थान में 'दो वर्ष' यही शब्द सार्थक होसक्ते हैं।

प्रमाणों के अर्थ।

(१) हे सुभगे! परमात्मा करे कि (मित्रावरुणौ) दिन और रात, तेरे लिये (पमांसौ) उत्पादनशक्ति वाले हों और (उभौ अश्विनौ) दोनों प्राण और अपान वायु (पुंमांसौ) उत्पादनशक्ति वाले हों। (च) और (अग्निः) अग्नि (च)

और (वायुः) वायु उत्पादक शक्ति सम्पन्न हो । (तव, उदरे) तेरे पेट में (गर्भः) गर्भ भी (पुमान्) उत्पादक शक्तिवाला वा वीर्यवान् हो ।

(२) हे देवि ! (अग्निः) पूजनीय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवाला (देवः) दिव्यगुणयुक्त (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का स्वामी परमात्मा तेरे लिये (पुमान्) उत्पादकशक्ति वाला हो, और तू (पुमांसम् पुत्रम्) उत्पादकशक्तिसम्पन्न वा वीर्यवान् सन्तान को ईश्वर कृपा से (विन्दस्व) प्राप्त हो और (तम्, अनु) उस सन्तान के पीछे भी (पुमान् जायताम्) वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न हो ।

(३) हे मनुष्यो ! (अश्वत्थः) घोड़े के तुल्य बलवान् पुरुष जब (शमीम्) शान्त करने वाली स्त्री के प्रति (आरूढः) आरोहण कर चुकता है (तत्र) उस काल के पीछे (पुंसवनम् कृतम्) पुंसवन संस्कार किया जावे ऐसा जानो । (तद् वै) वही कर्म (पुत्रस्य वेदनम्) सन्तान का प्राप्त कराने वाला है (तत्) उस कर्म को हम (स्त्रीषु) स्त्रियों में (आ, भरामसि) सम्पादन करते हैं ।

(४) (पुंसि वै) पुरुष में ही (रेतः) वीर्य (भवति) होता है (तत्) वही वीर्य (स्त्रियाम्) स्त्री में (अनुषिच्यते) पीछेसे सेचन किया जाता है । (तद्वै) उससे ही (पुत्रस्य वेदनम्) सन्तान का लाभ होता है वही (प्रजापतिः) ईश्वर ने (अब्रवीत्) कहा है ।

(५) (प्रजापतिः) संवत्सर (स्त्रैषूयम्) स्त्रीप्रसवसम्बन्धि निमित्त को (अन्यत्र) स्थानान्तर में (दधत्) रखता है, और (इह) यहां पुरुषों में (पुमांसम्) उत्पादकशक्ति को ही (दधत्) रखता हुआ (प्रजापतिः) संवत्सर और (अनुमति) पौर्णमासी (सिनीवाली) अमावस्या, यह सब गर्भाशयस्थ रेत को हस्त पादादि— अवयवों की रचना से समर्थ (अचीक पत्) बनाते हैं ।

इनमन्त्रों की व्याख्या ॥

(१) जो मनुष्य दिन को श्रम अथवा काम धन्धा करता है और रात को भर नींद सोता है उसे मानों दिनरात वीर्यवान् बनारहे हैं । जिसे भूख लगती है और मल मूत्र के त्यागने में कष्ट नहींहोता उसे प्राण, अपान, वीर्यवान् बनाते हैं जो अग्निहोत्र करता और प्रातःकाल शुद्धवायु का सेवन करता है वह वीर्यवान् होता है और उक्त गुणों वाली स्त्री का गर्भ भी बलिष्ठ होता है ।

(२) इस मन्त्र में आशीर्वाद है जिसका प्रयोजन स्त्रीके मानसिक बल को बढ़ाना और उसे उत्साहित करना है ।

(३) इस मन्त्र में अश्व की उपमा से तात्पर्य यह है कि वही पुरुष सन्तान उत्पन्न करने के योग्य होसकता है जिस की उपस्थेन्द्रिय में अश्वपन अर्थात् तेजी का गुण हो अर्थात् वह नपुंसक न हो। आगे बतलाया गया है कि गर्भाधान के पीछे पुंसवनसंस्कार करना चाहिये जिससे गर्भस्राव नहो और सन्तान वीर्यवान् हो।

(४) इस मन्त्र में समागम विधि का निरूपण किया गया है ।

[५] इस मन्त्र में बतलाया है कि गर्भगतबालक के अङ्ग और उपाङ्ग बनने में

समय लगता है। और प्रसव का समय सृष्टि में नियत है और पौर्णमासी, अमावस्या कई पर्व बीत जाने पर बच्चे का जन्म होता है।

ऋषिवचन महर्षि दयानन्द जी लिखिते हैं कि "इन मन्त्रों कायही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चहिये,, जिससे सन्तान वीर्यवान् होस

व्याख्या के इस संस्कारके अवसर पर पति को वीर्यवान् होनेका उपदेश करना बतला रहा है कि वह दोवर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे और सर्वसृष्टि में जो पशु पक्षी, गर्भिणीगमन न करनेका व्रत रखतेहैं वहीव्रत वहभी रक्खे अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध होता है कि जब पुरुष वीर्यवान् रहेगा तो गर्भिणी स्त्री भी पुरुष संग न करने से वीर्यवती ही रहेगी और उसके इस वीर्यवती होनेका फल निस्सन्देह यहहोगा कि सन्तान भी वीर्यवान् होगी और यही एकमात्र इस संस्कारकाउद्देश्यहै कि वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न हो*। विपरीत इस के यदि स्त्री पुरुष व्यर्थ कुचेष्टाएँअथवा लम्पटता करेंगे तो सन्तान भी लम्पट और वीर्यहीन होगी इसलिये सन्तान को वीर्यवान बनाने के लिये यही उपायहै कि पुरुष और उसकी गर्भिणी स्त्री वीर्यवान् होनेका व्रत धारण करे।

सूत्रार्थः—

(क) (अथ) फिर (अस्यै) इस स्त्री को (मण्डलागारच्छायायाम्) मण्डलाकार स्थान की छायामें बैठकर (दक्षिणस्यां नासिकायाम्) दांई नाक में (अजीताम्) जो पुरानी न हो ऐसी (ओषधीम्) ओषधि को (नस्तः) नासिका से चुपचाप (करोति) करता है वा करै।

(ख) 'प्रजावान् सूक्त—'आते गर्भः, इत्यादि आगे लिखे हुये से वा जीवपुत्र सूक्त 'अग्निरैतु, इत्यादि से नासिका द्वारा ओषधीको सुंघाते हैं ऐसा कोई आचार्य मानते हैं।

(ग) गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वटवृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती लेकर स्त्री को दक्षिण नासा पुट से सुंघावे और कुछअन्य पुष्ट अर्थात् गिलोय वा ब्राह्मी ओषधी खिलावे।

(घ) गर्भ के फड़कने वा हृदयगति सेपूर्व अर्थात् दूसरे वा तीसरे महीनेमें पुंसवन करना चाहिये।

व्याख्या प्रसिद्ध पश्चिमी डाक्टर सर बिलियम मूर अपनी पुस्तक (फेमिली मेडिशन) † में लिखते हैं कि:—

(१) गर्भिणी को गर्भस्थिति से १ मास पश्चात् के लगभग प्रातःकाल में वमन होने लगती है।

---

* पुमान् सूयते यस्मात् इति "पुंसवनम्, अर्थः— पुमान् अर्थात् वीर्यवान् (बलवान्) सन्तान उत्पन्न की जावे जिससे उसका नाम पुंसवन है।

† "फेमिली मेडीशन" डा०सरविलियम मूरकृत, अंग्रेजी पुस्तक पेज ५४५

(२) प्रथम मास से ही वह रजस्वला होनी बन्द हो जाती है ।

(३) स्तनों का बढ़ना प्रथम मास के पीछे तीसरे मासतक ।

(४) स्तन और उनकी टूटियों का काला रंग, यथा कड़ा होना तीसरे मास के लगभग होता है ।

(५) पेट का बढ़नाभी प्रायः तीसरे मास से होता है ।

(६) बच्चे का फड़कना चौथे मास के लगभग या पाँचवे मास तक प्रतीत होने लगता है ।

इससे पाया जाता है कि गर्भस्थ बालक प्रायः तीसरे मास के बीत जाने पर चौथे मास के लगभग फड़कने लगता है और चौथे मास में हृदय की गति भी प्रकट करता है । सूत्रकार का मत है कि फड़कने से पूर्व यह संस्कार करना चाहिये । अतः तीसरे मास के समाप्त होने से पूर्व ही कर लेना चाहिये । चाहे कोई गर्भस्थिति के दूसरे मास में करे और चाहे तीसर में, यह करने वाले के सुभीते पर निर्भर है ।

क्रियारम्भ

ईश्वर उपासना—

१ विश्वानि देव०
२ हिरण्यगर्भः०
३ य आत्मदा०
४ यः प्राणतो०
५ येन द्यौ रुग्रा०
६ प्रजापते०
७ स नो बन्धुः०
८ अग्ने नय०

इन आठ मन्त्रों से दत्तचित्त होकर ईश्वरोपासना करें । फिर स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ करें और यज्ञदेश, यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञसमिधा, सामग्री और पाकस्थाली का निरीक्षण करके आचमन अङ्गस्पर्श अग्न्यधान समिधाधान, पञ्चघृताहुति, जलप्रक्षालन आघारावाज्यभागाहुति व्याहृतिआहुति तथा सामान्य प्रकरण की अन्य आहुतियाँ देकर नीचे लिखे दो मन्त्रों से घृताहुति देवे ओं आते गर्भो और अग्निरेतु प्रथमो……… "

मन्त्रार्थः—

(१) हे सौभाग्यवति ! (ते) तेरा (पुमान्) वीर्यवान् (गर्भः) गर्भ (बाण इषुधिमिव) बाण जैसे तरकस को प्राप्त होता है वैसे (योनिम्) उत्पत्ति स्थानको (आ,एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । और (दशमास्यः) दस महीने का होकर (ते पुत्रः) तेरा बालक (वीरः) वीर—पराक्रमी (आ,जायताम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न हो ।

(२) (देवतानां प्रथमः) सम्पूर्ण दिव्यगुणी पदार्थों में मुख्य (अग्निः) पूजनीय ईश्वर (एतु) उपासना द्वारा प्राप्त हो । (सः) वही ईश्वर (अस्यै) इसी स्त्री की (प्रजाम्) सन्तान को (मृत्युपाशात्) मरणादि के बन्धन से (मुञ्चतु) छोड़ (तत्) इसबात को (अयं वरुणो राजा) यह देश का श्रेष्ठ राजा भी (अनुमन्यताम्) अनुकूल माने और (यथा) जैसे कि (इयं स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम्, अघम्) पुत्र सम्बन्धी व्यसनको (न रोदात) न रोवै वैसा ही करे ।

व्याख्या

प्रथम मन्त्र में बतलाया है कि कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे गर्भ के गिरने का भय हो। निर्बल अथवा वीर्यहीन, गर्भ अपनी निर्बलता के कारण गिर सक्ता है परन्तु वीर्यवान् गर्भ इस भय को प्राप्त नहीं होता महर्षि धन्वन्तरि जी कहते हैं कि कन्या सोलह वर्ष और पुरुष पच्चीस वर्ष की आयु से पूर्व यदि गर्भाधान करेंगे तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ कर गिर जावेगा और यदि उत्पन्न भी हुआ तो अधिक दिन नहीं जीवेगा। यदि जी भी गया तो दुर्बलेन्द्रिय और बलहीन तो अवश्य ही होगा। अतः मन्त्र में बतलाया है कि (क) गर्भ वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होना चाहिये जिससे वह पूरे दिन का होकर जन्मे और बलवान् रहे (ख) मानो पुरुष स्त्री ने योग्य अवस्था में गर्भाधान के सब नियमों को समझ कर गर्भस्थापन किया परन्तु यदि गर्भावस्था में उसकी विशेष रक्षा नहीं की तो उसके गिरजाने का भय है इस लिए पति समागम तथा अन्य कुचेष्टाएँ छोड़ दे जैसे गर्भिणी का पाँव के बल अधिक बैठना ऊंचे नीचे स्थलों पर चढ़ना उतरना, मलमूत्र के वेगों को रोकना, अति परिश्रम करना अति ऊष्ण पदार्थों का सेवन करना, भूखे रहना, चोट का लगना, भारी बोझा उठाना, भयानक दृश्य का देखना, ऊंट आदि अधिक हिलानेवाली सवारी पर बैठना, तोप आदि के भयंकर शब्द सुनना, ऐसी औषधि खाना जिस से गर्भ गिर जावे। शोक, भय, तेज जलाब, विषमय पदार्थ इत्यादि के सेवन से अलग रहे। अतः जिस प्रकार तरकश में तीर सुरक्षित रहता है इसी प्रकार गर्भिणी के गुह्य अंग में गर्भ रक्षित रहे अर्थात् मन, वचन और कर्म से गर्भिणी कभी भी उसके गिराने का यत्न न करे किन्तु सदा उसकी रक्षा में तत्पर रहे।

(ग) तीसरी बात मन्त्र में यह कही है कि पूरे दश महीने अर्थात् चान्द्रमास के दो सौ अस्सी दिन का हो कर बालक जन्मे और वह बालक वीर अर्थात् बलवान् वीर्यवान् और पराक्रमी हो।

पुंसवन सम्बन्धी तीन बातें इस मन्त्र में बतलाई गई हैं। प्रथम यह कि गर्भ वीर्यवान् हो, दूसरे यह कि स्त्री गर्भ को कभी गिरने न दे और तीसरे यह कि वह पूरे दिनों का होकर वीर बालक जन्मे।

मन्त्र २

इस मन्त्र में इस बात का उपदेश है कि परम देव परमेश्वर अपनी कृपा से गर्भिणी के गर्भगत बालक को गर्भ अवस्था में अथवा उत्पन्न होने पर अर्थात् दोनों दशाओं में अल्प अवस्था में मरने से बचावे अर्थात् माता पिता अपनी सन्तान को मरते न देखें। यह आशीर्वाद तथा प्रार्थना मन को पवित्र और उत्साहित करने के लिये अन्वर्थ मानसिक औषधि है। भला वह लोग जो परमेश्वर से यह प्रार्थना करें कि हमारी सन्तान गर्भ अवस्था में तथा जन्म के पश्चात् भी चिरंजीव रहे वे कभी गर्भपात की औषधि खासकते हैं! वा गर्भिणी गमन आदि कुचेष्टा कर सकते हैं? सब कर्मों का मूल मन है और मन की पवित्रता और उत्साह के लिये निस्सन्देह प्रार्थना ही एक मात्र साधन है।

(ख) फिर यह बतलाया है कि इस बात का राजदंड होना चाहिये कि कोई स्त्री अपने गर्भ को गिराने न पावे और उत्पन्न किये हुये बालक को माता पिता अथवा अन्य कोई मारने न पावे ।

इसी लिये वेद की यह आज्ञा सब देशों के राजा शिरोधार्य कर रहे हैं। जो भी डाक्टर या वैद्य गर्भ गिराने में सहायता देते हैं वे भी राजदण्ड के भागी होते हैं * प्रत्येक माता पिता को सन्तान के उत्पन्न करने का अधिकार है उसके मारने का नहीं।

इस मन्त्र का सार यह है कि:—

(१) पतिपत्नी दोनों गर्भगत तथा जन्मे हुये बालक के चिरायु होने की प्रार्थना परम देव से करते रहें।

(२) गर्भपात करने वा कराने वाली स्त्री तथा उसके सहायक अथवा सन्तान के मारनेवाले दुष्ट मनुष्य तथा उनके सहायकों के लिये राजदण्ड होना चाहिये।

महाभारत तथा रामायण के पढ़ने से पता लगता है कि एक समय था जब कि लोग पुंसवनसंस्कार का महत्व समझे हुए थे, लिखा है कि उस समय कोई माता पिता अपनी सन्तान की मृत्यु को नहीं देखता था अर्थात् सन्तान चिरायु होती थीं।

पश्चात् एकान्त में जाकर पत्नी के हृदय पर हाथ धर कर पति यह मन्त्र बोले—"ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः.......... ,, मन्त्रार्थः—

हे (सुसीमे) शोभनकेश पद्धतिवाली ! (यत्) जो गर्भ (ते) तेरे (प्रजापतौ) सन्तानपालक (हृदये) हृदय में (अन्तः) भीतर [हितम्] स्थित है (तत् विद्वांसं माम्) उसको जाननेवाला अपने आप को (अहं मन्ये) मैं मानता हूं और परमात्मा से चाहता हूं कि (अहं) मुझे [पौत्रं अघम्] सन्तान सम्बन्धी दुःख [मा नियाम्] न प्राप्त हो ।

"हिरण्य गर्भः०" मंत्र का अर्थ पूर्व "ईश्वर स्तुति,, मंत्रों के साथ आचुका है ।

[व्याख्या] एकान्त में पति पत्नी को ले जाकर उस के हृदय पर हाथ रख कर जो कुछ कहता है वह असाधारण बात है । संसार में देखा जाता है कि जब भरी सभा में से उठकर कोई एकान्त में किसी को कोई बात कहता है तो वह बात बहुत गूढ़ और असाधारण हुआ करती है । वह गूढ़ तत्व की बात पति एकान्त में स्त्री से इस प्रकार कहता है कि हे सुन्दर केशवाली धर्म्म पत्नी मैं पूर्ण रीति से जानता हूं कि तेरा हृदय सन्तान पालने के भाव से भरपूर है और मैं परमात्मासे प्रार्थी हूं कि मैं भी तेरे समान गर्भ तथा सन्तान की रक्षा में तत्पर रहूं ।

अहो! कैसे सुन्दर उच्चभावसे युक्त गूढ़ आशयसे भरपूर यह सम्बोधन पति,

* यहां तक कि डाक्टरों को उपाधि (डिप्लोमा) मिलता है तो उनको शपथ उठानी पड़ती है कि वे अपने जीवन में किसी का गर्भ न गिरावेंगे।

से कर रहा है। पत्नीके सद्भाव पर पूर्ण विश्वास रखता हुआ आप भी प्रतिज्ञा करता है कि उसके समान वह भी गर्भ रक्षा और सन्तान रक्षा की भारी ज़िम्मेदारी को अपने शिर पर खु़शी से लेगा—

पति जो पत्नीके हृदय पर हाथ रखताहै, यहबाह्य क्रिया उसी महान् पवित्र तथा आन्तरीय उच्चभावोंकी बोधकहै जो वहमुंहसे कररहाहैं वह जहां मुंहसे कहरहाहै कि तेरा मनगर्भरक्षामें दृढ़है वहाँ वह स्वतः ही उसके हृदयकी प्रशंसाको विशेष दिखानेके लिये मन के बसने वाले हृदय अंग पर हाथ रखता है, देखा जाता है कि जब कोई किसी के बाहुबलकी स्तुति करता है तो वह उसकी बाहु पकड़ कर अथवा उसे छूकर वा उस पर हाथ रख कर कहता है कि यह मनुष्य बहुत वीर है।

आज डाक्टर डेविस और स्टॉलसे कई पश्चिमी महानुभाव यह कहते नहीं थकते कि गर्भाधान से पवित्र कोई कर्म नहीं और यह हेतु देते हैं कि सृष्टि उत्पन्न करना ईश्वरीय कर्म है और ईश्वर ने जो प्राणियों को सन्तान उत्पत्तिके अधिकारतथा साधन दियेहैं वह उसकी महान् कृपाहै कि वह उनको अपना प्रतिनिधि बनाताहै। सुविख्यात पण्डित गुरुदत्त जी एम० ए० लिखते हैं कि सन्तानोत्पत्ति से बढ़ कर कोई भी भारी ज़िम्मेवारी का काम पृथ्वी पर नहींहै। परन्तु प्रकृतिका उपासक पश्चिमी दुनियाँ का जनसमाज अभी तक इन उच्चभावों पर नहीं पहुंचा। धन्य थे वह आस्तिक ऋषि जिन्होंने सन्तान उत्पत्ति और उसकी रक्षा को सचमुच मन वचन और कर्म द्वारा ईश्वर उपासना समझ रक्खा था। वह प्राचीन समय वास्तव में अपूर्व था जब कि पुंसवन संस्कार को गर्भरक्षा और वीर सन्तान बनाने का साधन आर्यतत्त्ववेत्ताओं ने बना रक्खा था।

आर्य पति, आर्या पत्नी से अपना भाव प्रकट करनेके पश्चात् सभा मण्डपमें आता है जिसके आते ही सामवेद का मनोरञ्जक और शान्तिप्रदगान गाकर सभा विसर्जन होने के लिये तैयार होती है, आर्य पति और पत्नी सभा को सुशोभित करने वाले पुरुष स्त्रियों को विदा करने के पश्चात् ईश्वर से जिस बात की प्रार्थना की गई है उसी मंगलेच्छा की विशेष पूर्ति ओषधि द्वारा करते हैं अर्थात् गर्भ रक्षा के लिये ओषधियों का प्रयोग किया जाता है और ओषधियें भी वे हैं जिन्हें आयुर्वेद ने प्रमाणित कियाहै जिन की नस्य गर्भ की धारण शक्ति को बढ़ाने वाली और गिरने की चेष्टाओं से रोकने वाली है।

लिखा है कि "वट वृक्ष की कोमल कोपल और गिलोय को महीन पीस कपड़े में छान गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे,, और पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार उक्त नासिका में सींचे अथवा डाले।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान अध्याय ३८ में न्यग्रोधादि गण में बड़ के गुण इस प्रकार लिखे हैं—व्रणको हितकारी, टूटे को जोड़ने वाला, रक्त पित्त नाशक, दाह और मेद नाशक तथा स्त्रियों के योनि दोषों का दूर करने वाला है।

अतः बड़, रक्त पित्त नाशक होने से रक्त दोष तथा गर्मी से होने वाले उपद्रवों को दूर करके योनि रोगों को शमन करता तथा गर्भ को पुष्टि देता है। प्रायः देखते हैं कि नकसीर में वैद्य इसकी जड़ की महीन पिसी हुई नस्य देते हैं।

आगे उसी पुस्तकमें गिलोयको ज्वर नाशक, पित्त, कफ, खाज, अरुचि, वमन, तृषा और दाह को दूर करने वाली तथा दस्तावर लिखी है अर्थात् जो जो उपद्रव उन दिनों में गर्भिणी स्त्री को होते हैं उन सब की गिलोय एक अव्यर्थ औषधि है। गिलोय, दस्तावर होने के कारण उदर व्याधि से भी गर्भिणी को मुक्त रक्खेगी।

अतः १ माशा वट वृक्ष की कोमल पत्तियों को अथवा उसकी जटा को महीन पीस चूर्ण करले और एक मासा गिलोय का महीन चूर्ण (चाहे यह दोनों चीजें कपड़ छन की हुई हों अथवा ऐसी कि जिन से नस्य ली जा सके) ले कर सुंघावे अथवा उसे पानी में घोलकर तीन चार बूंद डाले। इसी प्रकार का—परन्तु कुछ भिन्न प्रयोग सुश्रुत में भी गर्भ स्राव के रोकने के लिये लिखा है। वह प्रयोग यह है:—

लब्धगर्भाया श्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणा वट शुंगा सहदेवी विश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तन्निष्ठीवेत्।

(सुश्रुत, शरीरस्थान, अध्याय २)

अर्थ-जब स्त्री को गर्भ रह जावे तो इन दिनों में लक्ष्मणा, वट की कोपल, सहदेवी (पीले फूल की कंघी) और विश्वदेवा (गंगेरन) इनमें से किसी को गाय के दूध में घिसकर सन्तान चाहने वाली स्त्री के दाहिने नथुने में तीन चार बूंद डाले और स्त्री को शिक्षा करे कि इसे थूके नहीं।

तत्पश्चात् 'हिरण्यगर्भ..........., और 'अद्भ्यः सम्भृतः..........., इन दो मन्त्रों का पति उच्चारण करे। मन्त्रार्थ:—

पहिले मंत्र का अर्थ उपासना प्रकरण में आगया है वहाँ देख लेना चाहिये। दूसरे का अर्थ यह है—

जो प्रकृति रूप पदार्थ [अद्भ्यः] स्थूल जलोंकी उत्पत्तिके लिये और (पृथिव्यै) स्थूल पृथिवी के लिये (सम्भृतः) पूर्वस्थित तथा (विश्वकर्मणः, रसात्च) सूर्यादिदृश्य पदार्थों से भी (अग्रे) पहिले (समवर्तत) कारणरूप से विद्यमान था (तस्य) उस प्रकृतिरूप पदार्थ को (विदधद्) विकृत करता हुआ (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी भगवान् (रूपम्) इस जगत् के रूप को (एति) प्राप्त कराता हैं और (अग्रे) पहिले (तत्) वही ब्रह्म (मर्त्यस्य) मनुष्य के (देवत्वम्) देवभाव को (आजानम्) प्राप्त करा चुका है (वही दिव्य गुणों का धारण करने वाला है)।

मन्त्रों की व्याख्या

पहिले मंत्र में बतलाया है कि स्त्री गर्भ को एक तुच्छ वस्तु न समझे किन्तु उसके महत्व को जाने और उसके रक्षण पोषण में गौरव माने, जैसे कि परमेश्वर ने सूर्य चन्द्र आदि सब ब्रह्माण्डों में गर्भ अवस्था में स्वयं धारण किया, फिर उत्पन्न किया और दोनों अवस्थाओं में वह उनका पति अर्थात् रक्षक है इस लिये गर्भ एक महान् वस्तु है—इसके धारण करने वाला महान् है, इस का जन्म देने वाला महान् और इसका रक्षण करने वाला भी महान् है। पृथिवी पर जो पुरुष स्त्रियें 'महान्, (ग्रेट) हो गये हैं वे भी कभी अपनी माता के गर्भ में थे और जो उनकी माता गर्भ धारण करके उनकी विशेष रक्षा न करती तो

भूगोल पर ऋषि मुनियोंका नाम हम कहाँ से सुनते ! जब तक किसी वस्तु का महत्व समझ में नहीं आता तब तक उस के धारण अथवा रक्षण करने में रुचि नहीं होती। इस लिये गर्भ की महत्ता। इससे बढ़ कर और क्या दिखाई जा सक्ती है कि स्वयं परमेश्वर 'हिरण्यगर्भ' है।

दूसरे मन्त्र में बतलाया है कि जल स्थूल और सूर्य आदि पदार्थ अपने प्रकृतिरूपी गर्भ से उत्पन्न हुए और उस गर्भ का धाता परमात्मा है। जब ईश्वर स्वयं विश्वकर्मा है तो पति पत्नी दोनोंको सन्तानके उत्पन्नकरनेमें गौरव होनाचाहिये-मानों-मनुष्य,सन्तान उत्पन्न करके ईश्वर आज्ञा का पालन कररहे हैं। इसमंत्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व भी सिद्ध किया है।

फिर लिखा है कि स्वपत्नी के गर्भाशय (पेट) पर हाथ रख कर यह मन्त्र बोले— "सुपर्णोऽसि .... ,,। मंत्रार्थ—

हे गर्भस्थ जीव ! तू ईश्वर कृपा से (सुपर्णः) सुन्दर पंखों वाला (गरुत्मान) पक्षी जैसा (असि) हो। (ते शिरः) तेरा शिर (त्रिवृत्) तीन प्रकारके गुणोंसे कर्मउपासनाऔर ज्ञान से—व्याप्त हो (गायत्रीम्) गायत्री मन्त्रोपदिष्ट ईश्वरीय विज्ञान (चक्षुः) तेरा ज्ञान साधन हो । (पक्षौ) पंखों की नाईं (बृहद्रथन्तरे) विशेष साम मन्त्र हों अर्थात तुझे साम मन्त्र गाने के लिये लोग जहाँ तहाँ बुलावें (स्तोमः) ऋग्वेदमय ईश्वर स्तुति समूह यजुर्वेद रूप (ते) तेरे अवयव जैसे हों (नाम यजूंषि छन्दांसि अङ्गानि) प्रसिद्ध यजुर्वेद रूप तेरे अवयब जैसे हों। (वामदेव्यं साम) वामदेव—सुन्दर विद्वान् से जाना हुआ सामवेद (ते तनूः) तेरा शरीररूप हो (यज्ञायज्ञियम्) यज्ञों के लिये उपयुक्त वस्तुऐं (पुच्छम्) सर्वदा पीछे लगने वाली हों (शफाः) शरीर को शान्ति देने के साधन पैर (धिष्ण्याः) उच्च पद के योग्य हों। हे गर्भस्थ जीव ! तू (सुपर्णः) सुन्दर पक्षों वाला (गरुत्मान्) पक्षी जैसा (असि) होकर (दिवं गच्छ) अपने ज्ञान द्वारा द्युलोक को प्राप्त हो और (स्वः पत) सुख का उपभोग कर।

मन्त्र की व्याख्या

पति का पत्नी के पेट पर हाथ रखना यह बाह्य क्रिया है जो उसके आन्तरिक भाव को प्रकट करती है। इस मन्त्र में बतलाया गया है कि सन्तान सर्वांग सम्पन्न उत्पन्न हो और यह तभी होसक्ता है जब स्त्री पर गर्भावस्था में किसी प्रकारकी चोट न आवे इसलिये गर्भिणी के पेट पर पति का हाथ रखना केवल इसी प्रयोजन से है कि गर्भिणी उसकी विशेष रक्षा करै।

सम्प्रति अमेरिका के फिलोसफर अँन्ड्रोजेक्सन डेविस और अन्य अनेक विद्वानों ने इस बातको प्रकट कियाहै कि आदर्श मनुष्य वही होसक्ता है जिस में ज्ञान (विज़डम) कर्म (विल) और उपासना [लव] यह तीनों काण्ड समान उन्नति के शिखर पर हों। डाक्टर लोग (परफक्टहैल्थ) का लक्षण यही करते हैं कि सब अंग और उपांग नीरोग अवस्था में हों।

उक्त मन्त्र में "त्रिवृत्,, शब्द से ज्ञान, कर्म और उपासना की शक्तियें रखने वाला और पक्षी के अलंकार से सुन्दर पंखवाला वर्णन करने के रूप में बतलाया

है कि कोई पक्षी उस अवस्था तक आरोग्य नहीं कहा जा सक्ता जब तक कि उस का कोई अंग वा पंख दूषित हो । अंगहीनता की निन्दा इस में बतलाई है और इस भाव को स्त्री के हृदय में दृढ़ करने की चेष्टा की है कि उसका बालक अंगहीन उत्पन्न न हो । परम विद्वान् महर्षि धन्वन्तरिने सुश्रुत के सूत्र स्थान में बतलाया है कि यदि दो पक्षी एक एक पंख वाले हों तो वेइतना काम मिल कर नहीं करसक्ते जितना एक पक्षी दोनों पैरों वाला कर सक्ता है । इसी प्रकार जानना चाहिये कि अंगहीन सन्तान अपना और संसार का भला पूर्णरीति से नहीं कर सक्ती । इसलिये गर्भिणी को सर्वांगसम्पन्न सन्तान उत्पन्न करने के उपाय करने चाहियें ।

इससे बढ़कर आदर्श परफैक्टहैल्थ (पूर्ण स्वास्थ्य) और क्या हो सक्ता है ! जो इस मन्त्र में स्पष्टरूप से परन्तु वैदिक अलंकार में वर्णन किया है । आओ इस मन्त्र पर थोड़ासा विचार और करें—

(१) प्रथम तो बतलाया है कि गर्भगत बालक सुन्दर पंखो वाले पक्षी के समान हो – अर्थात् उसकी शारीरिक उन्नति का वर्णन तथा स्वास्थ्यका आदर्श बतलाया है कि वह अंगहीन न हो—अन्धा लूला लगड़ा बहिरा काना आदि दोषों वाला न हो । पक्षी के मुख्य अंग पत्त हैं । उसका दृष्टान्त देने का अभिप्राय यह है कि जैसे बिना पंख के पक्षी निकम्मा है वैसे ही मनुष्य बिना किसी भी अंग के निकम्मा और रोगी है । मन्त्र की समाप्ति पर यही बात फिर दर्शाई है कि हे गर्भस्थ जीव ! तू सुन्दर पंखों वाले पक्षी जैसा अर्थात् उत्तम अंगयुक्त होकर उत्पन्न हो और जिस तरह पक्षी अन्तरिक्ष में आनन्द से विचरते हैं उसी प्रकार तू सर्वत्र पृथ्वी के देशों में आनन्द का भोग कर सके ।

(२) दूसरी बात यह बतलाई है कि तेरा शिर जो ज्ञान प्राप्ति का अंग है वह तीन प्रकार के ज्ञान धारण करने वाला हो ।

(३) ज्ञान—ईश्वरीय ज्ञान चक्षु के समान हो अर्थात् जिस प्रकार आंखें सर्व शरीर की नायक हैं उसी प्रकार ब्रह्म की आज्ञापालन तू सर्वोपरि मान ।

(४) फिर एकऔर पक्षीके अलंकारसे बतायाहै कि गानविद्या (सामवेद) तुझे एक स्थान से दूसरे स्थान में लेजाने वाले पत्तों के सामन हो और आदर आदि का कारण बने अर्थात् जहाँ तू जावे वहाँ लोग ब्रह्म तत्व के समझने की तुझ से आशा रक्खें ।

(५) फिर लिखा है कि स्तोम (ऋग्वेद—अथवा थियोरेटीकल साइंस) सर्व विद्याओं के मूल अर्थात 'आत्मा' के समान हैं ऐसा समझ करतू उन्नति कर ।

[६] यजर्वेद (प्रेक्टिकल आर्टस्) अर्थात् कर्मकाण्ड तेरे हाथ आदि अंगों के समान है वह जानकर तू कर्मकांडी भी अवश्य बन ।

[७] महावामदेव्य गान अर्थात् गुरु से नियमपूर्वक सीखा हुआ सामगान तेरा धड़ समान सुख का साधन हो ।

(८) यशौ अर्थात् संसार की सर्व वस्तुएं और धन आदि सामग्री पक्षी कीपूंछ समान तेरा आधार भूत हो।

(९) पग ऊंचे पद के योग्य हों अर्थात् तू सदा उन्नतिशील बना रहे— आलसी और मिथ्यासन्तोषी होकर न रहे।

इस लिये गर्भिणी को योग्य है कि वह अपने स्वास्थ्य का सदैव पूर्ण ध्यान रक्खे और अपने किसी अंग की हानि न होने दे क्योंकि यदि उसके किसी अंग की हानि होगी तो उस का प्रभाव सन्तान के उसी अंग पर वैसा ही पड़ेगा। "सुश्रुत, शरीरस्थान, अध्याय ३,, में लिखा है कि:—

दोषाभिघातैर्गर्भिण्यां यो योभागः मपीड्यते।

स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥१६॥

अर्थात् वातादि दोषों के कारण अथवा अभिघात (चोट) के कारण से गर्भिणी स्त्री के जिस २ भाग को पीड़ा होगी-गर्भगत बालक के भी उसी २ अंग को पीड़ा होगी।

संस्कार की समाप्ति पर लिखा है कि स्त्री विशेष कर गिलोय और ब्राह्मी नियमपूर्वक खावे और उचितमात्रा में सोंठ दूध के साथ सेवन करै।

पाश्चात्य डाक्टरों ने सिद्ध किया है कि यदि गर्भिणी स्त्री को शीतला (चेचक) निकल आवे तो उस के गर्भ गिरने की अधिक सम्भावना है। इस लिये गिलोय जो विषनाशक है ब्राह्मीके साथ जो वीर्यवर्धक होने पर भी ठंडी है-सेवन करने से अवश्य लाभ देगी।

यह हम पहिले बतला चुके हैं कि गिलोय, ग्राह्यशक्ति वाली ओषधि है—इस के सेवन से गर्भ गिरने का भय नहीं है कुनैन, जैसा कि सब पश्चिमी डाक्टर मानते हैं गर्भ गिराने का गुण रखती है इस लिये भूल से भी इस का सेवन न किया जावे। गाय के दूध से बढ़ कर कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं और डाक्टरों का सिद्धान्त है कि यदि दूध और फलों का सेवन गर्भिणी करती रहेगी तो उसे अपच आदि रोग नहीं होवेंगे। दूध में कफवृद्धि का कुछ अंश है। उसके निवारण के लिये बहुत थोडी सोंठ का योग करना हितकर है और इसी लिये यहां लिखाभी है। अन्त में लिखा है कि वह अधिक शयन, अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा कड़वा, रेचक (दस्तावर हर्ड़ादि) पदार्थ न खावे। सूक्ष्म आहार करै—क्रोध, द्वेष, लोभ आदि दोषों से बची रहै, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे। यह बातें ऐसी उपयोगी हैं कि किसी भी गर्भिणी स्त्री को कदापि न भूलना चाहिये।

आशंकायें और उनके उत्तर

(प्रश्न) हम तो सुनते हैं कि इस संस्कार के द्वारा तीसरे मास में गर्भ में लड़की का लड़का बनाते हैं क्या यह बात ठीक नहीं?

[उत्तर] गर्भाधान से पूर्व यत्न करने से—जैसा कि गर्भाधान संस्कार में लिख आये हैं लड़की वा लड़के का गर्भ स्थापित किया जा सकता है किन्तु गर्भाधान

के पश्चात् नर की नारी या नारी का नर बनाने की चेष्टा वा औषधि सफल नहीं होती। पुंसवन संस्कार से सन्तान बलवान् वा वीर्यवान् तो हो सकती है किन्तु नारी का नर नहीं हो सका। याद रखना चाहिये कि गर्भाधान के समय "गर्भाशय में वीर्य की प्रधानता से लड़का होता है और आर्तव की अधिकता से लड़की होती है तथा दोनोंके सम होने पर नपुंसक सन्तान होतीहै"। (सुश्रुत, शरीरस्थान, अध्याय ३ सूत्र ४)

एवं जिस प्रकार गर्भ स्थिति के समय जीवात्मा उसमें प्रविष्ट होता है उसी प्रकार वीर्य और आर्तव की न्यूनाधिकता की गणनासे नारी और नर के स्वरूपका भी बीज बोया जाता है जो स्वरूप कि गर्भ की अवस्था में शनैः २ उन्नति पाता रहता है दूसरे महीने में यद्यपि गर्भ के अंग नहीं बनते परन्तु तौभी गर्भ नर नारी और नपुंसक की सूक्ष्मआकृति का होताहै इसका वर्णन धन्वन्तरिजीने इसप्रकार किया है कि "दूसरे महीने में शीत और उष्ण तथा वायु से परिपक्व हुए महाभूतों का कड़ा संघात होकर पिण्ड होजाता है तब यदि वह गोल पिण्ड सा हो तो पुत्र का गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तो पेशी लम्बी मुष्टी सी होतीहै और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (जैसे गोल फल आधा किया हुआ हो) वैसा होता है,, (सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ३—१८)

(प्रश्न) गर्भ चतुर्थ मास में फड़कने लगता है इससे पहिले तो वह सजीव न होता होगा? जबतक सजीव नहीं है तब तक नारी का नर क्यों नहीं बन सका!

(उत्तर) गर्भ आरम्भ से ही सजीव होता है। गर्भ में यदि जीवात्मा न हो तो गर्भ जीवित न रहकर मृतक शरीर के समान सड़ जावे और कभी वृद्धि को प्राप्त न हो। गर्भ का जीवन मुख्यतया जीवात्मा से युक्त होता है। वैशेषिक दर्शन में जीवन जीवात्मा का एक लक्षण कहा गया है। गर्भ में जीवन (लाइफ्) है इससे उस में आत्मा का होना सिद्ध है। यजुर्वेद अध्याय।१२।१४। में जीवात्मा को "अब्जा,, कहा है अर्थात् जीवन स्थिर रखने वाला।

ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त७८ मन्त्र९ में लिखा है कि जीवात्मा आरम्भ की दशा से लेकर दश चान्द्रमास तक गर्भ की उन्नति करता है:—

दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥ (ऋग्वेद मं० ५ सू० ७८ मं० ९)

अर्थ—हे मनुष्यो! जो (जीवः) प्राण, जीवन आदिका धारण करने वाला (अधि) ऊपर (मातरि) माता में (दश मासान्) दश चन्द्र मास तक (शशयानः) शयन करता हुआ (अक्षतः) घावसे रहित (कुमारः) बालक (निरैतु) निकले वह (जीवः) जीव (जीवन्त्याः) जीवती हुई के (अधि) ऊपर, जीता है—

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि गर्भ प्रारम्भ समय से लेकर दश मासतक सजीव होता है और पश्चात् भी सजीव उत्पन्न होताहै [द्वितीय] पूर्ण अवधितक ठहर हुए रक्षित गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक अपने माता पिता से पहिले मरने वाला

महां होता अर्थात् दीर्घायु होता है [तृतीय) इससे पाया गया कि उत्तम श्रेणी का बालक वह होता है जो पूर्ण दश मास का होकर जन्म लेता है—

महर्षि धन्वन्तरि जी भी लिखते हैं कि गर्भस्थिति के समय ही जीवात्मा वायु के द्वारा इसमें प्रविष्ट होता है—जैसेः—

'जीवात्मा सूक्ष्म लिंग शरीर के साथ सत्त्व-रज-तम गुणों से युक्त, देव असुर आदि अनेक भावोंसे युक्त,तत्काल वायुसे प्रेरणा किया हुआ गर्भाशय में गर्भसमय प्रविष्ट होकर स्थित होता है ॥

(सुश्रुत,शरीर स्थान,अध्याय ३ सूत्र ३)

पश्चिमी डाक्टर भी मानते हैं कि गर्भ आरम्भ से ही सजीव होताहै—पुस्तक मेडीकेल ज्यूरिस प्रूडेन्स के निर्माता डाक्टर बेक महाशय लिखते हैं किः—

"गति करने की दशा से पहिले गर्भ या तो मृतक होसक्ता है या जीवित;यदि मृतक हो तो गर्भ सड़ जाय परन्तु ऐसा नहीं होता इस लिए गर्भ को निर्जीव नहीं कहना चाहिये जब निर्जीव नहीं तो प्रकट है कि यह सजीव है,,

डाक्टर कौवन महाशय का वचन है किः—"गर्भस्थिति के समयसे ही गर्भ में जान होती है,, ऐसाही डाक्टर ट्राल का मत है ॥

(प्रश्न) गर्भ की किस किस मास में क्या २ दशा होती है ।

(उत्तर)तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ १७ ॥ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभि प्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते । यदि पिंडः,पुमान् ।स्त्री चेत्पेशी नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ १८ ॥ तृतीये हस्तपादशिरसां पंच पिंडका निर्वर्त्तन्ते अंगप्रत्यंगविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ १९ ॥ चतुर्थे सर्वांगप्रत्यंग विभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतनधातुरभिव्यक्तो भवति कस्मात्तत्स्थानत्वात्तस्मात् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति द्विहृदयांच नारीं दौहृदिनीमाचक्षते ॥ २० ॥

[सुश्रुत,शरीर स्थान;अ० ३]

अर्थ—" गर्भ का आकार पहिले महीने में लोथड़ा होता है ॥ १७ ॥

फिर दूसरे महीने में शीत और उष्ण तथा वायु से परिपक्व हुए महाभूतों का कड़ा संघात होकर पिण्ड होजाता है तब यदि वह गोल पिण्डसा हो तो पुत्र का गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तब पेशी लम्बी मुष्टि सी होतीहै और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (जैसे गोल फल आधा किया हुआ हो) वैसा होताहै ॥ १८ ॥

तीसरे मास में हाथ पांव और शिर इन पांचों की पांच शाखासी निकलने लगती है—और थोड़ा २ अंग प्रत्यंग का विभाग सा प्रकट होने लगता है ॥ १९ ॥

चौथे मास में सारे अंग प्रत्यंगों के विभाग फूटकर प्रकट होते ह और गर्भस्थ का हृदय प्रकट हो जाने से चैतन्य धातु भी प्रकट प्रतीत हो जाता ह क्योंकि हृदय चैतन्य जीव का स्थान है, हृदय प्रकट होने से चैतन्यता प्रकट होने लगती है—इस कारण से चौथे मास में गर्भस्थजीव इन्द्रियों के अर्थ रुचि करने लगता है—जोकि चौथे मास गर्भवती स्त्री के दो हृदय होते हैं एक उस स्त्रीका हृदय, दूसर गर्भस्थ बालक का इस लिये उसको दो हृदयवाली कहते हैं ॥ २० ॥

(प्रश्न) कोई कहता है कि गर्भके पूरे दिन९ मासहैं कोई कहता है कि ९ मास और ९ दिन हैं, इन में कौनसी बात सच्ची है ॥

(उत्तर) गर्भ प्रायः२८०दिन तक रहता है और फिरजन्मताहै । चान्द्र मास में २८ दिन होते हैं अतः जब कहा जावे कि गर्भ दशमास तक रहता है तो १० चान्द्रमास जानने चाहियें । जब नौ मास् अथवा नौ दिन और नौ मास गर्भ का काल कहैं तो उसदशा में सौर नौ मास गिनने और समझने चाहियें ।

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमान मिन्द्रम् । तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥ (अ०कां०३अ०२सू०१०मं०१२)

(एकाष्टका) नौ सौर मास की तपस्या से जो युक्त है वह महान् ऐश्वर्य्य वाला गर्भ है उसको प्राप्त हो..

इस मंत्र में बतलाया गया है कि जो बच्चे नौ सौर्य्य मास के पूरे होने के पश्चात् उत्पन्न होते हैं वही उत्तम होते हैं क्योंकि उत्तम गर्भ की अवधिपूरे नौ सौर्य्य मास से कम नहीं है इस से यह भी सिद्ध है कि नवें आठवें सातवें सौर्य्य मास में उत्पन्न होने वाले बालक कदापि उत्तम नहीं हो सकते ॥

सुश्रुत, शरीरस्थान, अध्याय ३ के वाक्य ३५ में इस विषय में इस प्रकार लिखाहै कि:

नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारो भवति॥ ३५ ॥

(अर्थ) नवें—दशवें और कभी २ ग्यारहवें मास में बालक जन्मता है और कदाचित् बारहवें मास में भी, अधिक बीत जाय तो उसको गर्भ विकार जानो ॥

(प्रश्न) गर्भ के किस मास में गिरने की अधिक सम्भावना रहती है ? ।

(उत्तर) "दाइयान् हिन्द" नामी पुस्तक में लुधियाने के डाक्टर बूआस महाशय पश्चिमी डाक्टरों के प्रमाणों से लिखते हैं कि पति को गर्भिणी गमन न करना चाहिये नहीं तो तीसरे महीने में गर्भ गिरजायगा और जो स्त्री चाहती है कि मेरा गर्भ पात न हो वहजहाँ एक ओर पति के समागम से बचे वहाँ दूसरी ओर तीसरे महीने में बहुत सावधानी से रहैं—कोई २ ग्रन्थकर्ता यहाँतक लिखते हैं कि यदि तीसरा महीना भली प्रकार बीत गया तो फिर गर्भ पात होने का भय मिटगया—पहिले तीन महीनों में गर्भपात का भय अधिकतर इस कारण से ह कि गर्भाशय की धारक शक्ति

आरम्भ में निर्बल होती हैं शनैः २ वह बढ़ती है—सातवें महीने से यह भय कुछ २ फिर उत्पन्न हो जाता हे और वह इस लिये नहीं कि गर्भाशय धारक शक्ति खो बैठताहै वरन् बालक की गति के कारण यह नया भय उत्पन्न होजाता है—निस्सन्देह चोट आदि के लगजाने से गर्भ प्रत्येक समय गिर सकता है इस लिये चोट आदि से गर्भ की प्रत्येक समय रक्षा करनी गर्भिणी का बड़ाभारी काम है।

(प्रश्न) पुंसवन संस्कार के नियमों पर चलना ठीक है। उसके लिये पति पत्नीकावहे नियम शास्त्रों में ही पढ़ लेना पर्य्याप्त हैं मित्र मण्डली (ज्ञाति) को बुलाकर उत्सव रचाकर इन नियमों के उपदेश की विशेष क्या आवश्यकता है।।

(उत्तर) पुरुष स्त्री, वेद और वैद्यक ग्रन्थोंका अवलोकन अवश्य करेंऔर इननियमोंके अभिप्राय को जानें परन्तु उत्सव करने अथवा समाज के मनुष्यों को एकत्र करके एक शुभकार्य करने से स्त्री पुरुष के मन और मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पहुंचता है और इस विशेष अवस्थामें वह उपदेश जोकि प्रतिदिन मिलताहै विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और इस विशेषप्रभाव उत्पन्न करने के लिये ही यह उत्सव और संस्कार किया जाता है—

बहुतसे लोग इस प्रकार के पाये जाते हैं जो पुस्तकी रीति पर इस बात को मानतेहैं कि मदिरा मनुष्य का आहार नहीं—परन्तु वे इस दुर्व्यसन के आप अभ्यासी है—प्रश्न यहहै कि क्या उनको मद्यकी बुराइयाँ ज्ञात नहीं? उत्तर मिलता है व इन बुराइयों को जानते हैं--पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि वह दुष्ट स्वभाव को छोड़ क्यों नहीं देते ! तो इसका उत्तर यही होसकता हैं कि इन के चित्तपर विशेष प्रभाव यदि पहुंचे तो वह छोड़ दें बिना इस के वह कब छोड़ सकते हैं !—वह विशेष प्रभाव कई प्रकार से उत्पन्न होसकता है—स्वाभाविक रीति पर जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब कि मनुष्य के मन को ठोकर लगती है और मन मुख्यप्रभाव स्वीकार करने के लिये तत्पर होजाता है—दश आदमियों के सन्मुख उपदेश करने से विशेष प्रभाव उत्पन्न होसकता है—समाज का भय विशेष प्रभाव उत्पन्न करसकता है—सभा में विशेष शोभा उस विशेष प्रभाव का कारण बनसकतीहै इस लिये सभा की उपस्थिति ही मनुष्य के चित्तपर किसी नियमकी महिमा बिठलाने के लिये जादू का काम करसकती है—क्या डाक्टर लोग कालिजों में प्रतिदिन नहीं पढ़ते कि उन को किसी गर्भवती स्त्री के गर्भपात के लिये दवाई नहीं देनी चाहिये परन्तु इसी नियमको विशेष रीति से अंकित करने के लिये प्रति वर्ष उत्सव कियाजाता है औरजहाँ डाक्टरी का डिपलोमा (यज्ञोपवीत) दिया जाता है वहां साथही डाक्टरी के परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों से सभा के सामने प्रतिज्ञा कराई जाती और उनको उपदेश दिया जाता है कि

"तुम कभी किसी स्त्री का गर्भ नहीं गिराना,,

उस समय अवसर की विचित्रता और महत्ता के कारण उनका मन गम्भीर अवस्थामें होने के कारण आयुभर के लिये इस उपदेश को स्वीकार करने के लिये तत्पर होजाता है और भविष्यत् में जब कोई डाक्टर किसी को गर्भपात की औषधी

देने लगे तो वह पूर्व उपदेश को धारण किये हुए होने के कारण काँप उठता है कि मैं क्या करने लगा हूं और वह कभी ऐसे बुरे काम का साहस नहीं करता—

क्या हम नहीं देखते कि स्कूलके वार्षिक परीक्षाके अवसर पर इन्सपेक्टर (शिक्षण निरीक्षक) महाशयके हाथसे चार आने कादिया हुआ पारितोषिक एक साधारण दश वर्ष के बालक को सदैव संस्कारयुक्त कर देता और परिश्रम करने के संस्कार उसके हृदय में डाल देता है—यद्यपि उस छात्र ने बीसियों रुपये के पदार्थ आप मोल लिये हों वह उसको स्मरण तक नहीं रहते परन्तु चार आने के परितोषिक की पुस्तक जो मुख्य संस्कार से प्राप्त हुई हैं उस को जीवन भर नहीं भूलता—

आओ हम इन उदाहरणों से पुंसवन संस्कार की आवश्यकता पर विचार करें जिस समय कोई स्त्री गर्भवती होती होगी उस समय उसके मन में यह विचार आता होगा कि मेरा तीसरे मास में पुंसवन संस्कार होना है मेरी माता और मेरा अमुक सम्बन्धी अमुक स्थान से आयेगा मेरे लिये नये २ वस्त्र और आभूषण बनेंगे, बाजे बजेंगे—सामवेद गान होगा, हवनयज्ञ किया जायगा, सुगन्धि के मारे सारा घर महक उठेगा—बड़े २ पण्डित, मित्र—पड़ोसी और अन्य लोग एकत्र होंगे उस समय मेरा आर्य पति सुन्दर वस्त्र पहिने हुए भरी सभा से उठकर एक ओर होकर मुझ से गर्भ रक्षा के लिये कहेगा—गर्भ की महिमा दर्शायेगा और घर आनन्द मंगल से गूंज उठेगा क्या इस स्वर्गीय दृश्य का मन में चित्र खींचते हुए गर्भिणी के चित्त की विशेष अवस्था नहीं होती होगी और जब वह अवसर सचमुच आता होगा तो क्या वह उसकी उत्तमता और गम्भीरता को अनुभव करती हुई उन मानसिक संस्कारों को कभी भुला सकती है ! जो कि गर्भरक्षा सम्बन्धी उस ने उस समय ग्रहण किये हैं-और क्या उस के पति के मनमें यह विचार न आया होगा कि मैं कभी गर्भिणी गमन नहीं करूंगा क्या वह इस उत्सव का चित्र चित्त में खींचता हुआ इसकी उत्तमता को अनुभव करता हुआ गम्भीरता से संस्कारयुक्त न होता होगा ! ॥

पश्चिमी देश के कई विद्वान् डाक्टरों के लेख में इस संस्कार के कई नियम पाये जाते हैं परन्तु बर्ताव में लाने के लिये जो प्रबन्ध कि प्राचीन आर्य्यों ने किया था उसका वर्णन उन पश्चिमी पुस्तकों में नहीं मिलता।

अतएव सभादि के लोगों को एकत्र करके इस संस्कार के करने की विशेष आवश्यकताहै—

चरक और पुंसवन

चरक संहिता, शरीरस्थान, अध्याय ८ के २९ वें सूत्र से पुंसवन का वर्णन प्रारम्भहोता है।

सूत्र ३१ में जो लेख है उसका अभिप्राय यह है कि गौओं के चरने की जगह में

जो बड़ का पेड़ हो उसकी पूर्व, उत्तर की ओर वाली शाखा में से दो कोमल (कली) तोड़ लावे और दो स्वच्छ मोटे चावल तथा उड़द उन दो कलियों में मिलाकर दो सफेद सरसों के दाने भी मिला, दही में मिलाकर गर्भवती स्त्री पुष्य नक्षत्र में पीवे।

अन्य सूत्रों में अनेक और योग दिएहुएहैं उनको उद्धृत न करतेहुए सूत्र ३५ और ३६ का संक्षिप्त सार लिखतेहैं अथवा पुष्य नक्षत्रमें उखाड़ हुई लक्ष्मणा की जड़ को दूधमें घोटकर पुत्र की इच्छा वाली स्त्री नाकके दहिने नथुने और कन्या की कामना वाली बायें नथुने द्वारा पीवे। वा नस्य के प्रकार से टपकावे। ...... यह सब कर्म अथवा अन्य पुंसवन कर्म ब्राह्मणों के और आप्त पुरुषों के आज्ञानुसार अनुष्ठान करने चाहियें।

सूत्र ४० में गर्भ के उपघात करने वाली बातों का वर्णन है। जैसे गर्भवती स्त्रीका उत्कट रीति से बैठना, ऊंचे नीचे तथा विषम स्थान में फिरना, कठिन आसन आदि पर बैठना, वात, मूत्र और मलके वेग को रोकना, दारुण और अनुचित परिश्रम आदि करना, तीक्ष्ण तथा उष्ण द्रव्यों का अधिक सेवन करना, बहुत भूखे रहना इत्यादि कारणों से गर्भ कुक्षि में ही मरजाता है अथवा स्राव होजाता वा सूख जाता है।

(सूत्र ४१) चोट आदि लगने से, किसी प्रकार से गर्भ के दबजाने से, अत्यंत भयंकर, गढ़े, कूप, पहाड़ के विकट गिरे हुए किनारों को देखना आदि भयकारक स्थानों को देखने से भी गर्भपात होजाता है। अथवा गर्भवती के शरीर में किसी प्रकार अत्यंत हलचल होजाने से वा किसी विकट सवारी पर चढ़ने से एवं अत्यंत भयंकर और बहुत ऊंचा शब्द सुनने से, भयंकर अप्रिय बात के सुनने से भी अकाल में गर्भपात होजाता है। सदैव सीधी उत्तान पड़ी रहने से गर्भ की नाभि से आश्रित नाड़ी गर्भ के कण्ठ में लिपट जाती है उससे भी उपघात होता है।

(सूत्र ४२) यदि गर्भवती नग्न होकर सोया करे अथवा इधर उधर व्यर्थ अधिक फिरे तो उसके उन्मत्त (पागल या इम्बेसिल) संतान होती है। गर्भवती यदि अधिक कलह और उपद्रव करने वाली हो तो मृगीरोग वाली संतान होगी यदि वह मैथुन करे तो विकल और निर्लज्ज वा स्त्रैण (मीला) संतान जन्मे। यदि वह निरन्तर शोकातुर रहे तो भयातुर, क्षीण और अल्पायु संतान हो। यदि गर्भ के समय स्त्री परधन लेने को इच्छा किया करेगी तो ईर्ष्यायुक्त तथा स्त्रैण अथवा चोर, आलसी, अतिद्रोही कुकर्मी संतान जन्मेगा।

यदि वह अति क्रोध किया करेगी तो संतान क्रोधी, छली और चुगलखोर होगा। अति सोने वाली की सन्तान निद्रालु आलसी, मूर्ख, मंदाग्नि वाली उत्पन्न हो। यदि मद्य पिया करे तो तृषार्त और विकलचित्त संतान जन्मे। यदि वह गोमांस खाय तो शर्करा, पथरी और शनैर्मेह रोगों वाली संतान हो। यदि शूकर का मांस खाय तो

देने लगे तो वह पूर्व उपदेश को धारण किये हुए होने के कारण काँप उठता है कि मैं क्या करने लगा हूं और वह कभी ऐसे बुरे काम का साहस नहीं करता—

क्या हम नहीं देखते कि स्कूलके वार्षिक परीक्षाके अवसर पर इन्सपेक्टर (शिक्षण निरीक्षक) महाशयके हाथसे चार आने कादिया हुआ पारितोषिक एक साधारण दश वर्ष के बालक को सदैव संस्कारयुक्त कर देता और परिश्रम करने के संस्कार उसके हृदय में डाल देता है—यद्यपि उस छात्र ने बीसियों रुपये के पदार्थ आप मोल लिये हों वह उसको स्मरण तक नहीं रहते परन्तु चार आने के परितोषिक की पुस्तक जो मुख्य संस्कार से प्राप्त हुई है उस को जीवन भर नहीं भूलता—

आओ हम इन उदाहरणों से पुंसवन संस्कार की आवश्यकता पर विचार करें जिस समय कोई स्त्री गर्भवती होती होगी उस समय उसके मन में यह विचार आता होगा कि मेरा तीसरे मास में पुंसवन संस्कार होना है मेरी माता और मरा अमुक सम्बन्धी अमुक स्थान से आयेगा मेरे लिये नये २ वस्त्र और आभूषण बनेंगे, बाजे बजेंगे—सामवेद गान होगा, हवनयज्ञ किया जायगा, सुगन्धि के मारे सारा घर महक उठेगा—बड़े २ पण्डित, मित्र—पड़ोसी और अन्य लोग एकत्र होंगे उस समय मेरा आर्य पति सुन्दर वस्त्र पहिने हुए भरी सभा से उठकर एक ओर होकर मुझ से गर्भ रक्षा के लिये कहेगा—गर्भ की महिमा दर्शायेगा और घर आनन्द मंगल से गूंज उठेगा क्या इस स्वर्गीय दृश्य का मन में चित्र खींचते हुए गर्भिणी के चित्त की विशेष अवस्था नहीं होती होगी और जब वह अवसर सचमुच आता होगा तो क्या वह उसकी उत्तमता और गम्भीरता को अनुभव करती हुई उन मानसिक संस्कारों को कभी भुला सकती है ! जो कि गर्भरक्षा सम्बन्धी उस ने उस समय ग्रहण किये हैं-और क्या उस के पति के मनमें यह विचार न आया होगा कि मैं कभी गर्भिणी गमन नहीं करूंगा क्या वह इस उत्सव का चित्र चित्त में खींचता हुआ इसकी उत्तमता को अनुभव करता हुआ गम्भीरता से संस्कारयुक्त न होता होगा ! ॥

पश्चिमी देश के कई विद्वान् डाक्टरों के लेख में इस संस्कार के कई नियम पाये जाते हैं परन्तु बर्ताव में लाने के लिये जो प्रबन्ध कि प्राचीन आर्य्यों ने किया था उसका वर्णन उन पश्चिमी पुस्तकों में नहीं मिलता ।

अतएव सभादि के लोगों को एकत्र करके इस संस्कार के करने की विशेष आवश्यकताहै—

चरक और पुंसवन

चरक संहिता, शरीरस्थान, अध्याय ८ के २६ वें सूत्र से पुंसवन का वर्णन प्रारम्भहोता है ।

सूत्र ३१ में जो लेख है उसका अभिप्राय यह है कि गौओं के चरने की जगह में

जो बड़ का पेड़ हो उसकी पूर्व, उत्तर की ओर वाली शाखा में से दो कोमल (कली) तोड़, लावे और दो स्वच्छ मोटे चावल तथा उड़द उन दो कलियों में मिला-कर दो सफ़ेद सरसों के दाने भी मिला, दही में मिलाकर गर्भवती स्त्री पुष्य नक्षत्र में पीवे।

अन्य सूत्रों में अनेक और योग दिएहुएहैं उनको उद्धृत न करतेहुए सूत्र ३५ और ३६ का संक्षिप्त सार लिखतेहैं अथवा पुष्य नक्षत्रमें उखाड़ीहुई लक्ष्मणा की जड़ को दूधमें घोटकर पुत्र की इच्छा वाली स्त्री नाकके दहिने नथुने और कन्या की कामना वाली बायें नथुने द्वारा पीवे। वा नस्य के प्रकार से टपकावे। ......यह सब कर्म अथवा अन्य पुंसवन कर्म ब्राह्मणों के और आप्त पुरुषों के आज्ञानुसार अनुष्ठान करने चाहियें।

सूत्र ४० में गर्भ के उपघात करने वाली बातों का वर्णन है। जैसे गर्भवती स्त्रीका उत्कट रीति से बैठना, ऊंचे नीचे तथा विषम स्थान में फिरना, कठिन आसन आदि पर बैठना, वात, मूत्र और मलके वेग को रोकना, दारुण और अनुचित परिश्रम आदि करना, तीक्ष्ण तथा उष्ण द्रव्यों का अधिक सेवन करना, बहुत भूखे रहना इत्यादि कारणों से गर्भ कुक्षि में ही मरजाता है अथवा स्राव होजाता वा सूख जाता है।

(सूत्र ४१) चोट आदि लगने से, किसी प्रकार से गर्भ के दबजाने से, अत्यंत भयंकर, गढ़े, कूप, पहाड़ के विकट गिरे हुए किनारों को देखना आदि भय-कारक स्थानों को देखने से भी गर्भपात होजाता हैं। अथवा गर्भवती के शरीर में किसी प्रकार अत्यंत हलचल होजाने से वा किसी विकट सवारी पर चढ़ने से एवं अत्यंत भयंकर और बहुत ऊंचा शब्द सुनने से, भयंकर अप्रिय बात के सुनने से भी अकाल में गर्भपात होजाता है। सदैव सीधी उत्तान पड़ी रहने से गर्भ की नाभि से आश्रित नाड़ी गर्भ के कण्ठ में लिपट जाती है उससे भी उपघात होता है।

(सूत्र ४२) यदि गर्भवती नग्न होकर सोया करे अथवा इधर उधर व्यर्थ अधिक फिरे तो उसके उन्मत्त (पागल या इम्बेसिल) संतान होती है। गर्भ-वती यदि अधिक कलह और उपद्रव करने वाली हो तो मृगीरोग वाली संतान होगी

यदि वह मैथुन करे तो विकल और निर्लज्ज वा स्त्रैण (मीला) संतान जन्मे। यदि वह निरन्तर शोकातुर रहे तो भयातुर, क्षीण और अल्पायु संतान हो। यदि गर्भ के समय स्त्री परधन लेने की इच्छा किया करेगी तो ईर्ष्यायुक्त तथा स्त्रैण अथवा चोर, आलसी, अतिद्रोही कुकर्मी संतान जन्मेगा।

यदि वह अति क्रोध किया करेगी तो संतान क्रोधी, छली और चुगलखोर होगा। अति सोने वाली की सन्तान निद्रालु आलसी, मूर्ख, मंदाग्नि वाली उत्पन्न हो। यदि मद्य पिया करे तो तृषार्त और विकलचित्त संतान जन्मे। यदि वह गोमांस खाय तो शर्करा, पथरी और शनैर्मेह रोगों वाली संतान हो। यदि शूकर का मांस खाय तो

लालनेत्र वाली, हत्यारी, कठोर रोमों वाली सन्तान हो। यदि मछली खाय तो सन्तान बहुत देर से पलक झपकने वाली तथा टेढ़े नेत्रों वाली हो। यदि वह अति मीठा खावे तो प्रमेही, गूंगी और अधिक स्थूल सन्तान उत्पन्न हो। अधिक खट्टा खाने से रक्त पित्त रोग वाली त्वचा के रोग तथा नेत्ररोग वाली सन्तान हो। अधिक लवण के सेवन से अकाल में श्वेतबाल होजानेवाली, सलवट वाली, तथा गंजी संतान उत्पन्न हो। चरपरे रसके अति सेवनसे दुर्बल, अल्पवीर्य्य, तथा बाँझ वा नपुंसक सन्तान जनमती है। अति कडुआ खानेसे सूखेहुए शरीर वाली वा शोथरोग (सूजनरोग) वाली, निर्बल और कृश सन्तान उत्पन्न होती है। कषायरस का अति सेवन करने से काले वर्ण की अफारा और उदावर्त्तरोगवाली सन्तान उत्पन्न होती है।

(सूत्र ४३) जो२ द्रव्य जिन२ रोगों के उत्पादक कहे गये हैं उनके अधिक सेवन से गर्भवती उन२ रोगों वाली सन्तान उत्पन्न करती है।

(सूत्र ४४) जिस प्रकार माता के उपचारों से भावी सन्ततिमें रोग आतेहैं उसी प्रकार उन्हीं उपचारों से पिता का शुक्र भी दूषित होता है।

(सूत्र ४६) यदि गर्भवती चौथे और उस के पिछले महीनों में क्रोध शोक असूया (चुगली) ईर्षा, भय, त्रास, मैथुन,. परिश्रम क्षोभ, वेगावरोध (मल मूत्र का रोकना) मर्यादा रहित भोजन, शयन तथा विषम भाव से विषम स्थानों में रहे एवं अधिक भूख प्यास के समय अधिक भोजन करे अथवा भूखी रहे वा दुष्ट आहार व्यवहार करे तो इन से गर्भ के पतन होने का भय है इसलिये स्त्री को उचित आहार आचार शुद्ध प्रसन्न मन युक्त रहना चाहिये

(सूत्र ७०) प्रथम महीने में बिना ओषधि दूध, यथारुचि ठंडा किया हुआ पीये और प्रातः तथा सायं हितकारी भोजन करे।

(सूत्र ७१) दूसरे महीने में गर्भिणी को मधुर की औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलावे छुआरा इलायची आदि मधुर औषधि हैं। तीसरे महीने में शहद और घी से युक्त दूध पीना चाहिये (शहदसे घी आधा हो यह याद रहेकि शहद और घी समभाग होने से जहर होजाते हैं) चौथे महीने में दूध में एक तोला ताज़ा मक्खन मिला कर पीवे। पांचवे महीने में घी और दूध मिलाकर पीना चाहिये। छटे महीनेमें मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए दूध—में घी मिला पीना चाहिये। सातवें महीनेमें भी यही करना चाहिये।

(सूत्र ७२) सातवें महीनेमें गर्भके उत्पीड़नहोने से वात,पित्त,कफ वक्षस्थलमें प्राप्त हो दाह को उत्पन्न करते हैं इस लिये उस समय खाज प्रतीत होती है और उस खाज के होते ही पेट की त्वचा को फाड़देने वाली खाज उत्पन्न होतीहै उस समय स्त्रीको बेर के क्वाथ में मधुरगणकी ओषधियों से सिद्ध किया हुआ मक्खन मात्र समय२ परखि लावे। चन्दन और कमल के कल्क (काढ़े) को उस स्त्री के स्तनों तथा पेट पर मले

अथवा सिरस का छिलका धांवे के फूल, सरसों और मुलेठी के चूर्ण से सिद्धकिया हुआ तेल स्तनों और पेट पर मले। नाखून से खाज न करे खुजली को यदि सह सके तो अच्छा नहीं तो खाज वाली जगह पर हाथ फेरे उससमय मधुर तथा वात नाशक आहार को थोड़ी चिकनाई मिलाकर खाया करे और नमक बहुत थोड़ा खावे तथा जल भी थोड़ा २ पिया करे

(सूत्र ७३) आठवें महीने में दूध में सिद्ध की हुई यवागू को घृतयुक्त कर समय२ पर पिया करे।

(सूत्र ७४) नवें महीने मधुरद्रव्यों से सिद्ध किये तेलद्वारा स्त्री को अनुवासन करना चाहिये और गर्भ मार्ग को चिकना करने के लिये इस तेल का फोहा योनि में रखना चाहिये।

(विवरण) अनुवासन एक प्रकारका वस्ती कर्म है विना किसी अनुभवी वैद्य व डाकृर के इसको न करे। डाकृर मूअर साहब (फेमिली मेडिशन) के पृष्ठ ५४६ में लिखतेहैं कि गर्भकी समाप्ति के दिनों में कबजी को दूर करनेके लिये अरंडी के तेलका उपयोग करना चाहिये, मालूम होता है कि अनुवासन का प्रयोजन भी गर्भिणी के कवज को खोलना है चाहे अनुवासन हो चाहे अरंडी का जुलाव हो परन्तु यह सब विना डाक्टर अथवा वैद्य की सम्मति न हो। यह भी विदित रहे कि दूध को जो नाना विधि सेवन करने का विधान किया है उसकी मात्रा का निर्णय किसी सद्वैद्य की सम्मति से करना अति उत्तम होगा। और जैसा पहिले महीने में प्रातः सायं हितकारी आहार करने का विधान है उसी प्रकार गर्भ की समाप्ति तक करना चाहिये। जिस दवाई की पहचान अपने आप को अथवा अपने किसी कुटुम्बी को न हो तो उस दवाई अथवा औषध की पहचान किसी वैद्य द्वारा करावे।

मधुरगण अथवा मधुर स्कंध की औषधियों की नामावली—चरकसंहिता, विमान स्थान, अध्याय ८ सूत्र १६० पर के आधार पर कुछ यहाँ नामावली देते हैं इनमें से दो चार औषधियों को एक साथ उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं।

जीवक	किश्मिश	सिंघाड़ा
ऋषभक	छुहारा	गिलोय
जीवन्ती	कौंच के बीज	धनिया
शतावर	कमल गट्टे	मुंडी
काकोली	कसेरू	सहदेवी
क्षीरकाकोली।	खजूर	खाने की मिश्री
माषपर्णी	ईख	अश्वगंधा (असगंध)

मेदा	दर्भ	गोखरू
महामेदा	कुशा	सौंफ
काकड़ासींगी	शाली चावल	मुलेठी
		गेहूं

इन में से छुहारा,किशिमश,मुलेठी सौंफ और शतावर प्रत्येक तीन २ माशे आध सेर दूध में औटाकर पाँच तोले देशी मिश्री डाल उपयोग में लावें।

इति पुंसवनव्याख्या।
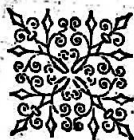
सीमन्तोन्नयनसंस्कार

---*---

अथ तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिस से गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य और गर्भ स्थिर—उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इस में आगे प्रमाण लिखते हैं—

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥ आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥ अथास्यै युग्मेन शलालुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशापिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः ॥ ३ ॥ चतुर्वा ॥ ४ ॥

आश्व० अ० १ कं० १४ सूत्र १-४

पुंसवनवत् ॥ २ ॥ प्रथम गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा० ३ ॥

पारस्करगृह्यसूत्र का० १ क० १५ सू० २। ३। इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्र में भी लिखा है ॥

गर्भमास से चौथे महीने शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुषनक्षत्रों * से युक्त चन्द्रमा हो उसी दिन यह संस्कार करे अथवा पुंसवन संस्कारके तुल्य छठेवा आठवें महीनेमें पूर्वोक्त पक्ष और नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे इस में प्रथम सामान्य प्रकरणोक्त यथोचितविधि करके—

(१) ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥ य० अ० ११ मं० ७ ॥

इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करके आधारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृतिआहुति ४ चार, मिलके ८ आठ आहुति देके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

~~मूल, हस्त, श्रवण आदि पुँलिङ्ग बोधक नक्षत्र~~ हैं।

ऐसा कहकर चावल, तिल, मूंग इन तीनों को सम भाग ले के—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

इसे बोलकर धो के इनकी खिचड़ी बना, उसमें पुष्कल घी डाल के निम्न लिखित मन्त्रों से आठ आहुति देवें ॥

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमुक्षितम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा॥ इदं धात्रे । इदन्न मम॥ १ ॥ ओं धाता प्रजानामुत रायऽ ईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान। धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्रऽइद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा ॥ इदं धात्रे । इदन्न मम ॥ २ ॥ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥ इदं राकायै । इदन्न मम॥३॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा ॥ इदं राकायै। इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ४ सू० ३२ । मं० ४।५ नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत। अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान्स्वाहा ॥ ५ ॥ यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे ॥ एवं त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥६ ॥ विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् । पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति दे के पुनः सामान्यप्रकरणोक्त
(प्रजापते न त्व०) इस से एक, सब मिलाके ८ आठ आहुति देवे और (ओं प्रजा-
पतये स्वाहा) मन्त्र से एक भात की और (ओं यदस्यकर्मणो०) मन्त्र से एक खिचड़ी
की आहुति देवे । तत्पश्चात् "ओं त्वन्नो अग्ने०„ इत्यादि से ८ आठ घृत की आहुति
और "ओं भूरग्नये०„ इत्यादि ४ चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देकर
पति और पत्नी एकान्तमें जा के उत्तमासनपर बैठ, पति पत्नी के पश्चात पृष्ठकी ओर बैठ

ओं सुमित्रिया नऽआप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ १॥ यजु० अ० ६ मं० २२॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम्। कवि॑ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥२॥ य० अ० ७ मं० २४॥ ओं अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नुत्वा नुत्वा सूयता॑ रयिः॥ ३॥ ओं येनादितेः सीमानं नयाति प्रजापतिर्महते सौभगाय तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥ ४॥ ओं राकामह॑ सुहवा॑ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीर॑ शतदायमुक्थ्यम्॥५॥ ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमनाउपागहि सहस्रपोष॑ सुभगे रराणा॥ ६॥ किं पश्यासि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः॥७॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख० ५ मं० १-५॥

इन मन्त्रों को पढ के पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तैल डाल कंघे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे जूड़ा सुन्दर बांध कर यज्ञशाला में आवे—उस समय वीणा आदि बाजे बजवावें, तत्पश्चात् सामवेद का गान करें।

ओं सोमऽएव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः। अविमुक्तचक्रआसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ*॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १ ६ सू० ८

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी

---

* यहां किसी पासकी नदी का सम्बुद्ध्यन्त नामोच्चारण करे "यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति। पार० गृ० सू० का० १ क० १५ सू० ८॥

स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे "किं पश्यसि,,। स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि,, तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियाँ बैठें प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुईं उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें:–

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ माङ्गलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को, विदा करें ॥

इति सीमन्तोन्नयनसंस्कार विधिः ॥

सीमन्तोन्नयनसंस्कार †

संस्कार का उद्देश्य संस्कार विधि में लिखा है कि "अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य और गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे,, ।

व्याख्या उक्त संस्कार गर्भगत बालक की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के हेतु से किया जाता है और वह मानसिक उन्नति गर्भगत बालक की तभी हो सकती है जब गर्भिणी स्त्री का मन संतुष्ट रहे और उसका आरोग्य बढ़ता जावे, स्त्री के मन को संतुष्ट करना और उसके आरोग्य का बढ़ाना मानों गर्भगत बच्चे की मानसिक शक्तियों की उन्नति करना तथा गर्भ की उन्नति करना है; एक बीज हमने बोदिया कुछ दिनों के पीछे उस में अमुक प्रकार के खाद डालने की ज़रूरत है जब वह खाद उचित समय पर डाला जावेगा तब वृक्ष में बड़ा होने पर अमुक प्रकार का गुण आवेगा । चौथे से नवें मासतक गर्भ गत बालक की मानसिक शक्तियें क्रम से बढ़ती हैं । इस अवस्था में जब उसको वैसाही खाद मिलता रहा तो जहाँ उस गर्भ की उक्त शक्तियाँ बढ़ेंगी वहाँ वह स्थिरता उत्कृष्टता और वृद्धि कोभी प्राप्त होगा ।

सूत्रार्थः-

(१) गर्भ मास से चौथे मास में सीमन्तोन्नयन करे ।

(२) उसदिन-जबकि शुक्ल पक्ष हो और चन्द्रमा पुरुषवाची नक्षत्र में हो ।

(३) (युग्मेन) दो आदि समफलवाले (शलाटुग्रप्सेन) कच्चे गूलरों के समूह से अर्थात् दो २ गूलरों के बनाए एक गुच्छे के साथ (च) अथवा (त्र्येण्या, शलल्या) तीन स्थानों में जो सफेद हो ऐसे शाही के काँटे के साथ (च) अथवा (त्रिभिः, कुशपिञ्जूलैः) तीन तरुण कुशाओं के साथ (अस्यै, सीमन्तम्) स्त्री की केश पद्धति को (ऊर्द्धवम्) ललाट देश से ऊँचे की तरफ (भूर्भुवः स्वरोम्, इति, त्रिः, चतुर्वा) "भूर्भुवः स्वरोम, इस मन्त्रसे तीन या चारवार (व्यूहति) पृथक् २ दोनों ओर करे । (यहां प्रायः व्याख्याता लोग चकारको समुच्चयार्थक मानते हैं और उपर्युक्त सब वस्तुओं का लेना बतलाते हैं । आश्वलायन, पारस्करादि के मतानुसार ही तात्पर्यार्थ, मूलपष्ठ३ में लिखा है)

† अथवा गर्भगत बालक की मानसिकशक्तियाँ उन्नत करने की विधि ॥

पार० गृह्यसूत्रार्थः—

(४) पुंसवन संस्कार के तुल्य छठे वा आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष और नक्षत्रयुक्त चंद्रमा के दिन यह संस्कार करे॥

(व्याख्या)

(१) गर्भमास से चौथे मास में गर्भिणी दौहृदी कहलाती है और इसी मास से मानसिक शक्ति बढ़ने लगती है, क्योंकि हृदय मन का निवास स्थान है। जब हृदय का प्रकटी करण हुआ तो गर्भगत बालकके मन की शक्तिके आरम्भ पानेमें कुछ संदेह ही नहीं। इसी वास्ते आश्वलायन मनि चौथे मास में इस संस्कार को करने का विधान करते हैं जिस से गर्भगत बालक की मानसिक शक्ति पर प्रभाव पहुँचाया जा सके॥

(२) (क) शुक्लपक्ष में प्रायः वे काम जिन में समाज के लोगों को एकत्र होना पड़े लाभदायक हैं। मनुष्यगणना १६११ की शुक्लपक्ष में इस लिये करने में आई थी कि तैल का भारी खर्च बच सके और सब को सुविधा हो।

इसी प्रकार संस्कार में आने वालों को शुक्लपक्ष में आना जाना अधिक सुविधा का कारण होसकता है।

(ख) जैसे बाग में बीज बोते हैं तो जिस दिन वर्षा हुई हो उस दिन बोना अधिक अनुकूल होता है। इसी प्रकार मानसिकशक्ति की वृद्धि के लिये प्रकाश की वर्षा अधिक उपयोगी है इस लिये शुक्लपक्ष में करनेसे अनुकूल प्रकाश अधिक प्रभाव मानसिक शक्ति पर डालता है। मन बुद्धि आदि विशेष कर प्रकाश के परमाणुओं के बनते हैं इस लिये प्रकाश की उनको अधिक ज़रूरत है।

ऋग्वेदादि भा० भूमिका पृ०२८८ पर लिखा है कि मनुष्य का मन, देवसंज्ञक और प्राण, असुरसंज्ञक हैं। प्रकाश के परमाणुओं से मन और ५ ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर रचता है।

मनके साथ चन्द्र का विशेष संबन्ध "पुरुष सूक्त" के इस मंत्रमें भी कहा गया है-

"चन्द्रमा मनसो जातश्च०................"

(ग) मूल, हस्त, श्रवण आदि पुंल्लिङ्ग बोधक नक्षत्र हैं।

जब चन्द्रमा पुरुष नक्षत्र से युक्त होता है तो ऋतु प्रायः विषम नहीं होती। ऋषि लोगों ने जो तारा आदि जड़ पदार्थों को पुरुष वा स्त्रीसंज्ञक कहा है तो उन में पुरुषत्व और स्त्रीत्व के चिन्ह पाने के कारण हीं। भगवान् पतंजलि जी महाभाष्य में लिखते हैं के स्तन और कोमलकेश यह दोनों कोमलता के चिन्ह स्त्रीपन के बोधक हैं॥ इसी सर्वव्यापी नियम को लेकर जिन जड़ पदार्थों में कोमलता का भाग अधिक है वह स्त्री संज्ञक और जिनमें कठोरता का भाग अधिक है वह पुरुषसंज्ञक माने गये। जल जिन नक्षत्रों में अधिक है वा जल अधिक उत्पन्न करने की शक्ति जो अधिक रखते हैं

वह तारे नक्षत्र स्त्रीसंज्ञक कहे गये हैं। जो सूर्य्य समान तेजोमय अधिक होने से जल वृद्धि का कारण नहीं हैं उनको पुरुषवाची नक्षत्र माना गया।

चन्द्रमा स्त्रीसंज्ञक होने से जल की वृद्धि का भारी कारण है। जब चन्द्रमा किसी पुरुषवाची नक्षत्र से युक्त होता है तो उस दिन ऋतु में समता होती है। कारण कि पुरुषवाची नक्षत्र अपना प्रभाव, चन्द्र के विपरीत शोषण करने के लिये डालता है, कोमलता और कठोरता जल शक्ति तथा तेज शक्ति मिलकर ऋतु को विषमतारहित करदेते हैं वा यों कहो कि उस दिन अधिक बादल आदि का भय नहीं रहता।

नक्षत्रों को पुरुषवाची नाम देना बतला रहा है कि वह नक्षत्र तेजगुणयुक्त अधिक होने से बल वृद्धिकारक नहीं है। आज कल कहते हैं कि अमुक काम उस दिन करो जब कि बादल आदि अधिक न हों, पुरानी शैली कहने की यह थी कि तब करो जब चन्द्रमा पुरुषनक्षत्र से युक्त हो क्योंकि उस दिन में विषमता होने का भय कम होगा॥

(३) सुश्रुत शरीरस्थान अ० ६ में लिखा है कि:—

पंच सन्धयः शिरसि विभक्ताः सीमन्ताः।
तत्राघातेनोन्मादभयचेष्टानाशैर्मरणम् ॥

(अर्थ) "पाँच संधियें जो शिरमें विभाग की गई है उन्हें सीमन्त कहते हैं उनमें चोट लगने से मनुष्य उन्माद, भय और चेष्टा नाश होने से मर जाता है।

सीमन्तस्य उन्नयनम् उद्भावनम् इति सीमन्तोन्नयनम्॥

शिर में ५ संधियाँ हैं जिनको सीमन्त कहते हैं और इन संधियों की उन्नति वा प्रकाश करने का नाम सीमन्तोन्नयन संस्कार है वा यह कहो कि मस्तिष्क वा मानसिक शक्तियों की उन्नति करना इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। चौथे, मास में अथवा पारस्करमुनि के मतानुसार छठे वा आठवें मास में यह संस्कार करना चाहिये चौथे मास से मानसिक शक्ति का आरम्भ गर्भगत बालक में होने लगता और पांचवे मास में मन की शक्ति अधिक होजाती है। छठे मास में बुद्धि का जो एक प्रकार की मानसिक शक्ति ही है प्रादुर्भाव होने लगता है। सातवें मास में सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग बनजाते और आठवें मास में ओज * (फिज़िकल बेसिस् आफ़ लाइफ़) दृढ नहीं होता, नवें मास में ओज दृढ होजाता है॥

अतएव चौथे, छठे, आठवें मास में इस संस्कार के करने से मन बुद्धि और ओज की वृद्धि द्वारा मानसिक शक्तियों को ही उन्नत करना है। आयुर्वेद में लिखा है कि—

* ओज वीर्य की अन्तिम अवस्था का नाम है।

पंचमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति षष्ठे बुद्धिः । सप्तमे सर्वांगप्रत्यंगविभागः प्रव्यक्ततरः ॥ ३३ ॥ अष्टमेऽस्थिरं भवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नै ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत ॥ ३४ ॥ नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारो भवति ॥ ३५ ॥ (सुश्रुत, शरीरस्थान अध्याय ३)

(अर्थ) पाँचवें महीने में मन अधिक चैतन्य हो जाता है। छठे मास में बालक की बुद्धि उत्पन्न होती है* सातवें मास में सम्पूर्ण अंग प्रत्यंगों के विभाग पृथक् २ स्पष्ट हो जाते हैं—आठवें मास में हृदयस्थ सर्वधातुसम्बन्धी ओज स्थिर नहीं होता है इस लिये इसमास में जन्मा हुआ बालक जीवित नहीं रहता—इस मास में चित्त विनोदक पदार्थ अर्थात् सुगन्धित पदार्थों का हवन करना चाहिये । नवें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें महीनों में से किसी एक में बालक उत्पन्न होता है और यदि इस मर्य्यादा से बढ़ जाय तो उसको गर्भ का विकार समझो ।

इन प्रमाणों से प्रकट है कि चौथे मास से लेकर नवें मासतक गर्भगत बच्चे के मानसिक अवयव और बुद्धि क्रमशः बढ़ती है अथवा यों कहो कि मस्तिष्कीय शक्तियें विशेष कर बढ़ती हैं—जोकि वह संस्कार इन्हीं मासों में किया जाता है इस लिये इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य गर्भगत बालक के मस्तिष्क की पूर्णता कराने का है इसी कारण इस संस्कार के समय में बच्चे के मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पहुचाने के लियें ही गर्भिणी के शिर पर पति को तैल लगाने और कंघी से उसके बाल साफ करने की शिक्षा दी गई है—क्योंकि जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं इस रीति से गर्भगत बालक के मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पहुँचाया जा सकता है इन महीनों में गर्भिणी स्त्री को अपने मस्तिष्क से उचित कामलेने की भी आवश्यकता है क्योंकि जिस प्रकार का वह अवलोकन करेगी अथवा जिस प्रकार की बातों को मन से सोचती रहेगी उसी प्रकार के अवलोकन का उत्साह रखने वाला अथवा उस प्रकार की बातों को सोचने की योग्यता रखने वाला बच्चा उत्पन्न होगा ।

सूत्रकार के लेख से प्रतीत होता है कि वह नाक की सीध में ऊपर को सिर के बालों को दो भागों में कर देने का विधान करते हैं । यहाँ बालों को विभक्त कर के दक्षिणी स्त्रियों के समान जूड़ा बाँधना है अतः उस प्रयोजन के लिये कोई कंघी वा उसके स्थान में दो गूलरों वाली शाखा की नोक बनाकर वा सेही के उस नये

---

* "विशेषेण षष्ठे मासि गर्भस्थबलवर्णोपचयोभवत्यधिकमन्येभ्यामासेभ्यस्तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिमापद्यते," (चरक)

यह चरक का वचन है अर्थात् विशेष कर छठे मास में गर्भस्थ बालक का, और महीनों की अपेक्षा, बल वर्ण अधिक बढ़ता है इस लिये गर्भिणी का बल वर्ण घटजाता है।

काँटे से जिस पर नयेपन के दर्शक तीन सफेद चिन्ह हों अथवा तरुण (नवीन) तीन कुशाओं के उपयोग से केवल बालों के दो भाग कर के जूड़ा बाँधा जावे ऐसा उद्देश्य है । ईश्वरवाची " भूर्भुवः स्वरोऽम् ,, यह नाम लेकर यह शुभकार्य करे जिससे गर्भगत बच्चे के दिमाग़ को पुष्टि मिलती है । इसकी विशेष व्याख्या आगे करेंगे ।

(४) पारस्करमुनि इस संस्कार को छठे वा आठवें मास में करने की अनुमति देते हैं । भारतवर्ष के कई प्रान्तों में यह सीमन्त छठे मास में करने में आता है । छठे मास में जैसा कि आयुर्वेद का सिद्धान्त है, बुद्धि जो मानसिक शक्ति ही है गर्भगत बच्चे में वृद्धि को प्राप्त होने लगती है और दिनोंदिन बढ़ती जाती है । आठवें मास में ओज अपरिपक्व दशा में होता है उस मास में इस संस्कार का प्रभाव गर्भगत बालक की बुद्धिशक्ति की उन्नति के अतिरिक्त ओज पर भी उत्तम पड़ेगा । मालूम होता है इत्यादि कारणों से आठवाँ मास भी विकल्प पक्ष में संस्कार करने के लिये नियत किया गया है । चौथे, छठे, आठवें मासों में इस संस्कार को विकल्प से करने की सम्मति सूत्रकारों की है ।

"ओ३म् देव सवितः,,...

इस मन्त्र का अर्थ पहिले सामान्यप्रकरण में आ चुका है वहाँ पर देख लेना चाहिये ।

"ओ३म् प्रजापते,,...... ... ...इन दो मन्त्रों का भी अर्थ सामान्यप्रकरण में आचुका है ।

चावल, तिल, मूंग की खिचड़ी (विना नमक की) पुष्कल घी डालकर आठ आहुतियों के लिये बनावे । चावल, तिल मूंग यह तीनों पौष्टिक पदार्थ हैं यदि एक आहुति का प्रमाण एक तोला हो तो आठ तोले खिचड़ी चाहिये और उससे दुगना उसमें घी डालना चाहिये ।

आठ मन्त्रों के अर्थ

(१) हे (वाजिनीवति !) बलयुक्त सन्तति वाली वधु ! (प्राचीम्) अच्छे प्रकार सत्करणीय (उक्षितम्) रसादि से सिक्त (जीवातुम्) जीवनौषध को (दाशुषे) हविरादि देनेवाले के लिए (धाता) सब जगत् का धारण करने वाला ईश्वर(ददातु) देवे । (वयम्) हम तुम सब (देवस्य) उसी ईश्वर देव की (सुमतिम्) शोभन बुद्धि का (धीमहि) चिन्तन करते हैं ॥ १ ॥

(धाता) सब का धारक ईश्वर (प्रजानाम्)) प्राणिमात्र का (उत) और (रायः) धनका (ईशे) स्वामी है । (इदं, भुवनं, विश्वम्) यह उत्पन्न हुआ जगत् (धात्रा) ईश्वर से (अजान) व्याप्त है । (धाता) ईश्वर ही (कृष्टीः) सब मनुष्यों को (अनिमिषा, भिचष्ट) विना विशेष व्यापार के ही देखरहा है (धात्रे , इत्) धाता ही की प्रीति के लिए (घृतवत , हव्यम्) घृत से युक्त शाकल्यादि को, तुम सब मनुष्य (जुहोत) दिया करो ॥ २ ॥

(अहम्) मै पति (सुहवाम्) प्रतिष्ठा से बुलाने योग्य (राकाम्) पूर्णमासी की तरह सुशोभित—स्वपत्नी को (सुष्टुती) अच्छी स्तुति—प्रशंसा से, शुभ कार्यों में (हुवे) निमन्त्रित करताहूं। जाकि (नः) हमारे आमन्त्रण को (शृणोतु) सुने और (सुभगा) सौभाग्यवती वह (त्मना) अपने आत्मा से (बोधतु) समझे। और वह (अपः पुत्रोत्पादनादिशुभ कार्यों को (अच्छिद्यमानया, सूच्या) निन्दारहित प्रसिद्धि के साथ (सीव्यतु) विस्तृत करे। और प्रशंसनीय (वीरम्) वीर पुत्र को (ददातु) उत्पन्न करके देवे ॥ ३ ॥

हे (राके) सद्गुण शालिनि! (सुपेशसः) शोभनरूप (याः, ते, सुमतयः) जो तेरी अच्छी बुद्धियांहै (याभिः) जिन बुद्धियोंसे (दाशुषे) हविरादि देनेवाले मुझ पतिके लिए (वसूनि) धनादि पदार्थों को (ददासि) सम्पादन करती है (ताभिः) उन्हीं बुद्धियों से (अद्य) आज (नः) हमको (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होकर (उपागहि) प्राप्त हो और हे (सुभग) सौभाग्ययुक्ते! (सह स्रपोषम्) हजारों संख्या वाले धन की पुष्टि को (रराणा) देती हुई, प्राप्त हो ॥ ४ ॥

(यः, पुमान्) जो पुंस्त्वगुण युक्त मेरा पति (अस्यै, मे, पुत्रकामायै) संतानकी इच्छा रखने वाली इस मेरे लिए (गर्भम्, आधेहि) गर्भ को धारण करा चुका है (एषः) यह मेरा पति (नेजम्) निन्दा रहित कार्यों को (परा, पत) मेरे संमुख प्राप्त हो। (पुनः) और (सुपुत्रः) शोभनसन्तान युक्त होकर मुझे (आ, पत) मिले ॥५॥

(यथा) जैसे (इयम्) यह (उत्ताना, मही, पृथिवी) ऊंची, और बड़ी पृथ्वी (गर्भम्,) आदधे) अपने भीतर बहुत सी वस्तुओं को रखती है (एवम्) ऐसे ही हे सुभगे! (दशमे, मासि, सूतवे) दशवे महीने में पैदा करनेके लिए (त्वम् गर्भम्, आधेहि) गर्भ को धारण कर ॥६॥

हे गृहस्थ धर्म के पालक! (गवि, इन्याम्) गवादि पशुओं की स्वामिनी (अस्यां, नार्याम्) इस स्त्री में (विष्णोः श्रेष्ठेन, रूपेण) ईश्वर के सर्वोत्तम रूप से अर्थात् ईश्वरस्वामिक श्रेष्ठ प्रकृति के सात्विकांश से (पुमांसं, पुत्रानाधेहि) पुंस्त्वशक्तिवाले पुत्रों को उत्पन्न कर (दशमे, मासि, सूतवे) दशवें मास में उत्पन्न होने के लिए ॥७॥

आठ मन्त्रों की व्याख्या—

(नं० १) इस मन्त्र में (क) मानसिक तुष्टि का वर्णन स्त्री को बलवान्, सन्तति वाली और बहुमान्य कहकर किया गया है। इस मंगल वाक्य का कैसा उत्तम प्रभाव पत्नी के मनपर और फिर गर्भगत बालक के मनपर होगा यह प्रत्येक सोच सकता है (ख) फिर आरोग्यता के साधन दर्शाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह दूध, फल, अन्न आदि रसप्रधान जीवनवृद्धि के पदार्थ, पति को जो कर्मकाण्डी पुरुषार्थी है अपनी कृपा से सदैव देतारहे जिससे वह पत्नी आदि का पोषण करता हुआ उस को आरोग्य रखसके। और उसकी आरोग्यता से सन्तान आरोग्य उत्पन्न होसके (ग) बुद्धि-वृद्धि का विधान, ईश्वर की विचार शक्ति का

चिन्तन करने द्वारा कहा गया है जिसका अभिप्राय यह है कि पत्नी अपनी बुद्धि से सोच विचार का काम ले और सत्संग आदि करे ताकि उसकी बुद्धि बढ़ती हुई गर्भगत बालक की बुद्धि पर प्रभाव डाले।

(नं० २) (क) पत्नी को दर्शाया जा रहा है कि तू जो गर्भ धारण किये हुए है इसको बड़ा भाग्य समझे क्योंकि ईश्वर प्राणिमात्ररूपी सन्तान को और उस की पालन सामग्री को मानो गर्भगत धारण किये हुए है। व्यापक होने से सर्व उत्पन्न हुए जगत्का ईश्वर धाताहै (ख) घृतयुक्त सामग्री से हवन को ईश्वरकी आज्ञा समझ कर करो ताकि घृत और सुगन्ध के सूक्ष्म द्रव्यों के कारण पत्नी का मस्तिष्क आरोग्यता को पाकर गर्भगत बालक के दिमाग़ को उन्नत करे। यह बात अनुभव सिद्ध है कि बंद कमरे में अथवा गन्दे स्थान पर जाने से तत्काल ही शिर चकराने लगता है, इस के विपरीत वाटिका आदि में भ्रमण करने से अथवा सुगंधितयुक्त घृत आग में डालनेसे शिर और मन दोनों प्रसन्न होतेहैं अतएव होमका करना मानसिक शक्तियों की उन्नति के लिये अधिक लाभदायक है।

(नं० ३) (क) दर्शाया गया है कि पति आदरपूर्वक स्त्री को बुलाया करे। सभ्यलोग सदैव स्त्री को मित्रवत् समझ कर आदर देते हैं (ख) पूर्णिमा के चन्द्र से उपमा देने से यह प्रयोजन प्रतीत होता है कि अनेक शुभगुणों से स्त्री पूर्ण है और साथ ही उस के समान सुन्दर कान्ति वाली भी है (ग) उस की स्तुति करते हुए ही पति निमन्त्रित करे जिससे उसका मन सदैव प्रसन्न रहे (घ) वह भी पति की स्तुति को ध्यान से सुने और अपने आत्मा से उसको समझे अर्थात् अपने आपको सदैव उस स्तुति के योग्य सिद्ध करे। (ङ) सन्तान उत्पत्ति के महान् कार्य को छिद्ररहित आचरण वा कर्म द्वारा पूर्ण करे ताकि उसके गर्भसे बहुत पुरुषार्थी और वीर सन्तान उत्पन्न हो।

गर्भिणी के आहार, व्यवहार, आचार, चेष्टा, सत्संग, विचार आदि पर सन्तान का सुधार निर्भर है इस बात को वेद मंत्र के इस भाग में जनाया गया है।

(नं० ४) इस मंत्र में बतलाया गया है कि पति, स्त्री के रूप मन और बुद्धि की इस प्रकार प्रशंसा करे, "जो तेरी अच्छी बुद्धियां हैं उनसे आज हमको प्रसन्नचित्त होकर प्राप्त हो,,। यहभी बतलाया गयाहै कि यदि स्त्री सुमति (अच्छे विचार वाली) और सुमनाः (अच्छे मन वाली) होगी तो वह पति के धन की रक्षा और वृद्धि में पूरी सहायक होने से उस के धन को भी अनेक विधि से पुष्टि देती रहेगी। पत्नी की बुद्धि पर, पति की वेदमन्त्र द्वारा सच्ची स्तुति सुनकर अवश्य उत्तम प्रभाव पड़कर सन्तान भी विशाल बुद्धि वाली क्यों न जन्मेगी!

मंत्र की समाप्ति पर आहुति देकर "इदंराकायै इदन्न मम,, यह पाठ भी ह। इसका प्रयोजन यही है कि चन्द्रस्वरूपा पत्नी के आदर निमित्त यह आहुति देता हूं न कि अपने लिये। अंगरेज लोग किसी मित्र के स्वास्थ्य के अर्थ में गिलास पानी का पी-

कर अपना सद्भाव प्रकट किया करते हैं। पुराने आर्य, हवन के समय पत्नी के आ-
दरार्थ आहुति देते थे।

(नं०५) इस मंत्रमें पत्नी पति से सद्भाव प्रकट कर रहीहै और दर्शा रही है कि मेरा वीर पति मुझ सन्तान की कामना वालीके लिये,गर्भ को धारण करचुका है।ऐसा कहने से वह जहाँ प्रसन्नता प्रगट कररही है वहाँ विशेष बात यह भी कहना चाहती है कि वह मेरा पति निन्दा रहित कार्य्यों को मेरे सम्मुख प्राप्तहो अर्थात् मुझ गर्भिणी से गमन न करता हुआ सदैव सदाचारी रहे और सन्तान के हो चुकने पर पुनर्मुझ से ऋतुकाल में सन्तान उत्पन्न करे। अहो! क्या उपयोगी नियम का बोधक यह मंत्र है। पति को व्रतधारी बनने का उपदेश किस उत्तमता से दे रहा है।

(नं० ६) इस मंत्र में उपदेश यह है कि स्त्री पूरे ९ सौर्य मास तक गर्भ धारण करे, ताकि बालक उत्तम उत्पन्न हो और माता कोभी पूरे दिनों के बालक के उत्पन्न करने से अधिक कष्ट प्रसवसमय न हो और बोधन कराया है कि जिस प्रकार महती पृथिवी गर्भ धारण किये हुए है ऐसे ही हे नारी! तू मानसिक सहनशीलता के प्रताप से सुखपूर्वक पूरे दिनों तक गर्भ धारण कर।

(नं०७)इस मन्त्रमें ईश्वरसे प्रार्थना कीगईहैकि वह गो आदि की स्वामिनीइसस्त्री की सन्तान को सुन्दर रूप तथा बल वीर्यसे युक्त उत्पन्न करे और वह सन्तान पूरे नव सौर्यमास गर्भ में रहकर जन्मे (ब्यूटी) रूप पर अनेक लेख विद्वानोंने लिखे हैं परन्तु (ब्यूटी)सुन्दर रूप वा कान्ति क्या है इसका वर्णन सुश्रुतकारही केवल उत्तमता से कर सके हैं कान्ति (ब्यूटी)अथवा रूप जैसा कि धन्वन्तरि जी बतलाते हैं 'तेज तत्व का प्रभाव है„ और दूध, घृत, मक्खन, मलाई आदि सात्विक पदार्थोंके भोजन करने तथा वीर्य्य निग्रह रखनेसे कान्ति अवश्य वढतीहै। वेद मंत्रने जोसुन्दर सन्तान चाहनेवाली स्त्री को गो आदि पशुओं की स्वामिनी कहा है उसका यही प्रयोजन प्रतीत होता है कि गर्भणी स्त्री घर में गाय रखे और उसके दूध आदि पदार्थों का सेवन करती रहे।

कई लोग श्वेत, लाल रंगों को सुन्दर रूप कहतेहैं वास्तव में जिस रंग में कान्ति (चमक) है वही सुन्दर है चाहे पीला हो या काला, श्वेत हो या लाल योरुप के सर्व विद्वान सुन्दरता का सरदार कहते हैं किन्तु नीला होता है। हाँ, मोर में तेज है कान्ति है जिससे वह रूपवान है। तेजधारी व चमकने वाले नाना रंगों के पत्थर सुन्दर रत्नों का नाम पाते हैं। इस लिये जिस के अंग विकृत नहीं और जो कान्ति युक्त है वही नर वा नारी सुन्दर है।

(नं० ८) "प्रजापते न त्व०„

इस मंत्र का अर्थ व व्याख्या सामान्यप्रकरण में पूर्व की जा चुकी है इस लिये वहाँ देख लेनी चाहिये। इस में कामना सिद्धि और धन प्राप्तिका महत्व दर्शाया गया है॥

एकान्त में मंत्र पाठ

"संस्कारविधि"में लिखा है कि " पति और पत्नी एकान्त में जाकर उत्तम आसन पर बैठ, पति पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठे। इन मंत्रों को पढ़कर पति अपने हाथसे स्वपत्नी के केशोंमेंसुगंध तैल डाल, कन्घे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुनवृक्षकी शलाका वा कुशाकी मृद् छीपी वा शाही कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर सुन्दर जड़ा बाँधकर यज्ञशाला में आवे,,

मंत्रार्थः—

(नः) हम याज्ञिक लोगोंकेलिए [आपः,ओषधयः]जल और ओषधियाँ (सुमित्रियाः सन्तु)सुन्दर मित्रकी तरह सुखदायक हों। और (तस्मै)उस यज्ञादिसे शून्य दुराचारीके लिए (दुर्मित्रियाः, सन्तु) शत्रु की तरह दुःखद हों (यः, अस्मान्, द्वेष्टि] जो हमसे द्वेष करताहै (च, यं, वयं, द्विष्मः) और जिससे हम द्वेष करते हैं ॥१॥

[देवाः] विद्वान् लोग [दिवो, मूर्द्धानम्] द्युलोक के मस्तकरूप अर्थात् सूर्यात्मा से अवस्थित [पृथिव्याः, अरतिम्] पृथिवी के ऊपर दाह,पाक, प्रकाशादि कामों से उपराम रहित [ऋते, वैश्वानरम, आजातम्] यज्ञमें वैश्वानर नामसे प्रसिद्ध [कविम्] ज्ञानप्रसिद्धि के साधन [सम्राजम्] समग्र ऐश्वर्य से युक्त[जनानाम्, अतिथिम्]मनुष्यों को अतिथि की तरह सेवनीय (आसन्, पात्रम्) देवताओंके मुखमें ज्ञानास्वाद के साधन [अग्निम्] अग्नि विद्याको [आ,जनयन्त] अच्छे प्रकार प्रकट करतेहैं ॥२॥

हे सुभगे! [अयम्] यह [ऊर्जावतो, वृक्षः] उदुम्बर—गूलर का वृक्ष [ऊर्जी, इव] जैसे पकेहुए फलों से युक्तहै, वैसे तूभी [फलिनी, भव] सुन्दर पुत्ररूप फलवाली हो। हे [वनस्पते] वनस्पतिसदृश फलप्राप्ति करने वाली वधू! [पर्णम्] हरियाले पत्रको अर्थात् पुत्ररूप फलसे हरे भरे भावको [तुत्वा, तुत्वा] प्रशस्य कर कर के तुझसे (रयिः) धनादि ऐश्वर्य (सूयताम्) उत्पन्न किया जाय ॥३॥

(प्रजापतिः) प्राणियों का पति परमात्मा (येन) जिस कारण से (अदितेः) पृथिवी वा वाणी की (सीमानम्) मर्यादा को (महते, सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिए अर्थात् जगत् के प्रकाश के लिए (नयति) बनाता है। (तेन) उसी सौभाग्य के कारण से (अस्यै, सीमानम्) इस गर्भिणी स्त्रीकी सीमा वा मर्यादा को (अहं, नयामि) मैं बनाताहूं। और (अस्यै, प्रजाम्) इसकी सन्तान को मर्यादा पूर्वक चलाने के कारण (जरदष्टिम्) वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाली (कृणोमि) करता हूं ॥ ४ ॥

५ वें और छठे मन्त्र का अर्थ पूर्व इसी संस्कार में आचुका॥

पति पूछे—हे वधु! (इस खिचड़ी की स्थाली में तू) (किं, पश्यसि) क्या तू प्रजाको, पशुओंको, मेरे लिए सौभाग्यको, और मुझ पति के लिए चिरकाल पर्यन्त जीवन को इसमें देखती है! ॥ ७ ॥

मंत्रों की व्याख्या—

द्वेष भारी मानसिक रोग है.

[नं० १] यह कथन कि जो मनुष्य हमसे पहिले द्वेष करतेहैं और फिर उन दुष्टों से हमको अपने बचाव के लिये द्वेष करना पड़ताहै ऐसे दुष्ट लोगों के लिये हे ईश्वर! आपके रचित औषधजल आदि पदार्थ जो सर्व हितकारी हैं, पर जिनके मन में द्वेष अग्नि प्रथम जलती है उनको वह पदार्थ सुख नहीं देते।

एक मनुष्य ने कोई उत्तम औषधि खाई पर मनमें दूसरे मनुष्यों से वर लेनेके लिये विना कारण जल रहाहै तो ऐसे अशान्त हृदयवाले मनुष्यको प्रत्यक्ष देखने में आताहै कि दवाई पूर्ण लाभ नहीं पहुंचा सकती। इसलिये हे ईश्वर! हमारे मनमें किसीसे द्वेष करने वा उसकी हानि करने का भाव प्रथम कभी उत्पन्न न हो। यदि ऐसा होगा तो हम असुर राक्षस ही नहीं बनेंगे किन्तु आप के उत्तम सर्व हितकारी बलकारी पदार्थ हमारी मन मलीनता के कारण हमें पूर्ण सुख नहीं देंगे। सार यहहै कि यदि गर्भिणी औषधियों से पूर्ण लाभ लेना चाहती है तो कभी किसी से द्वेष करनेकी बुद्धि पहिले मन में धारण न करे अर्थात् मन से शान्त रहे ताकि जल आदि सब पदाथ पूरालाभ पहुंचा सकें। प्रश्न हो सकता है कि मंत्र में कहाँ लिखाहै कि "जो पहिले द्वेष करता है इत्यादि,,....................उत्तर में हम कहेंगे कि पहिले का शब्द मन्त्र की प्रयोग शैली से स्पष्ट हो रहा है। "जो हम से द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं,,। इस का भावार्थ यही है कि जो पहिले हमपर द्वेष करता है फिर उस से हम करते हैं। कोई कह सकताहै कि पहिले द्वेष करना जब पाप है तो द्वेषी के द्वेष करने पर भी द्वेष न करना चाहिये। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि यदि कोई चोर किसी का घर लूटने आवे तो अपनी रक्षा के लिये डंडा लेकर उसको डराना पड़े तो वह द्वेष उस के लिये दंडरूप और स्वात्म रक्षानिमित्त होने से पाप कर्म नहीं किन्तु न्यायधर्म्म कहलायेगा। एक न्यायाधीश एक चोर को वंदीगृह में भेजता है तो चोर के निमित्त न्यायाधीश का यह काम द्वेषरूप प्रतीत हो पर बास्तव में वह न्याय धर्म्म है और इससे न्यायाधीशका मन जलता नहीं रहेगा जो द्वेष का आरम्भ करताहै उसके मनको ईश्वरीयनियमानुसार वहुत दुख भोगना पड़ता है और साथही यह भी ईश्वरीय दंड समझो कि मूल द्वेषी को जब तक वह द्वेष न छोड़े औषधभी लाभ नहींदेती कारण कि विक्षिप्तमन होना स्वयं रोग है।

(नं० २) (क) विद्वान् लोग सूर्य समान हैं जो सूर्य कि देवलोक का मूर्द्धा है

(ख) पृथ्वी के ऊपर जो काम होते हैं वह सूय के द्वारा ही होते हैं।

(ग) परोपकार के काम करने में बुद्धिवल से जो कला यन्त्र आदि निर्माण करते हैं वह मेधावी वैश्वानरकी पदवी वाले होते हैं वह ज्ञान प्रचार के साधन ऐश्वर्य से युक्त हो मनुष्यों में अतिथिसमान सन्मान पाते हुए विद्वानों के मध्य में अग्निविद्या के आविष्कारों को प्रगट करतेहैं।

योगी, ऋषि, मुनि, मेधावी, देवता पितर ये सब वश्वानरहैं। बुद्धि बल से ही पूर्व काल में आविष्कार करते थे अब अमेरीका आदि देशों में कर रहे हैं और आगे सर्वत्र करेंगे। यूरोप का इतिहास बतला रहा है कि मेधावी संस्कारी जन केवल स्कूलोंसे नहीं बनते किन्तु माताओं के गर्भ से विशेष संस्कार लेकर जन्मतेहैं। इसी नियम को यह मंत्र बोधन कररहा है कि मेधावीजन मनुष्य समाज के मूर्धा हैं। वे तुच्छ विचारों में जो स्वार्थ में रींगने वालों में पाये जातेहैं लिप्त नहीं होते। वह अग्निविद्या के चमत्कारों से सबको चकित कर देतेहैं देश में अधिक आविष्कार कर्ता उत्पन्न करना माताओं की बुद्धि बलपर निर्भरहै और उस बुद्धिबल का प्रभाव माताएं बच्चोंपर डाल सकती हैं यही सीमन्तोन्नयन संस्कार का उद्देश्य है।

(नं० ३) वृक्षों से उत्पत्ति आदि कर्म में मनुष्यों की उपमा दी जाती है। जब कन्या रजस्वला होती है तो कहा जाता है कि यह पुष्पवती हुई है। जब स्त्री संतान वाली हो तो कहा जाता है कि यह फलवती है। पति का किसी वृक्ष के फलों को दिखाते हुए पत्नीको आशीर्वाद देना भावपूर्ण है। आम अनार आदि कोई भी फल दिखाने से वही अभिप्राय सिद्ध हो सकता था किन्तु गूलर के फल दिखानेसे अनोखापन यह है जो किसी फल में पाया नहीं जाता कि इस के अन्दर जीवित कृमि पाये जाते हैं। आयुर्वेद में इसी लिये इसको जन्तुफल भी कहतेहैं। इस आशीर्वाद का यह प्रयोजन है कि जिस प्रकार गूलर के अन्दर सजीव प्राणी रहता है उसी प्रकार तेरे गर्भ में सजीव बालक बढ़े।

(नं० ४) (क) यह दो अर्थों को प्रकाश करने वाला मंत्रहै इस में प्रथम दर्शाया गया है कि स्त्री को सौभाग्य देने के लिये पति उसकी सीमा अर्थात् केशों को सुधारे वा दूसरे अर्थ में नियम बद्ध करे। शिर के सर्व रोग दूर करने के लिये केशों के सुधारने से प्रयोजन है और इस का प्रभाव गर्भगत बालक पर पड़ता है। साथही दृष्टान्त की रीति से कहा गया है कि ईश्वरने पृथ्वीकी सीमा को जो उसपर अन्न औषधि घास आदि हरयाली है उसे बड़े सौभाग्य (ऐश्वर्य) के लिये बनाता है। सच है कि पृथ्वी का जो भाग हरयाली से शून्य होता है वह प्रजाके पालन में समर्थ नहीं हो सकता। इसी प्रकार जिस स्त्री का शिर और उस के बाल उत्तम हैं वह सन्तान के मस्तिष्क बुद्धि तथा बल का कारण बनते हैं।

(ख) सीमा के दूसरे अर्थ मर्यादा के हैं यदि कोई काम अमुक सीमा तक किया जावे तो उसका फलभी उत्तम निकलता है इस लिये स्त्री को ध्यान रखना चाहिये कि मुझे मर्यादा युक्त रहना चाहिये। पृथ्वी के व्यवहारकी सीमा उस की कक्षा है सूर्य से प्रकाश और ताप को लेकर सदैव सौभाग्य युक्त इसी लिये बनी रहती है कि अपनी सीमारूपी कक्षा को उलंघन नहीं करती।

(नं० ५) इस मंत्रका अर्थ और व्याख्या इसी संस्कार के आठ मंत्रों के मंडल में आ चुकी है केवल यहां पर इतना दोहराना पर्य्याप्त होगा कि पति उस के पूर्णमासी के चंद्रकी विविध अर्थ प्रकाशक उपमा देकर सच्ची प्रशंसा करता हुआ निवेदन करता है कि वह ध्यान पूर्वक उसके वचन सुने और आचार व्यवहार द्वारा वीर संतान उत्पन्न करने में समर्थ होवे।

कोई प्रश्न कर सक्ता है कि यह मंत्र इसी संस्कार में पहिले भी आचुका है अब फिर इस की ज़रूरत क्यों पड़ी उत्तर में हम कहेंगे कि प्रयोजन गूढ तथा महान् है और यह मंत्र उस प्रयोजन को गूढ़रूप से कह रहा है इसी लिये इस मंत्र का जितना बार भी जप किया जावे उतनाही उत्तम तथा चिरस्थायी प्रभाव मन पर पड़ेगा। चितावनी (ताकीद) केलिये ऋषियों ने दूसरी बार इस मंत्र को इन सात मंत्रों के मंडल में भी पुनः रक्खा है यूरोप के विद्वान् जिन वाक्यों को अधिक उपयोगी समझते हैं उन को कभी २ मोटे अक्षरों में लिखदेते हैं कभी २ उन के नीचे रेखा (अण्डर लाइन) देतेहैं। ऋषियों का नीचे रेखा करना उसको पुनः आवृति करना है। इसी लिये यह और इससे अगला मंत्र यहाँ पुनः आवृत हुए हैं।

(मंत्र ६) इस मंत्र की भी व्याख्या इसी संस्कार के आठ मंत्रों में आचुकी है केवल यहां पर याद दिलाने के लिये इतना ही लिखा जाताहै कि पति, पत्नी के गुण, रूप, मन और बुद्धि की स्तुति करे जिस से वह (पत्नी) प्रसन्न मन रहकर बुद्धि शक्ति बढ़ाती रहे।

संशोधन संस्कार विधि में पाँचवां, छठा और सातवाँ मंत्र अशुद्ध छपे हुए हैं उन्हें मूलमें शुद्धकर दिया है।

(नं० ७) यदि स्त्री मन से यह इच्छा करेगी कि मेरी संतान मेरे समान सुन्दर रूप वाली हो तो उस को घी में अपने रूप को देखकर प्रथम के समान ध्यान करना चाहिये। घृतादिपोषक पदार्थ, जो रूपवर्द्धक भीहैं वह गो आदिपशुओं से प्राप्त होते हैं उन पशुओं की जरूरत यदि स्त्री समझेगी तो उनको रख कर उन के घृत का सेवन भी कर सकेगी। पति उस का यदि धनवान् (सौभाग्यवान्) होगा तो पशु आदि सब मिल सकेंगे। इस लिये पतिके सौभाग्य का भी वह ध्यान करे और पतिकी दीर्घायु का भी चिन्तन करना सब सुखों की वृद्धि का मुख्य साधन है इस लिये स्त्री—

१ सुन्दर संतान
२ घृत आदि के आधार पशु
३ पति का ऐश्वर्य व सौभाग्य
४ पति की दीर्घायु

इन बातों की चाहना करेगी तो उस की मनोकामना सिद्ध होगी और गृहस्थधर्म भी पूर्ण करसकेगी गृहस्थी के लिये यह बातें कैसी जरूरी हैं इनकी ओर ध्यान दिलाने के लिये पति प्रश्न रूप से उसको इनका महत्व सोचने के लिये कह रहा है।

केशशृंगार जब यह सात मंत्र उच्चारण करचुके तब पति अपने हाथों से उस के शिर में सुगंधित तैल, डाले। आंवले वा मेंहदी का तैल नारयल का तैल अथवा तिलका तैल जिस में सुगंधि के लिये नारंगी, चंदन तथा दारचीनी का

तैल उचित परिमाण से मिले हुए हों। इन में से कोई तेल लेना ठीक होगा। सेंट, लेवेन्डर वाले तैल चिकनाहट से शून्य होते हैं उन को शिर पर लगानेसे लाभ नहीं होता। अति सुगंधित तेल भी हानि करते हैं इस लिये आमले नारयल का शुद्ध तैल लगाने के साथ वह कंघी से बालों को सुधारे। कंघी करने से बालों का मल तथा विकार दूर होता और शिर को आराम मिलता है। गर्भिणी के शिर पर कंघी करने से गर्भगत बालक के बाल भी सुन्दर कोमल बनते हैं। यद्यपि कंघी की नोक से नाक की सीध में चीर (मांग) निकल सकती है किन्तु गूलर व अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छोपी वा शाही कांटे से केशों की पट्टी निकाल पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बांधने का विधान सूत्रकारों ने किया है उससे अभिप्राय उनका साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि गूलर वाली शलाका से चीर निकलाते समय यह भी बोधन कर रहे हैं कि गर्भ में पुत्र है। तीसरे मास तक वह प्रायः मालूम हो जाता है कि गर्भ में लड़का है वा लड़की यदि पुत्र का गर्भ रहगयाहै तो युग्मफल पुत्र की उत्पत्तिके बोधक हैं उसको दिखाकर पति यह भी भाव प्रगट कर रहा है—

[१] कि जिस तरह ये युग्म फल हैं वैसे तेरे लड़का आनन्द से हो ' युग्म रात्रि के समागम करने से लड़का होता है और विषम रात्रि से लड़की। नामकरण के समय युग्म शब्दों से लड़के का नाम और विषम से कन्या का रक्खा जाता है।

तीसरे मास में प्रायः यह मालूम होजाताहै कि गर्भ में लड़का है वा लड़कीहै यदि स्त्रीका दक्षिणभाग वामभागकी अपेक्षा अधिक भारीहो अथवा दक्षिण कोख वामकोख की अपेक्षा अधिक भारीहो तो पुत्र समझना चाहिये और इसके विपरीत लड़की।लड़की के गर्भ की दशा में लम्बी मुष्टी सा गर्भ का आकार मालूम होता है इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में और भी चिन्ह हैं। इत्यादि चिन्हों से जान लेने पर कि गर्भ में लड़का है वा लड़की,पति युग्म वा विषम चिन्हों से युक्त कंघे का प्रयोग करे। यदि कन्या का गर्भ है तो तीन कुशाओं अथवा तीन सफेद चिन्हा से युक्त शाहीके कांटेसे बाल काढ़े

अथवा जब पुत्र का गर्भ हो तब अर्जुन [जिसको पञ्जाब में काहू वृक्ष कहते है] वृक्ष जो पुंल्लिंग वाची है उसकी शलाका ले।

[२] गूलर की शाखा जिस प्रकार फलवतीहै उसी प्रकार तू भी सन्तानवती हो
[३] बन्द गूलर फल के अंदर जिस प्रकार सुरक्षित जीव रहता है उसी प्रकार तेरे गर्भ के अंदर सुरक्षित जीव रहे।

जिस प्रकार जूड़ा आदि बाँधने का इस संस्कार में वर्णन आता है उस प्रकार जूड़ा बांधने का रिवाज दक्षिणी स्त्रियों में पाया जाता है। दक्षिणी स्त्रियाँ प्रायः नंगे शिर रहती और प्राचीन स्त्रियों के समान जूड़ा बांधे रखती है। यह स्त्रियां घूंघट वा मुँह ढाँपने की कुरीतिको जानती तक नहीं इसकी मर्यादायुक्त स्वतन्त्रता भारतवर्ष की अन्य प्रान्तों की स्त्रियों के अनुकरणीय हैं।

दक्षिण तथा गुजरात देश में हिन्दू पारसी आदि स्त्रियाँ पूरी स्वतन्त्रता के साथ पुरुषों समान बाजारोंमें आ जा सकतीहैं। घोड़ा गाड़ी आदि उत्तम यानों पर चढ़ती

हैं और क्या मजालहै कि कोई पुरुष किसी स्त्रीको हाथ लगाकर वा गाली आदि द्वारा किसी प्रकार की रोक टोक कर सके। गुजराती, दक्षिणी तथा मदरासी पुरुषों की यह सभ्यता स्तुति के योग्य है। यू० पी० [युक्त प्रान्त] राजपूताना आदि अनेक देशोंकी स्त्रियाँ इनकी अपेक्षा मानो बन्दीगृह में हैं।

जब पति जूड़ा बाँध चुके तब दोनों यज्ञ शाला में आवें वीणा आदि बाजे बजाये जावें तत्पश्चात् सामवेद का उत्तम गान करने से पूर्व यह मन्त्र गालें।

" ओ३म् सोम एव............."

इस नियुक्त गाथा का गान करना कई आचार्यों का मत है परन्तु कईयों का ऐसा मत है कि वीणा बजाने वाले किसी भूत, या वर्तमान राजा वा शूरवीर आदि का यशो गान करें, देखो—पारस्कर गृ० सू० का० १ क० १५ सू० ८।

अर्थ, [नः] हमारा [राजा] राजा [सोम एव] शान्त्यादि गुणों से युक्त है ही, इसी से [इमाः, प्रजाः] ये प्रजाएँ [मानुषीः] मननशील—विचार सम्पन्न हैं। हे गंगादि नदि! [तुभ्यम्] तेरे (अविमुक्तचक्रे) नहीं छोड़ा है घेर जिसका ऐसे (तीरे) तट पर मुनि लोग (आसीरन्) रहते थे॥

इस सब विधि के प्रामाण्य के लिए, देखो—गोभिलीय गृह्यसूत्र० प्रपा०२ का०७।

सू—१०—१२॥ किं पश्यसीत्युक्त्वा प्रजामिति वाचयेत्॥ १०॥ तत्स्थं सा स्वयं भुञ्जीत ॥११॥ वीरसूर्जीवसूर्जीवपत्नीति ब्राह्मण्यो मङ्गल्याभिर्वाग्भिरुपासीरन्॥ १२॥

[व्याख्या] इस में [क] देश के राजा के लिये कृतज्ञताका भाव प्रगट किया गया है साथही शान्ति युक्त राजाका आख्यान सुननेसे गर्भिणीके मनपर शुभ प्रभाव पड़ने की आशा है। यह सच लिखा गया है कि यदि राजा शान्ति आदि गुणोंसे युक्त होगा तभी प्रजा में भी विचार आदि उत्तम गुण आवेंगे और वह सभ्य हो सकेगी।

[ख] फिर किसी नदी को जो पास बहती हो वा जिसको देखाहुआ है नाम लेने से नदी तथा उसका सुन्दर शान्त दृश्य भी स्त्री के मन की आँखों के आगे फिर जावेगा, साथ ही वहां जो वानप्रस्थी साधुजन निवास करते हैं उन का विचार करने से गर्भिणी को शान्त विद्वानों का भी स्मरणहोनेसे मानसिक शान्ति उपलब्ध होगी। रही यह बात कि एक सूत्रकार ऋषि का मत है कि वीणा बजाने वाले किसी भूत व वर्तमान राजा वा किसी शूरवीर का यशोगान करें वहभी उत्तमहै। वीरता आदि उत्तम गुणों के श्रवण से गर्भगत बालक पर उत्तम प्रभाव पड़ेंगे।

जब सामवेद का गान समाप्तहो जावे तब पूर्व आहुतियोंके देनेसे बचीहुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डालकर गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उसघीमें देखे। उस समय पति पूछे "कि पश्यसि,, अर्थात् किसको देखती है। स्त्री उत्तर देवे " प्रजां पश्यामि,, मैं संतान को देखतीहूं गोभिलीय गृह्य सूत्रके प्रपाठक २ कण्डिका ७ सूत्र ९, १० में घी में मुँह देखने आदि का विधानहै यह वास्तव में सुन्दर प्रजा चिन्तनकी विधिहै।

तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी के अपने कुलकी और ब्राह्मणों की स्त्रियें प्रसन्नवदन बैठें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुईं उत्तम स्त्रीगण ऐसा आशीर्वाद दें:—

ओं वीरसूस्त्वं भव जीवसूस्त्वं भव जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथोचित सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें उपरोक्त लेखसे प्रथम गर्भिणीके लिये अपनाप्रतिबिम्ब घीमें देखनेकी शिक्षाबतलाईगई है उसका ध्यान, देखने केकर्म की ओर खेंचने के लिये पति उसको कहताहै कि "आप किसको देखती हैं„ वह उत्तर में कहती है कि मैं "सन्तान को देखती हूं„ इस प्रश्नोत्तर का अभिप्राय केवल यह है कि स्त्री ध्यानपूर्वक अपना प्रतिबिम्ब घी में देखे और मन में इच्छा करे कि मेरी सन्तान मुझ जैसी सुन्दर हो—कोई कह सकता है, कि इस प्रश्नोत्तर की क्या आवश्यकता है। क्यों न स्त्री चुपचाप अपना प्रतिबिम्ब घी में देखे—इसका उत्तरयही है कि स्त्री का ध्यान आकर्षित करने के लिये अर्थात् यह कि वह पूरा चित्त देकर इस काम को करे इस प्रश्नोत्तर की आवश्यकता है देखा जाता है कि जब सिपाही लोग कवायद करने के लिये तत्पर होते हैं तब अफसर उनको "रैडी„ [तत्पर हो] की बोली देता है यद्यपि वह पहले से तत्पर आते हैं परन्तु मुख्य बोली सुनने पर सर्वथा ध्यान देते हैं—गर्भिणी के मन का यह विचार करते हुए कि मेरी सन्तान मुझ जैसी सुन्दर उत्पन्न हो घी में प्रतिबिम्ब को ध्यान पूर्वक देखना मानो उस में चित्त एकाग्र करना एकबड़ी बातहै—इसका प्रभाव गर्भगत बालक के रूप पर प्रत्यक्ष पड़ता है—पश्चिमी डाक्टरों की परीक्षाओं और लेखों से यह बात प्रकटहै कि जो चित्र वा रूप गर्भिणी स्त्री के मन में बस जाता है उस चित्र के सदृश स्वरूप रखने वाला बालक उत्पन्न होता है—डाक्टर कौवन एम० डी० अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६१ पर लिखते हैं कि एक गर्भिणी स्त्री ने अपने कमरे में एक चित्र लटका रक्खा था और वह चित्र उस के मन में बस गया था प्रतिफल यह हुआ कि उस के उत्पन्न हुए बालक का अंग रंगरूप उस चित्र से सर्वथा मिलते थे—और उसी पृष्ठ पर डाक्टर कौवन लिखते हैं कि यदि स्त्री विशेष रंगरूप का बच्चा उत्पन्नकरना चाहती है तो उसको गम्भीरता से मन से यह इच्छा किसी विशेष चित्र अथवा रूप को दृष्टि में रख कर करनी चाहिये तो निस्सन्देह सन्तान वैसीही होगी—

यहां पर कोई ऐसी भी शंका कर सकताहै कि घी में ही स्वरूप क्यों न देखे! दर्पण में क्यों न देखले—इसके उत्तर में हम कहेंगे यद्यपि दर्पण में देखने से कोई हानि नहीं परन्तु घी में देखने से एक विशेष लाभ है जो कि दर्पणकी दशामें नहीं होसकता—

(१) घी में अवश्य ध्यान पूर्वक देखना पड़ता है और कुछ अधिक समय के पश्चात् मुख उत्तमता से दृष्ट होता है—उतनी देर मनमें उसी संस्कार को सोचने का उसे अधिक अवसर मिलेगा और यही प्रयोजन है।

(२) कोई कह सकता ह कि पानी अथवा मध्य दर्पण में देखनेसे भी यह उद्देश पूरा हो सकताहै फिर घी में देखनेकीक्या आवश्यकताहै। इसके उत्तरमें हम कहेंगेकि घीमें देखनेसे एकपन्थ दोकाज वाली बातसिद्ध होतीहै इस लिये घी को ही विशेषता देनी चाहिये—मुख देखते समय गर्म घी से जो भाप ऊपर उठैगी वह मूर्द्धा के लिये एक पुष्ट नस्वार (हुलास) का काम देगी—हवन में घी के जलने से मस्तिष्क, घी की भाप शोषण करने से महान् बल प्राप्त करता है—छठ मास में जब कि यह संस्कार किया जारहा है तब गर्भिणी के बालक का मूर्द्धा विशेषकर बनरहा है और उस गर्भ गत बच्चे को जहां बाह्य प्रकार से गर्भिणी के शिर में तेल आदि के लगाने और जूड़ा बांधने से तरावट और बल पहुँचाने की आवश्यकताहै वहाँ घी की निस्वार से आभ्यन्तरीय प्रकार से भी मस्तिष्कको शक्ति और प्रसन्नता पहुंचाने की आवश्यकता है इस लिये घी में मुख देखने से दो काम पूरे होगये एक तो घी की निस्वार लीगई दूसरे गर्भगत बालक के रूप के सुधार का यत्न कियागया।

अनेक मनुष्य यह शंका करसकते हैं कि स्त्री अपना ही रूप क्यों देखे ? इस का उत्तर यह है कि स्वभावतः स्त्री जोकि पुरुष की अपेक्षा अधिक रूपवती होती है इस लिये आवश्यकीय है कि वह अपनी ही सौन्दर्य्यता को देखे सुश्रुतकार भी यह मानते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों से सुन्दर होती हैं।

जब वह इस क्रिया को करचुके तब उसको अपनी सखियों के साथ हँसी खुशी की बातें करते हुए दो चार ग्रास उस खिचड़ी के खाने चाहिएँ यह खिचड़ी जो कि पुष्ट और आनन्ददायक है इस लिए इस के खाने की शिक्षा की गई है—यह खिचड़ी जो कि यज्ञ शेष है इस लिये इस में सुगन्धित और ओषधियों की भापभी शोषित होरही है इस लिये इस के एक दो ग्रास अवश्य उसके लिये एक बड़ी पुष्ट ओषधियों की गोलियों का काम देंगे—और हँसी खुशी के साथ खाने से यह भली प्रकार पचभी सकती है—जब कि गर्भिणी यह ग्रास खाचुके उसी समय अन्य स्त्रियें उस को यह आशीर्वाद दें—

"तू वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो—तू जीवित सन्तान उत्पन्न करनेवाली हो—तू जीवित रहने वाले की पत्नी हो,,—

यह आशीर्वाद मन के उत्साह को बढाता है—जिस को आशीर्वाद दियाजाय उस के मन में विचार आता है कि मैं यत्न करके अपने आपको इस आशीर्वादके अनुसार सिद्ध करूँ नहींतो लोग मुझे क्या कहेंगे! वह यह शोचतीहै कि यदि लोग मुझसे अमुक प्रकार की आशा रखतेहैं और वह इस लिये कि मुझमें उसके पूरा करनेकी योग्यताहै तो मैं क्यों न अपने आपको उनकी आशाओं के अनुसार सिद्ध करके दिखाऊं! और यश की भागी बनूँ—इस आशीर्वाद के अनुसार गर्भिणी के मन मे अवश्य ध्यान उत्पन्न होता होगा कि मैं वीर अर्थात् बलवान् सन्तान उत्पन्न करके दिखाऊँ—अपने स्वास्थ्य और बलको स्थिर रखती हुई अवश्य इस उद्देश्य में कृतकार्य होऊँ। वह अवश्य सोचती होगी कि मुझे गर्भ की विशेष प्रकार से चोट इत्यादि से रक्षा करनी चाहिये ताकि मैं जीवित सन्तानउत्पन्न करसकूं—वह अवश्य विचारती होगी कि मुझे प्रसवके समय साहस से

काम लेना और उचित भोजन या औषधियें सेवन करनी चाहियें ताकि मैं भी जीवित रहूँ सभा में अपने आपको इन आशाओं के अनुसार सिद्ध करने के लिये यत्न करना गर्भिणी का मुख्य काम होगा—संस्कारकी बड़ाई और गम्भीरता से संस्कारित होती हुई समाज अथवा ज्ञाति के आशीर्वाद के एक २ शब्द को बर्ताव में लाने के लिये गर्भिणी क्या २ यत्न वीर नारी के सदृश न करती होगी।

इस संस्कार पर एक दृष्टि

इस संस्कार की नींव इस सिद्धान्त पर स्थिर की गई है कि गर्भिणी स्त्री के विचार, मानसिकशक्तियें, कर्म आहार आदि सारी बातों का प्रतिबिम्ब गर्भ गत बच्चे पर हूबहू पड़ता है। यदि हम बालक के मस्तिष्क पर प्रभाव पहुंचाना चाहते हैं तो उसके लिये गर्भिणी के मस्तिष्क पर प्रभाव पहुंचाने की आवश्यकता है—बच्चे के मन को दृढ़ बनाने के लिये गर्भिणी के मन को दृढ़ और शान्त करना चाहिये- यदि बच्चा भलामानस शुद्धात्मा और ईश्वरभक्त उत्पन्न करना है तो गर्भिणी को उत्तम पवित्र और ईश्वरभक्त बनना चाहिये - यदि बालक को कलाकौशल का निर्माता और विशेष हस्त क्रिया में प्रवीण उत्पन्न करने का विचार है तो गर्भिणी की रुचि उसी प्रकारकी क्रिया और विचार की ओर लगानी चाहिये- यदि बच्चे को क्षत्री बनाना है तो गर्भिणी को फौज के कर्तव्य देखना और फौजी संस्कारों की ओर मन लगाना चाहिये—यदि बालक को ब्राह्मण बनाना स्वीकृत है तो गर्भिणी को वैसे ही संस्कारों को ओर रुचि रखना चाहिये संक्षेप यह है कि गर्भिणी के मुख्य २ अंगों से बच्चे के मुख्य २ अंग बन सकते हैं और उसके मन में मुख्य प्रकार के संस्कार होने से बालक भी उन संस्कारों वाला उत्पन्न हो सकता है—गर्भिणी अपना शारीरिक और मानसिक दायभाग अपने गर्भगत बच्चे को दे सकती है गर्भिणी स्त्री एक सांचा है जिस में कि बच्चा किसी विशेष स्वरूप में ढाला जा सकता है—गर्भिणी बच्चे की काया पलटाने के लिये एक बड़ा साधन है — जिस प्रकार से कि उत्पत्तिसे मिले रंगोरूपकी आयु भर पूर्णता होती रहतीहै उसी प्रकारसे गर्भकेमानसिक संस्कार लेकर जो बच्चा उत्पन्न हुआ है वह आयू भर उन संस्कारों को पूर्ण करता रहेगा। जिसकी माता ने गर्भ के नौ मास में तपस्या की अर्थात् दुःख सुख का सहन किया है उसका बच्चा अवश्य उत्तम श्रेणी का वीर और शूर उत्पन्न होगा—उसका स्वभाव अवश्य सहनशील होगा—एवं यथार्थशिक्षा गर्भ से आरम्भ होती है और उस का प्रभाव दृढ़ होता —स्कूलों—कालिजों की संथा बच्चे भूल सकते हैं परन्तु जो संथा कि गर्भ की अवस्था में माता के द्वारा प्राप्त हुई है उसको कोई भी भुला नहीं सकता इस लिये सन्तान को पूर्ण आर्य्य बनाने के लिये आवश्यक्ता है कि हम इन दो संस्कारों के मूल कारण को जानते हुए स्त्रियों पर इसकी महिमा प्रकाश करें ताकि वह गर्भ की दशा में अपनी सन्तान को उत्तम बनाने के लिये यत्न कर सके—

(शंका) कोई मनुष्य यह शंका कर सकता है कि जब शारीरिक आत्मिकदाय-

भाग बच्चा माता पिता से प्राप्त करता है और माता के वश में है कि उसको विशेषगुण की ओर रुचि रखने वाला उत्पन्न कर सके तो फिर जीव के अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार देह को प्राप्त होने का सिद्धान्त ठीक न रहेगा।

(उत्तर) इसमें सन्देह नहीं कि बच्चा शारीरिक आत्मिक दायभाग माता पिता से प्राप्त करता है और माता गर्भकी अवस्थामें अपने मनको विशेष ओर लगातीहुई बच्चेको भी विशेषसंस्कारोंकी ओर रुचि रखनेवाला उत्पन्न कर सकती है-परन्तु इससे गर्भगत जीव के अपने पूर्वकर्म्मों के संस्कारों का नाश नहीं होजाता बरन उनकी पुष्टि होती रहती है—क्या हम नहीं देखते कि एक ही माता पिता के कई बच्चे होते हैं परन्तु वे सब ब्राह्मण या क्षत्री नहीं होते यदि केवल माता पिता के अधिकार में ही होता तो वह सब को ब्राह्मण ही बना देते वास्तव में बात यहहै कि जीव लिङ्गशरीर के साथ पूर्वजन्म के संस्कारों को लेता हुआ किसी गर्भ विशेष को प्राप्त होता है-गर्भ विशेष से अभिप्राय यह ह कि उस गर्भ को प्राप्त होता है जहां उसको अपने पूर्वजन्म के संस्कारों को उन्नत करने का अवसर मिलसके—जिस प्रकार दुर्गन्धि के कीड़े कभी फूलों में नहीं पाये जाते बरन मोरियों की दुर्गन्धिकी ओर आकर्षण किये जाते हैं-उसी प्रकार शुभ संस्कारों के रखने वाले उस गर्भ को प्राप्त होते हैं जहां कि उन को माता पिता के यत्नों द्वारा अपने संस्कारों की पूर्णताके लिये सहायता मिलती रहे।

जिस प्रकार के गर्भगत जीव के कर्म होते हैं उसी प्रकार की इच्छायें गर्भिणी के मनमें स्वाभाविक उत्पन्न होती रहती हैं और उन इच्छाओंको उत्तमतासे पूरा करने से गर्भगत सन्तान पर प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होता है-कल्पना करो कि कोई जीव क्षत्री बनने के संस्कार लेकर मराहै वह ईश्वरीयनियमानुसार स्वाभाविक उस गर्भमें आकर्षित कियाजायगा जहां उसको इन संस्कारों की पूर्णता के लिये सहायता मिलसके जिस समय वह विशेष माता के गर्भ में निवास करेगा उस समय से माता के संस्कार क्षत्रियत्व धर्म्म की ओर अधिक झुकजायँगे और स्वाभाविक माता अनोखी इच्छाओं का प्रकाश करती हुई उनकी पूर्णता के लिये यत्न करेगी यदि कोई मनुष्य उस समय उसकी माताको ब्रह्मविद्या का उपदेश सुनावे इस विचार से कि इस का बालक ब्राह्मण संस्कार लेकर उत्पन्न होसके तो निस्सन्देह माता कानोंसे तो वह उपदेश सुनलेगी परन्तु वह उपदेश उसके मनमें कदापि नहीं बसेगा इसके विपरीत यदि वह दैवात् भी महाभारत के युद्ध की कथा सुने तो वह एक बार की सुनीहुई कथा उसके मनमें बस जायगी और रात दिन स्त्रीको वीरोंकी महिमा ही बोधन होता रहेगी यही कारणहै कि किसी समय श्रेष्ठ मातापिताकी सन्तान दुष्ट और दुराचारी उत्पन्न होती है। इसी कारण से कभी कभी साधारण श्रेणी के माता पिता की सन्तान असाधारण उत्तम शक्तियों को लेकर उत्पन्न हुआ करती है—

महामारी की ऋतु में गंदे परमाणु उस मनुष्य में प्रवेश करजाते हैं जिस में कि उसको धारण करने की योग्यता विद्यमान है—यदि यह परमाणु उस मनुष्य में जो कि अति पुष्ट होने के कारण उनको धारण करने की रुचि नहीं रखता, प्रविष्ट हो

जाय तो वह उसको निकाल देगा ठीक इसी प्रकार से यदि बालक ने क्षत्री बननाहै तो मन की इच्छायें इस प्रकार की होंगी जोकि वीरों की हुआ करती हैं और जो संस्कार अथवा कर्म्म इन इच्छाओं के अनुकूल होंगे उनको माता का शरीर मन और मस्तिष्क शोषण करेगा वह इस के मनमें बस जायेंगी—परन्तु इस के विरुद्ध जो संस्कार माता के मस्तिष्क में प्रविष्ट होंगे वह मानो निकल जायँगे—एवं माताकी मनकी रुचि का अवलोकन करना और उसको उचित रीति से पूरा करने के लिये यत्न करने के अभिप्राय से ही ये संस्कार रक्खेगये हैं—इस पूर्णता के मध्य में यदि कोई विपरीत अथवा भ्रष्ट संस्कार भी माताके कान में पड़गया तो वह आपही इसको स्वाभाविक निकाल देगी और जो संस्कार उस के मनमें बसजायगा उसी प्रकार का वह बच्चा उत्पन्न करसकेगी—क्योंकि विशेष संस्कार माता के मन में विशेष करके गर्भ की अवस्था में बसता है और नहीं उसका कारण यहीं है कि माता के मन में विशेष संस्कार और मानसिक विचार गर्भगत जीव के कर्मानुसार ही उत्पन्न होते रहते हैं—जिस माता ने कि अबकी बार क्षत्री बच्चा उत्पन्न किया वही माता दूसरे गर्भ की अवस्था में ब्राह्मण बच्चा उत्पन्न करसकती है—जब स्त्री के गर्भ में नर बच्चा उत्पन्न होता है तो उस समय उसका रंग ढंग और भाव कुछ अन्य प्रकार के होते हैं और जब कन्या होतो और प्रकार के होते हैं—दोनो अवस्थाओं में विरोध का कारण बाह्य शिक्षा माताकी नहीं होसकती प्रत्युत गर्भगत बच्चे का अभ्यन्तरीय प्रभाव है—अतएव जो लोग यह शंका करते हैं कि इससे पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता है उन के लिये हमने सिद्ध करदिखाया कि इससे पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि होती है इन ही बातों के सम्बन्ध में महर्षि धन्वन्तरि जी के निम्नलिखित प्रमाण प्रत्येक जिज्ञासु को आदरणीय हैं—

"जीवात्मा सूक्ष्म लिंग शरीर के साथ सत्—रज—तम गुणोंसे युक्त देव असुर आदि अनेक भावों से युक्त तत्काल वायु से प्रेरणा किया हुआ गर्भ में प्रविष्ट होकर स्थित होता है,,

(सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३ सूत्र ३)

"द्विहृदया (दोहृदयवाली) स्त्री की इच्छित वस्तु उसको न मिलने से कुबड़ा लँगड़ा—विक्षिप्त—मूर्ख—बौना—अन्धा बालक स्त्रा के उत्पन्न होता है इस लिये गर्भिणी स्त्री जिस पदार्थ की इच्छा करे उस को वही पदार्थ अवश्य देना चाहिये इच्छित पदार्थ के मिलजाने पर दृढ़—दीर्घायु उत्तम बच्चा उत्पन्न होता है,,

(सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३ सूत्र २१)

"जिन २ इन्द्रियों के अर्थों को गर्भिणी स्त्री भोगने की इच्छा करे उनके न मिलने से गर्भ में हानि पहुचती है इस भय से वैद्य को चाहिये कि उन २ सब भोगों को प्रकाश करादे—(सूत्र २२)

"जब गर्भिणी को इच्छित पदार्थ मिलजाता है तो गुणयुक्त सन्तान का जन्म होता है और यदि उसको वह पदार्थ न मिले जिस की कि उसे प्रबल इच्छा है तो गर्भ गत बालक अथवा स्वयम् गर्भिणी को कष्ट का भय है,, (सूत्र० २३)

"जिन २ इन्द्रियों के भोगों को गर्भिणी प्राप्त न हो तो बालक की उन्ही इन्द्रियों में हानि होती है,, (सू० २४)

राजसं दर्शने यस्या दोहदं जायते स्त्रियाः । अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २५ ॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दोहदात् । अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २६ ॥

"जिस गर्भिणी का दोहद (मन) राजा के दर्शन में होता है तब उस के यहां धनवान् बड़े भागवाला पुत्र उत्पन्न होता है,, (२५)

अच्छे २ उत्तम वस्त्रों तथा आभूषणों में दोहद [मन] होने से आभूषणों की इच्छा करने वाला उत्सुक बच्चा उत्पन्न होता है,, (२६)

आश्रमे संयतात्मानं धर्म्मशीलं प्रसूयते । देवता प्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २७ ॥ दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते । गोधा मांसाशने पुत्रं सुषुप्तं धारणात्मकम् ॥ २८ ॥

जिस गर्भिणी का मन योगियों, यतियों के आश्रम में हो उस के यहाँ धर्म्मशील बालक उत्पन्न होता है और जिनका मन महापुरुषों के चित्रों में हो उन के यहां वैसाही बालक जन्म लेता है (२७)

"जिस गर्भिणी का मन सर्प आदि दुष्ट जीवोंके देखने को चाहे उसके यहां हिंसक बच्चा उत्पन्न होता है—और जिसका मन गोह के मांस खाने को चाहे तो उसके यहां अति सोनेवाला बच्चा जन्म लेता है" (२८)

अतोनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौहृदम् ।
शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ ३७ ॥

"इन के अतिरिक्त जो नहीं कहे हैं उन असंख्यात पदार्थोंपर यदि गर्भिणी का मन होवे तो उनके शरीर आचार और शील के समान बालक उत्पन्न होवे,, (३७)

कर्मणा चोदितं जंतो र्भवितव्यं पुनर्भवेत् ।
यथा तथा दैवयोगाद्दोहदं जनयेद्धृम् ॥ ३२ ॥

"कर्म्म की जिस प्रकार प्रेरणा होती है उस के अनुकूल ही होनहार होता है और

दैव योग से उसी के अनुसार ही गर्भिणी स्त्री के मन में इच्छायें उत्पन्न होती हैं। जैसे किसी प्राणी ने दुःखदायी उत्पन्न होना है तो उसकी माता का मन दौर्हृद काल में सर्प आदि दुःखदायी जीवधारियों के देखने को चाहेगा—

(सुश्रुत सूत्र स्थान अ०३ सू०३२)

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते—

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्ति गुणागुणाः।

ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्म्माधर्म्मनिमित्तजाः ॥ ४२ ॥

"अंग प्रत्यंग का उत्पन्न होना यह स्वभाव से ही होता है—परन्तु इस अंग प्रत्यंगकी उत्पत्ति में जो २ गुण दोष होते हैं वे उस गर्भ के धर्माधर्म पर निर्भर हैं"; अर्थात् गर्भ पुण्यात्मा होगा तो शरीरकी बनावट उत्तम श्रेणी की होगी—यदि अधर्मी होगा तो लँगड़ा—अन्धा विकृत अंगवाला उत्पन्न होगा, (४२)

भाविताः पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः।

भवन्ति सत्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः॥

कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे।

अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान्॥

"पूर्वजन्म में जिन मनुष्यों ने निरन्तर शास्त्र अभ्यास किया है वह इस जन्म में सात्विक वृत्ति वाले होते हैं और उन्हें पूर्वजाति का स्मरण भी रहता है अर्थात् पूर्व जन्ममें प्राणी के जैसे संस्कार होते हैं वैसे ही इस देह में स्वयम् प्रकट होते हैं—

"प्राणी ने जैसे कर्म किये हैं वे कभी निवृत्ति नहीं होते जहां जन्म लेताहै वहां संग में ही रहते हैं और पूर्व देह में जिन गुणों का अभ्यास उसने किया है वही गुण उसको प्राप्त होते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि पुंसवन आदि संस्कारों की आवश्यकता नहीं—बच्चे अपने पूर्व जन्मकर्मानुसार स्वयम् हीं उत्तम संस्कार लेकर उत्पन्न होंगे वह भी भूल पर हैं क्योंकि प्रारब्ध की सिद्धि के लिये भी पुरुषार्थ की आवश्यकताहै। वेद में लिखा है कि सर्व मनुष्यों को शिक्षा देनी चाहिये और वेद के पढ़ने सुनने का अधिकार प्रत्येक को प्राप्त है इसके अनुसार हम सब प्रकार के बच्चों को पाठशाला में प्रविष्ट कर सकते हैं और जिनको पढ़ाने परभी विद्या न आवे उनको हम शूद्र कहसकते है—परन्तु विना पढ़ाये हुये हमारे पास कोई रीति किसी विशेष मनुष्य की विद्या सम्बन्धी अयोग्यता जानने की नहीं है। जब सर्व प्रकार के लड़के शालामें पढ़रहे हैं और प्रत्येक पर विद्या का प्रभाव, आचार्यका समान पहुँच रहा है उस दशा में जो पूर्व

जन्मके खोटे संस्कार रखते हैं, वह उस विद्या के प्रकाश को ग्रहण न करते हुए शूद्रत्व का प्रकाश कर सकते हैं—जिस प्रकार सब को यह शिक्षा देनी आवश्यकीय है उसी प्रकार सब बच्चोंको माता पिताकी ओर से गर्भ में उत्तम सहायता मिलनी आवश्यकीय है, जो बच्चे कि पर्व जन्म के उत्तम संस्कार नहीं रखते वह उस गर्भ की सहायता से पूरा लाभ न उठाते हुए शूद्रवत् रहसकते हैं, परन्तु जो उसप्रभाव से सहायता प्राप्त करसकते हैं उनको यदि ये संस्कार न किये जायँ तो किसप्रकार लाभपहुँच सकता है! ईश्वरीय नियम यह है कि सूर्य्य सब के लिये समान रीति पर प्रकाश पहुँचाये, परन्तु जिनकी दृष्टि में विकार है वह उस प्रकाश को भली भांति ग्रहणनहीं कर सकते। एवं कई अन्धों के कारण सूर्य्य सब के लिये प्रकाश देना बन्द नहीं कर सकता इस लिये गर्भगत बच्चों की भलाई के लिये माताओं को सदैव यत्नवान् रहना चाहिये और सम्भव है कि इन यत्नोंके होने से भी अनेक बच्चे अयोग्य उत्पन्न हों—यद्यपि अन्धा सूर्य्य के प्रकाश से देखने का काम न ले सके परन्तु उसके शरीरमें गर्मी तो सूर्य्य का प्रकाश बराबर पहुँचाता है—इसी प्रकार से अनेक गन्दे संस्कार वाले बच्चे उत्तम श्रेणी के योग्य न हो सकें परन्तु साधारण रीति पर संस्कारका स्वास्थ्यरक्षक प्रभाव उनके चालचलन पर अवश्य पड़ेगा, वह उस अवस्थासे अवश्य उत्तम उत्पन्न होंगे जब कि उनका कोई भी संस्कार न किया जाय, इस लिये माताओंको गर्भाधान पुंसवन आदि संस्कार अवश्य प्रेम पूर्वक करने चाहियें—

इसी कारण प्राचीन आर्य लोगों ने ये संस्कार प्रत्येक के लिये करने निश्चित ठहराये थे—

एवं जहां हमने देख लिया कि बच्चे अपने पूर्व जन्मोंके संस्कारोंके अनुकूल विशेष २ गर्भको प्राप्तहोते हुए विशेष योग्यता लेकर उत्पन्न होतेहैं वहां हमने यहभी देख लिया कि गर्भिणी को अपनी सन्तान उत्तम बनाने के लिये इन संस्कारों के करने का पुरुषार्थ कदापि छोड़ना न चाहिये—जो कि इन संस्कारों का करना प्रत्येक के लिये आवश्यकीय है इसी लिये वेद में इन दोनों संस्कारों के मूल नियमों का विधान मिलता है जिस से सिद्ध होता है कि गर्भिणी कहाँ तक गर्भगत बच्चे पर शुभ प्रभाव डालनेका साधन हो सकती है ॥

सुश्रुत के निम्नलिखित प्रमाण से भी इसी बात की पुष्टि होती हैं—

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारहिते रताः।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥ ५१ ॥
(सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३)

अर्थः—जो गर्भिणी स्त्रियां विद्वान् और ब्राह्मणों का सत्संग करने वाली हैं जो पवित्रता और सदाचार से रहने वाली हैं—उनकी सन्तान महा गुणवान् होती है, यदि इनसे विपरीतआचरणहोगी तो सन्तान भी साधारण ही होगी—(सुश्रुत) वेद के इसी सिद्धांत की विशेष पुष्टि महर्षि मनुजी भी इस प्रकार करते हैं:—

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सुते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजा विशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः॥
(मनुः अ० ६ श्लो० ६)

अर्थ—गर्भवती स्त्री जिस पदार्थ अथवा दृश्यको मन में बसा लेतीहै उसकी जैसी आकृति होतीहै उसी प्रकारकी वह सन्तान उत्पन्न करतीहै—सन्तान को विशेष रीति पर शुद्ध उत्पन्न करने के लिये आवश्यकीय है कि स्त्रियों की रक्षा में पूर्ण प्रयत्न कियाजाय ———

[१] एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमान मिन्द्रम्। तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः॥
[अथर्व० का० ३ अनु० २ सू० १० मं० १२२]

अर्थ—नौ सौर्य मासकी तपस्या से जो युक्त है वह महान् ऐश्वर्य वाला गर्भहै उसको प्राप्त हो उस गर्भ से विद्वान् लोग शत्रु और दस्युओं को मारने वाले उत्पन्न होते हैं इस मंत्र में बतलाया हैकि यदि माता गर्भ के नौ महीनों में सुख दुःख के सहारने का स्वभाव रखती होगी और तपस्याके कामों को करती रहेगी तो वह गर्भभी तपस्यायुक्त होगा और उससे उत्पन्न हुआ बच्चा अवश्य क्षत्री होगा--

पुरुदस्मो विषुष इन्दु रन्तर्महिमान मानञ्ज धीरः। [यजु० अ० ८ मं० ३०]

यह मन्त्र गर्भ की व्यवस्था का बोधकहै इसमें दर्शाया गया है कि धीर पुरुष अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ की (आनञ्ज) कामना करे--

यह मंत्र बतलाता है कि गर्भ माता के कर्मों के संस्कारों को प्राप्त होने के योग्य है और इस बात का विचार रखते हुए स्त्री को विशेष यत्नसे शुभकर्म्म करने चाहिये ताकि उत्तम संस्कार युक्त सन्तान उत्पन्न होसके--

अव भृथ निचुम्पुणः निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवै र्देव कृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि देवानाᳪसमिदसि॥ (यजु० अ० ८ मं० २७)

हे (अवभृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (निचुम्पुणः) और मन्द २ चलने वाले पति आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करने वाले (असि) हैं तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) है हे (देव) सब से अपनी जय चाहने वाले (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के

साथ वर्तमान आप जो मैं (देव कृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध को (अवयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध देनेवालों के (रिषः) धर्म छुड़ाने वाले कामसे मुझे (पाहि) दूर रख।

इस मंत्र से यह प्रकट होता है कि:—

प्रथम—गर्भिणी स्त्री को पुरुष गमन करने की इच्छा से बचना चाहिये—

द्वितीय—पुरुष को भी गर्भिणी गमन कदापि नकरना चाहिये और जितेन्द्रिय होकर रहना चाहिये—

तृतीय—पुरुष को गृस्थाश्रम में धन संचय करनाचाहिये ताकि वह गृहकार्य की आवश्यकता के पूर्ण करने के लिये किसी का ऋणि न हो और तेजस्वी बना रहे—

महर्षि धन्वन्तरी जी ने निम्नलिखित कामों से गर्भिणी को बचने की शिक्षा की है उन में से एक (व्यवाय) अर्थात् मैथुन (पुरुष से समागम करना भीहै) वह बतलाते हैं कि:—"गर्भवती प्रसव होने के समय तक व्यायाम अतिपरिश्रम—मैथुन, अपतर्पण अर्थात् वह पदार्थ जो तृप्तिकारक न हों किन्तु दाह आदि जनक हों—और अति कृष्ण (बड़ी वमन लानेवाली अथवा रेचक या दुर्बल करने वाली वस्तु) दिन को सोना रात को जागना शोक—यान (सवारी) पर बैठना—डरना—बल से खांसना जकड़कर बैठना—समय से पहिले तैलका मर्दन, रक्त निकालना—और मल मत्रादि का रोकना इन सब बातों को स्त्री न करे (सुश्रुत अ० ३—१५)

(विवरण) समय से पहिले तैल के मर्दन से प्रयोजन यह है कि सुश्रुतकारने आठवें, नवें, महीने में गर्भिणी को तैल मलने की आज्ञा दी है उससे पहिले तैल मलने का निषेध यहां पर किया गया है—जो लोग तर्पण से मृतकों को पानी देना माने हुए हैं उनको जानना चाहिये कि सुश्रुतकारने अपतर्पण शब्द से क्या अभिप्राय लिया है:—जैसे:—तदा प्रभृत्येव व्यायाम व्यवायमपतर्पणमिति......(३—१५) आयुर्वेद-मनु और वेदके प्रमाण देनेके पश्चात् अब हम पश्चिमी देशोंके आर्य्य विद्वानोंके प्रमाण इसी विषय की पुष्टि में कि माता के संस्कार कर्म इत्यादि का प्रभाव गर्भगत बच्चे पर होता है लिखेंगे—

पश्चिमी देशों के बड़ विद्वानों ने इस बात को तो अनुभव कर लिया है कि माता का प्रभाव बच्चे पर गर्भ दशा में पड़ता है परन्तु वह सुश्रुत के सदृश अभी तक यह नहीं बतला सकते कि बच्चे अपने पूर्व जन्म के कर्म अनुकूल ही उत्तम अधम गर्भों को प्राप्त होते हैं—

डाक्टर फोलर महाशय का कथन है कि गर्भ के पहिले पाँच मास तक शरीर के शारीरिक साधन उन्नति पाते हैं—सुनीति—बुद्धि की उन्नति पांचवें मास के आरम्भ में होती है अतएव गर्भ के पांचवें या छठे महीनेमें जब कि बच्चे के मस्तिष्ककी चोटी बन रही है गर्भिणी को मस्तिष्कीय काम करना चाहिये—

डाक्टरकौवन महाशय लिखतेहैं गर्भिणीगमन से न केवल माता के विचार गन्दे होते हैं वरन गर्भगत बच्चे पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ता है यहांतक कि पांच वर्ष की आयु में हस्तमैथुन इत्यादि करने वाले बच्चे इसी कारण से संसार में उत्पन्न होते हैं—जैसा कि वह अपने सभ्य देश एमरीका के विषय में इस प्रकार लिखते हैं "हमारे नगर अथवा देशके किसी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक या अध्यापिका से पूछो तो पता लगेगा कि सर्व बालकों में हस्तमैथुन का स्वभाव कुछ न कुछ पाया जाता है— लड़के लड़कियां दोनों इस में रत हैं और अद्भुत यह कि बच्चे जो कि अभी पूरे पांच वर्षके भी नहीं हुए वह इस दुष्ट स्वभाव में लिप्त पकड़े गये" (पृष्ठ २११)

"एक स्त्री गर्भवती हुई—गर्भ के दिन से उसका यत्न गर्भपात का रहा बच्चा जो उत्पन्न हुआ वह बड़ा भयानक था—पांच वर्ष की आयु में अपने साथियों को जान से मारडालने का यत्न करता हुआ यह बच्चा पकड़ा गया" (पृष्ठ २१५) यही डाक्टर पृष्ठ (१४४) पर लिखते हैं कि संसार में जो बच्चे उत्पन्न होते हैं वह बड़े होकर जिस काम को करते हैं उस में प्रायः उनकी रुचि नहीं होती और यही कारण है कि संसार में उत्तम श्रेणीके विद्वान् प्रत्येक व्यवसाय में कम मिलतेहैं और वह उपदेश करते हैं कि माता पिताको (लाइफ जीनियस्)पर बर्ताव करना चाहिये अर्थात् सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिये—वा जिस व्यवसाय में रुचि रखनेवाला वह बच्चा उत्पन्न करना चाहते हैं उस व्यवसाय के लोगोंसे स्त्री का सत्संग होना चाहिये ताकि स्त्री की उस कृत में रुचि होने से बच्चा भी उस कृत के लिये उत्तम मस्तिष्क और रुचि रखनेवाला उत्पन्नहो—फिर पृष्ठ १५५ पर लिखतेहैं कि "कवि—उपन्यास लेखक—आविष्कार करनेवाले—स्कूलकी शिक्षा से बनाये नहीं जासकते वह जन्म से ही इन बातों में अग्रसर बुद्धि लेकर उत्पन्न हुआ करते हैं

फिर लिखते हैं कि "माता पिता को एक उत्तम चित्र लेकर कमरे में लटका छोड़ना चहिये और पुरुष स्त्री दोनों को इस चित्रकी प्रशंसा करते हुए स्त्री के चित्त पर वह चित्र बिठलादेना चाहिये ताकि बालक भी वैसाही उत्पन्न हो (पृष्ठ १६१)

भारतवर्ष में प्रायः रीति है कि गर्भिणी स्त्री को किसी की मृत्यु का समाचार नहीं सुनाते—उसको श्मशानभूमि में जाने नहीं देते— अकेले नहीं छोड़ते ताकि डर न जाय—सर्पादि का चित्र देखने को नहीं देते—यदि किसी नातेदार का दिवाला निकलगया हो अथवा और किसी प्रकार का भयानक कष्ट आग लगने आदि का कहीं पर हुआ हो तो उस के समाचार तक नहीं पहुँचाते—इसी विषय में डाक्टर कौवन एम०डी० पृष्ठ १६२ परलिखतेहैं कि चाहे कैसाही भयभीत काम होजाय, जैसे गृह जल जाय अथवा दिवाला निकल जाय तो उस कष्टको हास्यजनक वार्ताओं से टाल देना चाहिये ताकि कहीं ऐसा न हो कि गर्भिणीके चित्तपर शोकबैठजाय और बच्चा दुर्बल अथवा बुरा उत्पन्न हो—

पृष्ठ १६४ पर यही डाक्टर महाशय लिखते हैं कि पश्चिमी देश निवासी जो कि

धन के पूजक हैं इस लिये सन्तान को उत्तम बनाने के लिये यत्न नहीं करते—दिन रात धन्धों में लगे रहतेहैं यहां तक कि वह स्वास्थ्यका भी ध्यान नहीं रखते—

द्वितीय,परशराम,नैपोलियन बोनापार्ट की माता रीमूलीनी जब कि वह गर्भवती थी तो अपने पति के साथ संग्रामभूमि में जाया करती थी और इसी कारण उसने पूरा क्षत्री बच्चा उत्पन्न किया— नैपोलियन वीर के मन में गर्भ की अवस्था में ही युद्ध के संस्कार जमगये थे इस लिये बड़े होकर उसने उन संस्कारों को पूर्ण करते हुए पश्चिमी देशों को विस्मित करदिया।

डाक्टर कौवन कविताकी रीति पर एक स्थलपर यह भी लिखते हैं कि—

"जो संशोधन का काम गर्भ के नौ महीने में माता करसकती है वह सृष्टि के सारे संशोधक समाज चाहे वह शिक्षा विभाग के हों अथवा नशीलीवस्तु नाशक। मिल कर भी नहीं कर सकते,डाक्टर ट्राल एम०डी०नेब्रूक आदि कई अन्य डाक्टरों के प्रमाण से लिखा है कि गर्भवती माताके तिल आदि के चिन्ह सन्तान में जासकते हैं जब कि माता गर्भके दिनों मे विशेष प्रकार से इस के लिये इच्छा करे-जिन बातों का गर्भिणी के मन-पर प्रभाव पहुँचताहै उसी प्रकारके विचारोंके संस्कार सन्तान लेकर उत्पन्नहोतीहै-जैसे यदि माता डरती रही है तो सन्तान अवश्य डरपोक उत्पन्न होगी विस्तार भय से हम अन्य पश्चिमी डाक्टरों के प्रमाणनहीं देसकते। लूईकून, निकल्सन आदि अनेक डाक्टर इसी बात की पुष्टि करते हैं।

भूगोल के सब देशों की स्त्रियां केशक्यों रखती हैं!

स्त्री को गृहस्थाश्रम में कई बार गर्भ धारण करना है और जब २ वह गर्भिणी होगी तब २ उसका सीमन्तोन्नयन संस्कार होगा वा किसी कारण कभी कोई न भी करेगा तो भी जो प्रभाव केशयुक्त होने के कारण स्त्री स्वसंतान पर डाल सकेगी वह उस दशा में जब वह स्वयं मुंडित हो, नहीं डाल सकती। इस लिये प्राचीनकाल में सर्व नारीमात्र केश धारण करना संतान के हितार्थ उचित समझती थी एक समय था कि सीमन्तोन्नयन संस्कार के नियम पृथ्वी की सब स्त्रियों तक पहुँच चुके थे और सर्व स्त्रियां आर्य्य और उनके पति आर्य्य थे। काल की विकरालगति से अब आर्य्या बहिनें एक दूसरे को भूल गईहैं किन्तु सीमन्तोन्नयन संस्कार का प्रभाव आज तक भी व्यवहार से वह दिखा रही हैं।

भारतवर्ष में कभी कोई सधवा स्त्री बाल नहीं मुडाती। उत्तरहिंद में बूढी विधवाएं कभी यह सोचकर कि उनको सन्तान नहीं उत्पन्न करनी मुंडा डालती हैं जैसे कि संन्यासी पुरुष मुंडाते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि गृहाश्रममें आने वाली अथवा उस में रहने वाली कोई भी स्त्री नहीं मुंडाती। यहाँ भी अनेक विधवाएँ कभी केश नहीं मुंडाती। दक्षिण आदि देशों में युवति विधवाओंके भी केश मुंडे जाते हैं यह बहुत बुरी चाल है कि जो बन्द होनी चाहिये। इति शुभम्।

जातकर्म-संस्कार

इस का प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार है ॥

सोष्यन्तीमाद्भिरभ्युक्षति० ॥ पार०गृ०सू०का०१क०१६सू०१

इसी प्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है ॥

जब प्रसव होने का समय आवे तब निम्न लिखित मन्त्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे * —

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ य० अ० ८ । मं० २८ ॥

इस से मार्जन करने के पश्चात् ।

ओं अवैतु पृश्नि शेवलꣳशुने जराय्वत्तवे । नैव माꣳसेन पीवरीं † न कस्मिंश्चनायतमव जरायु पद्यताम् ॥ पार०गृ०सू० का० १ क०१६ सू० २ ।

इस मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे ।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत् ॥ आश्व० गृ० सू० अ०१ क०१५ सू०१ ।

---

* गर्भिणी का पति, मार्जन जपादि करता है ।

† "पीवरी„ ऐसाही पाठ पार० गृ० सू० मेंहै परन्तु व्याख्याकारोंने "पीवरि„ सम्बुद्ध्यन्त व्याख्या की है अतः "पीवरि„ ऐसा होना चाहिये।

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्रीलोग बालक के शरीर का जरायु पृथक कर मुख, नासिका, कान, आँख आदि में से मल को शीघ्र दूरकर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिताके गोद में बालक को देवे, पिता जहाँ वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बंधन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पोंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना, जो प्रसूताघर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार से कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुंड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर घृतादि वेदी के पास रखके हाथ पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित * के लिये कुण्ड के दक्षिणभाग में रक्खे उस पर पुरोहित उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पद के स्वीकार के लिये बोलेः—

ओम् आ वसोः सदने सीद ॥ तत्पश्चात् पुरोहितः—

ओं सीदामि ॥

बोल के आसन पर बैठ के पूर्व लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म०" इत्यादि ३ मन्त्रोंसे वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पूर्व लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहुति आहुति ४ चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति देनी तत्पश्चात्:—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति । तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम् । सꣳराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा । इदं संराधिन्यै । इदन्न मम ॥ ओं विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत् । परेहि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा । इदं धात्रे । इदन्न मम

साम० वे० मन्त्र ब्राह्मण प्र० १ ख० । ५ । म० ६ । ७ ।

इन दोनों मन्त्रों से दो आज्याहुति कर के पूर्व लिखे प्रमाणे वामदेव्य गान कर के पूर्व लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करे तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो उससे बालक की जीभपर—

* धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि की पूर्णरीति से जाननेहारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदप्रिय पूजनीय सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।

"ओ३म्"

यह अक्षर लिख के उस के दक्षिण कान में "वेदोसीति,, तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा २ चटाये:—

ओं प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥ १ ॥ आश्व० अ० १ कं० १५ सू० १ ॥ मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते । मेधां ते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ॥ २ ॥ सामवेद म० ब्रा० प्र० १ ख० ५ म० ६॥ ओं भूस्त्वयि दधामि ॥३॥ ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥ ४ ॥ ओं स्वस्त्वयि दधामि ॥ ५ ॥ ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥ ६ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० ४ ॥ ओं सदसस्पतिम-द्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिष ँ स्वाहा ॥ ७ ॥ यजु० अ० ३२ म० १३ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रोंसे सात बार घृत मधु प्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और जवको शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ासा लेके—

ओम् * इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम् । सा० म० ब्रा० अ० १ ख०५मन्त्र८॥

इस मन्त्रको बोलके बालकके मुखमें एक बिन्दु छोड़ देवे यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है † सब का नहीं । पश्चात् बालकका पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले:—

ओं मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। मेधान्ते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ १ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ क० १५ सू० २ ॥ ओं अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥ ओं सोमऽआयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन० ‡ ॥३॥ ओं ब्रह्मऽआयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥ ४ ॥ ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥ ५ ॥ ओं ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन०॥ ६ ॥ ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ७ ॥ ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥ ८ ॥ ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० ५ ॥

---

* इय माज्ये दमन्न मित्यपि पाठ उप लभ्यते ।
† देखो, गोभिलीय गृ० सू० ०२ का० ७ सू० १६
‡ यहां पूर्व मन्त्र का शेष भाग [त्वा०] इत्यादि मन्त्रों के पश्चात् बोले ।

इन नव मन्त्रों का जप करे इसी प्रकार बायें कानपर मुख धरे येही नव मन्त्र पुनः जपे इस के पीछे बालक के कन्धोंपर कोमल स्पर्श से हाथ धर अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझ न पड़े ऐसे धर के निम्न लिखित मन्त्र बोले:—

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ १ ॥ ऋ० मं० २ सू० २१ मं० ६। अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसेधा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्रशिप्रिन् ॥ २ ॥ ऋ० मं० ३ सू० ३६ मं० १०। ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० १८ ॥

इन तीन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात्—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० ७।

यजु० अ० ३ मं० ६२।

इस मन्त्र का तीन वार जप करे तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठा ले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जा के:—

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसिश्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतम् ॥ १ ॥ पार० गृ० स० का० १ क० १६ सू० १७।

इस मन्त्र का जप करे तथा:—

यत्ते सुसीमे हृदयँ हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्येह नाम माहं पौत्रमघँरिषम् ॥ २ ॥ इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती। यथायन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥३॥ यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयँ श्रितम्। तदहंविद्वाँस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघँ रुदम् ॥४॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख० ५ मं० १०—१३ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे।

कोसि कतमोस्येषोस्यमृतोसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥१॥ स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रेत्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु, मासा स्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥ २ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख० ५ मं० १४—१५ ॥

इन मन्त्रों का पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे पुनः—

अङ्गादङ्गात्सꣳस्रवसि हृदयादधि जायसे । प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जव मे यावदायुषम् ॥ १ ॥ अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे । वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव । आत्मासि पुत्र मामृथाः सजीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ४ ॥

सा० म० ब्रा० प्र१ ख ० ५ म ० १६—१८

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिरका आघ्राण करे अर्थात् सूंघे इसी प्रकार जब परदेश से आवे वा जावे तब २ भी इस क्रिया को करे जिससे पुत्र और पिता माता में अति प्रेम बढ़े ।

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः ।

सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरत् ॥ १ ॥

पार० गृ० सू० का १ क० १६ सूत्र १८

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्रीके दोनों स्तन किञ्चित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के :—

ओं इम ꣳ स्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये । उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳसदनमा विशस्व ॥ १ ॥

यजु० अ० १७ म० ८७ । पार० गृ० सू० का१ क०१६ सू२०

इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे इसके पश्चात्:—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ १ ॥

ऋ० म० १ सू० १६४ म० ४९ । पार० गृ० सू० का० १ क०१६सू२१ ।

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन वालक के मुख में देवे तत्पश्चात्—

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ । एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सपुतिकायां जागृथ ॥ १ ॥

पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० २२

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूतस्थान में दश दिन तक रहे वहाँ नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धि वेला में निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिलाके दश दिन तकबरावर आहुतियां देवे ॥

ओं शण्डामर्काउपवीरः शौण्डिकेयऽउलूखलः, मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो

नश्यतादितः स्वाहा। इदंशण्डादिभ्यः।इदन्न मम।।१।।ओं आलिखन्ननिमिषः किं वदन्त उपश्रुतिः । हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा । इदमालिखन्ननिमिषाय किंवदद्भ्यः उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय च्यवनाय । इदन्न मम ।।२।। पार० गृ० स० का० १ क० १६ स० २३

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् अच्छे २ विद्वान् धार्मिक वैदिक मतवाले बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता भीतर रहकर आशीर्वादरूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें ।

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः । अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ।।अथर्व० का० ६ । अनु० ४ । सू० ४१ ।। इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरोमृत्युं दधतां पर्वतेन ।।२।। अथर्व० का० १२ । अ० २ । मं० २३ ।। विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः । इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ।।३।। अथर्व० का० १८। अनु० ३। मं० ६१

इति जातकर्म संस्कारविधिः समाप्तः ।।

जातकर्म संस्कार।

जब प्रसवकाल आवे अर्थात् जब प्रसव पीड़ायें आरम्भ होजावे, तो उस समय पति मन्त्रों को बोलता हुआ "गर्भिणी के शरीर पर जल से मार्जन करे,, यह लेख है। सुप्रसिद्ध डाक्टर सर विलियम म्यूर के० सी० आई० ई० "फैमिली मैडीशन,, नामक पुस्तक में लिखते हैं कि प्रसव पीड़ा के समय "गर्भिणी के मुख और हाथों पर ठण्डा पानी स्पंज*द्वारा लगाये,,

डाक्टर म्यूर साहब ने जो हाथ और मुंह पर स्पंज द्वारा पानी लगाना लिखा है वह निस्सन्देह मार्जन करना ही है। इसका प्रभाव उसकी व्यथा को न्यून करना है। इसके अतिरिक्त जो दो मन्त्र बोलने हैं वह मानसिक व्यथा को शमन करने वाले और आशीर्वादमय होने से उसके मनमें दिलासा अर्थात् आश्वासन दिलाने वाले हैं।

पहिले मन्त्र का अर्थ गर्भाधान प्रकरण में आचुका है वहां परदेख लेना चाहिये उसका भावार्थ यह है कि दश मास वाला गर्भ जेर के सहित उत्पन्न हो जिस प्रकार वायु गति करता है अथवा समुद्र की तरंगे उठती हैं इसी प्रकार पूरे दिनों वाला बालक उत्पन्न हो और जेर भी पीछे निकले।

(२) हे सोष्यन्ति! उत्पादन करने वाली! तेरा (जरायु) गर्भ के ऊपर लिपटा हुआ चमड़ा, जोकि (पृश्नि) अनेक रूप वाला है तथा (शेवलम्) पिच्छिल गाढ़ा है, वह (शुने, अत्तवे) कुत्ते आदि के भक्षणार्थ (अव,एतु) ईश्वर करे कि नीचे उतर आवे। हे (पीवरि) गर्भधारक होने से पुष्टगात्रि! वह जरायु (मांसेन) गर्भ को दुःख देने वाले अवयव के साथ (आयतम्) फैला हुआ (नैव) न गिरे। और (कस्मिंश्चन) किसी गर्भ को पीड़ा पहुंचाने वाले कारण के होते हुए भी वह जरायु [न, अव, पद्यताम्] नीचे न आवे।

व्याख्याः—इस मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह जेर के उचित प्रकार से गिरने में सहायता करे जिससे कि गर्भिणी को किसी प्रकार के रोग होने की सम्भावना न रहसके तथा दाई बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता से जेर के निकलते समय काम करे।

(३) (कुमारं, जातम्) उत्पन्न हुए बालक के लिए (अन्यैरालम्भात्, पुरा) दूसरों के छूने से पूर्व (सर्पिर्मधुनी) घृत और शहद को (हिरण्यनिकाषम्) सोने के साथ घिसकर (हिरण्येन) सोने की शलाका से (प्राशयेत्) खिलावे।

व्याख्याः—यदि एक बूँद घी की हो तो तीन बूँदें शहद की हों अथवा एक

(*) स्पंज पानी को शोषण करने की समुद्र के जन्तु की सच्छिद्र कोमल खाल सी होती है, जो काम स्पंज से होता है वह एक गाढ़े के अंगोंछे से होसका है।

मूल पृष्ठ ३ में जो कुछ, दक्षिण कान में "वेदोऽसि,, इत्यन्त विधि लिखी है वह सब पारस्कर गृ० सू० कां० १ कं० १६ के गदाधर भाष्यादि में स्पष्ट है।

रत्ती घी हो तो तीन रत्ती शहद होना चाहिए इसको किसी अच्छे हुर्से पर सोने की शलाका से थोड़ासा घिस कर फिर सोने की शलाका से चटाने का विधान है शहद और घी समभाग अर्थात् बराबर २ लेने से विष होजाता है इसलिए घी और मधु बराबर न रक्खे सूत्र में घी और मधु का कुछ परिमाण दिया हुआ नहीं है इसलिये हमने आयुर्वेद के मत से घी की मात्रा एक बूँद वा एक रत्ती और मधू की तीन बूँद वा तीन रत्ती रक्खी है ।

सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय ४५ में घृत वर्ग में घृत के गुण इस प्रकार लिख हः—

सामान्य घृत सौम्य, शीतवीर्य (तर) मृद (कोमल) मधुर और अभिष्यन्दी (कुछ सकील) है चिकना है उन्माद (पागलपन) उदावर्त (आधी शीशी) अपस्मार [मिरगी] शूल, ज्वर, अफरा और वायु पित्तको शमन करने वाला हैं तथा अग्नि स्मृति, मति, मेधा, कान्ति, स्वर, लावण्य, सुकुमारता ओज, तेज, बल, आयु, वीर्य इन सब के बढ़ाने वाला नेत्रोंको हितकर आयु का स्थिर करने वाला है और शोभादाता पवित्र और कफवर्द्धक ह विष नाशक और विषैले जन्तुओं (जर्म्स) का हरण करने वाला है ।

शहद के गुण भी सुश्रुत के ४५वें अध्याय में इस प्रकार लिखे हैं ।

मध, रस और कसैला अनुरस है, रूखा शीतल, अग्नि दीपक, रंगरूप का सुधारक, बलकारक, हलका, कोमल लेखन (शरीरको सुखाने वाला) है हृदय को हितकर संधानक (टूटे को जोड़ने वाला) शोधनकर्त्ता व्रणरोपक (घावको अच्छा करनेवाला) ग्राही (काबिज़) वाजीकर नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाला सूक्ष्म अर्थात् रोम २ में प्रवेश करनेवाला और अनुसारक अर्थात् मलों को निकालने वाला है तथा पित्त, कफ, मेदा प्रमेह, हिचकी, स्वास, खासी, अतिसार, छरदी, तृषा, कृमि, विष, तृदोष इनको शान्त करनेवाला और आल्हाद कर्ता है ।

स्वर्ण के कुछ मुख्य गुण नीचे लिखे जाते हैं ।

वीर्य्य वर्धक, रसायन, पवित्र (जिस पर विष प्रभाव न करसके) मेधा, स्मृति और आयु के बढ़ान वाला है ।

घृत, मधु और स्वर्ण के उपरोक्त गुणों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि घी मधु और सोने की शलाका घिस कर चटाने से बालक की शारीरिक और मानसिक उन्नति होसकती ह अथवा यों कहो कि उस की आयु और मेधा बढ़ाने वाली यह एक रासायनिक औषध है । आजकल डाक्टर लोग नये बच्चे को अरण्डी का तेल उसके मलरुद्धनिवारण करने के लिये देते हैं शहद में भी यही गुण हैं जो कि बच्चे के लिये उपयोगी है । और पृथ्वी भर में शहद से बढ़ कर कोई स्वादिष्ट वस्तु नहीं है । उपनिषदों में धर्म्म को सब के लिये प्रिय होने से मधु की उपमा दी गई है ।

स्वर्ण—वीर्य्य वर्धक, मेधा, स्मृति और आयुका कर्ता है इस लिये स्वर्ण के घिसने से उसके परमाणु सूक्ष्म रूप से घृत, और शहद के परमाणुओं से मिलकर अपूर्वता उत्पन्न करेंगे ।

आजकल विद्युत् विद्या के जानने वाले पश्चिमी लोग, धातुएं नाना प्रकार के पदार्थों के संसर्ग मात्रसे गुण अवगुण किस प्रकार उत्पन्न करती हैं इसविषय में बहुत कुछ जान गयेहैं। प्राचीन आर्य्य भी धातुओं के संसर्ग से होनेवाले गुण दोषोंको भली प्रकार जानते थे। इसी लिये आयुर्वेद में कौनसा भोजन अथवा पान (रस) किस धातु के बर्तन में खावे इसका विधान लिखा हुआ है। यदि घृत को ताँबेके पात्र में डाला जायगा तो एक प्रकार का विष उत्पन्न होजाता है। स्वर्ण के साथ घी चटाने वा मधु चटाने से कोई प्रकार का विष जो धातुसंसर्गसे उत्पन्न होसकताहै नहीं होता। प्रत्युत पवित्रता की वृद्धि होतीहै क्योंकि स्वर्ण का एक गुण घृत समान पवित्र होना है अर्थात् इस के बर्तन, चमचे व शलाका पर किसी प्रकार के विषका प्रभाव नहीं पड़सकता मट्टी के बर्तन अथवा ढाक (पलाश) के पत्ते में भी स्वर्ण के वर्तन समान गुण हैं।

उँगली से मधु चटाने से नख अथवा उँगली की सूक्ष्म अपवित्रता को भी बच्चा चूसने लगजाने का भय है। स्वर्ण शलाका पवित्र होने से यह भय उत्पन्न नहीं करसकती इस लिये सोने की शलाका से चटाने का विधान ऋषियोंने किया है।

इस संस्कार संबन्धी दो विशेष आज्याहुति देने के मंत्रों के अर्थ और उनकी व्याख्या यह है।

(या) जो मेरी पत्नी [अतिरश्ची] अनुकूलगामिनी (निपद्यते) है (अहम्) मैं—पति, (विधरणी, इति) विशेष करके घरकी सम्हालने वाली है (ऐसा समझकर) (तां, त्वा) उसतेरा (घृतस्य, धारया) घृत की धारासे—हवन में घृतकी धारा छोड़ कर (यजे) सत्कार करता हूं और [अहम्] मैं तुमको (संराधनीम्) कार्यों को अच्छे प्रकार सिद्ध करने वाली मानताहूं। (संराधन्यै, देव्यै, देष्ट्र्यै) कार्यों कोसिद्धकरने वाली,—देष्ट्र्यै—इष्टफल देने वाली, देव्यै—इसदेवी के लिए (स्वाहा) यह सुहुत हो।

[विपश्चित्] विद्वानों ने, संतान को [पुच्छम्] प्रतिष्ठा का स्थान [अहरत्] कथन किया है और [पुनः] फिर [धाता] परमात्मा ने भी (आहरत्) संतान को प्रतिष्ठा का स्थान बतलाया है। अतः हे [विपश्चत्] विद्वत्समूह! (त्वम्) तुम प्रसन्नता से (परेहि) मेरे संमुख आया करो जिससे [अयं, पुमान्] यह पुंस्त्वशक्तिविशिष्ट [असौ, नाम] इस प्रसिद्ध नाम वाला, मेरापति (जनिष्यते) फिर भी प्रतिष्ठित संतान को उत्पन्न करे।

मन्त्रों की व्याख्या—

[क] इस मन्त्र में पत्नी का बड़ा आदर करते हुए उसके गुणों की प्रशंसा में घृत धारा उस के निमित्त विधान होने से पाया जाता है कि ऐसा करने से उसका अत्यन्त सत्कार किया जा रहा है। उस को देवी कह कर यहां बोधन किया गया है और उसके के गुणों को स्वीकार करते हुए मानों धन्यवाद किया जा रहा है। नारी पूजन, नहीं नहीं देवी पूजन का इस से बढ़ कर दृष्टान्त पृथ्वी भर में कहाँ मिल सकता है।

(ख) दूसरे मन्त्र में मानों प्रसूता स्त्री की तरफ़ से संतान के होने पर जो आनन्द उसके मन में होना चाहिये उसको अति उत्तमता से प्रकट किया है।

स्त्री कह रही है कि सन्तान बड़ी पूजा की वस्तु है और इस बात को न केवल विद्वान् ही मानते हैं किन्तु ईश्वर ने भी ऐसा ही उपदेश दिया है। फिर स्त्री प्रार्थना करती है कि मैं आगे को भी इसी प्रकार संतान उत्पन्नकरूं ताकि विद्वन् मंडली फिर जात कर्म्म के समय यहां पधारे और मेरा जो वीर्य्यवान् पति है फिर उत्तम संतान करने में समर्थ हो।

मेधा जनक और आयुवर्धक क्रिया

तत्पश्चात् वामदेव्य गान करके घी और मधु दोनों बराबर मिलाकर सोने की शलाका से बालक की जीभ पर "ओ३म्" लिखने का विधान है।

घी और मधु समभाग के स्थान में मधु घृत से दुगना होना चाहिये घृत और मधु समभाग में विष समान हो जाते हैं ऐसा वैद्यों का अनुभव है।

(विवरण) मालम होता है कि दृष्टिदोष से यह भूल रह गई है। क्योंकि कहा है कि

"दशाहमुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतंसमम्।
कृतान्नं चकषायंच पुनरुष्णी कृतंत्यजेत्" ॥

अर्थ—कांसे के पात्र में दस दिन का धरा हुआ घी खाना तथा घी शहद बराबर मिले हुएखाना निषिद्ध है। भोजन के पदार्थ तथा काढ़े का फिर दूसरी बार गरम करके खाना भी निषिद्ध है।

मधु और घी को सोने की शलाका से चटाने के स्थान "ओ३म्" अक्षर लिखने का विधान किया गया है जिह्वा पर "ओ३म्" लिखने से बच्चा उसको भी चाट ही जायगा परन्तु जब चार पाँच वर्ष का होगा और अपने किसी जन्मोत्सव वा वर्ष गाँठ में अपनी जन्म कथा के साथ यह सुनेगा कि जब मैंने जन्म लिया तो मेरी जिह्वा पर "ओ३म" यह अक्षर लिखा गया था। तो उस के मनमें उस समय ओ३म् अक्षर के लिये असीम अनुराग, श्रद्धा तथा आदर उत्पन्न होजायगा और ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जायगा त्यों त्यों वह विद्या और सत्संग द्वारा इस बात को निश्चय करेगा कि जिस प्रकार मधु और घी मेरे वात, पित्त और कफ दोषों को नाश करने से शारीरिक उन्नति का कारण हैं उसी प्रकार "ओ३म" तीनोंतापों को दूर करने वाला और आत्मिक उन्नति का हेतु है।

(ख) जिस समय बालक का पिता "ओ३म्" लिख चुके वह फिर उस के दक्षिण कान में—

"वेदोऽसीति,,

अर्थात् तेरा गुप्तनाम[१] वेद है यह कहे। वेद के अर्थ ज्ञान के हैं। ज्ञान अथवा चेतनता वास्तव में जीवात्मा का सबसे मुख्य गुण है। साथ ही ऋग्, यजु, साम, और अथर्व रूप से जो ज्ञान का भंडार ईश्वर ने दिया है उसको भी वेदही कहते हैं। कोई यह न समझे दो चार घड़ी के उत्पन्न हुए बालक के कानमें वेद कहने का विशेष फल क्या हो सकता है।

इसका फल बड़ाभारी होगा जिस के लिये यह क्रिया की गई है। उसके कर्णरूपी ईश्वरीय रचित अपूर्व शब्दग्राही यन्त्र (ग्रामोफोन) में ध्वनि द्वारा वेद शब्द अंकित होगया जो कि मरण पर्यन्त इस "ग्रामोफोन,, से निकलने का नहीं। जिस समय बच्चा तीन चार वर्ष का होगा और कहीं भी किसी "वेद, इस शब्दका उच्चारण सुनेगा तो स्वाभाविक ही वह उस शब्द को अपने लिये अनुकूल पायगा, और सब से अधिक प्रेम उस शब्द के लिये उस के मन में उठेगा। वह किसी को न समझा सके कि वेद शब्द से उसको असीम प्यार क्यों है किन्तु उसके मनके अन्दर "वेद,, शब्द उस समय अंकित हुआ था जब कि और कोई शब्द उसके कान में प्रवेश होने नहीं पाया था इस लिये जैसा कि योगियों को अथवा संस्कारी जीवों को संस्कारों की स्फुरणा होती है उसी प्रकार जब २ यह वेद शब्द सुनेगा तो अन्दर का संस्कार जागृत हो जायगा और वेद के लिये, असीम अनुराग उसके हृदयमें उत्पन्नकरायेगा।

किन्डर गार्टन (हितोपदेश) पद्धति का रहस्य यही है कि खेल द्वारा बच्चों को यातो वह बातें सिखाई जायें जो वह उस अवस्था में समझ सकते हों; अथवा भावी सीखने वाली विद्याओं के बीज रूपी संस्कार मनमें डाले जावें।

सब जानते हैं कि चिड़िया और कौवे की कहानी जो बचपन में हमने सुनी थी आजतक नहीं भूली और जो शब्द बाल्यावस्था में माता, पिता के मुख से सुने उन शब्दों के लिए आयुभर अनुराग बना रहा।

भूगोल पर कोई आठ वर्ष की आयु में कोई सात, छः अथवा पांच वर्ष की आयु में शिक्षा देना उचित समझते हैं परन्तु धन्य थे वह ऋषि जिन्होंने अनुभव किया कि बच्चे का शिक्षण काल उसके जन्म के क्षण से होना चाहिये और उसके मन पर "ओ३म्,, और "वेद,, शब्दों को अंकित कर दिया।

संस्कार विधि में लिखा है कि पूर्वोक्त घी और मधु को सोने की शलाका से निम्नलिखित इन सात मन्त्रों को पढ़कर चटावे।

---

[१] यह नाम गुप्त रूप से ही बोला जाताहै—"यत्तद् गुह्यमेव भवति" गोभिलीय गृ० सू० प्र० २ का० ७ सू० १६।

इन सात मन्त्रों के आदि में "ओ३म्„ शब्द आया है और सात वार "ओ३म्„ का उच्चारण शहद चटाते हुए बच्चे को सुनने का अवसर मिलेगा । और जिस प्रकार वेद शब्द उसके मन पर अंकित हो चुका उसी प्रकार वेद की अंतिम सीमा अथवा वेद द्वारा जिस परम पद नामी "ओ३म„ को प्राप्त होते हैं वह "ओ३म्„ शब्द भी उसके ग्रामोफोन रूपी मस्तिष्क में आयु भर के लिये अङ्कित होजायंगे ।

वेद और "ओ३म्„ यही ऋषियों का सर्वस्व था यही उनकी उन्नति का रहस्य था और किस उच्चतासे वह वेद और उसके वाचक "ओ३म्„ को जन्म लेते ही बच्चे के मन पर अंकित करते थे यह इस संस्कार से स्पष्ट होरहा है इन सात मन्त्रों के अर्थ तथा व्याख्या इस प्रकार हैं ।

हे बालक ! (ते) तेरे लिए [मधुनो, घृतस्य] शहद और घृतकी विन्दुको (प्र, ददामि) अच्छे प्रकार देताहूं (मघोनां, सवित्रा) धनियों के वा पूज्यतमों के उत्पादक ईश्वर सेही [प्रसूतम्] पैदा किया-इस मधु आदि को मैं [वेद] जानताहूं । (देवताभिः, गुप्तः) विद्वानों से रक्षित हुआ तू (आयुष्मान्) प्रशस्त जीवन को प्राप्त हो कर (अस्मिन्, लोके) इस संसार में (शतं, शरदो, जीव) सौवर्षतक जीता रहे ॥

हे बालक ! ईश्वर करे कि [ते] तेरे लिए [मित्रावरुणौ] दिन और रात्रि [मेधाम्] सुने हुए और पढ़े हुए के धारण करने की शक्ति को [आधत्ताम्] देवें या धारण करें और [ते] तेरे लिए [अग्नि:] भौतिक अग्नि वा ईश्वर [मेधाम्] धारणावती बुद्धि को [दधातु] देवे। और [ते] तेरे लिए [पुष्करस्रजौ] अम्बरमालाधारी [अश्विनौ, देवौ] सूर्य और चन्द्र देवता [मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवें । अर्थात् तू काल का ज्ञाता और सूर्य चन्द्रादि का ज्ञाता हो ।

[त्वयि] तेरे विषय में (भूः) प्राण दायक ईश्वर को मैं [दधामि] स्मरण द्वारा धारण करता हूं ।

[भुवः] दुः खों के हर्ता ईश्वर को० शेष पूर्ववत् ।

[स्वः) विविध चेष्टा कराने वाले ईश्वर को ० शेष पूर्ववत् ।

(सदसस्पतिम्) समूह वा ज्ञान के पति (अद्भुतम्) आश्चर्य स्वरूप (प्रियम्) आनन्द रूप (इन्द्रस्य, काम्यम्) जीव मात्र के अभिलषणीय ईश्वर को तथा (सनिम्) विवेचना शक्ति देने वाली (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि को मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊं ॥

(नं० १) व्याख्याः—घृत और मधु के गुण जान कर ही बच्चेको इसके चटाने का उपदेश है साथ ही बतलाया गया है कि जो बच्चे वैद्य आदि विद्वानों से रक्षा को प्राप्त होते रहते हैं वह दीर्घ जीवी होकर १०० वर्ष की आयु को भोगते हैं ।

(नं० २) मेधा बुद्धि के चिन्ह यहां पर दर्शाये गये हैं ।

(क) जो बच्चे दिन को खेलते और रात को नींद भर सोते हैं वह उत्तम स्मरण-शक्ति से युक्त होते हैं।

(ख) जिनकी जठराग्नि ठीक है (ग) सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों का आन्दोलन करते में जो रुचि दिखाते हैं वह मेधा की सत्ता को प्रकट कर रहे हैं।

(नं० ३) प्राणों का प्राण ईश्वर है इस मंत्र में इस सचाई का उपदेश किया गया है।

(न० ४) इस मंत्र में इस बात को दर्शाया गया है कि दुखों का हर्ता ईश्वर है।

(नं०५) इस मन्त्र में इस बात को जताया गया है कि गति का आधार भी ईश्वर है।

(नं०६) इस मन्त्र में जो ईश्वर प्राण रक्षक दुःख नाशक और गति का आधार है उसका स्मरण दिलाया जाता है।

(न० ७) इस मन्त्र में ईश्वर की प्राप्ति तथा बुद्धि प्राप्ति मनुष्य का अभीष्ट है इस बात को पुष्ट किया गया है।

इन सात मन्त्रों से सातवार घृत मधु प्राशन कराकर फिर चावल और जौ को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रखकर हाथ के अंगूठे और अनामिका (सबसे छोटीके पास वाली अँगुली) से लेकर यह मन्त्र बोल कर बालक के मुख मेंएक विंदु छोड़ देवे, यह एकही सूत्र कारका मत है। "ओम् इदमाज्य...,,

इस मन्त्र का अर्थ यह हैं।

(इदम् आज्याम्) यह कान्तिदायक है और (इदमन्नम्) यह ही खाने योग्य पदार्थहै(इदम्, आयुः)यह ही आयु का हेतु है(इदम् अमृतम्) यह ही रसायन है।

मन्त्र की व्याख्या

अन्न ही मनुष्य का भोजन है और अन्न के खाने से मनुष्य कान्ति तथा दीर्घआयु को प्राप्त होते और भयंकर रोगों से बचते हैं। यूरोप के महा विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि जो मांस और मदिरा का सेवन नहीं करते वहीं मनुष्य न केवल सुन्दर होते हैं किन्तु बड़ी आयु को भी पाते हैं और जो बड़ी आयु को पायेगा स्पष्ट है कि उसको रोग कम होंगे।

फिर आठ मन्त्रों को जप बच्चे के पहिले दक्षिण कान में फिर वाम कान में करने का विधान है।

मन्त्रार्थ

हे बालक! ईश्वर करे कि (ते) तेरेलिए (सविता, देवः) सर्वोत्पादक देव (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवे और (देवी, सरस्वती) विद्वानों की दिव्यगुण-युक्त, श्रेष्ठ ज्ञानवाली वाणी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवे। अग्रिम मन्त्रों का अर्थ पूर्व आचुका ॥ १ ॥

(अग्निः, आयष्मान्) अग्नि, कारण रूप से आयु वालाहै अर्थात् आयुवर्द्धक है (स, वनस्पतिभिः, आयुष्मान्) वह अग्नि, जलाने योग्य लकड़ियों के कारण, वा वनस्पतियों से आयुवर्द्धक है । (तेन आयुषा) उस अग्नि की आयु से (त्वा, आयुष्मन्तम्) तुझे निर्दुष्ट दीर्घायु वाला (करोमि) करता हूं ॥ २॥

(सोमः) चन्द्रमा (आयुष्मान्) जीवन काहेतु है परन्तु (सः, ओषधीभिः, आयुष्मान्) वह ओषधियों में जीवनीशक्ति डालने के कारण आयुवर्द्धक है० शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

(ब्रह्म) वेद (आयुष्मत्) जीवन काहेतु है परन्तु (तद् ब्राह्मणैः, आयुष्मत्) वह उसके पढने वालों के कारण अर्थात् पढने से आयु वर्द्धक है० शेष पूर्ववत् ।।४।।

(देवाः) विद्वान् लोग (आयुष्मन्तः) आयुवर्द्धकहैं परन्तु (तेऽमृतेनायुष्मन्तः) वे अनालस्य, सदाचार, यज्ञादि रूपअमृत से आयुवर्द्धक हैं०शेषपूर्ववत् ॥ ५ ।

(ऋषयः, आयुष्मन्तः) ऋषिलोग आयु बढ़ाने वाले होते हैं परन्तु (ते व्रतैः, आयुष्मन्तः)वे कठिन व्रत—नियम, संयम आदिसे आयुवर्द्धक हैं० शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

(पितरः, आयुष्मन्तः) माता पिता आदि आयुवर्द्धक हैं सही परन्तु (ते, स्वधाभिः, आयुष्मन्तः) वे भी स्वधा—उन की सेवा के योग्य वस्तुओं से आयुवर्द्धक हैं० शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

[यज्ञः, आयुष्मान्] यज्ञ, आयुवर्द्धक है परन्तु (सः, दक्षिणाभिः, आयुष्मान्) वह पुरोहितादि के सत्कार और नियम पूर्वक व्यवहार आदि से आयुवर्द्धक है० शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

(समुद्र आयुष्मान्) समुद्र आयु वाला है पर (सः, स्रवन्तीभिः, आयुष्मान्] वह नदियों से आयु वाला है० शेष पूर्ववत् ॥ ९॥

मन्त्रों की व्याख्या।

(नं० १) इस मन्त्र में मेधा वृद्धि के दो स्रोत बतलाये हैं (क)। ईश्वर (ख) विद्वानों की वाणी जिनको(ओरिजिनल माइंड)पूर्ण मेधावी कहतेहैं। उनका गुरु विशेष कर ईश्वर होता है। अंगरेजी शैली में कहते हैं कि उनको नेचर शिक्षण देतीहै,वह जैसा कि महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखतेहैं—समाधिअवस्था में ईश्वर से प्रकाशरूपी ज्ञान धारण करते हैं। माता, पिता, गुरु आदि से वह सामान्य शिक्षण तो लेते ही हैं पर आदि सृष्टि में होने वाले आदि ऋषि, माता पिता से सामान्य शिक्षण भी नहीं लेते। साधारण बुद्धि वाले मनुष्य विद्वानों की वाणी वा उन के ग्रन्थों से ही शिक्षण उपलब्ध किया करते हैं। इस लिये ईश्वरोपासना, योगाभ्यास और विद्वानों का संग और पठन पाठन आदि मेधा बढ़ाने के साधन हैं यही भाव इस मंत्र में प्रगट किया गया है।

(नं० २) इस मंत्र में आयुवृद्धि का मुख्य कारण अग्नि को कहागया है। जो

श्रम करने वाले मनुष्यों के जठर तथा काया में रहकर आयु बढ़ाती है। और छुहारे घृत अन्नादि पदार्थों में जो अग्नि वर्द्धक हैं, रहकर भोजन द्वारा आयु देती है।

(नं० ३) सोमीरूपदार्थ अर्थात् वह पदार्थ जो तर और रस युक्त होते हैं जैसे फल, दूध, घृतादि। वैद्य लोग गरम तर पदार्थों को जो कि अग्नि सोमगुण वाले होते हैं आयुवर्द्धक रसायन आदि में उपयुक्त किया करते हैं।

(नं० ४) वेद सत्य ज्ञान भी निस्संदेह आयु वृद्धि के उपाय दर्शाता है और जो वेद तथा उसकी व्याख्या रूप आयुर्वेद का अभ्यास करते हैं वह उन साधनों का ज्ञान पाते हैं।

(नं० ५) केवल शब्दार्थ जानने वाले विद्वान् नहीं किन्तु पुरुषार्थ रूपी जीवन रखने वाले विद्वान् अपने दृष्टान्त रूप से शिष्य आदि की आयु वृद्धि का कारण होते हैं।

(नं० ६) ऋषि लोग जिन्होंने भारी विद्या की प्राप्ति के साथ २ भारी तप वृत काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के जीतने के लिये किये हैं वह भी अपने दृष्टान्त रूपी जीवन से आयुवृद्धि में अपूर्व सहायता देते हैं।

(नं० ७) माता पिता तो सदा बच्चों की आयुवृद्धि चाहते और उसके लिए उपाय करते ही रहते हैं परन्तु जो बच्चे उनकी वृद्धावस्था में सेवा आदि करते हैं उनकी सेवा से प्रसन्न होकर माता पिता आदि सदैव आशिष देते रहतेहैं जिन से संतानों का मानसिक बल तथा शान्ति के बढ़ने से आयुवृद्धि को प्राप्तहोती रहती है।

(नं० ८) हवन आदि यज्ञ रोगों के सूक्ष्म कारणों को नाश करने से आयु के दाताहैं परन्तु जो लोग पुरोहित आदि को दक्षिणा (फीस)देकर प्रसन्न करते रहते हैं वह मन से अधिक तेजस्वी होकर बड़ी आयु को धारण करते हैं क्योंकि जो ऋणि मनुष्य होता है वा जिस ने किसी का धन स्वत्व छीन लियाहै वह निर्भय नहीं होता।

(नं० ९) समुद्र आदि की यात्रा करने से स्वच्छ वायु की प्राप्ति होने के कारण आयु की ऐसे ही वृद्धि होती है जैसे कि समुद्र की वृद्धि नदियों की प्राप्ति से होती है आज कल डाक्टर लोग भी कई रोगों में समुद्र तट पर निवास करने से रोग का नाश और आयु की वृद्धि मानते हैं।
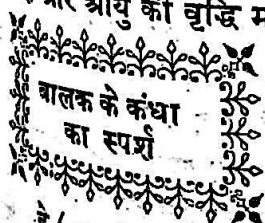
बालक के कंधा का स्पर्श

तीन मंत्र बोलता हुआ पिता बालक के कंधों का स्पर्श करे

हे (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त ईश्वर! [श्रेष्ठानि, द्रविणानि] अति प्रशंसनीय धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) रक्खो वा देओ। और [दक्षस्य] कर्म करने की सामर्थ्य की [चित्तिम्] प्रसिद्धि को दीजिए। और हमको (सुभगत्वम्) सौभाग्य दीजिए। (रयीणाम्) धनोंकी (पोषम्) पुष्टिको दीजिए। [तनूनाम्] अङ्गोंकी वा पुत्रों की (अरिष्टिम्) अहिंसा—बाधाऽभाव को दीजिए। (वाचः, स्वाद्मानम्) वाणी की स्वादुता मधुरता को दीजिए (अह्नाम, सुदिनत्वम्) दिनों की उत्तमता को

दीजिए। अर्थात् ऐसे दिन हमारे व्यतीत हों जिन में यज्ञादि विविधि शुभ कार्य होते रहें ॥ १ ॥

हे (मघवन् , ऋजीषिन्, इन्द्र) जगत्रूपी धन वाले, प्रापणीय, परमात्मन्! (विश्ववारस्य, भूरेः रायः) सबसे स्वीकार के योग्य, बहुत, धन को (अस्मे,प्रयन्धि) हमारे लिए दीजिए। और (अस्मे, जीवसे) हमारे जीवन के लिए (शतं, शरदः धाः) सौ वर्षों को दीजिए। हे (शिप्रिन, इन्द्र) ज्ञानयुक्त वा सुखद भगवन्! (अस्मे)हमारे लिए(शश्वतः वीरान्) बहुत वीर पुरुषों को दीजिए ॥ २ ॥

हे बालक! तू ईश्वर करे कि (अश्मा भव) पत्थर की तरह दृढ़ और स्थिर हो और ('परशु र्भव) दुष्ट शत्रुओं के लिए फरसा या वज्र तुल्य हो और (अस्तुतं, 'हिरण्यं भव')अस्तृत—अपनेस्वरूप से स्वच्छ, हिरण्यम्— सोना जैसा तेजस्वी और आदरणीय हो। क्योंकि तू [पुत्रनामा, वेदः, व असि) पुत्रनामक मेरा स्वरूप ही निश्चयकर के है अर्थात् तू मुझसे पुत्र संज्ञामात्र से भिन्न है (सः, शरदः, शतम्, जीव) वह तू ईश्वर करेकि सौ वर्ष पयन्त जीवे ॥ ३ ॥

मंत्रों की व्याख्या

(नं० १)कंधे भुजाओं के मूल हैं। उनका स्पर्श करनेसे उनकी रक्षा का प्रयोजन है। साथ हीं भुजाओं को जो कर्म करने चाहियें उनका उपदेश दिया गया है। धन प्राप्ति के साधन हाथ व भुजाही हैं अर्थात् जो कमाई करेगा वह धन पाएगा-कर्म कैसाहो इस के विषय में कहा है कि दक्षता (फैक्ट) से युक्त हो । जो काम पूर्वापर विचार पूर्ण किया जाता है उस को दक्षता युक्त कर्म कहतेहैं। जो लोग अंगों की रक्षा करते हैं वही स्वास्थ्य आदि पाने के कारण धन कमा सकते हैं इस का भी बोधन कराया गया है

(नं०२) इस मंत्र में धन और सौ वष की आयु मांगी गई है और धन की रक्षा निमित्त वोर पुरुषों का होना आवश्यक दर्शाया गया है।

(नं० ३) जिन मनुष्यों ने संसार में अपना और पराया उपकार किया है वह वही हुए हैं जिनमें धृति शक्ति अधिक थी। उस धृति के लिये जो पत्थर समान अटल है प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि बालक की भुजा दुष्ट शत्रु के शमन करने में भी समथ हों। और बालक सोनेकी नाई स्वच्छ और तेजस्वी हो यह भी प्रार्थना है। फिर कहा गया है कि सन्तान माता पिता को अतीव प्यारी होती है इस लिये वह बड़ी आयु को जो सौ वर्ष की है ईश्वर कृपा से अवश्य प्राप्त हो वे ॥

तीन बार जप

फिर त्र्यायुष .... आदि मंत्र से तीन वार जप करके बालक के कंधो पर से हाथ उठा ले।

मंत्रार्थ

(जमदग्नेः)आहिताग्नि प्रतिदिन हवन करने वाले की जो (त्र्यायुषम्)बाल्य, तरुण,

वृद्ध, तीन प्रकार की आयु होतीहैं (कश्यपस्य) आत्म ज्ञानी की जो (त्र्यायुषम्) उक्ततीन प्रकार की आयु हो सक्ती है (यद्देवेषु, त्र्यायुषम्) जो स्तुति योग्य विद्वानों की तीन प्रकार की आयु होती (नः) हमारी भी (तत) वही-वैसी ही (त्र्यायुषम) तीन प्रकार की (अस्तु) हो ॥

व्याख्या

सौ वर्ष की दीर्घायु के लिये इस मंत्र में प्रार्थना की गई है और बतलाया गया हैं कि जो वाल्य तरुण और वृद्धावस्था से युक्त आयु है वही पूर्णायु होती है उस सौ वर्ष की आयु को ईश्वर कृपासे बालक भोगे। इस तीन अवस्था वाली आयु के कारण इस मंत्र में यह तीन बातें दरशाई गई हैं।

(१) जो नियम पूर्वक सदैव हवन करने वाला है वह १०० वर्ष की आयु भोग सकता है।

(२) जो आत्म ज्ञानी है वह इन्द्रियदमन आदि महाव्रतों के कारण इस आयु को प्राप्त हो सकते हैं।

[३] जो पुरुषार्थी विद्वान् हैं वह उचित श्रम करते रहने से १०० वर्ष की आयु पा सकते हैं

फिर प्रसूतागार में जाकर—ओं वेदते भूमि... ....इस एक मंत्र का जाप करे और यत्ते सुसीमे..................इत्यादि चार मंत्रो का उच्चारण करके प्रसूता के शरीर का सुगंधित * जल से मार्जन करे ॥

'नोट' यदि वह सो गई हो तो उस को मार्जन द्वारा जगा न देवे हां जब जागे तब यह क्रिया करले।

हे (भूमि) पुत्रोत्पादन करने वाली देवि! (ते,हृदयम्) जो तेराहृदय [दिवि, चन्द्रमसि, श्रितम्] द्यु लोक में रहने वाले चन्द्रमा (चन्द्रादि आल्हादक वस्तु) में स्थित रहा है। 'गर्भिणी को चन्द्रादि आल्हादक वस्तुओं में मन लगाना चाहिए' उसको मैं (वेद) जानता हूँ। (तत, अहं, वेद) उसको मैं अच्छे प्रकार जानता हू (तत्, मां, विद्यात्) वह मुझे अच्छे प्रकार जाने। और हम तुम सब ईश्वर कृपा से (शतं शरदः, पश्येम) सौवर्ष तक देखें (शतं, शरदः, जीवेम) सौ वर्ष तक जीवें। (शतं, शरदः, श्रणुयाम) सौ वर्ष तक सुन्दर बातों का श्रवण करें ॥

हे (सुसीमे)! शोभन केश पद्धति वाली (अन्तः, ते, हृदयम्) भीतर वर्तमान तेरा मन (प्रजापतौ, हितम्) परमात्मा में निहित—रक्खा हुआ है (अहं, वद) म यह

---

* इस सुगंधित जल को, वालछड़—कपूर कचरी नागरमोथा—चन्दन—अगर—तगर, खस इन सुगंधित औषधियों में से सब को अथवा जो मिल सकें उन को २ माशे के प्रमाण में लेकर पानी में औटाले। इस प्रकार सुगंधित जल बनावै पानी अवश्य आवश्यकतानुसार रक्खे।

जानताहूं । और (तद् ब्रह्म) वह मन, व्यापक—असंकुचित—उदार है इस को भी मैं (मन्ये) मानता हूं परमात्मा करे कि (अहम्) मैं (पौत्रम्, अघम्) संतान सम्बन्धी दुःखको (मा, निगाम्) न प्राप्त होऊँ।

(यत्) जो तेरा हृदय (पृथिव्याः, अनामृतम) पृथवी का सार भाग है (दिवि चन्द्रमसि, श्रितम्) द्युलोकस्थ, चन्द्रमामें विहार कर चुका है (इह) इस लोक में मैं उसे (अमृतस्य, नाम) अमृत—मुक्ति की प्राप्ति का कारण (वेद) जानता हूँ ईश्वर करे कि (अहम्) मैं (पौत्रम् अघम्)सँतान सम्बन्धी दुःखको (मा, रिषम्) न प्राप्तहोऊँ (प्रजापती) प्रजा के निर्वाहक (इन्द्राग्नी) ईश्वर और अग्नि हम तुम सबको (शर्म) कल्याण को (यच्छतम्) देवें (यथा अयम् पुत्रः) जैसे कि यह सन्तान (जनित्र्योः अधि) अपनी माता की गोद में (न, प्रमीयते) मरण न पावे ॥ ४ ॥

(यद्, अदः) जो यह (कृष्णां, पृथिव्याः, हृदयम्) काल पृथिवी का सार भाग (चन्द्रमसि, श्रितम्) चन्द्रमामें स्थित है (सत्, विद्वान्, अहम्) उसका जानने वाला मैं (तत पश्यन्) उस को विचारता हुआ (अहम्) मैं (पौत्रम्, अघम्) पुत्रसम्बन्धी दुःख के लिए (मा, रुदम्) नरोदन करूँ ॥

मन्त्रों की व्याख्या

(नं० १) पति दर्शाता है कि मैं भले प्रकार जानता हूं कि मेरी स्त्री का मन गर्भ अवस्था में आनन्द युक्त रहा है। जिस प्रकार मैं उसके मन को जानता हूं स्त्री भी मेरे मनको वैसे ही आनन्दी जाने और हम दोनों सौ वर्ष तक जीवें और दृढ़ इन्द्रिय हों।

(नं० २) पति कहताहै कि मेरी स्त्री ईश्वर भक्त और उदारचित्त है इसलिये उस से जन्मा बालक शुभ गुण वाला होगा और ईश्वर कृपा से दीर्घायु वाला होवे।

(नं०३) पति कह रहा है कि मेरी पत्नी का हृदय पृथ्वी समान दृढ़ है और चन्द्र को लक्ष में रखकर शुभ विचारों वाला रहा है। ऐसी पत्नी की सन्तान ईश्वर कृपा से अवश्य दीर्घायु होगी यह मैं आशा करता हूं।

(नं० ४) मनुष्य दो अग्नियों से जीवित है। एक अग्नि तो परमात्मा की है जिस पर सच्चा विश्वास उसके मनके रोगों को दूर करता हुआ मनको बलवान् बनाता है और दूसरी अग्नि भौतिक है जो शरीर में जठराग्नि के रूप से आयुवर्धक है। प्रार्थना की गई है कि सन्तान की रक्षा के लिये यह दोनों अग्नियाँ कल्याणकारी हों। और जिस माता की यह दोनों अग्नियाँ प्रचंड हैं उस का बच्चा क्यों बाल्यावस्था में मरने पावेगा।

(नं० ५) चंद्रमा का आकर्षण सब विद्वान् मानते हैं चंद्रमा पृथ्वी तथा पृथ्वीस्थ जल को आकर्षण करता है इस के आकर्षण का प्रभाव पूर्णमासी अमावस्या को विशेष कर समुद्र तट पर देखने में आता है। समुद्र में ज्वार भाटों का आना इसी के आकर्षण का मुख्य फल है। पृथ्वी की ओषधियों तथा वनस्पतियों में रस की

वृद्धि चंद्रमा के प्रभाव से होती है। मनुष्य के शरीर में भी लोहू आदि धातुओं पर इस का प्रभाव पड़ता है। मन को शान्त और स्थित करता है। चन्द्रमा क्यों पृथ्वी के जल को आकर्षण करता है! इसका उत्तर मन्त्र में दिया गया है कि उस में काला पृथ्वी का सार भाग विद्यमान है इसी लिए। और पृथ्वी तत्व का धर्म जल को आकर्षण करना है। इस बात को पिता कह रहा है कि मैं जानता हूं अर्थात पृथ्वीके रस की वृद्धिका कर्ता और आयु वर्द्धक औषधियों में जो सोम रस आदि कहलाती हैं रसदाता चंद्रमा है। वह चंद्रमा अपने आयु वर्द्धक रस उत्पादक तथा मनोरंजक गुणों से इस बच्चे की आयु वृद्धि का कारण होवे। यही ईश्वर से प्राथना है।

आशीर्वाद के दो मन्त्रों का अर्थ—

हे बालक! (कोऽसि) तू कौन है! (कतमोऽसि) कौनसा है! मरणधर्मा है वा अमृत धर्मा। (उत्तर) (एषोऽसि) तू आत्मस्वरूप है (अमृतोऽसि) अमरणधर्मा है (असौ) वह तू ईश्वर करे कि (आहस्पत्यं, मासम्) सूर्य के किये मास का (प्रविश) उपभोग करे॥

ईश्वर करे कि (सः, त्वा) वह सूर्य तुझे (अह्ने, परिददातु) दिन के लिये देवे और (अहः) दिन (त्वा, रात्र्यै, परिददातु) तुझे रात्रि के लिये देवे। (रात्रिः, त्वा, अहोरात्राभ्यां, परिददातु) रात्रि तुझे फिर दिनरात के लिये देवे। (अहोरात्रे त्वा, अर्द्धमासेभ्यः, परिदत्ताम्) दिनरात तुझे पक्षों के लिये देवें (अर्द्धमासाः, त्वा, मासेभ्यः, परिददतु) पक्ष तुझे महीनों के लिये देवें।

(मासाः, त्वा, ऋतुभ्यः परिददतु) महीने तुझे वसन्तादि ऋतुओं के लिये देवें [ऋतवः, त्वा, संवत्सराय, परिददातु] ऋतुएं तुझे वर्ष के लिये देवें [असौ, संवत्सरः] वह वर्ष (त्वा, आयुषे, जरायै) तुझे आयुवृद्धि के लिये वृद्धावस्था को [परिददातु) देवे॥

व्याख्या—(नं० १) वह समय कैसा उत्तम था जब कि लोरी रूपी आशीर्वाद में बच्चे के कानों में उस के अमर होने के शब्द पहुंचाये जाते थे। आज यूरोप आदि देशों में कोई भी आशीर्वाद इस उत्तमता तक नहीं मिलता। क्यों न हो पुराने ऋषियों ने वेद की सहायता और योगवल के प्रभाव से निश्चय कर लिया था कि आत्मा अमर है जो सिद्धान्त कि इस समय पश्चिम के महाविद्वानों की समझमें भी आया, प्रसिद्ध विद्वान् लेंग साहेब लिखते हैं कि आत्मा की सत्ता हमारे लिये एक गुप्त वार्ता है अर्थात् हम नहीं जानते कि आत्मा क्या है।

(नं० २) किस प्रकार बच्चा एक दिन से लेकर वृद्धावस्था तक १०० वर्षों की पूरी आयु भोगने वाला बनता है इस आशीर्वाद में उस गणना का भी उपदेश किया गया है। बच्चों के लिये ऐसे आशीर्वाद सच मुच किंडर गार्डन (क्रीड़ाद्वारा शिक्षण) के उच्च से उच्च नियमों के अनुकूल बने हुए प्रतीत होते हैं

हे पुत्र ! (अङ्गात्, अङ्गात्) मेरे प्रत्येक अङ्ग—अवयव से तू (संस्रवसि) उत्पन्न हुआ है और (हृदयात्) मेरे हृदय से (अधि, जायसे) विशेषतया उत्पन्न है इस कारण (ते, प्राणम्) तेरे प्राण को (मे, प्राणेन) अपने प्राण से (सन्दधामि) पोषण करता हूं अतः हे बालक ! (यावदायुषं, जीव) जितनी अत्युक्त आयु है अर्थात् १०० वर्ष की आयु पर्यन्त तू ईश्वर करे कि जीता रहे ।

(अङ्गात्०) इत्यादि आधामन्त्र पूर्व व्याख्यात है । हे (पुत्र) पुत्र ! (वै) निश्चय से (वेदः, नाम, असि) वेदज्ञ—वेदमय प्रसिद्ध हो और (सः, शतं, शरदः, जीव) प्रसिद्ध हुआ १०० वर्ष पर्यन्त जीवन धारण कर ।

(अश्मा भव०) पूर्वार्द्ध पहले व्याख्यात है । हे (पुत्र) पुत्र ! तू (आत्मा, असि) निरन्तर ज्ञान सम्पन्न हो और ईश्वर करे कि बिना समय के (मा, मृथाः) मत मृत्यु को प्राप्त हो । तथा (सः, जीव०) अर्थ पूर्ववत् ॥

(असौ) हे बालक ! (पशूनां, हिङ्कारेण) गवादि पशुओं के "हिम्" ऐसे अव्यक्त शब्द से जैसे [त्वा] तुझे [अभि, जिघ्रामि] सूँघता हूं ।
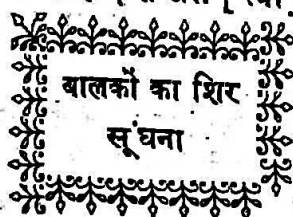
बालकों का शिर सूंघना

अगले चार मंत्र पढ़ कर बालक के शिर सूंघने का विधान है यह प्रेम प्रकाशनी क्रिया है ।

व्याख्या

आज कल प्रायः माथा, गाल ओष्ठ आदि को हाथ से स्पर्श करने तथा चुम्बन द्वारा प्रेम दर्शाने की रीति नाना देशों में प्रचलित है । परन्तु अब यूरोप के विचारशील अनुभवी डाक्टरों ने यह निश्चय करलिया है कि शरीर के किसी अंग को चुम्बन द्वारा प्यार करना ठीक नहीं । यदि किसी के शरीर में विषैला रोग होगा तो उस के सूक्ष्म अणु ओष्ठ द्वारा दूसरे के उस अंग में जहां पर चुम्बन किया गया है प्रवेश करके रोग उत्पन्न करेंगे । इसी अभिप्राय से अमरीका में कई स्थलों पर ऐसी सभाएं बन गई हैं जो चुम्बन को रोकने का प्रचार कर रही हैं । बच्चे को तो माता पिता ही नहीं किन्तु अड़ोसी, पड़ोसी, बन्धु, मित्र सब प्यार करते हैं । इसी लिये यदि किसी पुरुष स्त्री में कोई रोग हुआ तो वह उस की चुम्बन क्रिया द्वारा बच्चे में संचार कर सकता है यूरोप में कई डाक्टरों ने अनुभव किया है कि सुज़ाक के रोगी ने बच्चे का गाल चूमा और बच्चे को फुन्सियां निकल आईं । इस लिये बच्चों को चूमकर प्यार न करने के लिये पुराने ऋषियों ने माथा सूँघने की विधि सृष्टि में अनुभव करके प्रचरित की थी । इस विधि में किसी भी रोग के संचरित होनेका वह भय नहीं है जो थूक द्वारा होसकता है प्रश्न होसकता है कि क्यों पुराने आर्य्यों ने माथे को ही सूंघना दर्शाया और किसी अंगको क्यों नहीं । इस के उत्तर में हम कहेंगे कि माथे के भाग में भी स्पर्श इन्द्रिय प्रबल है और इसी लिये माथे

के सूंघने में सदव सुविधा होती है। एक प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान् विलयम जेम्स नामी जो "साईकोलोजी,, 'के हारवर्डयूनीवरसिटी, में प्रोफ़ेसर हैं अपनी पुस्तक "साईकोलोजी" "अध्यात्मविद्या" के पृष्ठ ६१ पर लिखते हैं जिससे इस बात की पुष्टि होती है उन् के लेख का अर्थ यह है कि

"चमड़ी के नाना भागों में स्पर्शइन्द्रिय की कोमलता भिन्न २ प्रकार से है। माथे, कनपटी और अगली भुजा की पीठ पर यह सब से प्रबल होतीहै"।

योरोप के कई विद्वान् मानते हैं कि कितने पुरुष स्त्रियों में एक दूसरे की गंध से प्रेम उत्पन्न होता है। उन के मतानुसार प्रेम की उत्पत्ति में चार कारण हैं। स्पर्श, गन्ध, स्वर और दृष्टि।

स्पेन्सर साहिब कहते हैं कि जुदा २ भेड़ों के बच्चों को एक जगह इकट्ठा करो और एक भेड़को उनमें छोड़दो तो भेड़ सूंघ २ कर अपने बच्चे को पालेगी........ इस लिये स्पर्श अथवा गंध स्नेह भाव प्रकट करनेमें भारी काम करता है।

प्रत्येक प्राणी में एक खास प्रकार की गंध होती है और मनुष्य में भी वैसा ही गंध है वार्ताओं में, माता पिता पुत्र का माथा सूंघते हैं ऐसा बहुत मिलता है।

आर्य्य लोगों में भी पहिले मस्तक सूंघने की रीति थी। पुत्र, शिष्य आदि बड़ों को प्रणाम करते और बड़े उन का माथा सूंघते थे यह बात महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में बार २ देखने में आतीहै। भीम का माथा धृतराष्ट्र ने सूंघा।

फीलीपाइन द्वीप के वासियों की गंध शक्ति इतनी तीव्र होती है कि रूमाल को सूंघ कर रूमाल वाले को बतला देते हैं। चीन में आंख के पलक बंदकर के लम्बा श्वास लेकर प्यार करने की भी रीति जारी है।

मनुष्य जाति में कई उपजातियें तो केवल सूंघने से ही स्नेह प्रकट करती हैं। मदरास इलाके की पहाड़ी जातियों में यही रीति पाई जाति है। मुझे प्यार करो इसकी जगह वह कहते हैं कि मुझे सूंघो। ब्रह्मी और मलाया लोगों में भी यही रीति मालूम होती है। अफ्रीका की कई जातियों में यह आघ्राण क्रिया पाई जाती है उत्तर अमरीका के अस्किमो जाति के लोगों में और ब्लेकफीर में बसने वाली इन्डियन जाति में भी यह क्रिया पाई जाती है। न्यूजीलेंड वासी इस क्रिया को "हौंगी" कहते और करते हैं। बोरनियों के लोगों में भी प्यार करना सूंघना ही है। मनुष्य की कई उपजातियों में जो भूगोल के नाना द्वीपों में बसती हैं आघ्राण विधि का होना उन के आर्य्य सन्तान होने का प्रबल दृष्टान्त है।

चुम्बन से बार २ बच्चों को प्यार करने की प्रथा योरोप आदि देशों में अधिक है भारत वर्ष में आघ्राण विधि का प्रचार यदि अब नहीं रहा तो भी सन्तान के शिर पर हाथ से स्पर्श करने की रीति जो प्रचलित है वह चुम्बन से बहुत अच्छी है। वो रोग कि तत्व थूक में रहते हैं वह हाथ में नहीं रहते। और इस से भी उत्तम आघ्राण विधि है। अब जब कि यूरोप के डाक्टर लोग चुम्बन क्रिया में बहुत दोष पारहे हैं तो सम्भव है कि संतान वा शिष्य से प्यार करने के लिये फिर यह आघ्राण

विधि जागृत हो क्योंकि प्यार करनेके साधन (१) स्पर्श (२) आघ्राण ३) स्वर [४] दृष्टि तो यूरोपके विद्वान् मानते ही हैं ।

हे (वीरे) वीरतायुक्त वधु ! तू (मैत्रावरुणी, इडा,ऽसि) मित्रावरुण देवताओं अर्थात् अध्यापक उपदेशकों को जैसे इडापात्री—(जिसमें उन दोनों के खाने को हविः शेष रक्खा जाता है) प्रिय है वैसे ही मित्र और श्रेष्ठ पुरुषों के लिए तू प्रिय है । क्योंकि तू (वीर, मजीजनथाः) वीर को पैदा कर चुकी है और (या,ऽस्मान्) जो हमको (वीरवतः अकरत्) वीर वाला बना चुकी है (सा, त्वम्) वही तू ईश्वर करे कि फिर भी (वीरवती, भव) वीर पुत्र वाली हो ॥

[व्याख्या] इस मन्त्र में पत्नी को वीर पत्नी संबोधन कर के उसको अध्यापक और उपदेशक की प्रिया कहा गया है जिसका भाव यह है कि उस वीर नारी ने विद्या और सदाचार की भी पूर्ण शिक्षा ली हुई है फिर बतलाया है कि यह वीर सुशिक्षित सदाचारिणी अपने मित्र मंडल अर्थात् सम्बन्धियों और अन्य श्रेष्ठ पुरुषों से भी उक्त तीन गुणों के कारण मान पाने वाली है और इससे बढ़कर मान पाने का यह कारण है कि इसने वीर सन्तान को जन्म दिया है ऐसी वीरा पत्नी के लिए पति प्रार्थना करता है कि वह फिर भी वीर सन्तति को प्रसव करे।

हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्वी होने वाले बालक ! तू [सरिरस्य*, मध्य] लोकों (सम्बन्धियों) के बीच में वर्तमान होकर[अपां, प्रपीनम्] जलीयरसों से स्थूल हुए[ऊर्जस्वन्तम्] बलयुक्त [इमम्,स्तनम्] इस स्तन को [धय] पी । [मधुमन्तम् ,उत्सम्) सुस्वादु करने के तुल्य इस स्तन को समझ कर [जषस्व] सेवन किया कर दुग्ध के सेवन से—[अर्वन्] गति शील होने वाले ! [समुद्रियम्] समुद्र—अन्तरिक्ष लोक सम्बन्धी [सदनम्] सब ज्ञान को [आ, विशस्व) ईश्वर करे कि तू प्राप्त हो ।

हे(सरस्वति) ज्ञान वाली स्त्री! (ते,यः, स्तनः) तेरा जो स्तन (शशयः) शरीर में वर्तमान है (यः, मयोभूः) जो सुख देने वाला है (येन) जिस स्तन से ।(विश्वा, वार्याणि) बालक के समस्त स्वीकरणीय अंगों को तू (पुष्यसि) पुष्ट करती है । (यः, रत्नधाः) जो दुग्धरूप रत्न का धारण करने वाला है (वसुविद्) दुग्धादि रूप धन को बालक के लिए लाभ कराता है (यः, सुदत्रः) जो शोभन दान है (इह) यहाँ (तम्) उस बालोपकारी स्तन को (धातवे) बालक के पीने के लिए (कः) कर ।

ह (आपः) जीवन के हेतुभूत जलो ! तुम सब (देवेषु) विद्वानों के कार्यों के निमित्त (जागृथ) उनके साधन रूप से स्थित होते हो । इससे(यथा) जैसे (देवेषु) (जागृथ) देव कार्य निमित्त स्थित होते हो (एवम्) ऐसे ही (अस्याम्) इस (सपुत्रिकायाम्, सूतिकायाम्) पुत्र सहित प्रसूता स्त्री के कल्याणके निमित्त (जागृथ) (जाग्रतेत्यथः, पुरुषव्यत्यय यश्छान्दसः) कार्य साधक रूप होकर स्थित होओ ॥

---

* इमे व लोकाः सरिरमिति श्रुतिरित्युव्वटाचार्यो यजुर्वेदभाष्ये ।

(१) वेदः—वेदपाठी, नाम—प्रसिद्ध, असि—भवसि लोके, मम वदिकत्वप्रसिद्धेरिति भावः, इति श्रीसत्यव्रतः सामश्रमी ।

[व्याख्या] दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में जिस मंत्र को पढ़ कर देवे उस की व्याख्या-यह है। इस मंत्र में बतलाया गया है कि अपनी मा का दूध पीने वाला बालक तेजस्वी बल युक्त होगा और मा के दूध से बढ़ कर उसके लिये कोई भी सु-स्वादु पदार्थ नहीं है और माता के दूध से ऐसी उत्तम बुद्धि बढ़ती है कि वह सम्पूर्ण ज्ञान को बड़ा हो कर प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेद और पश्चिमी डाक्टरों का भी माता के दूध के विषय में यही मत है।

(नं० २) वाम स्तन पिलाने से पूर्व जो मन्त्र पढ़ा जाता है उसकी व्याख्या यह है। इस में बतलाया गया है और स्त्री को अपने अद्भुत स्वत्व से विज्ञकिया जाता है कि उस के स्तन सुख देने वाले बालक के सम्पूर्ण अंगो की पुष्टि के कारण और रत्न समान अमूल्य दूध के कोष हैं। जैसे गृहस्थ के सब धन्धे धन से होते हैं वैसे बच्चे का एक मात्र आधार दूध है। मा का प्रेम से बच्चे को दूध पिलाना परोपकार-युक्त कर्म होने से शोभा युक्त दान है। फिर पत्नी से कहा गया है कि ऐसा जो बा-लक का हितकारी स्तनहै उस स्तन को तू मन की रुचि से बालक को पीने के लिये दे। सब विद्वान् तथा विदुषी स्त्रियां जानती ह कि जब तक माता दूध पिलाने की इच्छा न करे ठीक तौरपर दूध उतरता नहीं इस लिये दूध पिलाते समय मन को किसी और काम में न लगाना चाहिये

सृष्टि में सब पशु प्रसूता होने पर अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं।

अपनी माता के दूध के समान संसार में बच्चे के लिये कोई और दूध अमृत नहीं यह मत सुश्रुत का है।

जो स्त्रियां श्रम नहीं करतीं, व्यसनों तथा विलासों में विशष मुग्ध रहती हैं अ-थवा अत्यत निर्बल वा रुग्ण होती हैं वह दूध नहीं पिला सक्तीं। जिन्हों ने विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन संस्कार के नियम पाले हैं वह बराबर दूध पिलाने के योग्य होती हैं।

पश्चिमी डाक्टर म्यूर साहेबके लेख का सार इस विषय संबंधी यह है। नीरोग माता का बच्चे को दूध पिलाना सृष्टि नियमानुकूल हैं। दूध न पिलाने से माता की हानि होती है। १० मास तक माता दूध पिलायेगी तब तक वह पुनः गर्भधारण नहीं करे-गी और बहुत जल्दी बच्चे उत्पन्न करने से जो उसके शरीर को क्षती होगी उससे वह बच जावेगी। भविष्य में छाती के रोग दूध पिलाने वाली माता को प्रायः नहीं होते। यह कर्त्तव्य नीरोग माताओं का है यह बात याद रखनी चाहिये॥

(नं० ३) व्याख्या—जिस मन्त्र को उच्चारण करके प्रसूता स्त्री के शिरकी ओर ज़मीन पर एक कलश जल का भर कर दश रात्रि तक रक्खा जाता है उस की व्याख्या यह है पश्चिमी विद्वान् बतलाते ह कि जल अनेक प्रकार की मलिन व अपवित्र वायु को शोषण करने की शक्ति रखता है। प्रत्येक घर में बूढ़ी माता कहा करती ह कि "अनढके पानी के पीने से दोष होता है" । प्रत्येक हिन्दु घर में कलश गागर आदि पीने के पानी को ढांककर रखना उचित समझा जाता है। अपान वायु जिस को अंगरेजी में "कार-बानिकाएसिडगेस" कहते हैं वायुकी अपेक्षा भारी (गुरु) होने से पानी के बरतनों

में प्रवेश कर जाता है। इस के अतिरिक्त अनेक प्रकार की वायु रूप वा गेसें पानी में शोषण होती रहती हैं।

प्रसूता स्त्री के सरहाने की ओर पानी को कलश रखने से यह अभिप्राय है कि जो विकृत वायु कदाचित् शिरकी ओर को आवे उस को कलश का पानी जो चोकीदार की तरह जाग रहाहै पकड़ ले।

कलश का पानी प्रतिदिन दश दिन तक बदलते रहना चाहिये। दश दिन तक ही पानी रखने की ज़रूरत इस लिये है कि प्रसूता स्त्री दश दिन तक निर्बलता के कारण प्रसूतागार में रहेगी और नये जन्मे हुए बच्चे को अपवित्र वायु से भी बचाने की विशेष ज़रूरत है। फिर माता भी सबल होजावेगी और बच्चा भी पुष्ट होता जावेगा।

प्रसूतागार में दश दिन तक होम करना

प्रसूत स्थान में न्यूनसे न्यून१०दिनतक रहनेकी विधि प्राचीन समयमें थी जब कि वीर नारियां प्रसूता होती थीं। अंगरेजी डाक्टर कम से कम १२ दिन तक और साधारण स्त्रियों के लिये १ मास तक प्रसूत स्थान में रहने का विधान करते हैं। यूनानी कई हकीम ४० दिन तक प्रसूतागार में रहना उपयोगी कहते हैं। भारतवर्ष देश में शहरों की स्त्रियां प्रायः ४० दिन तक विश्राम करती हैं। सब से कम ज़रूरत प्रसूतागार में रहने की उन को पड़ती है जिन श्रमजीवी वीर नारियों को लिखे पढ़े "अर्द्ध सभ्य वा जंगली स्त्रियां,, कहते हैं। देश, काल तथा अपनी शक्ति का विचार करके आजकल स्त्रियों को उचित दिनों तक विश्राम करना चाहिये।

साधारण हवन तो सदैव करना ही चाहिये किन्तु १० दिन तक प्रातःसायं दो काल भात (पकेहुए चावल) और सरसों का हवन करने का विधान है। चावल अन्नों में एक श्रेष्ठ "पौष्टिक वीर्य्यवर्द्धक,, अन्न है और सरसों परम रोग नाशक ह। मट्टी का तल वा केरोसीन आयल प्रसूता के कमरों में कभी नहीं जलाना चाहिये, उस की जगह सरसों का तैल ज़लाना ठीक है। गुजरात में सरसों का तेल नहीं जलाते किन्तु अरण्डी का जलाते हैं वह भी उत्तम है।

आयुर्वेद के परम प्रामाणिक ग्रन्थ चरक संहिता के सूत्र स्थान चतुर्थ अध्याय में सरसों को खाज नाशक, शिरोविरेचनीय, (दिमाग़ के बलग़म को निकालने वाला) और मल बन्धक, लिखा है तथा इस के तेल को कटु, उष्ण, रक्तपित्त को दूषित करने वाला, कफ, शुक्र तथा वायु को हरने वाला, तथा खुजली, कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाला लिखा है। रक्त पित्त का दूषक तथा शुक्र का हरने वाला सरसों का तेल तभी होसक्ता है जब वह खाने में सेवन किया जाय।

राक्षस बाधा की निवृत्ति के लिये वैद्यक ग्रन्थों मे होम अथवा धूप(धूनी)का प्रयोग लिखा हुआ पढने में आता है, जिससे अनुमान होता है कि वायुमें विचरने वाले अदृश्य सूक्ष्म विषैले कृमि ही राक्षस हैं। यूरुपके डाक्टर लोग जिनको जर्मस् (रोगके अदृश्य कृमि) कहते हैं उनको भी आयुर्वेद की परिभाषामें प्रकरणानुसार राक्षस शब्दका वाचीकहा गया है। सरसों को भात के साथ हवन में डाल ने से रोगके अदृश्य कृमि तक निवृत्त हो सकते हैं। इस लिये दश दिन तक यह हवन अवश्य करें।

जिन दो मंत्रों से भात तथा सरसों की आहुति देनी हैं वह मंत्र तथा उनका अर्थ नीचे लिखते हैं।

वैदिक प्रेस की संस्कारविधि में यह मंत्र अशुद्ध छपे हैं हमने मूल में उनको शुद्ध कर दिया है।

(शण्डा मर्काः) मारने वाले दुष्ट रोग (उपवीरः, शौण्डिकेयः) पीड़ा पहुंचाने में समर्थ, और इस बालक के सुख में विघ्न करने वाला रोग (उलूखलः) पापियों के सम्बन्ध से पैदा हुआ रोग (मलिम्लुचः) मलिन वस्तुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न रोग (द्रोणासः) नासिका को विगाड़ने वाला रोग (च्यवनः) शरीर को कृश करने वाला रोग (इतः) इस बालक से, ईश्वर करे कि (नश्यतात्) नष्ट होजावे।

(आ, लिख, अनिमिषः) सब ओर से दूसरे की वस्तु को विगाड़ने वाला, और दूसरे को दबाने के लिए निरन्तर व्यापार करने वाला पुरुष (किंवदन्तः) खोटा—बुरा बोलने वाला (उपश्रुतिः) पास में सुनकर दूसरे की बुराई करने वाला (हर्यक्षः) पीले नेत्रवाला अर्थात् क्रोधी (कुम्भी) दीनों को सताकर अपना कार्य सिद्ध करने वाला (शत्रुः) व्यर्थ में किसी से शत्रुता रखने वाला अर्थात् दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला (पात्रपाणि) सर्वदा भिक्षा माँगनेवाला (नृमणिः) मनुष्य को मारने वाला, (हन्त्रीमुखः) हिंसा प्रधान है मुख जिसका अर्थात् जन्तुओं का हिंसक (सर्षपारुणः) सरसों की तरह उग्र—लाल पीले वर्णका अर्थात् गिरगट की तरह बात २ में रङ्ग बदलने वाला (च्यवनः) जिस के सङ्ग से मनुष्य अपने धर्म कर्म से च्युत हो जाय ऐसा पुरुष (इतः) इस बालक से, ईश्वर करे कि (नश्यतात्) दूर रहै, अर्थात् ऐसे पुरुषों का सङ्ग इस बालक को न प्राप्त हो।

व्याख्या (नं० १) जिन दो मन्त्रों से सरसों तथा भातके हवन का विधान है उन में से पहिले की व्याख्या निम्न लिखित है। पहिले मन्त्र में दो प्रकार के रोगों का वर्णन है एक जो पापियों के सम्बन्ध से मनमें बुरी वासना के रूप से उत्पन्न होकर मनको मारते हैं और दूसरे शरीर, स्थान आदि में मलिनता से उत्पन्न होकर अनेक प्रकार से शरीर को कष्ट देते हैं जिन की विद्यमानता नासिका को दुर्गन्ध रूप से प्रतीत होने लगती है और जो नज़ले, जकाम आदि के रूप से नासिका को बिगाड़तेहैं अथवा जो शरीर की निर्वलता का कारण हैं वह सब रोग ईश्वर की कृपा और होम आदि उत्तम कार्यों के कारण नष्ट हों।

(नं० २) दूसरे मन्त्र में हिंसक, अनाचारी मनुष्यों से बच्चे को बचाने का विधान है। इसी लिये सर्वत्र प्रसूतागार की रक्षा के लिये कोई हितैषी पुरुष व स्त्री के बैठे रहने का रिवाजहै। अतः प्रसूतागार की रक्षा और नयेबच्चे को अनाचारियों और पापियों के सङ्ग से बचाने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह जो रिवाज है कि प्रसूतागार में १० दिन तक विशेष हितकारी पुरुष स्त्रियों के सिवा कोई अपरिचित पुरुष स्त्री नहीं जा सकती यह ठीक है मित्र मिंडल के लोगों अथवा परिचित धर्मात्मा जनों को ही जाने देना चाहिये।

आगे तीन मन्त्र पढ़ कर आशीर्वाद देने का विधान है।

(ये, तनूपाः) जो शरीर की रक्षा करने वाले वा शरीर की विद्या सेसम्पन्न (दैव्याः ऋषयः) देवता ओं* में होने वाले ऋषि हैं, वे (नः) हमको (मा, हासिषुः) न छोड़ें अर्थात हमसे सम्बन्ध रक्खें। और (ये) जो (नः) हमारे (तन्वः) शरीर से (तनूजाः) उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं वेभी हमें न छोड़ें। हे (अमर्त्याः) देवता विद्वान् लोगो ! (नः मर्त्यान्) हम मनुष्यों के प्रति (अभि, सचध्वम्) सब प्रकार से सम्बन्ध रक्खो और (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिए (प्रतरम्) प्रकृष्टतर (आयुः) अवस्था को (धत्त) दीजिए ॥ १ ॥

परमेश्वर उपदेश करते हैं—(जीवेभ्यः) जीवों के लिए (इमं, परिधिम्) इस सृष्टिक्रमरूपपरिधि-नियम को (दधामि) देता हूं वा रखता हूं (एषाम्) इन जीवों के बीच में (अपरः) सृष्टि नियमानुकूल नहीं चलने वाला कोई जीव, जिससे कि (एतम्, अर्थम्†) इस गन्तव्य मरण मार्गको [नु, मा, गात्] शीघ्र न प्राप्त हो। किन्तु (पुरूचीः) बहुत प्रकार से ज्ञानयुक्त होकरयह मेरी प्रजाएं (शतं, शरदः, जीवन्तु) सौवर्षपर्यन्त जीवन को धारण करें और (पर्वतेन) यज्ञ से पैदा हुए मेघसे (निघण्टू में पर्वत-मेघका नाम है); [मृत्युम्] अकाल मृत्यु को [तिरो-दधताम्] तिरोहित करें—छुपावें अर्थात् अकाल मृत्यु से न मरें ॥ २ ॥

(विवस्वान्) विवासयति, अविद्यारूपं तम इति विवस्वान् ईश्वरः। ऐसा अविद्या को हटाने वाला परमात्मा [नः] हमारे लिए (अभयम्) निर्भयताको (कृणोतु) करे

[यः] जो परमात्मा [सुत्रामा] अच्छा रक्षण करने वाला (जीरदानुः) प्राणदेने वाला और (सुदानुः) कल्याण देनेवाला है।

(इह) इस लोक में (इमे) ऐसे—जैसे कि हमारे हृदय में हैं (बहवो वीराः, भवन्तु) बहुत से वीर उत्पन्न हों और (मयि) मुझ यजमान में (पुष्टम्) पोषण [गोमत्, अश्ववत्] गौआदि से युक्त और घोडे आदि से युक्त [अस्तु] हो; अर्थात् मेरी पुष्टि, गौ घोडे आदि सहित हो ॥

आशीर्वाद के मन्त्रों की व्याख्या—;

(नं० १) इस मन्त्र में बतलाया गया है कि जो आयुर्वेद शास्त्र में परम प्रवीण ऋषि हैं वह परम वैद्य हमसे सदैव सम्बन्ध रक्खें अर्थात् जो मनुष्य चाहता है कि उसके शरीर की रक्षा हो वह नीम हकीम वा अनाड़ी दाइयों की शरण न ले किन्तु उत्तम से उत्तम योग्य वैद्य वा डाक्टर तथा चतुर विज्ञ दाइयों को प्रसव काल में विशेषकर के बुलावे ताकि बच्चे मूर्ख और अनाड़ी दाइयों की मूर्खता और नीम हकीमों की खराब ओषधियों के कारण मरे नहीं। ऐसे ही मन्त्रों के आधार पर चरक शास्त्र में प्रसूतिकागारमें अनेक औषधियां रखने और सद्वैद्यों की सम्मति से काम

(*) विद्यासम्पन्न होनेसे मनुष्य संज्ञा, सदाचार, परोपकारादि दिव्य गुणों के धारण से देव संज्ञा, वदिक ज्ञान संपत्ति और योगाभ्यासादि से "ऋषि" संज्ञा होती है।

† अर्तेरिदं रूपमिति सायणाचार्यः।

करने का विधान है। फिर मन्त्र के पिछले भाग में बतलायागया है कि महा विद्वान् और परोपकारी सद् वैद्य ही दीर्घ आयु का कारण है और वह भी मनुष्यों से प्रेमकरं

(नं० २) व्याख्या--; अहो ! इस मन्त्र को पढ़कर मन आश्चर्यमय हो जाता है कि कैसी उत्तम और परम हितकारी शिक्षा जगतपिता परमेश्वर ने दी है ।—

ईश्वर का उपदेश है कि सृष्टि क्रम के जो विपरीत नहीं चलते वह दीर्घ आयु को प्राप्त होते हैं। शब्द तो छोटे हैं परन्तु सागर को गागर में भर दिया है। आयुर्वेद शास्त्र और मेडिकल साइन्स बिना इसके क्या है कि सृष्टि के उन नियमों की व्याख्या करे जिन के अनुकूल चलने से आयु सुरक्षित होती है। आयु सृष्टि नियमके अनुकूल चलने से बराबर बढ़ सकती और विपरीत आचरण सेघट सकती है इसका भी अपूर्व रीति से बोधन कराया गया है। सौवर्ष की आयु से कम कोई मनुष्य आयु न भोगे यह मन्त्र बतलारहा है और होम इतना भारी कियाजाय कि घर २ में मानो हवन के बादल दीखाई दें। ऐसे नित के होम होने से वायु शुद्ध होकर अकाल मृत्यु का कारण नहीं बनेगी। आयु वृद्धि का एक भारी कारण होम है इसको भी यहां जनाया गया है।

(नं० ३) व्याख्या—; इस मंत्र में बतलाया गया है कि सर्वाधार परमात्मा सृष्टि नियमों का चालक होनेसे सब को अधिक जीवन व कल्याण देने वाला है फिर बतलाया गया है कि वह मनुष्य को निर्भयता प्रदान करे और ज्ञानयों के यहां इसी कारण बहुत वीर सन्तान होती हैं। बीर सन्तान ही पिता के ऐश्वर्य की वृद्धि का कारण बनती हैं और वीर सन्तान के आगे दरिद्रता नाम को नहीं रहती। परमेश्वर ही ऐसी वीर का भी रक्षक है।

जात कर्म और चरक

चरक संहिता शारीर स्थान अध्याय ८ के ७५ सूत्र में जो लिखा है उसका भावार्थ यह है कि नवाँ महीना आरम्भ होने से पूर्व ही सूतिकागार (प्रसूत स्थान) बनाना चाहिये और वह अति उत्तम भूमि में हो जिस में हड्डी कंकड़ आदि नहों तथा रूप रस गन्ध युक्त पवित्र भूमि हो अर्थात् जो देखने में सुन्दर और कोमलता वाली तथा दुर्गन्ध जिस में नहो। पूर्व वा उत्तर को द्वार बनाये।

इस सूत्रपर विचार करते हुये हमें लज्जा से मानना पड़ता है कि आर्य सन्तान सूतिकागार के स्थान में गन्दी सड़ी हुई अन्धेरी कोठरी जिसको 'हत्यागार' कहना चाहिये देवियों के प्रसव के लिये प्रायः निर्माण करती है। जब तक शास्त्रों के कथनानुसार सूतिकागार नहीं बनेंगे तब तक भारत सन्तान की उन्नति नहीं होगी।

'सूत्र सं० ७७' इस में बतलायाहै कि बेल वृक्ष, तेन्दु, गोंदनी भिलावा, वर्णवृक्ष, और खैर की लकड़ियें तथा अन्य लकड़ियें मंगावे। अथर्ववेद के जानने वाले ब्राह्मण जो जो वस्तुऐं बतावें उन सबको सञ्चय करे। और वस्त्र आलेपन तथा ओढ़ने बिछौने के कपड़े उस घर में स्थापन करे। जिन जिन पदार्थों की गर्भवती इच्छा कर अथवा उसके लिये उपयोगी हों उन सब को ऋतु अनुसार जैसे आवश्यक हों वैसे

द्रव्य, अग्नि, जल, ओखली, मलमूत्र के त्यागने को कुण्डे, स्नान करने के साधन, भोजन बनाने का स्थान इत्यादि बनावे।

अथर्ववेद के पण्डित आत्मिक और शारीरिक चिकित्सक समझे जाते हैं कारण कि सुश्रुत में आयुर्वेद को उपवेद कहा है। आज कल वैद्य डाक्टर वा हकीम की सम्मति से एक मास पहिले कोई कुछ भी पदार्थ सूतिकागृह में नहीं रखता और जब तक प्रसव पीड़ा आरम्भ न हो जाय तब तक कोई बिछौने आदि तक का भी प्रबन्ध नहीं करता। बड़ौदे के एक मरहट्टा सरदार ने हमें एक बात सुनाई कि उनकी ज्ञाति में एक लड़की को प्रसव पीड़ा आरम्भ होगई उस ने सासु से कहा। सासु ने कहा, 'अभी मुझे परिवार की रोटी बनानी है ठहर जा और तू एक कोनेमें चुप बैठी रहे। प्रसव होगया, योग्य दाई के पहुँचने से पहिले लड़की ने प्राण त्यागदिये। ऐसे लाखों प्रसव भारत वर्ष में बिगड़ते हैं और रातदिन लाखों देवियें मृत्यु को प्राप्त होती हैं जब तक आयुर्वेद की आज्ञानुसार सद्वैद्य वा उत्तम दाईयोंआदि से महीना पहिले सम्मति आदि न ली जावेगी तब तक निर्विघ्न प्रसव होना अति दुस्तर बना रहैगा।

'सूत्र नं० ७८' उस घर में घी, तेल, शहद सैन्धा नमक, सञ्चर नमक, काला नमक, वायबिड़ंग, गुड़, कुड़ा, देवदार, सोंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मण्डूक पर्णी, इलायची, लांगुली कन्द, वच, चीता, चव्य, लता, करंज हींग, सरसों, लहसन, कनक वृक्ष, गेहूं, कदम्ब, अलसी, पेठा, भोजपत्र, कुलथी, मैरेयसुरा तथा आसव इन सबका संग्रह करके रक्खे।

'सूत्र नं० ७६' दो पत्थर, दोमूसल, दोऊखल, आदि, २ सोने चाँदी की तीक्ष्ण सुइयें धागे की पेचक, लोहे के तीक्ष्ण शस्त्र, सोना चाँदी, बेल की लकड़ी की बनी चारपाई तेन्दु और रंगुदी की लकड़ियें आग जलाने के लिये, जिन स्त्रियों ने अनेक बार प्रसव कराया हो ऐसी हित रखने वाली जो गर्भवती से अत्यन्त प्रेमरखती हों— ऐसी स्त्रियाँ रखनी चाहिये। परन्तु वे स्त्रियाँ 'दाइयां' बच्चा पैदा कराने में चतुर, चित्त की बात को समझने वाली शोक रहित, स्वभाव से दयालु, कष्ट के सहन करने वाली होनी चाहियें तथा अथर्ववेद के जानने वाले ब्राह्मण और अन्य भी जो वस्तुएं आवश्यक प्रतीत हों और जिन वस्तुओं को वे ब्राह्मण कहें वे उपस्थित करनी चाहियें। जिस २ बात को वृद्ध स्त्रियें और अथर्ववेदी ब्राह्मण कहें उसी प्रकार करना चाहिये।

'सूत्र ८१' प्रसव काल के समय स्त्री के यह लक्षण होते हैं, क्रम 'ग्लानि' अंगों में ग्लानी, मुख और नेत्रों की शिथिलता, वक्षस्थल (छाती) के बन्धन से खुले गये प्रतीत होने, कुक्षि का नीचे की ओरजाना, नीचे का भाग भारी प्रतीत होना, वस्ती, वक्षण, कमर, पसवाड़े और पीठ में चमक के साथ पीड़ा होना, योनि से पानी, का जाना, अन्न में अरुचि होना, उसके अनन्तर प्रसव पीड़ा होना, गर्भ का जल निकलने लगना

'सूत्र ८२' प्रसव पीड़ा उत्पन्न होते ही गर्भवती स्त्री को पृथवी पर नर्म बिछाई हुई शय्या पर लेजाना चाहिये और योग्य गुणों वाली जिनका पहिले वर्णन किया जाचुका है उन सब स्त्रियों को उस के चारों ओर बैठ कर मीठे मीठे वाक्यों से धैर्य देते हुये उसके चित्त को शान्त करते रहना चाहिये।

(सूत्र ८३) कई कहते हैं कि यदि वह गर्भवती प्रसव वेदना से पीड़ित होते हुए भी प्रसव न करेतो उसको कहना चाहिये तू उठकर बैठजा और दो मूसल वा एक मूसल लेकर ओखली में धान कूट और बराबर हाथ पाँव को हिला, जंभाई ले, इधर उधर फिर।

इसका निषेध अगले सूत्र में इस प्रकार है।

(सूत्र ८४) ऐसा कभी नहीं करना चाहिये गर्भवती को दारुण परिश्रम करना किसी काल में भी उचित नहीं और विशेषकर प्रसव काल में तो सब धातु और वात आदि दोष शीघ्र ही प्रचलित होजाते हैं। यदि सुकुमार (नाजुक) स्त्री ओखली में धान कूटने लगेगी तो इस परिश्रम से कुपित हुआ वायु दूषित होकर प्राणोंको हरलेता है। और उस समय चिकित्सा करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। उस समय किसी प्रकार का उपद्रव होजाने से उस की शान्ति नहीं होती इसलिये ऋषि लोग मूसल लेकर धान कूटनादि श्रम करना उचित नहीं समझते किन्तु जम्भाई लेना, और इधर उधर टहलना यह क्रम अच्छा है।

(सूत्र ८५) ऐसे समय में उसे कूठ, इलायची, लांगूली कन्द, वच, चित्रक और कन्जेका चूर्णकर वारम्बार सुंघाना चाहिये तथा भोजपत्र या शीशम के गोंद की धूनी थोड़ी २ देर के पीछे योनि में देनी चाहिये। कमर, दोनों पसवाड़े, पीठ और चूतड़ आदि स्थानों की गुनगुने तेलसे मालिश करे ऐसा करने से गर्भ की नीचे की ओर प्रवृत्ति होजाती है। जब ऐसा प्रतीत होकि गर्भ हृदय की ओर से पेट में आ गया है और योनि द्वार में पहुंचनाही चाहता है और प्रसव वेदना अत्यन्त शीघ्र २ होने लगती है, तब जानना कि इसका गर्भ अधो मुख होकर बाहर आनाही चाहताहै। तो इसे शय्या पर बिठाकर कहै कि तू अब भीतर से गर्भ को बाहर धकेलने का यत्न कर और इधर,उधर से मालिश पूर्वक नर्म हाथ से उस गर्भको बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये।

(सूत्र ८८) इस सत्र का सार यहहै कि गर्भिणी स्त्री को प्रसव पीड़ा न होती हो तो अधिक जोर लगाकर धकेलने का यत्न न करे क्योंकि प्रसव वेदना के बिना ही जो स्त्री गर्भ को धकेलने के लिये यत्न करती है वह व्यर्थ ही जाता है। और उसकी सन्तान विकृति को प्राप्त होतीहै अथवा इस स्त्री को श्वास खाँसी राजयक्ष्मा और प्लीहा रोग होते हैं। जैसे छींक डकार, वात, मूत्र, पुरीष, इनका वेग यत्न करने पर भी बिना समय नहीं होसक्ता उसी प्रकार बिना प्रसव-समय-उपस्थिति के कितना ही जोर से प्रसव होने का यत्न किया जावे परन्तु वह अपने समय के बिना प्रगट नहीं होता। जिस प्रकार आयेहुये छींक आदि वेगों के रोकने से रोग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार प्रसव काल प्राप्त होनेपर उसको निकालने का यत्न न करने से भयंकर परिणाम होता है। प्रसव वेदना उपस्थित होनेपर धीरे२ बालक बाहर धकेलना चाहिये। जबबालक प्रकट होतेहुये उसके शरीर में तथा योनि में पीड़ा होने से व्याकुलता होनेलगे तो उस समय उसके समीप वाली स्त्रियाँ कहैं धन्य है! धन्य है! बच्चा पैदा हुआ! बच्चा

पैदाहुआ। ऐसा कहने से उस स्त्री के शरीरमें हर्ष उत्पन्न होनेसे प्राण प्रफुल्लित हो जाते हैं।

(सूत्र ८६) बच्चे के जन्म के पश्चात् देखे कि जेर निकली है कि नहीं। यदि न निकली होतो एक दाई प्रसूता की नाभि के ऊपर दहिना हाथ रख कर उससे नाभि को दबावे और बांयें हाथसे पीठको बल पूर्वक दबावे और हिलावे फिर पाँव की एड़ियों को नाभी के समीप लेजाकर उस के दोनों नितम्बों (चूतड़) को अच्छी तरह से पीड़न करै।

(सूत्र ६० से ६३ तक) इन सूत्रों में जेर को निकालने की औषधियें वर्णित हैं। जिनके देने की यदि जरूरत पड़े तो किसी सद्वैद्य या अनुभवी दाई की सम्मति लेकर उचित कार्य्यवाही करै।

यदि योग्य वैद्य न मिले तो योग्य डाक्टर की सम्मति से उचित प्रवन्ध कर।

(सूत्र ६४) उत्पन्न हुये बालक के कान के निकट दो पत्थरों को बजावे और शीतल वा गरम जल से जैसा उचित हो, मुखको धोवे और छींटे देवे जिससे उसकी मूर्छा दूरहो और प्राण प्रफुल्लित हों। फिर यदि जरूरत होतो एक छाज से धीरे २ हवा करै तथा बालककी मूर्छा दूर करने और प्राणों के प्रफुल्लित के लिये उचित उपाय करै।

(सूत्र ६५) जब बालक होश में आकर रोने लग और स्वस्थ होजावे तो उसे स्नान करावे तथा हाथादि से स्वच्छ करे। जिस दाई की हाथ की उँगलियों के नख उत्तमतासे कटे हों वह उँगली पर उत्तम साफ धुनी हुई रुई के फोये को लपेट उस बालक के तालु, ओंठ, और कण्ठ को साफ करै। फिर रुई के फोयेको तेल में भिगो कर बालक के तालु पर रक्खे। और वमन कराने के लिये सैन्धा नमक और घी को युक्ति से काम में लावे।

(सूत्र ६६) इस सूत्र में बालक की नाल काटने की विधि का उल्लेख है। नाभि से, आठ अंगुल लम्बी छोड़कर जिस स्थान पर से काटना हो उसके दोनों ओर ऊपर और नीचे से धागे के साथ बांध देना चाहिये। फिर उन दोनोंबन्धनों के बीचमें तीक्ष्ण धार वाली छुरी से नालको काट देना चाहिये फिर जो नाल नाभि से आठ अंगुल लगी हुई है उसे सूत के डोरे से बांध कर बालक के गले में इस प्रकार ढीली बांधे कि जिस से वह खिचे नहीं और बालक के नर्म शरीर पर उसका असर भी न पड़े।

(सूत्र६७) यदि बालक की नाभि पकजावे तो पठानी लोध, मुलहठी, प्रियंगु, हल्दी, और दार हल्दी इन के कल्क द्वारा सिद्ध कियाहुआ तेल उस नाभिपर लगावे। अथवा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को तेल में मिलाकर नाभिपर लगावे।

(६८-६६) सूत्रों में उन औषधियों का वर्णन है जो ठीक नाल के न काटने की दशामें होनेवाले रोगों पर देनी चाहियें।

(सूत्र १००) प्रथम बालक का जातकर्म करना चाहिये। मन्त्र पढ़कर तयार किया हुआ घी और मधु विषम भाग में लेकर बालक को चटाना चाहिये। इसके उपरान्त पहिला दहिना स्तन पीने को दे फिर उसके शिर के समीप मन्त्र पढ़कर जल का कलश रखना चाहिये।

१०२ सूत्र में देश, काल और सामर्थ्य अनुसार आहार विहार का वर्णन है। पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इनका चूर्ण मिलाकर स्नेह (घृत) पान कराना चाहिये, और स्त्री के पेट पर तेलघी दोनों मिलाकर चुपड देवे और पेटपर कोई लम्बा कपड़ा (पेटी की तरह) बांध दे ताकि वायु विकार न करै। जब पियाहुआ घी पचजावे तो फिर पीपल, पीपला मूल, चव्य चित्रक और सोंठ मिलाकर सिद्ध की हुई यवागु पतली सी बनाकर मात्रानुसार पीने को सायंप्रातः देवे।

पाँच या सात रात्रि पर्य्यन्त इन नियमों को पाले और फिर क्रमसे इसे पुष्ट करता जावे।

जातकर्म संस्कार पर दृष्टि।

जातकर्म संस्कार के दो भाग ह

(१) एक तो वह जो स्त्री सुख पूर्व्वक प्रसव होने, और उसकी रक्षा से सम्बन्ध रखता है।

(२) दूसरा वह जो बच्चे की शारीरिक रक्षा और उसमें आस्तिक पन के बीज बोने का है। ऋषियों के समय से आज कलका समय नहीं मिलता उस समय पूर्ण ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की हुई बलवान् विदुषी स्त्रियां प्रसूत होती थीं—उनको प्रसव पीड़ा और प्रसूत की पीड़ाएं अधिक कष्ट नहीं देती थीं जैसे कि आज कल भी ग्राम निवासी श्रम जीवी स्त्रियों को नहीं देता। समय बदल गया बालविवाह ने बड़ा भारी अनर्थ नगरों में यह किया कि छोटी आयुकी निर्बल लड़कियां बच्चे जनने लगीं प्रसव आज एक भयानक शब्द बनरहा है। नगर की हिन्दू स्त्रियां इसके नाम से घबरा उठती हैं।

इसके अतिरिक्त प्राचीन समय में शल्यविद्या सरजरी का इतना प्रचार था कि जन्मे हुए बालक का नाल छेदन पिता युक्तिपूर्व्वक करता था आज भारत वर्षमें डाक्टरों वा वैद्यों को छोड़कर एक भी पिता नाल काटने की क्रिया को उत्तमता से नहीं कर सकता। और कितने ही तो शल्य क्रिया का करना ही अपवित्र काम समझते हैं। पुराने समय में बच्चा जनाने वाली दाइयां ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी तक होती थीं आज शूद्रा तक भी दाई का काम करना अपवित्र काम समझती हैं और यदि मुसल्मान वा ईसाई दाइयां इस देश में न होतीं तो उत्तर हिंद में आर्य्य बच्चों की कोई जनाने वाली न होती। पुराने समय में परदा, घूंघट का लेश मात्र भी पता न था यही कारण है कि उस समय जब प्रसव पीड़ा आती थीं तो पति घरकी और स्त्रियों की उपस्थित में अन्दर जाया करता था आज कल स्त्रियां अज्ञानी होने के कारण प्रसूता से छूना बुरा समझती हैं उसकी सेवा करनी तो बड़ी कष्ट दायिनी मान

रही हैं परन्तु पुराने समय में प्रसूता को छूना और उसकी सेवा अधिक करना महान उत्तम कर्म्म समझा जाता था। छूत छात का भ्रम उस समय नाम को न था। शोक! कि वह पवित्र और ज्ञान का समय अब भारत वर्ष से उठ गया उस समय लड़की लड़के के जन्म पर समान हर्ष करते थे आज कल लड़की की उत्पत्ति का नाम सुनते ही व्याकुल हो जाते हैं। उत्पन्न होते ही पुराने समय में वेद और वेद का लक्ष्य ओ३म् इन शब्दों की ध्वनि लड़की लड़के के कानों में जप द्वारा की जाती थी ताकि वह सच्चे आस्तिक बन कर निकलें। जो लोरियां और आशीर्वाद दिये जाते थे वह उसको अमर होने का ज्ञान देते थे और दीर्घायु तथा मेधावी बनाने की क्रियाएं की जाती थीं। हवन यज्ञ से गृह पवित्र रखते हुए रोगों को भगाया जाता था और माता शनैः शनैः पुनः बलवान् होने लग जाती थी। आज यह सब बातें एक स्वप्न का दृश्य हो गई।

आज कल चरक सुश्रुत आदिक आयुर्वेदिक ग्रंथों का पूर्ण प्रचार न रहने से प्रसूता स्त्री को मन मानी औषधि वा भोजन स्त्रियां खिला देती हैं। इस समय प्रसूता स्त्री की रक्षा वा सहायता के लिये जो भी अनुभव की बातें हकीमों, डाक्टरों वा सद्गृहस्थों से मिलें वह हमें ले लेनी चाहिये और वैसी ही कुछ हम यहां पर नीचे लिखते हैं।

यूनानी हकीम की सम्मति

अमृतसर के एक अनुभवी सद्गृहस्थ का कथन है

(१) कि चालीस दिन तक एक ही स्वच्छ प्रकाश वाले ऐसे मकान में जिस का प्रकाश तथा वायु समता गुण वाला हो प्रसूता को रहना चाहिये। प्रत्येक पुरुष वा स्त्री को अन्दर जाने की आज्ञा न होनी चाहिये अकस्मात् और भयानक शब्द भी न करना चहिये। नियुक्त पुरुष व स्त्रियां अन्दर आ जा सकती हैं बहुत सा सामान भी उसके अन्दर नहीं इकट्ठा होना चाहिये।

(२) एक सप्ताह तक माता को केवल गाय का दूध गरम करके मिसरी डाल कर देना चाहिये। और पानी कदापि न दे वे। यदि तृषा बहुत लगे तो गाय का दूध गरम करके ठंडा किया हुआ देवे। प्रसूता को प्रत्येक दिन दाई को अवश्य दिखलावे और पेट को बांध कर रखना चाहिये। मुट्ठी चापी अर्थात् दवाना घूंटना अवश्य चाहिये। और नियुक्त सेवा दाई की सम्मति अनुसार करनी चाहिये।

घी ३ तोले देशी खांड सफेद ५ तोले, बदाम की गिरी को गरम पानी में भिगो छिलका उतार लो फिर उसे कूट लो वजन १ तोला, इन तीनों को एक जगह गरम करके प्रातः तथा सांय काल प्रसूता खा लिया करे। यदि शरीर में सरदी का अंश प्रतीत हो तो कटी हुई सोंठ एक या दो माशे इस में डाल सकते हैं

(३) दूसरे सप्ताह में दाल मूंग तथा चावल, खिचड़ी मूंग दाल चावल की दूध चावल मिसरी सहित, घी खांड और बादाम भी पूर्ववत् दें।

(४) तीसर सप्ताह से अर्थात १४ दिन के पश्चात् गेहूं की बिन चुपड़ी रोटी तथा दाल

मूंग दाल अरहर, सावत मूंगचने पका कर उन का रस, मूंग बड़ी मूंगड़ा वेसन पकते समय घी खूब डाल कर तथा उचित मसाले ऋतु अनुसार डालें। यह भोजन दश दिन के बाद भी दिया जाता है यदि शरीर नीरोग और ठीक हो तो।

(५) जो गर्भिणी को नवां मास आरम्भ हो जावे तो उसको चाहिये कि प्रत्येक दिन प्रातः काल गुनगुने पानी से अन्दर स्नान कर के कपड़े पहन मीठे बादामों का ताज़ा रोगन गले में डाल कर ऊपर से गाय का गरम किया हुआ दूध देशी मिसरी डाल कर यथा रुचि पीवे। यदि ऐसी रुचि न हो तो दूध में बादाम रोगन मिलाकर पीवें किन्तु प्रत्येक दिन यह अवश्य पीवे कब्जीकरने वाले पदार्थ न खावे। ऐसा करने से प्रसव सहज से होता है और माता तथा बच्चा दोनों बल पाते हैं। जब प्रसव के दिन आते जावें तो भोजन में घृत का अधिक उपयोग किया करें और पेट तथा पीठ और कमर को घी से तर रक्खे अर्थात् कई बार घी लगावे और धीरे२ चलती फिरती रहा करे ताकि प्रसव आसानी से हो

[६] गर्भिणी कभी भी भारी जुलाव नलेवे और नहीं लोहू निकलवावे चौथे मास से पूर्व और सातवें मास के पीछे सख्त जुलाब लेने से बहुत ही हानि होती है। कभी जुलाब की भारी ज़रूरत पड़े तो हकीम की अनुमति से पाँच तोले तक अरंडी का तेल गाय के पावभर (२०तोले) गरम दूध में तथा तीन तोले मिसरी डाल कर ले सकती है। प्रातः काल चार व पाँच बजे यह औषधि पीवे और उसके पीछे ६ घंटे तक कुछ न खावे। यदि बीच में तृषा लगे तो चमचा ताज़े पानी का ले सकती है और ६ घंटे के पीछे जब जुलाब लग चुके और तृषा बढ़े तो मिसरी ३ तोले, ईसबगोल सावत ६ माशे, पानी ताज़ा २० तोले सहक्योड़ा १ तोला एक जगह मिलादे। जब ईसवगोल घुल जावे तो पीले। शीत काल में इस के पीने की ज़रूरत नहीं। इसके एक घंटा पीछे दूध चावल वा खिचड़ी खावे। और तीन दिन तक यही भोजन खावे श्रम करना,उतरना,चढ़ना चार दिन तक वर्जितहै। फिर तीन दिन सादा भोजन खावे॥

(७) रात को सूर्य्य के न होने से सरदी जो रात्री का गुण है और शरीर क्रिया न होने से जो निद्रा का गुण है भोजन पूर्ण रीति से नहीं पचता। इस लिये वायु अधिक उत्पन्न हो जाती है। अतः रात को भोजन थोड़ा तथा हलका वा जल्द पचने वाला खाना चाहिये। और सोने से दो घंटे पूर्व खाने से अवश्य खालेना चाहिये।

भारत वर्ष में एक भी अंग्रेज का गृह ऐसा न होगा जिस में सर विलयम मूअर के० सी० आई ई (जो भारत राज राज़ेश्वरी महाराणी के वैद्य थे) का गृहचिकित्सा नामी अंग्रेजी पुस्तक न पाया जावे।

हमारे देश में चरक सुश्रुत, अपूर्व और सर्वमान्य अत्युत्तम ग्रन्थ हैं परन्तु उन का प्रचार अनुभवी परोपकारी वैद्यों द्वारा देश में न होने से गर्भिणी और प्रसूता स्त्रियों को बहुत कष्ट सहना पड़ता है।

एक विद्वान् अंग्रेज डाक्टर बैवसी नामी ने (एडवाइसटूए वाइफ) नामी एक ग्रन्थ रचा था। इस उपयोगी ग्रंथ का हिंदी अनुवाद राजा नवल किशोर के प्रसिद्ध

यन्त्रालय लखनौ से छपा है जिस का नाम "भार्या हित" है । विवाहिता स्त्रियां इस को भली प्रकार पढ़कर लाभ उठा सकती हैं ।

इस स्थल पर हम महोदय मूअर की गृह चिकित्सा से बहुत थोड़ी उपयोगी बातें नीचे दिग्दर्शन मात्र लिखते हैं ।

(१) गर्भिणी को श्रम मर्यादा पूर्वक करना चाहिये ऐसे श्रम नहीं करो जिस से शरीर पर ज़ोर पड़े ।

(२) वस्त्र गरम परन्तु खुले पहिनने चाहियें । स्तनों को तंग वस्त्र से नहीं दबाये रखना चाहिये ।

(३) प्रसूत होने से कुछ दिन पच कबज़ी की निवृत्ति के लिये अरण्डो के तैल का उपयोग करना चाहिये । तेज़ जुलाब से बचो ।

(४) इश्तिहारी गुप्त दवाइयां अर्थात् वह दवाइयां जो विज्ञापन द्वारा ही बिकती हैं गर्भ दशा में इससे नहीं सेवन करनी चाहियें कि उन औषधियों की बनावट का ज्ञान नहीं हो सकता ।

(५) सब से उत्तम कमरा प्रसूत होने के लिये नियत करो । दाई पूर्ण स्वच्छ होनी चाहिये । यदि वह गये मास में लाल बुखार वा विष के रोग अथवा ऐसी स्त्री के जाती रही है जिस को प्रसत का सख्त बुखार था तो उस दाई को मत आने दो ।

(६) रुमाल और स्वच्छ कपड़ा कमरे में खूब रक्खो और कपड़े की पट्टियां, फलालेन आदि सब सामग्री पहिले ही से रखलो ।

(७) प्रसव की पीड़ा आने से पूर्व पेट आगे और नीचे ढलकने लगता है । हलके पन का भाव मन में प्रतीत होता है, पेशाव करने की बार २ इच्छा होती है । अंग सुकड़ते प्रतीत होते हैं । कफ वा लोह से मिश्रित मल योनि से जाने लगता है । पेट के नीचे के भाग से प्रसव पीड़ा उठकर कमर और श्रोणी में जाकर ऊरू में जाती है इस पीड़ा के पश्चात् पानी झड़ता है । कपकपी और क, सी भी होती है । स्त्री पहिले बैठी रहे वा चले और मल मूत्र का त्यागन करे । ठैर ठैर कर फिर पीड़ाएं आवेंगी और लम्बी होंगी । अब वह विस्तर पर वाम ओर को लेटे । श्रोणी विस्तर के सिरे पर हो और घुटने पेटको ओर खिचे रहने चाहियें । घुटनों के बीच एक तकिया रक्खा जावे । जब तीव्र पीड़ा आवे तब वह सांस को रोके ।

(८) जब जब बच्चा दूध पीवे स्तन शुद्ध जल से धो कपड़े से स्वच्छ कर लेना चाहिये ।

(९) बारह दिन तक प्रसव विस्तर पर माता रहे और फिर दूसरी खाट पर । यह ख़याल करना भ्रम मूलक है कि श्रम करने वाली स्त्रियां थोड़े ही दिन प्रसूतागार में लेट कर बिना जोखम के अपने धंधे कर सकती हैं । हां अर्द्धसभ्य और जंगली स्त्रियों की दशा में हो सकता है । गर्भाशय सम्बन्धी जिन्हें कुछ भी रोग का भय हो उन को पूरा एक मास आराम करना चाहिये यदि विस्तर पर से उठने पर लोहू जाने लगे तो यह बतला रहा है कि फिर विस्तर पर आराम करो । आयु के आने जाने का

पूर्ण प्रबन्ध करो। और कोयल कभी इस कमरे में न सुलगाओ, दूध पिलाने वाली माताओं को फल, दूध और शाक का सेवन करते रहना चाहिये।

जो स्त्रियां निर्बल होती हैं उन को ही प्रसव पीड़ा बहुत लम्बी हो जाती है।

(१०) गर्भाशय में मल के रहजाने से लोह दूषित हो जाताहै और उस से प्रसूती बुखार आने लगता है। औषध सेवन तथा अन्य बातों में बहुत सावधानी करनी चाहिये जिस से रोग निवृत्त हो।

जातकर्म सम्बन्धी विवरण।

मधु

मधु का उपयोग जात कर्म संस्कार में बच्चे को चटाने के लिये और विवाह संस्कार में आदरार्थ वर को मधुपर्क अर्पण करने के लिये विशेष कर आया है इस लिये उचित प्रतीत होता है कि मधु की उत्पत्ति तथा प्राप्ति विषय में कुछ उल्लेख किया जावे।

मधु की उत्पत्ति बहुत करके भारत वर्ष के पहाड़ी प्रान्तों में होती है और जिन पहाड़ों पर हरयावल, वनस्पति, फूल आदि होते हैं विशेष करके उन पहाड़ों से यह अधिक प्राप्त होता है। उत्तरीय हिंद के पहाड़ी लोग छत्तों की खेती के समान रक्षा करते और उस को-अपनी फ़सल (खेती के उपज) समझ कर रक्षा करते हैं। यह लोग छत्तों को शीत और गरमी से छाया करके बचाते हैं। छत्ते के दो भाग होते हैं एक तो वह भाग जिसको रहने का घर कहते हैं जिस में छिद्र और उन के अन्दर मक्खियों के अण्डे रहते हैं और जिस के ऊपर मक्खियां बैठी रहती हैं। इस भाग का नाम छत्ता है और इस का रंग कुछ२ काला होता है और बोझ में बहुत हलका होता है।

दूसरे भाग का रंग मौम जैसा और बादामी होता है जिस के अन्दर मधु का भण्डार रहता है इस को पहाड़ी लोग पोली कहते हैं। शुक्ल पक्ष की चांदनी रातों में मक्खियां इस को विलास की रीति से खाती हुई देखी जाती हैं इस के वर्षा ऋतु में अथवा अत्यन्त शीत काल में वा पर्याप्त फूल न मिलने की दशा में और विशेष कर चाँदनी रातों में मक्खियां इस को खाती हैं। पहाड़ी लोग इस पोली के अन्दर एक वा अनेक नलकियां बांस की लगा देते हैं जिन नलकियों का मुख दूसरे ओर दूसरे, बर्तन में मिला हुआ होता है और यह सरपोश से ढके हुए सुरक्षित बरतन, के अन्दर पड़ता रहता है और इस हिसाब से कि मक्खियों के लिये भी पर्याप्त भण्डार बना रहे और छत्ते केस्वामी मनुष्य को भी उसके श्रम और बुद्धिमत्ता कीदक्षिणा मिल जावे। मक्खियों के सुभीते के लिये माखी (मनुष्य स्वामी) पीने का पानी उन के लिये सदैव तैयार रखता है जब माखी देखता है कि एकजगह पर फूल पर्याप्त नहीं मिलते तो फिर वह रानी मक्खी को लेकर किसी और जगह रख देता है। जहां फिर वह

नया छत्ता बना सके। इसी रीति पर आज कल हिमालय पर्वत के अनेक पहाड़ों पर अनेक लोग मधु प्राप्ति करते हैं और यही साधन है कि जिसके द्वारा मनों शहद इकट्ठा होता है और किसी मक्खी की हिंसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती दूसरी अधम रीति शहद प्राप्ति की यह है जो कि अनाड़ी अथवा चतुराई रहित लोग कई स्थानों पर उपयोग में लाते हैं। अर्थात् धुएं से मक्खियों को हटा कर अथवा नशा द्वारा मूर्छित करके पोलों को छत्ते से काट देते हैं। इस अधम रीति में बहुत से अंडे बच्चे और मक्खियां मरती हैं इस लिये इस अधम रीति से मधु की प्राप्ति नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् चतुर माखी भी इस रीति को "बहुत बुरी और मक्खियों के विनाश का कारण समझते हुए ऐसा करने वाले को हिंसा दोष का भागी समझते हैं"। सदैव पहाड़ो मधु उपयोग में लाना और उस उत्तम प्रथा को उत्तेजना देना चाहिये जिस में मक्खियां नहीं मारी जातीं। उपदेशों तथा व्याख्यानों द्वारा सर्व साधारण को इन सब विषयों से विज्ञ करते रहना चाहिये।

इति जातकर्म व्याख्या।

अथ नामकरणसंस्कारविधिः।

अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥१॥ घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥२॥ चतुरक्षरं वा ॥३॥ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥४॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥५॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥६॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात् ॥७॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु। अ० १ खं १५ सू० ४—१०

(१)दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति ॥१॥ द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं (२) दीर्घाभिनिष्ठानां कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ॥२॥ अयुजाक्षरमाकारान्तꣳ स्त्रियैतद्धितम् ॥३॥ शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥४॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १७ सू० १—४ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्र में भी लिखा है:—

नामकरण अर्थात् जन्मे हुये बालक का सुन्दर नाम धरे नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११ (३) वें वा १०१ एकसो एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे। जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला, यथावत् सत्कार कर, यजमान—बालक का पिता और ऋत्विज क्रिया का आरम्भ करें पुनः सब मनुष्य ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और "त्वन्नोअग्ने०,, इत्यादि आठ मन्त्रों से ८ आठ आहुति अर्थात् सब मिला के १६ घृत आहुति करें तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिना के उसकी माता कुण्ड के समीप

---

(१) उत्थाप्येत्यस्यानन्तरं—"ब्राह्मणान् भोजयित्वे,, तिपाठः।

(२) "दीर्घाभिनिष्ठानान्तं,, ऐसा पाठ, गोभि० गृ० सू० प्र०२ का०८ सूत्र० १४ में है। दीर्घ, वा विसर्ग जिसके अन्त में हों ऐसा टीकाकारों का अर्थ है।

(३) जननाद्दशरात्रेव्युष्टे शतरात्रे सम्वत्सरे वा नामधेयकरणम्। गोभिलीय गृ० सू० प्र० २ का० ८ सू० ८

बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर (१) दिशा में रख के बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पतिके पीछे होकर उत्तर भागमें पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो उस प्रथम प्रधान होम को करे पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब साकल्य सिद्ध कर रक्खे उस में से प्रथम घी का चमसा भरकेः—

ओं प्रजापतये स्वाहा †

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में वालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से ४ चार आहुति देनी अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के देवता तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोलके ४ चार घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तोः—

ओं प्रतिपदे(१) स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओं अश्विन्यै स्वाहा। ओं अश्विभ्यां स्वाहा॥ *

---

* तिथि देवताः—१-ब्रह्मन्।२—त्वष्टृ।३—विष्णु।४—यम।५—सोम।६—कुमार।७—मुनि।८—वसु।९—शिव।१०—धर्म।११—रुद्र।१२—वायु।१३—काम १४ अनन्त।१५ विश्वेदेव।३० पितर॥

नक्षत्र देवताः-१ अश्विनी-अश्वी।२ भरणी-यम।३ कृत्तिका-अग्नि।४ रोहिणी-प्रजापति।५ मृगशीर्ष-सोम।६ आर्द्रा-रुद्र।७ पुनर्वसु-अदिति।८ पुष्य-बृहस्पति।९ आश्लेषा-सर्प।१० मघा-पितृ।११ पूर्वाफल्गुनी-भग।१२ उत्तराफल्गुनी-अर्यमन्।१३ हस्त-सवितृ।१४ चित्रा-त्वष्टृ।१५ स्वाति-वायु।१६ विशाखा-इन्द्राग्नी।१७ अनुराधा-मित्र।१८ ज्येष्ठा-इन्द्र।१९ मूल-निर्ऋति।२० पूर्वाषाढा-अप्।२१ उत्तराषाढा-विश्वेदेव।२२ श्रवण—विष्णु।२३ धनिष्ठा—वसु।२४ शतभिषज्—वरुण।२५ पूर्वाभाद्रपदा—अजएकपाद।२६ उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य।२७ रेवती—पूषन्॥

(१) अथ माता शुचिना वसनेन कुमारमाच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चंकत्रे प्रयच्छति उदक्शिरसम्। गोभि० गृ० सू० प० २ का० ८ सू० १०।

(†) अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति गोभि० गृ० सू० प० २ का० ८ सू० १२

तत्पश्चात् "स्विष्टकृत्,, मन्त्र से एक आहुति और ४ चार व्याहृति आहुति दोनों मिल के ५ आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि यस्यते नामामन्माहि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ यजु० अ० ७ । मं० २६ ॥

(क) (ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि ।)

(आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ)

जो यह "असौ,, पद है इस के पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें * जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्मा क्षत्रिय हो तो देववर्मा वश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध बोल के पुनः " असौ " पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः " ओं कोसि० "ऊपर लिखित मन्त्र बोलना—

---

* ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम के आदि में होने चाहिए और स्वरों में से कोई भी स्वर हो जैसे (भद्रः भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः,) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिए, तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त होवे, जैसे (श्री ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रीडा) इत्यादि परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खे, उस में प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ १ ॥ मनुस्मतौ (ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि (नदी) गंगा, यमना, सरस्वती इत्यादि (अन्त्य) चाण्डाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचला हिमालया इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि " अहि " सर्पिणी, नागी इत्यादि "प्रेष्य" दासी, किंकरी इत्यादि " भयंकर " भीमा, भयंकरी चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ॥

† तस्य मुख्यान् प्राणान् संमृशन् कोसि कतमोऽसीत्येतं मन्त्रं जपति । गोभि० गृ० सू० प्र० २ कां० ८ सू० १३ आहस्पत्यं मासं प्रविशासावित्यन्ते च मन्त्रस्य ०००० कृतं नाम दध्यात् । गोभि० गृ० सू० प्र० २ कां० ८ सू० १४

(ख) ओं स त्वाऽह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुना के महावामदेव्यगान करे तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पूर्व रीतिसे परमेश्वर की स्तुति आदि करके बालकको आशीर्वाद देवें कि—

(ग) "हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः"

हे बालक! आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो॥

* इति नामकरण संस्कारविधिः *

नामकरण संस्कार में आये हुये सूत्र तथा मन्त्रों का अर्थ-

[१] (अस्मै) इस बालक के लिए (च) और (नाम) नाम (दध्युः) देवें (आचार्यादि मिलकर)।

(२) वह नाम (घोषवदादि) घोषवान् वर्ण जिसके आदि में हों (ह, य, व, र आदि घोषवान् वर्ण पृ० ३ की टिप्पणी में लिखे हैं)।

(अन्तः, अन्तस्थम्) बीच में जिसके " य, र, ल, व " इन चारों में से कोई हो। *(अभिनिष्ठानान्तम्) विसर्ग है अन्त में जिसके ऐसा और (द्व्यक्षरम्) जिसमें दो स्वर हों अथवा (३) (चतुरक्षरं, वा) चार स्वर हों (व्यञ्जन चाहे जितने हों) ऐसा नाम रक्खे। (४) कुमार की प्रतिष्ठा की इच्छा करनेवाला दो अक्षर का नाम धरे और उसकी ब्रह्मतेजकी इच्छा रखनेवाला ४ अक्षरों का नाम धरे। (आश्वलायनमतानुसार ही पृ० ३ में नाम रक्खे हैं)।

(५) (पुंसां,तु) पुरुषों के नाम तो (युग्मानि, एव) पूरे अक्षर वाले ही होने चाहिएँ विषमाक्षर नहीं। (६) (स्त्रीणाम्) स्त्रियोंके नाम (अयुजानि) ऊने अक्षरोंके अर्थात् विषमाक्षरोंके होने चाहिएँ—सुभद्रा,सावित्रीइत्यादि।(७)अभिवादनीयं,च, (समीक्षेत)आचार्य एक अभिवादनीय—जिससे अभिवादन कियाजाय ऐसे नामको(समीक्षेत) विचारे या करे और (तत्) उस नाम को (मातापितरौ विद्याताम्) माता पिताही जानें (आ, उपनयनात्) उपनयन संस्कार तक; अर्थात् एक ऐसा नाम भी उपनयन संस्कार पर्यन्त, गुर्वादि को अभिवादन करने के लिए रक्खा जाय जिसे विशेषतया मातापिता ही जानें। (दशम्याम्, उत्थाप्य) प्रसव दिन से प्रारम्भ करके दशवें दिन सूतिकाको सूतिकागृहसे उठवाकर और तीन ब्राह्मणों को भोजनकरवाकर ग्यारहवें दिन, बालक का (पिता) पिता (नाम, करोति) नामकरणसंस्कार को करता है (द्व्यक्षरं, चतुरक्षरं वा, घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थम्) इसका अर्थ पूर्व आ चुका। (दीर्घाभिनिष्ठानम्) दीर्घ है समाप्ति में जिसके (कृतम्) कृत्प्रत्ययान्त, या पितामहादि का जो पूर्व किया हुआ हो ऐसा नाम रक्खे (न, तद्धितम्) तद्धितप्रत्ययान्त न रक्खे। जैसे—भद्रकारी इस नाम में सब लक्षण हैं अन्त्याक्षर में पारस्कर और आश्वलायन का मत भेद है। (अयुजाक्षरम्) अयज—विषम तीन आदि अक्षर जिसमें हों (आकारान्तम्) आकार जिसके अन्त में हो ऐसा (स्त्रियै)

---

* अभिनिष्ठानो विसर्ग इति आश्व० गृ० सूत्रवृत्तौ गार्ग्यनारायणः। अभिनिष्ठानं—समाप्तिरिति जयरामाचार्यादयः।

स्त्रियों के लिए नाम होना चाहिए और वह (तद्धितम्) तद्धित प्रत्ययान्त भी होसकता है।

(ब्राह्मणस्य, शर्म) ब्राह्मण के नाम के साथ—"शर्म" इस शब्द का सम्बन्ध होना चाहिए और (क्षत्रियस्य,वर्म) क्षत्रिय के साथ "वर्म" का और (गुप्तेति वैश्यस्य) वैश्य का गुप्तान्त नाम होना चाहिए। मनुस्मृति में भी लिखा है कि "शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्यतु। वैश्यस्य धनं संयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्"॥ अर्थात् ब्राह्मण का शर्मान्त, क्षत्रिय का वर्मान्त, वैश्यका धन संयुक्त और शूद्र का दासाद्यन्त नाम होना चाहिए॥

हे बालक! (कोऽसि) तू कः—प्रकाश रूपहो, (कतमोऽसि) अतिशयित प्रकाशरूप हो। (कस्यासि) तू परमात्मा का है (को नामाऽसि) तू आत्मनामवाला है। (यस्य ते) जिस तेरे (नाम) नामको हम (अमन्महि) जानते हैं (यं, त्वा, सोमेन, अतीतृपाम) जिस तुझको शान्ति दायक पदार्थों से हम तृप्त करचुके हैं; (परमात्मा करे कि तू भी हमें तृप्त करे, यह शेषहै) (भूः, भुवः, स्वः) अनेक गुण युक्त परमात्मा की कृपा से (प्रजाभिः) सन्तानों से, मैं (सुप्रजाः) सुन्दर सन्तान वाला (स्याम्) होऊँ (वीरः) वीर सन्तानोंसे (सुवीरः) अच्छे वीरों से युक्त होऊँ।

(पोषैः) अन्य पोषणीय भृत्यादि से (सुपोषः) सुन्दर पोषण—रक्षा करने वाला होऊँ।

(क) इसका अर्थ पूर्व आचुका।

(ख) इसका अर्थ भी पूर्व कर चुके।

(ग) (त्वम्) तू (आयुष्मान्) अच्छी अवस्था वाला (वर्चस्वी) सुन्दर रूप और सामर्थ्य वाला (तेजस्वी) तेज—रौबदाबवाला (श्रीमान्) धनादि सम्पत्ति वाला (भूयाः) ईश्वर करे कि हो।

* इति *

नामकरणसंस्कार की व्याख्या।

नामकरणसंस्कार संबंधी जो प्रमाण सूत्र ग्रन्थों के दिये गये हैं उन पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य लोग, बालक के नाम रखने में ३ नियमों का मुख्य रीति से पालन करना अभीष्ट समझते थे ।

(१) उच्चारणकी सुगमता।

जिनवर्णों के उच्चारण में सुगमता पड़तीहै, उन से युक्त वह नाम अवश्यहो और फिर नाम के आदि, मध्य, और अन्त में किस २ प्रकार के वर्ण आने चाहियें, उस का पूरा २ ध्यान रक्खा जावे ताके नाम के विभाग भी उच्चारण करने में सरल हों। जो नाम उच्चारण करने में सरल है वही सुनने में भी प्रिय वा रुचिकर होता है।

(२) पुरुष स्त्री के नामों में, जैसा कि सृष्टि के अन्दर उनकी आकृति में भेद है, वैसा ही भेद रक्खा जावे। युग्म और अयुग्म संख्या के अक्षरोंसे वह पुरुष और स्त्री का भेद नाम में दर्शाते थे अयुग्म अक्षरों की संख्या सदैव बोलने में लटकती सी ध्वनि श्रवण कराती है। यह लटकती ध्वनि निःसंदेह कोमल ध्वनि है। कोमलता ही स्त्रीपन का बोधक है।

(३) तीसरा नियम यह था कि नाम सुनने वा उच्चारण करने में जहां सरल हो और पुरुष वा स्त्री का बोधन कराने वाला हो, वहां वह ऐसा सार्थक हो कि बालक को आयु भर उन्नति करने के लिये उत्तेजना देता रहे, जैसा कि एक सूत्र में दर्शाया गया है कि—

"प्रतिष्ठा और ब्रह्मतेज की इच्छा वाले क्रम से दो और चार अक्षरों वाला नाम रक्खें" ॥

उत्तम सार्थक नाम रखने की उत्तम प्रणाली आर्य्यों में अति प्राचीन काल से चली आती है। उत्तम सार्थक नाम सदैव मन पर शुभ संस्कार डालते और बच्चों को उत्तम काम करने की प्रेरणा करते रहते हैं। शोक का विषय है कि आज कल भारत संतान उत्तम सार्थक नाम रखने की प्रथा बहुत कुछ भूल गई है।

आज कल युरुप में मनुष्य उन्नति का एक मात्र रहस्य "सेल्फ रिलायँस" अथवा अपनी धारक शक्ति वा धृति मानाजाताहै। युरुप वा अमेरिका के सर्व महाविद्वान् एक मतहोकर रातदिन यही पाठकररहेहैं और सन्तानसे करारहेहैं कि मनुष्यजो करना चाहे वह करसकता है, मनुष्यको अपने ऊपर आप भरोसा रखनाचाहिये और इसी भावको मनु भगवान् ने धृति कहकर धर्म का प्रथम लक्षण दर्शाया है। अंगरेज बच्चा इस दृढ़ विश्वास से संसार में काम करता है कि यदि उस के पास एक मात्र संकल्प रूपी साधन है तो वह सर्व प्रकार के अन्य धन रत्न और सुख आदि को प्राप्त कर सकता है। महाशय अमृतलाल राय अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि अमेरिका में एक मोची का लड़का टूटे हुए जूते गांठ रहा था जब उस से प्रश्न किया गया कि तू

अन्त को क्या करना चाहता है तो उसने कहा कि मैं अब मोची का काम करता हूं, जब कुछ धन जमा कर लूंगा तो स्कूल में दाखिल हो जाऊंगा फिर कालेज में, अन्त को मैं अमरीका के प्रधान होने की आशा रखता हूं।

ऋषि लोग इसी नियम को भलीभांति जानते थे इसी लिये यह सूत्र निर्माण किया कि जो सर्व प्रकार के प्रतिष्ठादायक कामों को करना चाहे वह नाम दो अक्षरों वाला और जो विद्या धर्म आदि में महान् बनाने की इच्छा रखता है वह चार अक्षरों वाला रक्खे। युरुप के विद्वान् तो "सेल्फ रिलाय्‌स" का स्तोत्र जब पढ़ाते हैं जब बालक स्कूल में पढ़ने जाता अथवा गृह में माता से बात चीत कर सकता है, पर ऋषि लोग तो ११ वें दिन वा तीन महीने के बालक को ही यह पाठ ऐसी उत्तम रीति से पढ़ाते थे कि वह पाठ ही उस का नाम बन जावे और नाम की ध्वनि जब २ उस के कानों में पड़े तब २ ही उस की मानसिक महान् शक्ति जागृत होती रहे।

अहो! धन्य थे वह तत्ववेत्ता ऋषि जो मनुष्य के बच्चे को ११ वें से ही धृति का परम पुनीत पाठ पढ़ाने लगजाते थे, जब नामकरण संस्कार का महत्त्व भारत में समझा जाता था तब ही तो यह देश सदाचारी महाव्रती, और तपस्वी पुरुष स्त्रियों से भरपूर था जो नाम की लाज रखने के लिये जीवन तक अर्पण कर देते थे। मनु महर्षि कितनी कड़ी आज्ञा देते हैं कि जिस लड़की का नाम जड़ पदार्थों वा पशु पक्षियों का वाची हो उस से विवाह ही न किया जावे। यह क्यों, इसी लिये कि नाम वा शब्द का प्रभाव बिजुली से भी महान् और चमत्कारी है। जो लड़की रात दिन चंपा नाम से पुकारी जाती है वह विना इस के कि शृङ्गार प्रिय हो जावे क्या महान् काम संसार में कर सक्ती है! इस प्रथा को रोकने के लिये मनु जी ने मानो लड़की के माता पिता को दण्ड देना चाहाहै ताकि वह भूल से भी बुरा नाम न रक्खें।

आज कल इसी लिये जिन लड़कियों के नाम बुरे होते हैं उन के नाम विवाह समय पुरोहित लोग बदल देते हैं। जब विद्या का प्रचार अधिक होगा तब लोग लड़कियों के नाम पहिले से ही भावपूर्ण रक्खेंगे जिस से कि वे विवाह के समय बदलने ही न पड़ें।

एक सूत्र के भाग में दर्शाया गया है कि दशवें दिन प्रसूता को प्रसूतागार से बाहिर लाने के पीछे "ब्राह्मणान् भोजयित्वेति" अर्थात् कम से कम तीन ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करे। संस्कार विधि में यह पाठ मूल सूत्र में रह गया है। तीन से अधिक ब्राह्मणोंको भोजनदेनेका इससेनिषेधनहीं किन्तु "ब्राह्मणान्" यहशब्द बहुवचनकाहैऔर बहुवचन में कमसेकम तीन संख्या ली जाती है। इन तीन ब्राह्मणों में से एक तो पुरोहित (संस्कार कराने वाला) दूसरा गृहवैद्य (फैमिली डाक्टर) और तीसरा उपदेशक वा किसी विशेष विद्या में प्रवीण होगा।

यह तीनों ऐसे हैं कि जिन से गृहस्थी लोगों को बड़ा लाभ पहुंचता है इस लिये इन तीन वा ऐसी योग्यता वाले तीन से अधिक परोपकारी ब्राह्मणों (महाविद्वानों)

को भोजन से सत्कार करना ज़रूरी है जब कि प्रसूत जैसे समय में उन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति से लाभ पहुँचाया है।

आजकल लोग डाक्टरों को फ़ीस (दक्षिणा) देना क्या ज़रूरी नहीं समझते और क्या कई शुभ अवसरों पर डाक्टरों को फ़ीस के अतिरिक्त अधिक सन्मानार्थ यूरूपादि देशों में " पार्टी " (भोज) नहीं दिया जाता ? जब दिया जाता है तो अपने हितकारी महाविद्वानों (ब्राह्मणों) को जो कि उस समय गृहवैद्य गृहअमात्य वा उपदेशक और गृहपुरोहित का काम करते थे भोजन आदि से सत्कार करना ज़रूरी था और अब भी है।

फिर लिखा है कि तद्धित प्रत्ययान्तनाम न रक्खो यह इस लिये कि तद्धित नाम विशेष स्पष्ट नहीं होसकते। माता पिता के नाम को संतान के नाम द्वारा प्रकट करने के लिये जो नाम रक्खे जाते हैं वह तद्धित कहलाते हैं। यदि किसी पुरुष का नाम जनक है तो उसकी लड़की का तद्धित नाम जानकी होगा किन्तु यदि उसकी दूसरी लड़की हुई तो वह भी जानकी कहलायगी। दो समान नाम वाली लड़कियों में से किस लड़की के विषय में किसी को क्या विशेष कहना वा जतलाना है यह जानना स्पष्ट नहीं हो सकता इस लिये तद्धित नाम नहीं रखना चाहिये। फिर लिखा है कि ब्राह्मण के नाम के पीछे शर्म्मा (कल्याणकारी) क्षत्री के नाम के पीछे वर्म्मा (रक्षाकरने वाला) वैश्य के नाम के साथ गुप्त (धन सुरक्षित रखने वाला) यह उपाधियां लगावे। आज कल, राय साहेब, खां साहेब आनरेबल इत्यादि अनेक उपाधियां हैं जो लोगों में मानसूचक समझी जाती हैं पर थोड़े लोगों को मिलती हैं। पुराने समय में चारों वर्णों की प्रत्येक व्यक्ति को शर्म्मा, वर्म्मा, गुप्त और दास चार उपाधियों के धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

शंका हो सकती है कि दास तो सेवक के भाव को साधारण रीति पर प्रकट करता है यह शूद्र भी कैसे उपाधि समझते होंगे ! इस के उत्तर में हम कहेंगे कि जो शब्द उपाधि में प्रयोग होने लगता है वह गौरवसूचक हो जाता है। क्या आज कल बड़े से बड़े अधिकारी (आफीसर) जब दफ़तरों में नित्यप्रति परस्पर पत्र व्यवहार में अपने नाम के साथ " सरवेन्ट " अर्थात् दास शब्द का उपयोग करतेहैं। एक राय साहेब से लेकर लाटसाहेब तक अपने लिये "सरवेन्ट" शब्द लिखता है, तो क्या दास वा सेवक उनका अपमान सूचक है वा सेवा के उच्चभाव को प्रकट करता है ? विचार दृष्टि से प्रतीत होता है कि समाज के चारों वर्ण ही सेवक हैं साधारण सेवक को दास, धन द्वारा सेवा करने वालेको गुप्त, बल द्वारा सेवाकरने वालेको वर्म्मा, और सत्यज्ञान द्वारा सेवा करने वाले को शर्मा कह सकते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इन के अतिरिक्त पुराने समय में चारों वर्णों के लिये अन्य और उच्च उपाधियां नहीं थीं।

अभिवादन करने के लिये एक और नाम रखने काभी वर्णन है। यह गुप्त नाम कहला सकता है कारण कि सूत्र अनुसार इस को बच्चे के माता, पिता ही जान सकते

और वह नाम उपनयन, काल तक रह सकता है । यह गुप्त नाम आयु भर के लिये नहीं है इसका विशेष लाभ तो दृष्टि नहीं पड़ता विना इसके कि काल विशेष में गुप्त नाम रखना लोग सीख सकें

नामकबरक्खें इस में तीन विकल्प हैं प्रथम ११ वें दिन रखने का दूसरे १०१ दिन का और तीसरे दूसरे वर्ष के आरंभ में जिस तिथिको जन्म हुआ हो ।

तीनों विकल्प युक्त हैं । कारण कि जो स्त्रियां दशवें दिन स्नान कर के इस संस्कार में सम्मिलित हो सकती हैं उनकी सुविधा का विचार करके ११ वाँ दिन नियत करना ठीक प्रतीत होता है ।

कई स्त्रियें ऐसी होती हैं जो एक दो वा तीन मास तक निर्वल रहती है। दो मास के पीछे निर्बल रहने वाली थोड़ी होती हैं। इनकी सुविधा का विचार करके १०१ दिन की अवधि बांधनी उचित ही है । वादी कह सकता है कि १०० वा १०२ दिन क्यों न रक्खें ? इसके उत्तर में हम कहें गे कि यदि १०० वा १०२ दिन रक्खे जाते तो उस दशा में क्या प्रश्न नहीं हो सकता कि ९९ वा १०३ दिन क्यों नहीं रक्खे ? यहां पर "अशोक वन के न्याय" की बात चरितार्थ होती है अर्थात् एक पुरुष ने रामायण की कथा सुनते समय पंडित जी से यह प्रश्न किया कि महाराज ! रावण ने सीता जी को अशोक नामी, बन में ही क्यों रक्खा ! उसने कहा कि यदि वह और किसी वन वा बाग में रखता तब भी तो तुम प्रश्नकरते कि उस वन में क्यों रक्खा ! किसी बन वा बाग में तो रखनाही था । तीन महीने निर्वलता की अवधि समझ कर १०१ दिन की अवधि ठहराई, इस में दोष ही क्या है ।

तीसरा विकल्प इस लिये रक्खा गया प्रतीत होता है कि कभी २ बालक का पिता अथवा कोई और संबंधी वा मित्र परदेश में होते हैं और देर से उनके आने की संभावना होती है अथवा कोई और विघ्न आजाता है जिस से १०१ दिन की अवधि पर नाम नहीं रखसकते तो ऐसी २ दशाओं में दूसरे वर्ष के आरंभ में ही यह संस्कार करलेना ठीक हो सकता है ॥

फिर प्रधान होम करने का विधान है जिस में स्त्री वेदी पर आती हुई पति की गोद में बालक को देती है और अपनी जगह पर बैठ जाने के पश्चात् प्रति बालक को उसकी गोद में देता है । प्रधान होमकी समाप्ति पर

"प्रजापतये स्वाहा,,

इस मंत्रसे एक आहुति देकर, पीछे "जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और नक्षत्र का नाम उच्चारण करके और उसी तिथि और उसी नक्षत्र के देवता के नाम से ४ आहुति देनी, अर्थात् पहिली तिथि, दूसरी तिथि देवता तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र देवता के नाम से ऐसा हिंदी लेख संस्कारविधि में है ।

बच्चा किस दिन वा किस तिथि को उत्पन्न हुआ यह बात सभामंडप में बैठेहुए लोगों को जनाने की आवश्यकताहै जिस समय तिथि का नाम लेकर आहुति दी जाए-गी उस समय सब विद्वान् समझ जावेंगे कि अमुक तिथिको बालकका जन्म हुआ। शंका हासकती है कि तिथि का नाम उच्चारण करके आहुति देना क्या तिथि की पूजा तो नहीं है! हम कहेंगे कि नहीं। क्या हम गर्भाधानसंस्कार में नहीं देख चुके कि ऐसे २ मंत्र जिनका अर्थ यह है कि—

"हे स्त्री तू गर्भ को धारण कर" वा
"तेरा गर्भ सुख पूर्वक उत्पन्न हो"

कहतेहुए आहुतियें दीगईं क्या स्त्री उन आहुतियोंको उस समय खातीहै और उस का पति वापुरोहित जो पास बैठेहैं नहीं खाते ऋषियोंका अभिप्राय यह था कि हवन तो करना ही है, जो २ बात उस संस्कार संबन्धी किसी एक वा अनेक को सुनानी है वह वह पाठ करते हुए ही हवन क्यों न किया जावे। गर्भाधानसंस्कार के समय स्त्री को सुनाना था कि तेरे कर्त्तव्य यह हैं और तू उन को सुनले वह सुनाने के पश्चात् आहुति डाली जारही हैं। यहाँ जब यह कहकर आहुति डाली गई कि प्रतिपदा (तिथि विशेष) के लिए हम श्रेष्ठ क्रिया करते हैं तो इसका अभिप्राय यह जाननेका हो सकता है कि वह प्रति-पदा का दिन शुभ था जिसको कि हमें स्मरण करना पड़ा। हमारे कथन का सार यह है कि आहुति देने के अनेक प्रयोजन होते हैं। कहीं उपदेशार्थ, कहीं सन्मानार्थ (जैसा कि सीमन्तोन्नयनसंस्कार में स्त्री को "राका,, कहकर दी गई थी) और कहीं स्मरणा-र्थ आहुतियें दीजाती हैं। यह स्मरणार्थ अर्थात् जन्म तिथि कोस्मरण करने कराने के लिए जो बात स्मरण करनी होती है उसको यदि कुछ बार दोहराया जाय तो स्मृति में रह जाती है। इसी वास्ते एक तिथि को चार प्रकार से आहुतियां देते हुए दोहराया गया है।

संस्कृत कोष वाचस्पत्य अभिधान के पृष्ठ ३२९१ पर सिद्धान्तशिरोमणि जो ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ है उस के प्रमाण से यह लिखा गया है कि

"तन्यते कलया यस्मात्तास्तिथयःस्मृताः,,

जिस का भावार्थ यह है कि चंद्र की कला से जिस का परिमाण किया जावे वह तिथि है। जिन को यहां तिथि देवता कहा गया है वह तिथियों की संख्या के बोधक शब्द रूपी संकेत हैं, जो कि भिन्न २ ज्योतिषियों ने अपने २ सुविधा के लिये भिन्न २ कल्पना किये हैं। यह शैली उर्दू में "अबजद" के नाम से प्रसिद्ध है और संस्कृत श्लोक बनाने वाले कविजन संवत् की संख्या देने में अङ्कों का उपयोग न करते हुए "राम, मुनि, चंद्र" आदि अनेक शब्दों द्वारा संख्या का बोधन कराते हैं संकेत की रीति से "राम, मुनि, चंद्र" आदि शब्द अमुक २ संख्या के वाची ठहराए जाते हैं

कवियों की इस परिपाटी के समान नवीन ज्योतिषियों की भी संकेत † परिपाटी है। वह भी तिथियों की संख्या को संकेत रूपी शब्दों द्वारा प्रगट किया करते हैं जैसे कि यहां पर पहिली तिथि को ब्राह्मण शब्द से प्रगट किया गया है।

अतएव पहिली आहुति प्रतिपदा का नाम लेकर दीगई तो दूसरी आहुति में ब्रह्मन् नाम लिया जाएगा जो कि पहिली तिथि का संकेत है। इस संकेत को सुनने से उसी तिथि का रूपान्तर ज्ञान वा स्मरण हो जावेगा॥

नक्षत्र तथा नक्षत्र देवता

रातको गगन मंडल में जो असंख्य चमकते हुए तारे प्रतीत होते हैं वह नक्षत्र हैं। पृथ्वी से कई गुना बड़े होनेपर भी दूरी के कारण छोटे ही प्रतीत होतेहैं। इन नक्षत्रों की दिनरात एकसी दशा रहती है, परन्तु दिन में सूर्य्य के तेजसे हम देख नहीं सकते। इनमें से जो अचल नक्षत्रहैं वह किन्हीं लोक लोकान्तरों की परिक्रमा नहीं करते, केवल अपनी ही धुरी पर घूमते रहतेहैं।

सौर्य जगत् में एक २ नक्षत्र मानो ग्रह आदिक अन्यान्य विशेष गतिमान् आकाशस्थ पदार्थों के घरहैं। जिस प्रकार इस पृथिवी पर नाना आकार के घरहैं उसी प्रकार आकाश में भी नक्षत्र पुञ्जकी आकृति भिन्न २ प्रकार की है।

यद्यपि नक्षत्र असंख्यहैं तथापि हमारे सौर्यमण्डल का व्यवहार जिन नक्षत्रों से अति विशेषहै वह २७ हैं।

ज्योतिष के अति प्राचीन ग्रन्थ सूर्य्य सिद्धान्त में तिथि देवता और नक्षत्र देवता इनके विषय में कुछ उल्लेख नहीं मिलता। श्रीयुक्त उदयनारायण सिंहजी सूर्य्यसिद्धान्तका अनुवाद करते हुये अपनी उत्तम भूमिका में इस विषय सम्बन्धी जो लिखते हैं उसका सार यहहै कि तैत्तिरीय ब्राह्मण में अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के भिन्न २ देवता लिखेहैं। अश्विनी आदि नक्षत्र देवता नक्षत्र पुञ्जहैं और इनके अश्विनी आदि नाम इनकी आकृति परसे रक्खेगयेहैं अर्थात् जैसे इनके नाम हैं वैसी आकृति इनकी प्रतीत होती है। यथा "कृत्तिका" नक्षत्र का देवता अग्नि है, सो दूरबीन द्वारा देखनेसे इसकी आकृति अग्नि सदृश मालूम होतीहै" इस प्रकार अन्यान्य कई नक्षत्रों की देवतायें हैं यह तो आकृतिपरक देवता हुईं। इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि नक्षत्र देवता, नक्षत्र पुंजकी आकृति के बोधक नाम हैं।

संस्कार विधि में जो नक्षत्र और नक्षत्र देवता दियेगये हैं वही तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।१० में दिये हुएहैं।

---

† (नोट) यह जो संकेत मात्र हैं ज्योतिष के नवीन ग्रन्थों में ही मिलते हैं। गणित ज्योतिष के ग्रन्थों में इन का नाम मात्र भी नहीं और यह संकेत भी कल्पना मूलक हैं क्योंकि किसी ग्रन्थकार ने तिथियों के संकेत कुछ माने हैं और किसी ने कुछ। वाचस्पत्य अभिधान में, वह्नि, रवि, विश्वेदेवा, सलिलाधिप, वषट्कार, वासवः ऋषि, अजएकपात, यम, वायु, उमा, पितर, कुबेर, पशुपति, और प्रजापति यह तिथि देवता दिए हुए हैं॥

संस्कार विधि में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का देवता "अजपाद" लिखाहुआहै उसके स्थान में "अजएकपाद" ऐसा होना चाहिये। संस्कारविधि में अश्विनीका अश्वी-देवता लिखा हुआहै, तैत्तिरीय ब्राह्मणमें "अश्वयुजौ नक्षत्रमाश्विनौ देवता" अर्थात "अश्वयुज्" नक्षत्र का "अश्विनौ" देवता लिखाहुआ है। वास्तव में यह पाठ भेद हा समझना चाहिये। संस्कार विधि में जिस प्रकार लिखा है प्रायः लोग भाषा में वैसा ही लिखते हैं।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि संस्कारविधि के भाषा लेख में जो प्रजापति आहुति के अनन्तर तिथि, तिथि देवता, नक्षत्र और नक्षत्र देवता के नाम लेकर आहुति देना लिखाहै उसका मूल गोभिलीयगृह्य सूत्र प्रपाठक २ खंड ८, सूत्र १२ वें में इस प्रकार है।

अथ जुहोति प्रजापतये तिथये
नक्षत्राय देवताया इति।

इस सूत्रकी टीका पृष्ठ ८९ पर श्री पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी ने यह कीहै कि "अथ" तदनन्तरं, क्रोडीकृतकुमारः सः 'प्रजापतये' प्रजापति देवतामनुकूल-यितुं तथैव 'तिथये' तथैव 'नक्षत्राय' 'जुहोति' हवनं कुर्यात्"

इसका भावार्थ यहहै कि उसके पश्चात् वह कुमार को गोद में लिये हुए प्रजापति की देवता को अनुकूल करने के लिये,* वैसाही तिथि तथा नक्षत्र के लिये हवनकरे।

इससे सिद्धहोताहै जैसा कि उस के हिन्दी टीकाकार ने भी उक्त लेख के आधार पर स्वीकार कियाहै कि "पहिले प्रजापति देवताकी तुष्टि के लिये हवनकरे, पीछे जिस तिथि में कुमार का जन्म हुआहै उस तिथि का नाम लेकर दूसरी आहुति प्रदान करे, उसके बाद जिस नक्षत्र में कुमार का जन्म हुआ है उसका नाम कहकर तीसरी आहुति देवे।

इससे ज्ञात हुआ कि (१) प्रजापति (२) तिथि (३) नक्षत्र का नाम लेकर आहुति देनी चाहिये। तिथि देवता और नक्षत्र देवताकी आहुतियें श्री सामश्रमी जी के लेख में नहीं आतीं। संस्कारविधि में लिखी प्रजापति आहुतिको यदि तिथि आदि ४ आहुतियों के साथ गिनें तो ५ आहुतियें होती हैं।

इसके दूसरे अर्थ यह भी होसकतेहैं जिससे प्रजापति, तिथि, नक्षत्र और नक्षत्र देवता के नामसे आहुति देना सिद्ध होसकता है। और यह अर्थ जर्मनी देश के अनुवादक महोदय ओलडनवर्ग तथा परोफेसर मैक्समूलर ने भी किये हैं।

तीसरे अर्थ वह होसकते हैं जो संस्कार विधि में लिये गये हैं; जिस से प्रजापति, तिथि, तिथि देवता, नक्षत्र और नक्षत्र देवता का नाम से आहुति देने को लिखा है। इस दशा में पहिले तिथि फिर उस के संकेत (तिथि देवता) फिर तिथि सम्बन्धी

---

* प्रजापति के अर्थ ईश्वर वा वायु हैं। ईश्वराज्ञा पालनार्थ वा वायु शुद्धि निमित्त हवन करना युक्ति सिद्ध बात है।

नक्षत्र और अन्त में नक्षत्र सम्बन्धी उस का आकार (नक्षत्र देवता) का उच्चारण करने से किस तिथि में बालक उत्पन्न हुआ है यह बात स्मृति में रह जावेगी।

मूल एक सूत्र में ही प्रजापति आहुति तथा तिथि आदि की आहुतियों का विधान किया गया है। संस्कारविधि में प्रजापति आहुति डालने के पीछे तिथि आदि की आहुति का वर्णन किया गया है, बात एक ही है, प्रयोग शैली का भेद है।

आगे चलकर संस्कारविधि में लिखा है कि "पिता बालक के नासिका द्वार से बाहिर निकलते हुए वायु को स्पर्श करके" यह मन्त्र बोले। इस का मूल गोभिलगृह्य सूत्र प्र० २ खं० ८ सूत्र १३ में इस प्रकार है।

तस्य मुख्यान् प्राणान्त्संस्पृशन्।

इस का भावार्थ यह है कि उस के मुख में प्राणों का स्पर्श करे।

प्राणों को स्पर्श करने की सब से उत्तम रीति यह है कि उसकी नासिका द्वार को स्पर्श करे।

नासिका स्पर्श करतेही बच्चा स्पर्श करने वाले की ओर देखने लगजावेगा और कुछ गुद गुदीसी होनकेकारण मुसकराने वा हंसनेलगे यहसंभवहै। छोटे बच्चोंको हँसानेके लिये प्रायः उनकेनाक और ओष्ठ प्रेमसेछुएजातेहैं। छूतेही वह प्रसन्नसे होजातेह। क्योंकि बालक को उसका नामसुनानाहै, इसलिये ज़रूरीहै कि उसका ध्यान अपनी ओर खैंचा जावे और साथ ही वह प्रसन्न हो दुःख न माने। इस लिये उस के मुख और नासिका द्वार को छूने का विधान सूत्र में है। क्या हम रात दिन नहीं देखते कि माताएं गोदी के बालकों को हँसाने के लिये उन के नाक और ओष्ठ को प्रेम से अंगुली लगाती हैं और वह उन की ओर देखकर हँस पड़ते हैं और फिर जो शब्द माताएं कहती हैं वह सुनते और आनन्द दर्शाते हैं।

जो विज्ञान, आत्मा के स्वरूप का है उस का सार किस उत्तमता से इस मंत्र में निरूपण किया गया है। इस मन्त्र के अर्थों पर विचार करते हुए आत्मा के स्वरूप का बोधन होता है, न केवल यही परञ्च पिता की यह प्रार्थना कि मैं वीर संतान और सुवीर मित्रों से युक्त होऊं कैसी अद्भुत है।

इस से आगे जो मन्त्र का भाग दिया हुआ है उस में जीवात्मा को "अमृत" बतलाया गया है। फिर बालक का नाम उच्चारण करने का विधान है तथा आशीर्वाद है, जिसके अर्थ और व्याख्या जातकर्म संस्कार में आचुकी है, जो कि एक दिन से लेकर वृद्ध अवस्था पर्य्यन्त जीते रहने का अपूर्व आशीर्वाद है।

मंदालसा ने अपनी लोरियों से अपने पुत्रों को आत्मज्ञानी बना दिया था, परन्तु मंदालसा की लोरियां भी

"ओम् कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि"

इस वाक्य के आगे मात हैं जिस में नाम रखते ही बच्चे को कहा जा रहा है कि "तू अमृत है"। सुकरात ने भी यही उपदेश यूनान को दिया था कि आत्मा अमृत है। अभी तक युरुप के तत्ववेत्ता इस आत्मज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त नहीं कर पाये।

जाते हुए सब मण्डली के लोग बालक को बड़ी आयु, बड़ी कान्ति और बड़े तेज तथा धन सम्पत्ति वाला होने का आशीर्वाद दें। युरुप में शिक्षण के अन्दर बच्चों के मन को उत्तेजन करना वह अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आशीर्वाद का प्रयोजन भी उत्तम शैली से बच्चे के मन में यह संस्कार बीजवत् जमा देने का है तू बड़ी आयु आदि से युक्त हो सकता है, और हमारी सहानुभूति तथा ईश्वर कृपा तेरे पुरुषार्थ को बढ़ाने वाली होगी।

इति शुभम्।

निष्क्रमण-संस्कार ।

निष्क्रमण संस्कार उस को कहते हैं कि जा बालक को घर से निकाल जहाँ का वायु स्थान शुद्ध हो वहाँ भ्रमण कराना । उस का समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमायें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें इस में प्रमाणः—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका ॥ १ ॥ सूर्यमुदीक्षयतितच्चक्षुरिति † ॥ २ ॥
पार० का० १ क० १७ सू० ५—६

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्० ॥
गोभि० गृ० सू० प्र० २ कां० ८ सू० १

अर्थः—निष्क्रमण संस्कार के काल के दो भेद हैं एक बालक के जन्म के पश्चात तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह-संस्कार करे—

उस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आ के पति के दक्षिण पार्श्व में हो कर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे पुनः पति के पीछे की ओर घूम के वायें पार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहें—

× ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ ओं यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्याह नाम माहं पौत्रमघं रिषम् ॥ २ ॥ ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि सामान्य प्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर को स्पर्श करे * ।

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव

---

† "तच्चक्षुर्देवहितम्०„ इस द्वितीय पृष्ठ पर लिखे मन्त्र से सूर्य का अवलोकन करावे । शेष वाक्यों का ही अर्थ नीचे भाषा में लिखा है ।

+ अथजपति—यत्तेसुसीम इति० गोभि० गृ० सू० । प्र० २ का० ८ सू० ४ । इन तीनों मन्त्रों का अर्थ पूर्व कर आए ।

* अर्थात नासिका से सूंघे ।

शरदः शतम् ॥ १ ॥ ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि। सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० १८ सू० २-४

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपे—

(ग) अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतꣳ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३ सू० ३६ मं० १०

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥२॥ × ऋ०मं०२ सू०२१ मं०६

इस मन्त्र को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री (१) के शिर का स्पर्श करे तत्पश्चात् आनन्द पूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥ †

इस मन्त्र को बोल के थोड़ासा शुद्ध वायु में भ्रमण करा के यज्ञशाला में ला, सब लोग—

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः (क)

इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवे तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाँई ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह के—

(ग) दक्षिणेऽस्य कर्णे जपति—अस्मे प्रयन्धि०—इन्द्र श्रेष्ठानि० पार० गृ०सू० का० १ क० १८ सू०-४-५

× इन दोनों मन्त्रों का अर्थ पूर्व कर आए

(१) स्त्री—अर्थात् बालिका लड़की। देखो—पार० गृ० सू० का० १ क० १ ८मं० ६।

† इस मन्त्र का अर्थ पूर्व कर आए और "सन्ध्या,, में भी लिखा है।

(क) (शतं शरदः) सौवर्षतक (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं, जीव) तू जीता रहे।

ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयंश्रितम्
तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳरुदम् ॥ १ ॥ (ख)

इस मन्त्र से परमात्माकी स्तुति करके जलको पृथिवीपर छोड़ देवे तत्पश्चात बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सन्मुख आ के पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाँई ओर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहै और बालक का पिता जल की अञ्जली भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न हो कर घर में आवे ।

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः ॥

(ख) "......अपामञ्जलिं पूरयित्वाऽभिमुखश्चन्द्रमसम् । ६ । यददश्चन्द्रमसीति० ७ । गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ८ सू० ६-७ । इस मन्त्र का अर्थ पूर्व लिख दिया ।

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधि की व्याख्या ॥

इस संस्कार के दो उद्देश्य हैं (१) एकतो बच्चेको जङ्गल वा उद्यान के शुद्ध वायु का सेवन कराना जिससे उसके अनेक भावी रोग दूर हो जावें और शारीरिक उन्नति होसके (२) उसको सृष्टि अवलोकन करने का प्रथम शिक्षण दिया जावे । युरोप के विद्वान् आज कल यह कहते हुए नहीं थकते कि उनके देशों में दो वा तीन वर्ष के बच्चों को सृष्टि अवलोकन करने का स्वभाव डाला जाता है कारण कि सृष्टिदर्शन ही सृष्टि विज्ञान का प्रथम द्वार है । पुराने ऋषि इस मर्म को समझे हुये थे यही तो कारण है कि उन्होंने जहां निष्क्रमणसंस्कार का एक अंग वायु सेवन रक्खा वहां दूसरा अंग सृष्टि अवलोकन ठहराया और इसी उद्देशसे वह सृष्टि रूपी पुस्तकके सूर्य, चन्द्र रूपी दो आरम्भक अक्षरों के दर्शन कराये । कोई कह सकता है कि दो वा तीन वर्षका बच्चा तो कुछ सुन कर सृष्टि के किसी पदार्थ का अवलोकन करगा तीन मास का बच्चा क्या कर सकता है ऐसा कहने वाला बच्चों के स्वभाव से मानो अज्ञहै । दो महीने तक तो बच्चा बहुत सोता है फिर कभी २ जाग कर टिकटिकी लगाये रहता है यदि रात्रि में दीपक उसकी आंखों के सामने दूर रक्खा हो तो वह कई क्षण विना आंख झपके उस ज्योति का दर्शन (अवलोकन) करता रहता है । मूर्ख मातायें दीपक को आड़ में कर देती हैं यह समझते हुये कि कहीं आंख थक न जाय परन्तु यह उन की भूल है बच्चा मानो योगी की तरह ज्योति का दर्शन कर रहा है और थकने पर आंख स्वयं हीं बन्द कर लेगा । आरम्भ में बच्चा पूरी रुचि के साथ यदि किसी पदार्थ का दर्शन करना चाहता है तो वह ज्योति ही है ।

चौथे मास में जब उसकी अवलोकन शक्ति उत्तेजित हो रही हैं उस समय उस को सूर्य चन्द्र के दर्शन कराना मानो उसकी स्वाभाविक रुचि को तृप्त करना औरबाल-शिक्षण का रहस्य माना गया है । अंग्रेज मातायें अपने छोटेबच्चों को जो दो तीन मास की आयु के होते हैं गाड़ी आदि में लिटा कर वायु सेवन कराती हैं यह निष्क्रमण नहीं तो क्या है ! युरोप की माताओं ने निष्क्रमण का महत्व सचमुच समझ लिया है यही तो कारण है कि उनके बच्चे परिश्रमी, तपस्वी और दीर्घजीवी होते हैं । हमारे पूर्वजों ने शुद्ध वायु का महत्व भली भांति समझा था और इसी लिये तीन मास के बच्चे को शुद्धवायु सेवन कराने के लिये इस संस्कार की नीव डाली थी खेद का विषय है कि आज कल भारतीय मातायें भूत प्रेत आदि मिथ्या जालों में फंस कर बच्चों को घर से नहीं निकालतीं ।

समय यह संस्कार कब किया जावे !इस के लिए ऋषियों के दो मत हैं । प्रथम मतानुसार बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया को यह संस्कार करना चाहिये । कल्पना करो कि एक बच्चा ८ मई सन् १९१२

का जन्मा है तो १७ जुलाई १६१२ को तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया होगी। अथवा यह कहिये कि १७ जुलाई को २ मास और १० दिन होते हैं। इस मत का अभिप्राय यह है कि जो बलवान् बच्चे हों वह दो मास से कुछ ऊपर व तीन मास के अन्दर इस योग्य समझे जावें कि उनको वायु सेवन कराया जावे वा उष्णकाल में यह मत अधिक उपयोगी हो सकता है। शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि रखने का प्रयोजन यह है कि प्रतिपद या द्वितीया में चाँद स्पष्टता से दृष्टिगोचर कम होता है तृतीया को उसकी कला इतनी भर जाती है कि बच्चे को सहज से दृष्टिगोचर हो सके दूसरा मत यह है कि चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुवा हो उस तिथि में यह संस्कार करे। इस का अभिप्राय यह है कि जब बच्चा पूरे तीन मास का हो जावे और उसको चौथा मास आरम्भ हो तो इस मास में उसके जन्म की तिथि में जो शुक्ल पक्ष में आवे उस तिथि में यह संस्कार होना चाहिये। साधारण बच्चों के लिये अथवा शीत ऋतु में यह मत अधिक उपयोगी है।

आरम्भक क्रिया

संस्कार के दिन सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से माता स्नान करा सुन्दर, शुद्ध, कोमल, वस्त्र जो शरीर-रक्षा में उपयोगी हों पहिनावे फिर उसकी माता बालक को पति के हाथ में देने के लिए यज्ञशाला में आवे। पति, पूर्वाभिमुख बैठे स्त्री पति के दक्षिणपार्श्व से होकर उसके सामने खड़ी रहकर दे देवे स्त्री जब बच्चे को उठा कर लावे तब उसका शिर अपने दक्षिण हाथ को रक्खे फिर जब वह पति के सामने होकर बच्चा देगी तो बच्चे का शिर उत्तर दिशा की ओर अपने आप होगा, जब बच्चा उसको दे चुके तो फिर उसी मार्ग से अर्थात पति के पीछे की ओर घूम कर, पति के वाम पार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे। और तीन मन्त्रों के पाठ से उसका सत्कार पति करे। यह ३ मन्त्र स्त्री जाति के विशेष गुणों के बोधक तथा उनके सत्कारार्थ हैं और जब यह मन्त्र पति पढ़े तब तक वह स्त्री खड़ी रहे। खड़ी रहने से प्रयोजन यह है कि जिस देवी के गुण वर्णन हो रहे हैं उसका दर्शन भी सब कर सकें। तत्पश्चात् बैठ जावे और पति पत्नी दोनों सामान्य होम आदि की क्रिया समाप्त करें।

स्त्री सत्कार तथा बालक के आशीर्वादार्थ जो तीन मन्त्र पति बोले वह वही हैं

३ मन्त्रों का भावार्थ

जो जातकर्मसंस्कार में मार्जन करते समय पति बोला था उनके अर्थ वहां पर आचुके हैं तोभी भावार्थ यहाँ दे देते हैं

(१) हे शोभन केशोंवाली! तेरा हृदय ईश्वर पर पूर्णविश्वास रखने वाला और उदार भावों से युक्त रहने वाला है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू तुच्छ बातों में पड़कर अपने हृदय को कभी द्वेष तथा चिन्ता शोक आदि युक्त करती नहीं। ऐसी ईश्वरनिष्ठ और विशाल हृदय वाली जननी की सन्तान ईश्वरकृपा से दीर्घायु भोगे, यही मेरी प्रार्थना है।

(२) हे देवी! तेरा हृदय पृथिवी के सार भाग समान दृढ़ है और चन्द्र आदि आनन्द वर्द्धक पदार्थों के दृश्यों से सुन्दरता, आनन्द, तथा पूर्णता आदि गुणों का

चिन्तन कर चुका है । ऐसे हृदय वाली तुझ देवी की सन्तान दृढ़ मनवाली, रूपवान् आनन्दी और उन्नति शील हो तथा ईश्वर अपनी कृपा से उस संतान को दीर्घायु प्रदान करे ।

(३) हे देवी ! तू ईश्वर रूपी ज्योति पर सच्चा विश्वास रखने से आत्मिकबल युक्त है और भौतिक अग्नि के सेवन करने से उत्तम जठराग्नि तथा होम अग्नि को धारण करती हुई शारीरिक उन्नति वाली है । यह दोनों अग्नियाँ संतान को भी कल्याण कारी हों और ईश्वर बच्चे को दीर्घायु प्रदान करें यही मेरी वारम्बार प्रार्थना है ।

आघ्राण क्रिया

नीचे के तीन मन्त्र बोलकर पति पत्नी दोनों बच्चे के मस्तक का आघ्राण करें ।

(१) अङ्गादङ्गात्स............निरु० ३।४।

हे बालक तू अंग२ से उत्पन्न हुए वीर्य्य तथा हृदय से उत्पन्न होता इसलिए तू मेरा आत्मा (प्राणप्यारा) है, मुझसे पूर्व मतमर किन्तु सौ वर्ष तक जी ।

(२) (प्रजापतेः) परमात्मा के दिये (हिङ्कारेण) स्नेहार्द्र शब्द से (त्वाम्) तुझे (अवजिघ्रामि) सूंघताहूं । (सहस्रायुषा) बहुत जीवन को लिए हुए (असौ) यह तू (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) जीतारहे ॥२॥

(३) (गवां, हिङ्कारेण) गौओं के जैसे स्नेहार्द्र शब्द से तुझे सूंघता हूं । बहुत जीवन को लिए हुए यह तू सौ वर्ष तक जीता रहे ॥३॥

इन मन्त्रों की विशेष व्याख्या की ज़रूरत नहीं ।

बालकके कानों में जप करना

निम्न लिखित आशीर्वाद रूपी दो मंत्रों से जप करने का विधान है । पहिले मंत्रसे बालकके दक्षिण कान में जप करे फिर दूसरे मंत्र से वाम कान में ॥

(१) अस्मे प्रयन्धि..................

(२) इन्द्र श्रेष्ठानि..................

मंत्रार्थ

(१) हे (मघवन् ऋजीषिन् इन्द्र !) जगत् रूपी धनवाले, प्रापणीय ईश्वर ! (विश्ववारस्य भूरेः रायः) सब से स्वीकार के योग्य बहुत धन को (अस्मे प्रयन्धि) हमारे लिये दीजिये । और (अस्मे, जीवसे) हमारे जीवन के लिये (शतं शरदः धाः) सौ वर्षों को दीजिये । हे (शिप्रिन्, इन्द्र) ज्ञानयुक्त वा सुखद भगवन् ! (अस्मे) हमारे लिये (शश्वतः वीरान्) बहुत वीर पुरुषों को दीजिये !

(२) हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य युक्त ईश्वर ! (श्रेष्ठानि द्रविणानि) अति प्रशंसनीय धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) रक्खो और (दत्तस्य) कर्म करने की सामर्थ्य की (चित्तिम) प्रसिद्धि को दीजिये ! और हम को (सुभगत्वम्) सौभाग्य दीजिये (रयीणाम्) धनों की (पोषम्) पुष्टि को दीजिये ! (तननाम्) अंगों की वा

संतानों की [अरिष्टिम्] अहिंसाको दीजिये। (वाचः स्वाध्यानम्) वाणीकी मधुरता को दें [अहम् सुदिनत्वम्] दिनों की उत्तमता को दीजिये ! अर्थात् ऐसे दिन हमारे व्यतीत हों जिन में शुभ कार्य्य होते रहें ॥ २ ॥

इन मंत्रों के अर्थ और व्याख्या जातकर्म संस्कार में आचुकी इसलिये विशेष व्याख्या की ज़रूरत नहीं। अर्थ दोबारा इस लिये लिख दिये हैं कि विषय की स्मृति मन पर पुनः २ अंकित हो।

जब यह मंत्र एक उसके दक्षिण और दूसरा वाम कान में जप चुके तो पति, पत्नीकी गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिणदिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके बालिका के शिर का आघ्राण करे।

संस्कार विधि में बालिका के स्थान में " स्त्री " छपगया है, किन्तु पार० गृ० सूत्र में बालिका ही से अभिप्राय है। इस लिये स्त्री के स्थान में बालिका के शिर का आघ्राण, यह पाठ ठीक समझना चाहिये। फिर वहाँ से उठकर बड़ी युक्तिसे बालकको सूर्य का दर्शन करावे। सोते हुए बालक को जगावे नहीं किन्तु जब जाग रहा हो तो उस समय क्षण मात्र ही सूर्य की ओर उस का मुँह कर देना पर्याप्त है वह आपही देख लेगा। सूर्य को अधिक दिखाने का यत्न करना नहीं चाहिये, अधिक दिखाने से किसी नेत्र रोग की सम्भावना है। उधर बालक सूर्य अवलोकन करने लगे, इधर यह मन्त्र बोले "तच्चक्षुर्देवहितं ....इसके अर्थ संध्या में आचुके हैं। इसका सार यह है कि हम दृढ़ इन्द्रियों के सहित १०० वर्ष भोगने का पुरुषार्थ करें तथा दर्शन श्रवण की इन्द्रियों द्वारा ज्ञानवृद्धि करते रहें।

इस मन्त्र पाठ के पीछे "शुद्ध वायु में भ्रमण कराके,, यज्ञशाला में लावे जहाँ सब लोग "त्वं जीवशरदः शतं वर्धमानः,, अर्थात् हे बालक ! (शतं शरदः) सो वर्ष (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं जीव) तू जीता रहे।

इस उत्तम वचन से आशीर्वाद दें। फिर बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्री और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें।

तत्पश्चात् रात को जब चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहा हो, तब बालक की माता बालक को रात के उपयोगी शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिना दक्षिण ओर से आगे आकर पिता के हाथमें बालकको उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दक्षिण ओर से लौटकर वाम ओर आकर अंजलि भरकर चन्द्रमा के सन्मुख रहकर "ओम् यंददश्चन्द्र...... ,,इस मन्त्र से ईश्वर की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे ॥

प्रश्न होसकता है कि क्यों जी ! स्त्री पति को दक्षिण ओर से आकर खड़ी रह कर बच्चे को देकर फिर पीछे घूम उसके वाम ओर को हो पश्चिमाभिमुख क्यों खड़ी रहे और इधर उधर की घूमाघामी क्यों करे !

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सभा में बठने उठने आने जाने आदि के नियम व्यवहार की सुविधा के लिये सबको बनाने पड़ते हैं। क्या हम देखते नहीं कि बड़ी २ सभाओं में सभापति के पीठासन (कुर्सी) के पास व्याख्यान देने वालों के लिये स्थान नियुक्त किया होता है और वक्ता लोग सभा के मध्य में से अथवा जहाँ से चाहें वहाँ से न आते हुए सभापति के पीछे की ओर को दक्षिण वा वाम भाग में खड़े रहकर व्याख्यान देते हैं और फिर उसी मार्ग से चले जाते हैं। यह सब बातें व्यवहारकी सुविधा के लिए नियत करनी ही पड़ती हैं। इसी प्रकार जब यज्ञशाला में पुरुष स्त्रियाँ भर रही हैं तो पत्नी का पति के दक्षिण ओर से होकर उसके सामने बच्चे का युक्ति से देना क्याही उत्तम व्यवहार कुशलता की बात है। यदि कोई कहे कि पत्नी वाम ओर से क्यों न आवे ! तो इसके उत्तर में हम कह सक्ते हैं कि यदि वाम ओर ही को आना लिखा होता तो वादी का प्रश्न फिर यह होता कि दक्षिण ओर से वह क्यों न आई ! कोई ओर तो आने की नियत करनी ही थी। जब दक्षिण ओर आने को नियत की और इससे लेश मात्र भी विघ्न काम में पड़ता नहीं तो उस दिशा को परिवर्तन करने का प्रश्न व्यर्थ है। रही यह बात कि वह फिर पीछे से घूम कर क्यों वाम ओर को पुनः खड़ी हो। यह इस लिये कि पहिला काम उसका बच्चे को पति के हाथ में देना था, वह काम कर लेने के पीछे उसको उसी मार्ग से पीछे लौटना चाहिये और दूसरा काम उसका पति के वामभाग में पश्चिमाभिमुख खड़ा रहना है, तो उस स्थान के लिये पीछे से आना प्रकट करता है कि वह एक काम कर चुकी अब दूसरे काम में संयुक्त होती है।

दूसरा प्रश्न यह है कि यह मन्त्र पढ़ कर माता पानी की अंजली क्यों चन्द्र की ओर मुख करके ज़मीन पर छोड़े ! इस का उत्तर यह है कि मन्त्र में कहा गया है कि "* जो यह काला पृथिवी का सार भाग चन्द्र में स्थित है उसका जानने वाला मैं, उसको विचारता हुआ पुत्र सम्बन्धी दुःख के लिये रोदन न करूं,, चन्द्रशक्ति मन को प्रसन्न करने से आयुवृद्धि का एक कारण है। चन्द्र के यदि दो अंश कहे जावें तो चन्द्र का वह अंश जो तेजोमय है वह मन पर जो तेज के अंश से विशेष बना हुआ है प्रसन्नतारूपी प्रभाव डालता है। चन्द्र का दूसरा अंश पार्थिव है वह अंश जल पर प्रभाव डालता है। समुद्र पर रहने वाले यहतो अनुभव करते हैं कि जल में ह्रास या वृद्धि चन्द्र पर निर्भर है पर साधारण मनुष्य यह नहीं समझते कि चन्द्र क्यों जल पर भी प्रभाव डालता है। इसका उत्तर इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया हुआ है। मन्त्र में बतलाया गया है कि जो चांद में काला भाग दीखता है वह पृथिवी का सार है वा यह कहो कि पृथिवीमय है, और पृथिवीमय होने के कारणही जलको आकर्षित करता है। पृथिवी का स्वभाव जल को आकर्षण करने का है। जब चन्द्र में पृथिवी का तत्व है तो वह क्यों न हमारे पृथिवी के जल पर प्रभाव डालेगा। अब यह

* यही भाव जातकर्म संस्कार में व्याख्या सहित आ चुका है।

बात प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय कराने के लिए कि यह हमारी पृथिवी, जल को आकर्षण करती है, उदाहरणार्थ एक चुल्लू जल ज़मीन पर छोड़ा जाता है। जल छूटते ही पृथिवी पर गिरता है और यही प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है। जब अंजली छोड़ने से यह बात निश्चय हो गई कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है तो फिर अनुमान से यह निश्चय सहज से हो सकता है कि चाँद में जो काला २ दीखता है वह चूंकि पृथिवी का सारभाग है, इसलिए वह क्यों न जल को आकर्षण करेगा! अतः जब यह निश्चय होगया कि चाँद जल पर प्रभाव डालता है तो हमारे शरीर में जैसा कि बुद्धिमान् कहते हैं एक भारी भाग जल तत्व का है उस पर इसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा। अवश्य पड़ेगा इसलिये चन्द्रमा मनको प्रसन्न करने तथा हमारे शरीरस्थ व पृथिवीस्थ जल के शोधक होने से आयु वृद्धि का कारण है। इस बात के रहस्य को जानने वाला जैसा कि मन्त्र में कहा गया है संतान की दीर्घायु की आशा कर सकता है क्योंकि वह जानता है कि चन्द्र इसका एक कारण है।

आजकल यूरुप के विद्वान् मानते हैं कि चाँद में काले पहाड़ हैं। पहाड़ भी पृथिवी तत्व का दूसरा नाम ही हैं जोकि मन्त्र साफ बतला रहा है न्यूटन महोदय ने सेव को जमीन पर गिरते देखकर समझा था पृथिवी आकर्षण करती है और अब यूरुप के सब विद्वान् मानते हैं कि पानी नीचे इसीलिए गिरता व बहता है कि पृथिवी उसको आकर्षण कर रहीहै। कभी समय था कि यही सिद्धान्त, जल की एक अंजली छोड़ने से भारत के नरनारी समझते थे। जब बालक की माता अंजुली छोड़ देवे तब वह पति के दक्षिण पार्श्व से सन्मुख आकर पति से बालक को लेवे। पुनः पति के पीछे होकर वाम ओर आकर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रखकर खड़ी रहे और बालक का पिता जलकी अंजुली भर पूर्वोक्त मन्त्र के पाठ से ईश्वर प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर खड़ा २ छोड़ देवे।

कौमार भृत्य और चरक

चरक संहिता शरीरस्थान अध्याय ८ सूत्र ११९ में बच्चेके निवास स्थान सम्बन्धी जो बातें बतलाई हैं वह ये हैं:—

बच्चे के रहने का मकान अन्धकार रहित, जिस स्थान में अधिक बायु न आती हो तथा एक ओर सुन्दर पवन आती भी हो ऐसा दृढ बनवावे। जिस मकान में कुत्ते पशु, अन्य, दाँतों वाले जानवर, हिंसक जीव, मच्छर मूषक, पतंग आदि न आसकें तथा जिस घरमें मलमूत्रत्यागन का स्थान, स्नानागार, पाकशाला ऋतुके अनुसार बैठने और सोने के कमरे; तथा बिछाने और ओढ़ने के सुखदाई वस्त्र, यह सब चीज हों ऐसे मकानमें कुमार (बच्चे) को रक्खे।

आगे १२० सूत्रमें लिखाहै कि बालक के सोने की शय्या बिछौने के और ओढ़ने के वस्त्र हल्के सुन्दर नर्म पवित्र और सुगन्धित होने चाहियें। उनमें पसीना, मल-

मूत्र, जीव, विष्ठा आदि किसी समयभी न रहना चाहिये। (१२१ सूत्र) यदि बराबर नये और स्वच्छ वस्त्र प्राप्त नहो सकैं तो उन्हीं वस्त्रोंको उत्तम रीतिसे धोकर स्वच्छ करे। अच्छी तरह सुखाकर सुगन्धित धूपआदि देवैं।

१२२ सूत्र में धूप के यह द्रव्य गिनाये हैं—यव, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, बच, गठवन, हड़, बालछड़, लाख, अशोक, कुटकी और साँप की काचली इन सबको बारीक चूर्ण को घृत में मिला बालक के वस्त्र, शय्या आदि सबको देनी चाहिये।

जो उक्त सब वस्तुएँ न मिलें तो जो२ मिलसकैं उनकाही चूर्ण करके घृत में मिला कर धूनी दे।

(१२४) बालक के खेलने को ऐसे खिलोने देवे जो चित्र विचित्र शब्द करैं—वह खिलोने हल्के हों जिससे हाथ पाँव पर गिरने से चोट न आवे आगे से पैने न हों, मुख में चुभ न जावें और ऐसे तेज़ न हों जिन से प्राणोंका भय हो।

(१२५ सूत्र) बालक को कभी भी डराना नहीं चाहिये, यदि बालक रोता हो और खाता न हो वा अन्य उपद्रव करता हो तो भी उसे भयभीत न करना चाहिये। उसे डराने के लिये किसी राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नाम तक न लेना चाहिये।

इति शुभम्

(नोट-निष्क्रमण संस्कार के "यददश्चन्द्रमसि कृष्णं" वाक्यसे सम्बन्ध) :—विदित हो कि सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अध्याय ६ वाक्य १९ में चन्द्र को सब प्राणियों के बल का बढ़ाने वाला कहा गया है, यथा।

तयो र्दक्षिणं वर्षाशरद्धेमंतास्तेषु भगवानाप्यायते सोमोऽम्ललवणमधुराश्च रसा बलवंतो भवंत्युत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्द्धते ॥ १९ ॥

(अर्थ) तिन में से वर्षा, शरद और हेमंत इन तीन ऋतुओं का दक्षिणायन होता है, इन दक्षिणायन की तीनों ऋतुवों में भगवान् चंद्रमा बलिष्ठ होता है और अम्ल लवण मधुर ये रस (क्रमसे) बलवान् होते हैं और उत्तरोत्तर सब प्राणियों का बल बढ़ता है ॥ १९ ॥

अथान्नप्राशनविधिः ॥

अन्नप्राशन संस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे। इस में आश्वलायनगृह्यसूत्र (आश्व० गृ० सू० अ० १ क० १६ सू० १, ४, ५) का प्रमाण—

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥ १ ॥ घृतौदनं तेजस्कामः ॥ २ ॥
दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत्० ॥ ३ ॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्य आदि में भी है ॥ (पार० गृ० सू० का० १ क०१६सू०१) छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे जिस को तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही शहत और घृत तीनों भात के साथ मिला के निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करावे अर्थात् सामान्य प्रकरणोक्त संपूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उस दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे ॥

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥

इन पांच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पक जावें तब उतार थोड़े ठण्डे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

† ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि । ओम अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥ ५ ॥

इन पाँच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् २ देके अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति चार मिल के ८ आठ घृत की आहुति देकेपुनः उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवे ।

* देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा ! इदं

† चावलों को धोते समय और स्थाली में रखते समय कहना याज्ञिकों की शैली है, देखो-आश्वला० गृ० सू० अ० १ क० १० सू० ६-७ । प्राण, अपान वायु, चक्षु, श्रोत्र, अग्नि, इन के लिए (जुष्टं त्वा) प्रीति भाजन तुझ को (प्रोक्षामि) धोता हूं । (निर्वपामि) रखता हूं ।

* पार० सू० का० १ क० १६ सू० २—३)

वाचेइदन्न मम॥ ऋ०मं०८सू०८६मं०१॥१॥ वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेय ७ स्वाहा। इदं वाजाय। इदन्न मम॥ २॥ यजु० अ० १८ मं०३३॥

इन दो मन्त्रों से दो आहुति देवे तत्पश्चात् उसी भात में और घृत डाल के—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय इदन्न मम॥१॥
ओं अपानेन गन्धानशीय स्वाहा। इदमपानाय इदन्न मम॥२॥
ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे। इदन्न मम। ३॥
ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय। इदन्न मम। ४।

पार० गृ० सू० का० १ क० १६ सू० ४

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओं यदस्य कर्मणो०) इस से स्विष्टकृत् आहुति देवे तत्पश्चात् व्याहृति आहुति ४ चार और (ओं त्वन्नो०) इत्यादि से ८ आठ आज्याहुति मिल के १२ बारह आहुति देवे। उस के पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही मधु और उस में घी यथायोग्य किंचित् २ मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिला के बालक के रुचि प्रमाणे—

(क) अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्रप्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ १॥ यजु०अ०११मं०८३

इस मन्त्र को पढ़के थोड़ा २ पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके महावामदेव्य गान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः।

इस वाक्य से बालक का आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार, बालक की माता करके सब को प्रसन्नता पूर्वक विदा करें॥

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः॥

(क) आश्व० गृ० सू० अ० १ क० १६ सू० ५।

अन्नप्राशनसंस्कार की व्याख्या

एक सूत्रकार का मत है कि जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे तब यह संस्कार करना चाहिये। दूसरे सूत्रकार के मत में छठे मास में यह संस्कार होना ठीक है।

बलवान् बच्चे तो छठे मास में ही, पर साधारण शक्तिवाले बच्चे आठवें वा नोवें मास में अन्न पचाने के योग्य हो जाते हैं। प्रायः बालक जब छः मास का होने लगता है। तब उस के नीचे के दो दांत निकलने आरम्भ होते हैं। इस समय बच्चे क्षार वा लवण पदार्थ चाहते हैं और इसलिये मट्टी चाटना उनको भाता है क्योंकि मट्टी में क्षार (सोडा) वा लवण रहता है। मट्टी के चाटने को तो रोकना ही ठीक है किन्तु भुना हुआ सुहागा १ वा २ रत्तीभर थोड़ी शहद के साथ दिन में एकबार चटादेना अच्छा होता है इस के चटाने से मट्टी चाटने की ज़रूरत नहीं रहती। रबर, वा मुलेठी वा काष्ठ की उत्तम चूसनी दाँत निकालने के लिये इन दिनों में बच्चों को लाभ दायक होती है।

सुश्रुत में १ वर्ष के बच्चे की संज्ञा "क्षीरप,, और दो वर्ष के बच्चे की "क्षीराम्नाद,, कही गई है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि छः मास के बालक को ज़रा सा अन्न जब कि वह पचा भी सक्ता है न दिया जावे। स्वयं सुश्रुतकार का ही मत है कि छठे मास में अन्नप्राशन किया जावे जैसा कि नीचेके प्रमाण से विदित होगा-

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च। नित्यमवरोधरतश्च स्यात्कृतरक्ष उपसर्गभयात्। प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति।

(सुश्रुत शरीरस्थान अ० १० सू० ६४)

(अर्थ) छठे महीने में बालक को अन्न प्राशन करावे। जो अन्न बच्चे को देवे वह हलका, पतला, और हितकारी होना चाहिए। तथा सदैव बालक के पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये और उपसर्ग (उपद्रवों) के भय से सदा रक्षित रखना चाहिए, क्योंकि बालक यत्न पूर्वक, ग्रह (मानसिक रोग, भय आदि) और उपद्रवों से रक्षा करने योग्य होते हैं। इस से पहिले के सूत्रों में जो लेख सुश्रुत में है उसका अनुवाद ही देना यहाँ काफ़ी होगा—

"बालक को जिस प्रकार उसको सुख मिले गोद में रखे, उसको त्रास न देवे। सोते हुए को झटपट उठावे नहीं क्योंकि वह डर जावेगा, झटका देकर ऊपर को न उठावे और नहीं नीचे को करे, क्योंकि इस से वायु के विकार को भय है। अति छोटे बच्चे को बिठावे नहीं क्योंकि इससे कुबड़ा हो जाने का भय ह। माता पिता नित्य बालक के अनुकूल और प्रिय बातें किया करें क्योंकि ऐसा करने से बालक प्रसन्नचित्त रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है तथा सत्व सम्पन्न निरोगी और आनन्दित रहता ह। बालक को तेज़ हवा, धूप, बिजली की चमक, वृक्ष, बेल (लता) सूने स्थान और जहां

दीवालों का छाया पड़ता हो ऐसी जगहों से बचावे। उसको अशुद्ध जगह मोरी आदि के पास न छोड़े, खुली छतों पर तथा ऊंची नीची जगह परभी न छोड़े। गरम पवन (लू) वर्षा, धूल, तालाव, नदी, कूप आदि जल स्थानों के पास न जाने दें। बालक को दूध ही अनुकूल होता है, इस कारण से जो दूध पिलाने वाली के स्तनों में पर्याप्त दूध न हो तो गाय वा बकरी का दूध मात्रा अनुसार बालक को पिलावे।,,

अन्नप्राशनसंस्कार की प्रथा भारत वर्ष में न रहने से अनेक माताएँ दोदो तीन तीन वर्ष तक दूध पिलाती चलीं जाती हैं। कई माताएं तो यहां तक अबोध होती हैं कि दूसरा गर्भ रहगया है और पहिले बच्चे को दूध पिला रही हैं। इस प्रकार गर्भिणीका दूध पीने से कई भयंकर रोग, दूध पीने वाले बालक को होजाते हैं।

यूरुप के कई डाक्टरों का मत है कि ९ वा १० मास तक दूध पिलाना चाहिये। इस नियम पर चलने वाली स्त्रियां छठे वा सातवें माससे अपना दूध कम पिलाना आरम्भ करदेती हैं और गाय के दूधमें उचित भाग पानी वा चूने के पानी (लाइम-वाटर) को डालकर बालक को ऊपर के दूध का अभ्यासी बनाती हैं। और कभी २ ऊपर के दूध के अतिरिक्त चावल वा रोटी वा विसकुट—का टुकड़ा चबाने को दे देती हैं। किसी रूप में बच्चे को जो यह अन्न सर्वत्र दिया जाता है यही तो अन्न-प्राशन है।

अन्नप्राशनसंस्कार बतलाता है कि बच्चे को किसी उत्तम विधि से अन्न देने का आरंभ किया जावे। यदि आज भारत वर्ष में अन्नप्राशन संस्कार समझ बूझ कर करने की प्रथा होती तो लाखों माताएं १ वर्ष से अधिक दूध पिलाने के कारण स्वयं रुग्ण न होती। सैंकड़ों माताएं गर्भिणी होने पर दूध पिलाती हुई न चली जातीं। दो वा तीन वर्ष तक दूध पिलाने के कारण सैकड़ों माताएं अति निर्बल और "पागलपन,, के रोग में न फस जातीं। अन्नप्राशनसंस्कार बतलारहा है कि बालक को अब लवणयुक्त अन्न की जरूरत पड़ने वाली है, यह माताओं को उपदेश दे रहा है कि तुम अभी से बच्चे को कुछ २ अन्न और कुछ २ ऊपर के दूध देने का ढब डालो ताकि १० वा १२ मास का होकर बालक तुम्हारा दूध छोड़सके।

उत्तम भोजन से बालक "तेजस्वी,, वा वीर होसक्ता है, इस सिद्धान्त को जानने वाले तपोधन ऋषि लिखते हैं कि तेजस्वी बालक बनाने के लिये घृतयुक्त भात। अथवा घृतयुक्त भात, शहत और दही खिलाया जावे।

हमारे विचार में ४ तोला भर भात में ४ मासे घी पकते समय डाल देना और पीछे १२ माशे मधु और १ माशा दही मिलालेना चाहिए। यह बात सदैव याद रखना चाहिये कि घी और मधु सम भाग में मिलने से विष हो जाता है इस लिये घी बराबर मधु, तोल में न डाला जाय।

ऋषि, पाकविद्या के धनी थे। वह बच्चे के लियेभी जो भात पकाया जाना है उस

पाक विद्या

को औषधि से बढ़कर गुणकारी समझते थे। जो २ सावधानी रसायन ओषध के तैय्यार करने में करनी चाहिये वही मानों भात बनाने के लिये लिख रहे हैं। समय आगया है कि

लोग बच्चों को भोजनदेने और तत संबन्धी सावधानी रखने की ज़रूरत को अनुभव करें।

चावल बनाते वा उसको शुद्ध करते समय ५ मंत्र बोल लेवे। इनका अभिप्राय यह है कि "थियूरी" (सिद्धान्त) और "परैक्टिस" (कर्त्तव्य) की जहां एकता होसके वहां लोग "थियूरी" को भूल न जावें। यह पाँच मंत्र सिद्धान्त रूप से दर्शा रहे हैं कि चावल शोधन करने वाला पूरी २ सावधानी से काम करे। आजकल जो काम करना हो उसको "टेबल" के रूप में लिखकर काम करने वाले कमरे में लटका छोड़ते हैं और कहा जाता है कि यह बड़ा भारी गुण प्रबन्ध कर्ताओं का है कि क्या काम करना है उसको लेख द्वारा प्रत्येक आंख रखने वाला "टेबल" पर से पढ़ सकता है पुराने समय में लिखने के स्थान में उच्चारण ही ठीक समझा जाता था और काम रखने वाले उस समय पाठ से जान लेते थे कि अब क्या कर्म होने लगा है और करने वाले भी पूरे सावधान हो जाते थे। आज कल यदि किसी बिस-कुट बनाने वाले कमरे में एक दीवार से चिपके हुए कागज पर यह लिखा हुआ हो कि बिसकुट बनाने से पहिले आटे को पूर्णरीति से शोध लो तो लोग कहेंगे अहो कैसी सावधानी का उपदेश लटका रक्खा है! पर जब उनको कहा जावें कि चावल पकाने से पहिले अमुक ५ मंत्र बनाने वाले बोल लेवें जिन में भी सावधानी का उप-देश बनाने वालों तथा श्रवण करने वालों के लिये है तो उसको पाक विद्या के नियम न कहते हुए कह उठेंगे कि "हरएक काम करने से पहिले मंत्र पढ़ने की क्या ज़रू-रत, इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि लिख रखने की जरूरत है तो उच्चारण करने की विधि उससे उत्तम है, उक्त पाँच मंत्रोंका अर्थ समझकर पाठ करने वाले जानलें कि कंकर, पत्थर, बाल, जंतु, तृण आदि कोई भी हानिकारक पदार्थ अन्नमें न रहजावे और वह स्मरण करलें कि शरीर की नाना शक्तियों, अंगो यथा प्राण, अपान, चक्षु शिर आदि अंगों की पुष्टि तथा यज्ञ के होम के लिये यह चावल बनते हैं। बना लेने पर परोसते समय वह फिर उक्त पाँचों उद्देश्यों का विचार करके उचित रीति से युक्तिपूर्वक परोसे।

जो अन्न बच्चे ने खाना है वह तो पूर्णरूप से गलजाना चाहिये, जरा भी कच्चा रह गया तो उस के पेट में विकार करेगा।

भातकी दो आहुतियां सामान्य होम करनेके पीछे पके हुए भात की दो आहुति इन दो मंत्रोंसे देने का विधान है—

(१) देवीं वाच मजनयन्त..................

(२) वाजो नोऽअद्य..................

(देवाः) विद्वान् लोगों ने (देवीं, वाचम्) द्युति वाली वाणी को (अजनयन्त) उत्पन्न किया है (ताम्) उस वाणीको (विश्वरूपाः पशवः) अनेक प्रकार के अज्ञा-नी जन (वदन्ति) बोलतेहैं। सु,ष्ट ता) हम सबसे प्रशंसित (सा, वाक्) वह वाणी (नः, मन्द्रा) हमारे लिये हर्षकारिणी होती हुई (इषम्, ऊर्जम्) इष्यमाण बल वा रस को (दुहाना) देने वाली (धेनुः) गौ की नाईं (अस्मान्) हम सबों को (उप-

स्तु) प्राप्त हो। अर्थात् विद्वानों की परिष्कृत, हर्षकारिणी संस्कृत वाणी ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो।

(वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दान शक्ति को (अद्य, प्रसुवाति) आज पैदा करता है। (ऋतुभिः) ऋतुओं के उत्सवों के साथ (देवान्) विद्वानों को (वाजः) अन्न ही (कल्पयाति) समर्थ बनाता है। (वाजः,हि) अन्न ही (सर्व वीरं, वाजजान) सब पुत्रादि वीर हैं जिसके ऐसा मुझे करे। जिससे कि मैं (वाजपतिः) अन्न का अध्यक्ष होकर (विश्वाः, आशाः) सब दिशाओं को ईश्वर करे कि (जयेयम्) जीतूं।

व्याख्या ॥

(१) इस मन्त्र में संस्कृत वाणी को प्रकाश की उपमा से बतलाया है कि जिस प्रकार प्रकाश की सहायता से मनुष्य यथार्थ दर्शन सहज से कर सकता है, उसी प्रकार संस्कृत शब्द, अर्थ का यथार्थ प्रकाश सहजसे करते हैं। संस्कृत बोलने से भारी लाभ यह है कि इससे ज्ञान की वृद्धि सहज से होती है।

कोई प्रश्न कर सकता है कि अन्नप्राशनसंस्कार के समय संस्कृत वाणी के महत्व दर्शाने की क्या ज़रूरत पड़गई? उसके उत्तर में हम कहेंगे कि ऋषियों की यह बड़ी भारी चितावनी, एक पन्थ दो काज के समान है, कि छः वा ६ मास के बच्चे को शुद्ध संस्कृत शब्द बोलने सिखाये जावें। सब जानते हैं कि छठे मास से बच्चे कोई कोई शब्द बोलने लग जाते हैं। पुराने समय में जब कि माता पिता संस्कृत बोलते थे तो बच्चे को शुद्ध संस्कृत क्यों न सिखाते होंगे?

तीन मास का बच्चा आंख द्वारा ज्ञान प्राप्त करने लगता है। छः मास का बोल कर ज्ञान लेना चाहता है। इस समय उसको (१) अर्थ बोधक खिलौने दिखाकर साथ ही शब्द बोल कर सुनाना चाहिये। (२) शब्द का शुद्ध उच्चारण ही सदैव सिखाया जावे। बच्चे के तोतले शब्द को अनुकरण करके वही तोतले शब्द कोई नहीं सिखावे। (३) बच्चे की अशुद्धि वा भूल पर कभी कोई ऐसी चेष्टा न करे जिससे उसका उत्साह भंग हो। सदैव याद रखना चाहिये कि "मनुष्य भूल करके ही सीखता है।" यह फ्रांस देश के तत्व वेत्ता यशैढन महोदय का वाक्य है। हमारी जन श्रुति यह है "गिरे बिना चलना नहीं आता"।

दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि:—

(क) अन्न दान, शक्ति का उत्पादक है जब तक अन्न कोई भूख लगने पर नहीं खाता तब तक उसको अनुभव नहीं होता कि निर्धन भूखे लोगों को भी इस के दान की ज़रूरत है।

(ख) विद्वान् भी ऋतु२ में अन्न संग्रह कर लेने से दुष्काल आदि के भय से निश्चिन्त होते हैं वा वर्ष भरके लिये समर्थ होजाते हैं।

(ग) जिन गृहस्थों को पेट भर अन्न खाने को मिलता है उनके वंश में ही वीर संतान होती है। अन्न के भूखे कथा वीर संतान उत्पन्न कर सकते हैं।

(घ) जो लोग अन्न के अध्यक्ष हैं उनको कोई भी दुःख देने वाला किसी दिशा में नहीं है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् निर्भयता का कारण अन्न है।

आजकल लोग केवल सोना चांदी से संदूक भर लेने का नाम धनवान् होना समझते हैं। सोना आदिक अन्न प्राप्ति के साधन रूप हैं। सोने हीरे आदि से भी अमूल्य धन तो अन्न ही है।

अन्य चार आहुति — उसी भात में विशेष घृत डाल कर नीचे के चार मन्त्रों से चार आहुति दे (१) ओं प्राणेनान्न......(२) ओं अपानेन......(३) ओं चक्षुषा रूपा......।(४) ओं श्रोत्रेण......।

मन्त्रार्थ—

(प्राणेन) प्राण वायु से (अन्नम्) अन्न का [अशीय] उपभोग करूं। [अपानेन] प्राणेतर वायु से, [गन्धान्] अन्नव्यतिरिक्त द्रव्यों का [अशीय] उपभोग करूं।
(चक्षुषा, रूपाणि) चक्ष—नेत्र से रूपों का० } (अशीय) उप भोग करूं।
(श्रोत्रेण, यशः) कान से यश का० }

व्याख्या—

[१] प्राण वायु से अन्न का उपभोग करने का अभिप्राय यह है कि भूख लगने पर अन्न खाया जावे।

(२) अपान वायु से गन्ध—द्रव्यों को उपभोग करने का अभिप्रायः यह है कि अन्न से भिन्न सुगन्धित पदार्थ—जैसे ज़ीरा, इलायची, दारचीनी आदि खावे ताकि अपानवायु विकार न करे।

(३) चक्ष से रूप आदि देखने का व्यवहार यथा योग्य करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा ज्ञान की वृद्धि करते रहना चाहिये जिस से जहाँ अन्न से शारीरिक उन्नति हो वहाँ विद्यावृद्धि से आत्मिक उन्नति होती रहै।

(४) श्रोत्रों से यश श्रवण करने का अभिप्राय यह है कि सदैव धर्माचरण किया जाय जो कि सर्व समाज का कल्याणकारी है और जिस के आचरण करने से ही यश सुनने का अवसर मिलता है। विद्या की उन्नति के साथ २ धर्म की उन्नति करने का विधान इस से पाया जाता है।

इस के पश्चात् सामान्य प्रकरण में बतलाये हुए १२ मन्त्रों से आहुति देने का विधान है। फिर

"ओं अन्नपते..." इस मन्त्र को पढ़कर थोड़ा भात बालक के मुख में देवे।

मन्त्रार्थ।

हे (अन्नपते) अन्नमात्र के स्वामी परमात्मन्! (अनमीवस्य) अमीवा—व्याधि से रहित (शुष्मिणः) बल देने वाले (शुष्ममिति बलनाम) (अन्नस्य) अन्न को (नः) हमारे लिए (देहि) दीजिये और (प्र,दातारम्) अन्न का दान करने वाले को, सुख सामग्री से (तारिषः) बढ़ाइए॥ (नः) हमारे (द्विपदे, चतुष्पदे) भृत्यों

और गौ आदि के लिए भी (ऊर्जम्) बलकारक अन्न को (धेहि) दीजिए।

व्याख्या।

[क] ऐसे खाने का इस मन्त्र में विधान है जो रोगोत्पादक न हो। सड़े, गले, दुर्गन्धियुक्त तथा बासी अन्न न खाये जावें। कृमि, कंकड़, बाल आदि से रहित अन्न उपयोग में लाया जावे। अन्नों के उत्तम मध्यम गुणों पर भी दृष्टि रक्खी जाव।

[ख] भोजन के पदार्थ बल देने वाले हों जैसे चावल, दूध, घृत, दलिया उड़द की दाल इत्यादि।

(ग) अन्न का दान करने वाला सुखसामग्री से युक्त होता है। यह बात सत्य है क्यों कि जो अन्नदान से दूसरों के प्राण बचायेगा वह क्यों न सुख पायेगा।

(घ) अन्न प्राप्ति के साधन भृत्य आदि मज़दूर और बैल आदि पशु हैं; जो इन साधनों की रक्षा के लिये अन्न घास आदि का भण्डार रखते हैं वह पूर्ण सुख पाते हैं।

फिर 'त्वमन्नपति रन्नादो...'इत्यादिसे शुभ आशीर्वाद दें।

आशीर्वाद का अर्थ।

(त्वम्) तू (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी (अन्नादः) अन्न का ही उपभोग करने वाला (वर्धमानः भूयाः) ईश्वर करे कि शरीर की वृद्धि को प्राप्त हो।

(व्याख्या) इस में दो बातें हैं एक तो यह कि बालक अन्न का स्वामी बने, दूसरे वह अन्न का भोगने वाला भी हो। ऐसे धनी तो हमारे इस देश में अनेक हैं जिन के यहाँ कोठे अन्न से भरपूर रहते हैं, परन्तु जो सदा रुग्ण रहने के कारण अन्न का उपभोग नहीं कर सकते और ऐसे मनुष्यभी इस देशमें बहुत हैं जो अन्न को भोगने की शक्ति रखते हैं परन्तु पेट भर अन्न दोनों समय कठिनता सेही पाते हैं वह कभी अन्न के पति नहीं बनते। ज़रूरत है कि प्रत्येक मनुष्य अन्न पति और अन्नाद बने जो इस आशीर्वाद द्वारा बतलाया गया है।

इत्यन्नप्राशन व्याख्या।

अथचूडाकर्म—संस्कारविधिः ।

यह आठवाँ संस्कार चूड़ाकर्म है जिस को केशोच्छेदन संस्कार भी कहते हैं । इस में आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा है:—

† तृतीये वर्षे चौलम् ॥१॥ उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति ॥२॥ आश्व० अ०१ कं०१७ सू०१—२

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है ।

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम् ॥ पार० गृ० सू० का २ कं० १ सू० १ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है, यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना, उत्तरायणकाल शुक्ल पक्ष में,—वा जिस दिन आनन्द मंगल हो उस दिन यह संस्कार करें । विधिः—

आरम्भ में सामान्य विधि करके चार शरावे में एकमें चावल, दूसरेमें यव, तीसरे में उर्द, चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे, और फिर आघारावाज्य भागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और "त्वन्नो अग्ने" इत्यादि से आठ आज्याहुति दे के फिर 'ओं भूर्भुवः स्वः, 'अग्न आयूंषि०' इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके पश्चात् व्याहृति आहुति ४ और स्विष्टकृदग्नि मन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे इतनी क्रिया करके कर्मकर्ता परमात्माका ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देखके—

ओं + आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि* अथर्व का० ६ । सू० ६८ मं० १ ॥

इस मन्त्रार्द्ध का जप करके पिता बालक के पृष्ठभाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और

---

† इन तीनों सूत्रों का अर्थ स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है ।

+ अथ जपति—आय मगन्त् सविता क्षुरेणेति सविता मनसा ध्यायन् नापितं प्रेक्षमाणः । गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ६ सू० १० ॥

* उष्णेन वाय उदकेनेह्योति० गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ६ सू० ११ ऐसे ही पारस्कर गृ० सू० का०२ कं० १ सू० ६ में लिखा है ।

किञ्चित् ठण्डा (१) जल दोनों पात्रों में लेके (उष्णेनवायउदकेनैहि) इस मन्त्र को बोल के दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे। पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा मांखन अथवा दही की मलाई ले के—

ओं अदितिः श्मश्रु (२) वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा। चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ १॥ अथर्व० का० ६। सू० ६८। मं० २॥ (आश्व० गृ० सू० अ० १ क० १७ सू० ७)

ओं सविता प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु। ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥२॥ पार० गृ० सू० का० २ कं० १ सू० ६॥

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के वालों में तीन बार हाथ फेर के केशों को भिगोवे तत्पश्चात् कंघा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करै अर्थात् विखरे न रहैं तत्पश्चात् (ओं † ओषधे त्रायस्वैनꣳ, * मैनꣳ हिꣳसीः (३) यजु० अ० ६ मं० १५। इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के [ओं + विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि] साम० म० ब्रा० प्र० १ ख० ६ मं० ४। इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिꣳसीः॥ यजु० अ० ३ मं० ६३ (पूर्वार्द्ध) तथा पार० गृ० सू० का० २ क० १ सू० ११॥

इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहने हाथ में लेवे— फिर

ओं स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः॥ यजु० अ० ६ मं० १५ तथा साम० ब्रा० प्र० १ ख० ६ सू० ६॥

---

(१) भाषा में जो २ विधान लिखे हैं उनके प्रामाण्य के लिये—पारस्कर० गृ० सू० का० २ क० १ और उसकी टीकाएँ देखनी चाहियें। अन्यान्य गृह्यसूत्रों में भी प्रायः समान विधि है।

(२) आश्वलायनादि में "केशान् वप" इत्यादि कहीं २ पाठ भेद है।

† हे [ओषधे] रोग निवारक कुश! [एनम्] इस बालक की [त्रायस्व] रक्षा कर [एनम्, मा, हिंसीः] इस बालक को पीड़ा मत पहुंचा। सब भाष्यकार और निरुक्तकार इस बात को मानते हैं कि जड़ों को सम्बोधन करने की—वेदादिकों में शैली है। उसी का सम्बोधन करके गुण दोष बतलाया जाता है जैसे आजकल कवि लोग "रेलवे स्तोत्र" आदि बना कर रेलवे का सम्बोधन करके उसके गुणादि का वर्णन करते हैं वैसे ही समझना चाहिये।

* साम० म० ब्रा० प्र० १ ख० ६ सू० ५॥

(३) आ० गृ० सू० अ० १ क० १७ सू०—८॥

+ हे छुर! तू [विष्णोः] ईश्वर का दिया (दंष्ट्रोऽसि) काटने का साधन है॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय
यजु० अ० ३ म० ६३ (उत्तरार्द्ध) तथा पार० गृ० सू० का० ३ क० १ सू० ११

इस दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे को केशों के समीप ले जाके—

ओं येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य (१)गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् । अथर्व० का० ६ । सू० ६८ मं० ३ ॥ (पार० गृ० सू० कां० २ कं० १ सू० ११)

इस मन्त्र को बोल के कुशसहित उन केशों को काटे * और वे काटे हुए केश और दर्भ, शमी वृक्ष के पत्रसहित अर्थात् यहाँ शमी वृक्ष के (२) पत्र भी प्रथम से रखने चाहियें उन सबको लड़के का पिता और लड़केकी माता एक शराव में रक्खे और कोई केश, छेदन करते समय उड़ा हो उसको गोबर से उठा के शरावा में अथवा उस के पास रक्खे तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ आश्व० गृ० अ० १ कं० १७ मं० १२ ॥

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह दूसरी ओर का काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यं ज्योक् च पश्याति सूर्यम् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ आश्व० गृ० अ० १ कं० १७ मं० १२ ॥

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केश समूह को काट के उपरि उक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०," "ओं येन धाता०," "ओं येन भूयश्च०," और—

येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय ॥ सा० मं० ब्रा० १ ख० ६ मं० ७

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोल के चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बांई ओर के केश काटने का विधि करे तत्पश्चात् उसके पीछे आगे के केश काटे परन्तु पांचवी बार काटने में "येन पूषा०," इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरोदिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥१॥ पार० गृ० सू० का० २ क० १ सू० १६

(१) यहाँ पारस्कर और आश्वलायन में चतुर्थ चरण का पाठ—"मस्या युष्यं जरदष्टिर्यथाऽसत," ऐसा है ।

* केश छेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटे तोभी ठीक है । (२) देखो आश्वला० गृ० स० अ० १ क० १७ सू० ११

यह मन्त्र बोल छेदन करे, तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥१॥ यजु० अ० ३ मं० ६२ (पार० गृ० कां० २ कं० १ सू० १५)

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक बार और काट के इसी (ओं त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान्। शुन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः॥ अथर्व० कां० ८ अनु० १ सू० ४ मं० १७।

इस मन्त्र को बोल के नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज़ करा के नापित से बालक का पिता कहे कि "इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजोओ सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर करो, कहीं छुरा न लगने पावे," इतना कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा, उसके सन्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पाँचों ओर थोड़े २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक बार सब कटवा देवे, पश्चात् दूसरी बार के केश * रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिन में प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश शमीपत्र और गोबर नाई को देवे, यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई, केश दर्भ शमीपत्र और गोबर को जंगल में लेजा गढ़ा खोद के उसमें सब डाल ऊपर से मिट्टी से दाब देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाव के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाढ़ देवे ऐसा नापित से कह दे अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उससे उक्त प्रकार करा लेवे। क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः (१)॥

इस मंत्रको बोल बालक को आशीर्वाद देके अपने २ घरको पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें ॥

इति चूडाकर्मसंस्कारविधिः ॥

---

* यथा मङ्गलं केशशेषकरणम्। पार० गृ० सू० का० २ क० १ सू० २२। केशों का शेष रखना अर्थात् शिखा का रखना, यथा मङ्गल-जैसी इष्ट रीति हो वैसे रखना चाहिये।

(१) इसका अर्थ पूर्व कर आये।

ओ३म्

मुण्डनसंस्कार की व्याख्या ।

बच्चे को दांत निकलने के समय बहुत से रोग ग्रसते हैं, उन से सावधानी के साथ रक्षा के निमित्त अनेक उपाय करने चाहियें ।

इंगलेंड के राज्य वैद्य डाक्टर विलियम मुअर, के० सी० आई० ई० गृहचिकित्सा नामी पुस्तक में लिखते हैं कि जो नसें बच्चे के दांत बनाने में सहायक हैं उन का संबंध आमाशय और सर्व शरीर के अन्य नसों के साथ है । इसी लिये "जब दांत निकल रहे हों तो पेट वा आंतों के रोगों, बुखार और खाल के रोगों का परस्पर संबंध होता है । [गृह चिकित्सा पृ० ३७६]

डाक्टर महोदय के इस लेख से पाया गया कि दांत निकलते समय बच्चों को दस्त आने, बुखार होना, और सर्व शरीर की खाल पर जिस में शिर की खाल भी है फुंसी खुजली आदि का हो जाना संभव है । यह बात अनुभव सिद्ध भी है कि जिन बच्चों को दस्त साफ नहीं होता उनको कभी २ इस दशा में नेत्र रोग हो जाते हैं और दस्त साफ आते रहने पर भी एक वा अनेक रोग कभी २ साथ होजाते हैं ।

बच्चे के नीचे के दो दांत प्रायः छठे मास में वा सातवें मास से पूर्व निकल आते हैं । ऊपर के दो दांत निचले दो दांतों के २१ वा ३० दिन पीछे निकलते हैं । यदि पहिले दो दांत छठे मास की समाप्तितक निकलें तो ऊपर के दो दांत सातवें मासकी समाप्तिपर निकल आवेंगे । ऊपर के दो दूसरे दांत आठवें वा नौवें मास की समाप्ति तक उगेंगे । नीचे के और दो दांत एक महीना पीछे अर्थात् १० मास की समाप्ति तक निकलते हैं । नीचे के जबड़े की दो दाढ़ें १२ वें और चौदवें महीनों के अन्दर निकलती हैं और ऊपर के जबड़े की दो दाढ़ें तुरन्तही उनके पीछे निकल आती हैं । कीले दांत १६ वें और २० वें महीनों के अन्दर निकलते हैं । सब से पीछे नीचे ऊपर की दूसरी दो दाढ़ें बीसवें और तीसवें वा ३६ वें महीनों के अन्दर निकलती हैं । इस लेख का सार यह है कि बालक के २० दूध के दांत अढाई से तीन वर्ष की आयु तक निकलते हैं और इसी समय प्रायः रोग भी प्रबल होते हैं ।

डाक्टर मुअर साहेब उक्त पुस्तक के पृ० १८० पर लिखते हैं कि—

"दांतों के निकलते समय किसी प्रकार का खाल का रोग उत्पन्न हो सकता है" यथा लाल ददोड़े खुजली सहित वा मल मूत्र तथा ऊरुपर फुंसियां वा गोललाल चकत्ते खुजली और जलन सहित, फिर कहते हैं कि—"खाज आदि वाले स्थानों को गिलीसरीनयुक्त साबन से कई वार धोकर पीछे से थोड़ी सी ठंडी मलाई वा वेसेलीन लगादेनी चाहिये" (पृ० ३८१)

बालों के ढीले होने वा गिराने का राग दूर करने के लिये लिखते हैं कि—

"पुरुषों के बाल दृढ और घने बने रहें उसके लिये हिन्दोस्थान में थोड़े २ कटवा छोड़ने चाहियें और शुद्ध रखना तथा ब्रुश करना चाहिये" [पृ० २५४]

"जब बाल टूटे हुए दृष्टि पड़ें वा स्वाभाविक दशा में न उगते हुए जनायें तो "रिंगवर्म" हैं ऐसा जानो। जब फुंसियां तो हों नहीं और बाल उखड़े हुए की जगह सफेदी हो तो "एलोपेसिआ" रोग जानो। ....अनुमान से कारण यह होता है कि कोई रोग उन नसों में है वा शिर को पूरा २ लोहु नहीं पहुंचता" [पृ० २५५]

"शिर पीड़ा जब अत्यन्त हो और बुखार सा भी हो तो बैठे हुए आराम करो, ठंडे लोशन (जलमय पदार्थ) शिर को लगाओ। बाल कटवाकर छोटे कर डालो"—
(पृ० २५६)

"रिंगवर्म (दाद)—यह एक संचारक (छूतवाली) खाल की बीमारी है जो कि बहुधा बच्चों के शिर पर होती है। परन्तु प्रायः मुख, शरीर वा जोड़ों वा नखों के अन्दर वा दाढी में भी होजाती है"। "एक प्रकार की रिंगवर्म (दाद) शरीर के उन भागों में होती है जहां पर बाल हों। यथा शिर, दाढी, और दूसरे बालों वाले भाग।"

"शिर के दाद में लाली के साथ खुजली भी होती है" [पृ० ३४१]

"दाद के आस पास की जगह का एक २ इंच भली प्रकार मुंडन किया जावे उस रोग वाली जगह को छोड़कर,, [पृ० ३४२]

"बच्चों को दांत निकल न के कारण फोड़े होते हैं" [पृ० ६४]

"शिर पर पीले से दाग़ः—यह रोग छोटी उमर के बालकों में जो कफ प्रकृति वाले होते हैं, सात वर्ष की आयु के पीछे यह रोग बहुत ही कम होता है। खाते पीते भी जब बच्चा सूखता जावे वा क़ब्ज़ो वा दस्तों के पीछे यह रोग हुआ करता है। यदि बालक के दांत निकले रहें और मसूड़े सूजे रहें, वा नरम हों तो उनको भली प्रकार नशतर लगवा देना चाहिये ठंडी औषधियां जैसे कि रबर की थैली में बरफ डालकर, यदि यह न मिलसके तो उड़जाने वाली औषधियों के लेप शिर को बराबर लगाते रहना चाहिये" [पृ० ७७]

लेख का सार

इस लेख का सार यह है कि दांत निकलने के समय विशेष कर और साधारण रीति से ७ वर्ष के पूर्व बालकों को अनेक प्रकार के शिर के रोग होते हैं। दांत निकल ने से दस्त, बुखार, और फुंसी फोड़े, दाद, खुजली आदि अनेक त्वचा रोग होते हैं। इन में से कई तो शरीर के नाना अंगों पर होते हैं और कई केवल शिर की त्वचा परही। इस के अतिरिक्त बालगिरने तथा लोहू के शिर में ठीक तौर पर न पहुंचने से भी शिर के रोग हुआ करते हैं।

शिर शरीर में सब से प्रधान अंग है। मनुष्य की उत्तमता, हाथी, शेर, सब महाबली पशुओं से शिर की उत्तमता के कारण हैं। जैसे वृत्त की जड़ उसका सब से प्रधान अंग है उसी प्रकार शिर मनुष्य रूपी वृत्त की जड़ है। यही नहीं परंच इस में पाँचों ज्ञान इन्द्रियों का घर है। शरीर के ज्ञान जनक वा क्रियाजनक मज्जातंतु इसी में आधार पाते हैं। शिर को सामुद्रिक विद्या की दृष्टि से देखने वाले विद्वान इस में एक २ विन्दु भर जगह में विचित्र शक्तियों वा गुणों का मूल बतलारहे हैं। शिर शरीर में सूर्य्य वत् है। शरीर रूपी सेना का यह सेनापति है। जीवन वृद्धि और स्वास्थ्य के लिये जितनी भी शिर की रक्षा की जावे उतनी उपयोगी है, रोग को कभी निबल नहीं समझना चाहिये। रोग उत्पन्न होने के पश्चात् रोगी की औषधि करने से भी वह पुरुषार्थ और सावधानी अत्यंत स्तुति के योग्य है जिस से कि रोग उत्पन्न ही न हो सके। ६ मास से बच्चा दाँत निकालने लगता है और तीन वर्ष में जाकर समाप्त कर पाता है यह समय बच्चे के जीवन में बहुत रक्षा का समय है। हमने ऊपर के लेख से देख लिया कि दाँत निकल ने के दिनों में फुंसी, फोडे, दाद, खुजली आदि रोग शिर की त्वचा पर हो जाते हैं। इन सर्व रोगों के बीज दाँत निकालने वाले बालक के शिर में वृद्धि न पावें इस लिये यदि बालक के शिर के बाल बड़ी सावधानी के साथ मूंड दिये जावें और मलाई जोकि वेसलीन का काम देती है, लगाई जावे तो शिर की त्वचा, खुजली, दाद, फुंसी, फोड़ा आदि से मुक्त हो सकती है।

यही नहीं पर बाल गिरने और शिर की ओर लोहू बराबर न पहुंचने को दूर करने के लिये भी यही उचित है कि मुंडन से काम लिया जावे। मुंडन के पश्चात् जो बाल उगते हैं वह पुष्ट होते हैं गिरने नहीं। शिर का मुंडन करने से निस्सं देह लोहू भी ठीक तौर पर शिर की ओर गति करने लग जाता है और शिर के सर्व स्थानों में बराबर पहुंचता है। यह सब बात अनुभव सिद्ध और प्रत्यक्ष हैं।

आयुर्वेद के प्रमाण

सुश्रुत संहिता चिकित्सा—स्थान अ० २४, सू० ७२ में क्षौर के गुण इस प्रकार लिखे हैं:—

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्। हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम्॥

(अर्थात्) केश, नख तथा स्थल के बालों का दूर करना विकार को दूर करता है। हर्ष, लघुता और सौभाग्य करने वाला है, तथा उत्साह बढ़ाता है॥ ७२॥

चरक संहिता, सूत्रस्थान अ० ५ सू० ९३ में क्षौर आदि के विषय में ऐसा लिखा है कि

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपविराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं संप्रसाधनम्॥

(अर्थात्) क्षौर कर्म कराने से, नख कटवाने से तथा कंघी आदि से केशों

को साफ रखने से पुष्टि, वृष्यता, आयु, पवित्रता, और सुन्दरता की वृद्धि होती है॥६३

आयुर्वेद के मर्मज्ञ प्राचीन आर्य्य ऋषियों ने रोग निवृत्ति, आयु वृद्धि, शारीरिक पुष्टि आदि अनेक हेतुओं को लक्ष्य में रख कर इस मुण्डन संस्कार का बालक के लिये विधान किया था, उस अवस्था में जब कि उसके दांत निकल रहे हों और जब कि अनेक रोगों के होने की सम्भावना अधिक होती है।

इस समय कई स्थानों पर केवल पुत्रों का ही यह संस्कार किया जाता है, पुत्रियों का नहीं, यह पुत्र पुत्री दोनों के लिये समान लाभ दायक है इस लिये जैसा कि प्राचीन आर्य्य, बालक मात्र का यह संस्कार करते थे वैसे ही अब भी करना चाहिये।

समय संस्कार विधि में लिखा है कि "बालक के जन्म से तीसरे वर्ष में करना" अर्थात् या तो तीसरे वर्ष के अन्दर या पहिले वर्ष के अन्दर यह संस्कार किया जावे। अनेक सूत्रकारों और मनुस्मृति का भी यही आशय है। अब कोई प्रश्न कर सकता है कि पहिले वर्ष के अन्दर वा तीसरे वर्ष के अन्दर क्यों किया जावे। इस का उत्तर यह है कि बच्चों को दांत निकल ने के समय दो समय पर अधिक रोग प्रायः होते हैं, एक तो जब पहिली दाढ़ें निकलती हैं और दूसरे जब अन्दर की दाढ़े निकलती हैं, पहिली दाढ़ें नीचे के जवड़े में १२ वें और १४ वें महीनों के अन्दर निकलती हैं और सब से अन्त की दाढ़े २० वें वा २४ वें मास से आरंभ होकर ३० वें मास वा ३६ वें मासतक निकल आती हैं। इस लिये १० वा ११ मास के बच्चे का मुंडन जहां पहिली दाढ़ संबंधी भावी रोगों को न्यून करसकता है वहां २६ वें, २८ वें वो ३० वें मास का मुंडन अन्त की दाढ़ सम्बन्धी रोगों को न्यून करने में सहायक होता है। बच्चोंकी प्रकृति भिन्न २ होती है इसलिये उसका विचार करके यह दो विकल्प रक्खेगये प्रतीत होते हैं।

सांवत्सरिकस्येति................ इस से अगला सूत्र है:—

"तृतीये वाऽप्रतिहते"

("अप्रतिहते" का अर्थ है जब तीसरा वर्ष अवशिष्ट रहे तब)

जिससे भी पाया जाता है कि पहिले वर्ष वा तीसरे वर्ष के अन्दर यह संस्कार कियाजावे। मुंडन करने से जहाँ अनेक त्वचारोग शमन होसकतेहैं वहां शिरको ठंडक भी पहुंचती है और यह ठंडक बच्चे को इस समय लाभकारी है। डाक्टर विलियमसुअर का यह भी मत है कि ठंडक इससमय बच्चे के लिये आवश्यकहै पुराने ऋषि मुंडन के द्वारा जहाँ अनेक रोगोंको शमन करतेथे वहां शिर को इसके द्वारा ठंडक पहुंचाते थे क्योंकि यह निर्विवाद बातहै कि मुंडन करनेसे शिरकी गरमी कम होकर ठंडक पहुंचती है।

उत्तरायण शुक्ल पक्षमें वा जिस दिन आनन्द मंगल हो उस दिन यह संस्कारकरे मुंडन संस्कार जब भारत वर्ष में ठीक तौरसे कियाजाताथा तब बच्चों को शिर और

नेत्र आदि के रोग बहुत ही कम होतेथे। मुंडन संस्कार में दो बातें मुख्य हैं एक तो क्षौर कर्म करना दूसरे मलाई आदि से शिर धोना। मलाई वा चिकनाई शिर पर लगानेसे शिरके अनेक रोग नहीं होते और नेत्रों को भी लाभ पहुंचता है। आजकलभी जिस समय बच्चे के दांत निकलने लगतेहैं तो पंजाब देश में माताएं घी में गेहूं डाल कर उस गरम घीको बच्चेके शिरपर रातको लगाती है। सिंधदेश में सरसों के तेल को माताएं भली प्रकार बच्चोंके शिरोंपर लगातीं और साथ ही आखोंमें भी डालतीहैं। शिमले आदि अनेक पर्वती स्थलोंपर बच्चे के शिरपर ठंडक पहुँचने के लिये बहतीहुई पानीकी धार उसके शिरके साथ छूने देती हैं। यह क्रियाएं माताएं सर्वत्र यह स-मझकर करतीहैं कि बच्चे को शिर तथा नेत्र के रोग नहीं होंगे और ऐसा करने से रोग कम होतेहैं यह तो देखने में आता है। मुंडन करने की दशा में जब बाल हटगये तो ठंडक स्वाभाविक ही पहुंचेगी और उस दशामें पानी की धार के साथ शिरको अ-धिक स्पर्श कराने की आवश्यकता नहीं रहती जैसा कि पर्वती लोग करते हैं, हाँ, रो-ज शिरका धोना और तेल व मलाई आदि का लगाना लाभकारी होगा।

लिखा है कि चार शरावे लेकर एक में चावल दूसरे में यव तीसरे में उद और चौथे में तिलभर कर वेदी के उत्तर भाग में धर लेवे। गृह्य सूत्रों में जैसा कि लिखा है यह अन्न नापित (नाई) को देने के लिये है। संस्कार विधि में नापित को यह अन्न तथा यथायोग्य धन और वस्त्र आदि देनेका भी विधान है। आजकल कई लोग ऐसा कहते हैं कि चावल, यव, उर्द, और तिल यह तो मामूली अनाज हैं इनके स्थान में यदि मिठाई देदी जाय तो क्या डरहै। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि यदि कोई मिठाई देसकता है तो वह इस अनाज के साथ मिठाई भी दे उसे कोई रुका-वट नहीं परन्तु यह मर्यादा इसलिये बांधी गई है कि गांव के अन्दर भी प्रत्येक मनु-ष्य सुगमता से इसको देसकता है जहाँ कि बड़े शहरों की मिठाई नहीं मिल सकती अब रही यह बात कि यह अनाज मामूली हैं सो इसके विषय में हम यह कहेंगे कि इन में यह उत्तमता है कि सुलभ होने पर भी अनेक गुणोंसे युक्तहैं और उन गुणोंपर विचार करते हुए कोई इनको मामूली अनाज नहीं कह सकता।

(१) चावल—; इसके मुख्य गुण यह हैं—बल कारक, त्रिदोष नाशक, नेत्र हि-तकारी, मूत्र कारक।

(२) यव-इसके मुख्य गुण यह हैं—व्रणरोग (फोड़ा) में गुणकारी, मेधा वर्धक पवन और मूत्र को निकालने वाला।

(३) उर्द—१ "अत्यन्त पुष्टिकर्ता"
२. शुक्र वर्धक
३. मलमूत्र और स्तन के दूध को निकाल ने वाला।

(४) तिलः— १. बलकारक
२. बालों को हितकारी
३ त्वचा की स्वस्थता रक्षक

४. स्तनों में दूध प्रगट कर्ता
५. व्रण हितकारी
६. दंत रक्षक (दाँतहितकारी)

विशेष कार्य्यारम्भ

साधारण होम के पश्चात् लिखा है कि कर्म कर्ता ईश्वर का स्मरण करके "नाई की ओर प्रथम देखे "अर्थात् नाई को दृष्टि द्वारा सूचना दे कि तुम तैय्यार होजाओ और नाई दृष्टि द्वारा सूचना पाकर गरमजल आदिकी संभाल करले। फिर मंत्र जपे अर्थात् मंत्र का उच्चारण करे मंत्र यह है

* ओ३म् आयमगन्त्सविताक्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि

(अर्थ)हे नापित ! (अयम्, सविता) यह मुण्डन में समर्थ आप (क्षुरेण) छुरेके साथ (आ, अगन्) प्राप्तहुए आपहो, सो-हे (वायो) मुण्डन क्रियाको जानने वाले ! (उष्णेन, उदकेन) गरम जलके साथ—(एहि) आओ; अर्थात् गर्म जलले आओ।

(व्याख्या) इस मंत्र में गरम जलका वर्णन स्पष्ट रूपसे पाया जाताहै। आज कल बड़े बड़े सरकारी अस्पतालों में उस्त्रे कैंची तथा शस्त्र आदि खौलते हुए गरम जलमें १५ वा २० मिनिट तक डाल २, उसके द्वारा अनेक वार धोर कर शुद्ध कियेजाते हैं। गरम जल में ही शक्ति है कि नाई वा डाक्टरों के उस्त्रे तथा कैंची कंघी आदि को शुद्धकरसके।

जिसको खुजली आदि रोग नहीं उसको नाई के मैले उस्तरे वा मली कैंची से हो जाते हैं। जब संस्कार की सामान्य होम क्रिया आरंभ होजावे तो उसी समय दूसरी तरफ गरम जल में उस्तरा, कैंची कटोरी, कंघी आदि डाल अनेक वार नये गरमजल से धोर कर नाई शुद्ध करे। और तब तक भली प्रकार सब सामान शुद्धकर तैय्यार कर रक्खे जब तक कार्य्य कर्ता उसकी ओर दृष्टि करे। फिर दृष्टि द्वारा सूचना पातेही उस्तरे आदि को संभाल पूर्वक तथा पृथक् शुद्धगरम जलको भी लेकर आने को तैय्यार होजावे।

पुराने आर्य्य बच्चेका मुंडन ऐसे नाई से कराते थे जो राजा का क्षौर कर्म करनेवाला हो अर्थात् अत्यंत सावधान और शुद्ध पवित्र रहने वाले नाई से मुंडन कराते थे। आजकल तो गन्देपन का नाम ही नाई बनरहा है। नाई को अत्यन्त ताकीद होनी चाहिये कि वह डाक्टरों के समान भली प्रकार स्नान तथा स्वच्छ वस्त्र धारणकर, शुद्ध छुरा आदि घर से ले तथा छुरा, नखछुरा (नाखुनगीर) के रखने की डबिया शुद्ध लावे। कटोरी आदि घर से माँज करलावे और जिस समय यजमान के गृह पर पहुंचे तब जैसा कि अभी लिख आये हैं, खूब गरम २ जल में उस्तरा आदि डाल तथा

*(नोट) इससे आगे जो मन्त्रार्द्ध लिखागया है उसकी जरूरत नहीं इस लिये काट देना चाहिये।

गरम जल द्वारा अनेक वार धो स्वच्छ अंगोछे (रूमाल) से पूंछ। जिस कपड़ पर वह बाल लेता है वह पुराना दुर्गन्धयुक्त कपड़ा न लावे, यदि कपड़े की जरूरत हो तो स्वच्छ कपड़ा दिया जावे। पुराने आर्यों के नाइयों के समान आजकल अंगरेज अफसरों (अधिकारियों) का चौर (हजामत) करने वाले नाई स्वच्छ, चतुर और उत्तम छुरा आदि रखने वाले होते हैं।

जब पिता मंत्र का उच्चारण करले तो उठकर बालक की पीठ की ओर चला जावे और उस समय नाई गरम जल लेकर वहाँ पहुंच जावे उस गरम जल को एक बरतन (पात्र,) में थोड़ा सा डाले और दूसरे ठंडे बरतन से पानी लेकर इस गरम जल के कटोरे में पिता डाले और ऋतु के अनुसार जैसा जल चाहिये वैसा करे। यह जल, मक्खन वा दही की मलाई नाई को देवे और स्वयं निम्न लिखित दो मंत्रों का उच्चारण करके नाई को शिर के वाल तीन बार हाथ फेर २ कर भली प्रकार भिगोने को कहे। पुराने समय में नाई के सामने मंत्र इस लिये पढ़ा जाता था कि वह उसका मतलब समझले। जब सब की मातृभाषा संस्कृत होती थी तो नाई को वेद के मंत्र का अर्थ समझने में विशेष कर उस दशा में जब कि वह पढ़ा लिखा होता था क्या कठिनाई आसक्ती थी!

वह दो मंत्र ये हैं—

[१) ओम् अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।..................
(अथर्व का० ६। सू०६८। मं० २) तथा (आश्व० गृ०सू० अ० १ कं० १७ सू०७)
[२] ओम् सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु।..............
(पार० गृ० सू० का०२कं०१ सू६]

[मंत्रार्थ]

(अदितिः) जो खण्डित न हो ऐसा छुरा (श्मश्रु) केशों को (वपतु) (वर्चसा) अपनी स्वच्छता को लिए हुए (आपः) जल (उन्दन्तु) बालक का शिर गीला करें। (प्रजापतिः) मनुष्यादिकों का रक्षक परमात्मा (चिकित्सतु) इस बालक के रोगों की निवृत्ति करे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिए और (वर्चसे) श्रेष्ठ ज्ञान के लिए॥

हे बालक! (सवित्रा, प्रसूताः) सूर्य्य से, वा ईश्वर से समुत्पादित (दैव्याः, आपः) स्वच्छ जल (ते, तनूम्) तेरे मस्तक को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिए और (वर्चसे] तेज के लिए [उन्दन्तु) आर्द्र करें॥

(व्याख्या)—पहिला मंत्र बतला रहा है कि नाई का उस्त्रा (छुरा) खंडित न होना चाहिये। पिता जो बच्चे के पृष्ठ भाग की ओर बैठा हुआ है वह इसकी भली प्रकार निरीक्षा करले। जल स्वच्छ हो, दुर्गन्धयुक्त वा कृमि आदि युक्त न हो। संस्कार से एक दिन पूर्व अच्छे कुएं का जल लेना चाहिये और उसको गाढे के शुद्ध अंगोछे से छानकर गरम कर फिर छान, ढांक कर ठंडा होने के लिये रख देना चाहिये। मतलब यह है कि ठन्डा जल भी पहिले गरम कर

लिया हो, ऐसा लिया जावे तो उत्तम है। मन्त्र ताकीद कर रहा है कि जल स्वच्छ हो। फिर इस संस्कार के तीन उद्देश मन्त्र ने यह बतलाये हैं (१) रोग निवृत्ति (२) दीर्घायु (३) श्रेष्ठ ज्ञान का साधन मेधा वृद्धि। दूसरे मन्त्र पर मनन करने से विदित होता है कि स्वच्छ जल बच्चे की खाल को लगाना चाहिये और स्वच्छ जल द्वारा बाल भिगोए जावें क्योंकि स्वच्छ जल दीर्घायु का एक कारण है।

जब नाई पानी आदि द्वारा बालों को भली प्रकार भिगोले, तब स्वच्छ कंघे से केशों को सुधार कर इकट्ठा करे। फिर पिता यह वाक्य बोले—

ओं ओषधे त्रायस्वैनꣳ मैनꣳ हिꣳसीः। (यजु० अ० ६ मं० १५)

[अर्थ]

हे (ओषधे) रोग निवारक कुश! (एनम्) इस बालक की (त्रायस्व) रक्षा कर (एनम् मा, हिंसीः) इस बालक को पीड़ा मत पहुंचा।

सब भाष्यकार और निरुक्तकार मानते हैं कि जड़ों को सम्बोधन करने की वेदादिकों में शैली है। उसी का सम्बोधन करके गुणदोष बतलाया जाता जाता है, जैसे आजकल कवि लोग "रेलवे स्तोत्र" आदि बनाकर रेल का संबोधन करके गुणादि का वर्णन करते हैं, वैसे ही समझना चाहिये।

जब बोलचुके तब नाई को तीन कुशाओं से बच्चे के बाल कोमलता तथा युक्ति से दवाने को कहे, जिस से कोई बाल बिखरे नहीं। जब नाई दबा ले तब पिता निम्नलिखित वाक्य बोले। ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि (साम० मं० ब्रा० प्र० १ खं० ६ मं० ४)

(अर्थ) हे क्षुर! तू प्रवेश करने वाले पदार्थ का काटने का शस्त्र है।

यह वाक्य बोलता हुआ उस्त्रे की ओर देखे कि उस की धार तो बराबर लगी हुई है वा नहीं। क्योंकि इस वाक्य का यही अभिप्राय है।

इस के पीछे निम्नलिखित मन्त्र बोले और नाई को बोलने के पीछे कहे कि तू छुरे को दाहने हाथ में लेले।

ओम् शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिꣳसीः। यजु० अ० ३ मं० ६३ (पूर्वार्द्ध); तथा पार० गृ० सू० कां० २ कं० १ सू० ११

(अर्थ)—हे क्षुर! (शिवः, नाम, असि) तू सुन्दर स्वरूप है (ते, पिता, स्वधितिः) तेरा उत्पादक बज्रमय कठिन लोहा है (ते, नमः) तेरे लिए हम आदर करते हैं ईश्वर करे कि तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) मत पीड़ा दे। अर्थात् सुन्दर लोहे का बना हुआ, जिस से पीड़ा न पहुँचे ऐसा छुरा लेना चाहिए।

(व्याख्या)—जड़ पदार्थ के लिये नमः का व्यवहार होने का अभिप्राय यही है कि वह उपयोगी वस्तु होने से आदर की भी वस्तु है। जो वस्तु निकम्मी होती है उस के लिये आदर का भाव नहीं होता। जिस घर में एक मनुष्य रहता है वह उस घर को प्यारा और आदर के योग्य कहता है, तो इस से यही सिद्ध होता है कि, उस के उपयोगीपन का भाव उस के मन में है। कई लोग जड़ वस्तुओं के लिये आदर का

शब्द सुनकर चौंक उठेंगे और कहेंगे कि क्या यह जड़ को चेतन मानकर पूजन करना नहीं है परन्तु ऐसे लोग नहीं समझते कि जब हम सम्बन्धियों को प्यारा कहते हैं और घर को भी प्यारा ही पुकारते हैं तो उस से जड़ घर चेतन तो नहीं हो जाता किन्तु घर का उपयोगीपन ही उस से सिद्ध होता है। एक मनुष्य किसी सम्बन्धी के मरने पर रोता है और दूसरा धन के चुराये जाने पर रोता है तो क्या इस से धन चेतन है ! और उस के रोने को सुनता है इसी प्रकार हम भले मनुष्यों का आदर करते हैं बुरों का नहीं। यह आदर करना हमारा इस बात का प्रगट करना है कि हम उन मनुष्यों को अपना उपकारी मानते हैं। जिन पदार्थों को हम उपकारी समझते हैं उन के उपकार को भी हम आदर के हीं शब्द से बोधन करते हैं, पर इस से यह चेतन नहीं हो जाते। जब उपकारी की संज्ञा में जड़ चेतन दोनों आते हैं तो आदर-भाव भी दोनों के लिये हमारे मन में उपजता है, पर इस से हम उन को चेतन मान कर कभी स्वप्न में भी पूजते नहीं।

क्या यूरुप आदि देशों के महाविद्वान् "नेचर" (सृष्टि) को जो जड़ है "माईटी" महान् नहीं कहते ! क्या जब वह लिखते हैं कि नेचर की आज्ञा मानो तो इससे वह जड़ प्रकृति को चेतन मानने लग जाते हैं ! अतः नमःशब्द का जड़ के लिये प्रयोग केवल उसके उपकार को दर्शाने के लिये है न कि उसको चेतन बनाने के लिये। यूरुप आदि में जन्म देश को प्राणों से भी प्यारा लोग कहते हैं तो इससे क्या किसी की जन्म भूमि चेतन होजाती है ! वा वह लोग जो उसके लिए अत्यन्त आदर का भाव प्रकट करते हैं मूर्ख हैं ! हमको सदैव प्रयोग शैली के आवरण से पार होकर भाव को लेना चाहिए।

तत्पश्चात् निम्न लिखित दो मन्त्रों का उच्चारण करे।

(१) ओम् स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ यज० अ० ६ मं० १५ तथा साम ब्राह्मण, अ० १ खं० ६ सू० ६

ओम् निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ यजु० अ० ३ म० ६३ (उतरार्द्ध) तथा पार०गृ०सू०कां० २क० १ सू० ११ ॥

(अर्थ)

हे [स्वधिते] कठिन लोहमय छुर ! ईश्वर करे कि तू [एनम्] इस बालक को (मा, हिंसीः) पीड़ा न पहुंचावे ।

हे बालक ! (आयुषे) जीवन के लिये [अन्नाद्याय] अन्न के ठीक खाने के लिए (प्रजननाय) उत्पादन शक्ति के लिए (रायस्पोषाय) धन की पुष्टि के लिए (सुप्रजास्त्वाय) सुपुत्रता के लिए (सुवीर्याय) अच्छे बलके लिए, मैं तेरा [निवर्तयामि] मुण्डन करता हूं।

व्याख्या

(क) पहिले मन्त्र में दर्शाया गया है कि अच्छा उस्तरा कठिन लोहे अर्थात फौलाद का हो सकता है। फौलाद से उस्तरे बनाने का उपदेश वेद से पाकर पुराने आर्योंने पृथिवी पर सबसे पहिले फौलाद का उपयोग सीखा और सब को सिखायाथा।

(ख) आयुर्वेद तथा डाक्टरीके अन्दर जो भी मुण्डन के लाभ दर्शाये गये हैं उन सबका बोधक यह मन्त्र है। मुंडन का उद्देश्य क्या है किस उत्तमतासे पूर्णरूप में वर्णन किया गया है। इस में बतलाया गया है। कि मुंडन संस्कार से यह लाभहोतेहैं [१] आयुवृद्धि (२) जठराग्नि की वृद्धि [३] उत्पादन शक्ति की स्थिरता [४] अच्छा बल, (जिसके द्वारा) [५] सौभाग्य [धन और रोगरहित संतान] प्राप्त हो-सकती है।

मन्त्र उच्चारण के पश्चात् नाई को कहे कि छुरा कुशा से बांधे हुए केशों के स-मीप ले जावे।

दक्षिण बाजूके केश काटे — फिर यह मन्त्र बोले—

ओम् येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गो [१]मानश्ववानयमस्तु प्रजावान्॥ अथर्व० का० ६। सू० ६८ मं० ३॥ तथा पार० गृ० सू० का० २० कं० १ सू० ११।

अर्थ।

परमेश्वर का उपदेश है कि—हे (ब्रह्माणः) ब्राह्मणो! (येन, क्षुरेण) जिस—अर्थात् जैसे छुरे से (सविता, विद्वान्) मुण्डन करने में समर्थ और समझदार यह नापित (सोमस्य; राज्ञः) शान्त्यादि गुणयुक्त राजाओं का और (वरुणस्य) अन्य श्रेष्ठ प्रतिष्ठित पुरुषों का (अवपत्) मुण्डन करता है (तेन) वैसे ही छुरे से (अस्य) इस बालक के (इदम्) इस शिर को (वपत) मुँडाओ। और इसे ऐसा साधन सम्पन्न बनाओ जिस से (अयम्) यह बालक (गोमान्) गौओं वाला (अश्ववान्) घोड़ों वाला (प्रजावान्) पुत्र वाला (अस्तु) हो॥

(व्याख्या) इस मंत्र में बतलाया गया है कि उस नाई से विद्वान् बालकों का मुण्डन करायें जो प्रतिष्ठित पुरुषों और राजा तक का मुण्डन करने वाला होने से स्वच्छ, सभ्य और चतुर हो। ऐसे उत्तम नाई के वस्त्रों वा शस्त्रों से किसी भी रोग के लगजाने का भय नहीं होगा। इस लिये मुण्डन कराने वाले की आरोग्यता बढ़ेगी, आरोग्यता से बल बढ़ता है और बल ऐश्वर्य्य का साधन है। उस ऐश्वर्य्य के बोधक

(१) (विवरण)
यहां पारस्कार और आश्वलायन में चतुर्थ चरण का पाठ
"मस्यामुष्यं जरदष्टिर्यथाऽसत्" ऐसा है।

शब्द इस मन्त्र में गाए घोड़े हैं। आदर्श नाई क्या हो सक्ता है उस का बोधन भली प्रकार इस मन्त्र द्वारा कराया गया है।

तत्पश्चात् नाई को कुश सहित केवल दक्षिण भाग के केश समूह को काटने को कहे और वह काटने लगे।

"वे काटे हुए केश और दर्भ शमी वृक्ष के पत्र सहित एक शरावा में रक्खे और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो, उस को गोबर से उठाके शरावा में अथवा उस के पास रखे"।

शमी वृक्ष (जंड) की लकड़ी हवन में डाली जाती है। इस के पत्ते मल शोषण करने की शक्ति रखते हैं। छोटे से छोटे टूटे वा कटे हुए बाल को पकड़ने के लिये गोबर अपूर्व चिमटे का काम देता है, तथा गोबर में भी मल शोषण शक्ति है इस लिये शमी के पत्ते और गोबर के उपयोग करने का वर्णन है।

वाम भाग के केश काटे

ओं येन धाता... ... ...इस मन्त्र को बोलकर पश्चात पिता नाई को वाम भाग के केश काटने को कहे।

मन्त्रार्थ।

(येन) जिस सामर्थ्य से (धाता) सब जगत के धारण करने वाले परमात्मा ने (बृहस्पतेः, अग्नेः, इन्द्रस्य) वायु, अग्नि, इन्द्र (बिजली) (च) तथा अन्य पदार्थों की (आयुषे) स्थिति के लिए (अवपत्) रक्खा है (अनेकार्थत्वाद्धातूनामय मप्यर्थः) (तेन) उसी सामर्थ्य से (ते, आयुषे) तेरी जीवनवृद्धि के लिए और (सुश्लोक्याय) अच्छे यश के लिए तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिए, मैं (वपामि) तेरे केशों को काटकररखता हूं। (इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ श्री० स्वामी जी महाराज ने अपनी पहिली संस्कार विधि में जो कि वि० संवत् १९३२ में मुम्बई के "एशियाटिक" प्रेस में छपी थी, किया है)

पीछे के शिखा स्थाना केश काटे

ओम् येन भूयश्च......इस मन्त्र का पाठकर के पिता, नाईको पीछे के भागके केश काटने को कहे। इस मन्त्र का अर्थ यह है:—

(अर्थ)(येन) जिस ईश्वरके दिए सामर्थ्य से (भूयः, च) फिर भी बार २ (रात्र्याम्) रात्रि में स्थित पदार्थों को (च) और (सूर्यम्) सूर्य लोकादि को (ज्योक्) प्रलय पर्यन्त, यह प्राणी समूह (पश्याति) देखता रहता है (तेन, ते) इत्यादि का अर्थ पूर्ववत ॥

आगे के केश काटे

ओम् येन पषा बृहस्पते......इस मन्त्र को पाठ कर के पिता, नाई को आगे के केश काटने को कहे।

मन्त्रार्थ।

(पषा) सर्यवत् प्रकाशमान् परमात्मा (येन) इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् जानना चाहिए। (ब्रह्मणा, जीवातवे) ब्रह्म—तप के साथ और जीवातवे—जीवन के हेतु

भूत धर्म करने को (जीवनाय) जीने के लिए तथा (दीर्घायुष्ट्वाय) दीर्घ आयु होने के लिये।

पीछे के नीचे के केश काटे।

ओम् येन भूरिश्चरादिवं... ... इस मन्त्र का उच्चारण करके पिता, नाई को पीछे के नीचे के भाग के केश काटने को कहे।

मन्त्रार्थ।

(येन) जिस ईश्वर के सामर्थ्य से (भूरिः) बहुत (चरा) यह घूमने वाला वायु (दिवम्) द्युलोक को (च) और (पश्चात्, हि) उस के पीछे ही (सूर्यम्) सूर्यादि लोकों को (ज्योक्) प्रलय काल पर्यन्त, घूमता रहता है, (यह शेष है) "तेन" इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् समझो ॥

शिर पर हाथ फेरना

ओम् त्र्यायुषं जमदग्ने.......... इस आशीर्वाद रूपी मन्त्र का उच्चारण करने से पूर्व पिता, नाई को बच्चे के शिर पर औंधा हाथ फेरने को कहे, ताकि मोटे २ बाल नीचे गिर पड़ें और जब मन्त्र पाठ समाप्त हो जावे तब नाई को कहदेवे कि हाथ फेरना बंद करदे।

क्षौर क्रिया का आरम्भ

पश्चात् पिता उस्तरा नाई के हाथ में देवे अर्थात् देखले कि सम्पूर्ण गुणयुक्त उस्तरा है वा नहीं और "आ यत् क्षुरेण मर्चयता" इस मन्त्र का पाठ करे।

मन्त्रार्थ।

"यत् क्षुरेणेति" इस मन्त्र में "मर्चयता" की जगह "मञ्जयता" ऐसा पाठ पार० गृ० सू० का० २ क० १ सू० १९ में है। और "वसा" की जगह "वप्त्वा" पाठ है। मूल में जैसा पाठ है वैसा ही, आश्वलायन गृ० सू० अ० १ क० १७ सू० १५ में पाठ है। परन्तु अथर्ववेद में (जिस का पता मूल के साथ लिख दिया है) भी पाठ भेद है। ऐसा मालूम होताहै कि गृह्यसूत्रकार अर्थानुरोध से, मन्त्र के आधार पर अपना कुछ २ नव्यसंस्कृत बना लेते है, इसी लिए गृह्यसूत्रों को "कल्प सूत्र" कहा जाता है अर्थात् जिन में वेदानुकूल कल्पना की जावे। इस अथर्व मन्त्र के साय-णाचार्य के भाष्य में "हे देव! ऐसा सम्बोधन है। और पारस्कर गृ० सू० के टीकाकार गदाधराचार्य "हे क्षुर!" ऐसा संबोधन पद रखकर व्याख्या करते हैं। सायणाचार्य "यत्" शब्द का "यदा" व्याख्यान करते हैं और गदाधर 'यत्' का 'यस्मात्'। अस्तु। अर्थ यह है—हे नापित ! [वसा] केशों को काटने वाला तू [मर्चयता] चलने वाले, काम देने वाले [सुपेशसा] सुन्दर तेज वाले [यत् क्षुरेण] जिस छुरे से [केशान्, वपसि] केशों को काटता है उसी छुरे से [शिरः] इस बालक के शिर को [शुन्धि शुद्ध,साफ कर। हे परमात्मन् ! [अस्य] इस बालक की [आयुः] आयु को, कृपा कर [मा, प्रमोषीः] न्यून मत करो ॥

फिर नाई से पथरी पर छुरे की धार तेज [तीक्ष्ण] कराकर बालक का पिता कहे कि "इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर, कहीं छुरा न लगने पावे।"

इस के पश्चात् कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जावे और वहां बालक को पूर्वाभिमुख बिठावे, नाई पश्चिमाभिमुख बैठ कर उस के सब बालों का मुण्डन कर डाले।

केश–शेषकैसे रक्खे

जब बाल उग आवें तो उस समय केश किस प्रकार रक्खे इस के लिये सूत्रकार मुनि का मत है कि—

"यथामंगलं केशशेषकरणम्" अर्थात् जैसी रीति (फेशन) इष्ट (पसंद) हो रक्खे। इसी भावको लेकर महर्षिदयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाशमें एक स्थल पर लिखा है कि यह कामचार (मरज़ीकी) बात है। मनु आदिकोंने भी "जटिलोवा मुंडोवा" ऐसा उपदेश किया है कि चाहे कतराता, मुंडाता रहे, चाहे संपूर्ण वा एक देशी जटा के रूप में रक्खे। इसी लिये संस्कार विधि में लिखा कि—

"जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़े २ केश रखावे, अथवा किसी एक ओर रक्खेअथवा एकबार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी बार के केश रखने अच्छे होते हैं।"

इसका अभिप्राय यही है कि मुंडन संस्कार के समय तो सब मुंडा ही डाले और पीछे दूसरी बार वा पंद्रहदिन पीछे जितने केश रखने हों उतने ही रखे, साथही लिखा है कि पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे।

इस आशय के अनुसार मिलती हुई रीति संसारमें प्रचलित है। मुंडन संस्कार के पीछे लड़कियोंके पूरे केश (जटा) रखनेको प्रथा भारत वर्ष के सर्व स्थलों पर है। भूगोल के सर्व देशों में लड़कियों के पूर्ण केश पांचों ओर रक्खे जाते हैं। अफ़रीका आदि में जहां छोटी आयु में लड़कियों के बाल कतरते हैं वहां भी १५ वा १६ वर्ष की आयु में लड़कियां पूर्ण जटाही रखती हैं।

जटाजूट

तिबत्त में अनेक पुरुष पूर्ण जटाधारी होते हैं और इन के समान पंजाब में सर्व सिक्ख पुरुष पूर्ण केश रखतेहैं। लंका देश में वहां के पुरुष पूर्ण केश रखते और नंगे शिर रहते हैं।

अर्द्ध जटाधारी

महाराष्ट्र देश तथा दक्षिणी भारतमें पुरुष प्रायः अर्द्धजटाधारी होते हैं। दक्षिणी आर्य पुरुष शिर के मध्य में अर्द्धजटा रखते और शेष केश मुंडवादेतेहैं। चीन और जापान में भी दक्षिणियोंके समान पुरुषों के अर्द्धजटा रखने की रीति थी जोकि अब बदल रही और क्लृप्त—केश के रूप में आरही है।

क्लृप्त—केश

"पांचो ओर थोड़े २ केश" रक्खे। शिरकी पांच ओर यह हैं। दक्षिण वाम, अगला (पूरस) पिछला (पृष्ठ) और मध्यवर्ती जो अगले पि-

चुले के मध्य में है। पांचों ओर थोड़े २ केश रखने से अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण शिर पर थोड़े २ केश वा बाल रक्खे। बंगाल के बहुत आर्य पुरुष इसप्रकार के छोटे केश (बाल) पाचों ओर रखते हैं। युरुप तथा अमेरिका में भी वहां के सब पुरुष शिर के पांचों ओर थोड़े २ केश रखते हैं, जसा कि हम अंगरेज लोगों के शिर पर देखते हैं। केश संस्कृत शब्द है। बड़े और छोटे दोनों प्रकार के बालोंको केश कहा जाता है। लंबे केशों का दूसरा नाम जटा है। बंगाली वा युरुपवासियों के छोटे केशों को क्रुप्त—केश कह सकते हैं।

सम्पूर्ण शिरपर छोटे२ बाल रखना जैसा कि बंगाली वा अंगरेज़ रखते मिश्रित-केश हैं और बीच में एक शिखा रखना यह भी एक प्रकार है जो कि आज कल उत्तरीय हिंद के अनेक स्थलों में प्रचलित हो रहा है।

संपूर्ण शिरपर छोटे २ केश समान रखना पर माथे की ओर के भाग पर कुछ अधिक रखना, जिसको "एलवर्ट फैशन" कहते हैं यह भी मिश्रित—केश का रूपान्तर है। कई एलवर्ट फैशन धारी, मिश्रित केशधारी लोगों को जो क्लृप्त—केश के साथ चतुर्थांशवा षष्ठांश जटा (शिखा) भी रखते हैं यह कहा करते हैं कि इस प्रकार की क्या ज़रूरत है! उसके उत्तर में हम कहेंगे कि न इस की ज़रुरत है न माथे पर अधिक बालों की। जिस प्रकार आपका जी चाहे आप बाल रक्खो जिस प्रकार दूसरे का जी चाहे वह रक्खे। आप पगड़ी १० गज़ की बांधो हम ६ गज़ की बांधे। यह सब कामचारी बातें हैं।

इस समय भूगोल पर जितने भी प्रकारके केश स्त्री वा पुरुष रखते हैं वह सब प्रकार आर्य्य मर्य्यादा के अन्दर है। शीत, उष्णदेश, यौवन, वृद्धावस्था, वा काल तथा रुचि के अनुसार जो चाहे जिस प्रकार के बाल रक्खे।

भारतवर्षीय आर्य, चीनी आर्य, जापानी आर्य, ब्रह्मी आर्य और एशिया में बसने वाले अन्य आर्यों में पुराने समय में शिर के मध्यवर्ती स्थल पर छोटे वा बड़े आकार में जटा वा शिखा रखने की रीति [फेशन] प्रचलित थी। भारतवर्ष में अब भी सिक्ख-पुरुष पूर्ण जटाधारी दक्षिणी, अर्द्ध जटाधारी उत्तरीय हिंद, मध्य भारत, गुजरात, सिंध, राजस्थान, आदि सब स्थलों में शिखा आर्य पुरुष रखते ही हैं। एक ब्राह्मण से लेकर चमार वा भंगी तक सब आर्य संतान शिखाधारी हैं। यह शिखा इस समय भारतीय आर्यों का एक सामाजिक चिन्ह बन रहा है। यद्यपि बहुत से बंगाली और कहीं२ अन्य आर्यों में यह चिन्ह नहीं है तो भी प्रायः ग्राम २ के अन्दर यह चिन्ह अबभी मिलता है। कई लोगों को इस शिखा चिन्ह का उपयोग बड़े २ नगरों में बैठे २ कुछ मालूम नहीं होता परन्तु जिनको ग्रामों में कभी घूमने का अवसर मिला है वह जानते हैं कि यदि किसी आदमी के शिर पर यह चिन्ह नहीं तो उसको कोई हिंदू अपने कूप से जल नहीं खेंचने देगा।

आजकल अनेक मंडलियां वा सभाओं के अनेक चिन्ह नए से नए बन रहे हैं। कोई चांदी वा गिलट का चाँद (मेडल) छाती पर लटकाते हैं कोई टोपी पर अक्षर

पट्टी वा फूमता लटकाते हैं ।, कोई मखमल वा रेशम का फूल कहीं बटन में अड़ाते हैं कोई अंगूठी को चिन्हरूप बनाते हैं, कोई "नेकटाई,, में चिन्ह जमाते हैं, कोई घड़ी की जंजीर में चिन्ह दिखाते हैं। पर कपड़े आदि उतारने के साथ ही कई चिन्ह उतर जाते वा कपड़ा गुम होने पर गुम होसक्ते वा शेष गिरजाते हैं, किन्तु यह जरा सा शिखा नामी बालों का गुच्छा चाहें एक उङ्गल भर ही लंबा हो, सदैव शिर के साथ विना यत्न विशेष लटकता रहेगा। कपड़े उतार दो वा पहिन लो, जागते रहो वा सोजाओ। देश में रहो वा परदेश जाओ सर्वत्र यह चिन्ह आपके साथ हैं, इसके गिरने वा खोये जाने का भय नहीं। शेष सब चिन्ह बनाने में धन लगाना पड़ता है यह इतना सस्ता चिन्ह है कि विना दाम ही बन सक्ता है। मंडल वा समाज के लिये जो एकता सूचक उद्देश्य और चिन्ह पूर्ण करते हैं वही यह करता है।

"मुंडित कियेहुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर" जंगल में गढ़ा खोद उसमें डाल ऊपर से उस पर मट्टी डलवादे। मट्टी के गुणों

मुंडित बाल कहाँडाले जाएं

को अब युरुप के विद्वान् मान गये हैं कि मल को शोषण करने के लिये इससे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं। कुश भी रुधिर विकार नाशक है।

*"क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले महावामदेव्य गान करके,, बालक की माता पिता सबको यथायोग्य सत्कार पूर्वक विदा करें।

मक्खन वा दही की मलाई "वैसेलीन,, का काम देती है, यह त्वचा रोगों की नाशक है। बच्चों के लिये आज कल उत्तम वस्त्र का अर्थ केवल गोटा किनारी सलमा सितारा जड़त वस्त्र लोग समझ रहे हैं बच्चों के वस्त्र सदैव शुद्ध, कोमल, और सुन्दर होने चाहिए। केवल सुन्दरता में ही अति कर देना ठीक नहीं। गोटा किनारी के विना भी वस्त्र सुन्दर स्वच्छ होने के कारण हो सकते हैं।

इति।

* नोट कुश वा दभ से जो बच्चे के बालों को छूने का इस संस्कार में वर्णन है वह इसलिये कि यह रुधिर के विकार को दूर करने वाली वस्तु हैं। बिछु आदिक बूटियों के छूने से ही खाज उत्पन्न होजाती है। कुश के छूने से ही रुधिर शमन होने लगता है। अभिनव निघंटु पृष्ठ ११६ पर लिखा है कि वस्ति रोग, प्रदररोग, और रुधिर के विकार को कुश दूर करतो है।

॥ अथ कर्णवेध विधिः ॥

अत्र प्रमाणम्–(१) याज्ञिकाः पठन्ति कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥ १ ॥

इस वचन से बालक के कर्ण के वेधका समय जन्म से तीसरे वा पाँचवे वर्ष का उचित है जो दिन कर्ण के वेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जलसे स्नान और वस्त्रालंकार धारण कराके बालक की माता को यज्ञशाला में लावे और सब सामान्य विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धरके—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ यजु० अ० २५—मं० २१ ।

इस मन्त्र को पढ़के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्णवेध करावे कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

(२) वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳसखायं परिषस्वजाना । योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती । यजु० अ० २९ मं ४० ।

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिन्द्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधि उसपर लगावे जिस से कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें ॥

इति कर्णवेध संस्कार विधिः ॥ ९ ॥

पट्टी वा फूमता लटकाते हैं ।, कोई मखमल वा रेशम का फूल कहीं बटन में अड़ाते हैं कोई अंगूठी को चिन्हरूप बनाते हैं, कोई "नेकटाई,, में चिन्ह जमाते हैं; कोई घड़ी की जंजीर में चिन्ह दिखाते हैं । पर कपड़े आदि उतारने के साथ ही कई चिन्ह उतर जाते वा कपड़ा गुम होने पर गुम होसक्ते वा शेष गिरजाते हैं, किन्तु यह जरा सा शिखा नामी बालों का गुच्छा चाहे एक उङ्गल भर ही लंबा हो, सदैव शिर के साथ विना यत्न विशेष लटकता रहेगा । कपड़े उतार दो वा पहिन लो, जागते रहो वा सोजाओ । देश में रहो वा परदेश जाओ सर्वत्र यह चिन्ह आपके साथ है, इसके गिरने वा खोये जाने का भय नहीं । शेष सब चिन्ह बनाने में धन लगाना पड़ता है यह इतना सस्ता चिन्ह है कि विना दाम ही बन सक्ता है । मंडल वा समाज के लिये जो एकता सूचक उद्देश्य और चिन्ह पूर्ण करते हैं वही यह करता है ।

"मुंडित कियेहुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर" जंगल में गढ़ा खोद उसमें डाल ऊपर से उस पर मट्टी डलवादे । मट्टी के गुणों

मुंडित बाल कहां डाले जाएं

को अब युरुप के विद्वान् मान गये हैं कि, मल को शोषण करने के लियें इससे वढ़कर कोई पदार्थ नहीं । कुश भी रुधिर विकार नाशक है ।

*"क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले महावामदेव्यगान करके,, बालक की माता पिता सबको यथायोग्य सत्कार पूर्वक विदा करें ।

मक्खन वा दही की मलाई "वैसेलीन,, का काम देती है, यह त्वचा रोगों की नाशक है । बच्चों के लिये आज कल उत्तम वस्त्र का अर्थ केवल गोटा किनारी सलमा सितारा जड़त वस्त्र लोग समझ रहे हैं बच्चों के वस्त्र सदैव शुद्ध, कोमल, और सुन्दर होने चाहिए । केवल सुन्दरता में ही अति कर देना ठीक नहीं । गोटा किनारी के विना भी वस्त्र सुन्दर स्वच्छ होने के कारण हो सकते हैं ।

इति ।

---

* नोट कुश वा दर्भ से जो बच्चे के बालों को छूने का इस संस्कार में वर्णन है वह इसलिये कि यह रुधिर के विकार को दूर करने वाली वस्तु है । बिछु आदिक बूटियों के छूने से ही खाज उत्पन्न होजाती है । कुश के छूने से ही रुधिर शमन होने लगता है । अभिनव निघंटु पृष्ठ ११६ पर लिखा है कि वस्ति रोग, प्रदररोग, और रुधिर के विकार को कुश दूर करती है ।

॥ अथ कर्णवेध विधिः॥

अत्र प्रमाणम्—(१) याज्ञिकाः पठन्ति कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥ १ ॥

इस वचन से बालक के कर्ण के वेधका समय जन्म से तीसरे वा पाँचवे वर्ष का उचित है जो दिन कर्ण के वेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जलसे स्नान और वस्त्रालंकार धारण कराके बालक की माता को यज्ञशाला में लावे और सब सामान्य विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धरके—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ यजु० अ० २५—मं० २१ ।

इस मन्त्र को पढ़के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्णवेध करावे कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

(२) वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳसखायं परिषस्वजाना । योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्याऽइयꣳ समने पारयन्ती । यजु० अ० २९ मं ४० ।

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिन्द्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधि उसपर लगावे जिस से कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें ॥

इति कर्णवेध संस्कार विधिः ॥ ६ ॥

खादिया, धोलेश्वर
महादेव समीपे,
अमदाबाद ॥

श्रीयुत सौजन्यादि शुभगुणशाली पं० भीमसेनजी की पवित्र सेवा में—सादर प्रणाम है।

(१) गर्भाधान के जो वचन का पता अपेक्षित था, वह प्राप्त होगया है। इस प्रकार वह वचन है:—

"अथ गर्भाधानं स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वं स्नात्वाविरजायास्तस्मिन्नेव दिवा आदित्यं गर्भमित्यादित्यमवेक्षते" पृ० ६, पं० २० ॥

(२) अन्य पा० गृ० सूत्र के प्रति में "कर्ण वेध" के विषय में कुछ नहीं लिखा है, पर इस प्रति में (पत्र—१०, पृष्ठ—२, पंक्ति—११) इस प्रकार लिखा हुआ है—

"अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमेवा पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु पूर्वाह्ने कुमारस्य मधुरं दत्वा प्राङ्मुखायोपविष्टाय दक्षिणं कर्णमभिमन्त्रयते भद्रं कर्णेभिरिति, सव्यं वक्ष्यंती वेदिति चाथ भिन्द्यात् ततो ब्राह्मणभोजनम्" ॥ इतना ही लेख है, जो सं० विधि में अविकल पाया जाता है।

छपाने वाले अपनी इच्छानुसार हेर फेर करते जाते हैं, इस लिये कईवार भ्रम हो जाता है। श्री० स्वामी जीने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा है। संन्यासाश्रम की जो विधि लिखी है, वह केवल प्राप्त करनेकी है। ढूंढने पर मिल जावेगी।

यह गृह्य सूत्र के अन्त में इस प्रकार लेख ह—

इदं पुस्तकं पण्डितवरै ज्येष्ठाराम मुकुंद जीति प्रसिद्धै विद्वद्द्वारा संशोधय्य मुंबय्यां "निर्णयसागरा" ख्य मुद्रणयंत्रालयेऽकयित्वा प्रसिद्धिमानीतम् ॥

शकाब्दाः १८१३, सनाब्दाः १८९१ ॥

अहमदाबाद
७—९—११

आप को यह पुस्तक मुम्बई से मिलेगा ॥ मैं यह पुस्तक आप को भेज सकता हूं। यदि आप स्वयं देखना चाहते हों।

मेरे लायक कामसेवा फरमावें ॥

आप का सेवक
नारायण दलपतराम भगत।

कर्णवेधसंस्कार की व्याख्या ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तंबीय गृ० सूत्र, मानव गृह्यसूत्र और गोभिलगृह्य-सूत्र, इन ग्रन्थों में कर्णवेध संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता । कात्यायन गृह्यसूत्र में इस का उल्लेख है । पण्डित ज्येष्ठाराम मुकुन्दजी बंबई वालों से हमने जो कात्यायन गृ० सू० की पुस्तक मंगवाई तो उस को पारस्कर गृह्यसूत्र के अन्तर्गत छपा हुआ पाया कात्या० सूत्रों को उन्होंने " " इस चिह्न के अन्दर छापा है। उक्त पुस्तक के ११ वें पत्र २ पृष्ठ और ४ थी पंक्ति से मुंडन के पीछे कर्णवेध का केवल इतना ही उल्लेख है जितना हम नीचे देते हैं ।

अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा । पुष्येंदुचित्राहरिरेवतीषु पूर्वाह्णे कुमारस्य मधुरं दत्वा प्राङ्मुखायोपविष्टाय दक्षिणं कर्णमभिमंत्रयते भद्रं कर्णेभिरिति सव्यं वक्ष्यंती वेदिति चाथभिद्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ।

(पारस्कर परिशिष्ट कात्या० गृ० सू० कर्णवेध सू० १,२)

(अर्थ) कर्णवेध तीसरे वा पांचवें वर्ष में करना और जब चांद, पुष्य, चित्रा, हरि और रेवती इन में से किसी एक नक्षत्र से युक्त हो * । प्रातःकाल संस्कार करे, बालक को मिठाई देकर पूर्व को मुख करके बिठावे और दाहिने कान में भद्रंकर्णेभि... यह मन्त्र सुनावे और सव्य अर्थात् बायें कान में "वक्ष्यन्ती" यह मन्त्र बोले, तत्पश्चात् कानों के वेधन की क्रिया करे और एक ब्राह्मण से लेकर यथाशक्ति जितने ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करना चाहे करे ।

कात्यायन सूत्र के अतिरिक्त इस संस्कार का उल्लेख सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय १६वें के आरम्भ में इस प्रकार है —

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत् । षष्ठे मासि सप्तमे शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृतमंगलस्वस्तिवाचनं धात्र्यंके कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलोभ्याभिसांत्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे चादित्यकरावभासिते शनैः शनैऋजु विद्धयेत् प्रतनुकं सूच्या बहुलमारया पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य वामं कन्यायास्ततः पिचुवर्त्तिं प्रवेश्य सम्यग विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् ॥१॥

अर्थः—रोग से रक्षा के लिये और भूषण पहरने के निमित्त बालक के दोनों कान बींधने चाहियें । छठे या सातवें महीने में शुक्ल पक्ष तथा अनुकूल तिथि (वार) करण, नक्षत्र, मुहूर्त में मंगलाचार पूर्वक स्वस्तिवाचन करके धाय या माता की गोद में बालक को बिठाकर खिलौने मिठाई आदि से बहला कर प्रेम करके वैद्य अपने बायें

* (नोट) तब दिन आंधी मेघादि से प्रायः रहित होता है ।

हाथ से कान को खींच कर देखे, जहां सूर्य की किरण चमकें वहां दवकृत छिद्र में धीरे धीरे सीधा बींधे। कोमल कान हो तो सुई से और कड़ा मोटा हो तो आरा (आर) से वेधन करे। पुत्र का पहिले दहिना और कन्या का बायां बींधे और रुई का डोरा डाल कर ठीक बींधे हुए पर ठंडा तेल चुपड़ दे।

मुख्य उद्देश्य रोग निवृत्ति ही है।

पुराने आर्य्य वैद्यों ने यह संस्कार रोग के वीज को बाल्यपन में दग्ध करनेके लिये निकालाथा। भूषण धारणकरनाइसका मुख्य उद्देश्य नहीं जैसा कि सुश्रुत के ऊपर के प्रमाण से ही सिद्ध हो रहा है प्रत्युत रोग निवृत्ति ही है।

अब रहा यह प्रश्न कि वह कौन सा ऐसा भयंकर रोग है जिस के शमनार्थ ऋषियोंने कर्णवेध संस्कार चलाया? इसका उत्तर सुश्रुत संहिता चिकित्सित स्थान अध्याय १९ के पाठसे विदितहोताहै। इसअध्यायमें बतलायागयाहै कि ७ प्रकारकी अंडवृद्धि के रोग होते हैं उन में से ६ प्रकार के रोगों में तो केवल अंडवृद्धि ही होती है। और सातवें प्रकार के रोग में अंडवृद्धि के साथ अंत्रवृद्धि का रोग भी होता है। अंडवृद्धि के रोग में यह बातें त्याज्य हैं। "घोड़े आदि की पीठ की सवारी, व्यायाम, मैथुन, वेगों का रोकना, बहुत बैठे रहना, बहुत सा फिरना, अतिलंघन (उपवास) करना और गरिष्ठ भोजन"।

(१) वातजअंडवृद्धि, (२) पित्तजअंडवृद्धि, (३) रक्तजअंडवृद्धि, (४) श्लेष्मज अंडवृद्धि, (५) मेदोज अंडवृद्धि, (६) मूत्रज अंडवृद्धि,।

इन छः प्रकार की अंडवृद्धिकी दवाइयाँ वर्णन करने के पश्चात् सातवीं "अंत्रज-अंडवृद्धि" का वर्णन किया है और उसको निर्मूल करने के लिये लिखा है कि—

"जो अंत्रवृद्धि अंडकोश में नहीं पहुंची हो उसमें वातवृद्धिके समान कर्म करना हित है और जो वंक्षण (नलों) में प्राप्त हुई अंत्रवृद्धि हो उसे आधे चन्द्रमा के से मुखवाली शलाका से दग्ध करे।

सब मार्ग को रोकने के लिये जो अंडकोश में उतरी हुई आंतें हैं वह तो त्यागने ही के योग्य हैं परन्तु इसमें अंगविपर्य से अंगूठे के मध्यमें भेदन करके दग्ध करना उचित है (अर्थात बांईं ओर की अंत्र बढ़ी होतो दहने अंगूठे के मध्य और दाहनी तरफ आँतें बढ़ी हों तो बायें अंगूठ की त्वचा को भेदन करके दग्ध करना चाहिये)॥"

इस से आगे चल कर एक इलाज यह भी बतलाया है कि कर्णवेधन किया जावे। यथा—

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम् । व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदंत्र-वृद्धिनिवृत्तये ॥२१॥ (सुश्रुत चिकिसितस्थानअ०१६, २१)

(अर्थ) शंख (कनपटी) से ऊपर कान के अंत में सीवन (जोड़) को छोड़ कर प्रक्र के व्यत्यय से नस को बींधने से अंत्रवृद्धि निवृत्त होजाती है (दहिनी तरफ वृद्धि हो तो वायें कान की ओर वांयीं तरफ की अंडवृद्धि हो तो दाहिने कान की नस बींधे) ॥ २१ ॥

आंत बढ़ जाने के भावी रोग को निवारण करने के लिये बच्चे के कान पुराने आर्य्य बींधन करते थे दोनों तरफ के कान बींधन से दोनों ओर आंत न बढ़े यह उन का उद्देश्य था कर्णवेधसंस्कार आंतवृद्धि के भावी रोग को शमन करने का एक अपूर्व उपाय है । यह रोग जिन कारणों से हाता है वह कारण ऊपर सुश्रुत के आशय से हम दर्शा चुके हैं । वे सब कारण दो भागों में हम बांट सक्ते हैं ।

(१) शारीरिक निर्बलता वा दुर्बलता—जो मिथ्या आहार विहार से होती है ।
(२) वलिष्ठ होते हुए—मैथुनासक्त होकर निर्वल होजाना ।

इस संस्कार में जो दो मंत्र बच्चे के कान में पढ़े जाते हैं वह इस रोग के दोनों कारणों के प्रतिबंधक हैं ।

भद्रं कर्णेभि.................यह मंत्र बतलाता है कि (१) विषयासक्ति से बचो, अर्थात् कानों से भला सुनो, आंखों से भला देखो । जिसके कान और आंखें वशमें हैं वह विषयासक्त नहीं हो सकता—(२) फिर यह मंत्र बतलाता है कि निर्वलता तथा दुर्बलता से वचो और शरीर तथा अंगों को उचित आहार विहारसे स्थिर(वलवान्) बनाये रक्खो । और शुभकर्म करतेरहो ता कि विषयासक्ति और दुर्बलता कभी ठहरने न पावे ।

वक्ष्यन्ती वेदागनीयन्ति कर्ण " यह दूसरा मन्त्र बतला रहा है कि बड़े २ वीर पुरुष बल रखते हुए जब मैथुनासक्त हो जाते हैं तब रोग उन वलियों को भी दवा देते हैं । बलिष्ठ होकर जो जितेन्द्रिय रहेगा वह ही अंडवृद्धि के एक प्रबल कारण को नष्ट कर सकेगा—क्योंकि सुश्रुत में अतिमैथुन भी इसका एक कारण बतलाया गया है । इस लिये इस दूसरे मंत्र का भाव यहहै कि वीर पुरुषों को अपने शस्त्र अस्त्रों का अभ्यास करते रहना चाहिये, जिस प्रकार वह अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं उसी प्रकार वह शस्त्र अस्त्रों के अभ्यास से प्रेम रक्खें । इस के दो फल होंगे ।

प्रथम तो वह विषयासक्त न होने पाएंगे क्योंकि अस्त्र शस्त्र के अभ्यासी वीर्य्य निग्रह के बिना सिद्धि को प्राप्तनहीं होते और दूसरे अंत्र वृद्धि तथा अंडवृद्धि के रोग जिनकी निवृत्ति के लिये यह संस्कार है नहीं होंगे । केवल कर्णवेध से अंत्रवृद्धि का भावी रोग सर्वथा निर्मूल हो जावे यह कोई न समझ लेवे । कर्णवेध तब ही पूर्ण रूप

से सफल हो सकताहै जब उसके साथ शारीरिक बल स्थिर रखनेके लिये विषयासक्ति आदि अनेक दोषों का त्याग भी होगा। इसी बातको अंकित करनेके लिये यह दोनों मंत्र पढे जाते हैं।

मंत्रार्थ

(१) भद्रं कर्णेभि—इस मन्त्र का अर्थ पहले कर आयेहैं। दूसरे का यहां करतेहैं

(२) हे वीर पुरुषो! (अधिधन्वन् , वितता) धनुष में फैली हुई (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुंचाने वाली अर्थात् विजय देने वाली (इयं, ज्या) यह धनुष की प्रत्यञ्चा डोरी (वद्यन्ती, इव, इत्) कुछ कहती हुई जैसे हो वैसे (कर्णम् आगनीगन्ति) धनुर्धारी के कर्ण प्रदेश को अतिशय करके प्राप्त होती है और (प्रियं, सखायम्) प्रिय पति को (परिषस्वजाना) आलिङ्गन करने वाली (योषा,इव) स्त्री के तुल्य (शिंक्ते) वाण के आलिङ्गन से कुछ अव्यक्त शब्द करती है उसे तुम समझो। अर्थात् वीर पुरुषों को चाहिए कि कवच और धनुष के तुल्य; धनुष की डोरी से भी अपनी प्रिय पत्नी के तुल्य स्नेह रक्खें क्योंकि वह विजय दिलाने वाली और रोगों से मुक्त कराने वाली है॥

(व्याख्या)

इस मन्त्र का एक भावार्थ तो स्पष्ट ही है, दूसरा उपलक्षण से जो लेना चाहिये वह यह है कि व्यायाम वा श्रम मर्य्यादा से प्रत्येक पुरुष स्त्री को नित्य करते रहना चाहिये। जो मर्य्यादा से श्रम, नहीं करेंगे वह बलवान् होने पर भी मैथुनासक्त हो जावेंगे। जितेन्द्रियपन के बढ़ाने का एक प्रबल साधन मर्यादा पूर्वक श्रम है। स्कूलमें प्रत्येक बालक को कवायद कराई जाती है। बड़ी अवस्था में वह इस से उपलक्षण द्वारा यह भाव लेते हैं कि हमें मर्यादा से श्रम करना चाहिये।

यह बात याद रखनी चाहिये कि मनुष्य मैथुनासक्त न भी हो तो भी उसको अंड- वृद्धि तथा अंत्रवृद्धि रोग हो सकता है क्यों कि इन रोगों के कारण एक नहीं किन्तु अनेक हैं जैसे कि पूर्व सूक्ष्म रूप से आचुके हैं तथापि कुछविस्तार से यहां पर भी लिखते हैं॥

(१) घोड़े की अति सवारी।

(२) शक्ति से बढ़कर वा थक जाने पर भी व्यायाम करना।

(३) मर्य्यादा रहित मैथुन।

(४) मल, मूत्र, खांसी, डकार, छींक, जमाई, अपानवायु, आदि स्वाभाविक वेगों को रोकना।

(५)बहुत बैठे रहना

(६) बहुत चलना फिरना।

(७) बहुत देर तक भूखे रहना।

(८) ऐसे भोजन खाना जो गरु हों और बहुत देर में पचें।

समय — सुश्रुत के मतानुसार छठे वा सातवें मास में, कात्यायनमुनि के मतानुसार तीसरे वा पाँचवें वर्ष यहसंस्कार करना चाहिये। छोटे बच्चे को जो ६ वा ७ मास का है कान बींधने में अधिक सुविधा होती है और इसी लिये भारत वर्ष में स्त्रियां प्रायः छः वा सात मास के बच्चों के कान बीधन करालेती हैं। यदि इस समय यह संस्कार न हो सके तो फिर तीसरे वर्ष और यदि तब भी न हो सके तो फिर पाँचवें वर्ष तक करना ही चाहिये, इस के पीछे कान मोटा होता चला जाएगा।

यद्यपि संस्कारविधि में सद्वैद्य से कर्णवेधन कराना लिखा है और यही सुश्रुत में लिखा है परन्तु जब तक ग्राम २ में सद्वैद्य नहीं होंगे तब तक तो उन लोगों से ही यह बीधन कर्म कराना चाहिये जो इस समय बीधन कर्म में अनपढ़ होते हुए भी कंपौन्डरों की न्याईं दक्ष हैं॥ केवल पुस्तक पढ़ा हुआ वैद्य जो शस्त्र क्रिया में दक्ष नहीं वह उत्तमता से बीधन कर्म नहीं कर सकता।

कुछ साक्षियें — १-बनारससे श्री पं०शिवदत्तजी काव्यतीर्थ हमारे एकपत्रके उत्तरमें लिखते हैं कि काशी के सुप्रसिद्ध वैद्य कविराज उमाचरण जी अंडकोषवृद्धि तथा अंत्रवृद्धि इन रोगों का दूर करने वाला कर्णवेध संस्कार "बतलातेहैं और यहभी कहतेहैं कि मैंने स्वयं एक रोगीका जिसके अंडकोषमें पानीआगयाथा उसका कर्णवेधनकियाथा जिससे उसको आराम होगयाथा। सुना जाता है कि अमृतसर में भी एक वृद्धा थी जो कर्णवेधन कर के छिद्र में ५ कौड़ी पिरो दिया करती थी और जिस किसी का नल उतरा हुआ होता था चढ़ जाता था। बुकरात की हिकमत की पुस्तक में कहते हैं कि लिखा हुवा है कि अगर नल में पानी आ जावे तो कर्णवेधन करावे।

२—लाहौर के श्रीयुत ला०काशीराम जी कविराजका कथन है कि वज़ीराबाद के निकट एक प्रसिद्ध फ़क़ीर के पास लोग बच्चोंको कर्णवेध करानेके लिये ले जाया करते थे और यह बच्चे पसली रोग से भी बच जाते थे

३—सन् १६ १२ के वर्ष में जब हम राजपूताना के कोटा नगर के आर्यसमाज के उत्सव पर गये तो श्रीयुत पं० बालकृष्ण जी शास्त्री मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल देवलाली (बम्बई प्रान्त) के सन्मुख एक प्रसिद्ध यूनानीहकीम साहब ने कहा था कि यदि एक वर्ष के अन्दर यह कर्णवेध किया जावे तो अंडकोष के रोग, नामर्दी, बांझपन तथा बच्चोंके पसलीरोग तक दूर हो सकते हैं।

४—बड़ोदा राज्य के विसनगर ग्राममें हमें एक वैद्य के पुत्र ने बतलाया कि उन के वृद्ध पिता अंडकोष वृद्धि के रोग में कर्णवेधन किया करते थे।

५—नगीना ज़ि० बिजनौर आर्य समाज के प्रधान वैद्य श्री पं० हरिशंकर जी का कथनहै कि कर्णेन्द्रिय का सम्बन्ध वीर्यवाहिनी नाड़ियोंसे होनेके कारण अंड वृद्धि के अतिरिक्त पुंस्त्व नष्ट करने वाले रोगों से भी यह संस्कार रक्षा करता है।

६—वेद प्रकाश में जो मेरठ (उत्तरहिंद) से श्रीयुत पण्डित तुलसीरामजी स्वामी निकालते हैं कुछ वर्ष हुवे "ग्लोब" नामीएक अंग्रेजी मासिकपत्रके आधार पर लिखा गया था कि भूगोल की सर्व जातियों में कर्णवेध का प्रचार रहचुका है

नासिका वेधन का विधान कहीं नहीं है

आज कल भारत वर्षमें सर्व स्त्रियोंमें नासिकामें एक छिद्र करने की प्रथा पाई जाती है। यदि किसी रोग निवृत्ति के लिये यह प्रथा होती तो दो छिद्र वींधे हुवे प्रायः दृष्टि गत होते, एक छिद्र का वीधना ही दर्शा रहाहै कि वह केवल शृङ्गार मात्र प्रथा है। कात्यायन गृह्य सूत्र, सुश्रुत अथवा और किसी सूत्र ग्रन्थ में नासिका के वेधन का उल्लेख नहीं है इस लिये यह प्रथा बंद होनी चाहिये। हर्ष का विषय है कि इस समय विदुषी स्त्रियाँ अपनी पुत्रियोंकी नासिकाके वेधनकी प्रथा को रोकरही हैं और कन्याओं के जो कानों में अनेक छिद्र वींधने की प्रथा है वह भी बन्द होनी चाहिये।

यही नहीं कि स्त्रियां प्रायः एक ही नाक बींधती हैं पर लड़कों के नाक नहीं बींधे जाते। यदिनाक बींधने से लाभ होता तो वहलड़के क्यों इससे वर्जित रहते। कोई लड़कों के नाक भी बींध देते हैं पर वह शृंगार समझ कर। इस लिये मिथ्या शृंगार की यह कुप्रथा बंद होनी चाहिये।

केवल सुश्रुत के वतलाये हुये दोनों कानों के दोनों दैवछिद्र ही बींधने चाहिये। संस्कारभास्कर नामक जो संस्कारों की पद्धति का एक नूतन ग्रन्थ है उस के पत्र १३६, तथा १३७ पर जो कर्णवेध संस्कार का विषय है उस में भी कहीं पर नासिका वेधन का विधान नहीं पाया जाता। इस लिये नासिका वींधन में सौभाग्य मानना मिथ्या कल्पना है।

अशुद्धि का सुधार

१—संस्कारविधि में जहां पर इस संस्कार का वर्णन है वहां भाषा लेख में कर्ण के साथ नासिका शब्द भी तीन स्थलों पर पाया जाता है जिस को उड़ादेने की जरूरत है। जो शब्द संस्कृत में संस्कारविधि में प्रमाण रूप से लिखे हैं वह यह हैं।

"कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा" इनमें कहीं पर भी नासिका शब्द नहीं है इस लिये भाषा की अशुद्धि, शोधक का दृष्टिदोष ही समझना चाहिये

२—वदयन्ती......इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध अशुद्ध छप गया है शुद्ध इस प्रकार है ...... योषेव शिङ्क्ते विततााधिधन्वञ्ज्याऽइयꣳसमने पारयन्ती।

और वहां पर इस का पता नहीं लिखा वह पता इस प्रकार है...... ....

यजुर्वेद अ० २८ मं० ४०॥

शंका कोई प्रश्न कर सका है कि युरुप के तो किसी डाक्टर ने अभी तक स्वीकार नहीं किया कि कर्णवेध अंत्रवृद्धि रोग की निवृत्तिका एक प्रबल उपाय है।

इस के उत्तर में हम कहेंगे कि सुश्रुत से अपूर्व विद्या ग्रन्थ में जो गुण बतलाए गये हैं वह धीरे २ उन्नति करते हुए युरुप के डाक्टर समझेंगे। भारतवर्ष देश में अनेक नामी वैद्य अंत्रवृद्धि आदि रोगोंमें उस पर अनुभव करते आये और अब भी कर रहे हैं। उन के अनुभवों से कर्णवेध के लाभ वास्तव में वही सिद्ध हुए हैं जो आयुर्वेद में लिखे हैं। हमारा आयुर्वेद इस समय में भी युरुप के आयुर्वेद से कई दर्जे बढ़कर है। जो सूक्ष्म सिद्धान्त हमारे आयुर्वेद में हैं उन की ओर दिनों दिन पश्चिमी विद्वान् आरहे हैं और अन्त को आवेंगे। सदैव सत्य की जय होती है और होगी।

इति कर्णवेध व्याख्या।

अथोपनयन[१] संस्कारविधिः।

अत्रप्रमाणानि--अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥ ५ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ६॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र अ०१क० १९ सू० १-६ का प्रमाण है इसी प्रकार पार-* स्करादि गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है।

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से ८ आठवें वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवे वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भसे बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ सोलह क्षत्रिय के २२ बाईस और वैश्य के बालक का २४ चौवीस से पूर्व २ यज्ञोपवीत होना चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इन का यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित मानेजावें।

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम्। सार्वकालमेके ॥ यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।

अर्थः—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत कर अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इस का प्रातःकाल ही समय है।

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है—

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करनाहो उस से तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेकवार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावे और (आमिक्षा) अर्थात् जिस को श्रीखण्ड वा सिखरण्ड कहते हैं जो दही चौगुना दूध एकगुना तथा यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उस को वै-

(१) उप नाम समीप, नयन प्राप्त करना अर्थात् विधि से आचार्य के वा अग्नि के समीप प्राप्त करना।

* पार० गृ० सू० का० २ क० २स० १-२

घृत का लड़का पी के वृत करे अर्थात् जब २ लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें ।

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उस दिन प्रातःकाल बालक * का क्षौर स्नानादि करा के पुनः यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन करा के वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावें और बालक का पिता और ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने२ आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें ।

पश्चात कार्य्य कर्त्ता बालक के मुख से:—

(१) ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि । पार० गृ० सू० का० २ क० २ सू० ६।

ये वचन बुलवा के † आचार्य्यः—

[२] ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥ १ ॥ पा० गृ० सू० का० २ क० २ सू० ७।

इस मन्त्र को बोल के बालक † को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे पश्चात बालक, आचार्य्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० सू० ११

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दहने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति आदि करके समिदाधान अग्न्याधानादि कर आज्याहुति करने का आरम्भ करे ॥

आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा "त्वन्नो अग्ने०" इत्यादि से आज्याहुति ८, तीनों मिल के १६ सोलह घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से इन मन्त्रों से फिर (ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि०) ४ चार आहुति देवे तत्पश्चात्—

---

* उप नाम समीप, नयन प्राप्त करना अर्थात् विधि से आचार्य के वा अग्नि के समीप प्राप्त करना ।

† आचार्य्य उस को कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित, अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी तन मन धन से सब को सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे ।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं वायो व्रतपते० * स्वाहा । इदं वायवे, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥३॥ ओं चन्द्र व्रतपते० स्वाहा । इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये, इदन्न मम ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । ९–१३ ॥

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी उस के पीछे व्याहृति आहुति ४ (चार) और स्विष्टकृत् आहुति १ (एक) और प्राजापत्याहुति १ (एक) ये सब मिलके छः घृत की आहुति देनी, सब मिल के (१५) आहुति बालक के हाथ से दिलानी, उस के पश्चात् आचार्य्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे, और बालक आचार्य के सम्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य्य बालक की ओर देख के:—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १४ ॥

इस मन्त्र का जप करे॥;

बालक बोले—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व,, । मं० ब्रा० १ । ६ । १६ ॥

आचार्य बोले—" को† नामासि,,

बालक बोले—"एतन्नामास्मि,, । मं० ब्रा० १ । ६ । १ ॥ † तत्पश्चात्-

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः॥३॥ यजु० अ० ११ मं० ५०-५२॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण (१) हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी। तत्पश्चात् आचार्य्य अपनी हस्ताञ्जलि भर के:—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम् । तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥ ऋ० मं० ५ अ० ६ सू० ८२ मं० १।

इस मन्त्र को पढ़ आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठसहित पकड़ के:—

---

* इस के आगे व्रतं चरिष्यामि इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये॥

† तेरा नाम क्या है ऐसा पूछना ॥ † मेरा यह नाम है ॥

(१) पार० गृ० सू० का० २ कं० २ सू० १४।

ओं देवस्य त्वा (१) सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ † ॥ १ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ कं० २० सू० ४।

इस मन्त्र को पढ़ के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना, इसी प्रकार दूसरी बार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भर के अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के:—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ ॥ १ ॥ मानवगृ० सू० पुरुष१ख० २२ सू० ५।

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा दे पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जलि में भर अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़:—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ ॥ सा० म० प्र०१ ख० ६ मं० १५।

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह के आचार्यः—

ओं देव (२)सवितरेष ते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समावृतत् ॥१॥

इस एक और " तच्चक्षुर्देवहितम्०" इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा,(३)बालक सहित आचार्य सभामण्डपमें आ, यज्ञकुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के:—

ओं युवा (४)सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। ऋ० मं० ३ अ० १ सू०८ मं० ४।

ओंसूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, * असौ ॥१॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख०६म० १६।

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सन्मुख बैठे। पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्ध पर अपने दक्षिण(५) हाथ से स्पर्श करके पश्चात् अपने हाथ से वस्त्र से अनाच्छादित नाभि काः—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि; अमुम् ॥१॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात् स्पर्श करे

---

(१) साम वेद मन्त्र ब्राह्मण में " देवस्यते " ऐसा पाठ है।

† असौ इस पदके स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करनाचाहिये

(२) मानव गृ० सू० ख० २२ सू० ५ यहां आश्व० गृ० सू० अ०१ क०२० सू०६ में......."तं गोपाय समामृत" यह पाठ है।

(३) पार० गृ० सू० का०२ क०२ सू० १५।

(४) युवा सुवासा००० इत्यर्धर्चेनैनं प्रदक्षिणमावर्तयेत्। आश्व० गृ० सू० अ०१ क०२० सू०८

* असौ और अमुं इन दोनोंपदोंके स्थानमें सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करनाचाहिये

(५) दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितां नाभिमभिमृशेत् प्राणानां ग्रन्थिरसीति। गोभि० गृ० सू० प्र०२ का० १० सू० २८।स्पर्श करने की येह सब विधि यहां गोभिलीय गृ० सू० में लिखी है।

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २॥

इस मन्त्र से उदर पर और:—

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम् ॥३॥

इस मन्त्र से हृदय:—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥४॥

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध और:—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥५॥ †

इस मन्त्र को बोल के वाम हाथ से बाएं स्कन्ध पर स्पर्श कर के बालक के हृदय पर हाथ धर के:—

(१) ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥६ ऋ० म० ३ अ०१ सू०८ मं०४ ।

इस मन्त्र को बोल के आचार्य, संमुख रह कर बालक के दक्षिण स्कन्ध के ऊपर अपना हाथ धर के फिर हृदय पर अपना हाथ रख के:—

ओं (२) मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥१॥ पार० गृ०सू० का०२ क०२ सू० १६ ।

इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य ! बालक तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूं तेरा चित्त मेरेचित्तके अनुकूल सदा रहै और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुनाकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे। यह प्रतिज्ञा करावे इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहै आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिए और परमात्मा मेरे लिए आपको सदा नियुक्त रक्खे इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके आचार्य बोले—

[३] को नामाऽसि ॥ तेरा नाम क्या है ?

असावहम्भोः३ ॥ मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे—

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्यसि ॥ तू किसका ब्रह्मचारी है।

बालक । भवतः । आपका । आचार्य बालक की रक्षाके लिए:—

(४) इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्त-

---

† ये पाँचो मन्त्र, साम वे० मन्त्र ब्रा० प्र०१ ख०६ मं० २०—२४ में हैं।

(१) हृदयदेशमालभेतोत्तरेण । आश्व० गृ० सू० अ०१ क०२०सू० ० ६ ।

(२) इस मन्त्र का अर्थ मूल भाषा में लिखा है ।

× असौ ॥ इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् ।

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥१॥ मानव गृ० सू० पु० १ खं०२२ सू०५॥ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्य स्त्वौषधीभ्यः परिददामि। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि।सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥२॥

इन मन्त्रों को बोल, बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ॥

फिर महावामदेव्य गान करके संस्कारमें आई हुई स्त्रियोंका बालक की माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता, पिता,आचाय सम्बन्धी, इष्ट मित्रसब मिल के—

ओं [१] त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वीभूयाः

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने २ घर को सिधारें ॥

इत्युपनयनसंस्कारविधिः ॥

* असौ इस पदके स्थान में सर्वत्र बालक का नमोच्चारण करना चाहिये ।

१ इसका अर्थ पूर्व कर आये

संस्कृत प्रमाणों का भाषार्थ

(१) (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत—वेद पढ़ने के लिए जो नियम विशेष किया जाय, उसको मैं (आगाम्) प्राप्त होऊँ। और (ब्रह्मचारी, असानि) ब्रह्मचारी होऊँ।

(२) हे कुमार! (येन) जिस विधि से (बृहस्पतिः) गुरु—आचार्य ने (इन्द्राय) अपने शिष्य के लिए (अमृतं, वासः) जो जला, फटा, कमचलने वाला न हो ऐसे वस्त्र को (पर्यद*धात्) धारण कराया है (तेन) उस विधि से ही (त्वा) तुझे (परिद्धामि) मैं सुन्दर वस्त्र पहनाता हूं (आयुषे) स्वास्थ्य के लिए और (दीर्घायुत्वाय†) दीर्घ जीवन के लिए (बलाय) देह में शक्ति आने के लिए (वर्चसे) इन्द्रियों के तेज के लिए वा ऐश्वर्य के लिए।

हे बालक (यज्ञोपवीतम्) यज्ञाय यज्ञकर्मणे, बेदोक्तकर्माधिकारायेतिवा उपवीतम्—उपरिवीतम्।परिहितम् वेदोक्त कर्ममें अधिकारी बननेके लिए जो कन्धे के ऊपर रक्खा जाय इस"ब्रह्मसूत्र"को और जो (परमम्)पर, आत्मा, मीयते—ज्ञायते अनेन, परमात्मा के ज्ञान प्राप्ति का सूचक है (पवित्रम्) शुद्धि के ज्ञानकी सूचना करने वाला है (यत्, प्रजापतेः, सहजम्) जो ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट है। (पुरस्तात्) पूर्व काल से चला, आता है (आयुष्यम्) आयु के लिए हितकारी (अग्र्यम्) मुख्य है, ऐसे इस "ब्रह्मसूत्र" को मैं आज (प्रति मुञ्च) बांधता हूँ (पुरुषव्यत्ययच्छान्दसः) (शुभ्रम्, यज्ञोपवीतम्) यह निर्मलता का बोधक यज्ञोपवीत (बलम्) बल देने वाला और (तेजः) तेज देने वाला ईश्वर करे कि (अस्तु) होवे! हे ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीतम, असि) तू यज्ञोपवीत है (त्वा) तुझे (यज्ञस्य) यज्ञकार्य के लिए ही (ग्रहण करता हूं) और मैं स्वयम् आज (यज्ञोपवीतेन) यज्ञोपवीत से (उपनह्यामि) बंधता हूं ॥

हे (व्रतपते) उपनयनादि व्रतों के अधीश्वर अग्ने पूजनीय परमात्मन्! मैं (व्रतं, चरिष्यामि) ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान करूँगा (तत् ते) इससे आप के प्रति (प्रब्रवीमि) निवेदन करता हूं—प्रार्थना करता हूं कि आपकी कृपा से (तत्) उस व्रत का पालन करने के लिए (शकेयम्) मैं समर्थ होऊँ। (तेन) उस व्रत के फल से मैं (ऋध्यासम्) समृद्धि सम्पत्ति युक्त होऊँ और (अहम्) मैं (अनृतात्) झूँठे कार्यों को छोड़कर (इदं, सत्यम्) इस हृदयस्थ सत्य ब्रह्मको (उपैमि) प्राप्त होऊँ

(१) [वायो] ज्ञानस्वरूप!

[२] [सूर्य] सूर्यवत् प्रकाशमान!

* यहाँ अन्तर्भूत णिच है। †आयु शब्द उकारान्त भी है।

(३) [चन्द्र] चन्द्रवत् आल्हादक !
(४) (वृतानां, वृतपते] वृतों में सब वृतों के अध्यक्ष! शेषपूर्ववत्
हे अग्ने परमात्मन् ! (आगन्त्रा) ब्रह्मचर्यवृत में आने वाले इस बटुके साथ, हम सब (समगन्महि) मेल कर चुके हैं। आप कृपा कर इस बालक को [सुमर्त्यम्] अच्छे मनुष्यों से युक्त (प्र, युयोतन) अच्छे प्रकार कीजिए [अरिष्टः] इस बालक के विघ्नों को हम सब [संचरेमहि] अपने ऊपर लेते हैं, आप की कृपा से [अयम्] वह बालक [स्वस्ति, चरतात्] कल्याणपूर्वक विचरे।

[५] हे गुरो ! मैं (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य वृत को (आगाम्) स्वीकार कर चुका हूं। अब आप [मा] मुझे (उप, नयस्व) अपने समीप विधि से प्राप्त कीजिए, रखिए।

हे [आपः] जलो ! (हि) जिस से कि तुम (मयोभुवः) सुख देने वाले (स्था) होते हो, अतः [ताः] वैसे तुम (नः) हमको [ऊर्जे] अन्न के लिए [दधातन] धारण करो और [महे, रणाय,] बड़े रमणीय [चक्षसे] दर्शन के लिये हमें धारण करो ॥

हे जलो ! (वः) तुम्हारा [यः] जो [शिवतमः, रसः] अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य) उसे (नः) हमें (इह) इस लोक में (भाजयत) उपयुक्तकराओ। (उशतीः, मातरः, इव) पुत्रसमृद्धि को चाहने वाली माताएँ जैसे अपने स्तनके रस को सेवन कराती हैं वैसेही ॥

हे [आपः] जलो ! (यस्य, क्षयाय) जिस अन्न के निवास के लिए तुम ओषधियों को (जिन्वथ) तृप्त करतेहो [तस्मै] उसी अन्नके लिए हम [अरम्] पर्याप्त रूप से [वः] तुम्हें (गमाम) प्राप्त करते हैं [च] और तुम (नः) हमको (जनयथ] पुत्र पौत्रादि के उत्पादन में प्रयुक्त करो ॥ इन तीनों मन्त्रों का तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यों को अनेक गुण विशिष्ट जलों से यथावदुपयोग लेना चाहिए॥

(वयम्) हम सब (सवितुः, देवस्य) सर्वोत्पादक परमात्माकी [तत्, श्रेष्ठम्, भोजनम्] उस प्रसिद्ध, प्रशंसनीय नियमनादि रूप भोग्यवस्तु को [वृणीमहे] चाहते हैं, प्रार्थना करते हैं और उसी (भगस्य) भजनीय-सेवनीय परमात्मा के [सर्वधातमम्,] सब भोग्य पदार्थों को देने वाले (तुरम्) शत्रुओं को मारने वाले नियमरूप भोग्य को ईश्वर करेकि [धीमहि]धारण करें—उपभोग करें॥

हे [असौ] अमुकनाम के बालक ! ('सवितुः, देवस्य) जगदुत्पादक परमात्माके (प्रसवे) ऐश्वर्य के लिए (त्वा) तुझे—ग्रहण करता हूं। ('अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के जैसे'(हस्ताभ्याम्)' परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिए तथा '(पूष्णः)' प्राणवायु के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग के लिए, तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं

हे बालक ! (ते,हस्तम्) तेरे हाथ को (सविता) परमात्माने (अग्रभीत) ग्रहण कर लिया है।

हे बालक ! (तव) तेरा (अग्निः, आचार्यः) ईश्वर ही आचरण शोधक है।

हे (सवितः,देव) सूर्योत्पादक परमेश्वर देव ! (एषः, ते, ब्रह्मचारी) यह तेरा ब्रह्मचारी है (त्वम्, गोपाय) तू रक्षा कर, जिस से कि (सः) वह यह (मा,मृतत) मेरे प्रति सुन्दर बर्ताव करे ।

(युवा) दृढ़ शरीर वाला (सुवासाः) स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने वाला (परिवीतः) यज्ञोपवीत, मेखलादि से परिवेष्टित—जो ब्रह्मचारी (आ, अगात्) संमुख प्राप्त होता है (सः, उ, जायमानः) वैसो ही स्थिति करता हुआ वह (श्रेयान्, भवति) लोगों का कल्याण करने वाला होता है ।

हे बालक ! (सूर्यस्य) सूर्यवत प्रकाशमान इस आचार्य की (आ,वृतम्) प्रदक्षिणा को (अनु, आ, वर्तस्व) अनुकूल होकर अच्छे प्रकार कर ॥

हे नाभे ! तू (प्राणानाम्) प्राण आदि वायुओं की (ग्रन्थिः, असि) गूंथने वाली—गांठ है । हे (अन्तक) परमात्मन् ! इस नाभि को (मा,विस्रसः) मत अपने स्थान से च्युत करो—अपनी जगह से मत डिगाओ और (इदम्) इस बालक के शरीर को (ते) तेरे ही (परिददामि) अधीन बनाता हूं अर्थात् इस के शरीर के आप ही रक्षक होवें । (अमुम्) इस नाम के बालक को उद्दिष्ट करके मैं यह कहता हूं ।

हे (अहुर) वायु के प्रेरक ! परमात्मन् ! शेष पूर्ववत ।

हे (कृशन) अग्नि के प्रयोजक ! ईश्वर ! शेष पूर्व वत् ।

(असौ) हे अमुक नाम के बालक ! (त्वा) तुझे (प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञापालन के निमित्त (परिददामि) ईश्वर को ही समर्पित करता हूं ।

(देवाय, सवित्रे) सर्वोत्पादक, दिव्य गुण युक्त परमात्मा के लिये, शेष पूववत।

(धीरासः) धीर—अपनी बुद्धि से विचारपूर्वक काम करने वाले (कवयः) पूर्वापरदर्शी (स्वाध्यः) अच्छे ध्यान से युक्त (मनसा, देवयन्तः) मन से देवभाव की कामना करने वाले विद्वान् लोग (तम्) उस दृढ़ाङ्ग ब्रह्मचारी को ही (पूर्व मन्त्रार्द्ध में आया हुआ तच्छब्द से ब्रह्मचारी ही गृहीत होता है) (उन्नयन्ति) उन्नत—सद्गुणाधान से ऊंचा करते हैं ॥

कोनामाऽसि से लेकर इस संस्कार के अन्ततक की सब विधि "कस्य ब्रह्मचार्यसि" इस एक मन्त्र को छोड़ कर पारस्कर गृ० सू० का० २ क० २ के अनुसार है। "को नामाऽसि" इस से पूर्व, "ब्रह्मचारी के दहिने हाथ को पकड़ कर" इतना पारस्कर में विशेष है ।

४—(असौ) हे बालक ! तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (ब्रह्मचारी, असि) ब्रह्मचारी है [तव] तेरा [अग्निः, आचार्यः] पूजनीय ईश्वर ही, आचार्य—शुभ आचरणों का सम्पादक है और उस के पीछे [अहम्] मैं भी [तव] तेरा [आचार्यः] आचार्य हूं ।

हे बालक ! तू [कस्य, ब्रह्मचारी, असि] किस निमित्त ब्रह्मचारी है ![प्राणस्य, ब्रह्मचारी असि] प्राण विद्या के लिए ब्रह्मचारी हुआ है [त्वा] तुझे [कः] कौन (कम्) सुख [उप,नयते] पहुंचाता है केवल, कर्मानुकूल फलदाता ईश्वर । अतः

(काय) ईश्वर के लिए—ईश्वराज्ञानुकूल चलने के लिये (त्वा) तुझे [परि,ददामि] समर्पित करता हूं ।

१—(प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञा पालन के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूं ।

२—(सवित्रे, देवाय) सर्वोत्पादक ईश्वर का स्वरूप जानने के लिए(त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूं ।

३—(अद्भ्यः, त्वा, ओषधीभ्यः) जल विद्या के लिए (त्वा) तुझे तथा ओषधियों के ज्ञान के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूं ।

४—(द्यावापृथिवीभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थ पदार्थों के ज्ञान के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूँ ।

५—(विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) सब अग्नि आदि देवताओं के जानने के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूं ।

६—(सर्वेभ्य', भूतेभ्यः,अरिष्ट्यै) सब प्राणियों को निरुपद्रव—शान्ति के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) समर्पित करता हूं । इति शुभम् ।

ओ३म् नमः

उपनयन संस्कार की व्याख्या ।

आजकल जब लड़की वा लड़का पढ़ने के लिये स्कूल में पहिली वार जाता है तो उसको दाखिल वा प्रवेश होना कहते हैं । लड़के का नाम जब तक हेडमास्टर रजिष्टर में न लिखले तब तक दाखिला मुकम्मिल (पूर्ण) नहीं होता । जिस दिन लड़का स्कूल में जाता है उसी समय उसका नाम स्कूल रजिष्टर (पत्रक)में लिखलिया जाता है आजकल पढ़ने का स्थान (स्कूल) पृथक् वा दूर होता है और रहने का दूर। लड़का घर में मा बाप के यहां रहता और कुछ काल के लिये स्कूल में आचार्य्य (हेडमास्टर वा प्रिन्सिपल) के यहाँ दिन में चला जाताहै ।

पुराने समय में विद्यालयमें जाने के स्थान में बालक का विद्यालय के मुख्याध्यापक वा आचार्य्य के पास जाना, यह कहने की शैली थी । आजकल भी बालक विद्यालय में जाकर दाखिले के लिये हेडमास्टर वा प्रिन्सिपल के पास ही जाता है, पर कहने में यही आता है कि वह स्कूल . (विद्यालय) में गया ।

पुराने समय में स्कूल में गया, इसके स्थान में यह कहतेथे कि बालक का "उपनयन" हुआ, अर्थात् वह आचार्य्य के पास गया । प्रयोजन दोनों बातों का एक ही है पुरानी शैली कहने की अधिक भावपूर्ण है । जो अभिप्राय आज स्कूल में जाने से समझा जाता है, पुराने समय में वही " उपनयन " से समझा जाता था ।

आजकल दाखिले के लिये जरूरी है कि हेडमास्टर स्वयं उससे पूछकर उस का नाम एक रजिस्टर (पत्रक) में लिखले । पुराने समय में भी इसी प्रकार की रीति थी पर उस समयमें कागज़ (पत्र) के बने हुए रजिस्टर (पत्रक) में नाम लिखने के स्थानमें आचार्य्य अपने मनमें उसका नाम उससे पूछकर धारण करता था और साथही बालकको कहता था कि वह भी आचार्य्य का नाम अपने मन रूपी पत्रक में धारण कर ले । पुराने समय में यह कार्यवाही इस प्रकार होती थी—

(आचार्य्य)—तेरा नाम क्या है!

(बालक)—देवदत्त

(आचार्य्य)—तू किस का ब्रह्मचारी है!

(बालक)—आपका

पत्र के पत्रक फटजाते हैं, गुम होजाते हैं । मन रूपी पत्रक मरण पर्य्यन्त कहां जासक्ते हैं ! आजकल बालक का घर पृथक दूर और विद्यालय घरसे दूर और पृथक् होता है ॥

पुराने समय में अपने ही ग्रामके बाहिर जहां विद्यालय होता था उस विद्यालय के समीप ही बालक के रहने का स्थान भी होता था, जैसे कि आजकल युरुप के बोर्डिङ्ग-स्कूल होते हैं। उस पुराने समय में ग्राम २ में बोर्डिङ्ग-स्कूल (गुरुकुल) होते थे जैसा कि मनुस्मृति से विदित होता है और जिस प्रकार ब्रह्मा में आज तक भी ग्राम २ में गुरुकुल हैं। आज भारतवर्ष में प्रायः बालक स्कूलमें जाते समय ऐसे घबराते हैं जैसे पशु बाड़े में जाते हुये। कारण यह कि बच्चों के मन में माता पिता यह संस्कार डालते ही नहीं और न उन को अनुभव करा सकते हैं कि जिस प्रकार खेल कूद और रोटी खाना तेरे लिये स्वाभाविक है उसी प्रकार विद्या-प्राप्ति करना भी स्वाभाविक है। खेल कूद की जगह में बच्चे रुचि पूर्वक जाते हैं पर स्कूलों में नहीं। युरोप से सभ्य देशों में अनेक विद्वानों के प्रयत्न से अब वह दिन आगया है कि बच्चों को स्कूल रोचक प्रतीत होने लगे हैं। भारतवर्ष में बच्चे गुरू से भय खाते हैं युरोप, अमरीका में गुरू आज मित्रवत् व्यवहार बच्चों से करते हैं जिस से बालकों को डर वहां नहीं रहा। पुराने समय में उपनयन अर्थात् गुरू के पास जाने की रुचि दृढ़ करने के लिये बाजे आदि बजाये जातेथे ताकि बच्चा इसको आनन्द की बात समझे। यद्यपि युरोप में और तों बहुत कुछ सुधार किया जा चुका है परन्तु यदि वह उस दिन जब कि बच्चे को गुरू के पास भेजते हैं बाजे भी बजायें और मिठाई आदि बांठने से उत्सव करें। तो वह स्वयं प्रतीत करेंगे कि इस से बालक के हृदय में पूर्ण निर्भयता और पूर्ण आनन्द उपलब्ध हो सकेगा। अस्तु। पुराने समय में तो यह बात उद्देश को समझ कर की जाती थी आज भारत में आर्य सन्तान बाजे बजाने और लड्डू बांटने में मर्यादा से इतनी बढ़ गई है कि कश्मीरी पण्डितों में विवाह के समान इस संस्कार का खर्च आता है।

जब सात वर्ष के बालक को पता लगता था कि मेरा यह संस्कार बाजों गाजोंके साथ होने वाला है तो इन सब बातों से उस के मन पर गुरू के यहां जाना, विद्या पढ़ने के लिये, एक बहुत उत्तम और रोचक बात मालूम होती थी। वह बालक तो पुराने समय में उपनयन संस्कार से दो तीन दिन पहिले ही रातको स्वप्नमें सहर्षगुरु के पास पहुंच जाता होगा। विद्या प्राप्ति के लिये उस की रुचि कितनी प्रबल की जाती थी और इसका उत्तम फल यह होता था कि बालक सदैव के लिये विद्याप्रिय हो जाते थे। युरोप के जितने भी महान् पण्डित हुयेहैं उन सब के जीवनचरित्र बतला रहे हैं कि विद्या प्राप्ति के लिये एक मात्र साधन उनके पास यही था कि उनके मन में तीव्र इच्छा विद्याप्राप्ति की विद्यमान रहती थी। यह तीव्र इच्छा ही पुराने समय में इस देश में अनेक ऋषि, मुनि बनाया करती थी।

पुराने समय में प्रवेश के दिन ही बालक प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता था कि गुरू तो मेरा पिता समान स्नेही है क्योंकि गुरू उस को प्रेम से सुन्दर २ वस्त्र पहिनाता था। फिर यज्ञोपवीत बालक धारण करता था और जिस प्रकार बच्चे चांद (मैडल)

ओ३म् नमः

उपनयन संस्कार की व्याख्या।

आजकल जब लड़की वा लड़का पढ़ने के लिये स्कूल में पहिली वार जाता है तो उसको दाखिल वा प्रवेश होना कहते हैं। लड़के का नाम जब तक हेडमास्टर रजिष्टर में न लिखले तब तक दाखिला मुकम्मिल (पूर्ण) नहीं होता। जिस दिन लड़का स्कूल में जाता है उसी समय उसका नाम स्कूल रजिष्टर (पत्रक)में लिखलिया जाता है आजकल पढ़ने का स्थान (स्कूल) पृथक् वा दूर होता है और रहने का दूर। लड़का घर में मा बाप के यहां रहता और कुछ काल के लिये स्कूल में आचार्य्य (हेडमास्टर वा प्रिन्सिपल) के यहाँ दिन में चला जाताहै।

पुराने समय में विद्यालयमें जाने के स्थान में बालक का विद्यालय के मुख्याध्यापक वा आचार्य्य के पास जाना, यह कहने की शैली थी। आजकल भी बालक विद्यालय में जाकर दाखिले के लिये हेडमास्टर वा प्रिन्सिपल के पास ही जाता है, पर कहने में यही आता है कि वह स्कूल (विद्यालय) में गया।

पुराने समय में स्कूल में गया, इसके स्थान में यह कहतेथे कि बालक का "उपनयन" हुआ, अर्थात् वह आचार्य्य के पास गया। प्रयोजन दोनों बातों का एक ही है पुरानी शैली कहने की अधिक भावपूर्ण है। जो अभिप्राय आज स्कूल में जाने से समझा जाता है, पुराने समय में वही "उपनयन" से समझा जाता था।

आजकल दाखिले के लिये जरूरी है कि हेडमास्टर स्वयं उससे पूछकर उस का नाम एक रजिस्टर (पत्रक) में लिखले। पुराने समय में भी इसी प्रकार की रीति थी पर उस समयमें कागज (पत्र) के बने हुए रजिस्टर (पत्रक) में नाम लिखने के स्थानमें आचार्य्य अपने मनमें उसका नाम उससे पूछकर धारण करता था और साथही बालकको कहता था कि वह भी आचार्य्य का नाम अपने मन रूपी पत्रक में धारण करले। पुराने समय में यह कार्यवाही इस प्रकार होती थी—

(आचार्य्य)—तेरा नाम क्या है!

(बालक)—देवदत्त

(आचार्य्य)—त किस का ब्रह्मचारी है!

(बालक)—आपका

पत्र के पत्रक फटजाते हैं, गुम होजाते हैं। मन रूपी पत्रक मरण पर्य्यन्त कहां जासक्ते हैं! आजकल बालक का घर पृथक दूर और विद्यालय घरसे दूर और पृथक् होता है॥

पुराने समय में अपने ही ग्रामके बाहिर जहां विद्यालय होता था उस विद्यालय के समीप ही बालक के रहने का स्थान भी होता था, जैसे कि आजकल युरुप के बोर्डिङ्ग-स्कूल होते हैं। उस पुराने समय में गूाम २में बोर्डिङ्ग-स्कूल (गुरुकुल) होते थे जैसा कि मनुस्मृति से विदित होता है और जिस प्रकार ब्रह्मा में आज तक भी गूाम २ में गुरुकुल हैं। आज भारतवर्ष में प्रायः बालक स्कूलमें जाते समय ऐसे प्रव-राते हैं जैसे पशु बाड़े में जाते हुये। कारण यह कि बच्चों के मन में माता पिता यह संस्कार डालते ही नहीं और न उन को अनुभव करा सकते हैं कि जिस प्रकार खेल कूद और रोटी खाना तेरे लिये स्वाभाविक है उसी प्रकार विद्या-प्राप्ति करना भी स्वा-भाविक है। खेल कूद की जगह में बच्चे रुचि पूर्वक जाते हैं पर स्कूलों में नहीं। युरोप से सभ्य देशों में अनेक विद्वानों के प्रयत्न से अब वह दिन आगया है कि बच्चों को स्कूल रोचक प्रतीत होने लगे हैं। भारतवर्ष में बच्चे गुरू से भय खाते हैं युरोप, अमरीका में गुरू आज मित्रवत् व्यवहार बच्चों से करते हैं जिस से बालकों को डर वहां नहीं रहा। पुराने समय में उपनयन अर्थात् गुरू के पास जाने की रुचि दृढ़ करने के लिये बाजे आदि बजाये जातेथे ताकि बच्चा इसको आनन्द की बात समझे। यद्यपि युरोप में और तो बहुत कुछ सुधार किया जा चुका है परन्तु यदि वह उस दिन जब कि बच्चे को गुरू के पास भेजते हैं बाजे भी बजायें और मिठाई आदि बांटने से उत्सव करें। तो वह स्वयं प्रतीत करेंगे कि इस से बालक के हृदय में पूर्ण निर्भयता और पूर्ण आनन्द उपलब्ध हो सकेगा। अस्तु। पुराने समय में तो यह बात उद्देश को समझ कर की जाती थी आज भारत में आर्य सन्तान बाजे बजाने और लड्डू बांटने में मर्यादा से इतनी बढ़ गई है कि कश्मीरी पण्डितों में विवाह के समान इस संस्कार का खर्च आता है।

जब सात वर्ष के बालक को पता लगता था कि मेरा यह संस्कार बाजों गाजोंके साथ होने वाला है तो इन सब बातों से उस के मन पर गुरू के यहां जाना, विद्या पढ़ने के लिये, एक बहुत उत्तम और रोचक बात मालूम होती थी। वह बालक तो पुराने समय में उपनयन संस्कार से दो तीन दिन पहिले ही रातको स्वप्नमें सहर्षगुरु के पास पहुंच जाता होगा। विद्या प्राप्ति के लिये उस की रुचि कितनी प्रबल की जाती थी और इसका उत्तम फल यह होता था कि बालक सदैव के लिये विद्याप्रिय हो जाते थे। युरोप के जितने भी महान् पण्डित हुयेहैं उन सब के जीवनचरित्र बतला रहे हैं कि विद्या प्राप्ति के लिये एक मात्र साधन उनके पास यही था कि उनके मन में तीव्र इच्छा विद्याप्राप्ति की विद्यमान रहती थी। यह तीव्र इच्छा ही पुराने समय में इस देश में अनेक ऋषि, मुनि बनाया करती थी।

पुराने समय में प्रवेश के दिन ही बालक प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता था कि गुरु तो मेरा पिता समान स्नेही है क्योंकि गुरू उस को प्रेम से सुन्दर २ वस्त्र पहिनाता था। फिर यज्ञोपवीत बालक धारण करता था और जिस प्रकार बच्चे चांद (मैडल)

फीता आदि धारण करने से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार न केवल वह प्रसन्न ही होता था किन्तु उसे विद्या चिन्ह समझता हुआ आदर पूर्वक धारण करता था जिस से उस के मन में न केवल विद्या प्राप्ति की ही रुचि उत्पन्न होती थी प्रत्युत बलप्राप्ति और सदाचार की भी, क्योंकि यज्ञोपवीत इन तीनों नियमों का सूचक है। पुराने समय में इस संस्कार के अवसर पर एक अति उपयोगिनी शिक्षा दी जाती थी जिस की महिमा का गीत गाते हुये युरोप के समस्त महाविद्वान् थकते नहीं और जिस नियम का शिक्षण युरोप में वाल्यपन से लेकर बी० ए० क्लास तक रूपान्तरों में देना वहां के महानुभाव अपना कर्त्तव्य समझते हैं वह आधारभूत नियम क्या है! वह "सेल्फ रिलायंस" वा स्वाश्रय होने का नियम है। इस की व्याख्या करते हुये युरोप के परिडत बतलाते हैं कि वही विद्यार्थी उन्नति कर सकता है कि मैं सब बड़े और उत्तम काम कर सकता हूँ वा कर सकूंगा अथवा उत्तम २ विद्या प्राप्त करने की मुझ में शक्ति है। जिस विद्यार्थी को अपने कर सकने की शक्ति वा धृति का पता नहीं वह उन्नति कर ही नहीं सकता। पुराने ऋषि इस गढ़ मन्त्र का पाठ सात वष के बच्चे से एक बार नहीं किन्तु पांच वार इसी दिन करवाते थे और बच्चे के हृदय में उन्नति करने का बीज जमता हुवा चला जाता था जिस समय कि वह "तत् शकेयम्" पांच वार कहता हुवा आहुति देता था। वह ऋषियों का समय भारत में अब नहीं रहा वह उद्देश जो पुराने समय पूर्ण होता था आज उसे भूले हुये हैं।

ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जब कि समस्त भारत सन्तान इस संस्कार को पुनः करसके।

संस्कारविधि में जो आयु सम्बन्धी लेख है उससे यह सिद्ध होता है कि उपनयनवालों की आयु इनमें से कोई होसकती है।

वर्ण	गर्भ से वर्ष	जन्म से वर्ष	पतितहोनेकी अवधि के वर्ष
ब्राह्मण	५,८	५,८	१६
क्षत्रिय	६,११	६,११	२२
वैश्य	८,१२	८,१२	२४

इस पर कोई आशंका कर सकता है कि ब्राह्मण के बालक के लिये यदि ५ वर्षका समय नियत कियाहै तो क्षत्रियके लिये ६ और वैश्य के लिये ८ का क्यों! उसके उत्तर में हम कहेंगे कि जिस बच्चे के माता पिता गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण होंगे वह डाक्टरी वा वैद्यक में नियमानुसार जैसा कि प्रत्यक्ष अनुभवसे भी सिद्धहै अवश्य उस बच्चे से जिसके मातापिता गुण, कर्म, स्वभाव से सच्चे क्षत्रिय हैं बुद्धिमें कुछ अधिक

हो। इंग्लैंड में जो लुहारों के बच्चे होते हैं उन की उंगलियाँ अधिक पुष्ट और भुजा अधिक बलवान् होतीं हैं, पर जो पादरियों, मास्टरों, प्रोफेसरों अर्थात् ब्राह्मणों के बच्चे होते हैं वह लुहारों वा फौजी आदमियों के बच्चों से बुद्धि में कुछ तीव्र होते हैं। इसी लिये मनु वा सूत्रकारों ने जो न्यूनाधिक मर्यादा आयु की रक्खी है वह उचित है। कई कारणों से बच्चे पढ़ने से रह जाते हैं, राजदण्ड के अतिरिक्त समाज दण्ड का होना कि "अमुक अवस्था तक जिसने कुछ भी अभ्यास नहीं किया उस को पतित समझना चाहिये" यह भी अनुचित नहीं। परन्तु ऐसे पतितों की सन्तान पतित नहीं हो सकती अर्थात् उन को उपनयन का अधिकार होगा।

यज्ञोपवीत का समय उत्तरायण काल में होना इस लियेहै कि यह बुद्धिको उन्नति करने वाला कर्म है और उत्तरायण काल में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल की वृद्धि होती है यह सुश्रुत के उस लेख से पाया जाता है जो निष्क्रमण संस्कार में हम दे चुके हैं।

ब्राह्मण का वसंत ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में, और वैश्य का शरद्ऋतु में यज्ञोपवीत करने का जो विधान है वह नियम टेकनिकल स्कूल अर्थात् विशेष कर्म का शिक्षण देने वाले विद्यालयों की दशा में हो सकता है। तथा ऋतुओं में वसंत ब्राह्मण समान, ग्रीष्म सहनशील क्षत्रिय समान, और शरद् वैश्य समान रसवृद्धि कारक हैं।

जिस वर्ण के मनुष्य में शान्ति आदि गुण हैं क्रोध नहीं वह वसंत ऋतु से उपमा रखता है। जिसमें सर्दी गर्मी सम दशा में होतीं हैं। इसलिये वसंत में ब्राह्मण, को यह संस्कार करना शारीरिक तौर पर अधिक अनुकूल है। यह ऋतु सब को कुछ कुछ ब्राह्मण बना देती है।

ग्रीष्म ऋतु में ताप प्रधान होता हैं क्षत्रियस्वभाव के मनुष्य में ताप वा क्रोध स्वाभाविक होता है। इस लिये उस के भी अनुकूल जो यह ऋतु हैं उस में उस का संस्कार करना अधिक अनुकूल है।

शरद् ऋतु में चांद का राज्य होनेसे धान्य तथा ईख आदि रस युक्त पदार्थ अधिक उगते हैं। खेत बोये गये धान्यों के अधिष्ठाता वैश्यों को सुविधा है इस लिये इस ऋतु में जो रस प्रधान है संस्कार करना उसके अधिक अनुकूल हो सकता है, जो वैश्य स्वभाव हो। यह विदित रहे कि शरद् ऋतु उत्तरायण में नहीं।

यह प्रभाव बहुत थोड़े पड़ते हैं—इसी लिये दूसरा मत यह भी है कि सब ऋतुओं में सब का संस्कार हो सकता है। इस लिये जो साधारण शिक्षण देने के लिये विद्यालय हैं उन में यह नियम उपयोगी है। फिर लिखा है कि ब्राह्मण का लड़का इस संस्कार से ३ दिन वा १ दिन पूर्व दूध का भोजन करे और क्षत्रिय का गुड़ वाले दलिये का और वैश्य का श्रीखंड का जो कि ४ भाग दही, १ भाग दूध, यथाप्रमाण खांड और केशर डाल छान कर बनाया जाता है।

जिस गुण, कर्म से जिस वर्णके माता पिता हैं अधिक संभावना बच्चों की गुण

कर्म से उसी वर्ण को प्राप्त करने की हो सकती है। यदि कोई बच्चा पूर्व जन्म के संस्कारों वा विशेष प्रयत्नसे माता, पिता के वर्ण से उच्च वर्ण को प्राप्त हो सके तो उसके लिये कोई प्रतिबंध नहीं। पर नियम बनाने में प्रायः अधिक संभावना यही होती है कि गुण कर्म से जो ब्राह्मण हैं उनकी सन्तान गुण कर्म से ब्राह्मण सुगमता से हो सकती है इस लिये उस के खान पान में उचित भेद करना पड़ता है। जो मननस्वभाव और तीव्र बुद्धिके बालक होते हैं उनको दूधका सेवन अधिक अनुकूल है। जो शूर वीर बच्चे होते हैं उनको गुड़वाला दलिया, और हिसाव में बुद्धि लगाने वाले तथा धनोपार्जन में अधिक रुचि रखते हैं उनके लिये श्रीखंड अधिक अनुकूल हो सकता है। इन पदार्थों के गुण हम नीचे लिखते हैं

(१)गाय का दूधः—विशेष करके रस और पाक में मधुर है, शीतल, स्तनों में दूध बढ़ाने वाला, स्निग्ध, वात पित्त, और दुष्ट रुधिर नाशक (रक्त पित्त नाशक) , दोष, धातु, मल और छिद्रों में किंचिन्मात्र क्लेदकारी, भारी, जो प्राणी दूध को सदैव पिया करता है उसके बुढ़ापे को तथा यावन्मात्र रोगों को गोदुग्ध शान्त करता है।

(२)(क) जौः—मेधावर्द्धक, बलकारी, मूत्रनिकालने वाला।

(ख)गुड़ः—वृष्य, भारी, वातनाशक, कफकर्त्ता।

(३)(क)गोदुग्ध का दहीः—रुचिकारक; खट्टा पवित्र, दीपन, हृदयहितकारी, पुष्टिकारक, वातनाशक।

(ख) खांड वृष्य, नेत्रहितकारी, बृंहण, शीतल, वात, पित्तनाशक, बलकारक, वमन निवारक,

(ग)। केशरः—वर्ण उज्जलकर्त्ता, वमननाशक, व्रण तथा कृमिनाशक'।

इस व्रत का यह लाभ होगा कि उनका पेट हलका होजावेगा और दिमागमें जो तमोगुण वा तन्द्रा होगी वह नष्ट होगी।

संस्कारसे एक दिन पहिले बालकको भोजनके स्थान में दूध, जौका दलिया व श्रीखंड वर्णानुसारखिलावे पानी पीनाहो तो इस भोजन के साथ न दिया जावे कुछ समय ठहर कर पीवे। यह भोजन अनेक बार यथारुचि लेसक्ते हैं।

दूसरे दिन स्नानादि के पश्चात् जब हवन कुंड पर बैठे तब मोहन भोग (हलवा) वा और कोई मिठाई खाकर बैठें। यह इसलिये लिखा है कि बालकों को स्नान करते ही विशेष भूख लगआती है कारण यह कि न्हाने से रुधिर की गति बलवान् होनेसे जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

आजकल स्कूल में प्रविष्ट करते समय बालक का पिता हेडमास्टर से बच्चे का नाम दाखिल करनेको निवेदन करता है पुराने समय में यह निवेदन बालक से ही कराया जाता था, यतः उसके मनमें विद्याभ्यास की रुचि बढे। इस संस्कार की वास्तविक क्रिया बालक के इस वचन से आरम्भ होती है किः—

ब्रह्मचर्यमागाम्—वेदाभ्यास के नियम को मैं प्राप्त होऊं:—
ब्रह्मचार्यसानि—ब्रह्मचारी होऊं—

व्याख्याः—ब्रह्म वेदका नाम है और वेद सत्यविद्या को कहते हैं। युरूप आदि देशों में भी सत्यविद्या पढ़ने के लिये ही प्रायः सब बालक सर्कारी स्कूलोंमें प्रविष्ट होते हैं।

जब वेदके अर्थ सत्यविद्या के हैं तो मानना पड़ेगा कि वह भी वेदार्थ प्राप्तकर रहे हैं। अन्तर इतना है कि वह वेदको उसके स्वाभाविक रूपमें नहीं पढ़ते किन्तु रूपान्तर में। संस्कृत शब्दों में वा वेद मंत्रों द्वारा जो ज्ञान मिलता है वह अपने प्रथम और स्वाभाविक रूप में समझना चाहिये। अंग्रेजी आदि शब्दों द्वारा जो सत्य विद्या मिलती है उसके अर्थ स्वरूप में तो कुछ अन्तर नहीं किन्तु शब्दरूप में अन्तर है। यह सत्य है कि वेदकी अनेक विद्याओं में से कई विद्यायें योरूप में प्रचलित हैं परन्तु पूर्णरूपसे सब विद्यायें नहीं।

बालक के इस कहने पर कि मैं ब्रह्मचारी बनूं गुरु उसको ब्रह्मचारियों के वेष (वर्दी] पहिरने को देता है और साथ ही उसका प्रेम बालक से प्रकट होता है, क्योंकि बच्चे जो उनको मिठाई वा वस्त्रादि प्रेम से दें उनसे मनसे प्यार करने लगजाते हैं। ब्रह्मचारियों के वस्त्र किन २ गुणों वाले हों उसका वर्णन यहांपर उस मंत्र में किया गया है जिसको बोलकर आचार्य्य बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनाता है।

इसके पश्चात् बालक आचार्य्य के सम्मुख बैठे और आचार्य्य यज्ञोपवीत (सार्टिफीकेट दाखिला) बायें स्कन्ध के ऊपर दाहिने हाथ के नीचे कटि तक धारण करावे। और यह वचन बोले कि "ओम् यज्ञोपवीतम्: "—इत्यादि।

अर्थ—इसीके पहिले पृष्ठ में आचुके हैं ।।वहाँ पर देखियेगा ।।

व्याख्या—बालक ने विद्यालय में दाखिला (प्रवेश) चाहा था। उस को स्वीकार करते हुए आचार्य्य ने पहिले ब्रह्मचारी को वस्त्र धारण कराये, फिर दाखिले का सार्टिफिकेट तागे के रूप में उसके गले में वस्त्रों के ऊपर डालदिया। जहां एक तरफ यह दाखिले के सार्टिफिकेट (प्रवेश-प्रमाणपत्र) का काम देवे वहाँ ब्रह्मचारी को "त्रयाय" अर्थात् १ सर्वहितकारी २ बल (शारीरिक) ३ तेज (विद्या]इन तीन बातों की उन्नति करने की सूचना देता रहे। यह तीन उद्देश्य पूर्वकाल से चले आते हैं और ईश्वर से स्वभाव सिद्ध उपदिष्ट हैं ऐसा जानना चाहिये।

पश्चात् आचार्य्य बालक को अपनी दाहिनी ओर साथ बैठाकर ईश्वरोपासना तथा साधारण होमकरे। बच्चे का कितना बड़ा मान आचार्य्य की ओर से दियाजाता था जब कि वह उसको अपने दहिने हाथ बराबर बिठलाकर होम करता था, यह कर्म आचार्य्य के पितावत प्रेम को बोधन करारहा है।

साधारण होम के पश्चात १५ आहुति बालक के हाथ से दिलाने का विधान है।

इनमें से निम्न लिखित पाँच मंत्रों द्वारा आहुति संस्कार सम्बंधी विशेष आहुति समझनी चाहियें। वह पांच मंत्र और उनके अर्थ प्रथम भाग में आचुके हैं।

व्याख्याः—

बालक कह रहाहै कि हे परम पूज्य ईश्वर ! मैं ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन करूंगा यह आप से प्रार्थना करता हूं आपकी कृपासे "तत्शकेयम्" उस व्रत (संकल्प) के पालन में समर्थ होऊँ। उस वृत का फल सम्पत्ति रूपसे मुझे मिले। मैं असत्य कार्य्यों को छोड़कर सत्य के आधार ईश्वर को प्राप्त होऊँ। इस मंत्र में प्रथम, ईश्वरको वृतपति कहागया है। सचमुच ईश्वर सत्य हृदय से प्रार्थना करने वाले प्रार्थी को अपूर्व मानसिक तथा बुद्धिबल प्रदान करते हैं और उसके मिथ्याभिमान रूपी मानसिक रोग आदि को भी दूर करके अन्तःकरण शुद्ध करते हैं।

दूसरेः—व्रतपालन की प्रतिज्ञा बालक करता है, ऐसा करना उसको अपने ऊपर विश्वास करने वाला तथा उन्नति करने का अभिलाषी बनाता है।

तीसरेः—वह वृत अशक्य नहीं, इस बात को वह कह रहा है कि ईश्वर कृपा से कर सकूंगा—स्वात्माश्रयी होने का अद्भुत शिक्षण है।

चौथेः—व्रत का फल धन संपत्ति की प्राप्ति है जिससे सर्व व्यवहार तथा कार्य्य सिद्ध होतेहैं। आजकल भी लोग विद्याप्राप्ति का एक उद्देश्य धनप्राप्ति मानते हैं और विद्या सर्व संपत्ति की दात्री है यह बात उस समय में भी समझी और मानी जाती थी।

पांचवें:—असत्य त्यागन की प्रतिज्ञा है। सत्य के आचरण से अनेक सुख मिलते हैं। सत्य ज्ञान से मानसिक शक्ति और निर्भयता बढ़ती, हिताहित का यथार्थ ज्ञान होनेसे हितको स्वीकार करसक्ता है। सत्यभाषण से जन समाज में विश्वास और मान बढ़ता तथा मन निर्भय रहने से बलवान् होता चलाजाता है। सत्य की सदैव जय होती है। सत्य व्यवहार वा छल कपट से रहित व्यवहार करने वाला यज्ञ स्वरूप अर्थात् सर्वहित को साधता हैं। जिसके मन, वचन और कर्म में सत्य है वह ईश्वर प्राप्ति का अधिकारी है। वह विद्या, विद्या नहीं जो सत्य का दर्शन नहीं कराती। विद्यार्थी को तो एक मात्र सत्य का प्रेमी होना चाहिये।

अन्य ४ मंत्रों में भी यही उद्देश दर्शाया गया है। फिर आचार्य्य पूर्वाभिमुख और बालक पश्चिमाभिमुख एक दूसरे के सामने बैठें। पश्चात् आचार्य्य बालककी ओर देखकर मंत्रका जपकरे।

मन्त्रार्थ के लिए इसी संस्कार का संस्कृत प्रमाणों का भाषार्थ देखो।

व्याख्याः—इस में आचार्य्य यह अनुभव करकेकि उसने सिरपर भारी जोखम का काम लिया है, ईश्वर से उसकी सिद्धि के लिये किप्रार्थना करता है। आजकल यदि लड़का दाखिल हो गया तो उसकी कुछ चिन्ता पीछे नहीं होती। अमुक दिन तक न

आवे वा मासिक फीस न भेजे तो नाम काट दिया, चिन्ता दूर हुई। परन्तु पुराने समय में जब बालक ने व्रतधारण किया है कि मैं ब्रह्मचर्य पालन करूंगा तो उसके व्रत पालन में सहायक होना आचार्य का धर्म्म होता था।

आचार्य का प्रसन्नता-पूर्वक संकल्प

जब आचार्य बालक के कल्याण की प्रार्थना जप रूप से कर चुका तो बालक कहता है कि हे गुरो ! मैं ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार कर चुका, अब आप अपने समीप मुझे रखिये इस पर आचार्य उसका नाम पूंछता है और वह नाम बतलाता है फिर आचार्य मानो मन में विचार करता है कि यह बालक मेरे पास रहेगा परन्तु मेरे और इस के निर्वाहार्थ भोजन तो चाहिये। आजकल फ़ीस देने की शैली है उस समय भिक्षा देने की रीति थी। पुराने समय में आचार्य जानता था कि भोजन की मुझे वा इस को क्या चिन्ता है जब कि ग्रामनिवासी विद्यमान हैं उनका धर्म भिक्षादान करने का है व सदैव इस बालक को भिक्षा और विद्यालय को दान आदि देते रहेंगे जिस से हम सब का निर्वाह होता रहेगा।

बड़े बड़े महानुभाव राजा अथवा गवर्नर (शासक) आज कल वर्षा की ही चिन्ता करते हैं। जब वर्षा अपनी ऋतु पर होजाती है तो राजे महाराजे समझते हैं कि अब हमारे कोष खाली नहीं रहेंगे, क्योंकि वर्षा से प्रजा सुखी होकर कर द्वारा हमारे कोश भरही देगी। उसी प्रकार पुराने समय में आचार्य राजाओं के समान चिन्ता करते थे तो वर्षा की, क्योंकि वे जानते थे कि यदि वर्षा बराबर होगई तो धर्मात्मा आर्य लोग गुरुकुलों को अन्नदान से अतृप्त नहीं रख सकते। आज कल परस्पर विश्वास नहीं है मास्टर समझते हैं कि मा बाप फ़ीस नहीं देंगे। पुराने समय में प्रजा पर यह अविश्वास करना मानों व्यर्थ कल्पना करना था। केवल विचार यही होता था कि दुष्काल न पड़ जावे और प्रजा दुःखी न हो, इसी लिये उस समय जब कि बालक उसके पास रहने की प्रार्थना करता है तो उसका नाम पूंछने के पीछे तीन मंत्रों को, जो जल की महिमा के बोधक हैं, जिनमें जल को अन्नोत्पादक और फल आदि रसों का कारण कहा गया है, उनका उच्चारण करता हुआ आचार्य कह रहा है कि "हे जल ! हमको अन्न द्वारा धारण करो..........हे जल ! तेरे रस युक्त प्रभाव को हम धारण करें..........हे जल ! तू अन्न की वृद्धि करने वाला है........हम पर्य्यायरूप से तुम को प्राप्त करें"।

अहो ! क्या उत्तम वचन हैं यह वचन कहते ही आचार्य बालक की अञ्जलि पानी से भर देता था मानो यह भाव प्रकट कर रहा है कि हे बालक ! जिस प्रकार इस समय में तेरा हाथ रसों के मूल जल से भरता हूं परमात्मा करे कि कभी तेरी अञ्जलि भिक्षान्न से खाली न आवे। फिर आचार्य अपनी अञ्जलि जल से भरता था जिसका अभिप्राय यह था कि जिस प्रकार मेरा हाथ अन्न के कारण जल से भर रहा है इसी प्रकार उत्तम अन्न सदैव मुझे प्राप्त हों। इसके पीछे आचार्य अपनी

अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में "ओं तत् सवितु"............
इस मंत्र द्वारा यह कहता हुआ कि "हम सब मिल कर भोजन चाहते हैं" छोड़ता था। अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ने से यह दर्शाना अभीष्ट था कि आचार्य अपने हाथ में आये हुए अन्न को बालक के हाथ में प्रसन्नतापूर्वक देगा। आज कल हम देखते हैं कि किसी पुरोहित को किसीने गोदान करके देनी है तो पुरोहित यजमान को कहता है कि अञ्जलि भर मेरी अञ्जलि में छोड़ो और साथही मुझसे प्रतिज्ञा करो। इसका प्रयोजन यह है कि गाय अपनी इच्छा (संकल्प) से दान की जाती है जबर वा दबाव से नहीं जैसा कि यह हाथ का पानी प्रसन्नता से अर्थात् अपने स्वभाव से आप नीचे जाता है, इसी प्रकार मैं अपनी इच्छा से यह काम करता हूं। आजकल भारी दान देते वक्त रजिष्ट्री का कागज़ लिखा जाता है जिस में रज़ामन्दी (संकल्प) सूचक शब्द लिखे जाते हैं। इसी भाव को बोधन करने के लिये जल अञ्जलि म भर कर दूसरे की अञ्जलि में छोड़ा जाता है और इसको संकल्प (मरज़ी से दान) छोड़ना कहते हैं। गुरु भी अपनी अञ्जलि का जल,बालक की अञ्जलि में छोड़ने से यह प्रकट कर रहा है कि मैं अपने संकल्प से इसकी सहायता अन्न द्वारा करूंगा। जैसे पानी अपना धर्म्म समझ कर नीचे गिरता है इसी प्रकार मैं अपना धर्म्म समझ कर इस कर्त्तव्य को पूर्ण करूंगा।

फिर आचार्य बालक की अञ्जलि को अंगुष्ठसहित पकड़ता है। यदि अंगुष्ठसहित न पकड़े और बालक का अंगुष्ठ ढीला होजाय तो अञ्जलि का पानी उस मार्ग से कहीं गिर जावे, परन्तु आचार्य उस मार्ग से रोक कर बच्च से उस की अञ्जलि का पानी किसी पात्र में छुड़ाता है, ऐसा करनेसे मानो वह दर्शा रहाहै कि जिसप्रकार यह पात्र तेरे अञ्जलि के जलको, जिस में मेरी अञ्जलि का जल भी मिलाहुआ है, सुरक्षित धारण करनेवाला है, इसी प्रकार परमात्मा हम दोनों के संकल्पों की रक्षा करने वाला है। पात्र में जल छोड़ते समय जो २ मन्त्र बोले जाते हैं वह परमात्मा की धारणाशक्ति के ही बोधक हैं जिस से भी अन्तिम इस बाह्य क्रिया का आन्तरीय उद्देश विदित होताहै।

आजकल जब किसी से कोई प्रतिज्ञा की जाती है तो प्रायः हाथ पर हाथ रखते हैं और ऐसे कम को वचन देना (प्रतिज्ञा करना) कहते हैं, वह प्रतिज्ञा प्रसन्नतापूर्वक ह, इस भाव को प्रकट करने के लिये यजमान लोग पुरोहितों के हाथ में अपने हाथ का पानी छोड़ते हैं और कहते हैं कि हमने "संकल्प किया"। पानी का हाथ में लेकर छोड़ना तो संकल्प के प्रसन्नतापूर्वक होने को प्रकट करता है और मुख से जो बोला जाता ह वह उस व्यवहार को।

आचार्य जिस समय अपनी अञ्जलि का जल शिष्य की अञ्जलि में छोड़ता है उस समय जो मंत्र कह रहा है उसका अर्थ यह है कि "हम सब उस श्रेष्ठ भोजन को चाहते हैं, और उसी सेवनीय परमात्मा के सब योग्य पदार्थों को देने वाले नियमक प भोग्य का उपभोग करें"।

इस से स्पष्ट विदित होगया कि गुरु भोजन को ज़रूरत अनुभव कररहा है और साथ ही प्रार्थना करता है कि ईश्वर उस भोग को हम सब को प्राप्त कराए और स्वयं प्रसन्नता पूर्वक उस भोग को शिष्य के लिये देने की उस की अञ्जलि में जल छोड़ने से प्रतिज्ञा कर रहा है।

अतः शिष्य ने जो कहा था कि मैं आप के पास रहना चाहता हूं। उसको मंज़ूर करते हुए पहिले गुरु ने उसका नाम पूछा, पीछे तीन वार उसकी अञ्जलि में जलभर अपनी में लेकर उसमेंसे उस को में छोड़ और फिर उसजलको पात्रमें छुड़ाते हुये दृढ़ प्रतिज्ञा कीकि मैं तेरेपालनपोषणका भार प्रसन्नतापूर्वक अपने ऊपर लेता हूं। तीन वार ऐसा करना प्रतिज्ञा की दृढ़ता को प्रकट करता है क्या हम रोज़नहीं देखते कि सरकारी नीलामी (बोली) में तीन वार कहकर नीलामी समाप्त करादी जाती है। फ़ौजी लोग तीन वार की सूचना पाने से कार्य्य आरंभ कर देते हैं। ऋषियों ने तीन वार की प्रथा इस लिये चलाई मालूम होती है कि प्रत्येक कार्य्य तीन रूप में रहता है अर्थात मानसिक, वाचिक, और कायिक। जब एक वार कहा तो उस का अर्थ यह हुआ कि हम मनसे उस को करने के लिये तैयार हैं, दूसरी वार कहने से यह पाया गया कि वाणी से भी हम तैय्यार हैं, तीसरी वार कहने के यह अर्थ है कि कायाद्वारा भी करने को तैय्यार हैं। कार्य्य का पूर्णरूप तीन बार के कहने से होता है। कोई कहे कि चार या पांच वेर कहने से क्या अधिक दृढ़ता प्रकट न होगी -इसका उत्तर यही है कि कर्म मानसिक संकल्प के रूप में बीजवत् होता है, फिर शाखा रूप तब होता जब वाणी से दूसरे को अपना संकल्प दर्शाते हैं, फल रूप वा पूर्ण वा अन्तिम रूप में तब होता है जब काया द्वारा उस को किया जावे। चौथा तो उस का रूप ही नहीं। पूर्ण वा अन्तिम दशा के पश्चात् फिर उस की कोई अवस्था क्या हो सकती है इस लिये तीन वार ही प्रतिज्ञा करना पूर्ण प्रतिज्ञा का बोधक है।

सूर्य्यदर्शन फिर मकान के अन्दर से उठकर बाहिर आकर गुरु, बालक को सूर्य्य के सामने खड़ा करके स्वयं खड़ा होकर, प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर! यह तेराही ब्रह्मचारी है, इस की मैं रक्षा क्या कर सकता हूं, तूही करेगा और तुझ से सुरक्षित रहकर यह ब्रह्मचारी मेरे प्रति सूर्य्य समान विद्या तेज से युक्त होकर कल्याणकारी वा सुन्दर वर्ताव करे।

गुरु, ब्रह्मचारी को अलंकार—रूप से आदर्श आदित्य बतलाता है। इसी लिये पुराने समय में उत्तम प्रकार के ब्रह्मचारी "आदित्य" संज्ञक होते थे। शिष्यको सूर्य्य का दर्शन कराने से दो बातों का उपदेश देना अभीष्ट है प्रथम यह कि जिस प्रकार सूर्य्य तेज से परिपूर्ण हैं, उसी प्रकार तुझे भी विद्या तेज से पूर्ण होनाहै। दूसरे जिस प्रकार इतना बड़ा महान् तेजस्वी सूर्य्य अपने तेज के पुंज को अपने में रख नहीं छोड़ता किन्तु अन्धकारयुक्त पृथिवी को उस का दान देता है। इसी प्रकार तुझे भी विद्यादान से परोपकार करते रहना है॥

"तच्चक्षुर्देवहितम्"

इस मंत्र के पाठ से बालक को १०० वर्ष तक जीने और दृढ़ इन्द्रिय आदि से युक्त रहने का अतीव उपयोगी आयुर्वैदिक आदर्श दर्शाया गया है।

आचार्य की प्रदक्षिणा। सूर्य दर्शन करा कर आचार्य्य यज्ञ कुंड के पास बैठ कर पहिले यह मन्त्र बोले, ओम् युवा... जिस का भाव यह है कि दृढ़ शरीर वाला, स्वच्छ वस्त्र धारी, यज्ञोपवीतधारी जो ब्रह्मचारी संमुख है वैसा ब्रह्मचारी ही लोगों का कल्याण करने वाला होता है।

इस से ब्रह्मचारी को परोपकारी होने का आदर्श बतलाया गया है, फिर आचार्य बालक का नाम लेकर उसको कहता है कि तू आचार्य की, जो विद्या और परोपकार के गुणों में सूर्य समान है, प्रदक्षिणा को भली प्रकार कर, इस को सुनते ही बालक आचार्य्य की प्रदक्षिणा करके उस के संमुख आकर बैठ जाता है।

प्रदक्षिणा करना, इस भाव को बोधन कराता है कि जिस की प्रदक्षिणा की जावे उस को लक्ष्य वा केंद्र बना, तत्संबन्धी कार्य्यों को आरम्भ से समाप्ति तक पूर्ण किया जावे। हवन कुण्ड की प्रदक्षिणा करने का अभिप्राय यह होता है कि हम यज्ञ वा कर्मकांड को लक्ष्य में रख, अमुक कर्मों को आरम्भ से अन्तपर्य्यन्त पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं। आचार्य का प्रदक्षिणा से अभिप्राय यह है कि आचार्य्य सम्बन्धी आज्ञाओं वा कार्य्यों का लक्ष्य में रख प्रदक्षिणा करने वाला आरम्भ से लेकर अन्त पर्य्यन्त उन का पूरा करने की प्रतिज्ञा करता है।

जब प्रदक्षिणा की जाती है तो एक आरंभिक स्थल से चल कर फिर उस तक आजाना होता है, जिस का अभिप्राय यह होता है कि अमुक काम को हम आरम्भ से अन्त तक करेंगे अधूरा नहीं छोड़ेंगे। आरंभशूर तो संसार में बहुत हैं पर वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होते सिद्धि को प्राप्त होने वाले के लिये ज़रूरी है कि वह जिस काम को आरंभ करें अन्त तक निभावे।

अंगस्पर्शन के आजकल "मेसमेरिज्म" की पुस्तकोंमें बतलाया जाता है कि शरीर किसी अंग को यदि दूसरा बलवान् जिस संकल्प से छूएगा तो शारीरिक बिजुली हाथ द्वारा छूने वाले के शरीरमें प्रवेश करके तद्वत् प्रभाव पहुंचाएगी। हम प्रतिदिन देखते है कि यदि बालक ऊंघ रहा हो वा सोना चाहता हो तो उस को थपक कर वैसी ही लोरी गा वा सुना कर सुला देते हैं।

रक्षा के भाव को लेकर गुरु विद्यार्थी के नाना अंगों का अपने हाथ से इस अवसर पर स्पर्शन करता हुआ ईश्वर से उन के स्वास्थ्य की प्रार्थना करता है। वह पहिले उस के दक्षिण स्कन्ध को जो बल का मूल है स्पर्श करके, फिर उस की नाभि, उदर, हृदय, वामस्कंध स्पर्श करता हुआ पुनः हृदय पर हाथ रखकर कहता है कि

तेरा हृदय मेरे अनुकूल रहे, तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल रहे और तू मेरी वाणी एकाग्रमन से सुना कर और बृहस्पति ईश्वर ने तुझ को मुझ से युक्त किया है।

यह गुरुकी आज्ञापालन की उत्तम शिक्षा थी जिस के विना कोई विद्यार्थी कभी उन्नति नहीं कर सकता और किसी विद्यालय की व्यवस्था, गुरु आज्ञा पालन के विना रह नहीं सकी। इसी प्रकार बालक प्रतिज्ञा करता और आचार्य्य से उसके अनुकूल रहने की आशा रखता है, जैसा कि संस्कार विधि के इन शब्दों से प्रकट है कि "इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य्य से प्रतिज्ञा करावे।"

इस प्रकार जब प्रतिज्ञा होचुकी तब आचार्य्य बालक से पूछता है कि तेरा नाम क्या है और तू किस का ब्रह्मचारी है! बालक जब उत्तर दे चुके तो फिर आचार्य्य बालक की रक्षा के लिये उस का नाम लेकर यह कहता है कि "इन्द्रस्य"...जिस का भाव यह है कि तू परमेश्वर का ब्रह्मचारी है और वही तेरा आचार्य्य है और उस के पीछे मैं भी तेरा आचार्य्य हूं।

नाना विद्याएं इस मन्त्रमें (१) बतलाया गया है कि प्राण विद्या की प्राप्ति के निमित्त बालकको यत्नवान् होना चाहिये। (२) दूसरी बात यह दर्शाई गई है कि केवल कर्मानुकूल फल प्रदाता ईश्वर ही सुख देने वाला है। (३) तीसरी बात यह है कि ईश्वराज्ञानुकूल ही चलना चाहिये।

प्राण रक्षा के महत्त्व को आज शिक्षणप्रणाली के अन्वेषणकर्ता मुक्तकण्ठ से कह रहे हैं कि स्कूलों के पढ़ने वाले विद्यार्थी प्रायः उन नियमों को बहुत कम जानते हैं जिन से प्राण रक्षा होती है। "सेनेटरी प्राईमर" आदि आरोग्य शास्त्र की लघु पुस्तकें कुछ २ बोध कराती हैं कि भोजन, शयन आदि अनेक उपयोगी विषयों से (जो प्राण रक्षा के साधन हैं) वे अनभिज्ञ होते हैं।

पुराने समय में प्राणविद्या को, जिस का दूसरा नाम 'आयुर्वेद है, बहुत महत्व की विद्या समझते थे और विद्यार्थी अनेक विद्याओं में इस का स्थान मुख्य मानते थे। शारीरिक उन्नति का एक मात्र साधन यही विद्या है।

दूसरी बात जो बतलाई गई कि "ईश्वर कर्मानुकूल फलप्रदाता है," उन को धर्मात्मा, तथा, पुरुषार्थी बनाने वाली है। तीसरी बात कि ईश्वर आज्ञानुकूल चलना चाहिये, यह बड़ी ही उपयोगी और सर्व प्रकार की उन्नति की साधिका है। उन्नति करना क्या है! केवल ईश्वर आज्ञानुकूल चलना ही। इस भाव को यूरुप के पण्डित और प्रकार से कहते हैं। वे कहते हैं कि "सृष्टि क्रम के अनुकूल चलो।" पर सृष्टि क्या है, ईश्वर का कार्य्य और सृष्टि क्रम, ईश्वर-इच्छा का रूप। वह ऋषि जिन्होंने कहा था कि ईश्वर आज्ञानुकूल चलो, वे वर्तमान युरुप के पण्डितों से एक दर्जा आगे बढ़े हुए थे यह अभी सृष्टि नियमों के अनुकूल चलने में उन्नति बतला रहे हैं, वे इन नियमों को सृष्टि के नियन्ता ईश्वर की आज्ञाएं हैं ऐसा अनुभव कर

चुके थे। और वेद चूंकि सृष्टि नियमों के बोधक हैं इसी लिये वे उपनयन संस्कार का एक महान् उद्देश्य वेद का पढ़ाना भी समझते थे।

(२) (क) (अर्थ के लिए देखो इसी संस्कार के 'संस्कृत प्रमाणोंका भाषार्थ) इस मन्त्र में बतलाया गयाहै कि ब्रह्मचारी इस बात का अनुसन्धान करे कि ईश्वर क्या प्रजापति है। इस अनुसन्धान से वह पूर्ण आस्तिक बन सकेगा—और अर्थ शास्त्र व 'पोलिटिकलइकोनौमी' विद्याका भी मर्म जान सकेगा।

(ख) ईश्वर क्यों सर्व का उत्पादक है, इस को भी वह समझता जावे ताकि उस की निष्ठा ईश्वर में स्थिर हो और " एवोल्यूशन ,, सृष्टिउत्पत्ति वा ब्रह्मांड रचना के गूढ सिद्धान्त को समझकर;जहां मानसिक तुष्टि प्राप्त करे वहां ईश्वरसत्ता का ज्ञान नेत्रोंसे दर्शन करे।

(ग)जलीय-शास्त्र में प्रवीण होने के लिये यत्न करे। जलका स्वरूप, उसका उपयोग जलों के भेद, वर्षा, बादल, कोहरा, ओस, बरफ, इत्यादि सब बातें जाने। नदी, नद, समुद्र का ज्ञान प्राप्त करे, कूप, तालाव, बावली, झरना, नल इत्यादि सब का ज्ञान प्राप्त करता हुआ इनके उपयोग को भी पूर्ण रीति से जाने।

(घ) वनस्पति शास्त्र का ज्ञानी होवे। अन्न, घास, वृक्ष, फूल, फल, लता, ओषधि आदि की उत्पत्ति, रक्षण तथा वृद्धि के लिये कृषिविद्या, कृषिकर्म और अनेक विद्याओं तथा साधनों का उपयोग करे।

(ङ) द्युविद्या का ज्ञानी होवे। द्युविद्या में आकाशस्थ सूर्य चांद तारे आदि चमकने वाले ग्रहआदि का समावेश होता है। ज्योतिः शास्त्र का पण्डित बने।

(च) पार्थिव विद्या—पृथिवी, उसके भेद, शक्तिभेद, चांदी, सोना, पत्थर, कोइला, रत्न तथा अनेक आकरज पदार्थों के गुण और उपयोग को जाने।

(छ) देव 'विद्या—अग्नि, विद्युत, वायु, वाष्प आदि अनेक दिव्य गुण युक्त भौतिक पदार्थ संबन्धी पदार्थविद्या तथा रसायनशास्त्र का ज्ञानी बने। और देव, विद्वान् लोगों की उन्नत्ति के साधन संबन्धी विद्या को जिसे " समाजशास्त्र ,, वा 'सोशियालोजी' कहते हैं जाने, तथा इतिहास (हिस्टरी) आदि का भी पण्डित हो, और इन्द्रियों तथा मनका समावेश भी देव शब्द में होता है। इस लिये तत् संबन्धी विद्या को भी जाने।

(ज) मनुष्य धर्म अर्थात् मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है, देश, काल, अवस्था वर्ण आदि भेद से सर्व कर्तव्यों, और सामान्य, विशेष, सर्व प्रकार के धर्मों (कर्तव्यों) को जाने। धर्मशास्त्र का पंडित बने और धर्माचरणसे "सर्व प्राणियों के लिये शान्ति फैलावे। अपने को और सबको परम सुख देने वाला धर्माचरण है ऐसा जाने और मनन आदि द्वारा निश्चय करे। शान्ति फैलाने वाला एक मात्र धर्मशास्त्र वा धर्म की विद्या ही है। धर्मज्ञ और धर्मात्मा बन कर मनुष्य जन्म को सफल करे।

यज्ञोपवीत संबंधी विवरण—

यज्ञोपवीत संस्कार में गुरु पहिले बालक को वस्त्र पहिनाता है फिर यज्ञोपवीत उसके ऊपर डालता है। यज्ञोपवीत, विद्याचिन्ह है इसलिये पुराने समय में ब्रह्मचारी अंगरखादि के ऊपर धारण कर के रखते होंगे। पारसी लोग व रोमन-कैथलक- पादरी लोग भी अपना २ यज्ञोपवीत वस्त्र के ऊपर ही धारण करते हैं। महाभारत में एक स्थल पर लिखा है कि:—

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुःशुक्लमाल्यानुलेपनः ॥

इसमें वृद्ध द्रोणाचार्य जी के श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत का वर्णन है। आज कल जो रीति चलगई है कि यज्ञोपवीत को कभी कुर्ते आदि किसी वस्त्र के ऊपर नहीं पहनना, यह रीति पहिले न थी इतना ही हमारा जनाने का अभिप्राय है।

इति उपनयन संस्कार
व्याख्या॥

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिः ॥

—:*:—:*:—:*:—

वेदारम्भ उसको कहते हैं-जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ॥

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न होसके अथवा करनेकी इच्छा न हो तौदूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ॥

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान करा के शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्ता अर्थात् पिता, यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् सामान्यप्रकरणोक्त विधि करके व्याहृति ४ चार और स्विष्टकृत् आहुति १एक; प्राजापत्याहुति १ एक मिलकर छः आज्याहुति भी बालक के हाथसे दिलानी । तत्पश्चात्:—

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि । एवं मा ँ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का०२ कं० ४ सू०२ ॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना तत्पश्चात् बालक, कुण्ड की प्रदक्षिणा करके "अदितेनुमन्यस्व०" इत्यादि ४ चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके बालक, कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रह कर, घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में ले:—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयास ँ स्वाहा ॥ १ ॥ पार०गृ० सू० कां० २ कं० ४ सू० ३ ।

अग्नि के मध्य में छोड़ देवे इसी प्रकार*दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े । पुनः "ओ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके "ओं अदितेनुमन्यस्व" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके, बालक,

* पार० गृ० सू० का० २ कं० ४ मं० ४ ।

वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के, वेदी के अग्नि पर* दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा:—

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥ १ ॥ ओं आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि॥२॥ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि॥३॥ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म-आपृण॥४॥य०अ०३ मं० १७॥ओंमेधां मे सविता आ ददातु॥५॥ ओंमेधांमे देवी सरस्वती आ ददातु ॥ ६ ॥ ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ।७। पार० गृ० सू० का० २ कं० ४ सू० ८।

इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुखस्पर्श करना, तत्पश्चात् बालक—†

† ओं वाक् म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से मुख

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार ॥

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र ॥

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों कान ॥

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥ आश्व० गृ० सू०अ० १ क०२१सू०४

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बालक के जानु को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के संमुख पश्चिमाभिमुख बैठे ॥

बालकोक्तिः—अधीहि भोः, सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ कं० २१ सू० ४।

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक मन्त्र का

---

* पार० गृ० सू० का० २ कं० ४ सू० ७।

† इस शिष्टाचरित, सूत्रकारान्तर प्रदर्शित, अङ्गालम्भ को पार० गृ० सू० का० २ कं० ४ में परिशिष्ट रूप से पारस्कराचार्य मानते हैं। हे ईश्वर (मे) मेरी (वाक्) वाणी (आप्यायताम्) अच्छी तरह बढ़े, शेष मन्त्र स्पष्टार्थक हैं।

मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंध पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ॥

प्रथम बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।

इतना टुकड़ा एक २ पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।

एक २ पद का यथावत् धीरे २ उच्चारण करवा के, तीसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ य० अ० ३६—३।

धीरे २ इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इस का अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का, जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उस को हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्र,चोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इस से भिन्न किसी को उपास्य इष्टदेव उस के तुल्य वा उस के अधिक नहीं मानना चाहिये। इसप्रकार अर्थ सुनाये पश्चात्—

ओं(१) मम व्रते ते हृदयं ते दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥१ ॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य्य पूर्ववत् (२) दृढ़ प्रतिज्ञा कर के —

ओं (३) इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० २ सू० ८ तथा सा० मं० ब्रा० ख० ६ म० २७ ॥

इस मन्त्र को बुलवा के आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना के रक्खी हुई मेखला* को बालक की कटि में बांध के—

---

* ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की क्षत्रियको धनुष संज्ञक तृण वा वल्कलकी और वैश्यको ऊन वा शण की मेखला होनीचाहिये। पार० गृ० सू० का० २ क० ५ सू० २१-२४।

ओं * युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० २ सू० ९। (ऋ० म० ३ अ० १ स० ८ मं० ४)

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन दो अंगोछे और एक उत्तरीय वस्त्र और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे, और उन में से एक कौपीन एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य, दण्ड † हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

ओं यो मे दंडः परापतद् वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनराददं आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० २ स० १२

इस मंत्र को बोल के आचार्य के हाथ से दंड ले लेवे तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ † ॥ १ ॥ अपोऽशान ॥ २ ॥ कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं, गृहणान्तं वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥ १२ ॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसं रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय। ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचन-

---

* इस मन्त्र का अर्थ पूर्व-उपनयन प्रकरण में आच का।

† ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा विल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक दंड प्रमाण है और वे दंड चिकने सूधे हों अग्नि में जले, टेढे, कीड़ों के खाये हुये न हों और एक २ मृगचर्म उन के बैठने के लिये एक २ जलपात्र एक २ उपपात्र और एक २ आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये। पार० गृ० सू० का० २, क० ५ सू० २५—२७। अठाईसवां सूत्र है—" सर्वै वा सर्वेषाम् " सब प्रकार के दंड सब के पास हो सकते हैं।

† असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम संबोधनान्त उच्चारण करे।

द्रव्याणि मा सेवस्व ॥१६॥ नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥२०॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥२२॥

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥१॥ नित्यसन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥२॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर॥४॥आचार्यके अधीन रहके नित्य सांग वेद पढ़॥५॥एक२वेदके लिये बारह२ वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जबतक सांगोपांग चारों वेद पूरे होवें तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्य के अधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर ॥७॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥८॥ आठ * प्रकार के मैथुन को छोड़ देना ॥६॥ भूमि में शयन करना, पलंग आदि पर कभी न सोना ॥१०॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अंजन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक,का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रिके चौथे प्रहर में जाग आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥ क्षौर मत करा ॥१४॥ मांस, रूखा, शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥ गांवमें निवास, और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशंका के बिना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य स्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्ता कर ॥१८॥ तैल उबटनादि से अंग मर्दन, अतिखट्टा अमली आदि, अतितीखा— लालमरिची आदि, कसेला—हरड़े आदि, क्षार-अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १६ ॥ नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥ सुशील, थोड़ाबोलने वाला सभा में बैठने योग्य गुण गृहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान,सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण,प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना, विद्या सचय, जितेन्द्रिय रहना आदि, ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के

---

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकान्तवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है।

कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्डकी प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता, (१) पिता, बहिन. भाई मामा, मोसी, चाचा आदि से ले के जो भिक्षा देने में नकार न करें उनसे भिक्षा * मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ासा अन्न ले के वह सब भिक्षा बालक को देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिए रख छोड़े तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा वामदेव्यगान करना चाहिये, तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे। (इसके आगे कुछ विधि वैदिकप्रेस में मुद्रित मूलसंस्कारविधि में देख लेनी चाहिये) फिर बने हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उस में घी मिलाः—

ओं(†) सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषꣳस्वाहा॥ इदं सदसस्पतये—इदन्न मम ॥ १ ॥ य० अ० ३२ मं १३ ।

(२)तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्॥ इदं सवित्रे-इदन्न मम ॥ २ ॥ य०अ० २२ मं० ६ ॥

ओं ऋषिभ्यःस्वाहा ॥इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवें तत्पश्चात् व्याहृति आहुति ४ चार और (ओं त्वन्नो०) इन ८ आठ मन्त्रों से आज्याहुति ८ आठ मिल के १२ बारह आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य्य का वन्दन करे और आचार्य्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य !॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर

---

(१) मूल भाषा में लिखी सब विधि गोभिलीय गृ० सू० प्र० २ का० १० सू० ४३ आदि में लिखी है ।

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो " भवती भिक्षां ददातु " और क्षत्रिय का बालक " भिक्षां भवान् ददातु„ और स्त्री से"भिक्षां भवती ददातु„वैश्य का बालक"भिक्षां ददातु भवान्„ और भिक्षां ददातु भवती „ ऐसा वाक्य बोले । पार० गृ० सू० का० २ क० ५ सू० १—४ ।

(†) जातकर्म प्रकरण में इस मन्त्र का अर्थ कर आए । इन तीन मन्त्रों से ३ आहुतियां देने में प्रमाण देखो—आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २२ सू० । ११ । १२ । १४ ।

(२) इसका अर्थ पूर्व मूल में ही है ।

मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठके करें तत्पश्चात् हस्तमुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनका यथा योग्य भोजन करा स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तःकुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

ऐसा आशीर्वाद दे के अपने २ घर को चले जायें तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ तीन दिन तक भूमि में शयन करे प्रातः सायं बालक को (ओमग्ने सुश्रवः ०) इस मन्त्र से समिधा होम और मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति ०) इत्यादि मन्त्र से स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारीके हाथ से करवावे और ३ तीन दिन तक, क्षारलवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरुके समीप विद्याभ्यास करनेके समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य्य भी करे। इसके आगे मूल संस्कार विधि में लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों का पता ऐसा होना चाहिये , अथर्व० का ०११। अनु० ३ सू० ५ मं० ३ । ४ । ६ । १७ । १८ । २४ ॥

इसके बाद अन्य विषयों को देखने के लिये वैदिक प्रेस अजमेर की छपी मूल संस्कार विधि देखो।

इति वेदारम्भः

वेदारम्भ संस्कार में आये हुए संस्कृत प्रमाणों का भाषार्थ ॥

(पृष्ठ १ में)
हे (अग्ने) अग्ने ! परमेश्वर ! तू (सुश्रवः) बड़ा यशस्वी है, इस लिए (मां) मुझे भी (सुश्रवसम्) बड़ा यशस्वी (कुरु) कर। हे (सुश्रवः, अग्ने) अच्छे यश वाले ईश्वर (यथा, त्वम्) जैसे तू (सुश्रवाः) अच्छे यश वाला (असि) है। हे (सुश्रवः) शोभन यशस्वी ! (एवम्) ऐसेही (माम्) मुझे (सौश्रवसम्) सुन्दर यशवाला (कुरु) कर। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! (देवानाम्) जल आदि देवताओं के बीच में (त्वम्) तू (यज्ञस्य) यज्ञ हवनादि क्रिया और शिल्पविद्या, आदि के (निधिपाः) कोश का रक्षक (असि) है (एवम्, अहम्) ऐसेही मैं (मनुष्याणाम्) मनुष्यों के बीच में (वेदस्य) वेदविद्या—ज्ञान सम्बन्धी सब विद्या के (निधिपाः) कोश का स्वामी, ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊँ ।

(बृहते) बड़े (जातवेदसे) ज्ञान देने वाले ईश्वर (अग्नये) अग्नि के लिए, मैं —ब्रह्मचारी (समिधम्) समिधा—हवनार्थ लकड़ी को (आहार्षम्) लाया हूं। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! (यथा, त्वम्) जैसे तू (समिधा, समिध्यसे) लकड़ी से प्रदीप्त होती है—बढ़ती है (एवम्) ऐसेही (अहम्) मैं (आयुषा) आयुसे (मेधया) धारणावती बुद्धिसे (वर्चसा) तेज से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मोपासनासम्बन्धी तेज से (समिन्धे) प्रदीप्तहोऊं—बढूं। (मम) मेरा (आचार्यः जीवपुत्रः) आचार्य,जीता रहे पुत्र जिसका ऐसा हो और(अहम्) मैं (मेधावी) स्वच्छ बुद्धि वाला (असानि) होऊं और (अनिराकरिष्णुः) किसीका तिरस्कार न करने वाला (यशस्वी) यशवाला (तेजस्वी) तेजवाला (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्म सम्बन्धी तेज वाला अर्थात् आत्मिक बल वाला (अन्नादः) अन्नादि पदार्थों का उपभोग करने वाला, ईश्वर करेकि (भूयासम्) होऊं ॥

(पृष्ठ २ में)

(१) हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! तू (तनूपाः, असि) शरीर का रक्षक है, अतः (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की भी (पाहि) रक्षा कर (२) हे (अग्ने) अग्ने ! तू (आयुर्दाः असि) आयु देने वाला है अतः (मे) मेरे लिए (आयुः) आयु को (देहि) दे (३) हे (अग्ने) अग्ने ! तू (वर्चोदाः, असि) तेज देने वाला है अतः (मे) मेरे लिए (वर्चः) तेज (देहि) दे(४) हे [अग्ने] अग्ने ! [यत्, मे] मेरा जो (तन्वाः, ऊनम्) शरीर का, न्यूनांश है (मे) मेरे लिए [तत्] उसे [अपृण] पूरा कर। (५) [सविता] सर्वोत्पादक ईश्वर (मे) मेरे लिए (मेधाम्) धारणावती बुद्धिको (आ, ददातु) अच्छे प्रकार देवे [६] (सरस्वती, देवी) ज्ञान वाली ईश्वर शक्ति० शेष पूर्ववत्। [७] [अश्विनौ, देवौ] अध्यापक और उपदेशक विद्वान् जो कि [पुष्करस्रजौ] कमल की माला से अलङ्कृत हों अर्थात् सुपूजित हों [मे] मेरे लिए [मेधाम्] स्वच्छ बुद्धि को [आ, धत्ताम्] देवें ॥

(अग्निः) परमात्मा (मयि २) मुझ में ३ (मेधां, प्रजाम्, तेजः) धारणावती बुद्धि, कुटुम्बिवर्ग, और तेज को (दधातु) धारण करें । ३ जगह आए "मयि" शब्दका ३ वस्तुओं के साथ क्रिया सहित सम्बन्ध करलेना चाहिए । (इन्द्रः) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मा (इन्द्रियम्) ज्ञान साधन शक्ति को ० शेष पूर्ववत् । (सूर्यः) सूर्यवत् प्रकाशमान परमात्मा (भ्राजः) दीप्ति—चमक को ० शेष पूर्ववत् । हे (अग्ने) पूज्य परमेश्वर (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है (तेन) उस तेज से (अहम्) मैं (तेजस्वी) तेजवाला (भूयासम्) होऊं । (वर्चः) सामर्थ्य० शेष पूर्ववत् । (हरः) अपहरण करने बिगाड़ने की शक्ति वा क्रोध शक्ति ० शेष पूर्ववत् ॥

(भोः) हे आचार्य ! (अधीहि) पढ़ाइए ! इस समय अन्य कुछ नहीं किन्तु (भोः) हे आचार्य ! (सावित्रीम्) गायत्री मात्र का (अनुब्रूहि) उपदेश कीजिए । यहां आश्वलायन गृ० सू० में जानु टेकनेकी तथा बालक के हाथ पकड़ने की मूलभाषोक्त सब विधि है । यह भी लिखा है कि एक २ पाद करके वा ऋचा का आधा २ भाग करके, वा सब गायत्री को एक वार वा (यथाशक्ति वाचयीत, आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २१ सू० ६) यथाशक्ति—जितना बालक बोलसके उतनाही उतना कहलवा कर उपदेशकरे । ऐसाहो पारस्कर गृ०सू० का० २ क० ३ सू० ५ में लिखाहै । गोभि०गृ०सू० प्र० २ का० १० सू० ४० में इतना विशेष है कि महा व्याहृतियों—भूः, भुवः, स्वः इन तीनों को पृथक् २ बोलकर "ओं" कार अन्त में लगादेना चाहिए ।

[पृ० ३ में]

(१) यह मन्त्र पूर्व—उपनयन प्रकरण में आया हैं, वहीं इसका अर्थ कर दिया ।

(२) पूर्ववत्—अर्थात् हृदय देश में हाथ धरके ।

(३) इस मन्त्र में दोबार आया हुआ "इयम्" "इयम्" शब्द आदि और अन्त में वाक्यालंकार के लिए है, यह पारस्कर गृ० सू० के भाष्यकार गदाधराचार्य का कथन है (इयम्, मेखला) यह मेखला—ब्रह्मचारी को कटि में बांध ने योग्य मुञ्ज आदि की बनी हुई रस्सी (स्वसा, सुभगा) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती और (देवी) सुन्दर चमकने वाली है, । और (दुरुक्तं, १) परिबाधमाना) निन्दा युक्त वचन को सब तरफ से हटाती हुई और (वर्णं, पवित्रं, पुनती) वर्णभाव को पवित्र करती हुई और (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान वायु को ठीक रखने के कारण (बलम्, आदधाना) बलको देने वाली होकर (इयम्) यह मेखला (मे) मुझे (आअगात) अच्छी तरह प्राप्त हुईहै । यह मन्त्र कुमार को ही बोलना चाहिए, ऐसा अनेक आचार्योंका मत है ॥

(यः, दण्डः) जो दण्ड (मे, पराऽपतत्) मेरे ब्रह्मचारी के संमुख आया हुआ है जोकि (वैहायसः) आकाश में ऊंचा खड़ा हुआ है और (अधि, भूम्याम्) भूमि में स्थितहै (अहम्, मैं (तम्) उस दण्ड को (पुन.) विशेषरूप से (आ, ददे) ग्रहण करता हूं । किस लिए ! (आयुषे) जीवन की रक्षा के लिए (ब्रह्मणे) वेद ग्रहण के लिए (ब्रह्मवर्चसाय) वेद के प्रचार से उत्पन्न उत्कृष्ट तेज के लिए ॥

---

(१) दुरुक्तम्—व्रात्यनामदुरपवादवचनमिति सत्यव्रत सामश्रमी ।

ब्रह्मचर्याश्रम के उपदेश की ऐसी ही विधि पार० गृ० सू० का०२ क० ३ * तथा ५ में विद्यमान हैं, और ऐसी ही कई बातें आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २२में विद्यमान हैं। ब्रह्मचारियों के बहुत से कर्तव्य गोभिलीय गृ० सू० प्र० ३ का० १ सू० १५ से २७ तक, और मन्वादि स्मृतियों में लिखे हैं उन्हीं के अनुसार उपदेशात्मक ये २२ सूत्र हैं। उपरि लिखित आश्वलायन गृ० सू० के अनुसार ६ ठे सूत्रमें " गृहाण वा " की जगह " ग्रहणान्तं वा ,, ऐसा पाठ होना चाहिये।

(पृ० ६) (भोः) हे आचार्य! (अनुकगोत्रोत्पन्नः, अहम्) अमुक गोत्र में उत्पन्न हुआ मैं (भवन्तम्) आप के प्रति (अभिवादये) प्रणाम करता हूं।

हे (सोम्य) शान्तिशील! ब्रह्मचारिन्! तू (आयुष्मान् विद्यावान्) प्रशस्त आयुवाला और सुन्दर विद्यावाला ईश्वर करे कि (भव) हो।

(पृ० ७) (हे बालक!) हे बालक! ब्रह्मचारिन्! (त्वम्) तू (ईश्वर कृपया) ईश्वर की दया से (विद्वान्) पण्डित (शरीरात्मबलयुक्तः) शरीर और मानसिक बल से युक्त हुआ और (कुशली) सुखी (वीर्यवान्) पराक्रमी (अरोगः) रोगरहित होकर (सर्वाः, विद्याः, अधीत्य) सब विद्याओं को पढ़कर (अस्मान्, दिदृक्षुः, सन्) हमको देखने की इच्छा करता हुआ (आगम्याः) ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो—गुरुकुल से लौट कर हमें मिले।

इति॥

---

*यहां गदाधराचार्य ने लिखा है कि "आज्यमेकपलंग्राह्यं दध्नस्त्रिपलमेव च॥ मधुनः पलमेकं तु मधुपर्कः स उच्यते। एक पल—४ तोला घृत, दही १२ तोला और मधु—शहद ४ तोला, इन सब को मिलाने से "मधुपर्क,, बनता है। यही बात विवाह प्रकरण मूल संस्कारविधि पृष्ठ १३२ (टिप्पणी) में लिखी है॥

व्याख्या ॥

पुराने समयमें माता पिता संस्कृत बोलतेथे; उससमय जब वेदारंभ संस्कार कियाजाता था तो प्रथम गायत्रीमंत्र सिखाने में आताथा। आजकल हिंदी बोलने वाले बच्चे को यदि कोई हिंदी का दोहा ८ वर्ष की आयु में सिखाया जावे तो वह बहुत कुछ समझ सकता है और एक वा दो वार उस के अर्थ बतलाने पर उस के मनपर उस दोहे के अर्थों का प्रभाव पड़ सकता है। आज कल हमें वेदारंभ के समय गायत्री मंत्र सिखाना कठिन प्रतीत होता है परन्तु जिस समयमें देशभरमें सब नरनारी संस्कृत बोलते थे उस समय कुछभी कठिनाई बच्चे को नहीं हो सकती थी।

महर्षि दयानन्द जो ने जो शिक्षण प्रणाली लिखी है। उस में अष्टाध्यायी को पहले लिखा है। परन्तु पढ़ने वालों को चाहिये कि अष्टाध्यायी पढ़ाने से पूर्व वा उस के साथ बोल चाल की संस्कृत सचित्र पुस्तकें छात्रों को पढ़ावें और उनसे संस्कृत में बात चीत किया करें तथा रात्रीको आध घंटे के लिये कोई बोध दायक कहानी वा वार्ता कहाकरें। पुराने समय में ८ वर्षतक घर में बच्चा इतनी संस्कृत बोलचाल द्वारा सीख कर आता था कि आज कल एक साधारण पंडितभी उतनी संस्कृत बोल चाल द्वारा नहीं सीखसकता। इस लिये जो लोग यहशंका करते हैं कि गायत्री मंत्र से संस्कार का आरम्भ नहीं करना चाहिये वा ऋषियों ने क्यों ऐसा रक्खा वह इस बात को भूल जाते हैं कि यह पद्धति उस समय की थी जबकि लोगों की मातृ भाषा संस्कृत हुआकरती थी। इस समय गायत्री मन्त्रका उपदेश करना मानो पुरानी प्रथाका पुनः प्रचार करना है परन्तु यह बात तभी पूर्ण रूप से सफल होसके गी जब आज कल संस्कृत पढ़ने वाले बच्चोंको आरंभसे ही संस्कृत भाषी बना ने का यत्न किया जावे।

पुराने समय में गायत्री मन्त्रसे आरम्भ कर के अङ्ग उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़ानेकी मर्य्यादा थी।

इस संस्कार के समयसम्बन्धी तीन विकल्प लिखे हैं (१) जिस दिन उपनयन हो उसी दिन यह संस्कार करना (२) उस से दूसरे दिन करना (३) उपनयन से एक वर्ष के भीतर किसी दिन करना। यह तीनों प्रकार भिन्न २ रीति के सुविधा सूचक हैं।

विधिः—प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान करा कर शुद्धवस्त्र पहिना पिता और यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेकर वेदीपर बैठे और साधारणहोमकी १६ आहुति देने के पश्चात् प्रधान आहुति और ६ आज्याहुति भी दिलावे फिर "अग्ने सुश्रवः" इत्यादि वचन पाठ कर के बालक* वेदी की अग्नि को इकट्ठा करे ऐसा विधान है।

* विवरणः—बालक से अभिप्राय लड़का लड़की दोनों से हो सकता है। यदि लड़की का यहां संस्कार हो तो उस मे आचार्याणी (आचार्य) होमादि करावे।

मंत्रकी व्याख्याः—

(क) इसमन्त्रमें अग्नि शब्द पहिले ईश्वर फिर भौतिक अग्निके अर्थोंमें आयाहै। पहिले भाग में ईश्वर को यशस्वी तथा श्रवण शक्तिमय मानकर उससे यश तथा श्रवण शक्ति की प्रार्थना कीगईहै। ईश्वरने जो प्रत्येक मनुष्य के मनमें यशकी कामनारक्खीहै यह इस लिये कि वह अपनी तथा पराई उन्नति करसके।

बच्चों में यश सुनने की चेष्टा बहुत देखने में आती है छोटे बच्चे ने घर में जब अच्छा कपड़ा पहिना है तो मा बाप से पूछते हैं कि कैसा है और यथार्थ स्तुति सुनने पर प्रसन्न होते हैं। अच्छा काम करने पर अच्छा कहलाने का बच्चों को शौक होता है।

यह जरूरतहै कि अध्यापक लोग बच्चों को यह समझाते रहें कि जिस तरह तुम अपना यश सुनकर प्रसन्न होते हो उसी तरह पर जब तुम्हारे किसी सहपाठी को यश प्राप्तहो तो उसको सुनने परभी प्रसन्न रहो और ईर्ष्या द्वेषसे उसकोबुरा न कहो। जिस प्रकार प्रत्येक बालक खाने का अधिकारी है। उसी प्रकार मानसिक यश प्राप्ति काभी अधिकारी है। जब हमदूसरे मनुष्यको खाते देखकर यहसमझतेहैं कि उसको भी खाने का अधिकार है और उस पर ईर्ष्या नहीं करते तो जिस समय किसी दूसरे का यश सुनें तो हमें कहना चाहिये कि उसने अच्छा कर्म किया तो उस को यह फल मिला। हमको कोई भी अच्छे कर्म करने से रोकता नहीं यदि हम भी यश चाहते हैं तो हमको भी अच्छा कर्म करना चाहिये। जो मनुष्य आप अच्छा कर्म न करते हुए केवल दूसरे यशस्वी मनुष्यों को बुरा कहने से अपने मन को शांत करते हैं वह मनुष्य धर्मात्मा नहीं हैं।

योरुप के वे विद्वान् जिन्हों ने बधिर और मूक छात्रोंके लिये पाठशाला निकाली हैं और जो संकेत द्वारा शिक्षण देते हैं वे अनुभव से लिखते हैं कि विद्योपलब्धि का प्रथम साधन श्रोत्रेन्द्रिय है वे लिखते हैं कि जो जन्मसे पूर्ण बधिर है वह जन्मभर मूक भी रहेगा। इस लिये ब्रह्मचारीका प्रथम कर्त्तव्यहै कि वह चक्षु इन्द्रियके समान कर्णेन्द्रिय की भी रक्षा करता रहे।

(ख) मंत्र के पिछले भाग में दर्शाया गया है कि भौतिक अग्नि यज्ञ का कोश रक्षक है। जो लोग समझते हैं कि आग में सामग्री डालने से वह नष्ट हो जाती है वे लोग सूक्ष्मदर्शी नहीं। आग में डाली हुई सामग्री सूक्ष्मरूप धारण करके सुरक्षित हो जातीहै नष्ट नहीं होती। उसी प्रकार शब्द सुनकर विचार वा मनन करने से जो बालक उसका सूक्ष्म रूप मन में धारण करलेता है वह विद्या का मनुष्यों के बीच में रक्षक है। जिस के पास बहुत पुस्तकें हैं वह विद्या का रक्षक नहीं किन्तु वह जिसने पुस्तकों का सार अदृश्य रूप से मन में धारण किया हुआ है। "विद्या कंठ और पैसा गंठ,, यह जनश्रुति इसी लिये बनी है।

आजकल युरूप में पुस्तकों का बहुत भारी उपयोग किया जाता है और इसी लिये लोगों की स्मृति न्यून हो गई है और यदि पुस्तकें नष्ट हो जावें तो मानो विद्याही नष्ट होगई। स्मृति वर्द्धक भाषण(मेमोरी लेक्चरस्)नामी अनेक पश्चिमीय पुस्तकोंमें आज कल लिखा है कि मर्य्यादा से अधिक पुस्तकों द्वारा पढ़ने से मनुष्यों की स्मृति न्यून हो गई है और वे स्पष्ट लिखते हैं कि "प्राचीन ब्राह्मणों की शैली विद्या पढ़ाने की बहुत उत्तम थी" उससे सार वस्तु मनमें रह जाती थी ॥

ऋषियों की शिक्षण प्रणाली को "प्रवचन" कहते हैं। विशेष करके विना पुस्तकोंके पढ़ाने की वह शैली थी। उसी शैली के प्रचारक ऋषियों ने शिक्षण पाठावली में जितने ग्रन्थ रखे थे उनमें अधिक ग्रन्थ सूत्ररूप से होते थे, ताकि बालकों को याद रखने में बहुत श्रम नहो। यह सच है कि पुराने समयमें इन सूत्रों की पूरी २ व्याख्या उनको सुनाई जाती थी और वह समझ बूझकर सूत्र कंठ करते थे न कि तोते की न्याईं। कई यूरुप के विद्वान् ऐसी आशंका करदेते हैं कि पुराने समय में लिखना सिखाया ही नहीं जाता था और पुस्तकें होती ही नथीं, परन्तु इन आशंकाओं का उत्तर भली प्रकार उनके देशस्थ अन्य विद्वान् अब दे रहे हैं और मुक्त कण्ठ से कह रहे हैं कि उस समय लिखने तथा पुस्तकों के उपयोग करने की भी रीति थी, नहीं तो अष्टाध्यायी से ग्रन्थ ही कैसे बनते और ब्राह्मण ग्रन्थ वेद की प्रतीक देकर भाष्य कैसे करते! और व्याकरण तथा संस्कृत कोश में वह सब शब्द विद्यमान हैं, जो लिखने और पुस्तकों संबन्धी होने चाहिये। हां, यह सत्यहै कि लिखने और पुस्तक पर से पढ़ानेकी अपेक्षा अधिक काम पहिली अवस्था में "मौखिक शिक्षण" (प्रवचन) द्वारा लियाजाता था और इस उत्तम रीति के कारण पुराने विद्वान् वेदादि सत्य शास्त्रों के शब्दार्थ को मन में धारण करते हुए उनके रक्षक बनते थे और अब युरूप में भी इस शैली का महत्व स्वीकार होचका है और वहां अब आये दिन नये सुधार इस क्रम को लक्ष्य में रखकर किये जारहे हैं।

* जो लघु पुस्तक अंगरेज़ी में स्मृतिवर्द्धक भाषण (मेमोरी लैक्चर) नाम से बिकती है उस में पुराने ब्राह्मणों की शिक्षण पद्धति की महिमा वर्णन की गई है और इस प्रकार की अनेक पुस्तकों के पढ़ने से स्मृतिवृद्धि संबन्धी यह चार मुख्य—नियम मिलते हैं।

(१) एकाग्रमन से पढ़ना वा सुनना।
(२) पढ़े वा सुने हुए को समझना।
(३) पढ़े वा सुने हुए का अनेक वार पाठ करे, ताकि वह मन में रह जावे। गणित हो तो पाटी पर अनेक वार अभ्यास करे।
(४) पढ़ने वा सुनने में सब से पहिले रुचि उत्पन्न करना ॥

---

* श्रीमान् बा० तेजराम साहेब सब डिविज़नल ओफिसर करनाल ने यह पुस्तक मंगाई थी।

उत्तम शिक्षकों को योग्य है कि जो कुछ वह पढ़ावें वा सुनावें उसको पहिले रोचक बनावें वा कोई तत्संबन्धी महत्व प्रकाशिनी रोचक भूमिका बांधें। जब विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न होजावे तब समझ लें कि उनका मन एकाग्र हो चला है। जो शब्द सुनाए वा पढ़ाए जावें, उनके अर्थ अनेक प्रत्यक्ष दृष्टान्त वा चित्र वा रूप आदि दिखा २ कर उनकी समझ में उतारने चाहियें। गणित की भूल सुधारने के लिये शिला—पाटी (स्लेट) पर अनेक वार अभ्यास कराने की ज़रूरत हैं। वाचन की भूल सुधारने के लिये अनेक बार मुख पाठ वा अभ्यास अपने सामने कराने की ज़रूरत है। भूल सुधारने के लिये जो घूंसा वा डंडा उपयोग करते हैं वह अध्यापक सर्वथा अनुभव रहित हैं वह बालक की प्रकृति वा मनुष्य की मानसिक वृत्तियों को अनुभव द्वारा जानते ही नहीं। मारने से बच्चे के मन, उत्साह, बुद्धि आदि गुण सब मरजाते हैं, वह कभी मेधावी बन नहीं सकता। पढ़ने वा न समझने की भूल को अपराध समझना ही भूल है। पढ़ने की भूल का दूसरा नाम "अपूर्णता" है। अपूर्णता को दूर करके "पूर्ण" बनाने का यत्न करना चाहिये और वह तीन काल में गाली, वा मार से नहीं हो सकता।

इस मंत्र से गुरु, बालक से अग्नि इकट्ठी कराता है इससे बालक तो यह समझे कि मुझे मानसिक वृत्तियां एकाग्र करनी है और गुरु समझता रहे कि शिक्षण देते समय रुचि वा एकाग्रता उत्पन्न करने की मुझे जरूरत है।

मनकी एकाग्रता तथा उत्साह

फिर मंत्र में अग्नि को निधिपा (कोश रक्षक) कहा गया है। जो अग्नि बुझगई हो उसमें सामग्री डालने से क्या लाभ! इसी प्रकार अध्यापक को समझना चाहिये कि बालकों के मानसिक उत्साह रूपी अग्नि को हन उनको गाली द्वारा अपमान करने वा मार पीट वा क्रोधमय चेष्टा से बुझा न देवें। एकाग्र वा प्रचण्ड अग्नि "निधिपा" हो सकती है इस प्रकार ब्रह्मचारियों के एकाग्र और न बुझे हुए अर्थात् उत्साहित मन में ही विद्यारूपी सामग्री डाल कर उसको बालक मनन क्रिया से सूक्ष्म बना मनमें सुरक्षित धारण कर सकते हैं॥

बालक के हाथ से अग्नि इस लिये इकट्ठी कराई जाती है कि वह एकत्रित की हुई अग्नि की शक्ति को अनुभव कर सके और जाने कि किस प्रकार एकत्रित की हुई अग्नि अधिक प्रकाश को धारण करने से निधिपा है उसी प्रकार उसका एकाग्र तथा उत्साहित मन विद्या के प्रकाश का अधिक धारण करने वाला होने से वेद का निधिपा बने। प्रकाश दोनों हैं। एक अग्नि के एकत्रित करने से अधिक होता है दूसरा जो विद्यारूपी है, वह मनके एकाग्र करने से अधिक होताहै।

"तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करे," कुण्ड कर्म काण्ड का बोधक है। उसकी प्रदक्षिणा करना मानो यह प्रतिज्ञा करनाहै कि शुभ कर्मों को वह आरम्भ करके छोड़ नहीं दिया करेगा, किन्तु उनको समाप्त करके छोड़ेगा। बच्चों में मनकी चंचलता के कारण प्रायः एक काम को आरम्भ करके छोड़ देने की रुचि

होता । नीतिकारों ने कहा है और प्रत्यक्ष यह देखने में भी आता है कि साधारण मनुष्य विघ्नों के भय से शुभ कर्म आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम मनुष्य आरम्भ करके विघ्नों के आने पर काम छोड़ देते हैं। उत्तम मनुष्य सोच विचार कर कर्म आरम्भ करते और विघ्नों से न घबड़ाते हुए आरम्भ किये हुए कार्य को अंत पर्यंत करके सिद्धि को प्राप्त होते हैं । पठन पाठन आदि सब शुभ कर्म यज्ञ कहलाते हैं।

विद्यार्थी जब अपने आप अभ्यास करने बैठते हैं तो कुछ क्षण अभ्यास का आरम्भ बड़ी रुचि, उत्साह और प्रेम से करते हैं फिर अशुद्धि, भूल वा गलती हुई तो पुस्तक वा शिलापाटी (सलेट) छोड़ देते हैं। विद्यार्थियों के लिये भूल वा अशुद्धि भारी विघ्न है । जो बालक बार२ अभ्यास करते जाते हैं जब तक कि वे गणित के प्रश्न ठीक नहीं निकाल लेते वा वाचन अथवा लेखन सुधार नहीं लेते वे बालक स्तुति के योग्य हैं। Try Try try Again (फिर फिर फिर यत्न करो) यह एक मात्र सिद्धि (कामयाबी) का गुर है । इसी उच्चभाव को मनपर अंकित करने के लिये ऋषिलोग कुण्डकी प्रदक्षिणा कराते थे और समझाते थे कि सिद्धि का गुर किसी शुभकाम वा अभ्यास को आरम्भ करके अन्ततक पहुंचाना है न कि बीच में विघ्नों से घबड़ाकर छोड़देना । जो बालक अभ्यास करते समय मन में यह कहते हैं कि हम इस अभ्यास को पूरा कर के छोड़ेंगे वह समाप्ति पर आनन्द और यशके भागी बनते हैं। कई बालक ऐसे दृढ मन के होते हैं कि जो अभ्यास की बात उन की समझ में नहीं आती वह कई दिनों तक अपने अध्यापकों वा अन्य विद्यार्थियों से बराबर पूछते हैं और फिर अनेकबार उसका अभ्यास स्वयं करके उस पर जय प्राप्त करते हैं Jack of all and master of none यह अंगरेजी की जनश्रुति है इसका अभिप्राय यही है कि जो मनुष्य सब विषयों का थोड़ा २ ज्ञान रखते हैं वह किसी एक विषय में पूर्ण प्रवीण नहीं होते। इस लिये एक विषय में पूर्ण प्रवीण होना अनेक विषयों के अल्पज्ञानी होने से उत्तम है । पर एक वा अनेक विषयों में पूर्ण वे ही होसक्ते हैं जो आरम्भसे लेकर अन्त पर्यन्त कामको समाप्त करने की रुचि रखते हैं वेही सिद्धि को प्राप्त होते और यश के भागी बनते हैं, दूसरे नहीं। सत्य तो यह है कि सिद्धि और यश का एक मात्र साधन निरंतर पुरुषार्थ है

विद्यावृद्धिका गुर

प्रदक्षिणा के अनन्तर बालक कुंडके चारों ओर जल सेचन कर खड़ा होकर तीन बार निम्न लिखित मन्त्र बोल घृत में डुबो एक २ समिधा वेदीस्थ अग्नि के मध्य में छोड़े, मन्त्र यह है— ओम् अग्नये समिधमाहार्षं ....

(पूरा मन्त्र तथा इस के अर्थ इसी संस्कार के संस्कृत प्रमाणों के भाषार्थ भाग में देखिये)

(व्याख्या) आजकल लोग शिक्षण पद्धतिके रहस्य (गुर)को प्रायः भारतवर्ष में भूल गये हैं । जिस साधारण मास्टर से पूछो कि विद्यावृद्धि का गुर क्या है । तो वह कहेगा डंडा ।

युरोप के शिक्षण शास्त्रियों ने निश्चय किया है कि बालकों को डराने धमकाने, गाली देने, डंडे मारने से विद्यावृद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं और इस विषय की अनेक पुस्तकें उन्होंने लिखडालीं। पुराने समय में आर्यऋषि विद्यावृद्धि के रहस्य को इस उत्तमता से जानते और उपयोग में लाते थे कि युरोप के शिक्षण शास्त्री भी उन की मेधा पर चकित होजाते हैं।

पूर्वोक्त मन्त्र कहता हुआ बालक घी में डुबोकर समिधा छोड़ता है। मन्त्र में सीधे शब्दों में कैसा उच्चभाव दर्शाया गया है—

(क) ब्रह्मचारी कहता है कि हे ईश्वर! आप बड़े ज्ञानदाता हैं, मैं भौतिक अग्नि के लिये समिधा लाया हूं और जिस प्रकार भौतिक अग्नि समिधा से बढ़ता है उसी प्रकार मैं आयु, मेधा, पशु (धन) और ब्रह्मतेज से बढ़ूं।

(ख) मेरा आचार्य जीवित रहने वाली सन्तान से युक्त हो।

(ग) मैं उत्तम बुद्धि वाला, (घ) किसी से घृणा न करने वाला (ङ) यशस्वी तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी और अन्न को भोगने वाला बनूं।

ब्रह्मचारी के लिये जितनी बातों की आवश्यकता है उनकी वृद्धि का गुर दृष्टान्त रूप से यहां पर यह बतलाया गया है कि यह सब पदार्थ सहज से ऐसे बढ़ें जैसे अग्नि समिधा पाकर सहज में बढ़ती है।

समिधा अग्नि को बुझाने वाली वस्तु नहीं, किन्तु उसको उत्साहित करने वाली, सहायता करने वाली और प्रदीप्त करने वाली वस्तु है। हवन कुण्ड की एकत्रित की हुई अग्नि के समान ब्रह्मचारी का मन है। गुरु इस अग्नि को अपनी विद्या आदि अनेक समिधा रूपी गुणों से बढ़ा सकता है। गुरु यदि यह समझले कि मेरे गुण समिधा रूप हैं और बालक का मन अग्निरूप, तो सम्भव नहीं कि वह बालक के मन की अग्नि को बुझाने दे अथवा हतोत्साह होने दे।

इंगलैंड आदि देशों में परीक्षाएं जो लीजाती हैं, वह बालकों को "फेल" करने के प्रयोजन से नहीं किन्तु शिक्षकों के काम की निरीक्षा * के अभिप्राय से। वहां अध्यापक पढ़ातेहैं तो विद्यार्थियों का मन वा उत्साह नित्यप्रति बढ़ाते हुए। विद्यार्थीका वहां शंका करना अथवा किसी सिद्धान्त वा प्रश्नको न समझना पाप वा अपराध नहीं माना जाता, यदि कोई बालक टांगों से बहुत तेज नहीं दौड़ सकता तो क्या वह पापी है। यदि कोई बालक उत्तम स्वर न होने के कारण सुवक्ता नहीं बन सक्ता तो क्या उस को अपराधी समझकर डंडे लगाने चाहियें! आग अधिक प्रकाश न देवे, तो आग को डंडे लगाने वा गालियां देने की जरूरत नहीं, किन्तु उस में अनुकूल घृतयुक्त समिधा डालने की जरूरत है। बालक के मनमें विद्या की वृद्धि हो, उसके लिये उसको गालियां देने वा भय दिखाने की जरूरत नहीं किन्तु उसमें अनुकूल रूप से गुरुकी विद्यारूपी सहायता की

* (विवरण) जापान में अध्यापक बडे विद्वान और साथही बडे भारी धर्मात्मा (सदाचारी) होते हैं, इस लिये वह स्वयं ही परीक्षा ले लेते हैं।

ज़रूरत है। यह रहस्य था,जो पुराने ऋषि विद्यावृद्धि का जाने हुये थे,और यही रहस्य है जो आज युरुप के शिक्षण शास्त्री जान गये हैं।

युरुप के सर्व शिक्षण शास्त्री लिखते हैं कि जो लोग यह कहते हैं कि विद्या के लिए मनुष्य का स्वाभाविक प्रेम नहीं वह भूल करते हैं। जैसे भूख लगनेपर भोजन करने को सब का जी चाहता है,उसी प्रकार शंका वा प्रश्नरूपी मानसिक भूख लगनेपर मन विद्यारूपी भोजन माँगता है। स्वभाव से ही ज्ञानेन्द्रियों का काम ज्ञानकी प्राप्ति कराना है। आग के लिये समिधा जैसे स्वाभाविक भोजन है, उसीप्रकार बालक के मन के लिये विद्या स्वाभाविक भोजन है।

(क) हमने देख लिया कि मेधावी विद्यावृद्धि कि लिये गुरु, समिधा का काम देताहै। गुरु यदि विद्यार्थियोंको नियमानुकूल चलावे और जिनस्बातों से आयुवृद्धि हो सकती है वह २ बातें बतावे और उनपर चलने के लिये बालकों में रुचि, उत्साह वा प्रेम उत्पन्न करदे तो निसंदेह बालक आयु आदि से युक्त होंगे। यदि वह धन के लाभ और उसकी प्राप्ति के साधनों के लिये उन के मन में प्रेम उत्पन्न करा सका है तो शिष्य बड़े होकर धन कमानेमें प्रवीण होंगे। यदिवह उपासना वा धर्माचरण का महत्व अपनी मीठी और युक्ति युक्त वाणी तथा अपने आचरण द्वारा सिद्ध कर सकता है, तो बालकों में ब्रह्मतेज इस प्रकार बढ़ता जावेगा जैसा कि आग समिधा से स्वाभाविक बढ़तीहै, और आग को कुछ कष्ट नहीं होता। विद्या, आयु, धनकी रुचि, ब्रह्मतेज आदि सब ही ब्रह्मचारी में उत्तमप्रकारसे वृद्धि को प्राप्त होते रहें और वह सहज से इन को धारण करता हुआ चलाजावे वही शिक्षण का उत्तम प्रकार है।

(ख) पुराने समय में ब्रह्मचारियों को गुरु वा अध्यापकों से प्रेम करना सच्चे तौर पर सिखाया जाता था। वह उनको अपना सच्चा हितैषी समझने लगते थे और इसी लिए बालक प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर हमारे अध्यापक के जीवित रहने वाली संतान हो। यह गुरुभक्ति के बोधक शब्द हैं। इस से यह भी पाया जाता है कि गृहस्थी लोग भी आचार्य, अध्यापक, होते थे।

[ग] आजकल उन स्कूलों में जहां मुख्याध्यापक पक्षपाती हो, लड़कों में भी दल (पार्टीयां) हो जाती हैं, जो एक दूसरे को परस्परघृणा करना सिखाती है। पुराने समय में ब्रह्मचारी से प्रार्थना कराई जाती थी कि वह सब से बन्धुभाव से बर्तें और स्वार्थ वा पक्षपात में न गिरे। उन के गुरुओं के पवित्राचरण भी उन को इस पाप से बहुत बचाते थे।

[घ] पुराने समय में बालकों के मुख से यह शब्द निकलवाये जाते थे, ताकि वह उन्नति करने की इच्छासे युक्त होसकें। जिस समय हवन करता हुआ बालक कहता था कि मैं—

यशस्वी (शुभ कर्म करने वाला) तेजस्वी (निर्भय वा प्रतापी) ब्रह्मवर्चस्वी (ईश्वरभक्त तथा सदाचारी) अन्नाद (पूर्ण शारीरिक बल वाला) बनूं, तो इन

उन संस्कारों का शुभ प्रभाव उसके मनको "सेल्फ मेसमेराईज़" अर्थात् अपने आप उत्साहित करता था।

एकाग्रता की चितावनी

जहाँ गुरु का धर्म है कि वह बालक को सहज रीति से विद्या पढ़ावे, वहां शिष्य का भी धर्म है कि वह मनको एकाग्र करने में यत्न करता जावे। गुरु के यत्न के साथ २ शिष्य को भी यत्न करना चाहिये और वह यह है कि मानसिक रुचि वा एकाग्रता बढ़ावे। रुचि वा एकाग्रता से पढ़ने का महत्व पुनः बालक को दर्शाने के लिये चितावनी (ताकीद) रूप से यहां पर तीन आहुतियों के पीछे फिर——

" ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं ,,

इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके कुंड के चारों ओर जल सेचन का विधान है।

इससे पहिले जब "ओं अग्नये समिधमाहार्षं" इत्यादि मन्त्र से बालक ने तीन आहुति दी थीं तो उस समय उत्तराभिमुख खड़े होकर समिधा दी थीं। खड़ा रहना, दृढता वा स्थिरता का बोधक चिन्ह है, और उत्तर दिशा भी जिसमें ध्रुव है, दृढता बोधक है। विद्या वृद्धि, आचार्य्य भक्ति आदि में वह दृढ रहेगा, यह भी उस का अभिप्राय था।

"जल सेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ासा तपा के हाथ में जल लगा "ओम् तनूपा……" इन ७ मन्त्रों से सात बार किंचित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुख स्पर्श करना" ऐसा संस्कार विधि में लिखा है।

तपस्या से तेज प्राप्ति का बोधन

(१) प्रश्न होसक्ता है कि बार २ चारों ओर जल सेचन की क्या ज़रूरत है! इस का उत्तर यह है कि कुण्ड की गरमी के कारण पहिले का सेचन किया हुआ जल सूख वा कम होजाना संभव है। इस लिये उसके बार २ सचन का विधान हैं ताकि चारों ओर जल बना रहे और कीट आदि को कुण्ड की ओर जाने से रोके। जब ऋतु भी गरमी की हो तो उस समय तो और भी भय जल के सूखने वा कम होजाने का हो सकता है। इस लिये बार २ जल सेचन करना उचित है।

(२) प्रश्न होसक्ता है कि इससे पहिले बालक को उत्तराभिमुख खड़ा किया था और अब पूर्वाभिमुख क्यों बिठाया! इसका उत्तर यह है कि इस जगह सूर्य्यवत्तेजस्वी होने का विशेष उपदेश देना अभीष्ट है और पूर्व दिशा तेजस्वीपन का बोधक चिन्ह है।

यह तेजस्वीपन किन ७ बातों में होना चाहिये, उसके बोधक ७ मन्त्र हैं और तेज-

स्त्रीपन का साधन क्या है, उसका उपदेश हाथों को तपाने और जल लगाने की क्रिया से, जो तपस्या बोधक है, किया गया है ।

योग शास्त्र में तपका लक्षण द्वन्द्व का सहन करना बतलाया गया है। गरमी, शीत आदि अनेक द्वन्द्व सहन करना तप है। तप का फल तेज है। बालक का हाथों को तपा, उस पर जल लगाना, द्वन्द्व सहन वा तपस्या का उपलक्षण द्वारा पाठ सीखना है।

जब तपस्वी बालक हाथ मुख पर लगाता है तो मुख पर तेजस्वीपन प्रतीत होने लगता है। इस से दर्शाया गया कि जो ब्रह्मचारी इस आश्रम में द्वन्द्व सहन कर सके हैं वेही तप रहित मनुष्यों में ऐसे चमकते हैं जैसे उस बालक का मुख, जो होम अग्नि से हाथ तपा उसको पानी लगा अपने मुख पर मलता है।

इसका दूसरा फल यह है कि ऐसा करने से मुख के चर्म पर फुंसी आदि चर्म रोग नहीं होते। हवन की आग पर हाथ तपाने से सुगन्धित वाष्प हाथ में बस जाती है, और पानी से हाथ भिगोने पर वह वाष्प जल रूप होजाती है। जब मुख पर वह मली जाती है तो उसमें हवन के सुगन्धित घी के धूम का कुछ अंश और कुछ अंश सुगन्धित सामग्री के धूम का होने से मुख के चर्म पर सुगन्धि तथा चिकनेपन का प्रभाव पहुंच कर, कान्ति उज्वल वा तेजोमय होजाती है। आयुर्वेद के मतानुसार शरीर पर तैल वा घृत के मलने से कान्ति उज्वल होती है।

कोइ प्रश्न कर सक्ता है कि हवन अग्नि पर भला जरासा हाथ तपा उसमें ज़रासा पानी लगाकर सुगन्धी तथा घृत का अंश मुख पर क्या प्रभाव पहुंचावेगा!

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि प्रत्यक्ष प्रयोग [तजुरबा] करके देखो फिर पता लग जावेगा कि मुख पर चमक के साथ सुगन्धि अपनी नासिका को प्रतीत होती है वा नहीं। मट्टी के तेल (केरोसीन आयल) वा पत्थर के कोइलों की आग पर हाथ तपा मुख पर लगाने से शिर पीड़ा होने लगती है।

आजकल हम देखते हैं कि लोग जहाँ घृत का दीपक जलता हो उस पर हाथ तपा मुख पर प्रायः मला करते हैं। घृत विष नाशक है, इसलिये ऐसा करने से फुंसी आदि रुकती हैं।

व्याख्या ।

(१) पहिले मन्त्र में दर्शाया गया है कि ईश्वर से तन रक्षा की प्रार्थना करो। प्रार्थना जैसा कि हम अनेक बार लिख चुके हैं। "शिवसंकल्प" का दूसरा नाम है। अंगरेज़ी सुप्रसिद्ध विद्वान् "डाक्टर सेमयुल समाइलस" महोदय अपनी पश्चिमी जगत् विख्यात पुस्तक "सैल्फ हैल्प" (स्वाश्रय) नामी में लिखते हैं कि जिसको जिस बात की दृढ इच्छा है वह अवश्य ही प्राप्ति वा सिद्धि का मुख देखेगा। महर्षि मनुजी ने भी "संकल्प" को सब प्रवृत्ति का मूल और धृति को जो मानसिक धारणा

शक्ति का रूप है, धर्म का प्रथम लक्षण कहा है। प्रार्थना (संकल्प) का मर्म न जानने वाले लोग आक्षेप कर सकते हैं कि क्यों बार २ प्रार्थना की जावे ! परन्तु यदि युरुप के आचार्य समाइल्स महोदय की उक्त पुस्तक, जो युरुप तथा अमेरिका के प्रत्येक स्कूल और घर २ में है, वह पढ़ें तो उनको पता लगेगा कि जिस काम को उत्तमता से करना हो वह तब ही किया जा सक्ता है जब करनेवाला अपने मनसे उसको पहिले करना चाहे वा उसके करने की आवश्यकता अनुभव करे।

तन रक्षा कितना उपयोगी और महान् काम है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का आधार इसी पर है। जब तक ब्रह्मचारी शरीर रक्षा के भाव को संकल्प वा प्रार्थना के रूप में मनमें नहीं धारण करेगा, तब तक कभी संभव नहीं कि वह इसमें सफल हो सके।

शरीर रक्षा का अपूर्व महत्व पुराने आर्य ऋषि कहाँ तक समझे हुये थे, वह तो इन शब्दों से स्पष्ट ही है, परन्तु इस समय भी युरुप के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हरबर्ट स्पेन्सर महोदय "शिक्षा" नामी पुस्तक में शिक्षण का सर्वोपरि लाभ तन रक्षा ही मानते और लोगों को वैसा उपदेश दे रहे हैं। भारत भूषण श्री राममूर्ति जी अपने अमूल्य व्याख्यानों में कहा करते हैं कि "इस शरीर को तुच्छ न समझो। बड़े पुण्यों से मनुष्य शरीर मिलता है, इसकी रक्षा करनी मनुष्य का परम धर्म (कर्त्तव्य) है"।

माता पिता तथा अध्यापकों का परमधर्म है कि वह बालकों को तन रक्षा सम्बंधी बातें बताते रहें। प्रत्येक बालक को महर्षि धन्वंतरि जी के यह शब्द सदैव याद रखने चाहियें, कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आधार शारीरिक स्वास्थ्य पर है।

युरुप अमरीका आदि सभ्य देशों में सर्वत्र अनेक अबोध बालक मूत्र इन्द्रिय को हाथ से मलते वा रगड़ते पाये गये हैं। भारत वर्ष के स्कूलों के बालकों में यह भयंकर हस्त मैथुन की कुचेष्टा बहुत ही पाई जाती है। इस से बालकों के तन नष्ट हो जाते हैं। नेत्र रोग, छाती का सुकड़ना, स्मृतिका नाश, उत्साहहीन होना आदि अनेक रोग इसके करने से बालकों में देखे गये हैं। लड़कों को इस प्रकार उत्तमता से स्पष्ट शब्दों में समझाने की ज़रूरत है कि किस प्रकार यह इन्द्रिय रोगी होकर अनेक रोग उत्पन्न करती है।

शुद्धवायु, शुद्ध खुले कूप का जल, शुद्धवस्त्र, शुद्धस्थान, शुद्ध आहार, आदि अनेक बातों से बच्चों को विज्ञ करते रहना चाहिये। और सब से बढ़कर यह बात है कि लड़के वा लड़कियों की रात के समय में देख रेख (निरीक्षा) रखने वाले पुरुष, स्त्रियां पूर्ण सदाचारी और हस्तमैथुन आदि दुर्व्यसनों से भले प्रकार मुक्त होने चाहियें। जब तक पूरे जितेन्द्रिय मास्टर आदि न होंगे तब तक यह संभव नहीं कि लड़के ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन कर सकें। प्रत्येक मास्टर वा अधिष्ठाता (सुप्रिन्टेंडेन्ट) सदाचारी होना चाहिये॥

(२) दूसरी प्रार्थना आयुवृद्धि की है। आयुवृद्धि का एक प्रबल कारण वीर्य्य रक्षा है। सुरक्षित वीर्य्य को ओज कहते हैं और अंगरेज़ विद्वान् इसी ओज को भौतिक जीवनका मूल कहते हैं। सुश्रुत के लेखानुसार ओज ही एक मात्र बल दाता है।

(३) तीसरी प्रार्थना वर्चस् के लिये है। कान्ति, सुन्दरता, रूप, भी इसी के नाम हैं। सुश्रुत के अनुसार कांति का कारण तेजही है। जहां २ तेज है वहां २ कान्ति है। लकड़ीको "पालिश" वा रोगन करते हैं, ऐसा करनेसे उसमें चमक वा सुन्दरता आजाती है। दीवार सजाते समय रंग बरंगके चमकते हुए कागज़ लगातेहैं। तेज(चमक)वालेकागज़ सुन्दर होते हैं। मनुष्यों के सब रंगों में यदि तेज उनके साथ हैं तो वह सबही सुन्दर हैं। तेज़स्वीकाला रंगभी सुन्दर होताहै, इसी लिये काले वारनिश बूट का दाम अधिक होताहै। नीलवर्णी मोर तेज वा चमक के कारण सुन्दरता का राजा माना गया है। सुवर्ण पीला रंग रखते हुए चमक के कारण सुन्दर है। हीरा सफ़ेद, पन्ना हरा, मानक लाल नीलम श्याम रंग रखते हुए भी तेज (चमक) के कारण सुन्दर हैं और रत्न कहलाते हैं। इस लिये ब्रह्मचारी चाहे किसी रंग के हों वह सर्व सुन्दर हो सक्ते हैं, यदि उनके मुखपर कांति, वा तेज वा चमक है। यह कांति मनकी प्रसन्नता, शारीरिक तपस्या वा आरोग्यता तथा वीर्य्यरक्षा से प्रत्येक को ईश्वर की ओर से मिलती है।

(४) चौथी प्रार्थना शारीरिक न्यूनता को पूर्ण करने की है। युरूप आदि देशों में कसरत द्वारा शारीरिक न्यूनता पूर्ण की जाती है। सुश्रुत का वचन है कि व्यायाम करने से शरीर के अंग सुडौल होजाते हैं जिसका भाव यह है कि शारीरिक न्यूनता पूर्ण होजाती है। इस लिये मर्य्यादा पूर्वक अर्थात् थकने से पूर्व वा जितना बल हो उस से आधे व्यायाम वा श्रम करने से शारीरिक न्यूनता नष्ट होजाती है।

बनारस के महाशय कालीदास मानिक, श्रीराममूर्त्तिजी के प्रसिद्ध शिष्य लिखते हैं कि:—

"जब तक अंग प्रत्यंग दृढ़ न किये जावेंगे, दिमाग़ निर्बल रहेगा और हृदय की गति मंद रहेगी तो शुद्धरक्त दिमाग़ वा शरीर के किसी भाग में भी नहीं पहुंच सकेगा। यदि पाचन शक्ति निर्बल होगी तो रुधिर भी ख़राब बनेगा। कम ख़ून वाले मूर्ख तथा क्रोधी होते हैं। बच्चे के हाथ से कुछ छीनो वह नहीं छोड़ता, इस से सिद्ध होता है कि पट्ठे जन्म से ही बलवान् होते हैं। पट्ठों की मज़बूती के लिये कुछ प्राणायाम भी दरकार है। टांग तथा पैर के पट्ठे बैठक करने से पुष्ट होते हैं। थकने पर बराबर कसरत करते जाना अच्छी बात नहीं, ऐसा करने से नुक़सान होता है (पृ०३४)

फिर लिखते हैं जिसका सार यह है कि:—

सादी चाल स्वास्थ्य के लिये बड़ी उपकारी है, पहिले दो फरलांग चलने से शरीर गरम होजाता है और पट्ठे ज़रा २ मुलायम हो जाते हैं।

एक स्थल पर लिखते हैं कि "जो लोग पैर * की कसरत बिलकुल नहीं करते और

* चलना, तेज चलना तथा दौड़ना आदि भी पैर की कसरत हैं।

एक जगह बहुत देर तक बैठे रहते हैं, उनको अकसर बवासीर, भगंदरादि दारुण रोग आ लेते हैं। ......बालक और कमजोर लोगों के लिये डंड कदापि लाभदायक नहीं हैं..........गिन्ती छोड़कर कसरत करनी चाहिये।

"दम रोकने से दिल फेफड़ों औरछाती पर ज़ोर पड़ता है"।

आगे चलकर एक स्थल पर लिखा है कि कसरत करने से खुशकी, गरमी बढ़ जाती है। इस लिये उसके निवारणार्थ वह लिखते हैं कि—

१० बादाम

२० काली मिरच

२ छोटी इलायची

३ माशे सौंफ

३ माशे धनिया

इन चीजों को छटांक भर पानी में रात को भिगोकर ढांक रखे और किसी पत्थर वा मिट्टी के बरतन में भिगोवे। प्रातः काल घोटने से पहिले बादाम का छिलका उतार ले। उचित पानी, तथा खांड, सेवती जल (गुलाब) वा केवड़ा डालकर पीवे *।

एक स्थल पर यह भी लिखा है कि लंबे डंड करने से शिर में अधिक लोहू चढ़ आता है और कई दिमागी काम करने वालों के लिये यह हानि करता है, इस लिये इसके स्थान म "दीवार के साथ खड़े होकर थोड़े ही डंड करले"

(५) पांचवी प्रार्थना मेधा की है—जिसका वर्णन ५ वें मंत्र में है। ईश्वर प्रार्थना से मन पवित्र और दृढ़ होता है ईश्वर उपासना से बुद्धि पवित्र और सूक्ष्म होती है। योगी, ऋषि लोग इसी लिये मेधा के धनी होते हैं। मनन से भी निःसन्देह मेधा की वृद्धिहोती है।

जो मनन नहीं करते वा तर्कको उपयोगमें नहीं लाते वह मेधा वृद्धि नहीं करसक्ते। विचार (मनन) तर्क और उपासना मेधा वृद्धि के साधन हैं। उपासना से एकागूता भी बढ़ती है और इसके द्वारा मेधा दृढ़ होती है।

(६) वाणीः—

जितना ज्ञान प्राप्त होता है उसकी प्राप्ति और उसके प्रकाश वा प्रचार का साधन सरस्वती वा विद्यामयी वाणी है। इस बात पर मनन करने से शब्द शास्त्र में जिज्ञासु की रुचि बढ़कर उसको वाणी का तेज प्राप्त हो सकता है।

(७) सदाचारी विद्वानों में भक्तिः—

मनुष्यों में ज्ञान देने वालों में दो भेद हैं। अध्यापक से विद्यालय में शिक्षण द्वारा और उपदेशक महात्माओं से सत्संग द्वारा विद्या की प्राप्ति होकर संशयों की निवृत्ति होती है। अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों में दोनों ही, विद्या

---

* हमारे विचार में जिस स्थल पर यह न मिलसके वहां, खुशकी गरमी के दूर करने के लिये दूध और इलायची से काम लेना चाहिये।

तेज के दाता हैं । युरूप आदि देशों में नाना विद्या संबंधी मासिक पत्र जिज्ञासा-वर्द्धनी सभाएं, संवादवर्द्धनी सभाएं, और विद्वान्, वृद्ध, अनुभवी वक्ताओं के व्याख्यान शिष्य लोग सुन कर विद्या वृद्धि करते रहते हैं । वहां वक्ता मानो उपदेशकों का काम दे रहे हैं । अध्यापक तथा उपदेशक जिन से बालक विद्या ग्रहण करें वह ऐसे होने चाहिये जो विद्या और सदाचार के कारण उसके लिये पूज्य हों । इसी भाव को प्रकट करने के लिये मंत्र में दर्शाया गया है कि यह दोनों कमल फूल की माला से युक्त हों उनका माला से युक्त होना ही उनके पूज्य होनेका बोधन करा रहा है । कमल फूलकी माला जहां आदर वा शोभा का एक चिन्ह है वहां उत्तम स्वास्थ्यदायक गुणों से युक्त है । अभिनव निघंटु में कमल फूल के गुण यह लिखे हैं कि:—

" शीतल, वर्णकर्ता, मधुर, कफपित्तनाशक, विषनाशक——प्यास, दाह रुधिर विकार, विस्फोट और विसर्परोग नष्ट कर्ता है "

आचार सुश्रवण, एकाग्रता, उत्साह, गुरुभक्ति, तपस्या के पश्चात् अब बालक को आचार के सर्वदेशीय सर्वतंत्र तत्वों का अत्यंत संक्षेप से बोधन कराने के लिये ५ मंत्र बोलकर अंगस्पर्श का विधान है ।

अर्थ—

१. हे ईश्वर! मेरी वाणी अच्छी तरह बढ़े ।
२. हे ईश्वर ! मेरे प्राण अच्छी तरह बढ़े ।
३. हे ईश्वर ! मेरे नेत्र अच्छी तरह बढ़े ।
४. हे ईश्वर ! मेरी श्रवण शक्ति अच्छी तरह बढे ।
५. हे ईश्वर ! मेरा यश और बल अच्छी तरह बढें ।

व्याख्या—

१, सत्य और मधुर बोलने से वाणी का बल बढ़ताहै ।

२. प्राणायाम करने से, इन्द्रियां शुद्ध और वश में होती और मानसिक तथा शारीरिक बल बढ़ता है । अपनी मानसिक शक्ति को बलवान् करने के लिये श्री राममूर्ति जी नित्य प्राणायाम का अभ्यास करते और मनको एकाग्र करके केवल एकही विषय पर लगादेते हैं । कौतुक करते समय वह प्राण रोकते और मानसिक इच्छा रूपी बल को अंग विशेष में इच्छा द्वारा भेजते हैं । उनका दृढ विश्वास है कि शारीरिक बल मानसिक शक्ति द्वारा प्राप्त होता है । उनका कथन है कि:—

" दिन में एक वा दो बार अर्द्ध घंटा वा उससे अधिक के लिये शारीरिक बलकी प्रार्थना वा इच्छा मनसे करनी चाहिये । सर्व अन्य विचार विना इस इच्छाके नितान्त मनसे निकाल देने चाहियें"

तथा व्यायाम करते समय उनके कथनानुसार " मनकी वृत्ति व्यायाम पर लगे

और व्यायाम के लाभों का चिन्तन करे,, *

इस लेखका यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक बालक उतना प्राणायाम करे जितना कि मल्ल शिरोमणि श्रीराममूर्त्ति करते हैं, केवल दिखाना यह है कि प्राणायाम से मानसिक और शारीरिक बल बढताहै। ब्रह्मचारियों के लिये संध्या समय पर्व ३ प्राणायाम ही ठीक हैं। अथवा ७ क्योंकि प्राणायाम, मंत्रानुसार ७ ठैरते हैं।

३. कल्याण कारी और विषय से रहित वस्तुए देखना नेत्रका यथार्थ उपयोग करना है—

४. मिथ्या तथा विषयवर्द्धक बातें न सुनते हुए सत्य तथा हितकारी बातें सुनना कानों का सदुपयोग है।

५. शुभ कर्म करना और विषय वर्द्धक कर्म न करने से बल और यशकी प्राप्ति होती है।

ईश्वर प्रार्थना

अंग स्पर्श के पश्चात् बालक ईश्वर से प्रार्थना करे, क्यों कि वह इस प्रार्थना के अनन्तर गुरु से वेदोपदेश लेने वाला है।

"ओ३म् मयि मेधां"............................ इस मंत्र से वह प्रार्थना करे।

(भावार्थ) अग्नि परमेश्वर मुझ में, मेधा, प्रजा और तेज धारण करें।

इन्द्र परमात्मा, ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति, मेधा, प्रजा और तेज को धारण करें।

सूर्यवत् प्रकाशमान ईश्वर, पवित्रता, मेधा प्रजा और तेज को धारण करें।

हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा तेज है उस तेज से मैं तेजवाला होऊं। हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा सामर्थ्य है उस सामर्थ्य से मैं सामर्थ्य वाला बनूं। हे पूज्य ईश्वर! दुष्टों पर मन्यु धारण करने की जो तेरी शक्ति है उस शक्ति से मैं युक्त होऊं।

व्याख्या—

धन्य वह आस्तिक ऋषि थे जिनका उद्देश्य सचमुच मनुष्य जन्म को सफल करने का होता था। किस प्रकार उच्च से उच्च उन्नति के नियमों का जप वह बालक से कराते हैं, मानो उसके शुद्ध हृदय में उच्च नियम बसा रहेहैं। उपनयन संस्कारमें जो यज्ञोपवीत का मंत्र था उसमें शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति लक्ष्यवत् दर्शाई गई थी यहां पर भी वेदाध्ययन प्रारंभ करनेसे पूर्व बालक तीनवार ईश्वर से तीन वस्तुओं की अत्यन्त प्रार्थना कररहा है।

१. मेधा (जो विद्या का साधन है)
२. प्रजा (कुटुम्ब से लेकर जन समाजकी उन्नति)
३. तेज (शारीरिक उन्नति का चिन्ह कांति)

* देखो इन्डियन "रीव्यू" बावत मास जून १९१२

इनपर दृष्टि देने से यही प्रतीत होता है कि १. आत्मिक २. सामाजिक और ३. शारीरिक उन्नति के साधनों का महत्व बालक के मन पर पुराने ऋषि किस उत्तम-ता से अंकित करते थे ! उपनयन संस्कार के समय यही उद्देश्य और शब्दों में था, यहां और शब्दों में, परन्तु उद्देश्य में भेद नहीं, इसके अतिरिक्त ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति

१ पवित्रता २ .सामर्थ्य, और ३ मन्यु

की प्रार्थना भी की गई है, जोकि आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति वा रक्षण के लिये अत्यंत उपयोगी साधन हैं ।

आचार्य्य से निवेदन

ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् बालक "कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके जानू को भूमि में टेक कर पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य्य बालक के सन्मुख पश्चिमाभिमुखबैठे" ।

जानू टेक कर इस प्रकार बैठना आचार्य्य को मान देने और आप नम्र बनने के लिये है । ऐसे बैठकर बालक संस्कृत में यह कहता है "अधीहि भोः…………" जिसका भाव यह है कि आप गायत्री को पढाइये और केवल उसी का उपदेश कीजिये ।

"तत्पश्चात् आचार्य्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंधे पर रख कर अपने और बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार गायत्री मंत्रोपदेश करे" ।

व्यौपारी लोग प्रायः एसा किया करते हैं कि जब किसी वस्तु के भाव सम्बन्धी विचार करना हो तो उस समय एक कपड़ा ऊपर डाल दो, पुरुष परस्पर हाथों की अंगुलियों से संकेत प्रकट करते हैं और इसका अभिप्राय यही हुआ करता है कि वह और लोगों से अपने विचार गुप्त रख सकें, जिन्होंने परस्पर व्यौपार करना है उनके विचार परस्पर प्रत्यक्ष हों ॥

यहां पर गुरु, बालक के हाथों की अंगुलियों को अपने हाथ से पकड़ता है और ऐसा करता हुआ उसपर वस्त्र डाले हुए है, जिसका अभिप्राय दृष्टान्त रूप से यह बोधन करना है कि वह बालक विद्या लेने वाला और गुरु विद्या देने वाला, दोनों अपनी मानसिक वृत्तियों को अंगुलियों के समान एकाग्र करें, विद्यार्थी अपनी वृत्तियां उसके मनकी ओर लगाए और गुरु भी इस उत्तमतासे पढ़ावे कि पढ़ाते समय शिष्यकी वृत्तियों को अपने मन में लगाले,और जिस समय शिष्य विद्या लेरहा और गुरु विद्या दे रहा है, उस समय वह दोनों अन्य वस्तुओं से अपने मन हटालें, अर्थात् दोनों के मन परस्पर एकाग्रता के कारण ऐसे होजावें कि मानो औरों के लिये वह मन ढक गये हैं । यूरुप के सुप्रसिद्ध शिक्षण शास्त्री महाशय पेस्टालोजी ने यह बात दर्शाई है कि

शिक्षक शिष्यों के मनमें अपने मन लीन करके शिक्षण दें। उनका कथन है कि मैं शिक्षण को मनस्वी बनाना चाहता हूं"। *

मंत्रोपदेश

प्रथम वार—"ओ३म् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्„

दूसरी वार—"ओम् भूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् । भर्गो देवस्य धीमहि„

तीसरी वार—"ओम् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्„

इस प्रकार एक २ पदका शुद्ध उच्चारण बालक से करावे और अर्थ समझावे।

विद्या और आचार का बोधक गायत्री मंत्र

यह मंत्र दर्शा रहा है कि मनुष्य की विद्या वा बुद्धि की उन्नति और सदाचार की अन्तिम सीमा क्या है! इसमें बतलाया गया है कि ईश्वर "वरेण्यम्„ अर्थात् धारण करने योग्य है और प्रत्येक मनुष्य उसको धारण करसक्ता है और इस भाव के बोधक "धीमहि" शब्द हैं। ईश्वर से जो ज्ञान का सूर्य्य है प्रत्येक मनुष्य विद्यारूपी तेज स्वयं प्राप्त कर सकता है, यदि उसके वह योग्य बने। इस योग्यता को धारण करने के लिये योगके साधन किये जाते हैंताकि मनुष्य समाधिस्थ बुद्धि को प्राप्त होकर अपनी मेधा में ईश्वरीय ज्ञान की प्रेरणा स्फूर्ति रूप में पासके। जो उपासना द्वारा बुद्धि में ईश्वरीय प्रेरणा धारण करता रहेगा उसके ज्ञान और आचार दोनों ही बढ़ेंगे, इसमें संदेह क्या है! गायत्री मन्त्र का यह अपूर्व महत्व है कि उपासना के लिये किसी प्रतीक को नहीं लेता वा मनुष्य विशेष को मध्यवर्ती नहीं ठहराता। मनुष्य मात्र विना किसी जड़वस्तु [प्रतीक] वा मध्यवर्ती मनुष्य के ईश्वर उपासना अपने आप अपने मनसे करसका और ईश्वर सर्वव्यापक होने से विना किसी मध्यवर्ती साधन के उसकी बुद्धि में उसको योग्यतानुसार अपने ज्ञान के प्रकाश को आप प्रदान करता है।

आजकल युरूप में कहा जाता है कि कालेज विद्या सिखाकर चुप होजाते हैं पर मेधावी जन अपनी बुद्धि से नये २ आविष्कार सोचकर निकालते हैं। युरूप वाले आविष्कार करने का साधन तो मेधा को कहते हैं और मेधामें फुरना नेचर(सृष्टि) को मानते हैं, पर वास्तव में नेचर (सृष्टि) में ईश्वर व्यापक है। पुराने ऋषि नेचर के सर्वव्यापक अधिपति ईश्वर की प्रेरणा ज्ञानोदय के समय माना करते थे। अब

* "I want to psychologise instruction„ (Vide, pestalozzi By H. Holman.)

युरप वालों को ब्रह्मज्ञान होगा तब वह नेचर की प्रेरणा के स्थान में ईश्वर की प्रेरणा कहेंगे जो कि गायत्री मन्त्र बतलारहा है ।

युरूप में माना जाता है कि कालिजों का काम परिडत बनाना है और उससे बढ़कर जिज्ञासा, मनन और दर्शन करना विद्वानों के अपने हाथ में है। जिज्ञासा [रीसर्च] के लिये कितना भारी उत्तेजन युरूप में दिया जाता है। मनन शील जिज्ञासु प्रयोगशाला * वा यागशाला में मनन और प्रयोग [तजुर्बा] द्वारा वर्षों के पश्चात् कई प्रकार के आविष्कार करते हैं और इस से भी बढ़कर सृष्टि नियमों के रहस्य बतलाते हुए वहां ऋषि † पद को प्राप्त कर रहे हैं । ऋग्वेद मंडल १, सूक्त १, में "पूर्व" और "नूतन" दो प्रकार के ऋषि बतलाए गये हैं, एक भूतस्थ दूसरे वर्तमान । आचार्य्य आदि, पूर्व ऋषि होसक्ते हैं और ब्रह्मचारी, नूतन ऋषि ।

गायत्री मंत्र जहां उपासना की सीमा दर्शा रहा है वहां ब्रह्मचारी के सन्मुख उस का आदर्श बतला रहा है कि तू परिडत बनकर, सदाचार और मानसिक योग के द्वारा उस अन्तिम योग्यता को धारण कर, कि तेरे समाधिस्थ मन में ईश्वर की ज्ञान रूपी प्रेरणा प्राप्त हो सके, अर्थात् तू तपस्या और साधनों से युक्त होने पर ऋषि बन सके।

☙ सर आशुतोष मुकरजी, वाइस चेंसलर कलकत्ता यूनीवर्सिटी ने इस वर्ष कनवोकेशन" [समावर्त्तन] के समय भाषण करते हुए ऐसे वचन कहे थे जिन का सार यह है कि:—

"शिक्षक के ज़बानी शिक्षण से बढ़कर उसके कर्त्तव्य और कर्मका प्रभाव विद्यार्थियों पर अधिक पड़ता है। यदि वह स्वयं मेधावी और मनन शील है तो उसके छात्र भी वैसे ही हो सकेंगे। युरुप में विद्या के नये २ आविष्कार किये जाते हैं। वहां विद्यालयों में मेधावी बनाए जाते हैं। हिन्दोस्थान में विद्या की पवित्र अग्नि को सुरक्षित रखते चले आये हैं, पर उसको अधिक प्रकाशवान् करने के लिये यत्न नहीं किया जाता"

पुराने समय में जब कि ऋषि और मुनि आचार्य्य हो कर गुरुकुलों में पढ़ाते थे तो उस समय सचमुच अधिक ऋषि और मुनि इस देश में उत्पन्न होते थे। बुझा हुआ दीपक दूसरे नये दीपक को कैसे जला सक्ता है ! आज कल जब उस योग्यता और आचार के शिक्षक ही नहीं रहे तो वर्तमान समय में देश में ऋषि, मुनि कहां से आसकें !

---

* Laboratory

† Discoverior or Inventor

☙ The Dawn-For the month of Junr 1912.

ब्रह्मचारी पुराने समय में समझता था कि मैं पण्डित, जिज्ञासु, मुनि और ऋषि बन सकता हूं। और यही आदर्श अर्थात् "ग्रेजुएट" (दाक्षित वा पण्डित) जिज्ञासु, मुनि और ऋषि आजकल गुरुप अपने ब्रह्मचारियों के सामने समावर्तन [कोनवोकेशन] के समय पर प्रस्तुत करता है। पुराने समय में विद्यारम्भ करने के साथही यह आदर्श दर्शाया जाता था आज विद्या समाप्ति पर यही आदर्श यरुप आदि में सर्वत्र दर्शाते हैं।

गायत्री मंत्र जहां आरम्भ के पाठ का काम देता था वहाँ विद्या और उपासना की अन्तिम अवधि भी बतलाता था। यही तो कारण है कि गायत्री मंत्र का महत्त्व शास्त्रों में गाया गया है।

कोई शंका कर सकता है कि युरुप में मुनि, ऋषि आदि सात्विक पुरुष भला हो सकते हैं! इस के उत्तर में हम सत्यार्थप्रकाश समु० ९वां पेशकरेंगे जिसमें "तापसा यतयो विप्राः" इत्यादि ३ मनुस्मृति के श्लोकों का भावार्थ महर्षि दयानन्दजी इस प्रकार देते हैं जिस से पाया जाता है कि सात्विक पुरुष किसी देश विशेष में नहीं किन्तु अपने कर्मों के अनुसार सब देशों में हो सकते हैं।

"जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी, और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं, उनको प्रथम सत्व गुण के कर्म का फल जानो ॥८॥ जो मध्यम सत्वगुणयुक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्ता, वेदार्थवित, विद्वान्, वेद, विद्युत आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी, और (साध्य) कार्य्य सिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं। ९। जो उत्तम सत्वगुणयुक्त हो के उत्तम कर्म करते हैं, वे ब्रह्मा सब वेदोंके वेत्ता, विश्वसृज, सब सृष्टिक्रम विद्या को जान कर विविध विमानादि यानों को बनाने हारे, धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धिको प्राप्त होते हैं॥ १०॥

(सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ९)

दृढ़ प्रतिज्ञा

"ओं मम व्रते—" यह मन्त्र यज्ञोपवीत संस्कार में आचुका है। इस से दोनों दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं कि वह व्रत पालन में एक दूसरे के सहायक, और हितकारी होंगे—

मेखलाधारण

"ओं इयं दुरुक्तं—,"

"इस मंत्र को बुलवा के आचार्य्य सुन्दर, चिकनी, प्रथम बनवा कर रक्खी हुई मेखला को बालक के कटि में बाँधे"।

यह मेखला (१) निन्दा युक्त वचनों को हटाने वाली, (२) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती, (३) सुन्दर, चिकना, कोमल (४) वर्णभाव को पवित्र करने वाली-

(५) प्राण,अपान वायु को ठीक रखने से बल देने वाली होने से मुझको प्राप्त हुई है ऐसा ब्रह्मचारी बोले ॥

भारतवर्ष में माताएं नए उत्पन्न हुए बच्चों को मेखला (तगड़ी) सूत वा रेशम की प्रायः बांधती हैं । इसका कारण बढ़ी माताएं यही बतलाती हैं कि ऐसा करने से आंतो के रोग नहीं होते । युरुप में जहां जन्म से तगड़ी बांधने की प्रथा नहीं वहाँ "पतलून" (जांघिया) पर पेटी बांधने का रिवाज छोटी उमर सेही है । मुसलमान लोग कमरबंद बांधते हैं । फौजों में सिपाही लोग पेटी (मेखला) का बांधना चुस्ती के लिये तथा थकावट से बचने के लिये जरूरी समझते हैं । जब यात्रा को जाना हो वा बलका काम करना हो तो कटि (कमर) को कसकर बांध लेने से आंतों को उछलने आदि से क्षति का भय नहीं रहता और आलस्य दूर होकर बल आता हुआ अनुभव होता है । कटि पर दबाव पहुंचने से प्राण,अपान की गति ठीक होजातीहै जिससे बल वा चुस्ती प्रतीत होने लगती है ।। मेखला के कई लाभ तो सब जानते ही हैं और उन लाभों को लक्ष्य में रखकर पाजामों का नाड़ा, कमरबंद कहलाने लगा और पतलून की पेटी भी उपयोगी सिद्ध हो रही हैं । स्त्रियां, साड़ी, धोती,लहंगे, सूथन, सब नाभि के नीचे मेखला स्थान पर ही बांधती हैं। पुरुष भी धोती, कटि के स्थान पर बाँधते हैं। सच तो यह है कि मेखला (पेटी) बंधन किसी न किसी रूप में सर्वत्र भूगोल पर मिलता है ।

संस्कृत के उपर्युक्त वाक्य में मेखला बंधन के जो गुण बतलाये हैं वह यह हैं:—

(१) निन्दायुक्त वचन को हटाने वाली अर्थात् अपान वायु को शमन करने से व्यर्थ काम चेष्टा को संयम करती है ।

(२) व्यर्थ काम चेष्टा को जहां रोकने वाली है वहां पुंस्त्व को नष्ट करने वाली नहीं इस लिये सौभाग्यवती कही गई हैं ।

(३) मेखला आजकल मुंज आदि की बनाकर जिस समय बालकों को पहनाते हैं तो सुई की तरह वह बच्चों को चुभती है । पानी खैंचने की जो रस्सी बाजार में बिकती है, एक हाथभर उसी भद्दी खुरदरी रस्सी को बांधदेते हैं, जिस को कुछ क्षण रखकर बच्चे गुम करदेते हैं । पुराने समय में मुंज आदिकी कोमल और सुन्दर मेखला बनाई जाती थी जिसको रुचिसे बालक धारण करते होंगे । पेटी के समान मेखला कुछ चपटी होनी चाहिये, आजकल पतली सी रस्सी लपेटने को ही मेखला बांधना हमारे देश में समझ रहे हैं ॥

[४] भिन्न २ वर्णों के लिये भिन्न २ मेखला होने से वह वर्णबोधक चिन्ह का काम देसकती है। जिसप्रकार आजकल पुलिसके सिपाही और सेना के सिपाहियों की पेटियों में भेद होता है वैसेही भिन्न २ मेखला के चिन्ह समझ लेने चाहियें ।

[५] प्राण, अपान वायु को ठीक रखने से बल देने वाली ह। इसी बात को सब चुस्ती देने वाली कहते हैं। बल का एक फल चुस्ती है। चुस्ती बलमयी गति है।

संस्कार विधि के विवरण में जो लिखा है कि "ब्राह्मण के बालक को मुंज वा दर्भ की,क्षत्रिय के बालकको धनुष संज्ञक तृण वा वल्कल की वैश्यके बालकको ऊन वा सण की मेखला होनी चाहिये" यह वर्ण भाव को बोधन करने के लिये लिखा गया है। यदि सब वर्णों के बालकों की मेखला एक सी होती तो यह भिन्न २ वर्णभाव का बोधन न कर सकती जिन वस्तुओं से यह नाना प्रकार की मेखला बनाने का विधान है उन-वस्तुओं में जो जो गुण हैं वह हम नीचे लिखते हैं।

(१) मूंज—इसके दो प्रकारहैं(क)सरपता वा रामशर। रामशरके अभिनव निघण्टु में भद्रमुंज, शर, बाण, तेजन और चक्षु वेष्टन नाम दिये गये हैं।
इसी को संस्कार विधि में धनुष—संज्ञक तृण के नाम से लिखा गया है।

(ख) दूसरी मूंज के मुंज, मुंजातक, बाण, स्थूलदर्भ और सुमेखल नाम अभि० नि० में दिये गये हैं।

इनके गुणों के विषय में अभिनव नि० में यह लिखा है कि—

"दोनों मंज अर्थात् सरपता और मुंज—मधुर, कषाय, शीतल,त्रिदोषनाशक, वृष्य और मेखला जो कमर में कसी जाती है, उसमें काम आते हैं" (पृ० ११५)
(२) दर्भः—यह "एक प्रकार का कुश "है। हिंदी में इसको डाभ वा दाभ कहते हैं। इसके गुण यह हैं—

"कुश और डाभ दोनों त्रिदोषनाशक, मधुर, कषैले, और शीतल" (पृ०११६)
कुश के दूसरे नाम सूच्यग्र और यज्ञभूषण हैं।
(३) सणः—"इसके टाट, चरस निकालने की बरत, सूतली आदि बनते हैं...... गुण—खट्टा, कषेला, मल, गर्भ और रुधिर को गिराने वाला, वमन लाने वाला तथा वात कफ को दूर करने वाला और तीव्र, अंग टूटन को दूर करता है"

वात, कफ के शमन में तथा अङ्ग टूटन वा आलस्य को दूर करने में इसकी मेखला का प्रभाव पड़ता है।

(४) ऊनः—ऊन की मेखला, ऊनी वस्त्र समान कटि स्थल की गरमी को बाहिर जाने नहीं देगी और बाहिर की गरम, वायु के प्रकोप से कटि की रक्षा करेगी। जिस प्रकार मुंज, कुश, सण शरीर की गरमी को बाहिर जाने नहीं देते वा बाहिर अन्दर आने से रोकते हैं उसी प्रकार ऊन में गुण हैं।

मुंज, दर्भ, सण और ऊन के गुणों पर विचार करने से विदित होता है कि इन की मेखला धारण करने वालों को कटि प्रदेश में लाभ पहुंचता है।

कौपीन धारण कराना

"ओ३म् युवा सुवासा..................." इस मन्त्रको बोलकर, दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे, एक उत्तरीय वस्त्र और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे ।"

इस मन्त्र का अर्थ उपनयन प्रकरण में आचुका है, जिस में दर्शाया गया है कि ब्रह्मचारी जहाँ यज्ञोपवीतधारी हो वहां "सुवासा" शरीररक्षक अच्छे वस्त्रधारण करने वाला बने । और इसी अभिप्राय को लेकर प्राचीन ऋषियों ने कौपीन, अंगोछे आदि ब्रह्मचारी को देने की मर्य्यादा बांधी थी ।

कौपीनः—इस वस्त्र को धारण करने से वीर्यरक्षा में सहायता मिलती, तथा चलने, फिरने, दौड़ने, श्रम वा व्यायाम करने से अंग विशेष सुरक्षित रहता है। दो कौपीन इस लिये दिये जाते हैं कि प्रत्येकदिन ब्रह्मचारी स्नान करते समय एक कौपीन को धो डाले और दूसरा बांध ले । कई लोग मोटे गाढ़े वा चुभने वाले मोटे कपड़े के कौपीन बनाते हैं वे यह सोचते हैं कि कौपीन बहुत दिन चलें परन्तु बहुत मोटे कपड़े के कौपीन पहनने में चुभने के कारण बालकों की रुचि नहीं होती। इस लिये लट्ठे आदि कोमल कपड़े के कौपीन वनवाने चाहियें । भारतवर्ष में आजकल ऐसी रीति प्रचलित है कि लोग कौपीन को कभी धोवी के देते ही नहीं । वास्तव में सब से अधिक शुद्ध रखने की कौपीन की ज़रूरत है । यदि धोबी को न भी दें तो कुछ चिन्ता नहीं किन्तु दो चार दिन के पीछे तो साबुन से स्वयं ही धो डालना चाहिये, और विना साबुन के तो रोज ही धो लेना उचित ही है ।

कौपीन के नियम को सब सभ्य देशों में समझते हैं । और इसके लाभों को प्रत्येक विद्वान् जान गया है । गुजरात और दक्षिण देश में स्त्रियां जब घर में काम करती हैं तो साड़ी वा धोती को कसकर कौपीनवत् बना लेती हैं । पारसी स्त्रियां चड्डी जिसको गुजराती तथा पंजाबी भाषा में कछ कहते हैं धारण करती हैं । यूरुपवासियों की पतलून में भी कौपीन का नियम बहुत अंश तक रहता है ।

अंगोछाः—अंगोछा भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से उपयोग में आ रहा है ।

इसका महत्व थोड़े ही वर्षों से युरुप के विद्वानों ने अनुभव किया है और अब अंगोछों का युरुप आदि देशों में बहुत प्रचार हो गया है ।। भारतवर्ष में अब आठ दश आने के रंग बरंगी "टवाल" (अंगोछे) प्रचार पा रहे हैं । उत्तम गाढे वा उत्तम खादी के बने हुए अंगोछे में जो गुण हैं । वैसा ब्रह्मचारियोंको शृंगारमयी 'टवालों,में नहींहै अतः ब्रह्मचारियोंको शृंगारमयी टवाल देनेका जरूरत नहीं,अंगोछेको कौपीन समान रोज ही जल से धोना और ४ दिन के पीछे साबुन से धोना वा धुलाना चाहिये ।।

उत्तरीय वस्त्र से अभिप्राय ऊपर की चादर, कुर्ते वा अंगरखे आदि से है । उत्तरीय वस्त्र यहां पर लिखा है । यदि एक भी [illegible] तो अनुचित नहीं होगा ।

कटिवस्त्र दो देने को लिखा है। कटिवस्त्र से अभिप्राय धोती, जाँघिया (पाजामा) आदि से हो सकता है। देशकाल और ऋतु अनुसार कटिवस्त्र बनाना ठीक है।

दण्ड धारण

"आचार्य्य दण्ड हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य्य के सामने हाथ जोड़—"ओं यो मे दंडः................ इस मंत्र को बोलके आचार्य्य के हाथ से दण्ड ले लेवे,,

इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि दण्ड जो ब्रह्मचारी के संमुख हो वह खड़ा कर दिया जावे ताकि कहीं से टूटा फूटा हो तो उसकी पड़ताल हो सके और ब्रह्मचारी उस दण्ड को विशेषरूप से अपनी आयु रक्षा आदि के लिये धारण करे। आयु रक्षा का आधार शरीर रक्षा पर है। दण्ड धारण का अन्य फल वेदग्रहण करना और वेदोक्त आचार के तेज का होना बतलाया गया है। प्रश्न हो सकता है कि दण्ड धारण से वेद ग्रहण वा सदाचार का तेज क्योंकर धारण हो सकता है? इसका उत्तर देने से पूर्व हम कहेंगे कि प्रत्येक कर्म के फल दो प्रकार के शास्त्रों में माने हैं एक को प्रत्यक्ष फल दूसरे को परोक्षफल कहते हैं। इसी को अंगरेजी में Direct and indirect फल भी कहते हैं। उक्त मंत्र में जो तीन लाभ वा फल दण्ड धारण के कहे गये हैं वह दण्ड धारण के परोक्ष वा अप्रत्यक्ष फल समझने चाहियें। यथाः—

(१) आयु रक्षा। शरीर रक्षा तो दण्ड धारण का प्रत्यक्ष फल है, शरीर रक्षा ही आयु—वृद्धि का मुख्य कारण है, अतः आयुरक्षा दण्डधारण का अप्रत्यक्ष वा परोक्षफल समझना चाहिये।

(२) शरीर के सुरक्षित रहने पर मानसिक शक्तियों की भारी उन्नति होती है। जिसका शरीर स्वस्थ तथा सुरक्षित और मन निर्भय है वह अवश्य बुद्धि बल से युक्त होगा। जिस में बुद्धिबल है वह उत्तम प्रकार से वेद वा सत्यविद्या का अभ्यास कर सकेगा। इसलिये वेदाभ्यास में दण्डधारण से अप्रत्यक्षरीति से निःसंदेह सहायता मिलती है।

(३) यह जो कहा गया है कि वेदोक्त आचार के तेज की प्राप्ति दण्डधारण से होती है। इस के सम्बन्ध में यह विचार करना है कि वेदोक्त आचार का तेज क्या है।

इस के उत्तर में हम कहेंगे कि वह निर्भयता है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि दण्ड धारण करने से निर्भयता प्राप्त होती है जोकि सर्वथा ठीक बात है।

दण्ड एक भौतिक शक्ति है। इस शक्ति का उपयोग कहाँपर विद्यार्थी करे, यह बड़ी सदाचार की बात है। केवल अपनी रक्षाके निमित्त ही इसका युक्ति पूर्वक उपयोग पीड़ा वा भय देने वाले जंगलके जंतुओं वा प्राणियों पर करना चाहिये। निर्बल, शांत, अपराध रहित प्राणियोंपर दण्ड का प्रहार करना क्रूरता का काम है और क्रूरता कभी करनी नहीं चाहिये,

केवल भयदाता, हिंसाशील प्राणियों से शरीर रक्षा निमित्त इसका प्रयोग करना सदाचार की बात है। जो ब्रह्मचारी दण्डरूपी शक्ति का यथार्थ प्रयोग अभ्यास द्वारा सीख गया उसने सदाचार का भारी शिक्षण ग्रहण कर लिया। उसने समझ लिया कि मनुष्य को अपनी शक्ति का उपयोग अपने से बलहीन, भीरु वा शांत स्वभाव वालों को पीड़ा पहुंचाने के लिये नहीं करना चाहिये, पर हिंसाशील प्राणियों से भी केवल अपनी रक्षार्थ इस का उपयोग करना है। शक्ति के सदुपयोग से बढ़कर सदाचार क्या हो सकता है! इस वेदोक्त, सदाचार से जो तेज मनमें प्राप्त होता रहता है वह निर्भयता है, निर्भयता के लिये दण्ड धारण की आवश्यकता सर्व संसार के मनुष्यों ने अनुभव की है। कोई सभ्य वा असभ्य देश ऐसा नहीं जहाँ पर लोग जंगली प्राणियों, वा कुत्ते आदि से बचने के लिये दण्ड धारण न करते हों ॥

दण्ड का परिमाण

संस्कारविधि के विवरण में लिखा है कि दण्ड का परिमाण ब्राह्मण के बालक के लिये इतना हो कि दण्ड उस के केशों तक, और क्षत्रिय के बालक के ललाट वा भ्रू तक और वैश्य के बालक के नासिका के अग्रभाग तक आवे। इस लेख से दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं (१) प्रथम तो यह कि सब ब्रह्मचारियों की कमरें सीधी रहा करें और उन के मेरुदंड (रीढ की हड्डी) में बल न आवे। मेरु दंड की लंबाई उस स्थल पर आकर समाप्त होती है जहां पर नासिका के अग्रभाग से खेंची हुई रेखा जाकर पहुंचे। नासिका के अग्रभाग, ललाट वा भ्रू, वा शिर के केश तक ऊंचे दंड धारण करने से छाती को उभार कर कमर को सीधा करना पड़ता है। पढ़नेवाले विद्यार्थियों को लंबा दंड, गरदन सीधी रखने के लिये बड़ा ही सहायक है।

प्रश्न हो सक्ता है कि एक के लिये नासिका का अग्रभाग, दूसरे के लिये ललाट, तीसरे के लिए शिर के बाल तक सीमा क्यों बतलाई गई! उत्तर में हम कहेंगे कि यह केवल वर्ण भाव को बोधन कराने के लिये लंबाई में थोड़ा सा नाम मात्र भेद कर दिया है पर इस भेद से शरीर की हानि किसी की भी नहीं होती।

अतः इस परिमान के दो उद्देश हैं (१) मेरुदंड को सीधा रखना (२) वर्णभाव का बोधन कराना, पूर्वोक्त विवरण में यह भी लिखा गया है कि दंड तीन प्रकार की लकड़ी के हों (१) पलाश वा विल्व, (२) वट वा खदिर (३) पीलू वा गूलर का पहिले प्रकार का ब्राह्मण के बालक के लिये, दूसरे प्रकार का क्षत्रिय के बालक के लिये तीसरे प्रकार का वैश्य के बालक के लिये होना चाहिये।

(क) पलाश (ढाक) के विषय में अभिनव निघंटु पृ० १५२ पर यह लिखा है कि "दीपन, बलकर्त्ता, दस्तावर, गरम, कषेला, चरपरा, कड़वा, स्निग्ध है व्रण, गोले और गुदा के रोग को नष्ट करे तथा टूटे हाड़ को जोड़े, वातादि दोष, संग्रहणी, बवासीर और कृमि, इन को हरण करे।

(ख) विल्व वा बेलः—कषाय, कड़वा, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्द्धक, पित्तकर्ता, वात, कफ नाशक, बलकारक, लघु, उष्ण और पाचक (अभि० नि० पृ० ६०) ॥

(२) (क) वट के विषय में अभिनव निघंटु पृ० १४६ पर यह लिखा है कि शीतल, भारी, ग्राही, कषेला, कफ और पित्त को दूर करे । देह का वर्ण उजला, करे, व्रण रोग, विसर्प और दाह को दूर करे ॥.

(ख) खदिर (खैर) के गुण आदि यह हैं—शीतल, दांतों को हितकारी, कड़वा और कषेला, खुजली, खांसी, अरुचि, मेदरोग, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, सफेदकोढ़, आमवात, रक्तपित्त, पांडुरोग, कोढ़ और कफ के विकारों को दूर करे है : (देखो अभिनव निघंटु पृष्ठ० १४४)

इस की लकड़ी के, यज्ञ के लिये स्रुवा आदि बनाते हैं। उन से होम करते हैं और इसी लकड़ी का कोइला, दारु आतिशबाज़ी में काम आता है। ... इस वृक्ष की अत्यन्त रंग की लकड़ी और कच्ची फलियों में से औटा कर सत्व निकालते हैं उसी को कत्था कहते हैं ॥

(३) (क) पीलुः—इसके गुण आदि ये हैं:—वात, श्लेष्मनाशक, पित्तकर्ता, दस्तावर और गुल्म रोग नाशक, । पीलू स्वाद में मीठा और कड़ुवा होने से त्रिदोष नाशक और अधिक गरम नहीं है " । (देखो अभिनव नि० पृ० १७२)

(ख) गूलर (उदुम्बर) के विषय में यह लिखा है कि:—शीतल, रूक्ष, भारी, मधुर, कषेला, वर्णकारक, कफ, पित्त और रुधिर के विकारों को दूर करे । तथा व्रण का शोधन और रोपण करे । गूलर की त्वचा, शीतल, कषेली, व्रण नाशक, गर्भवती के गर्भ की रक्षा करे और स्त्री के स्तनों में दूध बढ़ाती है ॥ (देखो अभि० नि० पृ०१४७)

प्रश्न होसक्ता है कि पलाश, बेल, बट, खदिर, पीलू और गूलर इन ६ प्रकार के वृक्षों के दंड धारण करने का विधान क्यों किया गया ।

इस के उत्तर में हम कहेंगे कि वृक्ष वा वनस्पति को बिना जाने उस का उपयोग करने से त्वचा रोगों वा अन्य रोगों का हो जाना संभव है । जो लोग शिमला पर्वत पर गये हैं उन को मालूम है कि वहां एक प्रकार की वनस्पति होती है जिस को बिच्छु बूटी कहते हैं । उस को छूते ही हाथ सूझ जाता और हाथ पर वेदना प्रतीत होने लगती है । वह दुःख दूसरी बूटी जिस का नाम "पालक" है उस के लगाने से दूर हो जाता है । इसी प्रकार पूर्वोक्त गुणों पर एक दृष्टि देने से प्रतीत होगा कि इन छः में से किसी भी वृक्ष की लकड़ी ऐसी नहीं जो त्वचा रोग को करने वाली हो प्रत्युत सब के सब अनेक त्वचा रोगों के दूर करने वाले हैं । यथा

१, पलाश, व्रण और कृमि को दूर करता है ।
२, विल्व, बलकारक, बात कफ नाशक, अग्निवर्द्धक है ।
३, बट, व्रण रोग को दूर करता और वर्ण कारक है ।
४, खदिर, खुजली और व्रण तथा कोढ़ का नाशक है ।

५, पीलू, त्रिदोषनाशक।

६, गूलर, वर्णकारक, रुधिर विकार नाशक, व्रणनाशक है ।

छोटी २ बूटियें तो बहुत ऐसी हैं जो त्वचा रोगों को नाश करती हैं पर ऐसे वृक्ष जिन के दण्ड धारण किये जावें और वह त्वचा रोग उत्पन्न न करें, यह जान कर उन का उपयोग करना बुद्धिमत्ता की बात है ।

बिल्व को छोड़ कर शेष पाँचों के विषय में तो स्पष्ट लेख मिलता है कि यह व्रण (फोड़े) आदि के नाशक हैं । बिल्व भी बात, कफ नाशक होता हुआ अग्निवर्द्धक, तथा बलकारक है । जो वस्तु बलकारक हैं, वह स्वास्थ्यदायक अवश्य हैं । इस लिये बेल की लकड़ी भी त्वचा रोग को करने वाली नहीं । अतः छः में से छः ही त्वचा रोग न करने वाले उत्तम काष्ठ हैं और इन के दंड धारण करने से किसी प्रकार के सांसर्गिक रोग का भय नहीं हो सकता ।

पलाश वा बिल्व, ब्राह्मण के बालक के लिये, वट वा खदिर, क्षत्रिय के बालक के लिये, और पीलू वा गूलर, वैश्य के बालक के लिये निर्दिष्ट करने से वर्णभाव को बोधन कराना प्रतीत होता है ॥

पार० गृ० सू० का० २ क० ५ सू० २८ में लिखा है कि "सर्वे वा सर्वेषाम्" अर्थात् सब प्रकार के दण्ड सब के पास होसकते हैं । जिस से वर्ण भेद की शंका भी न रहे॥*

दंड के विषय में फिर यह लिखा है कि "वे दंड चिकने, सीधे हों, अग्नि में जले टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों,, ।

भारतवर्ष में लोग इस बात की ओर कम दृष्टि देते हैं । यदि दण्ड चिकना न होगा तो हाथ में फाँस चुभ जाने का भय रहेगा, यदि सीधा न होगा तो उस के शीघ्र टूट जाने की अधिक संभावना होगी, अग्नि में जले हुए कोइले के समान, वा कीड़ों का खाया हुआ दंड बहुत जल्दी टूट सकता है । इस लिये दंड चिकने, और सीधे तथा दृढ़ होने चाहियें ॥

फिर लिखा है कि "एक २ मृगचर्म उन के बैठने के लिये देना चाहिये,, मृगचर्म कुशासन, तृणासन, और ऊर्णासन सब में यह अपूर्व गुण है कि वह शरीर की अग्नि को बाहर भूमि में आने नहीं देते । आज कल मृगचर्म स्वाभाविक मृत्यु से मरे हुए मर्गों के मिलने कठिन हैं, इस लिये कुशासन संध्या आदि के लिये उपयोग करने चाहियें ।

---

* सर्वसूत्र ग्रन्थों के पाठ से यह सिद्ध है कि वे वर्ण भेद के बोधक चिन्ह विकल्प रूप से लिखते हैं । एक जगह लिख कर दूसरी जगह सामान्य चिन्ह भी लिखते हैं ॥

पिता की ओर से उपदेश।

जब दण्ड धारण करलेवे तब ब्रह्मचारी को पिता २२ सूत्रों द्वारा उस को उपदेश करे।

(१) हे अमुक नाम वाले, तू आज से ब्रह्मचारी है। यह उपदेश सूचना मात्र है।

(२) दूसरे संध्या तथा भोजन के पूर्व आचमन करने का विधान है, सन्ध्या में मंत्रोच्चारण तथा प्राणायाम करना होता है इसके करने से कंठके कफ आदिकी निवृत्ति होती है। भोजन से पूर्व आचमन करने से कंठकी, भोजन करने वाली नाली, गीली होजाने से भोजन को अन्दर से जाने में सहायता मिलती है।

(३) "कर्म कुरु"। यह तीसरा उपदेश है। यह उपदेश पूर्णरूप से इस समय युरुप आदि देशों में विद्यार्थियों को दिया जाता है। यही कारण है कि वे लोग पुरुषार्थ और कर्म करने वाले होते हैं। आलस्य उनके पास फटकता नहीं। कभी भारतीय ऋषि इस उपदेश को देते थे और उस समय भारत संतान तपस्वी और पुरुषार्थी होती थी।

(४) दिन में सोना नहीं ॥

जो विद्यार्थी दिन में सोते हैं उनके शिर में गरमी बढ़जाने से उनकी स्मृति कुछ निर्बल होजाती है। दिनमें सोने से आलस्य बढ़ता है। अंग टूटने लगते हैं आंखें लाल हो जाती हैं। इस लिये ब्रह्मचारियों को कभी दिन में सोना नहीं चाहिये।

(५) आचार्य्य की आज्ञा मानते हुए वेद पढ़ो। —

युरुप आदि सभ्य देशों में सब बुद्धिमान् मानते हैं कि जो आज्ञा पालन करनी नहीं जानता वह कभी आज्ञा देने के उच्च अधिकार को उत्तमता से पूर्ण नहीं करसकेगा। विद्यार्थियों को युरुप आदि देशों में आज्ञा पालन के अंक (नंबर) दिये जाते हैं। आज्ञा पालन के साथ ही विद्याभ्यास होसकता है। इस लिये वेद के पढ़ने वाले विद्यार्थी के लिये आचार्य्य की आज्ञा का पालन करना बहुत लाभ दायक है।

(६) एक २ वेद के लिये बारह २ वर्ष ब्रह्मचर्य्य कर।

एक वेद के सङ्गोपाङ्ग पढ़ने में पुराने समय में बारह वर्ष लगते थे। तभी तो वह वेदों के अपूर्व पण्डित बनते थे। आज ४ वेदों के इस प्रकार पढ़ने की शैली देश से उठजाने के कारण वेदविद्या लुप्तसी होरही है।

(७) "आचार्य्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे तोउसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर" ॥

कई देशोंमें आजकल कई आचार्य प्रायः अंध श्रद्धा के प्रचारक बनगये हैं और अनेक शिष्य लोग गुरु आज्ञा सेवनही परम सौभाग्य समझतेहैं चाहे वह आज्ञा कैसीही धर्मरहित क्यों न हो। युरुप का इतिहास बतलाता है कि सुधारक मारटन लूथर से पहिले ईसाई धर्म के कई गुरु लोगों ने कई शताब्दियों तक अपने शिष्यों में अन्ध श्रद्धा का प्रचार किया। और इतिहास में इसको अन्धकार का समय कहा जाता है।

ऋषि लोग मनुष्य स्वभाव से पूर्ण-विज्ञ थे वह जानते थे कि यदि आचार्य्यों और पढ़ाने वालों के सब अनिष्ट वाक्यों को भी शिष्य सर्वांशमें मान कर उन पर आचरण करने लग जावेंगे तो शिक्षकों को जहां अन्ध श्रद्धालु और कुकर्मी शिष्य बनाने का निरंकुश होनेसे अवसर मिल जावेगा वहां वह उच्च उद्देश्य जो समाजमें विद्या और सदाचार की वृद्धि का है, लुप्त हो जावेगा । इसी लिये उन्होंने बालक को ऐसे गुरु से सावधान रहने के लिये जो उपदेश दिया वह अत्यंत उपयोगी है, जिन माता पिताओं ने सीधे स्पष्ट शब्दों में यह समझ रक्खा है कि हे बालक ! शिक्षक का मान करना, उसकी धर्मयुक्त आज्ञा पालन में तत्पर रहना, पर यदि कभी तुम्हारा शिक्षक तुमसे कोई अधर्म कार्य्य कराना चाहे तो खबरदार ! ऐसे समय उसका कभी कहा नहीं मानना और उसके कहने से अधर्म नहीं करना । जिस प्रकार राजभक्त—शूरवीर सिपाही राजा महाराजाओं के तन रक्षक होते हैं । उसी प्रकार ऋषियों की यह सच्ची बात, ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों को अन्ध श्रद्धा और कुकर्म से बचानेवाली, तन रक्षकके समान है और सदैव होगी ।

कोई मनुष्य चाहे कितना भी विद्वान् और सदाचारी प्रसिद्ध हो पर अन्त को मनुष्य है यदि वह निरंकुश है तो उसका गिरना संभव है । यही नहीं कि इस उपदेश के होने से केवल शिष्य दुराचार से बचसक्ते हैं किन्तु सदाचारी आचार्य्योंके आचार की इसी से भारी रक्षा हो सकती है, क्योंकि आचार्य्य को भय रहेगा कि यदि मैं धर्म से रहित कोई भी कर्म करने को कहूंगा तो आशा नहीं कि बालक मेरे कहने में फसे और बालक के आगे मुझे पतित होना पड़ेगा । यह ऐसी अपूर्व शिक्षा थी जो बच्चे को जहां एक तरफ सावधान होने का उपदेश देती थी वहां दूसरी ओर आचार्य्य पर अंकुश का काम देती थी । बड़े २ अनुभवी विद्वानों का कथन है कि प्रायः एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अंकुश से पाप करने में प्रवृत्त नहीं होता । छोटे बच्चे जिस बात को अधर्म समझ गये वा सुन गये हैं वह बात यदि कोई उनका धर्म कह कर मनवाना वा कराना चाहे तो परस्पर विरोध का भाव देख कर वह बालक शंका करदेते हैं । बालक की यह शंका करने की शक्ति ही अंकुश का काम देती है । कल्पना कीजिये कि एक बालक को माता पिताने घरमें पांच वर्ष की अवस्था में यह समझा दिया कि हे बालक! तूने गुरुकुल में नंगा होकर किसी अन्य नग्न मनुष्य के साथ नहीं सोना । अब बालक गुरुकुल वा विद्यालय में गया तब भी उसने यह उपदेश किसी और से सुना और फिर कुछ मास पीछे यदि कोई शिक्षक उसको किसी नग्न मनुष्य के साथ नग्न होकर सोने के लिये कहे तो उस समय उसको प्रतीत होने लगेगा कि अमुक बात से यह विरुद्ध बात है । उस के मन में उस समय शंका उत्पन्न होगी जो कि स्वाभाविक अंकुश रूप होने से उस खोटी आज्ञा के पालन न करने को कह रही है । ऐसी दशा में यदि बालक कहेगा कि यह अधर्म है मैं नहीं करूंगा तो शिक्षक की मानसिक मलिनता को दूर करने के लिये यह नकार बड़ा काम कर जावेगा । इस नकार—रूपी अंकुश—से शिष्य और शिक्षक दोनों कुकर्म से बचसकेंगे ।

आजकल अंगरेज़ी की छोटी २ पुस्तकों में छोटे २ लड़के लड़कियों के लिये ऐसे ऐसे पाठ लिखे और पढ़ाए जाते हैं जिन में बालकों को नकार (no) कहां करना चाहिये, सिखाया जाता है। उन सब पाठों में लिखा होता है कि जो "नो" (नकार) का सदुपयोग जानता है, वह शूरवीर है। चोरी करने, मदिरा पीने आदि अनेक कुकर्मों के लिये यदि कोई तुमसे कहे तो हे बालको! तुमने वहां " ना " (नकार) कहना, ऐसा २ लिखा रहता है। सर्व सभ्य देशों में सत्य वचन कहां कहना और उस के साथ " नो " (नकार) कहां कहना चाहिये, इस की शिक्षा आजकल छोटे बालकों को उत्तमता से दीजाती है, क्या अंगरेज़ी पुस्तक के पाठ साधारण तौर पर उपदेश नहीं देते कि यदि कोई भी बालक को चोरी करने के लिये कहे तो उसका कहा बालक को नहीं मानना चाहिये, कथा इस प्रकार के कथन में मास्टर आदि सबका समावेश नहीं हो जाता! ऋषियों ने इससे कुछ अधिक स्पष्ट शब्दों में ब्रह्मचारी के लिये उपदेश रक्खा कि यदि साधारण मनुष्य नहीं किन्तु बालक का गुरु भी उसको अधर्म करने के लिये कहे तो वहां उस (नकार) को कहना चाहिये और उस कुकर्म को कभी करना नहीं चाहिये ॥

(८) क्रोध करना और अनृत कहना वर्जित है।

(१) क्रोधी बालक का शरीर पुष्ट नहीं होता क्योंकि क्रोध से भूख कम होजाती है। (२) क्रोधी की बुद्धि निर्बल होने लगती है। (३) क्रोध के वेगमें अपशब्द कहदेनेसे गाली देने का स्वभाव होजाता है। (४) क्रोधके वेग को शमन न करने से मारपीट वा हिंसा में प्रवृत्ति होती है। (५) क्रोधी का क्रोध शान्त होने पर पश्चात्ताप होता है जो इस बात की सूचना है कि वह क्रोधके वेगको धारण न करे। (६) क्रोध करते रहने से सहन शक्ति और क्षमा वृत्तिका ह्रास होता है। इत्यादि कारण शिक्षक वा पिता माता आदिबालकों को अनेक विध समझाते रहें, जिन से उनको क्रोध के दोष स्वयं अनुभव होने लग जावें ॥

मिथ्या भाषण के दोष यह हैं —

(१) मिथ्याभाषण करने वाले को कोई विश्वास नहीं करता और दूसरों से जो सहायता उसको मिलनी चाहिये वह नहीं मिलती,। जिस के न मिलने से वह अपनी उन्नति करनहीं सकता, वा यों कहो कि कार्य्य सिद्धि नहीं होती।

(२) झूठ बोलने से मन अत्यन्त निर्बल होजाता है, कारण कि झूठे के मन में सदैव भय इस बात का बना रहता है कि उसका झूठ किसी पर न खुल जावे और भय से बढ़कर मानसिक रोग कोई नहीं है। (३) झूठे के मुखकी कांति और निद्रा कम हो जाती है। (४) झूठा अपयश का भागी बनता है।

(९) मैथुन वर्जित है:—

स्त्रीका ध्यान[1], कथा[2], स्पर्श[3], क्रीड़ा[4], दर्शन[5], आलिङ्गन[6], एकान्तवास[7] और समागम[8] यह आठ प्रकार के मैथुन ब्रह्मचारियों के कहे हैं।

१—जिस समय मनमें स्त्री का ध्यान आवे उस समय ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व बोधक मन्त्र वा श्लोक उच्चारण करे तथा मनमें अन्य शुभ विचार भर देने चाहिये ।

२, विषय वर्द्धक जहां पर कथा कहानी होती हो वहांसे चला आवे वा वहां न जावे। थियेटर वा नाटक न देखे, न थियेटर वालों का गान सुने । (३) जो जो स्पर्श, विषय वासना को उत्तेजना देने वाले हैं उन २ से बचे । स्नान करते समय वा शौच वा रोग के समय उपस्थ इन्द्रिय को हाथ से धोना वर्जित नहीं । मेलों में जहाँ भीड़ होती है और जहाँ धक्के दिये विना गुज़रना कठिन होता है ऐसी जगहों से वा जहां २ स्त्रियों के स्पर्शन आदि का अवसर मिलता हो उन २से बचे । बाजार आदि में भी स्त्री से छूकर चलना ठीक नहीं । सावधानी से मेला, उत्सवों तथा बाज़ारों में चलना चाहिये ॥

(४)क्रीड़ा से अभिप्राय-लड़के लड़कियों के परस्पर ऐसे खेल कूद से है जो विषय वर्द्धक हों।

(५) स्त्री दर्शन से अभिप्राय कुदर्शन से है। पुराने समय में रोज़ ब्रह्मचारी ग्राम में भिक्षा माँगने जाया करते थे उनको स्त्रियों के दर्शन तो होते थे परन्तु विषय दृष्टि से ताड़ने का निषेध है। युरूप में विद्यार्थियों को नग्न तसवीरें देखने से रोका जाता है। इस लिये कुदर्शन दो प्रकार का समझना चाहिये । (१) नग्न स्त्रियों को विषय दृष्टि से ताड़ना (२) अश्लील प्रतिबिम्ब (फोटो) वा तसवीरों का देखना ।

आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, इनके विषय में अधिक लेखकी आवश्यकता नहीं। माता पिता को प्रथम से ही बालकों को, यह बातें स्पष्ट शब्दों में उनको सुना देनी चाहियें और आचार्य्य आदि समय२ पर उपदेश देते रहें जिस से वह जितेन्द्रिय होसकें ।

(१०) भूमि पर शयन करने का उपदेश है । इस लिये कि समचौरस भूमि बदन की नस नाड़ी को अच्छी प्रकार फैलनेमें सहायता देतीहै और कोमल न होने से वीर्य्य रक्षा में भी सहायक है । इसी कारण एक प्रसिद्ध लेखक "एस, स्टाल" "युवा बालक को क्या जानना चाहिये" इस पुस्तकके पृष्ठ १७३ पर सख्त विस्तरे पर सोने को लिखते हैं।

भूमि पर सोना भी, इसी हेतु से है कि मैथुनवासना की उत्तेजना कम हो, उपयोगी है ।

पुराने आर्य्य गुरुकुलों में दुमँजले मकानों की दृढ़ छत्तों पर बालकों को चौमासे में सुलाते होंगे वा खाट के आकार समान ऊँचे चबूतरे मट्टी वा चूने (गच) के बनवा छोड़ते होंगे, कोई कह नहीं सकता । आजकल साधुलोग लंबी चौकी (तख़्त) पर इसी प्रयोजन से सोते हैं ।

चौमासे में सीली भूमि पर यदि सोया जावे तो सीलेपन से कमर दर्द के रोग के अतिरिक्त सर्प बिच्छू तथा कनखजूरा आदि जंतुओं के काटने का भारी भय बना रहता—वर्षा के मौसम में कोई मकोड़े और अनेक प्रकार के जंतु बहुत चलते हैं।

सरदी में जबतक पर्य्याप्त रुई के गद्दे नीचे न हों तब तक सो नहीं सकते। गुजरात देश में पंजाब से अधिक रिवाज भूमि पर शयन करने का है, पर लोग इतने मोटे रुईके गद्दे डालते हैं कि सरदियों में शीत का भय नहीं रहता। बहुत से लोग सुन्दर पक्के दुमंजले मकानों की छत्तों पर सुरक्षित भूमि पर (गुजरात देश में)बहुत मोटे गद्दे डालकर सोते हैं ॥

सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओं से बचकर यदि किसी प्रकार से समचौरस उत्तम भूमि पर मनुष्य सो सके तो चिन्ता नहीं। ऊंची, नीची भूमि पर सोने से अन्न नहीं पचता, सिर दुखता है, जिस से विद्या प्राप्ति में विघ्न आता है। आर्य्यसमाजके गुरुकुलों में जो काष्ठकी चौकी (तख़्त) पर ब्रह्मचारियों को साधुओं के समान सुलाया जाता है यह उत्तम प्रकारहै। कारण कि काष्ठकी चौकी उत्तम भूमि समान कठोर और सम चौरस होतीहै और ऊंची होने से सर्प आदि जन्तुओं का भय भी नहीं रहता, युरप के डाक्टर ब्रह्मचर्य्य के लिये जिस कड़े बिस्तरे का उपदेश देतेहैं वह चौकी से बढ़ कर क्या हो सकता है। इस लिये चौकी पर सोना ऋषियों के उस उद्देश्य को, जो भूमि शयन से पूरा हो सकता था,कर रहा है।

(११) गाना बजाना, नृत्य, गन्ध और अंजन सेवन न करने का उपदेश है।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है के विषय वासना के वृद्धिकारक गीत न गाये जावें, नृत्य आदि कर्म न किये जावें और इतर आदि गन्ध तथा अञ्जन शृंगार चेष्टासे काम में न लाये जावें। साम गान करने और रोगनिवृत्तिके समय चंदन आदि गन्ध का लेप करने वा सुरखी आदि नेत्र रोगके निमित्त अञ्जन आदि औषधवत् प्रयोग करने का निषेध नहीं है।

(१२) अतिस्नान, अति भोजन, अतिनिद्रा, अति जागरण, निन्दा, लोभ,मोह, भय शोक इनका ग्रहण ब्रह्मचारी न करे।

एक बड़े विद्वान् का वचन है कि बच्चे उसी कामको करते हैं जो उनके गुरु माता पिता आदि आचरण में लाते हैं, यदि गुरुजन मर्य्यादा से जीवन व्यतीत करने वाले और लोभ आदि दोषों से मुक्त हैं तो निश्चय जानिये कि उन के छात्र अवश्य इससूत्र के अनुगामी हो सकेंगे। युरुपमें सुनीति शिक्षणकी उत्तम पुस्तकोंमें यह माना गयाहैकि बालकों को मर्य्यादा से चलाने और शोक आदि मानसिक रोगों से मुक्त रखने के लिये सबसे भारी ज़रूरत यहहै कि शिक्षक लोग स्कूल वा बोर्डिङ्गहौस में अपने आचरण से उन को शिक्षण दें। युरुप में सैकड़ों ऐसे बोर्डिङ्गहौस हैं जहां उच्च जीवन की शिक्षा विद्यार्थी अपने शिक्षकों के आचरण से आयुभरके लिये ग्रहण करते हैं। जहां एक ओर शब्द द्वारा उपदेश की ज़रूरत है वहां दूसरी ओर गुरु अपने आचरण से उस शब्द को सार्थक बना सकता है।

(१३) रात्रि के चौथे प्रहरमें जाग, आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, संध्योपासन, ईश्वरस्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्यकिया कर। यह उपदेशहै। रात्रि के पिछले प्रहरमें जागने वाले की आयु बढ़ती और आलस्य नष्ट

१—जिस समय मनमें स्त्री का ध्यान आवे उस समय ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व बोधक मन्त्र वा श्लोक उच्चारण करे तथा मनमें अन्य शुभ विचार भर देने चाहियें ।

२, विषय वर्द्धक जहां पर कथा कहानी होती हो वहांसे चला आवे वा वहां न जावे। थियेटर वा नाटक न देखे, न थियेटर वालों का गान सुने । (३) जो जो स्पर्श, विषय वासना को उत्तेजना देने वाले हैं उन २ से बचे । स्नान करते समय वा शौच वा रोग के समय उपस्थ-इन्द्रिय को हाथ से धोना वर्जित नहीं । मेलों में जहाँ भीड़ होती है और जहाँ धक्के दिये विना गुज़रना कठिन होता है ऐसी जगहों से वा जहां २ स्त्रियों के स्पर्शन आदि का अवसर मिलता हो उन २ से बचे । बाजार आदि में भी स्त्री से छूकर चलना ठीक नहीं । सावधानी से मेला, उत्सवों तथा बाज़ारों में चलना चाहिये ॥

(४)क्रीड़ा से अभिप्राय-लड़के लड़कियों के परस्पर ऐसे खेल कूद से है जो विषय वर्द्धक हों ।

(५) स्त्री दर्शन से अभिप्राय कुदर्शन से है । पुराने समय में रोज़ ब्रह्मचारी ग्राम में भिक्षा माँगने जाया करते थे उनको स्त्रियों के दर्शन तो होते थे परन्तु विषय दृष्टि से ताड़ने का निषेध है । युरूप में विद्यार्थियों को नग्न तसवीरें देखने से रोका जाता है । इस लिये कुदर्शन दो प्रकार का समझना चाहिये । (१) नग्न स्त्रियों को विषय दृष्टि से ताड़ना (२) अश्लील प्रतिबिम्ब (फोटो) वा तसवीरों का देखना ।

आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, इनके विषय में अधिक लेखकी आवश्यकता नहीं । माता पिता को प्रथम से ही बालकों को, यह बातें स्पष्ट शब्दों में उनको सुना देनी चाहियें और आचार्य्य आदि समय२ पर उपदेश देते रहें जिस से वह जितेन्द्रिय होसकें ।

(१०) भूमि पर शयन करने का उपदेश है । इस लिये कि समचौरस भूमि बदन की नस नाड़ी को अच्छी प्रकार फैलनेमें सहायता देतीहै और कोमल न होने से वीर्य्य रक्षा में भी सहायक है । इसी कारण एक प्रसिद्ध लेखक "एस, स्टाल" "युवा बालक को क्या जानना चाहिये" इस पुस्तकके पृष्ठ १७३ पर सख्त बिस्तरे पर सोने को लिखते हैं। भूमि पर सोना भी, इसी हेतु से है कि मैथुनवासना की उत्तेजना कम हो, उपयोगी है ।

पुराने आर्य्य गुरुकुलों में दुमँजले मकानों की दृढ़ छत्तों पर बालकों को चौमासे में सुलाते होंगे वा खाट के आकार समान ऊँचे चबूतरे मट्टी वा चूने (गच) के बनवा छोड़ते होंगे, कोई कह नहीं सकता । आजकल साधुलोग लंबी चौकी (तख़्त) पर इसी प्रयोजन से सोते हैं ।

चौमासे में सीली भूमि पर यदि सोया जावे तो सीलेपन से कमर दर्द के रोग के अतिरिक्त सर्प बिच्छू तथा कनखजूरा आदि जंतुओं के काटने का भारी भय बना रहता—वर्षा के मौसम में कीड़े मकोड़े और अनेक प्रकार के जंतु बहुत सताते हैं।

सरदी में जबतक पर्य्याप्त रुई के गद्दे नीचे न हों तब तक सो नहीं सकते। गुजरात देश में पंजाब से अधिक रिवाज भूमि पर शयन करने का है, पर लोग इतने मोटे रुई के गद्दे डालते हैं कि सरदियों में शीत का भय नहीं रहता। बहुत से लोग सुन्दर पक्के दुमंजले मकानों की छतों पर सुरक्षित भूमि पर (गुजरात देश में)बहुत मोटे गद्दे डालकर सोते हैं॥

सर्प, विच्छू आदि जन्तुओं से बचकर यदि किसी प्रकार से समचौरस उत्तम भूमि पर मनुष्य सो सके तो चिन्ता नहीं। ऊंची, नीची भूमि पर सोने से अन्न नहीं पचता, सिर दुखता है, जिस से विद्या प्राप्ति में विघ्न आता है। आर्य्यसमाजके गुरुकुलों में जो काष्ठकी चौकी (तख़्त) पर ब्रह्मचारियों को साधुओं के समान सुलाया जाता है यह उत्तम प्रकारहै। कारण कि काष्ठकी चौकी उत्तम भूमि समान कठोर और सम चौरस होतीहै और ऊंची होने से सर्प आदि जन्तुओं का भय भी नहीं रहता, युरुप के डाक्टर ब्रह्मचर्य्य के लिये जिस कड़े बिस्तरे का उपदेश देतेहैं वह चौकी से बढ़ कर क्या हो सकता है! इस लिये चौकी पर सोना ऋषियों के उस उद्देश्य को, जो भूमि शयन से पूरा हो सकता था,कर रहा है।

(११) गाना बजाना, नृत्य, गन्ध और अंजन सेवन न करने का उपदेश है।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है के विषय वासना के वृद्धिकारक गीत न गाये जावें, नृत्य आदि कर्म न किये जावें और इतर आदि गन्ध तथा अञ्जन शृंगार चेष्टासे काम में न लाये जावें। साम गान करने और रोगनिवृत्तिके समय चंदन आदि गन्ध का लेप करने वा सुरखी आदि नेत्र रोगके निमित्त अञ्जन आदि औषधवत् प्रयोग करने का निषेध नहीं है।

(१२) अतिस्नान, अति भोजन, अतिनिद्रा, अति जागरण, निन्दा, लोभ,मोह, भय शोक इनका ग्रहण ब्रह्मचारी न करे।

एक बड़े विद्वान् का वचन है कि बच्चे उसी कामको करते हैं जो उनके गुरु माता पिता आदि आचरण में लाते हैं, यदि गुरुजन मर्य्यादा से जीवन व्यतीत करने वाले और लोभ आदि दोषों से मुक्त हैं तो निश्चय जानिये कि उन के छात्र अवश्य इससूत्र के अनुगामी हो सकेंगे। युरुपमें सुनीति शिक्षणकी उत्तम पुस्तकोंमें यह माना गयाहै कि बालकों को मर्य्यादा से चलाने और शोक आदि मानसिक रोगों से मुक्त रखने के लिये सबसे भारी ज़रूरत यहहै कि शिक्षक लोग स्कूल वा बोर्डिङ्गहौस में अपने आचरण से उन को शिक्षण दें। युरुप में सैकड़ों ऐसे बोर्डिङ्गहौस हैं जहां उच्च जीवन की शिक्षा विद्यार्थी अपने शिक्षकों के आचरण से आयु भरके लिये ग्रहण करते हैं। जहां एक ओर शब्द द्वारा उपदेश की ज़रूरत है वहां दूसरी ओर गुरु अपने आचरण से उस शब्द को सार्थक बना सकता है।

(१३) रात्रि के चौथे प्रहरमें जाग, आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वरस्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्यक्रिया कर। यह उपदेशहै। रात्रि के पिछले प्रहरमें जागने वाले की आयु बढ़ती और आलस्य नष्ट

होता है। मलमूत्र त्यागनार्थ जंगलमें जाना पुरानी रीति है। बड़े शहरों को छोड़ कर सर्व भारतवर्ष में आजतक ग्रामों के लोग प्रायः जंगल में शौच के लिये जाते हैं। पुराने समय में सड़कें साफ करने वाले वा झाड़ू लगाने वाले मनुष्य तो इस देश में थे पर मैला उठाने वाले भंगी न थे। इसी लिये संस्कृतमें मैला उठाने वाले के लिये शब्द नहीं है। पुराने समय में ग्रामों के गृहस्थ नर-नारी तो जंगलों में शौचार्थ जाते थे। बड़े २ नगरों में भी जंगल जाने वाले बहुत होते थे, पर कहीं २ संडास भी होते थे। इन संडासों को भंगी साफ नहीं करते थे किन्तु नमक (क्षार) आदि डालने से वह मलको भस्म करदेते थे। आजकल ब्रिटिश रेजमेंटोंमें ट्रैंच सिस्टम कई वर्ष से जारी है अर्थात् सिपाही लोग एक नाली जो ५० फीट लंबी और २ फुट चौड़ी और दो फुट गहरी खोदते हैं। मल त्यागन के पश्चात् उसको मिट्टी से पूरदेते हैं। फिर दूसरे दिन नई खोद लेते हैं। जब सब खेत भरगया तो ३ वा ४ साल उसपर घास कृषि आदि के लिये छोड़ देते हैं। युरुप आदि देशोंके बड़े नगरों में आज कल नल द्वारा, पानी के वेग से मल समुद्र वा दरया, नदी आदिमें कलायंत्र से अन्दर २ पहुंचाया जाता है। किसी मनुष्य को मल उठाने के काम करने की आज कल के सभ्य देशों के बड़े २ नगरों में ज़रूरत नहीं और न पुराने समय में थी। ग्रामों के रहने वाले पुराने समयमें और आज कल भी प्रायः जंगलही जाते हैं मुसलमानों की औरतों को खुले मुंह ज़ंगल में जाना कठिन था इस लिये उन्हों ने अपनी औरतों के लिये घर के बीच में "जाय ज़रूर„ (आवश्यक स्थान) "पाखाना" (घरका निचला भाग) आदि बनाए। यह शब्द फार्सी भाषा के हैं। फिर धीरे २ हिंदु लोगों ने इनकी नक़ल की। अब अंगरेज़ी सभ्यता के प्रभाव से नल यंत्रद्वारा मल को नगर से दूर ले जाने के साधन बड़े २ नगरों में बढ़ेंगे, ऐसी आशा है, जिस से मनुष्य जाति का एक भाग भंगी होने से पूर्व काल के समान बच सकेगा।

गुरुकुलों में ब्रह्मचारियों को जंगल में शौच निमित्त भेजना ठीक है, रोगी ब्रह्मचारी के लिए संडास की ज़रूरत है। संडास ऐसे होने चाहियें जिन की ऊपर की आधी छत न हो, ताकि सूर्य की रोशनी दोपहर को उस में जा सके और नमक, कलई आदि डालना चाहिए, ताकि मल भस्म रूप होसके।

इस सूत्र के संस्कृत पाठ पर दृष्टि देने के लिये हम सर्व जिज्ञासुओं से प्रार्थना करते हैं। सूत्र के देखने से निश्चय हो जावेगा कि सन्ध्योपासन आदि शब्द विद्यमान हैं। मूर्त्तिपूजा की गन्धभी इस में नहीं। यही नहीं, परंच अन्य सूत्र ग्रन्थों में भी संध्या उपासना का ही विधान है।

(१४) इस सूत्र में क्षौर कर्म वर्जन किया गया।
(१५) मांस, रूखा शुष्क अन्न न खावे और मद्यादि न पीवे।

आर्य्यभोजन क्या था? इस का उपदेश इस सूत्र में मिलता है अब तो युरुप के विद्वान् मदिरा मांस से रहित आहार की महिमा को जानगये हैं। शुष्क अन्न खानेसे

मल नहीं उतरता और आँतों के रोग हो जाते हैं इस लिए भूख से युक्त अन्न खावे॥

(१६) बैल, घोड़ा, हाथी, ऊंट, आदि की सवारी ब्रह्मचारी न करे।

मि० स्टाल अपनी उक्त पुस्तकके पृष्ठ१७३ पर घोड़े की सवारीका निषेध करतेहैं, इस लिए कि नीचे के अंगों में अधिक वीर्य उतरता है। सूत्र का आशय यह है कि इन जानवरों पर तथा इन से चलने वाले यानों (गाड़ियों) में भी सवारी न करे, जानवरों की पीठ पर सवारी करने से वीर्य्यपात का भय है और यान में बैठने से टांगो में बल नहीं बढ़ता, जिस से मनुष्य बलहीन होजाता है।

(१७) "गांव में निवास, जूता और छत्र का धारण मत कर," यह लेख संस्कार-विधि में है।

दो काल भिक्षा लेने को ब्रह्मचारी गुरुओं के साथ ग्राम में जाते ही थे इस लिये निवास का आशय यही हो सका है कि दिन वा रात को गाँव में कहीं सोवे वा ठहरे नहीं।

इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह है कि ग्राम के अन्दर निवास, ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र का धारण न करे। ऐसा ही गोभिलगृह्यसूत्र, के प्रपाठक ३ कंडिका १ सूत्र २५ का अर्थ जर्मनदेश के विद्वान् हरमेन ओलडनबर्ग † और प्रोफेसर मेक्समूलर साहेब ने किया है कि ग्राम में जूता धारण न करे। संस्कारविधि की उपरोक्त भाषा से भी यही अर्थ निकल सकते हैं। जहाँ तक विचार किया जाता है वहाँ तक इस सूत्र का यही आशय अधिक युक्त और भाव पूर्ण प्रतीत होता है कि "ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र का धारण न करे"

पुराने समयमें ग्रामों की सड़कें उत्तम होने से काँटे आदि से रहित होती थीं, इस-लिये ऐसी सड़कों पर जिन में काँटे नहीं ब्रह्मचारियों को नंगे पाँव चलना हानिकारक न था किन्तु पग को दृढ़ करने का साधन था। ग्रामों की सड़कों पर पुराने काल में वृक्ष अवश्य होते थे और प्रातः सायं वह भिक्षा लेने जाते थे जिस समय भूमि भी तपी हुई नहीं होती थी और न सूर्य का ताप शिर पर होता था इस लिये ग्राम में जूते और छत्र धारण का निषेध युक्त प्रतीत होता है। गुरुकुल के मकान वा अहाते में भी जूते की जरूरत नहीं। गुरुकुलके मकान में पग आदि धोकर आसन पर बैठने-तक खड़ाऊं उपयोग में सब ही लाते हैं। निकट के उस जङ्गल में जिस में अधिक काँटे न हों खड़ाओं से बराबर काम चल सकता है। पर कभी ऐसे जंगल में जाना पड़े जिस में अधिक काँटों की संभावना हो तो उस दशा में जूते का निषेध नहीं समझना चाहिये। जब शौचादि जाते समय रक्षा निमित्त दण्ड धारण की आवश्यकता है तो काँटों से पग को कष्ट न पहुंचे और रोग न हो तथा सर्प, बिच्छू आदि के पग पर काटने के भय की निवृत्ति के लिये जूते को यदि पहिना जावे तो उचित है। परन्तु इस का यह आशय नहीं कि गुरुकुल के कंटक रहित स्थल में वा ग्राम की उत्तम

† HERMAUN OLDENBERGE

सड़कों पर भी जूता पहिन कर । घर में लोग शिर नंगे और एक धोती लगाये बैठे रहते हैं पर दरबार, दफ्तर वा रेल आदि की यात्रा के समय पगड़ी लगा, अंगरखा पहिन कर जाते हैं । इसी प्रकार जिस वस्तु के उपयोग की जहाँ जरूरत हो वहाँ पर ही करना और वर्जित स्थान पर न करना ही ठीक है । अतः ग्राम के अन्दर जूता न पहिने और ग्राम से बाहर उक्त दशा में पहिन सक्ता है । पंजाब के एक गुरुकुल में हमने एक ब्रह्मचारी को कई बार बिना जूते के पास के, काँटोंवाले जंगल में शौचार्थ जाते देखा, एक दिन इस ब्रह्मचारी को बड़ा गहरा काँटा चुभा और डाक्टर ने चीर कर निकाला और बालक को बहुत ही कष्ट सहन करना पड़ा। उस दिन से उस गुरुकुल में ब्रह्मचारी काँटों वाले मार्गों से बचने के लिये जूते का उपयोग करने लगगये हैं ।

खड़ाऊं तो लगभग सब ही गुरुकुलों में उपयोग में लाई जाती हैं । अब तो ज्वालापुर (जि० सहारनपुर) में एसे जूते, अनुपदीन (बूट) बने हुए बिकते हैं, जिन का तला काष्ठ का और ऊपर का भाग कंतानी कपड़े का होता है । इन पगरखों को काँटे वाले स्थलों पर उपयोग में ला सकते हैं ।

प्रश्न हो सकता है कि गुरुकुलभूमि अथवा ग्राम के अन्दर जूता पहिना जावे तो दोष ही क्या है । इस के उत्तर में हम कह सकते हैं कि कुछ काल जूता न पहिनाने से ऋषियों का आशय यह था कि पग दृढ़ हों । ग्लडस्टोन "राजमन्त्री इंगलैंड" की पोती घर के आंगन में खेलते समय पग नंगे रखता था । कुछ काल चलते हुए जूता न पहिना जावे इस लिये ऋषियों ने इस सूत्र में यह उपदेश दिया है कि ग्राम के अन्दर जूता न पहिने ।

छत्र भी ग्राम के अन्दर इसी अभिप्राय से वर्जित है कि कुछ २ अभ्यास कष्ट सहन का होता जावे, परन्तु इस का आशय यह नहीं कि दो प्रहर के समय प्रचंड धूप में व्यर्थ चलने से आँख ही खराब कर ली जावें । सूत्रकारों के आशय गंभीर होते हैं उन की व्याख्या और व्याप्ति जहाँ तक उन पर मनन करें युक्त और उपयोगी सिद्ध होती जाती है ॥

---

(१८) इस सूत्र में ऐसा उपदेश है कि विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श न करे और उपस्थेन्द्रिय के स्पर्शन से वीर्यस्खलित कभी न करे अर्थात् "हस्तमैथुन" त्याग दें । वीर्य्य को शरीर में रख के ऊर्ध्वरेता बने ताकि वीर्य्य गिरे नहीं । जिन के मन में वीर्य्य निग्रह की इच्छा तीव्र है वह कभी अपने हाथ से अपनी उपस्थेन्द्रिय का स्पर्शन वा मर्दन वीर्य्य गिराने के लिये नहीं करते । जो इस प्रकार वीर्य गिराते हैं उन को अनेक रोग अवश्य ग्रस लेते हैं । उनकी छाती सुकड़ जाती, आवाज बिगड़ जाती, स्मृति नष्ट होजाती मन शोकातुर रहता, देह से बल उड़जाता, एकान्त

मैंचोरों के समान बैठने में रुचि रहती और नपुंसकपन का रोग होजाता है। यदि उचितसमयपर डाक्टर वा वैद्य को बता कर औषधि नहीं की जावे तो भारी रोगों का होना संभव है। औषधिसेवन और कुचेष्टात्याग से बहुत लाभ होजाता है।

कई लोग कहा करते हैं कि ऋषियों ने "हस्तमैथुन,, से बालकों को बचाने का उपदेश कहीं नहीं किया, वे जरा निम्न सूत्र का पाठ कर जावें।

गोभिल गृह्यसूत्र प्रपाठक ३, कंडिका १ के सूत्र २६ में इसी भाव का बोधक यह सूत्र है कि:—"स्वयमिन्द्रियमोचनम्" जिस का भावार्थ यह है कि इन्द्रियमोचन अर्थात् अपने हाथ से मर्दन कर के वीर्य्य छोड़े नहीं।

——::——

(१९) तैलादि से अंग मर्दन, उबटना, अतिखट्टा-इमली आदि, अति तीखी-लालमरिचो आदि, कसेला-हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमाल गोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। यह लेख संस्कार विधि में है। ऊपर के लेख में यदि तैलादि शब्द के आगे उबटना शब्द रक्खा जावे और मर्दन के आगे से हटा दिया जावे तो वाक्यरचना अधिक उत्तम होसकती है। मूल संस्कृत सूत्र पर विचार करने से विदित होता है कि तेल से अभ्यंगमर्दन का निषेध है। अभ्यंगमर्दन से तात्पर्य्य तैल की मालिश से है जैसा के मल्ल (पहलवान) लोग करते हैं अथवा चोट आदि लगने पर विशेष रूप से की जाती है। जिस प्रकार इसी सूत्र में "अति अम्ल,, (अधिक खटाई) "अति तिक्त, अधिक तीखे पदार्थ खाने का निषेध है उसी-प्रकार तैल की अति मालिश का भी निषेध है। साधारण रीति से जैसा गृहस्थी लोग बालकों के तैल मलते हैं, उस का निषेध नहीं। तैल साधारण रीति से भी मला हुआ शरीर के अनेक त्वचा के रोगों का नाश करता हुआ शरीर को पुष्टि देता है और कान में डालते रहने से कर्ण रोग नहीं होते। आयुर्वेद में स्नान से पूर्व तेल लगाने के बहुत लाभ लिखे हैं। पश्चिम के डाक्टर ह्यूफलेंड साहेब का वचन है कि तेल का मलना बहुत हितकारी है। अनुभव से देखा जाता है कि शीतकाल में यदि मनुष्य तेल शरीर पर न मलें तो चमड़ा कड़ा हो कर फटने लगता है और बालकों को तो कभी २ असह्य वेदना सहनी पड़ती है साधारण रीति से तैल लगाने वाले को फुंसी आदि चर्म रोग नही होते यह आयुर्वेद का दृढ़ मत है॥

——::——

(२०) नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो। यह उपदेश संस्कार विधि में लिखा है। सूत्र की मूलसंस्कृत में जो विहार शब्द है उस के अर्थ हिंदी में खेल कूद वा सैर के होते हैं। एक संस्कृत कोष में विहार शब्द के लिये परिक्रम शब्द दिया है। जिस के अर्थ प्रायः बोलचाल में सैर के होते हैं तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारियों को आल्हाद युक्त खेल कूद वा सैर आदि के लिये नियत

समय मिलना चाहिये ताकि उन के मन में उत्साह और हर्ष बना रहे। व्यायाम और विहार में भेद है। अंगरेजी में व्यायाम के लिये EXERCISE और विहारके लिये RECREATION शब्द पृथक् २ हैं। व्यायाम का विहार अंग है ऐसा यरुप आदि देशों में भी माना जाता है।

—*—

(२१) सुशील, थोड़ा बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर—यह लेख संस्कारविधि में है। मूल संस्कृत में जो "मितभाषी" शब्द है उसका अर्थ ऊपर के लेख में "थोड़ा बोलने वाला किया गया है और कोई भ्रान्ति से यह समझ सकता है कि ब्रह्मचारियों को अधिक मौन रहने का उपदेश है। पर मूल सूत्र में मितभाषी शब्द से मर्य्यादा युक्त बोलने का विधानहै। इस लिये मर्य्यादा से बोलन का विधान है ऐसा समझना चाहिये, अधिक मौन और बकवाद का निषेध है।

—*—

(२२) मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये, वे नित्य न करने के कर्म हैं। यह लेख संस्कार विधि में है।

मूलसूत्र में "विद्यासंचय-जितेन्द्रियत्वादीनि" ये शब्द भी हैं जिन के अर्थ छूट गये हैं अतः—

"विद्यासंचय, जितेन्द्रिय रहना आदि" यह भी उपरोक्त अर्थों में जोड़ देने चाहियें॥

भिक्षाऽऽचरण

जब पिता यह उपदेश कर चुके तब बालक भिक्षा मांगे।

मुफ़्त और लाज़मी शिक्षण आज कल के समय में प्राइमरी या मिडिल श्रेणियों तक कई सभ्य देशों में दिया जाताहै मुफ़्त शिक्षण का भार राजा और प्रजा दोनों पर होता है। पुराने समय में शिक्षणसम्बन्धी जो भार प्रजा पर था उसका एक भाग शिक्षकमंडल, प्रजा से आप सञ्चित करता था और उस सञ्चय को परिभाषा में "भिक्षाचरण" कहते थे। आजकल जब किसी देशीयविद्यालयके लिये देश के वृद्ध पुरुषों को धनके सञ्चितकरनेकी जब कभी ज़रूरत होती है तो तब वह वृद्धपुरुष एक "भिक्षामंडली" जिसको अंगरेज़ी में "डेपुटेशन" कहतेहैं, बनाकर निकलतेहैं। उक्त डेपुटेशन वा भिक्षामंडलीका सभासद् होना लोग अपना गौरवसमझतेहैं। पुराने समयमें रोज़ प्रत्येक ग्राम केअन्दर ब्रह्मचारियोंकी भिक्षामंडलीवाडेपुटेशननिकला करताथा औरप्रत्येकब्रह्मचारी जैसाकि मनुआदि स्मृतिकार और सर्वसूत्रकार लिखते हैं भिक्षा का आचरण अपना कर्तव्य समझता था। जब कोई आलसियों की भिक्षा मंडली न थी जिसका कि निरादर हो यह तो

देश के नौनिहाल, प्राण प्यारे और आंखों के तारे, अपने २ नगर वा ग्राम से मानो उन गुरुओं की ओरसे जिन्हों ने मुफ्त और लाज़मी तालीम देने का आयुभर व्रत धारण कर लिया है, गुरुकुलों के चलानेके लिये आर्थिक सहायता लेने जाते थे। गुरु विद्यादान देते थे और बालकों के माता पिता अन्न धनादि का दान विद्यादान को चलाने के प्रयोजन से करतेथे। ब्रह्मादेश में एक भी लड़का लड़की इस समय अशिक्षित आपको नहीं मिलेगा इसके कारण केवल दो ही हैं—

(१) तो यह कि ब्रह्मादेश के गुरुकुलों में शिक्षक लोग मुफ्त और लाज़मी तौर पर शिक्षण देते हैं जिनको संस्कृतके एक शब्द में विद्यादान कह सकते हैं।

(२) प्रजाकेलोग विद्यादानके निमित्त अन्नदान करते हैं।

कभी समय आवेगा कि लोग विद्यादान का महत्त्व समझेंगे उससमय वह स्वयं विद्यादान की प्रथा को जीवित रखने के लिये विद्यालयोंमें अन्नादि दान करना कर्त्तव्य समझेंगे॥

विद्यादान (मुफ्त तालीम) का आधार भिक्षाचरण तथा राजकीय सहायता परहै जिस देशमें तालीम लाज़मी और मुफत होगी वहां प्रजा, चाहे कर चाहे दानद्वारा धन देवें, दिये विना वह रह नहीं सकती। ऋषियों की विद्यादान और भिक्षाचरणकी प्रथा आज पर्य्यंत ब्रह्मा देश में है और इसका कितना उत्तम फल है कि ब्रह्मादेश में एकभी बालक अशिक्षित नहीं है †।

शेष क्रिया इस भिक्षाचरण के पश्चात् बालक को शुभ आसन पर बैठाकर वामदेव्यगानको करना चाहिये। फिर बालक भिक्षा में से भोजनकरे तत्पश्चात् विशेष होम सायंकाल करे। इस होम में ४ विशेष आहुति हैं। पहिली तथा दूसरी आहुति के मन्त्र मेधा की उन्नति सम्बन्धी हैं। तीसरी आहुति ऋषियों को आदरार्थ है जिसका प्रयोजन यह है के मेधावी और सदाचारी ऋषियों का आदर करने से ही विद्या बुद्धि की प्राप्ति होसकती है। चौथी आहुति मान त्याग की सूचक है। फिर १२ आहुतियों का विधान है तत्पश्चात् शिष्य अपने गोत्र को कह कर नमस्कार करे। फिर आचार्य्य आशीर्वाद देता है। इस के पीछे आचार्य्य और बालक दोनों भोजन करें और संस्कार में आमंत्रित पुरुष स्त्रियों को यथा योग्य भोजन करा उनको विदा करें और सब जाते समय बालक को आशीर्वाद दें।

३ दिन की क्रिया तत्पश्चात् ब्रह्मचारी को ३ दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सायं "ओमग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र से समिधा होम और मुखादि अंग स्पर्श आचार्य्य करावे। तथा तीन दिन (सदसस्पति०)

---

† गुजरात देश के एक महाविद्वान् लेखक ने एक मेगज़ीन में लेख लिखकर दर्शाया है कि इस समय ब्रह्मादेश की स्त्रियां विदुषी और गुणवती इसी शिक्षण प्रणाली के कारण हैं॥

इत्यादि ४ स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारीके हाथ से करावे और ३ दिन तक क्षार लवण रहित भोजन किया करे, तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य्य भी करे।

इस प्रकार का लेख संस्कार विधि में है। ३ दिन तक यह विशेष हवन आदि क्यों करे यह प्रश्न हो सकता है, इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यह इस लिये ताकि नये मन पर अधिक प्रभाव पड़े। क्षार लवण आदि पदार्थ वीर्य्य वर्द्धक नहीं है वीर्य्य वर्द्धक पदार्थ ही बुद्धिपोषक हैं इस लिये ३ दिन के लिये ऐसा करने को कहा है। कोई कह सकता है कि जब यह बात है तो क्षार लवण आदि कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये। नहीं यह बात भी नहीं होसकती—जो पदार्थ वीर्य्य वर्द्धक हैं वह मिठास का गुण रखने से आंतों में कई प्रकार के कृमियों को उत्पन्न होने का अवकाश देते हैं उनकीनिवृत्ति के लिये लवण का मर्य्यादा से सेवन हितकर है।

उपनयन वा वेदारंभ संस्कार सम्बन्धी शंकाएं और उनके उत्तर

(प्रश्न) यज्ञोपवीत तथा वेदारंभ संस्कार क्या कन्याओं और शूद्रों के लिये नहीं हैं।

(उत्तर) हैं। सत्यार्थ प्रकाश स० ३ में महर्षि दयानन्दजी ने वेद मन्त्र के प्रमाण तथा अनेक अखंड युक्तियों द्वारा सिद्ध कर दियाहै कि वेद पढ़ने, सुनने का अधिकार मनुष्य मात्र को है।

पुरुषार्थ प्रकाश नामी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में से २० प्रमाण यहां पर देने हम उपयुक्त समझते हैं। वहां तो अनेक प्रमाण शास्त्रों के और भी दियेहुए हैं उन्हें सत्य के प्रेमी जन वहां देखसकते हैं। †

(१) आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति

आपस्तंब धर्म सूत्र अ० ११ खं० १९

(अर्थ) स्त्री और शूद्रको अथर्व वेद पढ़ाना चाहिये।

---

† विद्वद्वर्य्य भारत भूषण श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी सरस्वती तथा श्री स्वामी नित्यानन्द जी सरस्वती कृत यह ग्रन्थ है। आर्य्यसमाज अजमेर के पते से यह ग्रन्थ मिल सक्ता है।

(२) ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत् क्षत्रं पंचदशो विशः सप्तदशः शौद्रो वर्ण एक विंशः ॥

ऐतरेय ब्राह्मण पं०—८ अ० १।

(अर्थ) ब्राह्मण ६, क्षत्रिय १५, वैश्य १७ और शूद्र २१ अग्निष्टोम करे। इस से सिद्ध हुआ कि शूद्र को यज्ञद्वारा वेदाऽध्ययन का अधिकार है।

(३) ऋग्वेद मंडल १० अनुवाक ३ सूक्त ३० से ३४ तक का मन्त्र द्रष्टा ऋषि

"कवष ऐलूष"

हुआ है। और "कवष ऐलूष" जन्म से शूद्र था यह बात ऐत० ब्रा० की पंचिका २ अ० ३ में है।

(४) एहीति ब्राह्मणस्यागत्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य।

शतपथ का० १ प्र० १ अ १ ब्रा० ४ कं० ११।

(अर्थ) चारोंवर्ण वेद मंत्रों से यज्ञकी हवि को शुद्ध करें।

(५) हविष्कृदेहीति ब्राह्मणस्य हविष्कृदागहीति राजन्यस्य हविष्कृदाद्रवेति वैश्यस्य हविष्कृदाधावेति शूद्रस्य प्रथमं वाव सर्वेषाम्।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र प्र० १ का० १६॥

(अर्थ) यज्ञ के विधान में पूर्वोक्त पृथक् २ मन्त्रों से चारों वर्ण हवि शुद्धकरें इस से शूद्र को वेदाधिकार का होना सिद्ध होता है।

(६) आचान्तोदकाय गौरिति नापितस्त्रो ब्रूयात् ॥ मुंच गा वरुण पाशात्

गोभिलीय० सू० प्र० ४ कं० १० ॥

(अर्थ) पूर्वोक्त मन्त्र हज्जाम (नापित) को सुनावे इस से हज्जाम को जोकि शूद्र है वेदाधिकार सिद्ध होता है।

(७) तयैवावृता निषादस्थपतिं याजयेत् ॥ आप० श्रौ० सू० प्र० ६ कां० ६४

(अर्थ) पहिले जिस यज्ञ का प्रतिपादन किया है वह सर्व निषाद (अतिशूद्र) से कराना। 'सावित्रीपुरोऽनुवाक्या' इस सूत्रसे गायत्री मन्त्रका शूद्रको अधिकार है।

(८) फलार्थत्वात्कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारंस्यात्। ४। पूर्वमीमांसा अ० ६ पा० १

(अर्थ) विद्याध्ययन तथा यज्ञ आदि कर्म मनुष्यमात्र को फल देते हैं। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र वा अंत्यज हो। जो विद्या पढ़ेगा पढ़ने व यज्ञ करने वाला उस को विद्या आयेगी। जो यज्ञ करेगा वह, उस का फल पायेगा और उस पर उस का शुभ प्रभाव पड़ेगा।

(९) शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ॥ १ ॥ पारस्कर गृ० कां० २ पृ० ६०

(अर्थ) जो शूद्र दुष्ट कर्म करने वाला न होवे तो उस का उपनयन संस्कार करना चाहिये।

दुष्टकर्म करने वाले ब्राह्मणादि का उपनयन नहीं करना इस के लिए देखो आप॰ तं॰ सू॰ प्र॰ १. ५० सू॰ ५।

(१०) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳩ शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय च। यजुर्वेद अ॰ २६ मं॰ २॥

(अर्थ) परमेश्वर उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, [अरण] अतिशूद्र अर्थात् (अरर आराकर्मणि) अंत्यज आदि सर्व मनुष्यमात्र के लिए वेद का उपदेश करता हूं उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम भी करो।

कन्याओं को अधिकार है

(१) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ अथर्ववेद कां॰ ११ अनु॰ ३ व॰ ५

(अर्थ) वेदाध्ययन व्रत पालन की हुई विदुषी, युवती कन्या, युवापति से विवाह करे।

(२) समानं ब्रह्मचर्यम्॥ श्रौतसूत्र पटल ४ कं॰ १५॥

(अर्थ) स्त्री पुरुषका ब्रह्मचर्य समान होना चाहिए।

(३) ऋग्वेद मं॰ १ अनु॰ २३ सू॰ १७६ की प्रचारिका (ऋषि) लोपा मुद्रा हुई है। और मं॰ ८ अनु॰ ६ सूत्र ६१ की ऋषि अपाला देवी हुई थी।

(४) अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत............

बृह॰ उपनिषद् अ॰ ८ ब्रा॰ ४॥

(अर्थ) जो मनुष्य इच्छा करे कि मेरे विदुषी कन्या उत्पन्न हो तो वह चावल पकाकर उस में घी डाल कर पति पत्नी दोनों खावें।

(५) इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य॥ अथर्ववेद कां॰ १६ अनु॰ ७ व॰ ५८

इस यज्ञ को पत्नी सहित करो।

(६) यच्चाम्नायो विदध्यात्॥ गोभि॰ गृ॰ प्र॰ १ क॰ ६।

(अर्थ) स्त्री आम्नाय (वेद) को पढ़े॥

(७) प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन्जपेत् सोमोऽददद् गन्धर्वायेति॥

गोभि॰ गृ॰ प्र॰ २ कां॰ १

(अर्थ) जो कन्या उत्तम वस्त्रों से (प्रावृत) आच्छादित और (यज्ञोपवीतिनीम्) यज्ञोपवीत धारण की हुई हो उस को विवाह शाला में लावे और "सोमोऽददद्" इत्यादि मन्त्रों को वर बोले, इस से कन्या का उपनयनाधिकार स्पष्ट सिद्ध ही है।

(८) स्त्रियश्चानुपनीताश्चानुपनीताश्च॥ पारस्करगृह्यसूत्र प॰ ८६॥

इस से कन्याओं के उपनयन संस्कार का विधान स्पष्ट है

(९) उत्तरोत्तरिकवाचो । व्याहारयेयु र्यावतीरधिगच्छेयुः ॥ २० ॥ लाट्या० श्रौ० प्र०४ कं० २ ।

इस सूत्र की टीका में लिखा है कि (शास्त्राण्यधिकृत्य कथाः कारयेयुरिति) वे-दासियां परस्पर शास्त्रकी कथा करें । इससे शूद्रों को भी, वेद आदि शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार सिद्ध होता है ।

(१०) फलवत्तां च दर्शयति ॥ २१ ॥ पूर्वमीमांसा अ० ६ पा० १ ॥

इस से स्त्री पुरुष दोनों को यज्ञ का समान अधिकार है ।

लोकमान्य, श्रीमंतमहाराजा साहेब बड़ोदा का प्रयोग सफल हुआ

यह बात सब को याद रखनी चाहिए जैसी पुरुषार्थ प्रकाश में लिखी है कि —

" आंख को बोलने का अधिकार नहीं " तो लाख यत्न करने पर भी " आंख बोल नहीं सकेगी " इसी प्रकार कन्या, स्त्री, दासी, शूद्र, अतिशूद्र यदि इन को विद्या तथा वेदादि शास्त्रों के पढ़ने, यज्ञ तथा षोडश संस्कार करने का अधिकार ईश्वर ने न दिया होता तो कोई भी कन्या, स्त्री दासी, शूद्र, तथा अति शूद्र आज करोड़ यत्न करने पर भी पढ़ न सकता ।

इस समय भारत भूषण लोकमान्य श्रीमंत महाराजा साहेब गायकवाड़ बड़ौदा, ने जो प्रयोग (तजुर्बा) अंत्यज बालकों को सुशिक्षित करनेका कर रखा है वह १० वर्ष के अन्दरही सफलता को प्राप्त हो रहा है जिस से सिद्ध होता है कि अंत्यज भी बराबर विद्या और शास्त्रों के पढ़ने के अधिकारी हैं इस समय १७००० अन्त्यज लड़-कियां बड़ौदा राज्य में ३०० अन्त्यज स्कूलों में शिक्षण पा रही हैं । २०० अन्त्यज वि-द्वान् मास्टरों का काम कर रहे हैं । चार अन्त्यज ट्रेनिंग कालेज की परीक्षाएं पास किए हुए अंत्यज स्कूलों के असिस्टंट डिपटीइन्स्पेक्टर के काम पर नियुक्त हैं । बड़ौदा नगर के अन्त्यज बोर्डिङ्गहौस में ३५ लड़के और १५ लड़कियां हैं । यह लड़के लड़कियां, वेदपाठ, सन्ध्या, हवन यज्ञ, दो काल करते हैं इतवार के रोज निकट के ग्रामों में कभी २ जा २ कर लैकचर देते हैं । ५ बोर्डर हाईस्कल में अंगरेजी और संस्कृत भी पढ़ते हैं ।

सतारा निवासी श्रीयुत राय वैजनाथसाहब जज ने जब इस अंत्यज बोर्डिङ्गहौस बड़ो-दा को देखा तो उन्हों ने यह सम्मति प्रकट की कि—

"बोर्डरों की शकल से कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह अंत्यज जाति के बालक हैं वह वेद मन्त्रों का पाठ, सन्ध्या, गायत्री, ऐसी अच्छी करते हैं, जैसी कि कोई ब्राह्मण का लड़का कर सके "

इस के अतिरिक्त भारतवर्ष के प्रान्तों के अनेक अनुभवी विद्वानों ने बड़ोदा में अंत्यज स्कूलों और बोर्डिङ्ग हौसों को देखा, सब के सब यही कहते हैं कि श्रीमंत म-

हाराजा साहेब गायकवाड़ का प्रयोग सफल हुआ और यह बात प्रत्यक्ष होगई कि अंत्यज बालक गुजराती, हिंदी, संस्कृत और अंगरेज़ी उत्तमता से द्विजों के बालकोंके समान पढ़ रहे हैं।

श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी की व्याख्या—

वेदारम्भ सँस्कार में पिता की ओर से जो सूत्रों में उपदेश किये गये हैं, उनकी व्याख्या जो हम पूर्व लिख आये हैं, उसको कई लोग जिन्होंने आन्दोलन (रीसर्च) नहीं किया, हम पर खेंचतान का दोष लगाने को तय्यार होजावेंगे। इसलिये इस लेख द्वारा हम अपनी व्याख्या की पुष्टि में जो कुछ सामग्री है वह नीचे निवेदन करेंगे, जिसके पाठ से निष्पक्ष सज्जनों को विदित हो सकेगा कि उन सूत्रों की हमारी व्याख्या युक्त ही हैं।

गोभिल गृह्यसूत्र के संस्कृत तथा हिंदी भाष्य में से जो ब्रह्म प्रेस इटावा में छपा है हम भारत भूषण विद्वद्वर्य्य श्री पण्डित सत्य वृत सामश्रमी जी की संस्कृत व्याख्या तथा श्री उदयनारायण जी वर्मा का नागरी अनुवाद देते हुए दिखायंगे कि इन सूत्रों के आशय क्या हैं।

(गोभिल० प्र० ३ खं० १ सूत्र १८, १६)

उपरिशय्याम् ॥ १८ ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि ॥ १६ ॥ यह मूल सूत्र हैं।

इसकी " व्याख्या " श्री सत्यवृत सामश्रमी जी यह करते हैं:——

" 'उपरिशय्यां', गुरुशय्याया उच्चैः शयनं वर्जय। इतिपञ्चमोपदेशः १८॥

कौशीलवं नृत्यगीतवादित्राद्यनुष्ठानम्' गन्धः घृष्टमलयजादिको माल्याद्युत्थञ्च अञ्जनम् चक्षुषोः शोभासम्पादकम्, एतान्यपि त्रीणि वर्जय। अत्रापि यथाचाध्ययनस्य व्याघातकरो मनोजाविर्भावः स्यादेवं कौशीलवादिकम् वर्जयेत न तु सामादिगीतवादित्रचर्चां नापि गुरुप्रसादगन्धमालादि, न च रोगाद्युपशमनायाञ्जनव्यवहारं वर्जयेत्। अतएव मनुनाऽभ्यधायि 'यःस्रग्व्यपि द्विजोऽधीते " ' (१६)

" गुरु की शय्या की अपेक्षा अपनी शय्या ऊंची न करना ॥१८॥ जिससे मनोविकार उत्पन्न हो, ऐसा नृत्य, गीत, बाजा, आदि की चर्चा, चन्दन और मालादिगन्ध का व्यवहार एवं आंखों में अंजन धारण आदि न करना ॥ १६ ॥

हमने जो ऊपर नागरी अनुवाद किया है वह भावार्थरूप में है अक्षरार्थ नहीं था सत्यवृत सामश्रमी जी की " संस्कृत व्याख्या,, का अक्षरार्थ नीचे हम लिखते हैं

जिससे मनो विकार उत्पन्न हो ऐसा नृत्यगीत बाजा आदि की चर्चा, चन्दन और मालादि गन्धका व्यवहार, एवं आंखों में शोभाकारक अंजन, यह तीन भी

वर्जित हैं। यहां भी अध्ययन आदि में हानि कारक, मनोविकार उत्पन्न करने वाला कौशीलव आदि वर्जित है, नकि साम आदि गीत, बाजा आदि की चर्चा, और न गुरु का प्रसाद रूप गन्ध माला आदि वर्जित हैं। और न रोग आदि के शांत करने के लिये अंजन का लगाना वर्जित है। इसीलिये मनु ने भी कहा है 'यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते ॥

मूल सूत्र—

क्षुरकृत्यम् ॥ २२ ॥

अन्तर्ग्राम उपानहोर्धारणम् ॥ २५ ॥

'क्षुरकृत्यम्' क्षुरेण केशलोमादीनां वापनं वर्जय ॥ २२ ॥

'अन्तर्ग्रामे' ग्राममध्ये 'उपानहोः' चर्मपादुकयोः 'धारणम' वर्जय २५॥

"क्षुर (उस्तरा) के द्वारा केश, लोम आदि का मुण्डन न करावे,, ॥ २२ ॥

"ग्राम के मध्य होकर जूता न पहिने „ ॥ २५ ॥

(नोट) ब्रह्मचर्य काल में उस्तरे से क्षौर कराने का निषेध है। यदि महीने में एक वार कैंची से बाल कटाये जावें तो कोई हानि नहीं ऋषियों का आशय यह नहीं हो सकता कि सिर में मैल वा जूएँ पड़ जायं और न उनको आशय यह होसकता है कि उस्तरे से खत बनाते हुए शृंगार करते रहैं। केवल स्वच्छता के लिये आवश्यकतानुसार कैंची से बाल कटाते रहें।

स्वयमिन्द्रियमोचनमिति ॥ २६ ॥

'स्वयमिन्द्रियमोचनम्, " हस्तमैथुनञ्च वर्जयेत्येव " ॥ २६ ॥

"हस्त मैथुन न करना। † यह दुर्गुण आज कल स्कूल एवं कालेज के लड़कों में अधिकांश पाया जाता है इसका कारण शिक्षा का अभाव है „ ॥

इति वेदारम्भ व्याख्या।

—:*:०:*:◌:*:०:*:—

वेदारम्भ सं० सम्बन्धि-विवरण।

(१) " उपरि शय्यां वर्जय " के अर्थ जो श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने किये हैं। उसके अनुसार ब्रह्मचारी मुंज आदि से बुनी हुई खाटों पर सो सके हैं, गुरु की खाट उनकी खाट से ऊंची रहनी चाहिये। बोर्डिंग हौसों का जो हमें कुछ अनु-

† यह अनुवाद कर्ता महोदय का नोट है जो हमने उन के अनुवाद के साथ ही उपयोगी समझकर उद्धृत कर दिया ॥

भव है उसके अनुसार हम कह सक्ते है कि खाट शीघ्र ढीली हो जाती हैं और उनके कसने आदि के रगड़े से बचने के लिये काष्ठशय्या (तख्त) जो गुरुकुलोंमें उपयोग की जाती हैं, बहुत अच्छी हैं।

(२) गोभिलगृह्यसूत्र में गोदान (समावर्तन) संस्कार के लेख के अन्तर्गत एक स्थल पर ऐसा विधान है कि पीने का जल कूप का होना चाहिये। और जब २ जरूरत हो तुर्त भरा जावे। उत्तम कूपके जल में नल के जल से भी भारी लाभ यह है कि गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में स्वयं गरम होता है। कोयले और बरफ पर जो पैसा खर्च होता है वह बच सक्ता है। बड़े २ नगरों में नल जारी हो गये हैं, पर ग्रामों में तो कूप जल ही काम देता है और यदि किसी गुरुकुल में नल भी हो तो भी एक कूप अवश्य निकट की उत्तम भूमि में पीने के पानी के लिये होना चाहिये। कई अंगरेज कूपों को काष्ठ के सरपोश से ढक देते हैं ऐसे कूपों का जल, वायु के बन्द होने से खराब होजाताहै। वृक्षके पत्ते कूपमें गिरनेसे बचाने के लिये जैसे हवन कुण्ड के ऊपर छतरी सी बना देते हैं वैसे बना देनी ठीक है। जिस कूप से पीने का जल भरना हो उस पर स्नान करना, कपड़े धोने, कुंडों में पानी भरना नहीं चाहिये। राख वा मट्टी से मंजा हुआ डोल धोने के लिये कूप में नहीं डालना चाहिये। लोहे की संगली से बंधा हुआ लोहे का डोल पानी खेंचने के लिये काम में लाना चाहिये। भूलकर भी चरसा वा बोका वा चर्म डोल पीने के कूप में नहीं डालना चाहिये। अमृतसर के सुप्रसिद्ध डाक्टर मेलरोनी का कथन है कि चमड़े का बना हुआ बरतन कभी कूपमें नहीं डालना चाहिये और नहीं मशक (चर्मपात्र) में रखा हुआ पानी कभी पीना चाहिये। अमृतसर तहसील के सब सरकारी हस्पतालोंके कूपों पर लोहे के डोल, लोहे की शृंखला से बंधे हुए उपयोग किये जाते हैं। गुजरात और युक्त प्रान्त में कूओं पर चरखी नहीं होती—जिस प्रकार पंजाब में कूओं पर चरखियें (भोनिएं) होती हैं वे सर्वत्र होनी चाहियें।

(३) स्मृतियों में लिखा है कि नंगे होकर स्नान नहीं करना चाहिये उसका केवल आशय यही है कि दूसरों के सामने वा खुली जगह में जहाँ पर दूसरों के आने जाने की संभावना है नग्न नहीं न्हाना चाहिये। स्नानगृह में दरवाजा बंद करके नग्न स्नान करने में कोई दोष नहीं।

(४) आज कल साबुन का उपयोग बहुत चल गया है परन्तु उस के साथ शरीर पर तैल मलने की प्रथा उड़ गई है। बड़े २ डाक्टरों का कथन है कि साबुन से रोज न्हाना ठीक नहीं। जो लोग अंगोछे से वा धोती से स्नान करते समय शरीर वा पग हाथ, युक्ति से कोमल रीति से रगड़ लेते हैं उनको साबुन की आवश्यकता पड़ती ही नहीं। विलायत में कई डाक्टर दो अंगोछे रखते हैं एक से शरीर मलते हैं दूसरे से पूंछते हैं। शिर और मुख पर तो साबुन लगाने की ज़रूरत ही नहीं, आमले भिगो कर उस के पानी से शिर तथा मुख धोना आयुर्वेद के अनुसार बहुत हितकर है। शिर

पर लगाने के लिये खालिस सरसों का तैल वा तिलका तैल वा नारियल का तैल हितकर हैं।

(५) आसन (बैठने की वस्तु) कई प्रकार के हैं। संध्या के लिये कुशासन, वा तृणासन (चटाई), ऊर्णासन (कंबल)। काष्ठासन (बैंच) इत्यादि।

विष्टर भी एक उत्तम प्रकार का आसन होता है। इसको चौकी वा कुर्सी भी कह सकते हैं।

पुस्तक रखने की घोड़ी को टेबल वा मेज कहते हैं। धरणी हिंदी में कह सकते हैं। जो जो वस्तु उपयोग में आवे उस २ को हिन्दी शब्द से पुकारना चाहिये। गुजराती में रजिष्टर को पत्रक कहते हैं।

(६) सोने, खाने, हवन संध्या के कमरों (कोठों) में मट्टी का तैल नहीं जलाना चाहिये। मोमबत्ती का काम सरसों वा अरंडीका तैल देता है।

इति वेदारम्भ संस्कार विवरणम् ॥

अथ समावर्त्तन संस्कार विधिः ॥

—०—:*:०:*:—०—
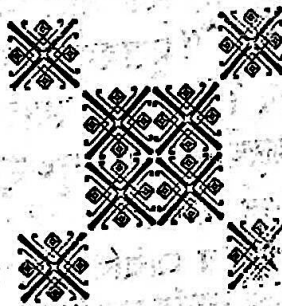
समावर्तन संस्कार उसको कहतेहैं कि जो ब्रह्मचर्य्यव्रत, साङ्गोपाङ्ग वेद विद्या, उत्तमशिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विवाहविधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ के घर की ओर आना। इसमें प्रमाणः—

वेदसमाप्तिं वाचयीत। आश्व० गृ० सू० अ०१ क० २२ सू०१६। कल्याणैः सह सम्प्रयोगः। आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २३ सू० २०। स्नातकायोपस्थिताय। राज्ञे च। आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च। दधनि मध्वानीय। सर्पिर्वा मध्वलाभे। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः। आश्व० गृ० सू० अ०१ क० २४ स० २–७।

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र - तथा पारस्करगृह्यसूत्रः—

वेदꣳ समाप्य स्नायाद्॥ १ " ब्रह्मचर्यं वाऽष्टचत्वारिꣳशकम्। २। पार० कां० २ कं० ६ सू० १–२। त्रय एव स्नातका भवन्ति। विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति। पार० गृ० सू० कां०२ कं०५ सू०३२–३५

जब वेदों की समाप्त हो तब समावर्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। राजा आचार्य श्वशुर चाचा और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूरण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल (अर्घ्यम्) मुखप्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिये जल दे के शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा सहत, न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्रमें धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रतस्नातक ये तीन * प्रकार के स्नातक

---

* जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्यव्रत को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक, जो ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रत स्नातक कहाता है।

होते हैं इस कारण वेद समाप्ति और ४८ अड़तालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्यावूतस्नान करे ॥

तानि कल्पद ब्रूह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व० कां० ११ । प्रपा० २४ व० १६ । मं० २६ ॥

(१) अर्थः—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम वूत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन, वीर्य्यनिग्रह, आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् (अग्रिम रीति से) स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त हो के पृथिवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है ॥

जब विद्या, हस्तक्रिया ब्रह्मचर्य वूत पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर दूसरा अपना घर दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार का विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे।

विधिः—जो शुभ दिन समावर्तन का नियत करे उस दिन आचार्य्य के घर में यज्ञ कुण्ड आदि बना के सब शाकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थालीपाक बना के घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खे पुनः यथाविधि ४ चारों दिशाओं में आसन बिछा बठ ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरणकरें और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त हो के ईश्वर ध्यान में मग्न होवें तत्पश्चात् अग्न्याधान समिदाधान करके वेदी के चारों ओर उदकसेचनकरके आसनपर पूर्वाभिमुख आचार्य बैठ के आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति चार और सामान्य प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति ८ और स्विष्टकृत् आहुति १ एक और प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिलके १८ अठारह आज्याहुति देवें तत्पश्चात ब्रह्मचारी वेदारम्भोक्त (ओं अग्ने सुश्रवः०) इत्यादि से वेदारम्भोक्त यज्ञ स्पर्शान्त विधि कर के पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए ८ (२) आठ घड़े वेदी के उत्तर भाग में जो पूर्व से रक्खे हुए हों उनमें से:—

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहाऽस्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ खं० ७ मं० १—तथा पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० १० ।

(१) ऐसी जगह अर्थ शब्द से तात्पर्यार्थ जानना चाहिये

(२) मूल भाषोक्त समस्त विधि, पारस्कर गृ० सू० के अनुसार है।

इस मन्त्र को पढ़, एक घड़े को ग्रहण करके उस घड़े में से जल ले के—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मण ब्रह्मवर्चसाय ॥ पार० गृ० कां० २ कं० ६—सू० ११ ।

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना फिर उपरि कथित (ओं ये अप्स्वन्तर०) इस मन्त्रको बोल के दूसरे घड़े को ले उस में से लोटे में जल ले के—

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता ँ सुरान् । येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥ पार०गृ० सू० कां० २ कं० ६ सू० १२ तथा सा० मं० ब्रा० प्र० १ खं० ७ मं० ५ ।

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के (ओं ये अप्स्व-न्तर०) इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे घड़ों में से ३ तीन घड़ों को ले के उपनयनप्रकरणोक्त (आपो हि ष्ठा०३) इन ३ तीन मत्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना । तत्पश्चात् ८ आठ घड़ों में से रहे हुए ३ तीन घड़ों को ले के (ओं आपो हि०) इन्हीं ३ तीन मन्त्रों को † मन में बोल के स्नान करे पुनः—

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यम ँ श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ यजु० अ० १२ मं० १२ (पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० १५)

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़े, तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सम्मुख खड़ा रह कर ॥

ओं उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥१॥ उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रं मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥ २ ॥ उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मागमय ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० १६ ।

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान स्तुति कर के तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन करा के:—

ओ३म् अन्नाद्याय व्यूहध्व ँ सोमो राजाऽयमागमत् । स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ॥ पार० गृ० का० २ कं० ६ सू० १७।

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे । तत्पश्चात्

† देखो-पार० गृ० सू० का २ कं० ६ सू० १४ ।

सुगन्धि द्रव्य शरीरपर मल के शुद्ध जल से स्नान कर शरीरको पोंछ अधो वस्त्र अर्थात धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्धयुक्त चन्दनादि का अनुलपन करे तत्पश्चात नासिका, चक्षु और कान के छिद्रों का:—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥ पार० गृ० सू० का० २क० ६ सू० १८॥

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख होके।

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥ यजु० अ० १९-मं० ३६॥ (पार० गृ० सू० का० २ क० ६ सू० १९)

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होके:—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयास ँ सुवर्चा मुखेन। सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० ६-सू० १९।

इस मन्त्र का जप करके:—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ पार०गृ०सू०का० २ क०६ सू० २०

इस मन्त्र से सुन्दर अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण करके:—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च माऽविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ पार०गृ०का०२ क०६स०२१।

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके:—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० ६ सू० २३ ॥

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके:—

ओं यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेन संग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥ पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० २४।

इस मन्त्र से धारण करनी, पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी, दुपट्टा, या टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में ले के उपनयन प्रकरणोक्त "युवा सुवासाः०" इस मन्त्र से धारण करे उस के पश्चात् अलंकार ले के:—

ओम् अलंकरणमसि भूयोऽलंकरणं भूयात् ॥
पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० २६ ॥

इस मन्त्र से धारण करे और—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥
पार० गृ० सू० का० २ क० ६ स० २७ (यजु० अ० ४ मं० ३)

इस मन्त्र से आंख में अंजन करना तत्पश्चात्:—

ओं रोचिष्णुरसि ॥ पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ स० २८ ॥

इस मन्त्र से दर्पणमें मुखका अवलोकन करे तत्पश्चात्:—

ओं बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहि ॥
पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० २९।

इस मन्त्र से छत्रधारण करे पुनः—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ॥ पार० गृ० सू० का० २ कं० ६ सू० ३०

इस मन्त्रसे जूता जोड़ा धारण करे, तत्पश्चात्:—

ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः॥ पार०गृ०सू०का०२ कं०६स०३१।

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे उस को बड़े मान प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर ला के उन के पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार करें पुनः उस संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्नपानादि से सत्कार पूर्वक भोजन करा के और वह ब्रह्मचारी और उस के माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला वस्त्र गोदान धन आदि को दक्षिणा यथाशक्ति दे के सब के सामने आचार्य के जो उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा करें और विद्यादान की कृतज्ञता सब को सुनावे।

इति समावर्त्तनसंस्कारविधिः ।
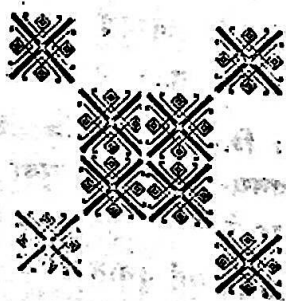
समावर्तन संस्कार के संस्कृत भागकी व्याख्याः—

[पृ० २]

(गोह्यः) जो ढका हुआ हो (उपगोह्यः) जो शरीर को तपाने वालाहो (मयूषः) जो प्राणियों का नाशक हो (मनोहा) जो मन के उत्साह का भंग करने वाला हो (अस्खलः) अजीर्ण करने वाला (विरुजः) विविध प्रकार से पीड़ा पहुंचाने वाला (तनुदूषः) शरीर को दूषित करने वाला अर्थात् विगाड़ने वाला (इन्द्रियहा) इन्द्रिय का नाशक (ये, अग्नयः) ये जो ८ प्रकार के अग्निहैं, जो कि (अप्सु, अन्तः) जलों में वा क्रियाओं में भीतर (प्रविष्टाः) घुसे हुए हैं (तान्) उन सब अग्नियों को (विजहामि) छोड़ता हूं (इह) यहां (यः, रोचनः) जो पवित्र मङ्गलकारक है (तम्) उसी अग्नि को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं॥

(पृ० ३) (श्रियै) शोभा वृद्धि के लिए (यशसे) कीर्ति के लिए (ब्रह्मणे) वेद प्रचार के लिए (ब्रह्मवर्चसाय) वैदिक कर्मों के करने से उत्पन्न उत्कृष्ट तेज के लिए (तेन) उस जल से (माम्) अपने आपको (अभि, षिञ्चामि) अच्छे प्रकार स्नान कराता हूं अर्थात् मैं स्वयं जलसे शुद्ध होता हूं॥

हे (अश्विना) विद्वानों के वैद्यो! चीर फाड़ और दवाई देने में निपुण दो प्रकार के वैद्यो! (येन) जिस ओषधिमिश्रित जल के प्रभावसे (सुरान्) देवताओं—विद्वानों के प्रति, आपने (श्रियम्) शोभा को (अकृणुताम्) किया है और (येन) जिस ओषधि मिश्रित जल से (अव, मृशताम्) देवताओं को सुख पहुंचाया है। (येन) जिस ओषधि मिश्रित जल से (अक्षौ) नेत्रों को—नेत्र जैसे कोमलांगों को भी (अभि, अषिञ्चताम्) आर्द्र किया है उसके प्रभाव से (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो [यशः] यश है (तत्) वही यश, ईश्वर करें कि मुझे प्राप्त हो।

"उदुत्तमम्" इस मन्त्र का अर्थ पूर्व "सामान्य प्रकरण" में आ गया

हे परमात्मन्! आप (उद्यन्) अपनी विचित्र लीला द्वारा सर्वत्र प्रकाशमान होते हुए (भ्राजभृष्णुः) सूर्य सदृश अपने प्रकाश से सब प्रकाशकों को दबाने वाले हो और (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्यों के निधान हो, अतः (मरुद्भिः) देवताओं से, सेवित होकर (अस्थात्) स्थित हो (प्रातः) प्रातःकाल (यावभिः) गमनशील—ऋषि उपदेशकों से उपासित हुए (अस्थात्) स्थित हो। हे भगवन्! आप (दशसनिः, असि) दश दिशाओं में सेवा के योग्य हो (मा) मुझे भी (दशसनिम्, कुरु) सब ओर लोगों का सेवनीय बनाओ। (आ, विदन्) शुभ अशुभ कर्मों के जानने वाले आप (मा) मुझे अपने दर्शन की (मायय) प्राप्ति कराओ।

अगले मन्त्रद्वय में केवल "दिवा" आदि ४ शब्द विशेष हैं, जिन के निम्न लिखित अर्थ हैं:—

(दिवा) दिन में (सायम्) सायंकाल (शतसनिम्) सैकड़ों पदार्थों से सेवनीय (सहस्रसनिम्) हज़ारों पदार्थों से सेवनीय । शेष पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

हे सज्जनो ! (अन्नाद्याय) अन्न के खाने लिये (व्यूहध्वम्) दाँत आदि का शोधन करके निर्मल बनो। (अयम्, राजा, सोमः) यह स्वच्छ जल, इसी शुद्धि के लिए (आ, अगमत्) मेरे संमुख लाया गया है। (सः) वह स्वच्छ जल, दन्तधावन के बाद (मे, मुखम्) मेरे मुख की (प्रमार्क्ष्यते) शुद्धि करेगा (च) और (यशसा) अच्छी कीर्ति से (च) और (भगेन) सौभाग्य से युक्त करेगा अर्थात् दन्तादि की शुद्धि होने से सौन्दर्य प्रदान करेगा और स्वच्छता देकर कीर्ति बढ़ावेगा॥

(पृ० ४)हे देव ! (मे) मेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपानवायु को (तर्पय) तृप्त करो। और (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्पय) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्पय) तृप्त करो।

हे (पितरः) पितृतुल्य पूजनीय पुरुषो ! (शुन्धध्वम्) मेरे दिए जल आदि वस्तु से मनः प्रसन्नता रूप शुद्धि को प्राप्त हूजिए।

हे देव ! (अहम्) मैं (अक्षीभ्याम्) नेत्रों से (सुचक्षाः) अच्छे प्रकार देखने वाला (भूयासम्) आपकी कृपा से होऊं। (मुखेन, सुवर्चाः) और मुख से उत्कृष्ट तेज धारण करने वाला, होऊं (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से (सुश्रुत्) अच्छा सुनने वाला (भूयासम्) होऊं॥

" परिधास्यै " इस मन्त्र से नीचे का शुद्ध वस्त्र—धोती आदि धारण करनी चाहिए और "यशसा" इस मन्त्र से उत्तरीय वस्त्र—ऊपर का चद्दर आदि धारण करना चाहिये। यह पार० गृ० सूत्रकार का मत है।

हे सज्जनो ! (परिधास्यै) अपने शरीर को आच्छादित करने के लिए और (यशोधास्य) प्रतिष्ठा के लिए और (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये(रायस्पोषम्) शरीर रूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को (अभि, सं, व्ययिष्ये) मैं—समावृत्त, अच्छे प्रकार धारण किया करूंगा, क्योंकि (पुरूचीः) बहुत पुत्र धनादि से संयुक्त होकर मैं (जरदष्टिः, अस्मि) वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूं। ईश्वर कृपा करे कि मैं (शतं, शरदः, जीवामि) सौ वर्ष पर्यन्त जीवन लाभ करूं।

हे सज्जनो !(द्यावापृथिवी) अन्तरि और पृथिवीलोक (मा) मुझे (यशसा) यश के साथ ही मिलें। (इन्द्राबृहस्पती) धनी और विद्वान्, मुझे (यशसा) कीर्ति के साथ ही प्राप्त हों। (च) और (मा) मुझे (भगः) भजनीय ईश्वर (यशः) यश का (अविन्दत्) लाभ करावे और आप लोग आशीर्वाद दें कि (मा) मुझे (यशः) यश—प्रतिष्ठा (प्रति, पद्यताम्) प्राप्त हो॥

जमदग्निः) अग्निहोत्र स्थानों की रक्षा करने वाले राजा ने (यः) जिन

पुष्प को (श्रद्धाय) धर्मात्माओं में आदर बढ़ाने के लिए और (मेधायै) धारणाशक्ति के लिये (कामाय) इच्छा पूर्ति के लिए और (इन्द्रियाय) इन्द्रियों की प्रसन्नता के लिए (आ हरत) ग्रहण किया है (ताः) वैसे ही पुष्पों को(यशसा) यशके साथ(च) और (भगेन) ऐश्वर्य्य के साथ (अहम्) मैं (प्रति गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। [एक चशब्द वाक्यालंकार में है]

(पृ० ४) (इन्द्रः) ऐश्वर्य सम्पन्न राजा ने (अप्सरसाम्) अप्सु—कर्मसु, सरन्ति—आप्नुवन्तीत्यप्सरसः कार्यकुशलाः—कर्मचारिणस्तेषाम् । क्रियादक्ष कर्मचारियों के बीच में (यद , विपुलं, पृथु, यशः) जिस अत्यन्तविशाल यश को, उन के परितोषार्थ फूलमाला और धनादि देकर (चकार) किया है, मैं भी महाकठिन ब्रह्मचर्यव्रत को पूरा करके (तेन) वैसे ही यश के साथ (संग्रथिताः, सुमनसः) गूंथी हुई इस माला को (आ, बध्नामि) अपने शिरमें या गले में बांधता हूं। ईश्वर करे कि (मयि) मुझ में (यशः) यश हो ॥

हे अलकार ! तू (अलंकरणम्) शोभा देने वाला (असि) है, ईश्वर करे कि मेरे पास (भूयः) फिर भी (अलंकरणम्) रत्नादि अलंकार (भूयात्) हो।

(पृ० ५)

हे परमात्मन् ! आप (वृत्रस्य) नेत्र को आनन्द देने वाले मेघ के (कनीनकः) प्रकाशक—उत्पादक (असि हो। और (चक्षुर्दाः) नेत्र को देने वाले (असि) हो। मैं ऐसे साधनों को काम में लाऊं कि आप (मे) मेरे लिए (चक्षुः) देखने के साधन वा शक्ति को (देहि) दीजिए।

हे दर्पण ! तू (रोचिष्णुः) मुखादि का प्रकाश करने वाला (असि) है।

हे छत्र ! तू (बृहस्पतेः) बड़े राजा आदि का (छदिः, असि) आच्छादक ढकने वाला है। (माम्) मुझे (पाप्मनः) धर्मविरुद्ध, शरीर को क्लेशदेनेरूप पाप से (अन्तः, धेहि) व्यवहित करो—हटाओ, परन्तु [तेजसः] पुरुषार्थ—पराक्रम से और तज्जन्य [यशसः] यश—कीर्ति से [मा] मत (अन्तर्धेहि) हटाओ ॥

हे उपानहौ ! तुम (प्रतिष्ठे, स्थः) काँटे आदि से बचाकर पैरों की ठीक स्थिति करने वाले हो (विश्वतः) सब ओर से (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करो।

हे दण्ड ! (विश्वाभ्यः, नाष्ट्राभ्यः) सब राक्षस अर्थात् दुष्टादिकों से (सर्वतः) सब अवस्थाओं में (मा) मेरी (परि, पाहि) रक्षा कर।

इति समावर्तन संस्कार के संस्कृतभाग की व्याख्या।

समावर्तनसंस्कार का व्याख्याभाग।

" समावर्तन संस्कार उसे कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य्य वृत सांगोपांग वेद विद्या उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त हो कर विवाह विधान पूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ कर घर की ओर आना"

संस्कारविधि में लिखा है कि जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्तन संस्कार करै। यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का अभिप्राय है, इससे पाया जाता है कि एक समय ऐसा उत्तम था कि वेदों की समाप्ति पर लोग समावर्तन संस्कार करते थे। फिर लिखा है कि सदा पुण्यात्मा पुरुषों के साथ सब व्यवहारों में साझा रक्खे। इस का अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर बड़ी सावधानी से काम करै। जो पुण्यात्मा पुरुष हैं उन के ही साथ अथवा उनकी सम्मति द्वारा व्यवहार करै जिससे उसे धन आदि की प्राप्ति और सिद्धि होती रहै; और अपस्वार्थी तथा दम्भी पुरुषों से बचा रहे। आज कल देखने में आता है कि युवा पुरुष अनुभव पूरा न रखने के कारण प्रायः उन आदमियों की संगत में फंस जाते हैं जो कि पुण्यात्मा नहीं होते और अपनी हानि कर बैठते हैं। यूरोप के बडे २ विद्वान् मिलकर काम करने की स्तुति करते हुये नहीं थकते; परन्तु कितनी कम्पनिएँ (वाणिज्यगोष्ठी) कितने कारखाने, कितनी दुकानें क्या इसी लिये आये दिन नहीं टूटती कि मिलकर काम करने वाले पुण्यात्मा नहीं होते! परस्पर प्रीति और सत्य व्यवहार से ही मनुष्य मिलकर काम कर सकते हैं और जो इन सद्गुणों से युक्त हैं उनके साथ ही मिल कर काम करने से वह पुरुष जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता है सफलता प्राप्त कर सकता है। टॉड और कॉबट् से पश्चिमी महोदयों ने अपनी २ पुस्तकों में युवा पुरुषों को बहुत सी उपयोगी शिक्षायें दी हैं और उन्हीं शिक्षाओं का काम यह सूत्र भी दे रहा है। जो लोग यह कहा करते हैं कि पुराने ऋषि केवल योगाभ्यास के ही धनी थे किन्तु मिलकर काम करने का महामन्त्र नहीं जानते थे वह ज़रा इस सूत्र को ध्यान से पढ़ें जिस में स्पष्ट शब्दों में " सहसम्प्रयोगः " लिखकर मिलकर काम करने का पूर्ण महत्व दर्शा दिया है।

अगले सूत्रों में यह बतलाया गया है कि मधुपर्क से इन का सत्कार करना चाहिये— स्नातक, राजा, आचार्य, और चचा और मामा। पहिले विष्टर अर्थात् बैठने की कोई वस्तु आसन, चौकी या कुर्सी आदि देना चाहिये। इसके पश्चात् 'पाद्यम्, अर्थात् पग धोने के लिये जल देना चाहिये।

आजकल भारत वर्ष में यह रीति है कि विवाह आदि के अवसर पर माननीय पुरुषों के पग बरात में धोये जाते हैं। इसके ३ प्रयोजन हैं (१) यह मान सूचक है अर्थात् जब एक पुरुष दूसरे के पग धोने या धुलाने को तैयार है तो इसका भाव यह है कि वह उससे पूर्ण प्रेम करता है क्योंकि पग और पांवों को अपना अधम अंग माना जाता

है जब हम दूसरे मनुष्य के पग धोने वा दबाने को तैयार हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि हमारा इसमें अत्यन्त प्रेम है और बन्धुवत् हम उसको सेवा करने को तैयार हैं। और सेवा का भाव निस्सन्देह प्रेम और हित का सूचक है (२) पगधोने से— जैसा कि आयुर्वेद के ग्रन्थों के अवलोकन से सिद्ध होता है—आंखों की गर्मी दूर होकर शान्ति प्राप्त होती है। यह अनुभवसे भी जाना गयाहै कि जब आखें खबड़ा रहीं हों वा लाल सी हों तो पग धोने सेही शान्त हो जाती हैं (३) मुसाफ़िरी से जब कोई पुरुष थक कर आवे तो उसकी थाक उतारने के लिये पाँव का धोना एक उपाय है। यह बात अनुभव सिद्ध है॥

"अर्घ्यम्" अर्थात् मुख धोने के लिये जल देना। मुख धोने से धूल आदि ही दूर नहीं हो जाती किन्तु शिर की थकावट भी दूर होकर मनुष्य आलस्य रहित हो जाता है और तन्द्रा वा निद्रा नहीं आती।

"आचमनीयम्" आचमन करने से गले की कफ़ आदि की निवृत्ति होती है जिस से प्राण क्रिया भली प्रकार होती रहती है

मधुपर्क के पान करने से वात पित्त और कफ जहां इन दोषों की शान्ति होती है वहां बल की भी वृद्धि होती है। दही पित्त को शान्त करता है,। मधु, कफ़ को और घी वात को पुराने समय मे स्नातक को राजा के बराबर आदर दिया जाता था यही कारण था कि उस समय लोग पूर्ण ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण कर पूर्ण विद्वान् होते थे।

पारस्कर गृह्यसूत्र ने दर्शाया है कि स्नातक तीन प्रकार के होते हैं। एक विद्यास्नातक दूसरे व्रतस्नातक और तीसरे विद्याव्रतस्नातक। जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य्य को न समाप्त कर के स्नान करता है वह विद्या स्नातक है। जो ब्रह्मचर्य्यव्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करताहै वह व्रतस्नातक है जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नानकरता है वह विद्या—व्रत स्नातक कहलाता है।

संस्कारविधि में लिखा है कि "जब विद्या" हस्तक्रिया, ब्रह्मचर्य्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें" इस से पाया जाता है कि महर्षि दयानंद जी स्त्री के लिये भी पुरुष समान समावर्तन का उपदेश दे रहे हैं। और अर्थापत्ति से यह सिद्ध हो गया कि महर्षि कन्याओं के यज्ञोपवीत और वेदारम्भ संस्कार मानते हैं।

समावर्तन संस्कार की जो विधि इसी संस्कार के प्रथम भाग में लिखी है और उसमें जिन मन्त्रों को पढ़कर हवन करने का विधान है उन विशेष मन्त्रों की व्याख्या हम वेदारम्भ संस्कार में कर आये हैं इसलिये उन के सम्बन्ध मे यहां अधिक लेख की आवश्यकता नहीं।

आठ घड़े, वेदी के उत्तर दिशा में जो रक्खे गये हैं उनमें से जल लेकर स्नान करने का विधान है। यह आठ घड़े वेदी से बाहर उत्तर को दिशा में रक्खे जाते हैं

और उसके पास ही स्नान की जगह होती है जिस से उसका न्हानेका, सुभीता हो। इस के अतिरिक्त यह भी विदित है कि उत्तर और पूर्व, तेजप्रधान दिशाएं मानी गई हैं और प्रायः संस्कारों में जो कुछ विशेष क्रिया करनी होती है वह इन दिशाओं में ही करते हैं। अमेरीका के एन्ड्रोजेक्सन डेविस से सुप्रसिद्ध योगी तथा विद्वान् अपनी पुस्तकों में उत्तर और पूर्व दिशा को POSITIVE अर्थात् तेजस्वी और दक्षिण तथा पश्चिम दिशा को NEGATIVE अर्थात् निस्तेज वर्णन करते हैं। प्रश्न उपनिषद् की शैली में यही भाव " प्राण " और " रयि " के नाम से दर्शाया है। सार यह है कि इस स्थल पर इस संस्कार में इस जल का ऐसा वर्णन है कि वह तेज अथवा अग्नि से युक्त तो रहे परन्तु अग्नि के विकारों से रहित हो और इसी लिये उत्तर की ओर का घड़ा रखने से यह दर्शाना है कि इन का जल ऐसा शुद्ध और तेजमय हो जैसे उत्तर दिशा का तेज हितकारी होता है।

ब्रह्मचारी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना है। उसको बड़ा भारी उपदेश यह देना है कि धन, यश, विद्या वृद्धि और सदाचार इन के विना तू कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकेगा और इनकी प्राप्ति का एक मात्र साधन सदुपयोग ही है और दुरुपयोग से वहीवस्तु विषवत् हानिकारक हो जातीहै जो कि सदुपयोगसे अमृतवत सिद्ध होती है। यह बात कहने को तो बहुत सहज है परन्तु गहस्थाश्रम में जहां इन्द्रियों को विशेष व्यवहार में लाना पड़ता है वहां इस का भूल जाना भी अति सहज है। मन को लुभाने वाले इन्द्रियों को प्रत्यक्ष रूप से आनन्द देने वाले विषय उस नर गृहस्थी को जिसने धन और स्त्री प्राप्त की है मर्य्यादा से गिरा कर रोगों और दुःखों में डाल देते हैं। वह वीर्यरूपी अग्नि जो अष्ट प्रकार के मैथुनों को त्याग कर सम्पादन की थी, विषय लम्पटता रूपी दुरुपयोग के कारण आठ प्रकार की दुरवस्थाओं को प्राप्त हो जाने से शारीरिक, मानसिक आदि अनेक प्रकार के रोगों का रूप धारण करती हुई मालूम होती है और वह समग्र रोग आठ श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं।

अग्नि की सब से अधम अवस्था वह है जिस को गुह्य अग्नि कह सकते हैं। इस अवस्था में अग्नि विद्यमान होती हुई भी अपना स्वरूप और प्रभाव नहीं दिखा सकती, और उसका होना न होने के बराबर होता है। जिस मनुष्य ने विषय लम्पटता में अपनी वीर्य्य रूपी अग्नि का अतिव्यय किया वह यद्यपि वीर्य से निःशेष तो नहीं हो जाता किन्तु उसके शरीर में वीर्य अपना प्रत्यक्ष रूप से कोई भी प्रभाव नहीं दिखा सकता। दृष्टान्त की रीति से कहा जा सकता है कि जैसे जलकी अग्नि अति मन्द अवस्था के होने से अपनी सत्ता को पूर्ण रूप से नहीं दिखा सकती। यह दृष्टान्त जहाँ अति उत्तम है वहां पदार्थ विज्ञान के तत्व को भी बोधन कर रहा है। आज पश्चिम के पदार्थविज्ञान शास्त्री मान रहे हैं कि जल में अग्नि गुप्त रूप से विद्यमान रहती है। ऋषियों ने भी इस बात को अनुभव किया था और उपदेश देने के लिये इसी तत्व से यहां दृष्टान्त का काम लिया गया है। घड़े रखने से उन का प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि वह गृहस्थाश्रम के द्वार में जाने वालों को [illegible] इस प्रकार शिक्षा दें कि जहां उनके [illegible] में आठ घड़ों का चिन्हस्मरण हो वहां विषयासक्ति में

गिरने से बच सकें। और इसी लिये उन आठ घड़ों से जल लेकर स्नान करने का विधान किया गया है स्नान तो एक घडे से भी हो सकता था परन्तु आठ घडे अग्नि के दुरुपयोग की आंठ अवस्थाओं के चित्र दर्शक हैं यह बात वह स्मरण रखसकें इस लिये आठ घड़ों में से थोड़ा २ पानी लेकर न्हाने का विधान है।

सब से मन्द अवस्था से कुछ अच्छी अग्नि की वह अवस्था है जिस में वह सेकने पर अथवा पदार्थ के छूने पर प्रतीत होती है। कल्पना करो कि एक पुरुष ने एक साधारण गर्म चाबी लाकर हमारे पास रख दी। चाबी को देखने पर किसीको प्रतीत नहीं होता कि यह गर्म है परन्तु छूते ही छाला पड़ जाता है जिससे उसकी सत्ता का ज्ञान हो जाता है अग्नि की इस साधारण मन्द अवस्था को यहां पर "उपगुह्यः" कहा गया है। जो अत्यन्त विषयासक्त नहीं होते किन्तु मर्य्यादारहित विषय में वीर्य्य की हानि करते हैं उनके मुख आदि पर वीर्य्य का कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं रहता किन्तु जिस प्रकार लोहे के छूने से उसके तपे हुए होने का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार चिकित्सक आदि लोगों को यह ज्ञान हो सकता है कि यह कुछ न कुछ वीर्यवान है "गुह्य" और "उपगुह्य" दोनों अग्नि की अति मंद और मंद अवस्थाएं हैं जो अत्यन्तविषय लम्पट होते हैं उनकी वीर्य्यरूपी अग्नि मानो गुह्य और जो उससे कुछ कम विषयी होते हैं उनकी मानो उपगुह्य सूचक है अत्यन्त वीर्य्यहीन पुरुषों की दशा वा अग्नियों को इन दो नामों से बोधन कराने का अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम में जाने वाला विषयों में आसक्त होकर बलहीन न हो जावे। इन दोनों अवस्थाओं वाले GENERAL DEBELITY सर्वाङ्ग निर्बलता वा महारोग में ग्रस्त रहते हैं

(३) अग्नि की एक दशा वा स्वरूप का नाम ज्वाला है इस अवस्था में अग्नि मन्द नहीं किन्तु प्रचंड होती है। यदि इस प्रचण्ड अग्नि का सदुपयोग न किया जावे तो घर बार सब कुछ जला देती है। शरीर में वीर्य्य की अनेक अवस्थाओं में एक प्रचंड अग्नि जैसी होती है उसका यदि शमन न किया जावे तो वेश्यागमन आदि कुकर्मों में मनुष्य फस जाता है और सोजाक अथवा आतशक रूपी भयंकर अग्नि उस के शरार को धीरे २ नाश करती जाती है। जिस प्रकार अग्नि की उस अवस्था से जब कि वह प्रचंड हो न बचने पर घर आदि जल सकते हैं इसी प्रकार वेश्यागमन आदि से उत्पन्न होने वाली रोग रूपीप्रचंड अग्नि से धीरे २ सर्व शारीरिक संपत्तिनाश हो जाती है उस से बचने की सूचना समावर्तन करने वाले को दीजाती है।

[४] मन अग्नि के परमाणुओं से विशेष कर बना हुआ है मन के स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिये सात्विक आहार खाने और मदिरा तथा दुराचार आदि के त्याग की जरूरत है। सदाचारी मनुष्यों को मानसिक अग्नि उत्साह युक्त बनी रहती है। परनारी गमन, चोरी तथा हिंसा आदि पाप कर्म करने वालों की मानसिक अग्नि वा उत्साह भंग होजाता है, अतएव गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को सदाचारी होना चाहिये और दुराचार को जोकि मनके उत्साह को भंग करनेवाली अग्नि के समान है छोड़ देना चाहिये अर्थात् दुराचार से बचते रहना चाहिये।

मनको रोगी करने वाला भारी शत्रु शोक चिन्ता तथा अति पढ़ना भी है। राजयक्ष्मा जिसको तपेदिक भी कहते हैं प्रायः बड़े तीव्र बुद्धि वाले परन्तु मर्य्यादा रहित पढ़ने का अभ्यास करने वालों को अवश्य ग्रस कर उनके मानसिक उत्साह को नष्ट कर देता है। चरकसंहिता चिकित्सा स्थान अध्याय ८ श्लोक १२ में जो नीचे लिखा हुआ है।

युद्धाध्ययनभाराध्वलंघनप्लवनादिभिः ।
पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वा तथाऽपरैः ॥ १२ ॥

(अर्थ] शक्ति से बढकर युद्ध करने, पढने, भार उठाने, मार्ग चलने, लंघन करने, नदी आदि के वेग को वल पूर्वक तैरने, छलांग मारने, ऊंची जगह से गिरने या कोई भी शक्ति से बढकर काम करने से राजयक्ष्मा हो जाता है। आगे श्लोक २१ में लिखा है कि ईर्षा, उत्कंठा, भय, त्रास, क्रोध शोक अतिकर्षण अर्थात् अति कृशता दुबलापन और अति मैथुन से शुक्र और ओज क्षीण होकर तपेदिक हो जाता है।

[५] जो लोग शारीरिक श्रम नहीं करते वह भोजन नहीं पचा सकते और उनकी अग्नि अन्न को जीर्ण नहीं कर सकती गृहाश्रम में प्रवेश करने वालों को उपदेश है कि यदि वह अजीर्ण करने वाली अग्नि को घड़े की तरह परे फेंकना चाहते हैं तो वह काम धंधा और श्रम को मनकी रुचि से करते रहें व्यायाम व श्रम आदि के करने में नियम से बर्ताव रक्खें।

(६) चरक संहिता १ सूत्रस्थान अ० २० में ४० प्रकार के रोगों का वर्णन है जो पित्त वा अग्नि के विकृत होने से होते हैं। उनमें से अवयवों का फटना, रक्त के चकते पड़ना, लाल रंग के फोड़े, रक्त पित्त, हल्दी का सा रंग होना आदि अनेक रोग हैं। इस अवस्था में अग्नि तत्व शरीर में समता के स्थान में विषम होकर प्रकोप को प्राप्त हो रोग उत्पन्न करता है। उसी प्रकार गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को मन में समता रखनी चाहिये और औषध आदि की युक्ति बीमारीके समय करते रहना चाहिये ताकि विषमता से उत्पन्न होने वाले रोगों से वह बचा रहे।

(७) जिनके शरीर में सुरक्षित वीर्य और ओज रहता है वह न केवल बलवान् ही होते हैं किन्तु कान्ति युक्त भी। जो ओजस्वी नहीं हैं उनके शरीर की सुन्दरता मानो विषय अग्नि विगाड़ रही है।

(८) वीर्य्यवान् वा ओज अग्नि से युक्त मनुष्यकी सर्व इन्द्रियाँ अपने २ कर्म करने में समर्थ होती हैं। जिनके शरीर में वीर्य दूषित होगया है उनकी शारीरिक अग्नि मानों इन्द्रियों की शक्ति को हरण कर लेती है। वृद्धावस्था में अग्नि की न्यूनता के कारण इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं इसलिये गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को जितेन्द्रिय होना चाहिये ताकि उसकी इन्द्रियाँ रोग ग्रस्त वा निर्बल न हों। इन्द्रियों को मर्य्यादा पूर्वक चलाने का नाम ही जितेन्द्रियता है। जिस प्रकार स्नान का मैला पानी स्नातक फेंक रहा है उसी प्रकार वह अपने कर्तव्य से प्रतिज्ञा कर रहा है कि वह—

(१) अत्यन्त निर्बलता रूपी मन्दाग्नि (२] ताप ज्वर कारक उपगुह्य अग्नि (३) वेश्यागमन रूपी प्राण नाशक अग्नि (४) पापकर्म रूपी मानसिक उत्साह नाशक अग्नि (५) आलस्य रूपी अजीर्ण कारक अग्नि (६) विषमता रूपी रोग कारक अग्नि (७) ओज हीनता रूपी सुन्दरता नाशक अग्नि (८) अजितेन्द्रियता रूपी इन्द्रिय नाशक अग्नि इन आठ प्रकार की विकृत अग्नियों को मैले पानी की नाई परे फेंकेगा और सर्व सुख कारक अग्नि का धारण करेगा अर्थात् वह शरीर मन और इन्द्रियों का सदुपयोग करेगा अग्नि वहीहै पर सदुपयोग से वह सुख कारक होजाती है दुरुपयोग और से दुःख दायक :

कोई प्रश्न कर सकता है कि यह तो ठीक है कि आठ प्रकार की दूषित अग्नि वा रोगों तथा पापों से बचना चाहिये पर आठ घड़े रखने की जरूरत क्या थी? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि विशेष प्रभाव पड़े, इसी लिये संसार में कविजन कविता में अलंकार और बुद्धिमान SYMIHOL वा बाह्यचिन्ह दर्शाते हैं। दृष्टान्त से यह बात भली प्रकार समझ में आसकी है। स्कूल की किताबों में सब ने उस वृद्ध महात्मा की कथा पढी है जिसके अनेक पुत्र थे मरने से पहिले उसने उनको उपदेश देना चाहा था मगर उपदेश से पहिले उसने सबको लकड़ियों का बाँधा हुआ गठ्ठा तोड़ने को कहा और लकडियों के गठ्ठे से उनको मिलकर रहने का उपदेश किया। क्या कोई उस वृद्ध महात्मा को जिसने लकड़ियों का ढ़ेर लगवा दिया मूर्ख कहेगा! कदापि नहीं किन्तु सबही कहेंगे कि उसने बाह्यस्थूल दृष्टान्त से अपने उपदेश को ऐसा प्रभाव युक्त करदिया कि उसके पुत्र कभी नहीं भूले। आठ प्रकार के रोगों का बोधन कराने के लिये पारस्कर मुनि का यह विधान—कि आठ घड़े रक्खे जावें और स्नान के साथही वह पाठ करते जावें कि जिस प्रकार इन जलों को हम फेंक रहे हैं उसी प्रकार आठ रोगों को हमें अपने भावी आश्रम में फेंकना है—क्या प्रभाव उत्पादक नहीं है! विवाह के समय में यद्यपि 'पति कुल में स्थिर रहो' इस बचन का बड़ा प्रभाव है पर इस प्रभाव को और भी अधिक करने के लिये शिला पर वधू का पग रखाना क्या अधिक असर कारक नहीं है! इसी प्रकार वह मन्त्र जिन को बोल कर स्नातक स्नान कर रहा है बड़े प्रभाव शाली हैं पर उनके साथ घड़ों का दृश्य भी उसी प्रभाव को अधिक स्थिर करने के लिये है, इस लिये इसका करना लाभकारी है।

अग्नि के आठ विकारों का वर्णन अलंकार द्वारा इस लिये करने में आया है कि सुश्रुत के मतानुसार युवाऽवस्था में पित्त, बाल अवस्था में कफ और वृद्ध अवस्था में वायु प्रधान होती है और पित्त आग्नेय है इस लिये युवावस्था में जब कि शरीर में पित्त प्रधान हैं तो पित्त अथवा अग्नि ही के विकारों से शरीर, मन और इन्द्रियों के दूषित होने की अधिक सम्भावना है।

अथर्ववेद में अनेक प्रकार को रोग कारक अग्नियों का वर्णन है जिनके आधार पर

आठ प्रकार की दूषित अग्नियों का यहां अलंकार से वर्णन किया गया है अथर्ववेद के कुछ मन्त्र जो दूषित अग्नियों के बोधक हैं यहां पर हम नीचे देते हैं।

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥ म्रोको मनोहाखनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनदूषि ॥ अथर्व० १६ कां० प्रथम अनुवाक, मं० २,३।

इदमहं रुशन्त ग्राभंतनू दूषिमपोहामि यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ अथर्व० कां० १४ अनु० १ सू० १ मं० ३८।

आगे स्नान करने की विधि लिखी है कि—

(१) ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः—यह मन्त्र पढ़कर एक घडे से जल लेवे और

ओं तेन माम्ः—इस मन्त्र को बोलकर स्नान करे।

(२) ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः.................यह मन्त्र पढ़कर दूसरे घड़े से जल लेवे और

येन श्रियमकृणुता..................इस मन्त्र को बोल कर स्नान करे

(३) ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः" इस मन्त्र का पाठ करके ३ घड़ों में से जल लेवे और

आपो हि ष्ठा० इन तीन मन्त्रों को बोलकर उन घड़ों के जल से स्नान करे

(४) फिर शेष तीन घड़ों के जल को लेकर

ओं आपाहि० इनही तीन मन्त्रों को मनमें बोलकर स्नान करे।

मन में बोलने से अभिप्राय यह है कि वह विशेष ध्यान देवे अर्थात् गहरे विचार के समय मनुष्य बोलते हुए चुप हो जाता है वा मन में बोलता है वही बात यहां समझनी चाहिये।

ओं उदुत्तमं वरुण.................इस मन्त्र को बोलकर अपनी मेखला और दंड को छोड़े—फिर

ओं उद्यन्.................इत्यादि मन्त्रों से ब्रह्म की स्तुति करके फिर दही और तिल प्राशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन करावे। फिर

ओं अन्नाद्याय.................इस मन्त्र को बोल कर उदुम्बर की दतौन [दन्त धावन] करे।

तत्पश्चात् सुगंधित द्रव्य शरीर पर (उबटना आदि) मलकर स्नान कर शरीर को पूंछ अधोवस्त्र (धोती, वा पीताम्बर वा जांघिया वा पायजामा आदि) धारण करके चन्दन आदि का अनुलेपन कर फिर:—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय.................इस मन्त्र के पाठ से नासिकाके

फिर दोनों आंखें और दोनों कानों का स्पर्श करे और मनसे यह प्रार्थना करे कि मेरी यह इन्द्रियां पुष्ट रहें ।

तत्पश्चात् अपसव्य अर्थात् वाम ओर हट कर दक्षिण मुख होवे इसलिये कि पितृवत् पूजनीय मनुष्यों के आसन दक्षिणाभिमुख रखने की प्राचीन मर्य्यादा है । वाम ओर हटना यह मान सूचक क्रिया है । यूरोप में भी जो दो पुरुष एक कमरे में हों तो छोटा बड़े को दक्षिण बाजू करने के लिये आप वाम ओर बैठेगा वा हटेगा। इसी भाव को लेकर स्कूलों में अधिक मान के स्थान वा पहिलेनम्बर पर जो लड़का बिठाया जाता है वह शिक्षक के दक्षिण हाथ को होता है ।

स्नातक जिन मनुष्यों को मान देना चाहता है इसलिये पहिले इतना वाम ओर को हट जावे कि वे माननीय पुरुष स्त्री उसके दक्षिण ओर को रह जावें और उस का मुख उनको ओर हो फिर वह जैसा कि पारस्कर गृह्य सूत्र का मत है जललेकर " ओं पितर: " इत्यादि मन्त्र को बोलता हुआ जल को भूमि पर छोड़े इस का प्रयोजन यह है कि पितृगण हमें अपने अनुभव युक्त संमति वा उपदेश द्वारा शुद्ध करें जैसे कि यह जल पृथिवी को शुद्ध करता है ॥ जिस प्रकार जल पृथिवी पर गिर कर उसकी उड़तीहुई धूलको शान्तकरताहै उसी प्रकार अनुभव रहित युवकों के मनके संशयों को अनुभवी पित्रों (बुजुर्गों) के उपदेश शान्त करते हैं ।

फिर सव्य होकर अर्थात् अपनी जगह पर आकर ईश्वर से प्रार्थना करे कि उसके नेत्र उत्तम रोग रहित शुभ देखने वाले हों मुख उत्तमतेज धारण करने वाला अर्थात् रोग रहित होकर अपने काम को उत्तमता सेकर सके । और कान शुभ सुनने वाले तथा रोग रहित हों

वस्त्र — फिर वस्त्र धारण करने के बोधक दो मंत्र हैं। इनमें वस्त्रों के तीन उद्देश्य दर्शाये गये हैं ।

(१) प्रतिष्ठा (२) दीर्घायु (३) शरीरपुष्टि

अर्थात वस्त्र जहां सभ्यता दायकहों वहां शरीर पुष्टि और दीर्घायु के उद्देश्यों की सिद्धिवाले हों । पहिले मन्त्रसे अधोवस्त्र पहिने अर्थात् धोती, जंघिया, पाजामादि जो भी अनुकूल हो और दूसरे से उत्तरीय वस्त्र अर्थात अंगरखा बंडी, कुरता, चादर, कोट, आदि जो अनुकूल हो ।

पुष्प माला — फिर एक मन्त्र बोल कर पुष्पमाला ले और दूसरे से वह धारण करे, दोनों मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट रूप से बतला रहे हैं कि माला, यश अथवा आदर का एक प्रबल चिन्ह है साथ ही मन इन्द्रियों की प्रसन्नता का साधन है ।

शिरोवेष्टन — संस्कार विधि में लिखा है कि " पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी, डुपट्टा और टोपी, आदि अथवा मुकुट हाथ में लेकर "युवा सुवासा,

इस मन्त्र से धारण करे,, महर्षिदयानन्द जी ने शिरोवेष्टन के अर्थ बहुत ही व्यापक किये हैं उसकी ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षण करना चाहते हैं।

मारवाड़ी, गुजराती, और दक्षिणी वा मरहठा लोग पगड़ी बांधते हैं। मदरासी तथा पंजाबी लोग दुपट्टा कुछ सिंधी तथा पारसी लोग मुकुट पहनते हैं। अंग्रेज लोग तथा अंग्रेजी पढ़े लिखे टोप तथा टोपी धारण करते हैं। यह सब शिरोवेष्टन हैं। देश, काल व्यय तथा उपयोग आदि पर विचार करके जो जिस के अधिक अनुकूल शिरोवेष्टन हो यह वही पहिने। प्रत्येक प्रकार के शिरोवेष्टन में कुछ न कुछ गुण विशेष हैं। सरदी से कानों तथा मध्य शिर को बचाने के लिये दुपट्टा, शिर के उपर के भाग की रक्षा तथा शोभा के लिये पगड़ी, मध्यभाग को रक्षा और अति शोभा के लिए मकुट, गरमियों के दिनों में आंखों को छाया देने के लिये टोप (जो अंग्रेज पहिनते हैं) रातको सोते समय शिर तथा कानों को सरदी से बचानेके लिए कनटोप, केवल मध्यभाग की रक्षा और शोभा के लिए टोपी उपयोग की जाती है। पुरुष युद्ध में जाते हैं इस लिए शिरोवेष्टन दृढ़, शिरकी रक्षा के लिए बनाए गये यह बात सुश्रुत से सिद्ध होती है स्त्रियों को युद्ध करने की आवश्यकता नहीं इस लिए उनके शिर दक्षिण और मद्रास में नंगे और काश्मीर आदि में एक धोती वा चादर से ढांकने ही उचित समझे गये, पारसी स्त्रियां एक अंगोछा (रुमाल) शिरोवेष्टन की रीति पर ओढ़ती हैं। अंग्रेजी स्त्रियों का शिरोवेष्टन टोप होता है। भारत वर्ष में छोटे लड़के लड़कियां प्रायः समान शिरोवेष्टन पहिनते हैं पर बड़े होकर नहीं। आर्यसाध्वी स्त्रियां साधु पुरुषों के समान कहीं २ कनटोप पहन लेती हैं।

अलंकार फिर अलंकार लेकर, अलंकारसूचक मन्त्र बोलकर उसको धारण करे। अलंकार शोभा के लिये है यह बात मन्त्र बतला रहा है।

हीरा (श्वेत) मानक (लाल) पन्ना (हरा) नीलम (नीला) और मोती (श्वेत) ये रत्न स्वर्ण में जड़ाकर बहुत धनी लोग उपयोग में लाते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग स्वर्ण के अलंकार उपयोग में लाते हैं और साधारण लोग चांदी के। चांदी के अलंकार प्रायः शीघ्र मैले होजाते और शरीर को भी मैलाकर देते हैं। बहुत चाँदी से थोड़ा सोने का अलंकार अच्छा रहता है। एक अंगूठी केवल स्वर्ण की, बिना किसी रत्न के स्नातक वा स्नातिका के लिए बस है।

अंजन फिर नेत्रों की रक्षा के लिये प्रार्थना, मन्त्रपाठ से करता हुआ आंखों में अंजन करे, सुश्रुत तथा चरक में अंजन के लाभ लिखे हैं आजकल अंग्रेजी पढ़े लिखे प्रायः अंजन लगाना अच्छा नहीं समझते यह उनकी भूल है।

दर्पण दर्पण को प्रकाश समझ कर उसमें मुख देखे। दर्पण में मुख देखने को व्यसन बना लेना ठीक नहीं पर शिरोवेष्टन अथवा मुख पर कोई रोम, धागा दाग कोई विकार कारक पदार्थ हो तो उसको देखकर दूर करना उत्तम है।

छत्र

शरीर को क्लेश देने वाली गरमी वा वर्षा से रक्षा के निमित्त छत्र है
क्याही अच्छा कहा है कि "पुरुषार्थहीन करने के लिय छत्र नहीं,,।

उपानह

उपानह-कांटे, कीट, बिच्छु, कंकर कीचड़ आदि से पग की रक्षा
करने वाला है इस बात का मन्त्र द्वारा पाठ करता हुआ वह उपानह
धारण करे।
संस्कार विधि में लिखा है कि " उपानह पादवेष्टन पगरक्खा और जिसको जोड़ा
भी कहते हैं धारण करे,,
सब प्रकार के जूते जूतियां, चपली, बूट उपानह अथवा पादवेष्टन हैं अपनी अनु-
कूलता के अनुसार जिस प्रकार के उपानह धारण करना चाहे, करे।

दण्ड

दण्ड सब प्रकार के पीड़ा देने वाले जीव जन्तु से रक्षा का साधन है, वह
मन्त्र द्वारा जानकर दण्ड धारण करे। दण्ड, बांस अथवा किसी ऐसी
लकड़ी का हो जो उपयोगी और गुणदायक हो।
यह स्नानविधि तो आचार्य्यगृह पर करनी चाहिये, जब आचार्य्य कुल से
अपना पुत्र घरको आवे तो उसको मान तथा उत्साह पूर्वक पिता आदि घर पर ले आवें
और आचार्य्य को उत्तम अन्नपानादि से सत्कार पूर्वक भोजन कराकर, उत्तम आसन
पर बैठा, मधुपर्क, सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र गोदान धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति
देकर उसका धन्यवाद करें, जैसा कि संस्कारविधि में लिखा है:—
"सब के सामने आचार्य्य को जो उत्तमगुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्या
दान की कृतज्ञता सब को सुनावे—सुनो भद्रजनो! इन महाशय आचार्य्य ने मेरे पर
बड़ा उपकार किया है..................इस के बदले में अपने आचार्य्य को अनेक
धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करताहूं कि जैसे आपने मुझको उत्तम शिक्षा और
विद्यादान देके कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्यविद्यार्थियों को भी कृत-
कृत्य करेंगे..............."

दिनचर्य्या और सुश्रुत

समावर्तन संस्कार में स्नान दन्तधावन वस्त्र धारण आदि अ-
नेक बातों का वर्णन आया है। इन बातों के विषय में सुश्रुत
का मत यहाँ पर दर्शाना अत्यन्त लाभदायक होगा—
सुश्रुत चिकित्सास्थान अ० २४ में दिनचर्य्या का जो वर्णन है उसका अनुवाद
मात्र नीचे दिया जाता है—

दतौन करना

(प्रभात उठकर मलत्याग से निवृत्त हो दतौन करना चाहिये,
दतौन १२ अंगुलके अनुमान लम्बी, और कनिष्ठिका अंगुली जैसी
मोटी, कोमल, गाठोंसे रहित और व्रण (खखोड़र) से भी रहित

(साफ) चाहिये ॥ २ ॥ तथा आगे से दुशाखी और गुठले वाली नहो श्रेष्ठ भूमि में उत्पन्न हुए वृक्ष की होवे ऐसो दतौन को ऋतु और दोष तथा रस और वीर्य विचार कर करें या तो कसेले वृक्ष की या चरपरे वृक्ष की हो ॥ ३ ॥ तिक्त अर्थात् कडुवे वृक्षों में नींब श्रेष्ठ है और कसेले वृक्षों में खदिर, मीठे वृक्षों में महुआ चरपरों में करंज ॥ ४ ॥ तेजोवती के चूर्ण में शहद, त्रिकटु, त्रिसुगन्धि और तेल तथा सैंधा नमक मिलाकर नित्य दांतों का शोधन करे ॥ ५ ॥ दतौन को मृदु कूची (BRUSH)से एक एक दांत को साफ करना चाहिये, और पूर्वोक्त दन्तशोधन चूर्ण से दंत मांस (मसूड़ों) को धोना चाहिये परन्तु मसूड़ों को बाधा न पहुंचनी चाहिये॥६॥दतौन करना मुख की दुर्गंधि और दांतोंके मैल तथा कफ इनको नष्ट करताहै ॥ ७ ॥ गल रोगी, तालु ओष्ठ तथा जिव्हा रोग में, मुख पकने में श्वास रोग में खांसी में, हिचकी की व्याधि में तथा वमन में दतौन नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ तथा दुर्बल मनुष्य, अजीर्ण में भोजन किये पर, मूर्च्छा या मद से पीड़ित, शिररोग वाला, तृषा युक्त, थकाहुआ और मद्य पान आदि से जिसे क्लम हो, अर्दित, वायु का रोगी, जिस के कान में दर्द हो, तथा दातों के रोग वाला इतने मनुष्य दातन न करें ॥ ६ ॥ जिह्वा खुर्चने की सींक, चांदी की वा सुवर्ण की वा वृक्ष की कोमल साफ दस अंगुल लम्बी चाहिये ॥ १० ॥ तैल घृत आदि का मुखमें धारण करके कुल्ले करदेना, मुखकी विरसता, दुर्गन्धि, शोष (खुशकी)और जड़ता [कड़ापन] इनको दूर करता है और सुख कारक है तथा दांतों को दृढ़ करता तथा रुचि का बढ़ाने वाला है ॥ ११ ॥

मुखधोना

दूध के वृक्ष के क्वाथ से अथवा इस में दूध—मिला कर अथवा झिल्लोदक कषाय [पर्वतों में केदारभूमिके जल वा धूप से गरम किया हुआ जलठंडा होनेपर) से मुख धोवे और आंवलोंका क्वाथ से दोनों नेत्रों को छींटा देकर धोवे अथवा स्वस्थ मनुष्य ठंडे जल से मुख और नेत्रों को धोवे ॥ १२ ॥ मुख धोने से काले २ धब्बे, मुखकी खुश्की, छोटी २ फुंसियां और झाई तथा रक्त पित्त के रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा मुख साफ दीखने लगता और नेत्र धोने से दृष्टि दृढ़ होती है ॥ १३ ॥

नेत्रांजन

मुखधोकर पीछे नेत्रोंमें अंजन लगाना चाहिये इसके लिये सिंधु नदी का उत्पन्न हुआ निर्मल स्रोताञ्जन (सुरमा) श्रेष्ठ है। यह दाह, खाज और नेत्रों के मैल को नष्ट करता तथा दृष्टि के क्लेद आदि रोगों को दूर करता है ॥ १४ ॥ नेत्रों को सुरूप करता है वायु और धूप की सहन शक्ति नेत्रों में हो जाती है और नेत्रों में रोग नहीं पैदा होते इस से नित्य अंजन लगाना चाहिये ॥ १५ ॥ भोजन करके, शिर से स्नान करते ही वहन और वहन से थके हुए को. रात्र के जागे हुएको, ज्वर वालेको अंजन लगाना उचितनहीं ॥ १६ ॥

पान खाना — अंजन लगाकर ताम्बूल (पान) खाना चाहिये। कपूर [भीमसेनी] जायफल, शीतलचीनी, लवंग और खदिर (कत्था) चूना सुपारी इन सब को पान में डालकर खाना चाहिये ॥ १७ ॥ पान खाना मुख की सफाई, सुगंध, कान्ति और सुन्दरता करता है तथा हनु (जबड़े) दांत और स्वर [कंठस्वर] तथा मुख के मैल और जिह्वेन्द्रिय इनको शुद्ध करता है ॥ १८ ॥ मुखसे राल बहने को शान्त करता हृदय को हितकर और गले के रोगों को नाश करता है। पान खाना इतने समय में पथ्य है। प्रथम सोते उठकर, भोजन करके, स्नान करके और वमन के पीछे ॥ १९ ॥ रक्तपित्त के रोग वाले, क्षत क्षीण मनुष्य, तृषा युक्त, मूर्छा वाले, रूक्ष, दुर्बल और जिनके मुख में खुश्की है ऐसे मनुष्यों को पान खाना हित नहीं ॥ २० ॥

शिर पर तैल लगाना — शिर में तेल लगाना शिरके रोगों को दूर करता तथा बालों को नरम करता और बढ़ाताहै। तेल लगाने से बाल घने चिकने और काले होते हैं ॥ २१ ॥ दिमाग को तृप्त करता सिरकी त्वचा को सुन्दर बनाता रक्त आदिक का संचार करता तथा समस्त इन्द्रियों (नाक, कान, नेत्रादि) को भी तृप्त करता और शिरको पूर्ण करता है ॥ २२ ॥ मुलैठी, क्षीर-विदारी, सरल, देवदार और लघुपंचमूल इन सब को समभाग लेवे ॥ २३ ॥ इनके क्वाथ * और कल्क * में चक्र तेल अर्थात् कोल्हू का पिला हुआ सफ़ेद तिल का तेल पकावे, फिर उसे ठंडा करके रख छोड़े, इसमें से सदा शिर में लगावे ॥२४॥

कंघी करना — कंघी करना केशों को हित है धूल, जन्तु (जूं आदि) दूर करती है ॥ २५ ॥ इसके अतिरिक्त चरक का मत है कि कंघी करने से दिमाग की गरमी कम होकर नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

कानों में तेल डालना — कानों में तेल के टपके डालना, ठोड़ी, मन्या, शिर और कान के दर्द को नाश करता है ॥ २६ ॥

तेल आदिक का मर्दन — शरीरपर स्नेह (चिकनाई) का मर्दन करना शरीर को मुलायम करता, कफ और वायु को रोकता, धातुओं को पुष्ट करता और शुद्धि, रूप तथा बल का दाताहै ॥ २७ ॥ चिकनाई के तरें देना श्रम और वायु को नाश करता है टूटी हुई सन्धि को जोड़ने, क्षत [जख़म] और अग्निदग्ध को हित है चोट और रगड़ पर लगाने से उसकी पीड़ा को शान्त करता है ॥ २८ ॥ जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से उसकी डाली पत्तों के अंकुर बढ़ते है उसी प्रकार चिकनाई के सींचे हुए मनुष्यों का धातु बढ़ता है ॥ २९ ॥ तेल

* क्वाथ अथात् १६ भाग पानी में किसी चीज को औटाने पर ४ भाग शेष रहना।

* कल्क अर्थात् पानी के साथ किसी वस्तु को पीसना।

की द्रोणी [बल्टी वा टब] भर कर उस में बैठ कर उसी में स्नान करना शिराओं के मुख द्वारा, रोम कूपों के द्वारा और धमनियों के द्वारा तृप्ति करके शरीर में बल करता है ॥ ३० ॥ इस प्रकृतिसात्म्य अर्थात् स्वभाव, अनुकूलता, ऋतु, देश और दोष तथा विकार [रोग] इन सब को जान कर बुद्धिमान् वैद्य मर्दन करने तथा सेचन करने में तेल वा घृत जहां जैसा उचित हो उपयोग करे ॥ ३१ ॥

आम सहित दोषों में केवल स्नेह का उपयोग करना उचित नहीं तथा तरुण ज्वर वाले और अजीर्ण वाले को भी तैलाभ्यंग नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

विरेचन, वमनके पीछे और निरूहण वस्ती के पीछे भी तेल मर्दन उचित नहीं क्यों कि ऐसा करने से उक्त व्याधिएं कष्टसाध्य वा असाध्य हो जातीहैं ॥ ३३ ॥ विरेचन क्रिया [जुलाब] वान्त [वमन] और निरूहण (एक प्रकार की पिचकारी) इनके पीछे तेल लगाने से मन्दाग्नि आदि रोग होजाते ह तथा सन्तर्पण (तराई) से पैदा हुए रोगों में भी स्नेहाभ्यंग आदि अनुचित हैं ॥ ३४ ॥

व्यायाम, श्रम या मार्ग चलने से प्राप्त हुई थकान के पीछे तुरन्त तेल आदि का उपयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इस से रोग होने का भय है ।

व्यायाम

शरीरको श्रम पैदा करने वाले कार्यको व्यायाम कहते हैं उस व्यायाम के करने से शरीर सुखपूर्वक सब तरफ़ सुडोल हो जाता है ॥ ३५ ॥ शरीर की वृद्धि होती और कान्ति बढ़ती इस से सब अंगों का सुन्दर विभाग होता है जठराग्नि दीप्त होती है, आलस्य नष्ट होता है स्थिरता हलकापन और शरीर के दोषों की शुद्धि होती है ॥ ३६ ॥ परिश्रम, थकावट, प्यास, गरमी सरदी आदि के सहन की शक्ति होती है, तथा व्यायाम से परम आरोग्यता प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ मोटापन कम करने के लिये इस व्यायाम के तुल्य कोई यत्न नहीं है । व्यायामी, बलवान् मनुष्य के भय से शत्रु दुःख नहीं देसकते ॥ ३८ ॥

और पका एक बुढ़ापा भी व्यायामी पर जोर नहीं करता है और व्यायाम वाले का मांस भी स्थिर हो जाता है ॥ ३९ ॥

व्यायाम से शरीर थक जावे तब पैरों में कुछ ठहर कर उबटन लगावे वा मालिश करे ऐसा करने वाले के पास रोग नहीं आते जैसे सिंह के पास छोटे २ मृग नहीं आसकते ॥ ४० ॥

जो मनुष्य अवस्था, रूप, गुणों से हीन भी है उसको व्यायाम सुन्दर बना देता है ॥ ४१ ॥ नित्य व्यायाम करने वाले को, विरुद्ध भोजन किया हुआ, विदग्ध (जला भुना) अविदग्ध (कच्चारहा) सब निर्दोषता पूर्व्वक पच जाताहैं ॥ ४२ ॥

बलवान् और स्निग्ध भोजन करने वाले को व्यायाम करना सदाही पथ्य है विशेष करके शीत ऋतु और वसन्त ऋतु में तो उनको व्यायाम अवश्य ही करना परम पथ्य और उचित है ॥ ४३ ॥ सब ऋतुओं में अपना हित चाहने वाले मनुष्यों को आधे बल के अनुसार व्यायाम करना चाहिये अन्यथा अधिक व्यायाम हानि करता है ॥ ४४ ॥

व्यायाम करने से जब हृदय का वायु मुंह से निकलने लगे अर्थात् दम चढ़जावे यही बलार्द्ध का लक्षण है अर्थात् जब तक दम भर जावे तभी तक व्यायाम करना चाहिये अधिक नहीं ॥ ४५ ॥ और अवस्था, बल, शरीर, देश, समय और भोजन इन बातों का विचार कर व्यायाम उसके अनुकूल करे नहीं तो रोगी हो जावेगा ॥ ४६ ॥

अति व्यायाम करने से क्षय, तृषा, अरुचि, वमन, रक्तपित्त, भ्रम, थकावट खांसी, शोष (शरीर का सूखजाना वा खुश्की) ज्वर तथा श्वास, यह रोग होते हैं ॥ ४७ ॥ रक्तपित्त वाला, दुर्बल शरीर वाला, शोष रोगी, श्वास खांसी और उरःक्षत रोग वाला भोजन के पीछे तथा जो स्त्री संग से क्षीण होगया है भूख से जो व्याधित हो इनके लिये व्यायाम वर्जित है ॥ ४८ ॥

उबटन उबटन करना वायु को हरता है कफ़ और मेदे को नियम में करने वालाहै अंगोंको स्थिर और त्वचा को परम प्रसन्न करता है शिराके मुखों में प्रविष्ट होकर विविक्तता करता और त्वचाग्नि को उत्तेजित करता है ॥ ४९ ॥

* उद्घर्षण (कपड़े से शरीर रगड़ना) और उत्सादन (स्निग्ध चूर्ण व साबुन आदि लगाना) इनसे भी यही लाभ होते हैं ॥ ५० ॥

* जर्मनी के वैद्य लुईकुनी ने विशेष कर उद्घर्षण पद्धति पर अपने इलाज को स्थिर कियाहै ।

उत्सादन (उबटन विशेष) से विशेष कर स्त्रियोंका शरीर, कान्तियुक्त, प्रहर्ष, शुद्ध तथा सुभगता से युक्त होता है ॥ ५१ ॥ उद्घर्षण करने से खाज, चकते और वायु (खुश्की) दूर होती है ॥ ५२ ॥ फेनक (समुद्रीझाग) से उद्धर्षण करने से स्थिरता व लघुता आती है खाज, कोढ़, वायु, स्तम्भ मल और रोग नाश होते हैं ॥ ५३ ॥ ईंट वा झावे से उद्घर्षण करने से त्वचा की अग्नि उत्तेजित होती, रगों का मुख खुलता, पसीना निकलता और कंडू तथा कोढ़ को नाश करता है ॥ ५४ ॥

स्नान अभ्यंग और उद्घर्षण आदि के पश्चात् नित्य स्नान करे। निद्रा, दाह, श्रम, पसीना, खाज और तृषा को नष्ट करता हृदय को हितकारी है। मैल नाशक, सर्वइन्द्रिय शोधकहै ॥५५॥ तन्द्रा, विकार का नाशक, तुष्टिदाता, पुरुषार्थ कर्त्ता, रुधिर के स्वच्छ करता तथा जठराग्नि का दीपन करता है ॥ ५६ ॥ गरम पानी से शिर का स्नान करना नेत्रों को हानि कारक है शीतल जल से शिर स्नान नेत्रों को अति लाभदायक है ॥ ५७ ॥ कफ और वायु कोप में आवश्यकतानुसार गरम जल से भी शिर का स्नान कर सकते हैं ॥ ५८ ॥

अति शीत पानी शीत ऋतु में कफ़ वायु का कोप करता है अति गरम पानी गरमियों में पित्त और रुधिर बढ़ाता है ॥ ५९ ॥ अतिसार वाले, ज्वर वाले, कर्णशूल वाले, वात व्याधि वाले, आध्मान वाले, अरुचिवाले, अजीर्ण रोग वाले को तथा भोजन किए हुए को स्नान उचित नहीं ॥ ६० ॥

अनुलेपन

अनुलेपन से सौभाग्य, सुन्दरता, प्रीति ओज और बल होता है। पसीना, दुर्गन्धि, विवर्णता, थकान दूर होते हैं ॥ ६१ ॥ जिन अवस्थाओं में स्नान करना निषिद्ध है उन्हीं दशाओं में अनुलेपन भी वर्जित है ॥ ६२ ॥

पुष्प वस्त्र तथा रत्न

पुष्प, वस्त्र तथा रत्न धारण करने से दुखद जन्तु दूर होते, ओज सन्दरता बढ़ती और लोग प्रीति करते हैं ॥ ६३ ॥

भोजन

तृप्ति कारक, तत्काल बलकर्ता देह का धारण करने वाला, आयु तेज, उत्साह, स्मृति ओज और जठराग्नि का वर्धक है ॥ ६७ ॥

पग धोना

भोजन करके पुनः पग धोने चाहियें इस से पग का मल, रोग तथा श्रम दूर होता है। नेत्रों को हितकारी है दुःखद, जन्तु दूरहोते हैं प्रीति को बढ़ाता है ॥ ६८ ॥ पाँव पर तेल मलने से निद्रा आती, देह को सुख मिलता, चक्षुओं को लाभ पहुंचता श्रम और तन्द्रा नाशक है और त्वचा को नरम करता है ॥ ६९ ॥

पादत्र

पादत्र (जूता) धारण करने से प८ रोगों से बचते हैं। वृष्य है, हिंसक जन्तुओंसे बचाने वाला, प्रीति का वर्द्धक और चलने में सुख देता है ॥ ७० ॥

बिना जूता पहिने फिरना आरोग्यता नाशक, आयु में हानि करता और नेत्रों को विकारकारी है ॥ ७१ ॥

पगड़ी

उष्णीष (पगड़ी वा टोप) का धारण करना, वाण (तीर) की चोटसे शिर को बचाता है, शिर को शुद्ध रखता, वर्ण, तेज और बल को बढ़ाता है पवित्र है बालों को हित है, वायु, धूप और धूल से मूर्द्धा को बचाता है ॥ ७२ ॥

छत्र

वर्षा, वायु, धूल, धूप, सरदी बरफ आदि का निवारकहैं। रूप को सुन्दर करने वाला नेत्रहितकारी ओज वर्द्धक और सुखद है ॥ ७४ ॥

दण्ड

कुत्ते, सर्प आदि रींगने वाले जन्तु और सींगवाले पशुओं से बचाताहै. श्रम, कंपन का निवारक, वृद्धमनुष्यों को विशेष लाभदायक है ॥ ७५ ॥ लकड़ी रखना, सत्व, उत्साह, बल, स्थिरता, धीरता और पराक्रम वर्द्धकहै, धीरे चलना उत्पन्न करता और भयनाशक है ॥ ७६ ॥

समावर्तन संस्कार में आये हुये औषधियों के भिन्न २ भाषा में नाम।

खदिर—

हिन्दी-कत्था,

बंगला-खयेर,

मराठी-खैराचासाड, नार-कात,

गुजराती-खैर सारा-काथो,

कनाड़ा-काथ

पञ्चमूल (लघु—

शालपर्णी १, पृष्ठपर्णी २ कटाई ३ कटेरी ४ और गोखरू यहपांच वस्तुएँ लघु पंचमूल कहाती हैं, इनके २ भिन्न भाषाओं में नाम—

(१) हिन्दी-शालपर्णी, सखिन ।

बंगला-शालपान, शालपानी,

मराठी-सालवण

गुजराती-शालिपर्णी ।

[२] हिन्दी-पृष्ठपर्णी-पिठवन, पिठौनी,

बंगला-चाकुले, चाकुला ।

मराठी-पीठवण ।

गुजराती-पृष्ठिपरणी ।

(३) हिन्दी-कटाई-वरहटा—

बंगला-व्याकुड़, तितवेगुन,

मराठी-थोर डोरली,

गुजराती-उभी भोरिंगणा,

(४) हिन्दी-कटेरी ।

बंगला-कण्टकारी ।

मराठी-रिंगणी, भुईरिंगणी ।

गुजराती-वेठी भोरिंगणी ।

(५) हिन्दी-गोखरू ।

बंगला-गोखरि ।

मराठी-सराटे-लहान गोखरू ।

गुजराती-गोखरू ।

त्रिकुट में सोंठ, कालीमिर्च और पीपल होती हैं ।

१ हिन्दी-सोंठ ।

बंगला-शुंट, शुंठ

गुजराती-शुंठ्य

मराठी-सुंठ,

(२) हिन्दी-मिर्च काली

बंगला-मरिच-गोलमरिच-सादामरिच

मराठी-मिरें-पांढरें मिरें ।

गुजराती-मरि ।

(३) हिन्दी-पीपल

बंगला-पिपुल

मराठी-पिंपली

गुजराती-लिंडी पिपल ।

बृहत्पंचमूल—

(१) हिन्दी-बेल

बंगला-बेल, बिल्व

मराठी-बेल-बेलफल

गुजराती-बिलो बिलु
(२) हिन्दी-कुम्भेर-खम्भारी
बंगला-गाम्भारी-गाभार
मराठी-शिवण गम्भारी
गुजराती-शवन्य
(३) हिन्दी-पाढ़ल
बंगला-पारुल-घंटा पारुल
मराठी-रक्त पाढ़ल
गुजराती-राता फूलना पाढ़ल-कांकच,
(४) हिन्दी-अरनी
बंगला-गणिर-अगेघु
मराठी-थोर ऐरण-रहां कली-नरवेल्य
गुजराती-अरणी
(५) हिन्दी-अरलु
बंगला-सोनालु
मराठी-टेटु
गुजराती-अरडशो-मरपढय

मुलेठी—
हिन्दी-मुलहठी
बंगला-यष्ठी मधु
मराठी-ज्येष्ठ मधु
गुजराती-ज्येष्ठी मधनो मूल

चीर विदारी—
हिन्दी-बिदारीकन्द
बंगला-भुंई कुमड़ा
मराठी-भुंईको हला-येन्द्रिया वेल
गुजराती-भोकोलु-फगवेलानो कंद

सरल—
हिन्दी-धूपसरल
बंगला-सरल गाछ
मराठी सरल देवदार
गुजराती- ,,

देवदारु—
हिन्दी-देवदारु
बंगला- ,,
मराठी-तेल्यादेवदारु
गुजराती—देवदार

महुआ—
हिन्दी—महुआ
बंगला-मौल-जल-मउल
मराठी-मोहचा वृक्ष जलमोह
गुजराती-महुड़ो

करंज—
हिन्दी-करंज
बंगला-डहर करंज-नाटा करंज
मराठी-चापड़ा करंज-वावल
गुजराती-चरेल कणास

त्रिसुगंध अर्थात्—
दार चीनी—तेजपत्र—इलायची यह तीन चीजें

(१) दारचीनो	बंगला-तेजपाता
हिन्दी-तज—दालचीनी	मराठी-तयालपत्र
बंगला-दाची रूनी	गुजराती- ,,
मराठी-तज	(३) इलायची
गुजराती-तज	हिन्दी-इलायची
(२) तेजपत्र	बंगला-एलाइच
हिन्दी-तेजपात	मराठी-थोरपेला-वेल-दोडे,
	गुजराती-एलची

अथ विवाहसंस्कारविधिः ॥

—:o:—:*:—:o:—

विवाह उस को कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत, विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य, परस्पर प्रीतियुक्त होके और वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होताहै ।

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे चौलकर्मोपनयन गोदानविवाहाः ॥ १ ॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥ [आश्व० गृ० सू० अ० १ क० ४ सू० १-२ ।]

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र, और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर गृ० सू० का० १ क० २ सू० १ । और

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥ ५ ॥ (गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० १ सू० १-२ ।)

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी है ॥

अर्थः—उत्तरायण, शुक्लपक्ष, अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाहादि कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उसका आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण, जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम ही, उससे करना चाहियेः ॥ ४, ५ ॥

इस में वधू और वर का आय, कुल, वास्तव स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिकसे अधिक दूनी होवे । इस में प्रमाण मनु० अ० ३ श्लो० २,४—१० में देख लेने चाहियें (और मूल संस्कार विधिमें विशेष देखलेना चाहिये)

ओ३म्—ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋतं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥
यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्,
यत्सत्यंतद् दृश्यताम् (आश्व० गृ० सू० अ० १ क० ५ सू० ५)

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा कर के दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ स्वरूप महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्त्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों मैं विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उस को यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें ।

विधिः—जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्री निश्चित की हो उस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और यज्ञशाला वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध कर के रखनी उचित है पश्चात् एक* घंटे मात्र रात्रि जाने पर ।

ओं कामवेद ते नाममदो नामासि समानयामुꣳ सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुꣳसोऽभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥ २ ॥ ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वꣳ स्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख० १ मं० २–३ ।

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर, स्नान करें† पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर

* यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिस से मध्यरात्रि तक विवाह विधि पूरा हो जावे ॥

† स्नान विधि, गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० १ सू० १० के अनुसार है । विशेष वहीं द्रष्टव्य है ।

पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, वधू वर करें तत्पश्चात् अग्न्याधान, समिदाधान, स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे । फिर वर, वधू के घर को जाने का ढंग करे । फिर कन्या के और वर पक्ष के पुरुष बड़े मान से वर को घर ले जावें जिस समय वर, वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें उस की रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

* साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥

इस वाक्य को बोले उस पर वर—

ओं अर्चय ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे । पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उस को वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे ।

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः † प्रतिगृह्यताम् ॥

यह उत्तम आसन है आप ग्रहण कीजिये; वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभामंडप में पूर्वाभिमुख बैठ के, वर—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

---

* यहां से ले कर समस्त, विवाह की पूर्वविधि, विशेषतः पार० गृ० सू० का० १ कं० ३ सू० ४ आदि के अनुसार है; इस से सब स्थलों में सूत्रादि लिखने की आवश्यकता नहीं ।

† आदरार्थ ३ वार कथन है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ।

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग* प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि॥पाद्यायै विराजो दोहः ।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र ले के उस से मुख-प्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि ।

ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः ॥

इन मन्त्रों को बोले । तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उस में आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

---

* यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख रहैं । यदि ब्राह्मण वर्ण हों तो प्रथम दक्षिण पग (पार० गृ० सू० का० १ क० ३ सू० ११) पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हों तो प्रथम बायां पग धोवे पश्चात् दहना ।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उस में से दहिने हाथ में जल, जितना अङ्गुलियों के मूल तक पहुँचे उतना ले के वर—

ओं आऽऽमाऽगन् यशसा सꣳसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी वार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र, कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

इस मन्त्रस्थवाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और:—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ।

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे और:—

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥ यजु० अ० १३ म० २७-२९ ।

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे—

---

* मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उस का परिमाण १२ बारह तोले दही में ४ चार तोले शहद अथवा ४ चार तोले घी मिलाना चाहिये और मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है ॥

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

इस मन्त्र को पढ़, दहिने हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार विलोवे और उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा ।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा ।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और—

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे ।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥ (आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २४ सू० १४-१५)

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने संमुख तीनों पात्र रक्खे, रख के—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इस मन्त्र को एक २ बार बोल के एक २ भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक (पुत्र वा छात्र को) देवे वा जल में डाल देवे। तत्पश्चात्

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ क० २४ सू० २१-२२ ॥

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा

जहां कोई मनुष्य आते जाते न हों वहां डाले, ऐसा पारस्कर का मत है । जल में डालना आश्व० गृ० सू० १-२४-१९ का मत है ।

वर करे तत्पश्चात् वर यथाविधि चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे फिर कन्या—

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ।

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो अर्पण करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य से उस को ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभा मण्डपस्थान से घर में लेजा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के—

ओं अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उस के हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

ऐसा बोल के—फिर

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपा वा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तमवस्त्र देवे । तत्पश्चात्—

ओं या अकृन्तन्नवयन्या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे । वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे ॥

ओं *परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।

* यह मन्त्र और अगला "यशसा" यह मन्त्र, मानव गृ० सू० ख० ९ सू० २७ के अनुसार लिखा है । इन दोनों मन्त्रों का अर्थ "समावर्तन" प्रकरण में आगया ।

शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और:-

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।

यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र को पढ़ के द्विपट्टा धारण करे। इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान करके जब तक सम्हले तब तक कार्य्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा सब सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे। और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्रधारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के †यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिणभाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन कर जब तक विवाह का कृत्य पूरण न हो जाय तब तक बैठा रहे। और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्यसमाप्तिपर्यन्त उत्ताराभिमुख बैठा रहे। और सहोदर वधू का भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल वा जुआर की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की ४ चार अञ्जली एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञ-कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। फिर कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चीकनी हो उस को तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे। तत्पश्चात् वस्त्रधारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के संमुख लावे और उस समय वर और कन्या—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।

सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ* ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४७ ।

---

† जल कुम्भ को ग्रहण करना आदि सब विधि, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पाई जाती है, ग्रन्थ के विस्तरभय से सब स्थलों में प्रमाण निर्देश नहीं किया, यह पूर्व भी लिख दिया है।

* वर और कन्या बोले कि हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि

इस मन्त्र को बोलें तथा दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़े।

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु † असौ ॥ २ ॥

इस मंत्र को वर बोलकर उस को ले कर घर के बाहिर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वर—

ओं भूर्भुवः स्वः । अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे * ॥ ३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामैरय्सा

अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हम को प्रिय है वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे (धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे ॥ १ ॥

†(असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना। हे वरानने वा हे वरानन ! (यत्) जैसे तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु वा जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती वा होता है उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे और हे वीर ! जो आप मन से मुझ को (ऐषि) प्राप्त होते हो उस आप को जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे ॥ २ ॥

* हे वरानने (अपतिघ्नी) पति से विरोध न करने हारी, जिस के (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब

न ऊरू उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्टयै ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोलने के पीछे दोनों वर वधू, यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिणभाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के, वधूः—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳬ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् । (गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० १ सू० २० तथा सा० वे० मं० ब्रा० प्र० १ ख० १ मं० ८)

इस मन्त्र को बोले फिर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी, फिर—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीनमन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक २ आचमन वर, वधू पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके, हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्धपात्र में करके दूर रखवा दे हाथ और मुख पोंछ के यज्ञकुण्ड में (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी (देवृकामा) देवर की कामना करती हुई (स्योना) सुखयुक्त हो के (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शम्) सुख करने हारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं को भी (शम्) सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥ ३ ॥

इत्यादि ४ मन्त्रों से कुण्ड को चारों ओर, दक्षिण हाथ की अञ्जली से शुद्ध जल सेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त हुए पश्चात् वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति ४ चार घी की देवें फिर व्याहृति आहुति ४ चार घी की और सामान्य प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति ८ सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति दे के प्रधान होम का प्रारम्भ करें प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके सामान्य प्रकरणोक्त (ओंभूर्भुवः स्वः, अग्न आयूंषि०) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक २ से एक २ मिल के ४ चार आज्याहुति क्रम से करें । और—

ओं भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ (ऋ० मं० ५ सू० ३ मं० २)

इस मन्त्र को बोल के ५ पांचवीं आज्याहुति देनी तत्पश्चात्—

ओं *ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न† इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यस्स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय इदन्न

† यह सब पार० गृ० सू० का० १ क० ५ के अनुसार है ।
* इन्हीं १२ आहुतियों की "राष्ट्रभृत" संज्ञा पार० गृ० सू० में है ।

मम ॥ ५ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्य-प्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमिषिराय विश्व-व्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्ज्जो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इद-मद्भ्यो अप्सरोभ्यऽऊर्ग्भ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽ ऋक्सा-मान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य-एष्टिभ्यः, इदन्न मम ॥ १२ ॥ यजु० अ० १८ मं० ३८—४३ ।

इन बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् (जयाहोम) करना ।

ओं चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्त्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं विज्ञातञ्च स्वहा । इदं विज्ञा-ताय, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मनश्च स्वाहा । इदं मनसे, इदन्न मम ॥७॥ ओं शक्वरीश्च स्वाहा । इदं शक्वरीभ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥

ओं दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्णमासाय, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय, इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु । तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय, इदन्न मम ॥ १३ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ कर के जयाहोम की १३ तेरह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् अभ्यातन होम इन मन्त्रों से करेः—

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा ॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये, इदन्न मम ॥ ६ ॥

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्य-
स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां
देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये इदन्न
मम ॥ ७ ॥ ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्म-
ण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देव-
हूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये, इदन्न मम॥ ८ ॥
ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-
ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ
स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं
समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-
ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ।
इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अन्नꣳ
साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशि-
ष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदमन्नाय
साम्राज्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ ११॥ ओं सोमऽओषधीनामधि-
पतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-
धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं सोमाय, ओषधी-
नामधिपतये, इदन्न मम ॥ १२॥ ओं सविता प्रसवानामाधिपतिः स
मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधयाम-
स्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं सवित्रे प्रसवानामधि-
पतये, इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्व-
स्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्
कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये
इदन्न मम ॥ १४ ॥ ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन्
ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां

देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये, इदन्न मम ॥१५॥ ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः, इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च, इदन्न मम ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ अठारह आज्याहुति दिये पीछेः—

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳬ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳬ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳬ स्त्रीपौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥१॥ ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳬ स्वाहा । इदमग्नये, इद न्नमम ॥२॥ ओं स्वस्तिनो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रᳬ स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥३॥ ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन् न एहि ज्योतिष्मद् धेह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा । इदं वैवस्वताय । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬ रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा । इदं मृत्यवे, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं द्यौस्ते पृष्ठᳬ रक्षतु

वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वꣳ रुदत्पुर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाꣳ सुमनस्यमानाꣳ स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशꣳ स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ८ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति कर के आठ आज्याहुति देवे फिर—

ओं भूरग्नये स्वाहा । (गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० १ सू० २५)

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति देवे । ऐसे होम कर के वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के संमुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रह कर अपने वामहस्त से वधू का दहना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उंचाना और अपने दक्षिण हाथ से, वधू के उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण कर के वर—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः* १ ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् । पत्नी त्वमसि धर्म-

---

* हे वरानने ! जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुखपूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पति पत्नी भाव कर के प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्त्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए

णाऽहं गृहपतिस्तव * ॥ २ ॥ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वाऽदाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् † ॥ ३ ॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् । तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया * ॥ ४ ॥

विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आप के हाथ और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ॥ १ ॥

* हे प्रिये ! (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूं हम दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण-व्यभिचार है उस को कभी न करें जिस से घर के सब काम सिद्ध, उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥ २ ॥

† हे अनघे ! (बृहस्पतिः) सब जगत् का पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू जगत् भर में (मम) मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो, हे (प्रजावति) तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अथवा शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर । वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे—हे भद्र वीर ! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आप के विना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करने हारा सेव्य इष्ट देव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये ॥ ३ ॥

* हे शुभानने ! जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में उस की तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दम्पती

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ‡ ॥ ५ ॥ अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं अन्थ्नानो वरुणस्य पाशान् * ॥ ६ ॥

होते हैं (त्वष्टा) जैसे बिजुली सब में व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस सब से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा हे प्रिय ! आप को मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण कर के (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी ॥ ४ ॥

‡ हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सब से बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं जैसे (इमां, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी जैसे दोनों मिल के प्रजा बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥ ५ ॥

* हे कल्याणक्रोड़े जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्)

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोले पश्चात् वर वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के उठावे और वह कलश, जो कुंड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था वर वधू के साथ २ उसी कलश को ले के चले, यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करें, फिरः—

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् * ॥ ७ ॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से वर प्रतिज्ञा करके, पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जली अपनी दक्षिणाञ्जली से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश ले के बैठे पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी जो सूप में रक्खी थी उस को बायें हाथ में ले के दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इस में प्रेमद्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं [मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ [स्तेयम्] चोरी को [उदमुच्ये] छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से [नाद्मि] भोग नहीं करता हूं [स्वयम्] आप [श्रन्थानः] पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी [वरुणस्य] उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूं वैसे (इत्) ही, यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्त्ताव करूंगी ॥ ६ ॥

* हे वधू ! जैसे [अहम्] मैं [अमः] ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला [अस्मि] होता हूं वैसे [सा] सो [त्वम्] तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करने हारी [असि] है। जैसे [अहम्] मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझ को [अमः] ग्रहण करता हूं वैसे [सा] सो मैंने ग्रहण की हुई

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ १ ॥

इस मन्त्रको बोले, फिर वधू वर कुण्ड के समीप आ के पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहैं और यहाँ वधू दक्षिण ओर रह के अपनी दक्षिण हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली पर रक्खे फिर वधू की मा वा भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूप पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूप भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जलि है उस में प्रथम थोड़ा घृत सेचन कर के पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जली से दो बार लेके वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जली में धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलीस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सेचन करे पश्चात् वधू, वर की हस्ताञ्जली सहित अपनी हस्तांजली को आगे से नमा के—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नोऽअर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे, अग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥

[त्वम्] तू मुझ को भी ग्रहण करती है [अहम्] मैं [साम] सामवेद के तुल्य प्रशंसित [अस्मि] हूं, हे बधू ! तू [ऋक्] ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है [त्वम्] तू [पृथिवी] पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं [द्यौः] वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं [तावेव] दोनों ही [विवहावहै] प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें [सह] साथ मिल के [रेतः] वीर्य को [दधावहै] धारण करें [प्रजाम्] उत्तम प्रजा को [प्रजनयावहै] उत्पन्न करें [बहून्] बहुत [पुत्रान्] पुत्रों को [विन्दावहै] प्राप्त होवें [ते] वे पुत्र [जरदष्टयः] जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त [सन्तु] रहें [संप्रियौ] अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न [रोचिष्णू] एक दूसरे में रुचियुक्त [सुमनस्यमानौ] अच्छे प्रकार विचार करते हुए [शतम्] सौ [शरदः] शरद् अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से [पश्येम] देखते रहें [शतं, शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से [जीवेम] जीते रहें और [शतं, शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को [शृणुयाम] सुनते रहें ॥ ९ ॥

ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा। इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ३ ॥ *

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र को वधू बोल एक २ बार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित इन्धन पर देवे फिर वर—

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के अपने दहने हाथ की हस्ताञ्जली से वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के वर—

ओं तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दाऽग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० १ कं० ७ सू० ३।

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ॥ २ ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० २ सू० ८।

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख कर के थोड़ी देर दोनों खड़े रहैं-अर्थात् सब मिल के ४ चार परिक्रमा कर के अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़े रहके उक्त रीति से चार बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर के उस के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहैं पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा कर के उस में बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जली में डाल देवे पश्चात् वधू—

ओं भगाय स्वाहा ॥ इदं भगाय। इदन्न मम ॥ (पार० गृ० सू० का० १ कं० ७ सू० ५)

---

* जहाँ २ विवाह की पूर्वविधि में पता नहीं दिया है वहां २ यह समझ लेना चाहिये कि यह मूलग्रन्थोक्त समस्त विधि, पार० गृ० सू० प्रथमकाण्ड तथा उस के भाष्यानुसार है।

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर, वधू को दक्षिणभाग में रख के कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के:—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥ पा० गृ० सू० का० १ कं० ७ सू० ६।

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे। तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बंधे हुए केशों को वर—†

ओं प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वा बध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥ १ ॥ प्रेतो मुञ्चामि नामुतस्सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सति ॥ २ ॥ [विवाहहोमे आश्वलायन गृह्यकारिका १८–१९] (ऋग्० मं० १० सू० ८५। मं०२४–२५)

इन दोनों मन्त्रों को बोल के छोड़े तत्पश्चात् सभामण्डप में आ के सप्तपदी विधि का आरम्भ करे। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी इसे जोड़ा कहते हैं. वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावें तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वरः—

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम। [गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० २ सू० १३] ऐसा बोल के वधू को उस का दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देवे और—

ओं इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को ले कर ईशानी दिशा

---

† इन दो मन्त्रों से आश्वलायन गृह्यकारिकाकार केशों का खोलना ही मानते हैं अतः ऐसा लिखा है।

† आश्वलायन गृह्यकारिका [विवाह होमप्रयोग] २० ॥

में एक पग* चले और चलावे ।

ओं ऊर्ज्जे द्विपदी भव०† ॥ इस मन्त्र से दूसरा ॥

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ॥ इस मन्त्र से तीसरा ॥

ओं मायोभवाय चतुष्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से चौथा ॥

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव० ॥ इस मन्त्र से पांचवाँ ॥

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से छठा और—

ओं सखे सप्तपदी भव० ॥

इस मन्त्र से सातवां पगला चलना । इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बँधे हुए शुभासन पर बैठें तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेके यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर बैठाया था वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को लेके वधू वर के समीप आवे और उस में से थोड़ा सा जल ले के वधू वर के मस्तक पर छिटकावे और वर—

ओं (१) आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्माऽअरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोले । तत्पश्चात् वधू वर वहाँ से उठ के—

---

* इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशान कोण की ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बायें पग को उठा के जमणे-पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ा सा पीछे बायाँ पग रक्खे इसी को एक पगला गिणना इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करे अर्थात् एक २ मन्त्र से एक २ पग ईशान दिशा की ओर धरे ।

† जो भव के आगे पूर्व मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस "भव" पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करे ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें । तत्पश्चात् वर, वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उससे वधू का हृदयस्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् * ॥

इन मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले † ॥

तत्पश्चात् वर, वधू के मस्तक पर हाथ धर के:—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथाऽऽस्तं विपरेतन ॥ * ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ३३ ।

---

* हे वधू ! [ते] तेरे [हृदयम्] अन्तःकरण और आत्मा को [मम] मेरे [व्रते] कर्म के अनुकूल [दधामि] धारण करता हूं [मम] मेरे [चित्तमनु] चित्त के अनुकूल [ते] तेरा [चित्तम्] चित्त सदा [अस्तु] रहे [मम] मेरी [वाचम्] वाणी को तू [एकमनाः] एकाग्र चित्त से [जुषस्व] सेवन किया कर [प्रजापतिः] प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा [त्वा] तुझ को [मह्यम्] मेरे लिये [नियुनक्तु] नियुक्त करे ॥

† वैसे ही हे प्रिय वीर स्वामिन् ! आप का हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का—जो कुछ मैं आप से कहूं उस का सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे अधीन किया है जैसे मुझ को आप के अधीन किया है अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्त्तें करें जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्त्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ॥

* यहीं पर वधू को वर के वाम भाग में बैठावे, ऐसा पारस्कर गृ० सू० के टीकाकार हरिहर मिश्र लिखते हैं ।

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के दोनों [ओं यदस्य कर्मणो०] इस स्विष्टकृत् मन्त्र से एक आज्याहुति और—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम करें इस रीति से थोड़ा सा विश्राम करके विवाह का उत्तर विधि करें। यह उत्तर विधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो वहां जा के करनी तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और अग्न्याधान [ओं भूर्भवः स्वर्द्यौ०] इस मन्त्र से करें यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हुआ और प्रथम अग्न्याधान किया होतो अग्न्याधान न करे [ओं अयन्त इध्म०] इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब—

ओं अग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से ४ चार व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ आठ आज्याहुति देवें तत्पश्चात् प्रधान होम निम्नलिखित मन्त्रों से करें।

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वावर्तेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ॥ २ ॥ ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ॥ ३ ॥ ओं आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ॥ ४ ॥ ओं ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥ ५ ॥ ओं यानि

ानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन् । पूर्णाऽऽहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ ६ ॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम । (गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ३ सू० ६) मा० मं० ब्रा० प्र० १ खं० ३ मं० १--६ ।

ये छः मन्त्र हैं, इन में से एक २ से छः आज्याहुति देनी फिर—

ओं भूरग्नये स्वाहा ।

इत्यादि ४ चार व्याहृति मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे के वधू वर वहाँ से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें तत्पश्चात् वर—

ध्रुवं पश्य । (ध्रुवम्) ध्रुव को (पश्य) देख ।

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू वर से बोले कि मैं—

पश्यामि ।

ध्रुव के तारे को देखती हूं तत्पश्चात् वधू—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य † असौ)
(गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ३ सू० ९)

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य ॥ ‡

ऐसा वाक्य बोल के वर को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि ॥

ऐसा कह के—

---

† (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठी विभक्त्यन्त पति का नाम बोले जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा विभक्त्यन्त बोल के इस वाक्य कोपूरा बोले जैसे "सौभाग्यदाऽहं शिवशर्मणस्ते०" । हे स्वामिन् ! सौभाग्यदा [अहम्] मैं [अमुष्य] आप शिव शर्मा की अर्धाङ्गी [पतिकुले] आप के कुल में [ध्रुवा] निश्चल, जैसे कि आप [ध्रुवम्] दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति [असि] हैं वैसे मैं भी आप की स्थिर दृढ़ पत्नी [भूयासम्] होऊं ॥

‡ (अरुन्धतीम्) अरुन्धती को (पश्य) देख। (पश्यामि) देखती हूं।

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य, असौ) गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ३ सू० १०-११ ।

इस मन्त्र को वधू बोल के वर, वधू की ओर देख के और वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्† ॥ सा० म० ब्रा० प्र० १ ख० ३ म० ७।

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वाऽदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम्‡ ॥ पार० गृ० सू० का० १ क० ८ सू० १९ ।

इन दोनों मन्त्रों को बोले । पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख हो के कुण्ड के समीप बैठें और पूर्वोक्त—

---

†हे वरानने ! जैसे [द्यौः] सूर्य की कान्ति वा विद्युत् [ध्रुवा] सूर्य लोक वा पृथिव्यादि में निश्चल, जैसे [पृथिवी] भूमि अपने स्वरूप में [ध्रुवा] स्थिर, जैसे [इदम्] यह [विश्वम्] सब [जगत्] संसार, प्रवाह स्वरूप में [ध्रुवम्] स्थिर है, जैसे [इमे] ये प्रत्यक्ष [पर्वताः] पहाड़ [ध्रुवासः] अपनी स्थिति में स्थिर हैं, वैसे [इयम्] यह तू मेरी [स्त्री] [पतिकुले] मेरे कुल में [ध्रुवा] सदा स्थिर रह ॥

‡ हे स्वामिन् ! जैसे आप मेरे समीप [ध्रुवम्] दृढ़ सङ्कल्प कर के स्थिर [असि] हैं या जैसे मैं [त्वा] आप को [ध्रुवम्] स्थिर दृढ़ [पश्यामि] देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्यों कि मेरे मन के अनुकूल [त्वा] आप को [बृहस्पतिः] परमात्मा [अदात्] समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त हो के [शतं, शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त [सम्, जीव] अच्छे जीविये तथा हे वरानने पत्नी! [पोष्ये] धारण और पालन करने योग्य ! [मयि] मुझ पति के निकट [ध्रुवा] स्थिर [एधि] रह [मह्यम्] मुझ को अपनी इच्छा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू [मया] मुझ [पत्या] पति के साथ [प्रजावती] बहुत उत्तम प्रजायुक्त हो कर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर। वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिस से कभी उलटे-विरोध में न चलें ॥

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन २ आचमन दोनों करें पश्चात् समिधा-ओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त कर के घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावे " ओम् अयन्त इध्म० " इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति, वर ,वधू देवें फिर जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है उस को एक पात्र में निकाल के उस के ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा २ भात दोनों जने ले के—

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ २ ॥ इदं प्रजापतये, इदन्न मम । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओम् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये, इदन्न मम ॥ ४ ॥ (पार० गृ० सू० का० १ क० १२ सू० ३ ।)

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक २ करके ४ चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी फिर (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से १ एक स्विष्टकृत् आहुति देनी फिर व्याहृति आहुति ४ चार और सा० प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति ८ आठ, एवं १२ बारह आज्याहुति देनी फिर शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के:—

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना । बध्नामि सत्य-ग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते * ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम ॥ यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव † ॥ २ ॥ ओं अन्नं

* हे वधू वा वर ! जैसे अन्न के साथ प्राण, प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे [ते] तेरे [हृदयम्] [च] और [मनः] मन [च] और चित्त आदि को [सत्यग्रन्थिना] सत्यता की गांठ से [बध्नामि] बांधती वा बांधता हूं ॥

† हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी ! [यदेतत्] जो यह [तव] तेरा

प्राणस्य षड्विंᳩ शस्तेन बध्नामि त्वा असौ ‡ ॥ ३ ॥ (सा० म० ब्रा० प्र० १ ख० ३ म० ८–१०)

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ा सा भक्षण कर के जो उच्छिष्ट (शेष) भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे । और जब वधू उस को खा चुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में सजे हुए शुभासन पर नियम से पूर्वाभिमुख बैठें और सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें तत्पश्चात् ईश्वर की स्तुति, आदि कर्म कर के क्षार लवण रहित, मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें फिर पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराना तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार कर के विदा कर देवें । फिर दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना कर के* तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार करें यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रहें फिर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और शास्त्रोक्त गर्भाधान की रात्री भी हो उस रात्री में यथाविधि गर्भाधान करें ॥ दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सन्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

[हृदयम्] आत्मा वा अन्तःकरण है [तत्] वह [मम] मेरा [हृदयम्] आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय [अस्तु] हो, और [मम] मेरा [यदिदम्] जो यह [हृदयम्] आत्मा प्राण और मन है [तत्] सो [तव] तेरे [हृदयम्] आत्मादि के तुल्य प्रिय [अस्तु] सदा रहे ॥

‡ [असौ] हे यशोदे वधू ! जो [प्राणस्य] प्राण का पोषण करने हारा [षड्विंशः] २६ छब्बीसवां तत्व [अन्नम्] अन्न है [तेन] उस से [त्वा] तुझ को [बध्नामि] दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥

* देखो—पार० गृ० सू० कां० १ कं० ८ सू० २१ ।

ओं जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥ ऋ० म० १० सू० ४० म० १० ।

इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय वर—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ १ ॥ [ऋ० म० १० सू० ८५ म० २६] सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ २ ॥ [ऋ० म० १० सू० ८५ मं० २०] (गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ४ सू० १) ।

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहाँ से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । [ऋचा का पूर्वार्द्ध] ।

और नाव से उतरते समय—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरे माभिवाजान् ॥ ऋ० मं० १० सू० ५३ मं० ८ ।

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें पुनः इसी प्रकार मार्ग में चार मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे खाढ़ा वाली पृथिवी बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो—

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ती दम्पती । सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ऋ० मं १० सू० ८५ म० ३२ तथा सा० म० प्र० १ खं० ३ मं० १२ ।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठ के जाते हों उस रथ का, कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव

होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रकट कर के उस में ४ व्याहृति आज्याहुति देनी पश्चात् वामदेव्यगान करना फिर जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती, सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आ कर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे सभामण्डप द्वारे आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले और आये हुए लोगः—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वरः—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं १ संसृजस्वाधा जिव्रीर्विदथमावदाथः ॥ ऋ० मं० १० सू० ८५ म० २७ ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे फिर वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वरः—

ओं इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा निषीदतु ॥ सा० मं० प्र० १ खं० ३ मं० १३ तथा पार० गृ० सू० का० १ क० ८ सू० १० ।

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे फिरः—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें फिर कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करें जब उसी कुण्ड में अग्निप्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार, अष्टाज्याहुति ८ आठ, सब मिल के १६ सोलह आज्याहुतियों को वधू वर करके, प्रधानहोम का आरम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें—

ओं इह धृतिः स्वाहा । इदमिह धृत्यै । इदन्न मम॥ ओं इह स्वधृतिस्स्वाहा । इदमिह स्वधृत्यै । इदन्न मम ॥ ओं इह रतिः स्वाहा । इदमिह रत्यै । इदन्न मम ॥ ओं इह रमस्व स्वाहा । इदमिह रमाय । इदन्न मम ॥ ओं मयि धृतिः स्वाहा । इदं मयि धृत्यै, इदन्न मम ॥ ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा । इदं मयि स्वधृत्यै इदन्न मम ॥ ओं मयि रमः स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम ॥ ओं मयि रमस्व स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम ॥ सा० मं० प्र० १ खं० ३ मं० १४ ।

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ आठ आज्याहुति देके:—

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे *स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै साविच्यै, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा † ॥ इदं सूर्यायै साविच्यै, इदन्न मम॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि * स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै, साविच्यै इदन्न

---

* हे वधू [अर्यमा] न्यायकारी दयालु [प्रजापतिः] परमात्मा कृपा करके [आजरसाय] जरावस्था पर्य्यन्त जीने के लिये [नः] हमारी [प्रजाम्] उत्तम प्रजा को शुभ गुण कर्म और स्वभाव से [आजनयतु] प्रसिद्ध करे [समनक्तु] उस से उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभगुण युक्त [मंगलीः) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें उन में से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश कर वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और [चतुष्पदे] गौ आदि को [शम्] सुखकर्त्री [भव] हो ॥

† इस मन्त्र का अर्थ पूर्व इसी संस्कार में आ चुका ।

* ईश्वर, पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त, इस वधू के स्वामिन्

मम ॥ ३ ॥ ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० सू० ८५ मं०४३–४६ ॥

इन ४ चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे के स्विष्टकृत होमाहुति १ एक, व्याहृतियोंकी आज्याहुति ४ चार और प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिल के छः आज्याहुति दे कर—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । संमातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ * ॥ ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४७ ।

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें तत्पश्चात्—

(त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तमपुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री ! तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पतिको, प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर, यदि इस से आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जावोगे इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना ।

† हे वरानने ! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उस में उचितप्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है उस में प्रेमयुक्त हो के उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननद है उस में भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर–ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उन में भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि, भव) अधिकार युक्त हो अर्थात् सब से अविरोधपूर्वक प्रीति से वर्ता कर ॥

* इस मन्त्र का अर्थ पूर्व इसी संस्कार में आचुका ।

अहं भो अभिवादयामि ‡ ॥

इस वाक्य को बोल के दोनों वधू वर, वर की माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के वामदेव्यगान करके उसी समय ईश्वरोपासना करनी—उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर, पिता आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥

आप लोग स्वस्तिवाचन करें, तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उन के अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें। पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

इस वाक्य को बोलें तत्पश्चात् कार्य कर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् वधू वर, क्षार आहार और विषयतृष्णा रहित, व्रतस्थ होकर शास्त्रोक्त रीति से विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भस्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहाँ जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे पुनः अपने घर आने पर पति, सासु, श्वशुर, ननन्द, देवर, देवराणी, ज्येष्ठ, जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर बर्तें और मधुरवाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें, तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे, और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से बर्ते तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे ॥

इति विवाह संस्कार विधिः ॥

---

‡ इस से उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है प्रातः सायं, अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इस वाक्य से परस्पर वन्दन करें ।

[विवरण] विवाह संस्कार के अन्त में—मूल "संस्कार विधि" में गृहाश्रम प्रकरण रक्खा है। उस में गृहस्थ को कैसे २ व्यवहार करने चाहियें-इस का प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रमाणों से अर्थ सहित किया गया है—सो मूल में ही देख लेना चाहिये। उसके विषय में विशेष निवेदन यह है कि:—

(१) "दशसूनासमं चक्रम्०,, इस मनुस्मृति के श्लोक का अर्थ ऐसा होना चाहिये—

"दश हत्या के समान चक्र अर्थात् गाड़ी से जीविका करने वाले दश चक्र के समान ध्वज अर्थात् मद्य को निकाल कर बेचने वाले, दशध्वज के समान वेष, अर्थात् वेश्या, भडुवा, भांड, वा दूसरे की नकल करने वाले आदि और दशवेष के समान जो अन्यायकारी राजा होता है वह, [इन के अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें]"॥

(२) "अतिथि यज्ञ" में "पृथिवीद्यौः—यहां से लेकर "भूत्यै-स्वाहा" पर्यन्त पाठ पार० गृ० सू० का० २ क० १७ सू० ९–१० में है।

(३) "शालाकर्मविधि" में "अच्युताय स्वाहा" यहां से लेकर समस्त विधि, पार० गृ० सू० का० ३ क० ४ के अनुसार है और दिशाओं की आहुतियाँ, गोभि० गृ० सू० प्र० ४ का० ७ सू० ३८–४० के अनुसार हैं और "प्राच्या दिशः" इत्यादि अथर्व वेद के मन्त्र हैं। शेष विद्वान् लोग स्वयं विचार लें। इति।

विवाह प्रकरण के संस्कृत वाक्य और मन्त्रों का अर्थः—

(पृ० १) "ऋतमग्रे" मन्त्र का तात्पर्य यह है कि किसी, स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षण जानने वाले—कुशल पुरुष से परीक्षित-प्रशंसित लक्षण वाली स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए जिस से गृहस्थी की भाविनी सुख समृद्धि में बाधा न हो।

(पृ० २) हे (काम) कामदेव ! (ते, नाम) तेरे नाम को (वेद) सब जगत् जानता है (मदः, नाम, असि) मदकारी तू प्रसिद्ध है। (ते) तेरे लिए यह कन्या (सुरा) मद साधन (अभवत्) हो चुकी है। अथवा (सुरा) यह जल, तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है। सुरा—जल का नाम भी है। (अमुम्) इस कन्या को वा इस मद को वा इस पति को (समानय) मानसहित कर। हे (अग्ने) कामाग्ने ! (अत्र) इस स्त्री जाति में ही, तेरा (परं, जन्म) उत्कृष्ट जन्म है (तपसः) गृहस्थाश्रम पालन रूप उत्कृष्ट धर्म के लिए, तू (निर्मितः) ईश्वर ने बनाया (असि) है ॥ १ ॥

हे वधू ! (इमं, ते, उपस्थम्) इस तेरे आनन्दजनक इन्द्रिय को (मधुना) प्रेम से (सं, सृजामि) संसृष्ट करता हूँ (एतत्) यह (प्रजापतेः) गृहस्थी बनने का (द्वितीयं, मुखम्) द्वितीय द्वार है। (तेन) उस से ही (अवशान्) नहीं किसी के वश में होने वाले भी (सर्वान्, पुंसः) सब पुरुषों को (अभि भवासि) वशीभूत कर लेती है और (वशिनी) वश करने वाली तू (राज्ञी) घर की स्वामिनी (असि) है ॥ २ ॥

(गुहानाः) तत्त्वदर्शी (पुराणाः) पुराने (ऋषयः) ऋषि लोगों ने (स्त्रीणाम्) स्त्री जाति के (उपस्थम्) आनन्दजनक इन्द्रिय को (क्रव्यादम्) मांस खाने वाला (अग्निम्) आग जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। (तेन) उस के साथ (त्रैशृङ्गम्) पुरुष शिश्न से उत्पन्न (त्वाष्ट्रम्) उत्पादक शक्ति वाले वीर्य को (आज्यम्) घृत—घी जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। हे वधू ! (त्वयि) तेरे में (तत्) वह शुक्र (दधातु) पुष्ट हो।

(पृ० ३) (भवान्) आप (साधु) अच्छे प्रकार (आस्ताम्) बैठिए (भवन्तम्) आप का, हम सब (अर्चयिष्यामः) पूजन—सत्कार करेंगे।

(अर्चय) सत्कार कीजिए ।

(विष्टरः) यह आसन है (प्रति गृह्यताम्) ग्रहण कीजिए ।

(प्रति गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ ।

(उद्यताम्) प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादि कों के बीच में [सूर्यः, इव] सूर्य जैसे श्रेष्ठ है वैसे ही [समानानाम्] कुल, ज्ञान, आचार, शरीर, अवस्था, तथा अन्य गुणों से सजातीयतुल्य पुरुषों में मैं [वर्ष्मः] श्रेष्ठ [अस्मि] हूँ ।

[यः, कः, चः] और जो कोई [मा] मुझे [अभी, दासति] उप क्षीण करना चाहता है अर्थात मुझे नीचा दिखाना चाहता है [तम्] उस पुरुष को लक्ष्य बनाकर [इमम्] इस आसन के [अभि] ऊपर [तिष्ठामि] बैठता हूं अर्थात् उसे इस आसन के तुल्य नीचा करके बैठता हूं ।

(पृ०४) [पाद्यम्] पैर धोने के लिए जल [प्रतिगृह्यताम्] स्वीकार कीजिए [प्रतिगृह्णामि] स्वीकार करता हूँ ।

हे जल ! तू [विराजः] विविध प्रकार से शोभित होने वाले अन्न का [दोहः] सार भूत-रस [असि] है । [विराजो, दोहम्] उस अन्न के सार भूत तुझ को मैं [अशीय] व्याप्त होऊँ अर्थात् तुझसे रोगादि निवृत्ति के लिए ईश्वर करे कि सम्बन्ध करूँ । [विराजः, दोहः] अन्न का सार तू, इस समय [मयि] मेरे विषय में [पाद्यायै] पैरों की रक्षा के लिए उपस्थित है ।

[अर्घः] सत्कारार्थ—मुखप्रक्षालनार्थ जल० । शेष पूर्ववत् ।

हे जलो ! तुम [आपः] आप्ति—नैरोग्य लाभादि के हेतु [स्थ] हो । [युष्माभिः] तुमसे [सर्वान् , कामान्] सब आरोग्यतारूप मनोरथों को [अव, आप्नवानि] प्राप्त होऊँ । अर्थात् जल से सब शरीर के विकारों को दूर करूँ जिस से स्वस्थता की उपलब्धि हो । हे जलो ! [वः] तुम को, मैं [समुद्रम्] अन्तरिक्षलोक में [प्र, हिणोमि] भेजता हूँ—पहूँचाता हूं अर्थात छोड़ता हूँ, इससे तुम [स्वाम्, योनिम्] अपने कारणभूत जल के (अभि) संमुख [गच्छत] जाओ । [अस्माकम्] हमारे [वीराः] वीर लोग [अरिष्टाः] रोग रहित-दुःख रहित हों [मत्]

मुझसे [पयः] मङ्गल जल, ईश्वर करे कि [मा, परासेचि] न हटे, अर्था-
त मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूँ । मैं जल से काम लेकर उसे छोड़ताहूँ
जिस से कि वह अपने कारण स्वरूप को प्राप्त हो कर फिर अन्य वीरादि
का उपकारक हो ।

(आ,चमनीयम्) पीने योग्य जलसहित पात्र ० शेष पूर्ववत् ।

(पृ०५) हे जलेश्वर ! परमात्मन् ! आप [मा] मुझे [यशसा] यश के
[अमा] साथ [आ, अगन्] अच्छे प्रकार प्राप्त हो ओ । और [तम्]
आप का आश्रयण करने वाले मुझ को [वर्चसा] अपने तेज से [संसृज]
युक्त करो । और [प्रजानाम्] प्रजाओं—पुत्र पौत्रादि का [प्रियम्] प्रेम
पात्र [कुरु] करो । (पशूनाम्) गवादि पशुओं का (अधि, पतिम्)
स्वामी बनाओ । और जल आदि से [तनूनाम्] शरीरावयवों का [अरि-
ष्टिम्] अहिंसक—पीडा न देने वाला, करो ॥

[त्वा] तुझे [मित्रस्य] मित्र की [चक्षुषा] दृष्टि से [प्रति, ईक्षे]
देखता हूं ॥ " देवस्य त्वा " मन्त्र का अर्थ उपनयन प्रकरण में आ गया ।

हे परमात्मन् ! [ऋतायते] यज्ञ की इच्छा करने वाले पुरुष के लिये
[वाताः] वायु [मधु] सरस—नीरोग होकर बहें । [सिन्धवः] नदियाँ
[मधु] सरस जल को [क्षरन्ति] [छान्दसत्वात्पुरुषव्यत्ययः] देवें ।
[नः] हमारे लिए [ओषधीः] रोग नष्ट करने वाली ओषधियाँ [माध्वीः]
माधुर्य युक्त [सन्तु] हों ॥

(नक्तम्) रात्रि (मधु) निर्विघ्न व्यतीत हों (उत) और (उषसः)
प्रभातकाल की वेलाएं भी निरुपद्रव हों । (पार्थिवं, रजः) यह पार्थिव
लोक—जो कि माता के तुल्य रक्षक है (मधुमत्) विषैले जन्तुओं से रहित
हो । (नः) हमारा (पिता) पिता के तुल्य रक्षक (द्यौः) अन्तरिक्षमण्डल
(मधु) सुखकारक (अस्तु) हो॥

(नः) हमारे लिए (वनस्पतिः) यज्ञोपयुक्त ओषधियाँ वा सोम
(मधुमान्) माधुर्यगुण युक्त हों (सूर्यः) सूर्यमण्डल (मधुमान्, अस्तु)
सुखकारी हो । (गावः) सूर्य की किरणें वा यज्ञोपयोगी गवादि पशु
(माध्वीः) रसवाली (भवन्तु) हों ॥

(पृ० ६) हे अग्ने ! जाठराग्ने ! (श्यावास्याय, ते) पीले वर्ण वाले तेरे लिए

मैं (नमः) आदर करता हूं । और (ते) तेरे (अन्नशने) (ह्रस्वश्छान्दसः) अन्न के तुल्य अशन-भोज्य इस मधुपर्क में (यत्) जो वस्तु न खाने योग्य (आ, विद्धम्) मिला हुआ है (तत्) उसे (निष्कृन्तामि) हटाताहूँ ।

इस मन्त्र से मधुपर्क को विलोडन करते हुए यदि कोई छोटा तृण आदि पड़ा हो तौ निकाल देना चाहिये । यहाँ पाराशर का ऐसा मत है कि " अनामिकाङ्गुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति " अनामिका और अँगूठे से तीन बार मधुपर्क का थोड़ा सा हिस्सा पात्रसे बाहर फेंक देना चाहिये ।

(गायत्रेण, छन्दसा) गायत्र छन्द के साथ (त्वा) तुझे (वसवः) वसुसंज्ञक २५ वर्ष की अवस्था वाले ब्रह्मचारी (भक्षयन्तु) खावें ।

(त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रैष्टुभ छन्द के साथ (त्वा) तुझे (रुद्राः) रुद्रसंज्ञक ३६ वर्ष के ब्रह्मचारी (भक्षयन्तु) खावें ।

(जागतेन, छन्दसा) जगती छन्द के साथ (त्वा) तुझे (आदित्याः) आदित्यासंज्ञक ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी [भक्षयन्तु] खावें ।

(आनुष्टुभेन, छन्दसा) अनुष्टुप छन्द को बोलते हुए [त्वा] तुझे [विश्वे, देवाः] सब विद्वान् [भक्षयन्तु] खावें ।

[भूतेभ्यः] अन्य प्राणियों के लिए भी [त्वा] तुझे [परि, गृह्णामि] ग्रहण करता हूं ।

यहाँ पर जैसा आश्वलायन गृ० सू० के टीकाकार का मत है वैसा ही मूल में लिख दिया है । संभव है-वसु आदि ब्रह्मचारियों का नाम ले कर मधुपर्क के भाग को छोड़ने से उनकी प्रतिष्ठा पूर्वकाल में द्योतित होती हो ।

हे विद्वानो ! [यत्] जो [मधुनः] पुष्पों के रस का [मधव्यम्] मिष्टता के लिए उपयुक्त (परमं, रूपम्) यह पवित्र स्वरूप है और यह (अन्नाद्यम्) अन्न की तरह खाने योग्य है । (अहम्) मैं [तेन, मधुनः, मधव्येन] उसी मधु के माधुर्योपयोगी [अन्नाद्येन] अन्न के तुल्य खाने योग्य (परमेण, रूपेण) सुन्दर स्वरूप से [परमः, मधव्यः, अन्नादः] पवित्र, मधुरभाषी, अन्न मात्र का भोक्ता, आप की कृपा से [असानि] होऊँ ।

(पृ० ७) 'अमुकगोत्रोत्पन्नाम्, के ऊपर "वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् नाम संकीर्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि" इत्यादि, पार० गृ० सू० का० १ क० ४ का हरिहर भाष्य देखना चाहिये, वहाँ यह सब स्पष्ट है ।

हे कन्ये ! तू [जरास्] निर्दोष वृद्धावस्था को, मेरे साथ (गच्छ) प्राप्त हो । और मेरे दिये हुए इस (वासः) वस्त्र को [परि, धत्स्व] पहन । [कृष्टीनाम्] कामादिकों से खैंचे हुए मनुष्यों के बीच में [वा] निश्चयरूप से [अभिशस्तिपाः] अभिशाप-प्रमाद से अपने आप की रक्षा करने वाली (भव) हो । (शतं, च, शरदः) और सौवर्ष पर्यन्त (जीव) प्राणधारण कर और (सुवर्चाः) तेजस्विनी हो कर [रयिम्] धन को और [अनु] पीछे [पुत्रान्] पुत्रों का [सं, व्ययस्व] संग्रह कर ।

हे (आयुष्मति) सुन्दर आयु वाली कन्ये ! (इदं, वासः) इस वस्त्र को (परि धत्स्व) पहन ।

"उपवस्त्र देवे" या पहनावे । अगले मन्त्र से भी उपवस्त्र—उत्तरीयवस्त्र देवे या वर पहनावे, ऐसा जान लेना चाहिए; पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पहनाने की विधि है ।

(याः) जिन व्यवसायिनी स्त्रियों ने, इस वस्त्र के सूत को (अकृन्तन्) काता है और (याः) जिन देवियों ने, इस वस्त्र के सूत को (अवयन्) बुना है (याः च) और जिन्होंने इसके सूत को (अतन्वत) फैलाया है और जिन (देवीः) देवियों ने (तन्तून्) इस वस्त्र के सूतों को (अभितः) दोनों ओर से (ततन्थ) सूचीकर्म से वा तुरी आदि के व्यापार से गूँथ कर फैलाया है (ताः, देवीः) वे देवियाँ (त्वा) तेरे प्रति (जरसा) वृद्धावस्था-पर्यन्त, ऐसे ही वस्त्र (संव्ययस्व) पहनाती रहें । हे (आयुष्मति) प्रशस्त आयु वाली कन्ये ! (इदं वासः) इस वस्त्र को तू (परि, धत्स्व) पहन । इस मन्त्र में पुरुषादिव्यत्यय छान्दस है । इस मन्त्र का, साम० वे० म० ब्रा० प्र० १ ख० १ म० ५ में पाठ भेद है । अर्थ दोनों का एक ही है ।

(पृ० ९–१०) (सा, पूषा) वह प्रसिद्ध, जगत् का पोषक—परमात्मा (नः) हमारे प्रति(शिवतमाम्) अत्यन्त कल्याण कारिणी, तुझ कन्या को (ऐरय) प्रवृत्त करे अर्थात् हम में प्रीतियुक्त बनावे । (इस मन्त्र में भी प्रथम पु-

रुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग छान्दस है) जिस से कि (सा) वह कन्या (नः) हमारे लिए (उशती) सुखादि की इच्छा करती हुई (ऊरू विहर) ऊर्वादि प्रदेशों को फैलावे (यस्याम्) जिस में कि (उशन्तः) सुखादि की इच्छा करते हुए हम [शेफम्] अपने इन्द्रिय को [प्र, हराम] व्यापृत करें और (यस्याम्, उ) जिस स्त्री में ही (बहवः कामाः) बहुत से धर्म, पुत्र, रमणादिरूप अभिलषणीय विषय (निविष्टयै) अग्निहोत्रादि द्वारा अन्तःकरणशुद्धिपूर्वक वैराग्य के लिए होते हैं ॥

(मे) मेरा (पतियानः) पति का जो मार्ग है वैसा ही (पन्थाः) मार्ग (प्र, कल्पताम्) बने, जिस से कि मैं (शिवा) सुख पाती हुई (अरिष्टा) निर्विघ्न हो कर (पतिलोकम्) सब के पति परमात्मा को (गमेयम्) प्राप्त होऊँ ॥

[पृ० ११] हे (स्वधावन्) हविर्लक्षण अन्न के सम्पादक ! परमात्मन् ! (यत्, त्वम्) जो तू (कनीनाम्) कन्या आदिकों का भी (अर्यमा) नियम में रखने वाला (भवसि) है और तू सब जगत् को (गुह्यं, बिभर्षि) गुप्त रूप से रक्षा करने वाला है, यह बात (नाम) विद्वानों को प्रसिद्ध है। (यत्) जिन (दम्पती) स्त्री पुरुषों–पति और पत्नी को, तू (समनसा) तुल्यमनस्क–एक चित्त (कृणोषि) शुभकर्म द्वारा करता है, वे दम्पती (मित्रं, न) मित्र की नाईं (सुधितम्) अच्छेप्रकार पोषक आप को (गोभिः) गौ के विकारभूत घृतादिकों से, हवन द्वारा आप की आज्ञा पालन करते हुए आप को (अञ्जन्ति) पूजित करते हैं।

[ऋताषाड्] सत्य–सत्य ब्रह्म की आज्ञा को सहन करने वाला (ऋतधामा) ब्रह्म से ही प्राप्त है तेज जिस को ऐसा (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला (अग्निः) अग्नितत्त्व है। (तस्य) उसी अग्नि के सम्बन्धी अर्थात् अग्नितत्त्वप्रधान (ओषधयः) ओषधियाँ, जो कि (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में वा जल में व्याप्त हैं, वे (मुदः, नाम) सुखस्वरूप–सुख देनेवालीहैं, यह बात विद्वानों को प्रसिद्ध है। (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिए (ब्रह्म, क्षत्रम्) ब्राह्मण और क्षत्रियों की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस अग्नि के लिए (स्वाहा, वाट्) सुहुत हो और (ताभ्यः) उन ओषधियों के लिए भी (स्वाहा) सुहुत हो। (अप् शब्द निघण्टु में अन्तरिक्ष और जल का भी वाचक है।)

(संहितः) दिन और रात्रि की सन्धि करने वाला (विश्वसामा) संसार में शान्ति पहुँचाने वाला (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (सूर्यः) सूर्य है (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त (तस्य,-मरीचयः) उस सूर्य की किरणें (आयुवः, नाम) प्रसिद्ध है कि मिली हुई हैं (सः) वह सूर्य ० शेष पूर्ववत् ॥

(सुषुम्णः) अच्छे प्रकार सुख देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें जिस में पड़ती हैं ऐसा (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला (चन्द्रमाः) चाँद है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (नक्षत्राणि) नक्षत्र (भेकुरयः, अप्सरसः) प्रकाश को करने वाले होकर अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं, यह बात (नाम) विद्वानों को प्रसिद्ध है, शेष पूर्ववत् ॥

[इषिरः] गमनशील [विश्वव्यचाः] सब जगह व्याप्त (गन्धर्वः) वाणी को बल दे कर धारण करने वाला (वातः) वायु है [तस्य] उस के सम्बन्ध से ही [ऊर्जः] बल, वा प्राणादि वायु [अप्सरसः] अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं तथा [आपः] अन्यत्र भी व्याप्त हैं० शेष पूर्ववत् ।

[भुज्युः] सब भूतों का पालक [सुपर्णः] शोभन ज्ञान से संपादित [गन्धर्वः] पृथ्वी को धारण करने वाला [यज्ञः] यज्ञ है [तस्य] उस के सम्बन्ध में [अप्सरसः, दक्षिणाः] प्रसिद्धि को प्राप्त होने वाली दक्षिणा–धर्मात्मा विद्वानों को दान भी [स्तावा] स्तुति के योग्य हैं [नाम] यह विद्वानों को विदित है० शेष तुल्य है ॥

[प्रजापतिः] प्रजा का पति [विश्वकर्मा] सब कार्यों को करने वाला [गन्धर्वः] वाणी को प्रेरणा कर के धारण करने वाला [मनः] मन है [तस्य] उस के सम्बन्ध से ही [ऋक्सामानि] ऋग्वेद और साम वेद, गानादिद्वारा [अप्सरसः] अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं, वे ऋक् और साम ही (एष्टयः) ईश्वर से प्रार्थना के साधन हैं (नाम) यह विद्वानों को प्रसिद्ध है, शेष पूर्व के तुल्य ॥

ये मन्त्र तो छः ही हैं परन्तु उन का भाग कर के १२ आहुतियाँ दी जाती हैं ॥

(चित्तम्) चित्त-ज्ञान के आधार हृदय को, "मेरे लिये देवे"

ऐसे सम्बन्ध अगले मन्त्र की "प्रायच्छत्" क्रिया को ले कर सर्वत्र कर लेना चाहिए । (चित्तिः) हृदय की चेतना । (आकूतम्) कर्मेन्द्रिय । (आकूतिः) कर्मेन्द्रियों की प्रेरकशक्ति । (विज्ञातम्) शिल्प विज्ञान (विज्ञातिः) शिल्प विज्ञानशक्ति (मनः) सुख दुःख के ज्ञान का भीतरी साधन । (शक्करीः) मन की शक्तियाँ (पृ० १३) (दर्शः) दर्शेष्टि—यज्ञ,—अमावास्याका याग (पौर्णमासम्) पूर्णिमासम्बन्धी यज्ञ (बृहत्) बड़प्पन (रथन्तरं) सामविशेष ॥ (प्रजापतिः) परमात्मा ने (वृष्णे) यज्ञादिद्वारा मनुष्यों की इष्टसिद्धि की वर्षा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिए (जयान्) जयदेनेवाले मन्त्रों को (प्र, अयच्छत्) अच्छे प्रकार पूर्व सेही दे रक्खा है, जयमन्त्रों के प्रभाव से ही इन्द्र (पृतनाजयेषु) शत्रुओं की सेनाओं के जीतने में (उग्रः) प्रचण्ड होता है, जीत के कारण ही (सर्वा विशः) सब मनुष्य, उसके प्रति (सम्, अनमन्त) अच्छे प्रकार नमस्कार करते हैं, वा कर चुके हैं (सः, उग्र) वह जीतने वाला ही (उग्रः) प्रचण्ड होता है (सः,इ) और वह ही (हव्यः) ग्रहण के योग्य (बभूव) हो चुका है वा होता है ॥

ये १३ मन्त्र "जय" मन्त्र कहलाते हैं । भर्तृयज्ञ का मत है कि "स्वाहा" के योग में व्याकरणरीत्या चतुर्थी कर के "चित्ताय स्वाहा" इत्यादि रूप से बोलना चाहिए परन्तु कर्काचार्यादि कहतेहैं कि ये मन्त्रस्वरूप हैं, देवता नहीं अतः जैसे हैं वैसे ही रहने चाहिएँ ।

(अग्निः) भौतिक अग्नि (भूतानाम्) सब तत्वों वा पदार्थों में (अधिपतिः) मुख्य वा पदार्थों का रक्षक है (सः) वह (मा) मेरी (अवतु) रक्षा करे । (अस्मिन्, ब्रह्मणि) इस ब्राह्मण समूह में (अस्मिन्; क्षत्रे) इस क्षत्रियों के समूह में (अस्याम्; आशिषि) इस प्रार्थना में (अस्यां; पुरोधायाम्) इस आगे बैठी हुई कन्या के विषय में (अस्मिन्, कर्मणि) इस हवनादि कर्म में (अस्यां, देवहूत्याम्) इस विद्वानों के आह्वान–बुलाने में (रक्षा करे) ॥

(ज्येष्ठानाम्) बड़े से बड़े पदार्थों में (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवाली विद्युत् (अधिपतिः) मुख्य है वा उन को रक्षक है० । शेष पूर्ववत् ॥

(यमः) ऋतु ही (पृथिव्याः, अधिपतिः) इस सब पृथिवी की स्वामी है० शेषपूर्ववत् ॥

(वायुः) पवन, (अन्तरिक्षस्य, अन्तरिक्ष लोक का (अधिपतिः) स्वामी है० शेषपूर्ववत् ॥

(दिवः) द्युलोक का (सूर्यः) सूर्य्य (अधिपतिः) स्वामी है० शेषपूर्ववत् । (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अधिपतिः) स्वामी है० शेषपूर्ववत् ।

(पृ० १४–१५) (बृहस्पतिः) बड़ों का पति–परमात्मा [ब्रह्मणः] वेद का [अधिपतिः] स्वामी है० ।

[सत्यानाम्] सत्यव्यवहारों का [मित्रः] सूर्यादि, प्रकाशक पदार्थ० ।

[अपाम्] स्थूलजलों का [वरुणः] स्वीकार योग्य सूक्ष्मजल० ।

[स्रोत्यानाम्] स्रोत से बहने वाले जलों का [समुद्रः] समुद्र० ।

[साम्राज्यानाम्] चक्रवर्तियों के ऐश्वर्यों का [अन्नम्] अन्न० ।

[ओषधीनाम्] ओषधियों की [सोमः] सोमलता० ।

[प्रसवानाम्] फल, पुष्पादि का [सविता] सूर्य० ।

[पशूनाम्] पशुओं का [रुद्रः] व्याघ्रादिहिंसक जीवों को रुलाने वाला० ।

[रूपाणाम्] द्रष्टव्य पदार्थों का [त्वष्टा] उत्तम शिल्पी० ।

[पर्वतानाम्] मेघों का [विष्णुः] यज्ञ० ।

[गणानाम्] समूहों के [मरुतः] देवता [ते] वे० ।

(पितरः) पिता, चाचा, आदि [पितामहाः] पिताओं के पिता [परे, अवरे] उत्कृष्ट कोटि के और नीचे दरजे के [ततः] और जो फैले हुए कुटुम्ब के लोगहैं, वे तथा [तता महाः] उन लोगों में भी जो पूजनीय हैं वे० शेषपूर्ववत् ॥

[देवतानां, प्रथमः] देवताओं में मुख्य [मृत्युपाशात्] [मृत्युपाशमत्ति–भस्मी करोतीति] अकाल मृत्यु के बन्धन को भस्म करने वाला [अग्निः] अग्नि देव [आ, एतु] अच्छे प्रकार प्राप्त हो । और [सः] वह अग्निदेव [अस्यै] इस कन्या के लिए [प्रजाम्] सन्तान को [मुञ्चतु] देवे । [तत] उस प्रजादान का [अयं, वरुणः, राजा) यह सब से श्रेष्ठ परमात्मा रूपी राजा (अनु, मन्यताम्) पश्चात् सहायक हो

(यथा) जिस प्रकार से कि (इयम्, स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम्, अघम्) पुत्र सम्बन्धी दुःख को (न, रोदात्) न रोवे—न प्राप्त हो ॥ १ ॥

(गार्हपत्यः) गृहस्थसम्बन्धी अग्निहोत्र की [अग्निः] अग्नि (इमाम्) इस कन्या की (त्रायताम्) ईश्वर करे कि रक्षा करे । (अस्यै) इस स्त्री की (प्रजाम्) सन्तान को, परमात्मा (दीर्घम् आयुः) बड़ी आयु (नयतु) प्राप्त करावे । और यह स्त्री (अशून्योपस्था) वन्ध्यात्वदोष से रहित हो कर (जीवताम्] जीने वाले सन्तानों की [माता, अस्तु] माता हो । और [इयम्] यह स्त्री (पौत्रम्, आनन्दम्] पुत्र सम्बन्धी आनन्द को [अभि, वि,बुध्यताम्) प्राप्तहो कर विशेष रूप से जाने ॥ २ ॥

हे [यजत्र] यज्ञ करने वाले की रक्षा करने वाले [अग्ने] अग्निदेव! [नः] हमारे [विश्वानि] सब कर्मों को, जो कि [अयथा] अन्यथा प्रतिकूल हुए हैं, उन को [स्वस्ति] सम्पूर्ण अनुकूल कर के [धेहि] स्थापन करो । और [दिवः, आ] आकाश लोक तक [पृथिव्याः, आ] पृथिवी तक [यत्] जो [महि] महिमा–महत्त्व है [तत्] उसे [अस्मासु] हम लोगों में [धेहि] रक्खो और जो [अस्याम्] इस पृथिवी में [जातम्] पैदा हुआ [चित्रम्] नाना प्रकार का [द्रविणम्] धन है उसे और जो [दिवि] आकाश लोक में [प्रशस्तम्] श्रेष्ठ वस्तु है, उसे हम लोगों में स्थापित करो ॥ ३ ॥

हे परमात्मन् ! आप [सुगं, पन्थाम्] सुख से प्राप्तव्य मार्ग का [प्र,-दिशन्, नु] हमारे मन में उपदेश करते हुए ही [नः] हम को [एहि] प्राप्त हों । और [नः] हमें [ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त–दोष रहित [अजरम्] जरा वृद्धावस्था के विकारों से रहित [आयुः] जीवन को [धेहि] दीजिए [मृत्युः] आयु का प्रतिबन्धक मृत्यु [अप, एतु] हम से हट जावे । [मे] मेरे लिए [अमृतम्] मोक्ष [आ, अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । (वैवस्वतः) सूर्य का जैसा आप का प्रकाश (नः) हमें (अभयम्) भयरहित (कृणोतु) करे ॥ ४ ॥

हे (मृत्यो) मृत्यु के अधिष्ठातृदेव ! (यत्र) जहाँ कहीं (नः) हम लोगों के बीच में (अन्यः) दूसरा (देवयानात्, इतरः) विद्वानों के गन्तव्य मार्ग से पतित हुआ पुरुष है उस को (परं पन्थानम्) द्वितीय लोक के (अनु) संमुख (परा, इहि) हम से पराङ्मुख कर के ले जाओ । [चक्षुष्मते, शृण्वते] बिना आंख कान के भी देखने और सुनने वाले (ते) तुझ

श्र (ब्रवीमि) प्रार्थना करता हूँ कि (नः) हमारी (प्रजाम्) सन्तान को (मा; रीरिषः) मत नष्ट कर (उत) और (वीरान्) अन्य, देश के वीरों को भी, मत नष्ट कर ॥ ५ ॥

(पृ० १६) हे कन्ये ! (ते पृष्ठम्) तेरे पृष्ठ भाग को (द्यौः) द्युलोकस्थ सूर्य (रक्षतु) रक्षा करे । (च) और (अश्विनौ) विद्वान् वैद्य (वायुः) वातादि के रोग से (ऊरू) तेरे ऊर्वादि नीचे के प्रदेशों की रक्षा करें । (आ; वाससः, परिधानात्) सभ्यतापूर्वक वस्त्र पहनने आदि के पूर्व (ते, स्तनन्धयः पुत्रान्] तेरे दुग्ध पीते बालकों की [सविता] उत्पादक-पिता रक्षा करे । [पश्चात्] पीछे से उन बालकों की [बृहस्पतिः] गुरुकुल का आचार्य और [विश्वे देवाः] देश के सब विद्वान् लोग [अभि रक्षन्तु] सब तरफ से रक्षा करें ॥ ६ ॥

हे कन्ये ! (निशि) रात्रि में (ते, गृहेषु) तेरे घरों में (घोष) आर्तनाद–दुःख देने वाले शब्द (मा, उत्थात्) ईश्वर करे कि न उठे । (त्वत्) तुझ धर्माचारिणी से (अन्यत्र) अधर्मियों के यहाँ स्त्रियाँ (रुदत्यः) रोती हुई (सं, विशन्तु) सोवें वा घुसें । (त्वम्) तू (रुदत्) रोती हुई–दुःख उठाती हुई [पुरे] अपने घर में, अपने आश्रित भृत्यादिकों को [मा, आ, वधिष्ठाः] मत मार । [जीवपत्नी] जीवितपतिका होती हुई [पतिलोके] पति के घर में [वि, राज] सुशोभित हो [सुमनस्यमानाम्] सुप्रसन्नचित्त [प्रजाम्] अपनी सन्तति को [पश्यन्ती] देखती हुई तू सुशोभित हो ॥ ७ ॥

हे कन्ये ! तेरे [अप्रजस्यम्] पुत्रशून्यता दोष को और [पौत्रमर्त्यम्] पुत्रसम्बन्धी दुःख को [उत, वा] अथवा [पाप्मानम्, अघम्] पापरूप व्यसन को और [द्विषद्भ्यः] द्वेष करने वाले अधर्मियों से होने वाले [पाशम्] बन्धन को [शीर्ष्णः, स्रजम्, इव] मस्तक से माला को जैसे उतार देते हैं वैसे ही मैं [प्रति, मुञ्चामि] दूर हटाने की प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ ८ ॥

यहाँ पार० गृ० सू० कार का मत है कि ५ आहुतियाँ ही पूर्व मन्त्रों से दीजावें, गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० १ सू० २४ का मत है कि ६ आहुतियाँ दी जावें परन्तु खास वेद म० ब्रा० प्र० १ ख० १ में ये मन्त्र ८ आठ ही

आए हैं, प्रकरण भी एक ही है इसी से मूलकारने ८ आठ आहुतियाँ देना लिखा है ।

"गृभ्णामि०" के ऊपर आपस्तम्ब गृ० सू० ख० ४ सू० १५ में लिखा है कि बधू का हाथ पकड़ कर इन ४ मन्त्रों को बोले परन्तु गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० २ सू० १६ में इन छः मन्त्रों को बोलने का विधान है तदनुसार ही यहाँ छः मन्त्रों को लिखा है ॥

[पृ० २०] हे देवी ! [इमम्, अश्मानम्] इस पत्थर के ऊपर [आरोह] चढ़ और [अश्मा, इव] इस पत्थर के तुल्य [त्वम्] तू धर्म कार्य में [स्थिरा, भव] दृढ हो । [पृतन्यतः] पृतनां-संग्रामसिच्छन्ति पृतन्यन्ति तान् पृतन्यतः—कलहकारियों को [अभि] आक्रमण कर के-दबा कर के (तिष्ठ) स्थित हो और [पृतनायतः] पृतनाभिर्यतन्ते इति पृतनायतस्तान् समूहों को लेकर लड़ाई के लिए यत्न करने वालों को भी (अव) नीचा कर के [बाधस्व] पीड़ित कर—भग्नोद्यम बना ॥

कन्या की उक्ति—[कन्याः] कन्याएँ (अर्यमणम्) न्यायकारी नियन्ता (अग्निं, देवम्) जिस पूजनीय देव-ईश्वर को (अयक्षन्त) पूजा करती हैं (सः) वह (अर्यमा, देवः) न्यायकारी दिव्यस्वरूप परमात्मा (नः) हम को (इतः) इस पितृकुल से [प्र, मुञ्चतु] छुड़ावे और [पतेः] पति के साहचर्य से [मा] न छुड़ावे ॥

[ये तीन मन्त्र कन्या कहे]

[पृ० २१] [लाजान्] भुने हुए चावल-खीलों को [आ, वपन्तिका] अग्नि में छोड़ने वाली (इयं, नारी) यह स्त्री (उप, ब्रूते) पति के समीप कहती है कि (मे, पतिः) मेरा पति ईश्वर कृपा से (आयुष्मान्, अस्तु) दीर्घजीवी हो । और (मम) मेरे (ज्ञातयः) कुटुम्ब के लोग [एधन्ताम्] धनधान्यादि से बढ़ें ॥

हे पते ! (इयम्) यह मैं (तव) तेरी (समृद्धिकरणम्) वृद्धि के लिए (इमान्, लाजान्) इन खीलों को, अग्नि में (आ, वपामि) छोड़ती हूं । (मम) मेरा (तुभ्यं, च) और तेरा (सं, वननम्) परस्पर अनुराग हो (तत्) उस में (अग्निः) पूजनीय परमात्मा (अनु, मन्यताम्) सहायक हो ।

(सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य वाली ! (वाजिनीवति) अन्नादि सन्तति वाली ! हे (सरस्वति) वाणी आदि पदार्थों की कारणीभूत प्रकृति ! (इदम्) इस हवनादि कर्म की (प्र, अव) अच्छे प्रकार रक्षा कर। [अस्य, विश्वस्य, भूतस्य] इस-दृश्यमान सब पृथिव्यादि की [याम्, त्वा] जिस तुझ को (अग्रतः) स्थूल सृष्टि के पूर्व कारण रूप से विद्यमान [प्रजायाम्] उत्पादन करने वाली, विद्वान् लोग कहते हैं। [यस्याम्] जिस तुझ में (भूतम्) पृथिव्यादि (समभवत्) उत्पन्न हुआ है और [यस्याम्] जिस तुझ में (इदं, विश्वं, जगत्) यह सब जगत् ही उत्पन्न हो कर विद्यमान है,[अद्य] आज से [ताम्] उसी तेरे प्रति [गाथाम्] गुणप्रभाव स्तुति का [गास्यामि] गान किया करूँगा [या] जो गाथा सुनने पर [स्त्रीणाम्] स्त्रियों के लिए [उत्तमं, यशः] अच्छी कीर्ति को देगी ॥

हे (अग्ने) पूजनीय परमात्मन् ! (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए-तुम्हारी ही परिचर्या के लिए (परि, अवहन्) हमने इस कन्या को स्वीकार किया है, यह कन्या (सूर्याम्) सूर्य की दी हुई शोभा को (वहतु) प्राप्त हो और (सह) साथ ही (ना) इस का पति रूप-पुरुष मैं भी प्रतिष्ठादि जन्य शोभा को प्राप्त होऊँ । (पुनः) कालान्तर में (अग्ने) हे ईश्वर (प्रजया, सह) पुत्रों के साथ (पतिभ्यः) मुझ पति के लिये [बहुवचन सार्वम्] (जायाम्) भार्यात्व को प्राप्त हुई इस कन्या को (दाः) दीजिए। सन्धिरार्षः ॥

(कन्यला) यह कन्या (पितृभ्यः) पिता भ्राता आदि को (अप) छोड़ कर (पतिलोकम्) पति के गृह के प्रति [पतीयम्] पति सम्बन्धी [दीक्षाम्] नियम को [अयष्ट] स्वीकार कर चुकी है [उत] और [कन्या] यह कन्या [त्वया] उससे भिन्न मुझ पति व्यक्ति के साथ ही सर्वदा रहे, जिससे कि (वयम्) हम मिल कर (.उदन्याः, धाराः, इव) जल की वेग वाली धाराओं की नाईं-जैसे जल की प्रबलधाराएँ अपने संमुख आने वाले तृणादि को दबा कर बहा ले जाती हैं वैसे ही (द्विषः) कामादिशत्रुओं को (अति) उल्लङ्घन करके , पश्चात् (गाहेमहि) विलोडन करें-दबावें ॥

(भगाय) ऐश्वर्य के लिए० ।

(पृ० २२) (प्रजापतये) प्रजा के पति-परमात्मा के लिए० ।

हे वधु ! (येन) जिस बन्धन से (सुशेवः) शोभनसुखसम्पन्न (सविता) उत्पादक मातृजन (त्वा) तुझे (अबध्नात्) बांध चुका है (वरुणस्य, पाशात्) उसी श्रेष्ठ स्त्री जन के किए बन्धन से (त्वा) तुझे प्र, मुञ्चामि) अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं । और (ऋतस्य, योनौ) यज्ञ के स्थान में और अन्य (सुकृतस्य) सुन्दर कार्यों के (लोके) स्थान में (अरिष्टां, त्वा) उपद्रव रहित करके तुझे (पत्या, सह) मैं पतिभाव के साथ [दधामि] पोषण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।

ईश्वर वाक्य—हे [इन्द्र ! मीढ्वः !] ऐश्वर्य वाले-वीर्यसेक्ता विवाहित पुरुष ! (यथा] जैसे [इयम्] यह कन्या [सुभगा] अच्छे ऐश्वर्य वाली और [सुपुत्रा] सुन्दर पुत्र वाली [सति] हो, वैसे ही कर तथा प्रतिज्ञा कर कि–हे कन्ये ! [इतः] इस पितृकुल से तुझे [प्र,मुञ्चामि] छुड़ाता हूं (अमुतः) उस पति के घर से (न) नहीं छुड़ाता किन्तु (अमुतः) इस पति गृह के साथ तो तुझे (सुबद्धाम्) अच्छे प्रकार सम्बद्ध (करम्) कर चुका हूं ॥

हे वधु ! (सव्येन) बाएँ पैर से (दक्षिणम) दाहिने पैर को (मा, अतिक्राम) मत उल्लङ्घनकर अर्थात् आगे बाएँ पाद को मत रख ॥

हे कन्ये ! [इषे] अन्नादि के लिए, तू [एकपदी, भव] एक पैर चलने वाली हो और [सा] वही तू [माम्] मेरे [अनु, व्रता] अनुकूल हो, तेरी अनुकूलता संपादन के निमित्त, [विष्णुः] व्यापक परमात्मा [त्वा] तुझे [आ, नयतु] अच्छे प्रकार प्राप्त करे । हम तुम दोनों मिल कर [बहून्, पुत्रान्, विन्दावहै] बहुत से पुत्रों को लाभ करें, और [ते] वे पुत्र [जरदष्टयः] वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाले [सन्तु] हों ।

[पृ० २३] [ऊर्जे] बल संपादन के लिए [द्विपदी] दो पैर वा दूसरा पैर चलने वाली० ।

(रायस्पोषाय) धन वा ज्ञान की पुष्टि के लिए (त्रिपदी) तीन पैर चलने वाली ० ।

(मायोभवाय) मायः सुखम् । सुख की उत्पत्ति के लिए (चतुष्पदी) चौथा पैर चलने वाली ०।

(प्रजाभ्यः] सन्तानों के पालन के लिए [पञ्चपदी] पांच पैर चलने वाली० ।

यहां पर "पशुभ्यः" ऐसा पाठ भी मिलता है । "[पशुभ्यः] पशुओं की रक्षा के लिए" यह अर्थ कर लेना चाहिए ।

[ऋतुभ्यः] ऋतुओं के अनुकूल व्यवहारसंपादन के लिए (षट्पदी) छठा पैर चलने वाली० ।

(सखे) यह हेतुगर्भ संबोधन है । हे मित्रवद् वर्तमान ! मित्रतासंपादन के लिए (सप्तपदी) सात पैर वा सातवां पैर चलने वाली० शेष पूर्ववत् सातों मन्त्रों में जान लेना चाहिए । कहीं (सप्तपदा) ऐसा पाठ मिलता है । "आपो हि ष्ठा" आदि तीन मन्त्रों का अर्थ उपनयन प्रकरण में लिख आए ।

(आपः) जो जल (शिवाः) कल्याण के हेतुभूत हैं (शिवतमाः) अत्यन्त अभ्युदय कारी हैं (शान्ताः) सुख पहुंचाने वाले हैं, [शान्ततमाः] अधिक सुख देने वाले हैं, [ताः] वे जल [ते,भेषजम्] तेरी नीरोगता को [कृण्वन्तु] करें ॥

[पृ०२४] सा च [वधूः] वरप्रेषितासती "तच्चक्षु" रिति मन्त्रेण स्वयं पठितेन सूर्यन्निरीक्षते दिवाविवाहपक्षे [इति पार० गृ० सू० का० १ क० ८ टीकायां हरिहरमिश्रः] अर्थात् वर के कहने से वधू "तच्चक्षुः" इस मन्त्र को स्वयं बोल कर सूर्य को देखे यदि दिन में विवाह हो तो, यह पार० गृ० सू० के टीकाकार हरिहर मिश्रने लिखा है । इस मन्त्र का अर्थ पूर्व "शान्ति प्रकरण में आ गया ॥

गदाधराचार्य, उक्त गृ० सू० के द्वितीय टीकाकार का तो मत है कि पारस्करमतावलम्बियों को दिन ही में विवाह करना चाहिए क्यों कि आगे यह भी लिखा है कि "अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति" अर्थात् सूर्य अस्त होने पर ध्रुव को दिखावे । "मम व्रते" मन्त्र का अर्थ पूर्व "उपनयन प्रकरण" में भी आ चुका ।

हे विद्वान् लोगो ! (इयं, वधूः) यह वधू (सुमङ्गलीः) छान्दसो विसर्गः । शोभन मङ्गल स्वरूप है, अतः इस कन्या के साथ (समेत) मेल रक्खो और (इमाम्) इस को, मङ्गल दृष्टि से (पश्यत) देखो और (अस्यै) इस के लिए [सौभाग्यं, दत्त्वा] सौभाग्य का आशीर्वाद देकर (अस्तम्) अपने २ घर के प्रति (याथ) जाओ । और (न,वि परा, इत) विशेष रूप से पराङ्मुख हो कर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आने के लिए जाओ ॥

(पृ० २५) (सौभाग्यम्) धन धान्यादि सम्पन्नता (अस्तु) हो (शुभम्) कल्याण (अस्तु) हो ।

हे कन्ये ! (लेखासन्धिषु) रेखा—मस्तकादि रेखाओं की सन्धियों में (पक्ष्मसु) नेत्रों के लोमों में (च) और (आरोकेषु) नाभिरन्ध्रादिकों में (ते) तेरे (यानि) जो बुरे चिन्ह होंगे (ते, सर्वाणि, तानि) तेरे उन सबों को (पूर्णाहुत्या) इस पूर्णाहुति के द्वारा (अहम्) मैं पति (शमयामि) शमन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ॥१॥

(यत्, च) और जो (केशेषु) बालों में (पापकम्) बुराई होगी (ईक्षिते) देखने के सम्बन्ध में (यत् च) और जो (रुदिते) चलने फिरने में, बुराई होगी उस सब को० शेष पूर्ववत् ॥२॥

(यत्, च) और जो (शीलेषु) स्वभाव या व्यवहारों में (यत्, च) और जो (भाषिते, हसिते) बोलने और हंसने में (पापकम्) बुराई होगी० शेषतुल्य० ॥३॥

(च) और (आरोकेषु) दाँतो के बीच में (दन्तेषु) दांतों में (यत, च) और जो (हस्तयोः, पादयोः) हाथ और पैरों में बुराई होगी० ॥४॥

(ऊर्वोः) जांघों में (उपस्थे) गोपनीय इन्द्रिय में (जङ्घयोः) घुटनों में (च) और (सन्धानेषु) अन्यान्य सन्धिस्थानों में बुराई होगी० ॥५॥

(पृ०२६) [च] और हे कन्ये ! (तव, सर्वाङ्गेषु) तेरे सब अङ्गों में (यानि, कानि) जो कोई (घोराणि) बुराई—या कमी (अभवन्) हो चुकीं या होंगी (आज्यस्य, पूर्णाहुतिभिः) इस घृत की पूर्णाहुतियों की प्रसिद्धि के साथ (तानि, सर्वाणि) उन सब बुराई या कमियों को (अशीशमम्) शान्त कर चुकने की प्रतिज्ञा कर चुका, ऐसा समझ ॥ ६ ॥

हे ध्रुव नक्षत्र ! (ध्रुवम्, असि) तू जैसे निश्चल है वैसे ही (अहम्) मैं (पतिकुले) पति के कुल में (ध्रुवा) निश्चल (भूयासम्) ईश्वर करे कि होऊँ ॥

(पृ० २७) हे (अरुन्धति) अरुन्धति ! तारे ! जैसे तू सप्तर्षिनामक तारों के निकट सर्वदा (रुद्धा) रुका रहता है, वैसे मैं भी अमुक नाम वाली अमुक की पत्नी, अपने पति के नियम में रुक गई—बँधगई ॥

पारस्कर के मत में एक ध्रुव ही दिखाया जाता है । गोभिल, ध्रुव और अरुन्धती दोनों का दिखलाना मानते हैं । मानवगृह्यसूत्रकार, ध्रुव, अरुन्धती, और सप्तर्षियों का भी दिखलाना मानते हैं ॥

"अग्नि" आदि शब्दों का अर्थ पूर्व आचुका है ।

(पृ० २८) (अन्नपाशेन) अन्न है पाश—बन्धन जिस का, ऐसे (मणिना) रत्न तुल्य (पृश्निना) शरीरान्तर्वर्ती छोटे से (प्राणसूत्रेण) प्राणरूपी सूत से—(सत्यग्रन्थिना) सचाई की गाँठ लगा कर० शेषमूलकार की टिप्पणी में है ।

(पृ० २९)कहीं "षड्विंशः" ऐसा पाठ है, षड्विंशका अर्थ "बन्धन" किया है ।

(पृ० ३०) "जीवं रुदन्ति, इस मन्त्र से लेकर "इह प्रियं, इस मन्त्र तक जो २ जिस २ मन्त्र से विधि लिखी है वह २ सब, भट्टकुमारिलस्वामि-प्रणीत—आश्वलायनगृह्यकारिका के "गृहप्रवेशप्रकरण" के अनुसार है ।

हे विद्वान् लोगो ! (ये, नरः) जो मनुष्य—पतिरूप (जीवं, रुदन्ति) स्त्रियों के जीवन सुधारने के उद्देश से कष्ट उठाते हैं और अपनी स्त्रियों को (अध्वरे) यज्ञ में [वि, मयन्ते] प्रवेश कराते हैं और [दीर्घाम्, प्रसितिम्] लम्बे—गृहस्थाश्रमके श्रेष्ठ बन्धन को [अनु, दीधियुः] अनुकूल व्यवहार में लाते हैं और जो [पितृभ्यः] अपने माता पिताओं की सेवा के लिए [इदम्, वामम्] इस सुन्दर अपत्य को [सम्, एरिरे] "अच्छी तरह प्रेरित करते हैं, उन्हीं] पतिभ्यः] पतिरूप पुरुषों के लिए [जनयः] जायाएँ [परिष्वजे] आलिङ्गन के लिए [मयः] सुखको, करती हैं ॥

हे कन्ये ! [इतः] यहाँ से [हस्तगृह्य] पकड़ने योग्य हैं हाथ जिस का ऐसा [पूषा] पोषण करने वाला, यह पति [नयतु] घर को पहुंचावेगा । और [अश्विना] वेग वाले वे दोनों घोड़े वा घोड़े वाले [रथेन] रथसे—बग्घी से [त्वा] तुझे [प्र, वहताम्] अच्छे प्रकार ले जावे, तू [गृहान्] अपने पति के घर को [गच्छ] जा [यथा] जैसे कि तू [गृहपत्नी] घर की स्वामिनी [असः] हो [वशिनी, त्वम्] पति को शुभकृत्यों से वश में रखने वाली, तू [विदथम्] पति के घर में स्थित भृत्यादि को [आ, वदासि] अच्छे प्रकार आज्ञा दे ॥

हे (सूर्ये) सूर्यवत्तेजस्विनि ! कन्ये ! (सुकिंशुकम्) अच्छे पलाशके वृक्ष से निर्मित (शल्मलिम्) सेमर के वृक्ष की लकड़ियों से युक्त (विश्वरूपम्) नाना वर्ण वाले (हिरण्यवर्णम्) सोने के अलङ्कारों से युक्त (सुवृतम्) अच्छे चलने वाले (सुचक्रम्) सुन्दर पहिये वाले, इस रथ पर तू (आ, रोह) चढ़ और (पत्ये) अपने पति के लिए (वहतम्) अपने गमन को (स्यो-

नम्) सुख कारी और (अमृतस्य, लोकम्) पीडारहित स्थान (कृणुष्व) कर। यह मन्त्र कुछ पाठ भेद के साथ सा० मं० ब्रा० प्र० १ ख० ३ मं० ११ में भी आया है ! वधू के रथारोहणारम्भ के समय इस मन्त्र के बोलने की आज्ञा आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र खण्ड ५ सूत्र २२ में भी है ॥

हे (सखायः) हे चेतनत्वेन समानख्याति वाले जीवो ! जब (अश्मन्वती) पत्थर आदि से युक्त नदी (रीयते) बहती हो, तब (सं, रभध्वम्) अच्छे प्रकार वेग वा उत्साह से काम लो (उत्, तिष्ठत) सावधान होकर स्थित हो ओ, और उस नदी को (प्र, तरत) अच्छी तरह उतर जाओ। ऐसा समझो कि (अत्र) यहाँ नदी पर ही (ये) जो (अशेवाः) दुःख दायी वाः दुःख साधन (असन्) हैं, उन्हें (जहाम) छोड़ते हैं। और (वयम्) हम (शिवान्, वाजान्) कल्याणकारी अन्नादि पदार्थों को (अभि) प्राप्तहोने के लिए (उत्तरेम) उतरेंगेही ॥

(ये) जो (परि पन्थिनः) दुःख देने वाले–डाकू आदि (दम्पती) इन रथारूढ–जायापति के प्रति (आ, सीदन्ति) संमुख आते हैं वे(मा,-विदन्) ईश्वर करे कि न मिलें। (दुर्गम्) दुर्गमदेश को (अति) उल्लङ्घन-करके (सुगेभिः) सुगममार्गों से (इतम्) जाने वालों के (अरातयः) शत्रु हैं वेभी ईश्वर करे कि (अप, द्रान्तु) भाग जावें ॥

[पृ० ३१] "सुमङ्गली०" इस मन्त्र का अर्थ इसी प्रकरणमें पूर्व आगया।

हे वधु ! [ते] तेरा [इह] इस पति कुल में [प्रियम्] सुख [प्रजया] सन्तान के साथ [सम्, ऋध्यताम्] अच्छे प्रकार बढे [गार्हपत्याय] घर की स्वामिनी बनने के लिए [अस्मिन्, गृहे] इस पति के घर [जागृहि] जगती रहे–सावधान रहे। [एना, पत्या] इस पति के साथ ही [तन्वम्] अपने शरीर का [सं, सृजस्व] संसर्ग कर [अध] और [जिव्री] वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तुम दोनों पति पत्नी [विदथम्] गृहस्थाश्रम धर्म पालन रूप यज्ञ की [आ, वदाथः] अच्छे प्रकार प्रशंसा करो ॥

[इह] इस पति कुलमें [गावः] गौएँ [प्र, जायध्वम्] अधिक हों [इह] यहाँ [अश्वाः] घोड़े और [इह] यहाँ [पूरुषाः] पुत्र पौत्रादि अधिक हों। [इह, उ] और यहाँ [पूषा] इस घर का पोषण करने वाला [मैं] (सहस्रदक्षिणः, अपि) सहस्रों का दान देता हुवा ही (नि, षीदतु) बैठा–रहूं।

[पृ० ३२] हे वधू ! [इह] इस घर में तेरा [धृतिः] धैर्यबना रहे । और [इह] इस घर में [स्वधृतिः] अपने कुटुम्बी लोगों के साथ एकत्रस्थिति–मेल हो [इह, रतिः] यहां रमण बना रहे और [इह, रमस्व] यहां तू भी रमण किया कर । [मयि] मुझ पति में विशेष कर [धृतिः] धैर्य बना रहे [मयि, स्वधृतिः] मेरे लिए विशेष कर आत्मीय जनों के साथ मेल रहे । [मयि रमः] मेरे पदार्थों में रमण किया कर [मयि रमस्व] विशेष कर मुझ में ही रमण किया कर ॥ शेष स्पष्ट ही है ॥

॥ इति विवाहसंस्कार के संस्कृत भाग की व्याख्या ॥

विवाह प्रकरण–परिशिष्ट ।

(गृहाश्रम प्रकरण में आये मन्त्रादि का क्रम से अर्थ)

"सन्ध्योपासनविधि" बहुत स्थानों में सार्थक मुद्रित हो चुकी है अतः "सन्ध्या" के दुबारा अर्थ करने की आवश्यकता नहीं, केवल एक मन्त्र ऋग्वेद का यहाँ अधिक लिखा है उस का अर्थ यह है:—

(जातवेदसे) उत्पन्न हुए सब पदार्थों के जानने वाले परमात्मा की आज्ञा के लिए हम सब (सोमम्) सोमलता आदि दुःखनिवारक ओषधियों का अर्क (सुनवाम) खेंचा करें। जो परमात्मा (अरातीयतः) शत्रु जैसा हमारे साथ आचरण करने वालों के (वेदः) धन को (नि, दहाति) अवश्य समयानुकूल जला देता है। (सः, अग्निः) वह ही परमात्मा (नः) हमारे (विश्वा, दुर्गाणि) सब दुःखों को (अति, पर्षत्) उल्लङ्घन कराके पार करे और (दुरिता) दुःखों के कारण पापोंसे भी (अति) पृथक् रक्खे। (नावा, सिन्धुम्, इव) नौकाद्वारा जैसे मल्लाह नदी से पार करता है वैसे ही ॥ अधिकोपयोगी सन्ध्या में न समझ कर इस मन्त्र को पीछे से छपने वाली सन्ध्याओं में नहीं रक्खा, सो उचित ही है।

"सूर्यो ज्योति" रित्यादि मन्त्रों के अर्थ आदि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के "पञ्चमहायज्ञप्रकरण" में लिखे हुए हैं। "बलिवैश्वदेवविधि" के मन्त्रों के अर्थ भी वहीं से जान लेने चाहिएँ, बलिवैश्वविधि, मन्त्रादि

महर्षियों ने जैसी लिखी है वैसी ही यहाँ लिखित है। "विश्वानि०" और "अग्नेनय" इन दोनों मन्त्रों के अर्थ पूर्व "ईश्वरस्तुति०" प्रकरण में कर आए "यां मेधाम्" मन्त्र का अर्थ यह है.—

हे परमात्मन् ! (यां, मेधाम्) जिस धारणावती बुद्धि को (देवगणाः) संसार से विरक्त विद्वानों के समूह (पितरः, च) और संसार की पालना करने वाले विद्वान् (उपासते) सेवन करते हैं (तया, मेधया) उसी धारणावती बुद्धिसे (अद्य) आज (माम्) मुझे (मेधाविनम्) बुद्धि सम्पन्न (कुरु) करो।

"अतिथियज्ञ" प्रकरण में नवशस्येष्टि आदि के विषय में देखो "मू० संस्कारविधि गृहाश्रम प्र०"

क्षेत्र सम्बन्धी यज्ञ का नाम "सीतायज्ञ" है। सीता—हल के फाले वा हल चलाने की डण्डी का नाम है।

(इह) इस यज्ञ से (तम्, इन्द्रम्) उस ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा को मैं यज्ञकर्ता (उप, ह्वये) हृदय में स्मरण करता हूँ (यस्मै) जिस के ऐश्वर्य बतलाने के लिए (द्युभिः, आवृता) अनेक तरह की शोभाओं से परिवेष्टित (पृथिवी, द्यौः, प्रदिशः, दिशः) पृथिवी—भूमि, आकाश, और दिशा विदिशाएँ विद्यमान हैं।

उसी ईश्वर की कृपा से [नः,] हमारे [हेतयः] शत्रुओं को दबाने के हथियार—हलके फाले और खेत आदि [शिवाः] कर—टैक्स से रहित [सन्तु] होवें ॥

हे [वृत्रहन्] मेघों के प्रेरक परमात्मन् ! [अस्मिन्, कर्मणि] इस क्षेत्रसम्बन्धी कर्मकाण्ड में [यत्, मे, किञ्चित् उप, ईप्सितम्] जो कुछ मेरा अत्यन्त इष्ट अनादि है [शरदः, शतम्] सौ वर्ष तक [जीवतः, मे] जीने वाले मुझे [तत्सर्वम्] वह सब आप की कृपा से [सम्, ऋध्यताम्] अच्छे प्रकार बढ़ता रहे ॥

[इह] इस यज्ञ के करने से [सम्पत्तिः] धन धान्य वृद्धि [भूतिः] ऐश्वर्य [भूमिः] पृथिवी [वृष्टिः] वर्षा [ज्यैष्ठ्यम्] बड़प्पन [श्रैष्ठ्यम्] सर्वोपकारिता [श्रीः] शोभा वा लक्ष्मी, हमें प्राप्त हो और परमात्मा [प्रजाम्] वंशपरम्परा की [अवतु] रक्षा करे ॥

[यस्याः] जिस सीता के [भावे] होने से [वैदिकलौकिकानाम्] वैदिक और लौकिक [कर्मणाम्] कर्मों की [भूतिः, भवति] सम्पत्ति होती है, उसी [इन्द्रपत्नीं, सीताम्] समृद्धिशाली खेतीहर को अपनी पत्नी की तरह प्रिय-सीता-हल की डण्डी को मैं [उप, ह्वये] अपने समीप स्थित करता हूँ [मे,तु] मेरी तो [सा] वही सीता [कर्मणि] हर एक क्षेत्रसम्बन्धी कार्य में [अनपायिनी] अन्न बढाने वाली (भूयात्) ईश्वर करे कि हो ॥

(अश्वावती) घोड़े बांधने का कारणी भूत (गोमती) गौएँ रखने की हेतु (सूनृतावती) मधुर वाक्यों को बुलाने वाली (या) जो सीता से कृष्ट भूमि (अतन्द्रिता) आलस्यशून्य होकर (प्राणभृतः, बिभर्त्ति) प्राणधारियों का पोषण करती है, उसी (ध्रुवाम्, उर्वराम्, खलमालिनीम्) दृढ, सब धान्यों से युक्त, खल–धान्यराशि स्थान में शोभित होने वाली--सीता सम्बद्ध--जिसमें हल चलाया गया हो ऐसी भूमि को (अस्मिन्, कर्मणि) इस यज्ञ कर्म के समय में (उप, ह्वये) अपने हृदय में स्मरण करता हूं (मे,तु) मुझे तो [सा] वही क्षेत्रभूमि [अनपायिनी, भूयात्] ईश्वर करे कि दुःख नाशिका हो ॥ (सीतायै) सीता के लिए (यजायै) यज्ञ के लिए [शमायै] शान्ति के लिए (भूत्यै) ऐश्वर्य के लिए (स्वाहा) सुहुत हो ॥

गृहाश्रमप्रकरण के शालाकर्म विधि में आए हुए संस्कृत वाक्यों का अर्थ—

(अच्युताय, भौमाय) अप्रच्युतस्वरूप पृथिवी के रक्षक परमात्मा के लिए (स्वाहा) सुहुत हो ॥

हे सज्जनो ! (भुवनस्य) संसार के एक देश में स्थित गृह की (नाभिम्) नाभितुल्य (वसोः) धन–चूने आदि मसाले की (धाराम्) धारण करने वाली (वसूनाम्) विविध प्रकार के धनों की (प्र, तरणीम्) फैलाने वाली अर्थात् अनेक प्रकार के रत्नों से जटित (इमाम्) इस घर की स्थूणा–थून को, मैं यजमान (उच्छ्रयामि) बढ़ाने की—ठीक स्वच्छ रखने की प्रतिज्ञा करता हूं । (इह,एव) इस दृढ स्थूणा पर ही (ध्रुवां, शालाम्) इस दृढ स्थान को, मैंने (नि,मिनोमि) निरन्तर परिश्रम से खड़ा किया है (क्षेमे) इस निरुपद्रव प्रदेश में, यह शाला (घृतम्) सुख को (उक्षमाणा) देती हुई (तिष्ठतु) ईश्वर करे कि स्थिर रहे ॥

हे शाले ! तू [अश्वावती) घोड़ों वाली (गोमती) सुन्दर गौओं वाली (सूनृतावती) प्रिय और सत्य वाक्य बोलने वालों को आश्रय देने वाली होकर (महते, सौभगाय) हम लोगों के बड़े सौभाग्य के लिए, ईश्वर करे कि (उच्छ्रयस्व) हम लोगों को आश्रय देने वाली हो, वा धनादि से बढती रहे। हे शाले ! (त्वा) तुझे आश्रयण करके (शिशुः) बालक लोग (आ, क्रन्दतु) क्रीडा से उत्पन्न हुए हँसी के शब्द करें, अथवा बालक क्रीडा के लिए एक दूसरे का आह्वान करें। और (आ, वाश्यमानाः) चारों ओर से-म्हां, म्हां-शब्द करती हुईं रम्हांती हुई [धेनवः] नई व्याई हुई गौयें और [गावः] नहीं व्याई हुई गौवें, तुझे भर देवें।

हे शाले ! [त्वा] तेरा आश्रयण करके (कुमारः) वटुक-ब्रह्मचारी और (तरुणः) जवान गृहस्थ (आ) अच्छे प्रकार, वेद शब्द करे। और (जगदैः सह) अपने अनुचरों के साथ (वत्सः) गौ आदि के बछड़े तुझ में स्थित हो कर (आ) अच्छी तरह, अपने दूध पीने के लिए अपनी माताओं को बुलावें । (त्वा) तेरा अधिष्ठान करके [परि, स्रुतः] चिकना [दध्नः कुम्भः] दही का घड़ा [उप] हमारे समीप [कलशैः] दूध आदि के घड़ों के साथ [आ] मिलकर [आ] आक्रन्द करे अर्थात् इन सब से तू युक्त हो। हे [सुभगे] सुन्दरि ! वा सुसमृद्धे ! तू (क्षेमस्य] कल्याण की साधिका (पत्नी) पत्नी जैसी है (बृहती) स्वरूप और गुणोंसे बड़ीहै [सुवासाः] सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत है, हे परमात्मन् (नः) हमारे लिए, इस शाला में (रयिम्) धन और (सुवीर्यम्) अच्छी शक्ति--सामर्थ्य को (धेहि) दीजिए॥

[अनु, श्रेयः] अनुकूल कल्याण के साधन [इदम्] इस स्थान में (वसानः] बसता हुआ मैं यजमान प्रार्थना करता हूं कि—[नः) हमारे (अभि) सब ओर, इस घर में (रयिः) धन (पूर्यताम्] ईश्वर करे कि भर जावे। (अश्वावत्) घोड़ों के व्यवहार के योग्य (गोमत्) गौओं के व्यवहार योग्य (ऊर्जस्वत्) सरस (वनस्पतेः, पर्णम्, इव) वनस्पति के पत्ते जैसे वसन्तऋतु में चारों ओर भरे हुए दिखाई देते हैं वैसे ही॥

(हे ब्रह्मन् !) हे वेदज्ञ ! (प्र, विशामि) मैं इस घर में प्रवेश करता हूँ।

(वरम्) अच्छे प्रकार (भवान्) आप (प्र, विशतु) प्रवेश करें।

(ऋचम्) ऋग्वेद को (यदि "ऋतम्" पाठ हो तो ऋतम्-सत्य-व्यवहार को) (प्र,पद्ये) अङ्गीकार करता हूं। और तदनुकूल ही (शिवम्) सुख को (प्रपद्ये) स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।

(शालायाः) इस शाला के (प्राच्याः, दिशः) पूर्व की ओर के (महिम्ने) महत्त्व के ज्ञान के लिए (नमः) यह हमारा आहुतिप्रदानपूर्वक आदर है। और (स्वाह्येभ्यः) स्वाहाके योग्य अन्य (देवेभ्यः) देवों के लिए भी (स्वाहा) सुहुत हो ॥

ऐसेही "दक्षिणा आदि दिशा सम्बन्धी मन्त्रों के अर्थ जान लेने चाहिएँ। "ध्रुवा" नीची दिशा और "ऊर्द्ध्वा" ऊपर की दिशा का नाम है। (दशो, दिशः, शालायाः) अर्थात् शाला के सब ओर विदिशाओं के०इत्यादि॥

हे (वास्तोष्पते) संसाररूप घरके स्वामिन् ! परमात्मन् ! (अस्मान्) हम सबों को (प्रति,जानीहि) अङ्गीकार करो वा पुरुषार्थ करने में सोत्साह करो। और (नः) हमारे लिए (स्वावेशः) अच्छी तरह हृदय में प्रवेश है जिस का ऐसे तथा (अनमीवः) रोग विरोधी (भव) हूजिए। (यत्) जिस वस्तु की (त्वा, प्रति) तेरे संमुख (ईमहे) प्रार्थना करें (तत्) वहवस्तु (नः) हमारे लिए (जुषस्व) दीजिए। और (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्र पौत्रादि के लिए (शम्) सुखकारी हों और हमारे (चतुष्पदे) गवाश्वादि वर्ग के लिए (शम्) सुख कर हों ॥

हे [वास्तोष्पते] गृहमात्र के रक्षक ! ईश्वर ! तू (नः) हमारे लिए [प्र,तरणः] आपत्तियों का निवारक [एधि] हो। हे [इन्दो] चन्द्रके तुल्य आह्लादक ! [गोभिः] गौओं के साथ [अश्वेभिः] घोड़ों के साथ [गयस्फानः] धन की वा प्राणों की वृद्धि कराने वाला हो। और [ते] तेरी [सख्ये] मैत्री वा प्रेमभाव होने पर, हम [अजरासः] जरा-वृद्धावस्था के दोषों से रहित [स्याम] होवें अर्थात् हम मुक्ति लाभ करें। और [पिता, पुत्रान्, प्रति, इव] पिता पुत्रों के प्रति जैसे रक्षा कर के प्रसन्न करता है, वैसे [नः] हमें रक्षा कर के [जुषस्व] प्रसन्न करो ॥

हे [वास्तोष्पते] घरों के रक्षक जगत्पते ! [शग्मया] सुखदेने वाली [रण्वया] रमणीय वा वेदशब्दों से युक्त [गातुमत्या] धनवाली वा यशवाली [ते, संसदा] तेरी दी हुई इस शाला से, हम [सक्षीमहि] रहने

का सम्बन्ध करते हैं, आप [क्षेमे] प्राप्त पदार्थ की रक्षा के विषय में [उत] और [योगे] अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के विषय में [वरम्] वरणीय [नः] हमारे, धनआदि पदार्थ के [पाहि] सहायक हूजिए और [यूयम्] तुम [स्वस्तिभिः] अभीष्ट फलों से [नः] हमारी [सदा] सदा [पात] रक्षा किया करो ॥

हे [वास्तोष्पते] गृहों के पालक ! परमात्मन् ! तुम [अमीवहा] रोगों के नाशक हो और [विश्वा, रूपाणि] जगत् की समस्त वस्तुओं में [आ,विशन्] प्रविष्ट हो, आप [नः] हमारे [सखा] मित्र तुल्य हितकारी और [सु, शेवः] अच्छा सुख पहुँचाने वाले [एधि] हूजिए ॥

हे [वाजिनः] अन्नादि के ऐश्वर्य से सम्पन्न आगत सज्जनो ! मैं यजमान आज यज्ञ के दिन [अग्निम्] पूजनीय [इन्द्रम्] ऐश्वर्यशाली [बृहस्पतिम्] सब बड़ों के पति परमात्मा को [च] और विश्वान्, देवान्] समस्त देवताओं, वा विद्वानों को [सरस्वतीम्] श्रेष्ठ ज्ञानवाली वेदवाणी [च] और [वाजीम्] अन्नादि सामग्री का भी [उप, ह्वये] अपने समीप सादर आह्वान करता हूँ अर्थात् नाम लेकर स्मरण करता हूं आप लोग,[मे] मुझे [वास्तु] इस घर में प्रवेश करने के लिये [दत्त] आज्ञा दीजिए ॥

हे [वाजिनः] बल, उत्साह से युक्त सज्जनो ! [सर्वान्, देवजनान्] सब कुटिल प्रकृति के मनुष्यों और दिव्य--स्वच्छ प्रकृति के मनुष्यों को [हिमवन्तम्] हिमवान् पर्वत की तरह गम्भीर प्रकृति के मनुष्य समूह को तथा [सुदर्शनम्] शोभन रूप से सम्पन्न मनुष्यगण को [च] और [वसून्, रुद्रान्, आदित्यान्] वसु, रुद्र, आदित्य नामक ब्रह्मचारियों को [जगदैः, सह, ईशानम्] अनुचरों सहित इस देश के राजा को [एतान्, सर्वान्] इन सबों को [अहम्]मैं, प्रेम से [प्र,पद्ये] अङ्गीकार करता हूँ, आप सब [मे] मेरे लिए [वास्तु] घर में प्रवेश करने की [दत्त] आज्ञा दीजिए ॥

(पूर्वाह्णम्) दिन का पूर्वभाग (च) और (अपराह्णम्) दिन का उत्तर भाग (मध्यन्दिना, सह) दिन के मध्यभाग के साथ (उभौ) ये दोनों और (प्रदोषम्) रात्रि का आरम्भ काल (च) और (अर्द्धरात्रम्) आधी रात का समय और (महापथाम्, व्युष्टाम्, देवीम्) बड़ा ब्रह्मचिन्तनरूप सद्गति का मार्ग है जिस में ऐसा सूर्योदय के पूर्व स्वच्छ उषःकाल (एतान्

सर्वान्) इन सबों को (अहम्) मैं (प्र, पद्ये) यथोचित रीति से उपयोग में लाया करूँगा । हे (वाजिनः) पराक्रमी सज्जनो ! आप (मे) मेरे लिये (वास्तु) इस स्थान में प्रविष्ट होने की (दत्त) आज्ञा दीजिए ॥

(कर्तारम्) क्रियाशील (च) और (वि, कर्तारम्) विशेषतः कार्यों में कुशल और (विश्वकर्माणम्) राजमिस्त्री (च) और (ओषधीः) ओषधियाँ तथा (वनस्पतीन्) वनस्पतियाँ जिन के विना फूलआएही फल आजावें ऐसे पिप्पल आदि वृक्ष (एतान्, सर्वान्) इन सब को (अहम्) मैं (प्र,-पद्ये) यथोचित रूपसे सेवन करूँगा० शेष पूर्ववत् ॥

(धातारम्) अनेक वस्तुओं के पोषक-महाजन (च) और (वि,-धातारम्) बड़े सेठ लोग (च) और (सह) विद्यमान (निधीनाम्, पतिम्) कोशों के अधिपति० शेष पूर्ववत् ॥

हे (ब्रह्मप्रजापती) ब्रह्मन् — वेदज्ञ ! और परमात्मन् ! आप दोनों [इदं, वास्तु] इस गृह को [स्योनम्] सुखसेव्य तथा [शिवम्] शान्ति कारी करके [दत्तम्] दीजिए । [च] और [सर्वाः, देवताः] सब देवताओंका, इस समय मैं ध्यान करता हूँ । एक "च" शब्द वाक्यालङ्कार में है ऐसे ही आगे समझना चाहिए ॥

हे शाले ! [त्वा] तेरे प्रति [श्रीः] शोभा वा लक्ष्मी [च] और [यशः] कीर्ति, ये दोनों [पूर्वे, सन्धौ] पूर्वद्वार में [गोपायेताम्] रक्षाकरें ॥

[यज्ञः] यज्ञ–हवन और [दक्षिणा] दान [दक्षिणे, सन्धौ] दक्षिण द्वार में० शेष पूर्ववत् । [अन्नम्] अन्न [च] और (ब्राह्मणः) ब्राह्मण लोग (पश्चिमे सन्धौ) पश्चिम द्वार में० शेष तुल्य है ॥ (ऊर्क्) बल और (सूनृता) सुन्दर मधुर वाणी (उत्तरे सन्धौ) उत्तर द्वार में० शेष पूर्ववत् ॥

(माम्) मुझे- यजमान को (केता, च, सुकेता) केता और सुकेता (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (गोपायेताम् इति) रक्षित रक्खें । (अग्निः, वै, केता) अग्नि पूजनीय परमात्मा ही केता कहा जाता है और (आदित्यः, सुकेता) सूर्य वत् सब जगत् का नियन्ता ही सुकेता कहलाता है (तौ, प्र, पद्ये) उभय गुण विशिष्ट परमात्मा को ही मैं अपना शरण बनाता हूँ (ताभ्यां, न-मोस्तु) ईश्वर के उन दोनों गुणों के लिए मेरा नमस्कार हो (तौ, मा, पुरस्ताद्, गोपयेताम्) वे दोनों मेरी पूर्व दिशा में रक्षा करें ॥ अथवा

ईश्वर से उत्पादित—भौतकाग्नि और भौतिक सूर्य का ग्रहण करना चाहिए, उन के लिए नमस्कार—उचित उपयोगग्रहणरूप समझना चाहिए ॥

(दक्षिणतः) दक्षिण की ओर (गोपायमानं, च, रक्षमाणा, च) गोपायमान और रक्षमाणा (दक्षिणतः) अनुकूलता से (मा) मेरी (गोपायेताम्) रक्षा करें। (अहः, वै, गोपायमानम्) दिन ही गोपायमान है (रात्री, रक्षमाणा) और रात्री ही रक्षमाणा कहलाती है० शेष पूर्ववत् ॥

(मा) मेरी (दीदिविः, च, जागृविः, च) दीदिवि और जागृवि (अधिक चकारों को वाक्यालङ्कारार्थक जानना चाहिए) (पश्चात्) पश्चिम दिशा में (गोपायेताम्) रक्षा करें! (अन्नं, वै, दीदिविः) अन्न ही दीदिवि कहलाता है और (प्राणः, जागृविः) प्राण का नाम जागृवि है० शेषपूर्ववत् ॥

(उत्तरतः) उत्तर की ओर (अस्वप्नश्च, अनवद्राणश्च) अस्वप्न और अनवद्राण ये दोनों (मा) मेरी (गोपायेताम्) रक्षा करें (चन्द्रमाः, वै, अस्वप्नः) चन्द्रमा ही अस्वप्न है और (वायुः, अनवद्राणः) वायु ही अनवद्राण है० शेष पूर्ववत् ॥

हे सज्जनो! मैं यजमान (धर्म—स्थूणाराजम्) धर्मयुक्त बड़ी स्थूणा-थून गृहस्तम्भ और कड़ी आदि को (श्रीस्तूपम्) स्वच्छता के समूह को (अहोरात्रे, द्वारफलके) दिन और रात्रि में व्यवहरणीय किवाड़ों को उचितरूप से काम में लाया करूँगा ॥

(इन्द्रस्य, गृहाः) बड़े धनी के घर जैसे मेरे घर (वसुमन्तः, वरूथिनः) धनयुक्त और रक्षा करने वाले हों (तान्) उन को (अहम्) मैं (प्रजया, सह) पुत्र पौत्रादि के साथ (पशुभिः सह) पशुओं के साथ (यत्, मे, किञ्चित्, अस्ति) जो कुछ मेरे यहाँ द्रव्य है उस के साथ (प्र, पद्ये) स्वीकार करूँ और मैं (उप, हूतः) प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा अपने समीप आमन्त्रित तथा (सर्वगण—सखाय—साधुसंवृतः) सब घर के लोग मित्र समूह और अन्य महात्मा लोगों को आश्रय देने वाला होऊँ। हे (शाले) शाले! (तां, त्वा) उस तुझ को लक्ष्य कर के अर्थात् तेरे संमुख में ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि (नः) हमारे (गृहाः) घर (सर्वतः) सब ओर से (अरिष्टवीराः) रोगादि रहित—वीर—पराक्रमी जिन में रहें ऐसे (सन्तु) हों ॥

(सर्वे, भवन्तः) आप सब लोग (अत्र) इस शाला में (सदा) सदा (आनन्दिताः, भूयासुः) ईश्वर करे कि आनन्दित रहो ॥ मूल मन्त्रों को मूल "संस्कार विधि" में देख लेना चाहिए ॥

॥ इति गृहाश्रमप्रकरणे शालासंस्कारप्रकरणम् ॥

विवाह संस्कार की व्याख्या ।

पहिले सूत्र का भाव यह है कि मुंडन, उपनयन, समावर्तन और वि-
वाह पुण्यनक्षत्र में करे ।
पुण्यनक्षत्र की टीका कई ऐसी करते हैं कि जिन नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा
का समागम उत्तम होता है । इस का फल आँधी बादल के विकारों का
बहुत कम होना आदि हमें प्रतीत होता है । महर्षि दयानन्द जीने "संस्कार
विधि" में इसी पुण्यनक्षत्र के संबन्ध में पहिले पृष्ठ पर यह विवरण दिया
है कि—
"यह नक्षादि का विचार कल्पना युक्त है इस से प्रमाण नहीं"
आज कल भारतीय आर्य संतान पुण्यनक्षत्र के वह अर्थ नहीं ले रही
जो 'अनुकूल दिन' हो सकता है प्रत्युत वह समझती है कि अमुक नक्षत्र
की विद्यमानता में विवाह होने से चाहे लड़की ८ वर्ष और लड़का १० वर्ष
का हो विवाह सौभाग्य का दाता और वर वधू में आयुभर प्रीति का
कर्ता होगा । यह भ्रममूलक प्रतियुक्ति जो पुण्यनक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध
है यह केवल कल्पनायुक्त ही है इस लिये प्रमाण नहीं हो सक्ती ।
इसी लिये तो ऋषि दयान्द जी का उक्तविवरण है । हमारा यह वि-
चार है कि पुण्यनक्षत्र होने की दशा में शीत, ताप, वर्षा की विषमता
नहीं होती और विवाह के लिये मौसम का होना जबकि वर्षा आदि की
बाधा बहुत न हो आवश्यक है क्यों कि एक स्थान से दूसरे स्थान को
विवाह करने जाने के अतिरिक्त दूर २ से इष्ट मित्रों को भी तो आना होता है
हमारा दृढ विचार है कि पहिले लोग पुण्यनक्षत्र के अर्थ यही मा-
नते थे कि जब उपद्रव रहित ऋतु हो फिर अज्ञानवश पुण्यनक्षत्र के अर्थ
वह भ्रममूलक हो गये जो आज हिन्दुओं में प्रचलित हैं । देखिये

शुक्लपक्ष में उत्सव करने से तैल आदि का कितना खर्च बचता है ! यहाँ तक कि अंग्रेज़ी सरकार भी जन-संख्यागणना (मरदुमशुमारी) की अन्तिम पड़ताल शुक्ल पक्ष में ही करती है ।

यदि कृष्णपक्ष में करेगी तो अपुण्य होगा जन संख्या के लिये शुक्ल पक्ष ही पुण्यपक्ष है । तो ऐसी दशा में सब शुक्ल पक्ष का महत्त्व समझ सकते हैं । परन्तु जब कोई कहने लगे कि शुक्लपक्ष के बिना कृष्णपक्ष में जन संख्या गिनने का काम करना ही नहीं तो यह भाव भ्रममूलक होने से त्याज्य हो जावे गा, इसी प्रकार पुण्य नक्षत्र के होने की दशा में वायु शीत, ताप, वर्षा, की विषम दशाकी संभावनानहीं होती इस भाव पर वा मूल मन्त्र पर महर्षि का विवरण नहीहैं उनका जो विवरण है वह तो अत्युक्तिरूपी वर्तमान प्रचलित अर्थों पर है और वह युक्त ही है ।

प्रश्न हो सकता है कि आश्वलायन मुनि जिन्होंने यह सूत्र रचा वह इस के क्या अर्थ लेते होंगे ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि वह उसके अत्युक्ति वाले अर्थ कभी नहीं लेते थे, क्योंकि हिन्दू लोग जो अत्युक्ति वाले अर्थ लेते हैं उनके इन अर्थों के कारण दो २ तीन वर्ष तक विवाह बंद करने पड़ते हैं । पंजाब में हमने कई बार देखा कि पांधों ने कहा कि १ वर्ष तक साहे [पुण्यनक्षत्र] बंद रहेंगे तो लोगों ने एक वर्ष तक विवाह बंद कर दिये और जब तक फिर पुण्यनक्षत्र [साहा] न आवे तब तक हिन्दू विवाह ही नहीं कर सकते । साहा सुधवाना यह उनका कर्त्तव्य है और बिना "साहा" [पुण्यनक्षत्र] के आज कोई हिन्दू विवाह हो ही नहीं सकता । यदि आश्वलायन मुनि यह अर्थ मानने वाले होते तो कदापि इससे अगला सूत्र न लिखते जिसमें उन्होंने कहा है कि सब काल में विवाह हो सकता है हिन्दू लोग यद्यपि आश्वलायन मुनि का आदर करते हैं पर वह क्रिया-द्वारा मुनि के इस दूसरे सूत्र का खंडन कर रहे हैं जब वह इस दूसरे सूत्र को मानने लगेंगे तो फिर पहिले सूत्र के अर्थ वही युक्तिपूर्वक उन को मानने पड़ेंगे कि जो ऐसे साधारण हैं कि उस सूत्र पर चलना न चलना विकल्परूप हो जावेगा—अस्तु—

"संस्कार विधि" में जो भावार्थ पहिले सूत्रका दिया गया है वह यह है कि "उत्तरायण शुक्लपक्ष, अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह कर्मकरना चाहिये" ॥१॥

महर्षि दयानन्द जी ने पुण्यनक्षत्र के अर्थ "अच्छे दिन" के लिये और अच्छा दिन उसको बतलाया कि जो अतिअनुकूल हो । इन उत्तम अर्थों के करने से महर्षि ने भ्रममूलक अर्थ उड़ादिये और साथ ही बतलादिया कि वह इस सूत्र को इन अर्थों में स्वीकार करते हैं अब इस सूत्र पर विवरण देने से उन का वही अभिप्राय हो सकता है जो हम ऊपर वर्णन कर आये अर्थात् वह युक्तिविरुद्ध वा अत्युक्ति वाले अर्थ नहीं मानते ॥

इन उक्त सूत्रों द्वारा विवाह काल का वर्णन किया गया है ॥

विवाह काल

(१) उत्तरायण शुक्लपक्ष पुण्यनक्षत्र काल में विवाह करना चाहिये [क] उत्तरायण कालमें सत्व गुण को प्रधान होने से मानसिक बल बढ़ता है उत्तरायण काल शीत की समाप्ति पर प्रारंभ होता है उत्तरायण काल में विवाह करने से जहाँ दूर २ देशों से जाने वालों को सोने के लिये बहुत वस्त्र बिछौने नहीं बांधने पड़ते वहाँ सम्बन्धियों को भी वस्त्र कम एकत्र करने पड़ते हैं सर्व साधारण प्रजा इस लाभ को बहुत उपयोगी समझती है ।

(ख) शुक्लपक्ष में जहाँ मानसिक बल कुछ विशेष बढ़ना और चंद्र ज्योति से मन आल्हाद पाता है वहाँ इस पक्ष में विवाह का काम करने वालों को अधिक दीपक आदि का खर्च नहीं पड़ता और चोर आदि का भय भी बहुत कम होता है ॥

[ग] पुण्य नक्षत्र का अर्थ सर्वोत्तम ऋतु वा सब से अधिक अनुकूल दिन में विवाह करने से वर्षा ताप आदि का भय अधिक नहीं होता ॥

[२] 'सब काल में विवाह करना' कई आचार्यों का ऐसा मत है । सब काल में विवाह अधिक धनवान् कर सकते हैं । चौमासे में विवाह करने से बरातियों के आने जाने में कितना व्यय अधिक होगा—पर जो इस व्यय को कर सकते हैं और अन्य विघ्नों को शमन करने के योग्य हैं उन को आचार्य लोग सर्व काल में विवाह करने से रोकते नहीं ॥

गृह्यसूत्रानुसार वधू वर परीक्षा ।

लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ।

इस गोभिल गृह्यसूत्र का भाव यह है कि जो

लोग स्त्रियों के सुलक्षण कुलक्षण जानने वाले हैं ऐसे कुशल पुरुष से परीक्षा कर प्रशंसितलक्षण वाली वधू के साथ विवाह करना चाहिए ।

इस सूत्र के आशयानुसार किसी पुरुष वा स्त्रीवैद्यद्वारा वधू के शरीर की परीक्षा करानी चाहिये और वधू की मानसिक परीक्षा उत्तम विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री करे ।

इसी सूत्र के व्यापक आशयानुसार वर की भी परीक्षा करें करावें ।

मनुस्मृतिके अनुसार वर की विद्यायोग्यता

(१) मनुस्मृतिके लिखे पहिले श्लोकके अनुसार वर की विद्यायोग्यता यह होनी चाहिये कि वह चार–तीन–दो वा कम से कम एक वेद को यथावत् पढ़ा और अखण्डित ब्रह्मचारी हो और स्नातक हो । अपने वर्णवाली कन्या से विवाह करना चाहिये ।

"द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।

मनुस्मृति के इन शब्दों से पाया गया कि वधू सवर्णा हो अर्थात् विदुषी वेद पढ़ी हुई तथा ब्रह्मचारिणी हो ॥

वधू वर असपिण्ड और एकगोत्री न हों

तीसरे श्लोक में दर्शाया कि जो वधू माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न होउसी से विवाह करना चाहिये आज पश्चिमके अनेक विद्वान् डाक्टर ट्राल, वेलफोर आदि मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि सगोत्र विवाह के कारण असाध्य रोगों से युक्त संतान हो जाती है अमरिका के योगी एन्ड्रोजेक्सन बतलाते हैं कि "तलाक" (परस्पर परित्याग) का भारी कारण निकट संबन्धियों का विवाहहै और जिस प्रकार प्राण विद्युत् 'रयि' विद्युत् को आकर्षण करती उसी प्रकार दूरके संबन्धियों के विवाह में परस्पर प्रेम दृढ़ होता है ॥

अनेक मनुष्य शंका करते हैं कि जिस प्रकार से पिता का गोत्र छोड़ा जाता है इसी प्रकार माता का कुल छोड़ देना चाहिये केवल छः पीढ़ी छोड़ने की आज्ञा मनु जी ने क्यों दी ! यदि माता की छः पीढ़ी छोड़नी है तो पिता की भी छः पीढ़ी ही छोड़नी चाहियें थी—

इस के उत्तरमें हम कहेंगे कि यदि पिता के गोत्रकी नाईं माता का कुल छोड़ा जाय तो सब से उत्तम होगा—परन्तु माताकी छः पीढ़ियों की

छोड़ देने से वह दोष जो रक्त में आते दूर हो जाते हैं इस लिये न्यूनसे न्यून छः पीढ़ियें ही छोड़ देना पर्य्याप्त है-पिता का गोत्र सर्वथा छोड़ना आवश्यक है क्योंकि माता पिता के रक्त का एकसा प्रभाव नहीं है, चूँकि वीर्य की प्रधानता है इसलिये पिता के गोत्रको सर्वथा रीति से त्यागने की मनुजी ने शिक्षा की है-बीज के तुल्य पृथिवी की प्रधानता नहीं है-एक ही भूमि में यदि विरुद्ध प्रकार के बीज बोये जायँ तो यद्यपि पृथिवी सब के लिये एकसा प्रभाव पहुँचाने वाली है इसलिये चाहिये था कि सब बीज एकही प्रकार के उत्पन्न हों परन्तु बीज अपनी प्रधानता को स्थिर रखते हैं और विरुद्ध प्रकार के ही उत्पन्न होते हैं इसी वैद्यकसिद्धान्त को डाक्टर ट्राल महाशय ने अपनी पुस्तक पृष्ठ २३० पर इस प्रकार वर्णन किया है कि—

"सन्तान उत्पन्न करने में स्त्री का माद्दा [तत्व] वीर्य की रक्षा करने का कामदेता है और नवीन गुण, पुल्लिङ्ग के वीर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं"

डाक्टर "ट्राल" के इस कथन से पाया गया कि माता और पिता के वीर्य का एकसा प्रभाव नहीं है—माता का माद्दा, रक्षा करने की शक्ति रखता है और पिता का मुख्य प्रभाव पहुँचाता हुआ योग्यता में परिवर्तन कर सकता है—इस कारण मनुजी का उपदेश है कि जहाँ पिता का गोत्र छोड़ा जाय वहाँ माता की छः पीढ़ियें ही छोड़ना पर्याप्त है बहुत यथार्थ है।

जब यह बात हमारी समझ में आ गई कि वीर्य की प्रधानता होती है तो इस से एक नियम समझने के हम योग्य हो गये और वह यह कि वेद† और मनुस्मृति में जो लिखा है कि जब स्त्री को अपने वर्णका पुरुष न मिले तो अपने से नीचे वर्ण वाले से कदापि विवाह न करे—अलबत्ता अपने से ऊँचे वर्ण वाले से विवाह करले—यह शिक्षा भी इसी नियम पर

† यजुर्वेद अध्याय ११ के मन्त्र ७१ में लिखा है कि कन्या को अपने तुल्य बल और विद्या वाले अथवा अपने से उच्च बल और विद्या वाले पति के साथ विवाह करना चाहिये अपने से न्यून बल अथवा विद्या वाले पति के साथ कदापि विवाह न करना चाहिये।

चरितार्थ है कि सन्तानोत्पत्ति में वीर्य का प्रभाव रज की अपेक्षा अधिक होता है और सन्तान में नवीन गुण उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि वर अधिकवा और उत्कृष्ट हो—एक स्थल पर मनुजी लिखते हैं कि:-

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥

(अर्थ) 'यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाव वाला, कन्या के सदृश रूप लावण्य आदि गुणयुक्त वर चाहिये वह कन्या माता की छः पीढ़ीके भीतर भी हो तथापि इसी को कन्या देना अन्य को कदापि न देना जिस से दोनों अति प्रसन्न हो कर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करें' (मूल संस्कार विधि विवाहप्रकरण)

नाना के गोत्र अथवा माता की छः पीढ़ियों को छोड़ कर इस कन्या से जो कि सातवीं पीढ़ी की सन्तान है विवाह कर सकते हैं ॥

यद्यपि मनुजी ने इससे पहिले के श्लोकमें यह कहा था कि जो कन्या माता की छः पीढ़ियों में न हो उस का विवाह हो सकता है परन्तु इस स्थल पर उन्हों ने इसी नियम पर विचारदृष्टि रख कर कि माता का प्रभाव पिता की अपेक्षा अति न्यून होता है यह भी लिख दिया कि मुख्य दशाओं में इस कन्या से भी जो कि छः पीढ़ियों में से हो विवाह कर सकते हैं।

दश कुलों को छोड़ दें

चौथे और पांचवें श्लोकों में दर्शाया गया है कि निम्न लिखित दश कुलों की सन्तान का विवाह न हो।

(१) सत् क्रिया से हीन अर्थात् जिस कुल में चोरी आदि दुष्टकर्म द्वारा जीविका करते हों। (२) जिस में धर्मात्मा पुरुष न हों। (३) निश्छन्द अर्थात् जिस में विद्वान् न हों। (४) जिस कुल में रोमों का रोग परीक्षा कर के वैद्य बतलावें। (५) जिस कुल में ववासीर का रोग वैद्य परीक्षा कर के दर्शावें। (६) जिस कुल में राजयक्ष्मा का रोग वैद्य परीक्षाद्वारा निश्चित करें। (७) जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशयादि असाध्य रोग वैद्य परीक्षा द्वारा बतलावें। (८) जिस कुलमें मृगी रोग, वैद्य कहें।

(९) जिस कुल में श्वेत कुष्ठ वैद्यों के निश्चय में आया हो । (१० ; जिस कुल में गलित कुष्ठ वैद्य कह रहे हों ।

पश्चिम के "सायंस आफ यूजेनिक्स" का मूल सिद्धान्त यही है कि माता पिता के असाध्य रोग सन्तानों में प्रविष्ट कर के भावी सन्तति को और भी रोगयुक्त कर देते हैं । दृष्टान्त की रीति पर वह कहते हैं कि एक ऐसे लड़के का विवाह जिस के पिता को तपेदिक़ यानी (राजयक्ष्मा) था एक ऐसी लड़की से हुवा कि जिस की माता व पिता को यही रोग था तो जहाँ इन को अपनी आयु के किसी भाग में इस रोग के होने की संभावना है वहाँ इन से भी अधिक इसी रोग से युक्त इन की सन्तान होगी । "यूजेनिक्स" के कई लेखक इतनी छूट दे देते हैं कि समान रोग रखने वाले कुलोंकी सन्तानका परस्पर विवाह कदापि नहीं करना चाहिये । हाँ यदि करना ही चाहें तो भिन्न २ रोग रखने वाले कुलों की सन्तान कर लें । पर इतनी छूट मनु महाराज नहीं देते, इस लिये कि वह असाध्य रोगों को निर्मूल करना चाहते थे । अमरीका में यह चर्चा चल रही है कि असाध्य रोग वाले कुलों के लड़के लड़कियों की भली प्रकार डाक्टरों द्वारा परीक्षा की जाया करे और फिर विवाह की आज्ञा यदि वह योग्य होंतो सरकार से मिले । पुराने आर्यों के समय में वैद्य लोग, आजकल की बीमा कम्पनियों के धर्मात्मा डाक्टरों की तरह गृहाश्रमरूपी बीमा कम्पनी का सभासद् विवाहद्वारा बनने वालों की निष्पक्ष धर्मपूर्वक परीक्षा करके असाध्य रोग वाले कुलोंके लड़के लड़कियों को इस में प्रवेश नहीं होने देतेथे । आर्य धर्मशास्त्र का उद्देश्य था कि संसार में रोगों की वृद्धि न हो

इस के साथ ही धर्मशास्त्र का दूसरा उद्देश्य यह था कि प्रजा में शुद्ध-धार्मिक उपायद्वारा लोग आजीविका करें । आज "टेम्प्रेंस्" सभा 'लोकल ओपशन' के सिद्धान्त या राजीनामा करने को तय्यार हैं जिसका भाव यह है कि जिस स्थान वाले शराब की दुकान मांगे उन्हीं को दी जावें बिना मांगे सर्वत्र शराब की दुकानें न खुलें । क्या 'टेम्प्रेंस' सभा कह सकती है कि भूगोल पर मद्यपान का ह्रास हो रहा है वा वृद्धि ! शराब की प्रथा को बन्द करने वाले थक गये पर 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यूँ २ दवा की'

यह दशा हो रही है । आज शराब का पीना भूगोल से दूर हो सकता है यदि प्रत्येक देशस्थ प्रजा यह अवधारण कर ले कि हम शराबी लड़का, शराबिन लड़की और उस से बढ़ कर शराबीकुल वाली सन्तानसे विवाह नहीं करेंगे । चोरी, डाका, शराब बेचना, मांस बेचना आदि अनेक हीनक्रियायें देश से उठ सकती हैं यदि मनु जी के एक शब्द पर चलने का यत्न किया जावे । हम ने एक समाचार पत्र में पढ़ा था कि अमरीका के एक किसी ग्राम की लड़कियों ने एकमंडली बना कर यह प्रतिज्ञा की थी कि हम तमाकू के व्यसनी से विवाह नहीं करे गी । इस पर कहते हैं कि बहुत युवक "एन्टीटोबेको" सभा के सभासद् बन गये ।

धर्मशास्त्र का तीसरा उद्देश्य यह था कि धर्म (डयूटी) का प्रचार हो । हमें मुक्तकण्ठ से कहना पड़ेगा कि योरुप मे धर्मात्मा अर्थात् डयूटी करने वाले अधिक लोग हैं । मनुजी भी यही चाहते थे कि जो कुल अपने धर्मात्मा पुरुषों से शून्य है उस कुल के लड़के लड़कियाँ गृहाश्रम के धर्म (अनेक कर्त्तव्य) किस प्रकार पालन कर सकें गे । इस लिये यदि हम देश में धर्म (डयूटी) का प्रचार करना चाहते हैं तो आओ धर्म शास्त्र की आज्ञा को पालें ।

धर्म्मशास्त्र का चौथा उद्देश्य यह था कि सब लोग विद्वान् बनें । यूरोप में सभी देशों में मुफ्त तालीम लाज़मी तौर से सब को दी जाती है और सब उन देशों की स्तुति करते हैं । धर्म्मशास्त्र ने विद्या वृद्धि का ही अच्छा उपाय सोचा कि जिसकुल में विद्वान् न हों उस कुल के मूर्ख लड़के लड़कियों से विवाह न किया जावे ।

छठे श्लोक का यह आशय है कि उत्तम आकार तथा रूप की सन्तान उत्पन्न हो इस लिये कहा गया है कि पीले वर्ण अर्थात् पाण्डु रोग वाली अधिक अंग वाली, जिस के शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिस के शरीर पर बड़े २ लम्बे और चुभने वाले लोम हों, व्यर्थ बकने वाली अर्थात् अर्धपागल और जिस के नेत्र यक़ान अर्थात् कामला से पीले हो गये हों ऐही लड़की से विवाह न करे ।

सातवें श्लोक का अभिप्राय यह है कि स्त्रियों का मान करना चाहिये और इस बात को व्यवहार में लाने के लिये उस के माता पिता को यह

दण्ड देने को लिखा है कि जिस का नाम नक्षत्रवाची, नदीवाची, पर्वत वाचक, पक्षीवाचक, सर्पवाचक, दासत्व आदि का बोधक वा भीषण अर्थात् डरावना हो उस कन्या से विवाह न करे ।

जिस का लोग मान करते हैं उस को कभी जड़ पदार्थ व पक्षी आदि के नाम से नहीं पुकारते ! नामकरण संस्कार का उद्देश्य पूर्ण करने तथा शुभ नाम से कन्या के मन पर सद्गुणों का बोध होता व प्रभाव पड़ता है इस को दृढ़ करने के लिये मनु जी की ऐसी दण्डरूपी आज्ञा है । आज कल लोगों को चाहिये कि यदि किसी लड़की का ऐसा नाम हो तो विवाह से प्रथम वह नाम बदल दें और आगे को छोटी लड़कियों के नाम नामकरण संस्कार के उद्देश्यानुसार रक्खें ॥

८ वें श्लोक का आशय यह है कि जो सर्व उत्तम गुणों से संपन्न लड़की हो उससे विवाह करे और वह गुण यह हैं—

(१) जिस के अङ्ग ठीक २ हों, अर्थात् नीरोग हों ।

(२) जिस का उत्तम नाम हो ।

(३) जिस की चाल मर्य्यादापूर्वक हो अर्थात् सभ्य हो, हंस वा हथिनी के समान नियम से चले ।

(४) जिस के सूक्ष्मलोम, सूक्ष्मकेश, सूक्ष्मदाँत, अर्थात् दाँत मुख से बाहर, निकले हुये न हों । जिन के दाँत व जबड़े बाहर को निकले हुये होते हैं वह मुख बंद भी नहीं कर सकते और बुरे प्रतीत होते हैं ऐसे बुरे दाँतों वाली न हो ।

(५) स्तनों से, जो कि कोमल अङ्ग हैं युक्त हो; जब १६, १८ वर्ष की कन्या हो जाती है तब उसके यह अङ्ग प्रकट हो जाते हैं । और ऋतु आरम्भ होने के साथ इन अंगों की वृद्धि होने लगती है ।

विवाह के आठ भेद

नवें श्लोक में विवाह के ८ भेद बतलाये हैं । दसवें श्लोक में ब्राह्म विवाह का लक्षण कहा है अर्थात्—

(१) (आच्छाद्य) वस्त्र और अलंकार आदि से कन्या को भूषित करके (अलंकार स्त्री का धन होता है और आपत्काल में उसकी रक्षा करता है, इस स्त्रीधन को अविभाज्य धन कहते हैं और पति को भी उसके लेने का अधिकार नहीं है । ऋग्वेद मंडल १० के ८५

सूक्त के एक मंत्र में इस स्त्रीधन का वर्णन किया है कि उसको कोई न ले और स्मृतिकारों ने भी उसी आशय को लेकर दायभाग में इसका भाग करना छोड़दिया है) (च) और (२) (अर्चयित्वा, स्वयम्) अर्थात् स्वयं आदर करके जिसे स्वीकार किया हो और वह वर कैसा हो कि (श्रुतशीलवते) विद्वान् और सुशील अर्थात् सदाचारी हो। लड़कियों की योग्यता किस प्रकार की हो यह ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है लेकिन लड़के की योग्यता दो शब्दों में ही किस उत्तमतासे मनुजी ने दर्शादी कि वह विद्वान् और सदाचारी हो ।

(३) (आहूय) ऐसे वर को बुलाकर (कन्याया दानं) कन्या देना, अर्थात् विवाह करना। इससे पाया गया कि उत्तम प्रकारका विवाह वहहै कि जिसमें जहाँ कन्या स्वयं वर को सत्कार के योग्य समझे वहाँ उस के माता पिता आदि भी उससे सहमत होकर उसे स्वयं बुलावें और वह विद्या सुशीलादि गुण युक्त हो ।

ग्यारहवें श्लोक में मनु जी ने दैव विवाह का यह लक्षण कहा है कि "विस्तृत यज्ञ में अच्छे प्रकार कर्म करने वाले विद्वान् वर को, कन्या को अलंकृत करके देने का नाम दैव विवाह है"

बड़े २ कारखाने, शिल्पालय और रसायनालय आदि सब विस्तृत यज्ञ हैं। इनमें इनके प्रबन्धादि में जो कुशल है ऐसे विद्वान् से कन्या व्याहना भी दैव विवाह है ।

बारहवें श्लोक में लिखा है कि वर से एक या दो गाय बैल का जोड़ा लेकर धर्मपूर्वक विवाह का करना आर्ष विवाह कहाता है। परन्तु यह मत एकदेशी है, क्योंकि ५३वें श्लोक में इस का निषेध स्वयं मनुस्मृति में ही किया गया है। इसलिए कुछ भी न ले देकर धर्म पूर्वक अर्थात् दोनों की प्रसन्नता से उनकी योग्यतानुसार विवाह करना आर्ष विवाह है ।

आगे १३ वें श्लोक में प्राजापत्य विवाह का वर्णन किया है कि विवाह में दोनों को यह बात समझा देनी चाहिये कि "तुम दोनों मिल कर गृहस्थाश्रम के धर्म पालन करना" इस से पाया जाता है कि यह विवाह उन का होता होगा जो स्वयं वेदमन्त्रों के गूढ़ अर्थों के

समझाने में विशेष विद्या न रखने से असमर्थ हों । इसलिये उनको स्प-ष्टतया समझाने की ज़रूरत है । यह सच है कि सब मनुष्य पूर्ण विद्वान् नहीं हो सकते परन्तु सब धर्माचरण कर सकते हैं जैसा कि "व्यवहार भानु" में महर्षि दयानन्द ने लिखा भी है ।

१४ वें श्लोक में आसुर विवाह का वर्णन है जिस में वरपक्ष वालों को कन्यापक्ष वालों की तरफ से धन का लोभ देना अथवा वरपक्ष वालों का कन्या पक्ष वालों को धन का लोभ देना, ऐसे जो विवाह करना है वह धर्म से गिरा हुवा होने के कारण आसुर विवाह है इस प्रकार के वि-वाह में उत्तम जोड़ा मिलाया नहीं जाता किन्तु धन के लोभ से विवाह के उद्देश्य को गिराया जाता है ।

अगले श्लोक में गान्धर्व विवाह का लक्षण दिया है जिसमें युवति कन्या और युवा पुरुष कामवश हो परस्पर स्त्री पुरुष बन जाते हैं और माता पिता आदि को भी उनके इस व्यवहार की पीछे सूचना मिलती है । इस निन्दित विवाह का फल आज योरोप में तलाकों की भर मार और सन्तानपालन के धर्म से पीछे हटना देखा जाता है थोड़े दिनों के सुख के पीछे बहुत दिन तक मानसिक दुःख उठाना पड़ता है ।

फिर राक्षस विवाह का लक्षण बतलाया गया है । कन्या के रोकने वालों को हनन छेदन द्वारा दूर कर के, रोती, काँपती, और भयभीत कन्या को बलात्कार से ले जाकर स्त्री बना लेना राक्षस विवाह है । प्रायः युद्धादि के समय सभ्यासभ्य विजेता इस प्रकार के राक्षस विवाह करते रहे हैं । यह इतिहास बतला रहा है । आफ्रीका आदि देशों में अब भी जंगली लोग इस प्रकार के विवाह करते हैं यह बहुत ही बुरा प्रकार विवाह का है ।

१७वें श्लोकमें सोती हुई, पागल, व नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त में पाकर बलात्कार से दूषित कर देना, यह अति दुष्ट, पैशाच विवाह है ।

पहिले चार विवाह उत्तम हैं

१८, १९ वें श्लोकों में बतलाया गया है कि ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन चार विवाहों की सन्तान—

(१) वेद विद्या से तेजस्वी
(२) सदाचारी
(३) रूप, बल, पराक्रम से युक्त
(४) शुद्ध बुद्धि आदि उत्तम गुणयुक्त
[५] बहुधनयुक्त
[६] पुण्य कीर्त्तिमान्
[७] पूर्ण भोग के भोक्ता
[८] धर्मात्मा,
[९] १०० वर्ष तक जीने वाली होती है ।

मनु जी की यह बात ठीक है । योरोप में डाक्टर लोग यही कह रहे हैं कि उत्तम माता पिता की सन्तान अवश्य ही उत्तम होगी और विवाह के सुधार से मनुष्य जाति सुधर सकती है ।

२० वें श्लोक में दर्शाया गया है कि आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों की सन्तान—

[१] दुष्टकर्म कर्त्ता
[२] मिथ्या वादी
[३] सत्यधर्म की द्वेषी, नीच स्वभाव वाली होती है ।

२१ वें श्लोक में कहा है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती हैं उन का त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती है उन का बर्त्ताव किया करें ।

विवाह की पवित्रता

पृष्ठ* १८८ पर महर्षि ने वर वधू की परीक्षा का विधान करने के पश्चात् आश्व० के सूत्र से दर्शाया है कि पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुवा है । यूरुप वाले जो स्त्रियों के अधिकार पुरुषसमान मानते हैं वे यह बात सुनकर आश्चर्य से चकित हो जाते हैं और शास्त्रों की महिमा मुक्तकंठ से वर्णन करते हैं कि इन तत्त्व-

*यह पृष्ठ संख्या "वैदिक प्रेस–अजमेर" की मुद्रित "संस्कार विधि" की सर्वत्र समझनी चाहिये ।

वेत्ताओं ने पुरुष और प्रकृति में पुरुष और स्त्री तत्व का भाव कहाँ तक अनुभव किया था । साथ ही इस से बढ़ कर विवाह की पवित्रता का बोधक क्या दृष्टान्त हो सकता है कि ईश्वर और प्रकृति के विवाह से जब सृष्टिरूपी सन्तति होती है तो विवाह कभी अपवित्र कर्म नहीं हो सकता।

विधि

"जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस रात्रि से ३ दिन पूर्व विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये । यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य, आदि सब सामग्री शुद्ध कर के रखनी उचित है" ।

"संस्कारविधि" के नोटमें लिखा है कि मध्यान्होत्तर विधि को आरम्भ कर देवें कि जिस से मध्य रात्रि तक विवाह विधि पूरी हो जावे" ।

आज कल कहीं २ ऐसी प्रथा है कि दोप्रहर से आरम्भ कर शाम को समाप्त कर देते हैं और फिर रात्रि के ९ बजे से प्रारम्भ कर शेष विधि ११ बजे तक समाप्त की जाती है ।

वधू स्नान और विवाह स्वाभाविक है इस का ज्ञान

'ओं काम वेद................' इत्यादि तीन मंत्रो का पाठ कर के वधू अपने गृह में स्नान करे पश्चात् उत्तम वस्त्रालंकार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे । यह तीन मन्त्र दर्शा रहे हैं कि पूर्ण यौवनावस्था में विवाह करना चाहिये जब कि पुरुष स्त्री के शरीर में कामदेव [वीर्य व रज] पूर्णरूप को प्राप्त हो चुका हो और वह स्वभाव से एक दूसरे की आवश्यकता अनुभव कर रहे हों । डाक्टर ट्राल की "सेकशुलल फ़िज़ियालोजी" की भूमिका में लिखा है कि सर्व प्राणियों में आहारचेष्टा और कामचेष्टा स्वाभाविक कही जाती है ।

यौवनावस्था तक पहुँचते आहार के लिये जैसे चेष्टा प्रबल रहती है । वैसे यौवनावस्थामें कामचेष्टा जो सन्तानोत्पत्ति का साधन है, स्वाभाविक रीति से प्रबल होती है । विवाह करने वालों को विवाह से कुछ दिन पहिले "सेकशुलल फिजियालोजी" व कामशास्त्र अथवा गर्भाधानविधि का ज्ञान भले प्रकार उपलब्ध कर लेना चाहिये । युरुपादि देशों में विवाह करने वाले उक्त ग्रन्थ पढ़ते हैं । पुराने समय में वर

वधू विवाह के दिन स्नान करते हुये इन तीन मन्त्रों को पुनः २ प्रकृतरूप से पाठ करते थे जिन मन्त्रों में कि कामशास्त्र आदि का सार भर रहा है।

प्रथम मन्त्र दर्शा रहा है कि काम एक मदकी नाईं है जिसकी शान्ति पुरुष को स्त्री के प्राप्त करने से होती है। इस का भाव यह है कि पुरुष के लिये यौवनावस्था में स्त्री का प्राप्त करना स्वाभाविक चेष्टा की पूर्ति करना है। इस से बढ़ कर यह कथन है कि इस कामचेष्टा का उद्देश्य "तपसः" गृहाश्रम को महान् तपका पालन करने का साधन बनाना है। पादरी स्टाल से उत्तम लेखक जो कामचेष्टा को ईश्वरीय प्रतिनिधि चेष्टा वा पवित्रचेष्टा लिख रहे हैं, वह भी इस से उत्तम एक शब्द नहीं पा सकते जो कि "तप" शब्द यहाँ पर बोधनकरा रहा है।

(मंत्र २) बड़े २ तत्ववेत्ता कह रहे हैं कि यह संसार एक पाठशाला है कि जिसमें ईश्वर, मनुष्यों को अनेक प्रकार का शिक्षण अवस्थान्तर से दे रहे हैं। उन का कथन है कि यौवनावस्था में पुरुष बल के अभिमान से स्वार्थी बन जाता है पर ईश्वर ने उस की कामचेष्टा की निवृत्ति के लिये स्त्री साधन बनाया है तो वह उस को प्राप्त करते ही उस को अपने प्रेम का पात्र अनुभव कर के उस की रक्षा और पालन, पोषण में सर्वस्व अर्पण करता है। उस पुरुष का स्वार्थ परोपकार का रूप धारण करता है और सन्तान उत्पन्न होने पर दोनों ही सन्तान की रक्षा के लिये तन, मन, धन अर्पण करने वाले अथवा परोपकारी हो जाते हैं। बड़े से बड़े क्रूर डाकू अपनी स्त्रियों के आगे चुप हैं स्त्री में ईश्वर ने बली से बली पुरुष को वश करने की शक्ति दी है और स्वाभाविक रीति से पुरुष उस के वश होता हुवा उस की रक्षा के लिये तन, मन, धन अर्पण करना अपना कर्त्तव्य समझता है जिस के अर्थ यह हैं कि पुरुष अपस्वार्थ को छोड़ परोपकारी बनने का भारी शिक्षण धारण करता है तथा स्त्री भी पुरुष से प्रेम करती हुई, परोपकार का शिक्षण प्राप्त करती है।

(मन्त्र ३) इस मन्त्र में तत्वदर्शी पुराने ऋषि लोगों ने स्त्री की उपस्थेन्द्रिय को और पुरुष के अङ्ग विशेष को घृत से उपमा दी है। मनु जी ने भी कहा है कि विषयों के सेवन करते रहने से विषय शान्त नहीं होते किन्तु ऐसे बढ़ते हैं जैसे घृत से आग। इस लिये मनुष्य को जितेन्द्रिय होना परम कर्त्तव्य है। पुराने और अनुभवी

ऋषियों का भाव यह है कि विवाह करने वाले कामचेष्टा की मर्यादा
पूर्वक निवृत्ति तो करें पर कहीं इस में आसक्त न हो जावें। विषयासक्त
होने से दोनों की हानि होती है पर पुरुष की विशेष हानि होती है, उस
का कारण यह है कि पुरुष की रचना और स्त्री की रचना में भेद है और
सुश्रुत में एक स्थल पर ऐसा लिखा है कि स्त्री का शरीर अपनी क्षति की
पुरुष के शरीर की अपेक्षा शीघ्र पूर्ति कर लेता है। तथा जो सन्तान उत्पन्न
करने की योग्यता पुरुष के शरीर में २५ वर्ष में जा कर होती है वही
योग्यता स्त्री के शरीर में १६वें वर्ष में हो जाती है। इस लिये विषयासक्ति
से पुरुष की कुछ विशेषहानि होती है यह अनुभव सिद्ध बात है॥

जो पुरुष व स्त्री, जवानी के मद में अन्धे हो कर विषयासक्त हो जाते
हैं वह जरावस्था को शीघ्रप्राप्त होते हैं। अधिक विषय करने वाले निस्स-
न्देह जरावस्था में बहुत दुःख पाते अथवा शीघ्र ही निर्बल हो कर मर
जाते हैं। घर के बनाने वाले को ऐसा घर बनाना चाहिये कि सब ऋतु-
ओं में वह घर सुख दे। यदि कोई घर को केवल गर्मी से ही बचने के लिये
बनावे तो शीतकाल में वही घर परम दुःख का साधन हो जावेगा। म-
नुष्य का शरीर घर की नाईं है। यौवनावस्था गर्मी की ऋतु है, पर
यह ऋतु नहीं रहेगी, जरावस्था रूपी शीतऋतु आने वाली है। यदि
जवानी में पुरुष स्त्री, काम के मद में चूर हो कर विषयासक्त हो जावेंगे
तो बुढापे में वह भारी दुःख उठावेंगे इस में सन्देह ही क्या है! स्नान
करते समय यह ३ मन्त्र इस लिये पढे जाते हैं कि जिस प्रकार शरीर की
अग्नि को जल शान्त करता है उसी प्रकार भगवान् की दी हुई कामाग्नि
को स्त्री पुरुष, परस्पर शान्त करते हैं॥

वर स्नान, तथा अपने-स्थान पर स्वस्तिवाचन

जिस प्रकार उक्त तीन मंत्र पढ़ कर वधू
अपने घर में स्नान करे उसी प्रकार अपने
स्थानपर वर स्नान करे। वधू अपने घर स्नान के पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठ
ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करे। और इसी प्रकार वर अपने
स्थान पर स्नान के पीछे वस्त्रादिधारण कर ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन,
तथा शान्तिकरण करे।

बरात कन्यापक्ष के पुरुषों के आने पर अथवा पूर्व आमंत्रित समय पर वरपक्ष के लोग वधू–के घर जाने की तैय्यारी करें और जिस समय वर, वधू के घर में प्रवेश करे उस समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार से आदर करें ।

वर, वधू के घर में प्रवेश कर के खड़ा रहे और वधू तथा कार्य कर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख हों । वा यों कहो कि वर के दक्षिण हाथ को उत्तराभिमुख वधू खड़ी हो ।

स्वागत फिर वधू "साधु भवान्" इत्यादि वाक्य को बोले, जिस का भाव यह है कि आप अच्छे प्रकार बैठियेगा हम सब आप का सत्कार करेंगे । वर "अर्चय" शब्द द्वारा सत्कार करने को स्वीकार करता है ।

आसन देना "ओं विष्टरः" इत्यादि, यह मुख से कहती हुई आसन (कुर्सी, चौकी) को हाथ लगाती हुई वधू कह रही है कि यह आसन (बैठने की वस्तु) है आप ग्रहण कीजिये ।

वर उस की स्वीकृति "प्रतिगृ०" इन शब्दों द्वारा देता हुआ बैठ जाता है । और बैठ कर "ओं वर्ष्मोऽस्मि" इत्यादि कहता हुवा अपने को उस आसन का अधिकारी बतलाता है ।

पाद्यजल देना फिर वधू सुन्दर पात्र में जल भर कर पग धोने के लिये जल देवे । यह भी सत्कार का अंग है जिस को वह स्वीकार करता और पग धोता है । और "विराजो०" इत्यादि कह कर पग धोने से रोग निवृत्ति होती है यह दर्शाता है ।

अर्घ देना फिर वधू मुख धोने के लिये जल देती है जिस को अर्घ कहते हैं । वह ले कर मुख धोता है और उस की यथार्थ महिमा "आपःस्थ" कह कर दर्शाता है । जल ज़मीन पर गिर या तो सूर्य की उष्णता के कारण सीधा आकाश को चढ़ जाता है या किसी नदी के साथ समुद्र में जा वहाँ से ऊपर जाता है ।

वर का यह कहना कि यह जल अपने कारण को प्राप्त हो कर किसी
वीर आदि का उपकारक हो, इस भाव को प्रकट करता है कि मुझ से
अन्य वीर भी विवाह करें और इसी सत्कार को पावें ।

आचमनीय जल देना

फिर वधू एक उपपात्र, जल से पूर्ण ले उसमें आच-
मनी रख कर " ओं आचमनीयम् " इत्यादि कह
कर देवे जिस का भाव यह है कि यह पीने के लिये पानी है, आप स्वी
कार करें । वर स्वीकृत करता है और—

" आमागन्" इत्यादि तीन वार कह कर तीन आचमन करता है ।
इस मंत्र में जिस ईश्वर ने जल रचा है उस से उन बातों की प्रार्थना कर-
ता है जो जल के समान गृहाश्रम में शान्ति देने वाली हैं ।

मधुपर्क देना

फिर वधू, कार्यकर्त्ताओं से मधुपर्क ले कर "मधुपर्को"
इत्यादि कहती हुई वर को देवे । और स्वीकृति के वचन
से वर ले लेवे और—

"ओं मित्रस्य" इत्यादि वचन कह कर दक्षिण हाथ पकड़े हुये मधु-
पर्क को रुचिपूर्वक देखे । मधुपर्क वा खाने के प्रत्येक पदार्थ को जब तक
हम पहिले मित्र वा प्रेम अथवा रुचि की दृष्टि से न देखेंगे तब तक वह
खाया हुवा पदार्थ पूर्ण लाभ नहीं देगा । यह बात प्रत्येक मनुष्य के अ-
नुभव सिद्ध है कि खाने के जिस पदार्थ में उस की रुचि होती है वह न
केवल अधिक स्वादिष्ठ प्रतीत होता है किन्तु वह अधिक लाभ भी देता
है क्योंकि "विलपावर" अर्थात् इच्छाशक्ति उस के साथ काम कर रही है ।

फिर "ओं देवस्य" इत्यादि वचन कह कर वाम हाथ में लेवे । वाम
हाथ में लेने का प्रयोजन यह है कि यह बहुत उत्तम वस्तु पुष्टि कारक है
इस लिये दोनों हाथों से ग्रहण करने योग्य है अर्थात् बहुत उपयोगी है ।
और "ओं भूर्भुवः स्वः मधुवाता" इत्यादि तीनमंत्र बोल कर उस की ओर
देखे । इन ३ मंत्रो में प्रार्थना की है कि जिस प्रकार "मिष्ट पदार्थ" प्रत्ये-
क मनुष्य को अधिक प्रिय वा अनुकूल है, इसी प्रकार हे ईश्वर ! वायु,
नदी, ओषधि हमारे लिये मधु गुण वाली अर्थात् लाभ कारक हों । दूसरे
मन्त्र में कहा गया है कि रात, प्रभात, पार्थिव पदार्थ और अन्तरिक्ष सुख
कारक हों । तीसरे मंत्र में कहा गया है कि वनस्पति सूर्य और गौवें सब
अनुकूल हों इस प्रार्थना का भाव यह है कि मधुपर्क जैसी उत्तम वस्तु भी

यदि एक मनुष्य के हाथ में है और चारों तरफ लोग दुखी हैं तो उस को पूर्ण सुख कहाँ है ! इस लिये जनमंडल के कल्याण की प्रार्थना करता है यतः व्यक्तिगत पूर्ण सुख मिलता रहे ।

अपस्वार्थी लोग अपना पेट भरते समय चुप चाप खाने की जल्दी करते हैं । परोपकारी धर्मात्मा जन अपने को आनन्द मिलते समय प्रार्थना करते हैं कि औरों को भी सर्व मधुवत् उपकारी हों । आज कल जो चाय व पान का मधुपर्क देता है उसका ही धन्यवाद करना काफी समझा जाता है, परन्तु यदि धन्यवाद के साथ प्रार्थना भी की जावे तो उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है । पुराने समय में वह एक व्यक्ति का ही धन्यवाद नहीं करता था किन्तु जन संडल के लिए धन्यवाद से बढ़ कर प्रार्थना करता था जो उक्त तीन मंत्रो में दर्ज है । कई अनोखे लोग प्रश्न करेंगे कि भला मधुपर्क के समय भाषण करने वा प्रार्थना करने से समय खोने की क्या ज़रूरत है ! हम इसके उत्तर में कहेंगे कि क्या विवाह के महोत्सव पर ऐसा करना ठीक नहीं है ! क्या हम प्रतिदिन नहीं देखते कि किसी मानवन्त गृहस्थ को पार्टी देने के समय "स्वास्थ्य के प्याले" पीये जाते हैं । क्या पीते हुवे वे पार्टी देने वाले के परिवार और मित्र मंडल आदि के लिये स्वस्ति की प्रार्थना नहीं करते ? क्या हम नहीं देखते कि इन प्यालों के पीने वा रखने के पूर्व आध २ घंटे के भाषण एक दूसरे की महिमा दर्शक नहीं होते ? विचार करने से पता लगता है कि संसार में जो यह प्रथा इस समय चली हुई हैं वह मधुपर्क की प्रथा का रूपान्तर हैं । इसलिए मधुपर्क के खाने से पूर्व जो यह अथवा अन्य मन्त्र पढ़ेजाते हैं वह विवाह जैसे महोत्सव का विचार करके अति उचित हैं वह समय खोने वाले नहीं हैं किन्तु जनमंडल में शुभप्रभाव उत्पादक हैं ॥

फिर "ओं नमः" इस मन्त्र को पढ़कर अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन वार विलोवे ताकि वह अच्छे प्रकार एक रस हो जावे और उसके किसी भाग में यदि भूल से कोई तृणादिक रह भी गया हो तो वह निकाल भी सके ! जो मन्त्र बोलता है उसका भाव यह है कि वह जठराग्नि के महत्त्व का वर्णन करता हुवा मधुपर्क में कोई वस्तु, जो जठराग्नि

मैं डालने योग्य नहीं उसको निकालने का चिन्तन कर रहा है । यद्यपि वधूपक्ष के लोगों ने मधुपर्क को शोधन करवा दिया है पर फिर भी सावधानी की ज़रूरत है । इस लिए जहाँ खाने के पदार्थों में रुचि होने की ज़रूरत है वहाँ उस वस्तु को भली प्रकार निरीक्षण कर लेने की भी ज़रूरत है ताकि पेट में वा जठराग्नि में कोई जन्तु, कंकरी, बाल, तृण आदि न चला जावे ॥

आगे पूर्व आदि चारों दिशाओं तथा ऊपर की पांचवीं दिशा में मधुपर्क के मन्त्र पढ़कर छींटे देने का विधान है । इसके दो अभिप्राय हैं (१) तो यह कि वह पाँचों दिशाओं में इसके छींटे देता है जिसका भाव यह है कि मधुपर्क जैसी अनुकूल वस्तुओं की ईश्वर कृपा से सर्वत्र वृद्धि हो, ताकि सब प्रजा आनन्द में रहे । १२ नवेम्बर १९०५ को बम्बई में जब श्रीमान् पूज्य प्रिंस आफ वेल्स महोदय का स्वागत बम्बई की सभ्यनारियों ने किया था तो उस समय कटोरे में पानी भर कर सातवार उनके शिर पर से फेर कर उसके छींटे दिये गये थे । इसका भाव क्या था उसके विषय में समस्त अंग्रेज़ी समाचार पत्रों ने यह लिखा था कि "इसका भाव यह है कि सर्वत्र वर्षा पड़े और दुर्भिक्ष न आवे जिससे सबको सुख मिले" (देखो ट्रिब्यून १६ नवेम्बर १९०५ पृष्ठ ५) ॥

(२) दूसरा भाव यह है कि वह वसु, रुद्र, आदित्यसंज्ञक ब्रह्मचारियों और अन्य विद्वानों का नाम, यह कहते हुए ले रहा है कि यह लोग भी इस मधुपर्क के खाने के अधिकारी हैं । यह कहना निस्सन्देह उन को मान देना है (जिन का वह वर्णन कर रहा है) क्या हम नहीं देखते कि आज कल यदि कोई वक्ता किसी अन्य वक्ता का नाम अपने भाषण में ले तो उस के नाम लेने के अर्थ, मान करने के ही सब समझते हैं । यदि किसी वक्ता को कोई फूलमाला पहिनावे, और पहिनाते समय वह कहे कि अमुक भी इस के अधिकारी हैं वा इस को पहिना करते हैं तो क्या उन के नाम का यह कथनमात्र मान सूचक नहीं ? अवश्य है ।

सब दिशाओं में मूल वा प्रथम दिशा पूर्व है, जिस के ज्ञान होने से अन्य दिशाओं का ज्ञान होता है । सब प्रकार के विद्वानों में प्रथम कक्षा के विद्वान् वसु ब्रह्मचारी हैं जिन्हों ने चौबीस वर्ष तक विद्या पढ़ी है । पूर्व

से निकल कर सूर्य वृद्धि को प्राप्त हो कर दक्षिण दिशा और उस से वृद्धि पाकर पश्चिम को जाता है ।

इस लिये दक्षिण दिशा में छींटे देते हुये वसु से बढ़िया दर्जे के उन ब्रह्मचारियों का नाम लिया गया था जिन्हों ने ३६ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण किया है और ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करने वाले आदित्य ब्रह्मचारियों का नाम पश्चिम दिशा में छींटे देते हुये लिया गया जो कि अत्युचित है। जिस प्रकार सूर्यकी तीन अवस्थाएं हैं उसी प्रकार ब्रह्मचारीभी तीन प्रकारके हैं।

इस के पश्चात् तीन भाग तीन कांसे के कटोरों में डाल भूमि पर रक्खे, फिर एक वर्त्तन को उठा कर—

"ओं यन्मधुनो" यह मंत्र बोल कर, मधुपर्क खावे, दूसरे कटोरे को उठा कर इसी मंत्र को बोलकर दूसरी वर खावे और इसी प्रकार तीसरे बार मंत्र बोल कर तीसरे पात्र में से खावे इस मंत्र द्वारा सभा में बैठे हुए सर्व विद्वानों का विशेष सत्कार किया जाता है, क्यों कि वर यह कहता है कि "हे विद्वानो ! मैं गुणवाले मधुपर्क आदि का भोक्ता आप की कृपा से होऊँ" इस का भाव यह है कि वह तीन बार खाता हुवा तीन बार उन की कृपा चाहता है, जिस से वह उन का आदर करता और उनकी सहानुभूति की आशा रखता है ।

फिर दोनों मंत्रों से दो आचमन करने तथा चक्षु आदि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करने का विधान है। इस की व्याख्या कई स्थलों पर आचुकी है।

गौ देना

फिर कन्यापक्ष वाले वर को गाय वा उस के ख़रीदने के लिये धन देते हैं और वर उस को स्वीकार करता है। गृहस्थी के लिये गाय की कितनी ज़रूरत है यह प्रत्येक बुद्धिमान् अनुभव कर सकता है। आज कल सर्वत्र बड़े २ नगरों में शुद्ध दूध मिलना दुर्लभ होगया है, केवल उनको ही शुद्ध दूध मिल सकता है जो गाय अपने घर में रखते हैं।

पुराने समय में प्रत्येक गृहस्थ के घर में एक गाय अवश्य रहती थी इसी कारण से उनके यहाँ वह उत्तम आहार मिलता था जो आज बड़े २ लोगों को मिलना कठिन हो रहा है। अब जो विवाह के समय पर गाय के लेने का धन ले लेते हैं पर उसमे गाय मोल नहीं लेते यह प्रथा दूर होनी चाहिये ।

कन्या ग्रहण घरके अन्दर आसन, पाद्य, अर्घ, आचमनीय, मधुपर्क, और गोदानमें पूर्ण सत्कार करने के पश्चात् वधू के माता पिता आदि वधूका हस्तग्रहण करता है, वधूका दक्षिण हाथ भी चत्ता ही रखना चाहिये। नीचे वर का हाथ और ऊपर वधू का हाथ रहेगा। यूरोप आदि देशों में भी नारी का हाथ नर के हाथ के ऊपर रहता है इस के दो प्रयोजन हैं।

(१) तो यह कि वर स्त्री का सत्कार करता है।

(२) दूसरे यह कि वह पति है उस का धर्म्म, पत्नी की रक्षा करने का है। वह जहाँ अपने हस्त से वधू के हस्त को ग्रहण करता है वहाँ—

ओं "प्रतिगृह्णामि" कह कर सब के सामने स्वीकृति देता है।

वर की ओरसे वधू का सत्कार "जरां गच्छ" यह मन्त्र बोल कर वर वधू को उत्तम वस्त्र देकर सत्कार करता है और कहता है कि:—

(१) जरावस्था को मेरे साथ प्राप्त हो।

(२) और मेरे दिये हुए वस्त्र को धारण कर।

(३) कामी पुरुषों से अपनी रक्षा करने वाली हो अर्थात् यदि तू मन को दृढ़ रक्खेगी तो कोई भी कामी पुरुष तुझ को पतिव्रत धर्म्म से गिरा नहीं सकता।

(४) सौ वर्ष की आयु वाली तथा धन सन्तान वाली हो।

फिर "या अकृन्तन्०" इत्यादि मन्त्र बोल कर वर उपवस्त्र वा उत्तरीय वस्त्र देता है जिस को वधू यज्ञोपवीतवत् धारण कर रही है यह उपवस्त्र चादर होती है जिस को पञ्जाब, गुजरात देशों में 'सालू' कहते हैं यह सालू वा चादर वर के ग्राम, नगर वा देश की स्त्रियों की बनाई होती है। मन्त्र के अर्थ पर विचार करने से विदित होता है कि वर वधूको यह वस्त्र देकर कह रहा है कि जिन मेरे देश की देवियों ने इस की रूई को काता, इस को बुना व सीं कर तैयार किया है ईश्वर करे कि वह देवियाँ तुझ को सदैव इसी प्रकार तैयार कर के वस्त्र पहनाती रहें।

पुराने समयमें घरों में चर्खे होते थे जैसा कि जापान में अब भी हैं और स्त्रियाँ चर्खे कातती और कपड़े सींती थीं।

विवाह में वर का वधू को वह वस्त्र देना जो उसकी देश की स्त्रियों से कात सींकर बनाया है वास्तव में वधू का बहुत मान करना है क्यों कि

जब किसी मित्र के पास कोई जाता है तो अपने देश का उत्तम वस्त्रादि ले जाता है और यह प्रेम तथा मान का सूचक है ।

वर अधोवस्त्र तथा उपवस्त्र स्वयं धारण करे

"ओं परिधास्यै......" मन्त्र से अधोवस्त्र और "ओं यशसा" मन्त्र से उपवस्त्र अर्थात् दुपट्टा धारण करे ।

यज्ञ की तैयारियाँ

जब वर और वधू अपने वस्त्र धारण में लगे हों उस समय कार्य्यकर्त्ता कुण्ड की अग्नि को घृत इन्धन, कपूर आदि से प्रदीप्त कर उस पर घी को गरम करके कांसे के पात्र में रक्खें । और स्रुवा आदि होमके पात्र तथा शुद्ध जलपात्र आदि सामग्री कुण्ड के समीप जोड़ रक्खें ।

कलशस्थापन व मनुष्य का सदण्ड बैठना

वर पक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक घट को लेकर यज्ञ कुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश को भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो तब तक बैठा रहे ।

बड़े हवन का काम आरम्भ होने से पूर्व कलशस्थापन की आवश्यकता इस लिये है कि यदि कहीं किसी के कपड़े आदि को आग लग जाय तो उस समय पानी के लिये दौड़ना न पड़े । क्या हम रेल के बड़े स्टेशनों पर अनेक डोल पानी के इस विचार से भरे हुए प्रतिदिन नहीं देखते कि यदि कहीं किसी मुसाफ़िर गाड़ी को संघर्षण आदि से आग लगजाय तो तुरन्त उस के बुझाने का यत्न हो सके ।

आजकल यह रीति प्रचलित है कि कोई कार्यविशेष प्रारम्भ होने लगे तो उस की सूचना चाहे तो बोल कर अथवा घण्टीद्वारा अथवा और किसी प्रकारसे दी जाय । पुराने समयमें जिस समय कलश वाला आदमी आता था तो लोग उस को देख कर समझ जाते थे कि हवन की विशेष क्रिया होने वाली है । यदि यह यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके अपने स्थान पर न बैठे तो केवल उस ओर के मनुष्य ही उस को देख पायँगे जिन के पास अथवा बीच में से हो कर वह आवेगा उस के आने की सूचना चारों ओर के आदमियों को मिल जाय इस लिये वह यज्ञकुण्ड के गिर्द एक

चक्कर लगाता है और फिर अपने नियत स्थान पर बैठ जाता है । तथा वह पुरुष अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को भी प्रगट करता है कि आदि से अन्त तक अपने कर्तव्य को पूर्ण करके हटूंगा, यह दूसरा भाव परिक्रमा का है ।

तथा वर के पक्ष का दूसरा आदमी हाथमें दण्ड ले कर कुण्डके दक्षिण भाग में कार्य समाप्ति पर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे । यह इस लिये कि कोई पशु, जन्तु अथवा पागल आदमी वा दुष्ट पुरुष यज्ञ में विघ्न डालने का साहस न कर सके । प्रश्न हो सकता है कि ये कलश और दण्ड वाले पुरुष वर पक्ष के ही क्यों हों ! इस के उत्तर में हम कहेंगे कि पति का विशेष धर्म, रक्षा करने का है इस लिये रक्षा सम्बन्धी विशेष प्रवन्ध उसी की ओर से होना चाहिये ।

वधू पक्ष की ओर से धान तथा सूप ले कर बैठना

जहाँ पर वधू बैठी हो उस के पीछे वधू का सहोदर भाई यदि सहोदर न हो तो चचेरा भाई वा मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का जो सब उसके भाई के तुल्य हैं उनमें से कोई एक चावल या ज्वार की धानी और शमी वृक्षके सूखे पत्ते इन दोनों को मिलाकर शमीपत्रयुक्त धानी की चार अञ्जली एक शुद्ध सूप (छाज) में रख कर धानी सहित सूप लेकर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भागमें पूर्वाभिमुख बैठा रहे । यह इस लिये कि जिस समय वधू लाजाहोम करे तो उस समय उस का भाई उस के विशेषमान तथा सहायतार्थ उस को सूप से खीलें देता जाय । यदि भाई सूप से खीलें न दे तो नौकर भी दे सकता है अथवा वह स्वयं भी ले सकती है किन्तु भरी सभामें जो कुछ भी सहायतारूपी काम उससे हो सके उस के करने में वह अपनी बहन का अत्यन्त मान करता है और इस अत्यन्त मान के लिये वधू लाजाहोम करती हुई इस मन्त्रद्वारा—

आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्ताम् ज्ञातयो मम स्वाहा ।

जहाँ अपने पति की दीर्घायु चाहती है वहाँ साथ ही अपने भाई आदिक सकल परिवार मण्डल की दीर्घायु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हुई उन के मान में आहुति देती है ।

शुद्ध सूप से अभिप्राय है कि जिस सूप में चमड़ा, तांत आदि लगे हों वह शुद्ध सूप नहीं है । शुद्ध सूप में चमड़े और तांत आदि के स्थान में उत्तम

डोरी आदि लगी होनी चाहिये । कोई प्रश्न कर सकता है कि सूप तो पुराने काल में लेना ठीक था जब कि लोग बहुत यन्त्र बनाना नहीं जानते थे । आज कल तो यदि जर्मन सिलवर की थाली ली जाय तो बहुत सुन्दर प्रतीत होगी । यह प्रश्न ऋषियों की दीर्घदृष्टि पर विचार न देते हुए हो सकता है । क्या जिस समय में आकाश में विमान उड़ते थे उस समय में उत्तम थालियें नहीं बनती थीं ? परन्तु ऋषियों का उद्देश्य तो यह था कि एक निर्धन से निर्धन पुरुष को भी इन चीजों के लेने में ऋणी न होना पड़े । वह इसीलिये सर्वसाधारण के हित को दृष्टि में रख कर सूप आदि का विधान कर गये हैं* ॥

शिला की स्थापना कार्यकर्ता एक सपाट शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो उत्तर पश्चिम के बीच के कोने में रखवा दें जिस का उपयोग आगे चल कर किया जायगा ।

कुशासन बिछाना संस्कार विधि—में लिखा है कि वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के बने हुए आसन जो प्रथम से मँगा रक्खे हों उनको उनके बैठाने के लिए बिछवा दे । इसके दो लाभ हैं एक तो कुशादि के आसन मन्दवाहक [नॉन कण्डक्टर] होने से शरीर की बिजली की रक्षा करते हैं । दूसरा लाभ यह है कि निर्धन से निर्धन पुरुष भी इनको सुलभता से प्राप्त कर सकता है ॥

---

* सूप में धान और शमी को डालकर हवन करने का जो विधान है उस में शमी और खीलों का डालना अति हितकारक है कारण कि भावप्रकाश में लिखा है कि "शमी तिक्ता कटुः शीता कषाया रोचनी लघुः, कफकास भ्रमि श्वास कुष्ठार्शः कृमिजित्स्मृता ॥

शमी, कटु, चरपरा, शीतल, कषेला, रुचिकारक, हलका है तथा कफ खाँसी, श्वास, भ्रम, कोढ़, बवासीर और कृमि रोग को दूर करता है ॥

खीलों के गुण—

खील, मधुर, शीतल, हलकी, अग्निदीपन कर्ता, अल्पमूत्र लाने वाली, रूक्ष, बलकर्ता, पित, कफ़, वमन, अतिसार, दाह, रुधिर विकार प्रमेह, मेदरोग और तृषा इन को दूर करती है ॥ (अभिनव निघण्टु)

जनमण्डल के संमुख विवाह कृत्य का आरम्भ

विवाह की कार्यवाही के तीन भाग हो सकते हैं [१] वर, वधू का अपने २ घरों में स्नान, वस्त्र धारण कर, ईश्वरस्तुति, स्वस्ति वाचन व शान्तिकरण करना।

(२) वर का वधू गृह में प्रवेश कर के उस की तथा अपने निकट सम्ब-न्धियों की विद्यमानता में जनमण्डल से प्रथम स्थान पर, आसन, पाद्य अर्घ, आचमन, मधुपर्क और गोदान प्राप्त कर कन्या का गोत्र सुन, उसे ग्रहण करने की स्वीकृति दे उस को संमानार्थ वस्त्र देना और स्वयं वस्त्र धारण करना।

(३) तीसरी क्रिया के आरम्भ होने से पूर्व कलश स्थापन, मनुष्य का सदण्ड बैठना, धान तथा सूप लेकर बैठना, शिलारोहण, और कुशा-सन बिछाना ये क्रियाएँ हैं॥

अब जो कार्यवाही आरम्भ होती है वह वधू के घर के अंदर दोनों पक्ष वालों के निकट वर्तियों में ही नहीं होगी किन्तु यज्ञकुण्ड के समीप आमन्त्रित जन मण्डल के संमुख होगी।

वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वहां लावे जहां वर, वस्त्र धारण करके स्थिर हो।

आगे "संस्कार विधि" में जो भाषा और मन्त्र का अर्थ दिया हुआ है उस में संगति नहीं बैठती॥

गृह के अन्दर कन्या को वस्त्र धारण कराकर जब कार्य कर्त्ता वर के पास लावे तो उस समय भर्तृयज्ञ आचार्य का मत है कि वर कन्या दोनों "समञ्जन्तु विश्वे देवाः" इत्यादि मंत्र बोलें और कन्या का द-क्षिण हाथ अपने दक्षिण हाथ में पकड़े। और "संस्कार विधि" में भी "समञ्जन्तु" इत्यादि मंत्र को बोलना लिखा है, फिर "ओं यदैषि मनसा" इस मन्त्र को वर बोल कर वधू को लेकर घर के बाहर मंडप स्थान में कुंड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें, इससे तथा संस्कारभास्कर के पाठ से विदित होता है कि यह दोनों मन्त्र अन्दर ही बोलने के हैं। और पहिला मंत्र अर्थात् 'समञ्जन्तु' जहाँ दोनों बोलें वहाँ "यदैषि" केवल वर बोले।

बाहर के वृहत्सभामंडप में कार्य का आरम्भ

बाहर आते समय वर निम्नलिखित मंत्र बोले, प्रथम "अघोरचक्षुः" इत्यादि द्वितीय "सानः पूषा" इस के पीछे वर वधू यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर के कुंड के पश्चिम भाग में स्थापन किये हुए कुशासनों पर पूर्वाभिमुख बैठें वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठे।

यज्ञ कुण्ड की परिक्रमा करके बैठना एक तो इस लिये है कि चारों तरफ बैठे हुए सब लोगों को पता लग जावे कि वर वधू यज्ञासनों पर बैठने लगे हैं और दूसरी बात यह कि वह इस परिक्रमा द्वारा इस बात को प्रकट करते हैं कि हम इस कार्य को आदि से अन्त तक समाप्त करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

वर वधूके बैठने पर, "प्र मे पतियानः" इत्यादि मंत्र द्वारा वधू, पति का जो सत्य मार्ग है उस में चल कर सुखी होने और ईश्वर प्राप्ति की प्रार्थना करती है।

पुरोहित नियुक्ति

अब तक जो 'कार्यकर्त्ता' का शब्द 'संस्कार विधि' में प्रयुक्त किया गया है उसका भाव व अर्थ पुरोहित नहीं समझना चाहिये किन्तु कोई भी बुद्धिमान् यज्ञ विषय में अनुभव रखने वाला मनुष्य समझना चाहिये।

यहाँ पर पुरोहित की स्थापना का वर्णन है जिस का आसन दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होना चाहिये। पुरोहित का आसन दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि उस को अपने दक्षिण हाथ से वाम ओर को बैठे हुए वर वधू को किसी चीज़ के देने में अधिक सुभीता हो। यदि वह लोटे से जल आचमन के लिये उन को पूर्व दिशा में बैठा हुआ देगा तो उसके दक्षिण हाथ की क्रिया वैसी सरल नहीं हो सकती। पूर्व दिशामें पश्चिम मुख बैठने से हवन कुण्ड के बीच में होने से पुरोहित, वर वधू से बहुत ही दूर हो जायगा जिससे सरलता से कार्य करने में अड़चन आवेगी।

यज्ञ से पहिले आचमन

"अमृतोपस्तरणमसि" इत्यादि तीन ३ मन्त्रों

वर, वधू, पुरोहित और कार्यकर्त्ता ये लोग तीन ३ आचमन करें तथा हस्त और मुख, एक शुद्ध पात्र में धोवें और वह पात्र दूर रखवा दें। हाथ और मुख पोंछ कर अग्न्याधान आदि सामान्य प्रकरणानुसार करें।

आघारावाज्यभागाहुति ४, व्याहृति आहुति ४, अष्टाज्याहुति ८, ये सब मिला कर सोलह आज्याहुति देकर प्रधान होम का आरम्भ करें।

प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श करके "ओं भूर्भुवः स्वः" इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक २ मंत्र से एक २ आहुति करे।

गर्भाधानप्रकरण में इस शंका का समाधान किया जा चुका है कि क्यों वधू का दक्षिणहाथ, वर के दक्षिणस्कन्ध पर हो, जिस का सार यह है कि वह दोनों इस चिन्हद्वारा पति पत्नी भाव को बोधन करा रहे हैं पुरुष पति है इस लिये वह पत्नी को आश्रय देता है। योरोप आदि देशो में भी यही प्रथा प्रचलित है कि पुरुष, स्त्रियों को यान आदि में चढ़ते उतरते समय आश्रय देते हैं।

पांचवीं आहुति

"ओं भूर्भुवः त्वमर्यमा" इत्यादि मंत्र से पांचवीं आहुति देनी चाहिये।

इस के अनन्तर "ऋताषाड्" इत्यादि १२ मंत्रों से १२ आज्याहुति करनी चाहियें। इन १२ मन्त्रों में मूल ६ मंत्र हैं जिन का अर्थ ऊपर आ-चुका है उस की अधिक व्याख्या की हमें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जया होम

फिर जया होम के १३ मन्त्रों से १३ आज्याहुति देनी चाहियें।

अभ्यातनहोम

फिर अभ्यातन होम के १८ मन्त्रों से १८ आज्याहुतियाँ देनी चाहिये।

आठ विशेष आज्याहुति

इस के पश्चात् "अग्निरैतु" इत्यादि ८ मंत्रों से ८ आज्याहुति देनी चाहियें।

चार साधारण आज्याहुति

फिर 'भूरग्नये स्वाहा' इत्यादि चार मंत्रों से चार आज्याहुति देनी चाहियें।

पाणिग्रहण के छः मन्त्र

विवाह संस्कार का विशेष आरम्भ पाणिग्रहण के ६ मन्त्रों से होता है जिस में पहिला मन्त्र "गृभ्णामिते" इत्यादि है । पाणिग्रहण अथवा हस्तग्रहण की क्रिया किसी न किसी रूप में यूरोप, अमरीका आदि देशों में भी विद्यमान है। वहाँ पर भी विवाह में वधू का हस्त पकड़ना विवाह का बोधक चिन्ह समझा जाता है । ऋषि दयानन्द ने जो इस मन्त्र का अर्थ किया है वह अति उत्तम और युक्तिपूर्ण है । कई पंडित "अर्य्यमा, सविता" आदि के अर्थ, कल्पितदेवता करते हैं । जर्मनी के प्रोफ़ेसर ओल्डनबर्ग तथा इंग-लेण्ड के प्रोफ़ेसर मेक्शमूलर ने भी इन शब्दों के अर्थ, वैसे ही कल्पित देवताओं के बोधक किये हैं ॥

उक्त दोनों प्रोफ़ेसरों ने जो अर्थ किया है उसका अनुवाद यह है ।

"मैं तेरा हाथ आनन्द के लिये ग्रहण करता हूँ ताकि तू जरावस्था तक मेरे साथ (जो तेरा पति हूँ) रहे । भग, अर्य्यमन्, सविता, पुरन्धि देवताओं ने तुझे मुझ को दिया है ताकि हम अपने घर पर हकूमत करें"

अब इस के साथ ज़रा ऋषि दयानन्द के अर्थ की, जो लिखा जाता है तुलना कीजिये फिर निष्पक्ष विद्वान् को स्वयं ही पता लग जायगा कि ऋषि दयानन्द ने निरुक्त, निघण्टु के आधार पर वेद शब्दों को यौगि-क मान, एक दर्शनकार के कथनानुसार बुद्धिपूर्व्वक अर्थ किया है । अथवा यों कहो कि मेक्समूलर आदि के अर्थ में दो दोष हैं, वे ये हैं— (१) उक्त महोदयों ने निरुक्तादि प्राचीन अङ्गों का आधार नहीं लिया जो कि वैदिक शब्दों को यौगिक बतलाते हैं (२) और न निरुक्त के लेखानुसार वेदार्थ करने में तर्क को ऋषि माना है । यदि उक्त प्रोफ़ेसर वेदों के शब्द यौगिक और अर्थ बुद्धिपूर्व्वक अथवा तर्कानुसार करने का यत्न करते तो ऐसे असंगत अर्थ न करते ।

शेष पांच मन्त्रों के अर्थ भी अपूर्व ही हैं । और कोई भी निष्पक्ष प-ण्डित कभी इन छः मन्त्रों के अर्थ देख, ऋषि दयानन्द के पाण्डित्य को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता ।

जिस समय वर "गृभ्णामि ते" यह मन्त्र बोलने लगे उस समय उस को, जैसा कि 'संस्कार विधि' में लिखा है होम करने के पश्चात् वैसा ही

करना चाहियं अर्थात् वह अपने आसन से उठ कर पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के संमुख अर्थात् पश्चिमाभिमुख खड़ा रह कर अपने वाम हस्त से वधू का दक्षिण हस्त चत्ता करके ज़रा ऊपर की ओर को उस का हाथ करे और अपने दक्षिण हाथ से, वधू के उठाये हुए, दक्षिण हस्ताञ्जलि का अंगुष्ठसहित, चत्ता ग्रहण करके वर पाणिग्रहण के ६ मन्त्रों को बोले, यह विदित रहै कि अपने आसन से उठ कर उस को हवन कुण्ड के पार वा सामने के तट पर दूर जाकर खड़े होने की जरूरत नहीं, हवनकुंड के उसी ओर रहे जिस पर उसकी वधू के पग रक्खे हुए हैं केवल अपना आसन छोड़, वधू के मुख की ओर अपना मुख करके खड़ा होना है ।

पाणिग्रहण के समय वधू को खड़े होने की आवश्यकता नहीं, वह बैठी रहे और वर खड़ा हो जरा नम कर उसके हस्त को उक्तरीति से ग्रहण करे और ६ मंत्र बोले ।

खड़ा होकर वर पहिले अपने बाम हाथ से उस के दक्षिण हाथ को चत्ता करके जो ऊपर उठाता है, इस का भाव यह है कि वह उसका अधिक आदर करता है, क्यों कि उस के एक ही हाथ को उठाने में अपने वाम हाथ से ऊंचा करना और फिर दक्षिण हाथ से उठाना सचमुच उसका बड़ा सत्कार करना है । साथ ही वह खड़ा होकर उसका हाथ ऊँचा करता और फिर पकड़ता है जब कि वह बैठी हुई है, यह भी उस को मान देने के लिए खड़ा होना है, यदि मान न देना होता तो बैठकर ही हाथ पकड़ सकता था । प्राचीन आर्य्यों की यह सभ्यता इस समय युरुप आदि देशों में किसी न किसी रूप में विशेष पाई जाती है । हमारे एक इंगलैंड से आये हुए मित्र ने कुछ वर्ष हुए तो किसी का विवाह संस्कार हमारे साथ देखा । वह देखकर कहने लगे कि हम अंगरेज़ इसको देखकर आप की रीतभाँत की बहुत स्तुति करते हैं, उन्होंने यह भी कहा कि पति अपना हाथ जो नीचे रखता और वधू का अपने हाथ के ऊपर, यह भी उसके मान तथा सहारे के लिये है ।

संस्कार विधि में लिखा है कि "दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठ सहित चत्ती ग्रहण करे" ।

जिसका भाव यह है कि पाणिग्रहण वा हस्तग्रहण करते समय वर

अपने दक्षिणहस्त को नीचे रख, वधू का दक्षिण हाथ जिसकी हथेली ऊपर को हो, अंगुष्ठ सहित ग्रहण करे ।

आज लोग नारी पूजन का महत्त्व भूल गये हैं । पुराने समय में नारी संमान की प्रथमशिक्षा, वर को पाणिग्रहण के समय मिलती थी । कई प्रश्न करते हैं कि जिस समय वर, वधू के गृह के अन्दर गया तो "विष्टर" आदि से वधू ने पहिले सत्कार क्यों किया ! इस का उत्तर यह है कि जब कोई मित्र किसी मित्र के घर जाता है तो जिस के घर जावे, उस समय उसका कर्त्तव्य उसके सत्कार करने का है ।

सूचनार्थ एक परिक्रमा

पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोलने के पश्चात् वर, वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ कर उठाता है और वर वधू, कलश वाले आदमी को अपने पीछे ले कर यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करते हैं । इस परिक्रमा का भाव यह है कि उन्होंने आगे एक महत्त्व पूर्ण प्रतिज्ञा, परस्पर प्रसन्नता के बोधन कराने वाली करनी है उसको जनमण्डल सावधानी से सुनने के लिये तैयार हो जावे ।

एक प्रतिज्ञा का बोधक मन्त्र

यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके फिर " अमोऽहमस्मि " इस मन्त्र द्वारा वर प्रतिज्ञा करता है जब यह प्रतिज्ञा का मन्त्र बोलने लगे तब कलशवाला पुरुष कुण्ड के दक्षिण ओर अपनी जगह पर बैठ जावे क्योंकि उस की परिक्रमा के समय जरूरत होगी इस समय नहीं ।

शिलारोहण

वधू की माता अथवा भाई बांये हाथ में चावल और ज्वार की धानी लेकर दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा कर पत्थर की शिला पर रक्खे । वाम हाथ में धानी इस लिये ली जाती है कि अभी आगे होने वाले लाजाहोम में उस की जरूरत पड़ेगी ।

संस्कार विधि के पृष्ठ १६० पर भाषा में यह शब्द हैं कि "प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके " ।

इन शब्दों में "दोनों" के स्थान में "वर" का शब्द होना चाहिये उस के लिये कारण यह है कि वहां मूल मन्त्र में अपने को "द्यौः" और

वधू को "पृथ्वी" की उपमा दे रहा है फिर अपने को सामवेद और वधू को ऋग्वेद की उपमा दे रहा है। "द्यौः" से भाव पुरुषशक्ति के बोधक सूर्य का और पृथ्वी से आशय स्त्रीशक्ति से है। "हार्मोनिया" नामी पुस्तक में अमरीका का एक महाविद्वान् "एन्ड्रो जैक्सन् डेविस" लिख रहा है कि सूर्य पुरुष और पृथ्वी स्त्री रूपा है। यदि स्त्री भी इसी मन्त्र को पढ़ जावे तो वह अपने आप को सूर्य और पति को पृथ्वी रूप कहेगी जो परस्पर विरुद्ध हो जावेगा इस लिये यह मन्त्र वर के ही बोलने का है।

इसके अतिरिक्त पारस्कर सूत्र के विवाहप्रकरण में लिखा है कि अथास्यै हस्तं गृह्णाति सांगुष्ठं, "गृभ्णामि ते सौभगत्वाय........................ । अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्व मस्यमो० शृणुयाम शरदः शतम्"।

इससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि यह मन्त्र वरके बोलने का है।

एक हेतु यह भी है कि संस्कारविधि के पृष्ठ १४६ पर "गृभ्णामि ते......" यह मन्त्र लिखते हुए महर्षि दयानन्द दर्शाते हैं कि "वर इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोले"।

पारस्कर गृह्यसूत्र में "गृभ्णामि" इत्यादि और "अमोऽहमस्मि" इत्यादि यह दोनों मंत्र, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है इकट्ठे वर के बोलने के लिये लिखे हैं।

अब हमें यह बतलाना है कि "अमोहऽमस्मि" इस मन्त्र में पति को सामवेद से और स्त्री को ऋग्वेद से क्यों उपमा दी गई? इस के उत्तर में हम कहेंगे कि सामवेद में जो ऋग् की ऋचा है उसे साम कहने का क्या कारण है? उसका कारण केवल यही है कि ऋग् की ऋचा को गान की पद्धति के अनुसार गायन करने में समय अधिक लगता है। इससे यहाँ पर लक्षण द्वारा यह भाव लेना है कि वर वह है जिसको विवाह के योग्य होने में वधू की अपेक्षा अधिक काल लगा है अर्थात् आयु (काल) में वर, वधू से बड़ा है।

जिस समय वधू का पग शिला पर रक्खा जाय उस समय वर "आरोहेमम्" इत्यादि मन्त्र बोले, जिस का भाव यह है कि हे देवी! तू पत्थर की नाईं गृहस्थ आश्रम के धर्म्म में दृढ़ हो और कलह करने वालों अथवा

विघ्नों तथा चोर डाकुओं को नीचा दिखाने वाली हो ।

विवाह का एक मुख्य अङ्ग लाजाहोम वधू वर दोनों कुण्ड के समीप पूर्वाभिमुख खड़े रहें और वधू उस के दक्षिण ओर को रहे तथा वधू अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वर के दक्षिणहस्त पर रक्खे और वधू की मा वा भाई जो वायें हाथ में धानी का सूपड़ा पकड़े खड़ा है वह वधू वर की एकत्रित की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की जो हस्ताञ्जलि है उस में प्रथम थोड़ा घृत सेचन करके सूप में से दाहिने हाथ की अञ्जलि से दो वार ले कर अर्थात् दो मुट्ठी लेकर वधू की एकत्रित की हुई अञ्जलि में धानी डाले पश्चात् उस अञ्जलिस्थ धानी पर थोड़ा सा घी सेचन करे। पश्चात् वर की हस्ताञ्जलि सहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगेसे नमा कर इन मन्त्रोंमें से एक २ मन्त्र को वधू बोल एक २ बार थोड़ी २ धानीकी आहुति तीन बार प्रज्वलित इन्धन पर देवे।

"संस्कार भास्कर" के पृष्ठ २५९ पर इस बात का स्पष्टीकरण किया गया है कि लाजाहोम के तीन मन्त्र वधू को ही बोलने चाहियें और यह बात स्वयं मन्त्रों के अर्थों से भी विदित हो रही है। पहिला मन्त्र लाजाहोम का बतला रहा है कि कन्या ईश्वर की आज्ञा पालन के लिये पितृकुल को छोड़ने और पतिकुल में जाने के लिये तैयार है। दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि खीलें अग्नि में छोड़ने वाली प्रार्थना कर रही है कि मेरा पति दीर्घ जीवीहो और मेरे पितृकुल तथा पतिकुल के लोग धन धान्य आदि से बढ़ें। तीसरे में वह पति से कह रही है कि तेरी वृद्धि के लिये मैं यह लाजाहोम करती हूँ ईश्वर करे कि मेरा आप से प्रेम बढ़ता जाय।

हिन्दू कानून के अन्दर माना गया है कि हिन्दू विवाह की पूर्ति के दो अङ्ग—लाजाहोम और सप्तपदी हैं। लाजहोम के अन्त में परिक्रमा द्वारा यह बात जनाई जाती है कि वधू पतिकुल में जायगी। सर्वसाधारण लोग, इस परिक्रमा को ही फेरे वा मङ्गल फेरे कह कर "विवाह" समझते हैं। वास्तव में यह परिक्रमा लाजाहोम के अन्तर्गत है और दक्षिण में फेरों की जगह "लाजाहोम" शब्द का ही प्रयोग होता है।

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

"ओं सरस्वति" इत्यादि मन्त्र को "लाजाहोम" की तीन आहुतियों के पीछे वर बोलता है और इस को बोल कर अपने जसने (दक्षिण) हाथ से वधू की हस्ताञ्जलि को पकड़ता है ("हस्ताञ्जलि" का अर्थ, सर्वत्र "हस्त" समझना चाहिये)।

यह मन्त्र क्या है! मानो विवाह की फिलासफ़ी का सार इस में कूट कूट भरा हुआ है। स्त्री की महिमा इस मन्त्र में इस उत्तमता से वर्णन की गई है कि यूरोप के बड़े २ विद्वान् उस को माने बिना नहीं रह सकते। मन्त्र में दर्शाया गया है कि स्त्री प्रकृतिरूप है यदि प्रकृति न होती तो यह सृष्टि कहाँसे होती। इस लिये स्त्री शक्ति, सृष्टि का मुख्य कारण है इस बात को कहता हुआ पति, स्त्रीके पूर्ण अधिकार और महत्व को दर्शा रहा है और साथ ही कह रहा है कि मैं सदैव तेरा आदर किया करूँगा कभी भी तेरा निरादर नहीं करूँगा।

यह कह कर उस का हाथ पकड़ना उस के मिलने और सहायता के भाव को प्रकट कर रहा है और वधू का हाथ पकड़ना भी स्वीकृति का बोधक है।

अब लाजाहोमके पीछे एक दृश्य परिक्रमा के रूप में आता है। वधू की हस्ताञ्जलि पकड़े वर 'ओंतुभ्यमग्ने' इत्यादि दो मन्त्रों को बोलता हुआ वधू को अपने आगे किये हुए परिक्रमा करता हुआ मानों सर्व सभा को बोधन करा रहा कि मैंने विवाह क्यों किया! इस का उत्तर वह मन्त्र के मधुर शब्दों में ईश्वर को संबोधन कर के मन के सच्चे भाव से कह रहाहै कि हे ईश्वर! आप की आज्ञा पालन के निमित्त मैंने इस वधू को स्वीकार किया है। यह देवी सूर्य्य समान शोभायुक्त होवे और साथही मैं भी शोभा को पाऊँ तथा कालान्तर में हे ईश्वर! हमारे गृह में सन्तान दीजिये।

दूसरे मन्त्र में दर्शाया गया है कि यह कन्या पितृकुल को छोड़ पति के गृह में जाती है और पतिव्रत धर्म्म को पालेगी। हम दोनों मिल कर काम करने से जल की वेग वाली धारा की नाईं शक्ति युक्त होने से सब विघ्नों को दवाते रहेंगे। यह एक परिक्रमा पूर्ण हुई।

जब यह परिक्रमा करें तो आगे वधू उसके पीछे वर और वर के पीछे

कलश वाला मनुष्य रहे और साथ २ घूमे । यह इसलिये कि वधू की रक्षा पति करसके क्योंकि पति शब्द के अर्थ ही रक्षक के हैं ॥

एक परिक्रमा की समाप्ति पर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वर वधू दोनों खड़े रहें फिर वधू की माता पूर्ववत् अपने वाम हस्त में धान का सूप ले और दूसरे हाथ से शिलारोहण करावे फिर उनकी संयुक्त हस्ताञ्जलि पर धानी डाले वधू पूर्ववत् तीन मन्त्रों से तीन बार लाजा की तीन आहुतियें देवे और वर पूर्ववत् "सरस्वति" इत्यादि मन्त्र बोल वधू के हाथ को पकड़े और "तुभ्यमग्ने" यह दो मन्त्र उच्चारण करता हुआ यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करे जिस में वधू आगे, वर पीछे और कलशवाला दोनों के पीछे रहे ॥

दूसरी परिक्रमा के पश्चात् फिर वधू की माता शिलारोहण करावे तथा उनकी संयुक्त हस्ताञ्जलि में पूर्ववत् धानी डाले और वधू तीन मन्त्रों से लाजा की आहुति देवे । फिर वर "सरस्वति" इत्यादि मन्त्र पढ़ वधू के हस्त को पकड़े और "तुभ्यमग्ने" यह दो मन्त्र बोलता हुआ वर, वधू सहित पूर्ववत् तीसरी परिक्रमा करे ॥

अब इस बात की पुष्टि में कि शिलारोहण, लाजाहोम, मन्त्र पाठ तथा परिक्रमा के दो मन्त्र प्रत्येक वार पढ़ने चाहियें, हम नीचे का लेख वाचक वृन्द के अर्पण करते हैं जिस से स्वयं पता लग जायगा ॥

गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २ सू० ५ से १० का संस्कृत भाष्य करते हुए श्रीयुत पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी, जो कुछ लिखते हैं उस में से कुछ शब्द नीचे उद्धृत करते हैं—

"सा वधूः" इयं नार्युपब्रूते० इत्यनेन मन्त्रेण अग्नौ जुहोति–जुहुयात् हुते लाजाहोमे सम्पन्ने........पतिः 'यथा' येन प्रकारेण पत्नी पृष्ठदेशेन 'इतं गतं' तथैव 'अग्निं' प्रदक्षिणं यथा स्यात् तथा परिव्रज्य प्रत्यागत्य 'कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं' इत्यनेन मन्त्रेण 'परिणयति' तां कन्यामिति शेषः । पतिलोकप्रापणं बोधयति कन्यामितिभावः "परिणीता च सा पत्नी" तथैव पूर्वोक्त प्रकारेणैव "अवतिष्ठते" तथाएव "आक्रामति" अश्मानम् तथाएव जपति पतिः, तथाएव 'आवपति' भ्राता, तथाएव जुहोति वारद्वयम् कन्या स्वयमेव । अत्र च उत्तरयोः लाजाहोमयोः 'अर्यमणं नु देवं०'

'पूषणं नु देवं कन्या०" इत्येतौ मन्त्रौ यथाक्रमेण प्रयोक्तव्यावित्येव शेषः । एवम् प्रथमलाजाहोमेनोत्तरलाजाहोमद्वयमेतनेन सङ्कलनया 'त्रिः' होमत्रयं सम्पन्नम् । इति गता परिणय क्रिया" इससे यह बातें पाई जाती हैं-

(१) भाई से ली हुई खीलों से पहिली बार लाजाहोम करना ।

(२) शिलारोहण, पति का मन्त्र पढ़ना और आला का खीलें देना दो बार और कन्या का होम करना । और इस प्रकार पहिला लाजाहोम तथा उत्तर के दो लाजाहोम मिला कर तीन होम पूरे होते हैं उपर्युक्त संस्कृत का जो भाषाऽर्थ उस पुस्तक में किया गया है उस में इस प्रकार लिखा है कि—

"इस प्रकार वधू परिणीता होने पर और भी दो बार उसी प्रकार अवस्थान (सू० २) अश्माक्रमण (सू० ३) मन्त्रपाठ (सू० ४) लाजा वपन (सू० ५) और लाजाहोम करे । इस प्रकार तीन लाजाहोम सम्पन्न होंगे । इसी को "परिणय" कहते हैं ।

इस से पाया गया कि शिलारोहण, लाजाहोम, मन्त्रपाठ और परिक्रमा के दो मन्त्र बोलने, यह बातें प्रत्येक फेरे का अङ्ग हैं ।

"संस्कार विधि" में पृष्ठ १५२ पर जो भाषा है उस में यह लिखा है "सब मिल के चार परिक्रमा कर के अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़े रह के उक्तरीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात्.......... वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा कर के उस में बाकी रही हुई धानी को वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे, पश्चात् वधू "ओं भगाय स्वाहा" इस मन्त्र को बोल आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रखके कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के "ओं प्रजापतये स्वाहा" इस मन्त्र को बोल स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के केशों को—इत्यादि ।

"संस्कार विधि" से उद्धृत ऊपर के लेख में परस्पर विरोध दृष्ट पड़ता है, कारण कि पहिले लिखा है कि 'सब मिल के चार परिक्रमा कर के.....' फिर इसी के आगे लिखा कि 'उक्तरीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात्' वधू की मा बाकी रही धाणी वधू की हस्ताञ्जलि में डाले, अब प्रश्न यह है कि यह परस्पर विरोध अर्थात् एक स्थल में ४ परिक्रमा

का विधान और उसी के आगे उसी प्रसङ्ग में ३ परिक्रमाओं की पूर्त्ति का लेख कैसे लिखा गया ? हम तो प्रूफ शोधकों का दृष्टिदोष समझते हैं । यदि 'उक्त रीति से तीन बार क्रिया हुए पश्चात्' इस वाक्य में 'तीन' के स्थान में चार का शब्द होता तो ठीक था । प्रश्न हो सक्ता है कि 'तीन' की जगह चार यह शब्द क्यों लिखा जावे इस के उत्तर में हम कहेंगे कि जब कुल चार परिक्रमा करने को लिखा है तो परिक्रमा की क्रियाकी पूर्त्ति ३ से कैसे हो सकती है ? इस के अतिरिक्त यदि मान भी लिया जावे कि तीसरी परिक्रमा के अन्त में "ओं भगाय स्वाहा" इस मन्त्रद्वारा शेष लाजा की आहुति वधू को देनी है, तो इस आहुति देने के पश्चात् फिर चौथी परिक्रमा के लिये उन को तैयार होना चाहिये था ।

परन्तु वह चौथी परिक्रमा के लिये तैयार नहीं होते किन्तु कार्य्यवाही समाप्त कर एकान्त में वधू की केश सम्बन्धी क्रिया के निमित्त जाते हैं । इस लिये यदि तीन के स्थान में चार शब्द का प्रयोग वहाँ मान लिया जावे तो फिर कोई दोष वा आशङ्का हो नहीं सकती, अर्थात् ४ परिक्रमा करने के पश्चात् शेष बची हुई लाजा से "ओं भगाय स्वाहा" यह मन्त्र बोल कर वधू आहुति देवे और पति की घृत की आहुति इसके पीछे होवे फिर वह एकान्त में केश सुधारने के लिये जावें और केश सुधार कर उन को कोई बाकी रही हुई परिक्रमा नहीं करनी है, किन्तु सप्तपदी की अन्य क्रिया करनी है । और देखिये कि—

"सब मिल के चार परिक्रमा करके" इस लेख का आशय "संस्कार विधि" की भाषाशैली के अनुसार यह है कि सब मिल कर चार परिक्रमा कर चुकने पर, अतः इसके आगे यदि यह लेख हो कि "उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात" तो क्या बुद्धिमान् यह न कहेंगे कि यहाँ तीन की जगह चार लिखना चाहिये था, नहीं तो यह बात असंगत हो जाती है,

इत्यादि कारणों से हमने संस्कार विधि के भाषा लेख में तीन शब्द की जगह चार शब्द शोधन की रीति से लिख दिया है ॥

चार बार फेरे उसी क्रम से अर्थात् शिलारोहण, तत्पश्चात् लाजा होम, मन्त्र पाठ और परिक्रमा वाले दो मन्त्र पढ़ते हुए जब चार फेरे समाप्त हो जांय—

पूर्णाहुति

तब वधू की मा सूप को तिरछा करके शेष रही हुई धानी केवल वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे । सूप को तिरछा करना इस लिये लिखा गया कि कोई खील बाकी न रह जाय । यह विदित रहे कि "लाजाहोम" के समय तथा इस पूर्णाहुति के समय अग्नि प्रज्वलित होनी चाहिये । इस पूर्णाहुति के समय वर वधू की हस्ताञ्जलि एकत्र नहीं होनी चाहिये । वधू की माता केवल वधू की हस्ताञ्जलि में डाले और वधू ही केवल "ओं भगाय स्वाहा" इस मन्त्र को बोल प्रज्वलित अग्नि पर यह आहुति देवे ॥

तदनन्तर वधू, वर के दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठ जावे । और वर उसके वाम भाग में बैठ कर एक घृताहुति "ओं प्रजापतये स्वाहा" इस मन्त्र से देवे । यह घृताहुति वर की ओर से पूर्णाहुति समझनी चाहिये ॥

उक्त मन्त्रों पर एक दृष्टि

हमने देख लिया कि विवाह संस्कार में प्रथम अपने २ घर में वधू वर ने स्नान कर वस्त्र धारण किये फिर अपने २ स्थानों वा घरों में ईश्वरस्तुति, स्वस्ति वाचन और शान्तिपाठ किये कराये । फिर बरात ले कर वर, वधू के गृह में आया और उस समय वधू के घर के अन्दर उस का अन्तरङ्ग रीति से विष्टर, मधुपर्क, गोदान आदि द्वारा सत्कार किया गया और वहीं अन्तरङ्ग रीति से कन्या का गोत्र सुन उस के साथ विवाह करने की स्वीकृति दी फिर घर के अन्दर ही वर ने अपने नगर वा ग्राम के बने हुए वस्त्र वधू को भेट किये, तत्पश्चात् बाहर की बड़ी सभा में और हवनकुण्ड पर आने के लिये उत्तम वस्त्र पहिरने में समय लगाया ।

जब वस्त्र धारण करने गये तब यज्ञकुण्ड सम्बन्धी कार्य करने वालों ने कलशस्थापन, धानी तथा शिलास्थापन आदि उचित कार्यवाही की ।

फिर कुछ क्रिया घर के अन्दर की और घर के बाहर बृहत् हवन किया, जिन हवनमन्त्रों में कि ईश्वर से प्रार्थना तथा सृष्टि के उपयोगी पदार्थों से लाभ लेने का विधान था । 'जयाहोम' के मन्त्र, शरीर, मन, आत्मा आदि सब शक्तियों की पूर्ण उन्नति का बोधन कर रहे हैं ।

हवन की समाप्ति पर छः मन्त्रों द्वारा पाणिग्रहण हुआ तथा एक परिक्रमा, सूचनार्थ करने के पश्चात् परस्पर प्रसन्नता से विवाह करने का

भाव मन्त्रद्वारा प्रकट किया गया। यह सब कुछ होने के पश्चात् विवाह संस्कार का एक मूल अङ्ग वा प्रधान अङ्ग शिलारोहण, लाजाहोम और परिक्रमा से पूर्ण किया गया और दृढ़ता का पूर्णरूप दिखाने के लिये यह लाजाहोम और उस के अन्तर्गत परिक्रमा की क्रिया चार बार की गई।

लाजाहोम के समय वर वधू खड़े होते हैं और वधू अपने सम्बन्धी तीन मन्त्रों को खड़ी २ इस लिये बोलती है कि दूर बैठे हुए मनुष्य भी भले प्रकार सुन पावें। फिर जब दोनों परिक्रमा करते हैं तो वधूको पतिकुल में जाना है इस को जताने तथा विवाह का उद्देश्य क्या है ? इस को दर्शाने के लिये वर आप दो मन्त्र बोलता है। और कन्या की स्वीकृति, अमली तौर से उस के साथ २ परिक्रमा करने से एक बार नहीं किन्तु चार बार परिक्रमा करने से पब्लिक जान रही है।

कोई विदेशी पण्डित यह आक्षेप करते हैं कि आर्यों के विवाह में 'अग्नि' की पूजा होती है परन्तु वे 'अग्नि' शब्द के अर्थ केवल 'आग' के ही समझते हैं, उनका यह पक्षपात यहाँतक बढ़ गयाहै कि वह निरुक्त, निघण्टु और शतपथ किसी का प्रमाण नहीं मानते। अस्तु। हम यजुर्वेद चालीसवें अध्याय के सोलहवें मन्त्र को यहाँ पर लिखते हैं—

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्"

इस मन्त्र में विद्वान् शब्द स्पष्ट पड़ा है यह विद्वान् क्या उस अग्नि के लिये नहीं आया जिस का वर्णन इस मन्त्र में है ! इस से क्या स्पष्ट नहीं पाया जाता कि अग्नि विद्वान् भी हो सकता है। भौतिक अग्नि तीन काल में 'विद्वान् संज्ञा' को धारण नहीं कर सकती। अतः महात्मा सत्यप्रिय पुरुषों को मानना पड़ेगा कि अग्निके निस्सन्देह दूसरे अर्थ उस 'विद्वान् शक्ति, के हैं जिस को इसी मन्त्र में सर्वोपरि शक्ति कहा गया है। क्या वह सर्वोपरि विद्वान् शक्ति, बिना ईश्वर के और कोई हो सकती है ? इस लिये परिक्रमा करते हुए जब पति कह रहा है कि उस परमेश्वर की आज्ञा पालन के निमित्त मैंने यह विवाह किया है जिस का नाम 'अग्नि' है तो यह अर्थ सर्वथा सत्य होने से सज्जनों को स्वीकार करने चाहियें।

परिक्रमा करते हुए कुछ कहने का एक और भी भाव है और वह यह है कि जिस प्रकार परिक्रमा में आरम्भ से अन्त पर्यन्त क्रिया होती है

उसी प्रकार प्रतिज्ञा करने वाला कह रहा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा को आरम्भ से अन्त पर्य्यन्त पूरा करके छोडूंगा ।

यदि ब्रह्मचारी गुरु की प्ररिक्रमा करने से यह बोधन करा सकता है कि मैं गुरु सम्बन्धी कार्य्यों को आरम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त करूँगा तो वधू वर का हवनकुण्ड की अग्नि की परिक्रमा करना यह स्पष्ट बोधन करा रहा है कि वह कर्मकाण्ड को भी गृहस्थाश्रम में आद्योपान्त धारण करेंगे अर्थात् कर्म्मशूर होंगे । सच पूछो तो कर्म्मकाण्ड पूर्णरूप से गृहस्थाश्रम में ही किया जा सक्ता है ।

नई सभ्यता की गोद में पले हुए कई लोग विवाह की रजिष्टरी कराया करते हैं परन्तु काग़ज़ और स्याही से लिखी हुई रजिष्टरी शीघ्र नष्ट हो सकती है, उस रजिष्टरी की अपेक्षा जोकि मनुष्यों के हृदय में कराई जावे, आज विवाह के लिये साक्षी पूछे जाते हैं परन्तु पुराने समय में वह सर्व मनुष्य जो विवाह मण्डप में बैठे हुए हों साक्षी होते थे । आज विवाह करने वालों की (पहचान) कराई जाती है पुराने समय में जब वह चार बार घूम कर फिर जाते थे तो वधू वर की पहिचान किस को न हो जाती होगी ! दक्षिण देश में स्त्रियों को कभी घूंघट का स्वप्न भी नहीं होता इसी प्रकार पुराने समय में आर्या स्त्रियें बिना घूँघट के विवाह के समय परिक्रमा करती थीं ।

फेरे चार ही क्यों हों !
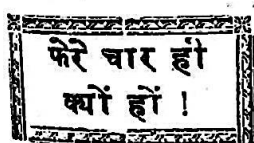
यदि किसी कमरे वा स्थान में कोई परिक्रमा करे तो उस की परिक्रमा में जो कि गोलचक्र का रूप होता है ४ दिशाओं का समावेश हो जाता है । वर, वधू चक्र लगाते हुए ४ चार प्रतिज्ञा इस लिये करते हैं कि जिस प्रकार ४ दिशाएँ पूर्णता की बोधक हैं, उसी प्रकार उन की प्रतिज्ञाओं को, जो चारों तरफ के बैठे हुए मनुष्य सुन रहे हैं पूर्णतया समझें । चार दिशाओं में सर्व स्थल की इयत्ता (हद) है । चार दिशाओं से बाहिर कोई लोक वा स्थान नहीं हो सक्ता । ४ दिशाएँ सब को अन्दर धारण करने से पूर्णता का दृश्य दिखा रही हैं । इस लिये ४ चार बार प्रतिज्ञा करना, मानों प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप में पहुँचाना है ।

एकान्त में वधू को धैर्य देना

हवन की पूर्णाहुति के पश्चात् वर वधू एकान्त में जावें और "प्र त्वा मुञ्चामि" इत्यादि दो मन्त्र बोलकर वर, वधू के जूड़े को ढीला करे इस का भाव यह है कि कन्या, माता पिता के मोह बन्धन में बँधी हुई है। उस के केश वा जूड़े को खोलने से यह तात्पर्य है कि मैं मोहरूपी केशों को ढीला करता हूँ और साथ उस को दिलासा देता है कि मैं पतिभाव से तेरा पोषण करूँगा और कोई उपद्रव तुझ पर आने न दूँगा यद्यपि इस प्रकार की दिलासा और इस किसम की बातें लाजाहोम के समय जनमण्डल के समक्ष वह कहला चुकी और सुन चुकी है पर एकान्त में इस कथन का निस्सन्देह अधिक प्रभाव पड़ेगा इस लिये धैर्य्य देने के लिये वह अलंकार की रीति से उस के मातृकुल में मोह को केशों के बन्धन से उपमा दे रहा है। क्या हम नहीं देखते कि जिस नए मनुष्य के साथ किसी जवान लड़के को जाना हो तो वह मनुष्य जवान लड़के के मा बाप के सामने चाहे कितनी भी धैर्य्य की बातें करे उस को वह जवान लड़का कभी ऐसा समझ लेता है कि मेरे मा बाप को दिखाने के लिये वा सभा में यश पाने के लिये न कह रहा हो परन्तु जिस समय वही मनुष्य उस नौजवान को जरासा एकान्त पाकर पहले से आधा भी धैर्य्य दे तो उस का प्रभाव विचित्र और स्थायी होता है। इस लिये पति का एकान्त में जाकर स्त्री को यह उपदेश करना और सच्चे मन से धैर्य्य देना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। केशों का वर्णन तो दृष्टान्त मात्र समझना चाहिये।

विवाह का अन्तिम प्रधान अङ्ग सप्तपदी

तदनन्तर सभामण्डप में वर वधू आकर "सप्तपदी" विधि का आरम्भ करें। इस समय वर के उपवस्त्र [डुपट्टे] के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ देनी चाहिये इस का भाव यह है कि दोनों आपस में प्रेमयुक्त रहेंगे। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठें, वर अपने दक्षिण हस्त से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़ कर यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावे फिर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख कर दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें अर्थात् वधू, वर के दक्षिण हाथ को खड़ी रहे। फिर वर यह वाक्य बोले "मा सव्येन" इत्यादि; जिस का भाव यह

है कि आगे दक्षिण पैर से ही चलना अर्थात् एक वार दक्षिण पैर आगे रख फिर वाम पैर को उस के आगे लाकर फिर दूसरी वार दक्षिण पग ही आगे बढ़ाती जावे और इसी तरह सात वार धरे और, "ओम् इष एकपदी भव" इत्यादि एक मन्त्र को बोल वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान* दिशा की ओर एक पग चले और चलावे । "सप्तपदी" शब्द दो अर्थ का यहाँ पर बोधन कराता है एक तो पैर के अर्थ और दूसरे स्थान वा दर्जे के; जैसे कि "परमपदारूढ़" इत्यादि शब्दों में ।

"सप्तपदी" की क्रिया बतला रही है कि गृहस्थाश्रमरूपी मंजिल तक पहुँचने के लिये सात साधनों की आवश्यकता है । यह अलंकार की रीति से वर्णन किया गया है कि गृहस्थाश्रम वह है जिस की सिद्धि के लिये सात पदों अर्थात् साधनों की आवश्यकता है । जब हम कहते हैं कि किसी मकान की छत पर जाने के लिये सीढ़ी की जरूरत है वा मार्ग समाप्त करने के लिये पग से चलकर जाने की ज़रूरत है तो इसका भाव यही होता है कि छत के लिये सीढ़ी और मार्ग चलने के लिये पैर साधन हैं । अतएव सप्तपदी के भावार्थ, पुरुषार्थ युक्त सात साधनों के समझने चाहियें ॥

ऋषियों की महत्ता इस से बढ़ कर और क्या हो सकती है कि जहाँ विवाह के प्रधान अङ्ग में विवाह का उद्देश्य बतलाया वहाँ अन्तिम वा दूसरे प्रधान अङ्ग में उसके सात साधनों का वर्णन करते हुए बतला दिया कि इन से वही युक्त होगा जो दृढ़ता के साथ पुरुषार्थ करेगा वा क़दम बढ़ाते हुए चला जायगा ॥

प्रश्न हो सकता है कि क्यों वाम पग, दक्षिण पग से आगे न बढ़ाया जावे इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि वाम पग आगे बढ़ाया जाता तो वह साधारण चाल हो जाती और उसके चलने में कोई भी सावधानी और दृढ़ता की ज़रूरत नहीं । यह चाल जो उदाहरण की रीति से चलाई गई है इस में सावधानी, पगों की दृढ़ता, नियमपूर्वकता और उतावली न करने का उपदेश भरा पड़ा है । अंग्रेज़ी के विद्वानों ने सफलता का गुर यह कहा है कि जो धीरे २ परन्तु दृढ़ता से काम करता है वह

*उत्तर और पूर्व के मध्य कोण को "ईशान दिशा" कहते हैं ।

सिद्धि को प्राप्त होता है। आज डार्विन सरीखे अनेक विद्वान् इस जगत् को संग्रामालय कह रहे हैं और अनेक विद्वान् पुरुषार्थ से इस संग्राम विजय करने की विधि बतला रहे हैं परन्तु ऋषियों ने गृहस्थाश्रम में किस प्रकार सफलता प्राप्तकरनी चाहिये इसका न केवल मौखिक किन्तु दृष्टान्त द्वारा उपदेश दे दिया। केवल वधू ही नहीं किन्तु वर भी साथ २ चलता है। इसलिये दोनों गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर कभी इस सप्तपदी के महत्त्व को नहीं भूल सकते ॥

प्रश्न हो सकता है कि ईशान दिशा की ओर को यह दृष्टान्तरूपी सात पद क्यों रक्खे जायँ। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि "एन्ड्रोजेक्सन्डेविस" से अनेक महाविद्वान् इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि उत्तर और पूर्व "पोजिटिव" अर्थात् तेज प्रधान दिशा हैं और दक्षिण और पश्चिम "नेगेटिव" अर्थात् तामसी दिशा हैं। उत्तर और पूर्व यद्यपि दोनों सात्त्विक दिशा हैं परन्तु पूर्व में उत्तर की अपेक्षा प्रकट रूप से तेज अधिक है और उत्तर दिशा में गुप्त रूप से तेज वा मकनातीसी शक्ति अधिक है और उत्तर दिशा में ध्रुव तारा भी होता है जो दृढ़ता का स्वरूप है इस लिये ईशान कोण की ओर जाने से यह भाव है कि इन दोनों दिशाओं के गुणों को मिलाकर धारण करो अर्थात् दृढ़ता और प्रेम उत्तर के दृष्टान्त से लो और तेजस्वी होना पूर्व दिशा के दृष्टान्त से लो। वा यों कहो कि गृहस्थ का लक्ष्य दृढ़ता, प्रेम और तेजस्वीपन है।

"सप्तपदी" के पहिले मन्त्रमें बतलाया है कि अन्न सब से प्रथम साधन गृहस्थाश्रम का है बिना अन्न के यह आश्रम चल ही नहीं सकता इसी लिये पुराने समय में अन्नधन से युक्त होने पर विवाह किया करते थे। इसी मन्त्र में दूसरी बात पति यह कह रहा है कि तू मेरी अनुव्रता हो। व्रत शब्द के अर्थ सत्य और धर्मसंयुक्त संकल्प वा उद्देश्यके हैं। पापादि के आचरण का नाम व्रत नहीं है। इस लिये जो लोग यह कहते हैं कि पति की चाहो कितनी ही पाप युक्त आज्ञा क्यों न हो, स्त्री को माननी ही चाहिये वे व्रत शब्द के भाव को समझते ही नहीं। फिर कहा गया है कि सर्व व्यापक परमात्मा तुझे धर्म्म पालन में सहायता करे। फिर दर्शाया गया है कि हम दोनों मिलकर बहुत से पुत्रों को प्राप्त करें।

कितना शोक का विषय है कि प्राचीन शास्त्रों की प्रयोग शैली को न समझ कर लोग जहाँ पुत्रशब्द सन्तान के अर्थ में आता है वहाँ इस के अर्थ केवल लड़के के ही लेकर लड़कियों को सन्तान ही नहीं समझते।

अब प्रश्न यह रह गया कि बहुत सन्तान से क्या तात्पर्य है! इस के उत्तर में हम कहेंगे कि वेद ने दश सन्तान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है परन्तु रोगी सन्तान नहीं किन्तु सुपुत्र-सर्वप्रकार से अच्छी सन्तान। पर इस का यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक मनुष्य दश सन्तान ज़रूर ही उत्पन्न करे। "इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्याम् पुत्राना-धेहि" इत्यादि मन्त्र में जो दस सन्तान तक गृहस्थाश्रम के पचीस वर्षों के अन्दर उत्पन्न करने का उपदेश है उस में दो शर्तें भी वेद ने साथ लगा दी हैं कि सुपुत्र उत्पन्न करने वाली और ऐश्वर्ययुक्त कर। इस लिये प्रत्येक मनुष्य को दस सन्तान उत्पन्न करना भी कठिन है। जापान आदि देशों में चार अथवा पाँच से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करते कारण कि सन्तान को सुपुत्र अर्थात् सुशिक्षित करने के लिये कितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है?।

"इष एकपदी भव" इत्यादि मन्त्र, जिस की हम व्याख्या कर रहे हैं इस में सन्तान बहुत तो माँगी हैं परन्तु उस के साथ शर्त लगा दी है कि वह वृद्ध अवस्था तक जीने वाली हों। इस लिये ऐसी दीर्घजीवी सन्तान बहुत अर्थात् दस तक उत्पन्न करना अति कठिन प्रतीत होता है।

मर जाने वाली, सदा रोगी रहने वाली, विद्या सुशिक्षाहीनसंतान उत्पन्न करना ऋषि लोग अभीष्ट नहीं समझते थे। इस लिये स्त्री और पुरुष के मन पर यह बात लिखी जावे कि कैसी उत्तम और वृद्धावस्था को भोगने वाली सन्तान हम को पैदा करनी है, इस को सात वार दोहराया गया है।

दूसरे मन्त्र में और तो सब बातें वही हैं किन्तु अन्न की रक्षा करने वाले और अन्नको पचाने वाले शारीरिक बलका वर्णन अधिक है। हमारे देशमें अमीर बहुत हैं परन्तु अन्न को पचाने के लिये वा उसकी रक्षा करने के लिये अपने शरीर में बल के होने की ज़रूरत है। काम धन्धा करने—परिश्रम से आनन्द अनुभव करने से [illegible] होती है तथा विषयासक्ति

से बचना भी बल का परम साधन है । तीसरे मन्त्र में बल को नियम में चलाने वाले विज्ञान की आवश्यकता दर्शाई गयी है ।

शारीरिक बल किसी काम का नहीं यदि उस के साथ ज्ञान का बल न हो।

चौथे में सुख की प्राप्ति एक बड़ा भारी लक्ष्य है जिस की ओर यहाँ पर वरवधू की दृष्टि दिलाई गई हैं । पाँचवें सन्तान से युक्त होना और उन को सुशिक्षित बनाना परम कर्तव्य है जिस के लिये धन, बुद्धि और बल की परम आवश्कता है । छठे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार करना जिस से स्वार्थ की वृद्धि हो एक परम कर्तव्य है ।

(७)वें, स्त्री को सखा कहा गया है, जिस का भाव यह है कि वह दोनों एक दूसरे के मित्र हैं । जो लोग स्त्रियों को दासी कहते हैं वे ज़रा इस 'सखे, शब्द पर विचार तो करें । सार यह है कि गृहाश्रम की सिद्धि के यह ७ साधन हैं ।

(१) अन्न, (२) शारीरिक बल (३) ज्ञान (४) सुख (५) सन्तान (६) ऋतुओं के अनुकूल बर्ताव (७) मित्रता ।

प्रश्न हो सकता है कि 'सप्त पदी, की क्रिया में क्यों दोनों अपने दक्षिण पग को पहिले रक्खें और क्यों दक्षिण पग से आगे वामपग न आने पावे ?

इस के उत्तर में हम कहेंगे कि पुरुष तथा स्त्री के शरीर में कई अङ्ग, अधिक कोमलता और कोई साधारण कोमलता व कठोरता युक्त हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में दक्षिणहस्त वा दक्षिणपग, वामहस्त वा वाम पग की अपेक्षा न्यून कोमल हैं । यदि हम वाम पग को कोमलता युक्त कहें तो दक्षिण पग को उस की अपेक्षा—कठोरतायुक्त कहना पड़ेगा ।

कठोरता युक्त अङ्ग का दूसरा नाम दृढ़ अङ्ग है इसी लिये व्यापार में जब 'टप्पी' लगाते हैं वा वचन देते अथवा प्रतिज्ञा करते हैं तो दक्षिण हस्त पर दूसरे के दक्षिण हस्त को स्पर्श कराते हैं जिस का भाव यह होता है कि हम परस्पर दृढ़प्रतिज्ञ रहेंगे हम ने एक बार एक व्यापारी को देखा कि उसने वचन देकर अपना वाम हाथ दूसरे व्यापारी के सामने किया—यह देखते ही दूसरा बोला यदि विचार दृढ़ नहीं रहा तो जाने दो; हाथ देना है तो दक्षिण हाथ दो ।

'सप्तपदी' की क्रिया में पहिले दक्षिण पग उठाना और फिर दक्षिण पग से वाम पग को आगे न बढ़ने देना केवल दृढ़तासूचक है। तथा विवाह संस्कार में अनेक अवसरों पर वर वधू दोनों एक दूसरे के दक्षिण हाथ को पकड़ते हैं, यह भी दृढ़ताबोधन करने के लिये कि हम जो प्रतिज्ञा मुख से कररहे हैं उन प्रतिज्ञाओं को दोनों मिल कर दृढ़ता से पूरा करेंगे।

अमेरिका के योगी तथा विद्वान् "एण्ड्रोजेकसनडेविस" "हार्मोनिया" नामी पुस्तक के पाँचवें भाग में दर्शाते हैं कि पुरुष और स्त्रीरूपी दो शक्तियें ब्रह्माण्ड में बड़े सूर्य से ले कर एक तृण तक न केवल काम कर रही हैं किन्तु अपनी सत्ताका प्रबोधन "दो"† के रूप में करा रही है। दृष्टान्त की रीति पर वह लिखते हैं कि सूर्य को हम पुरुष और पृथ्वी को स्त्री कह सकते हैं फिर यह भी बतलाया है कि मनुष्य शरीर में दक्षिण आँख पुरुष और वाम आँख स्त्री है तथा एक फेफड़ा, एक हाथ, एक पैर, एक भुजा पुरुष शक्ति और दूसरा फेफड़ा इत्यादि स्त्री शक्ति का काम कर रहे हैं। इस से बढ़ कर वह जल का एक अङ्ग जो "आक्सिजन" के नाम से प्रसिद्ध है इसे वह पुरुष और "हाइड्रोजन" को स्त्रीशक्ति बतलाते हैं। और हिन्दुओं के ऋषि ब्रह्मा का नाम दे कर लिखते हैं कि पृथ्वी पर सब से पहिले ब्रह्मा ने संसार को बतलाया कि विश्वव्यापिनी शक्तियें पुरुष और स्त्री दो प्रकार की हैं।

अब हमें यह विचार करना चाहिये कि पुरुष स्त्री के शरीर में जो अङ्ग पुरुषवाचक है, उसमें पुरुषपन अर्थात् कठोरता वा दृढ़ता, दूसरे अङ्ग की अपेक्षा लेशमात्र अधिक होनी चाहिये। इसी लिये विवाह की "सप्तपदी" क्रिया वा "पाणिग्रहण" आदि अवसरों पर दक्षिण पग से चलने और दक्षिण हाथ परस्पर पकड़ने का विधान है जिस से दृढ़ता का भाव प्रकट हो।

मस्तक पर जल के छींटे देना

'सप्तपदी' की क्रिया के पश्चात् वधू वर दोनों गाँठ बाँधे हुए शुभ

† जिन को डेविस साहब "दो" के शब्द से प्रकट करते हैं उन को हमारे विचार में शास्त्रकार "अश्विनी" का नाम देते हैं। प्रश्न उपनिषद् में इन को "प्राण" और "रयि" का नाम दिया है।

आसन पर बैठें। गाँठ बांधे हुए बैठना यह बतलाता है कि उन्होंने प्रतिज्ञाएँ मिल कर पालन करने का व्रत धारण कर लिया है। गाँठ मिलाप का चिन्ह है, प्रेम और सहानुभूति का बोधक है, मित्रता का लक्षण है। तत्पश्चात् जो पुरुष दक्षिण ओर में जल लिये हुए बैठा था वह पहिले से स्थापन किये हुए जलकुम्भ को लेकर वधू वर के समीप आवे और उस में से थोड़ा सा जल लेकर वधू वर के मस्तक पर छींटे देवे और वर इस समय "ओं आपो हि०" इत्यादि चार मन्त्रों को, जो जल को शान्ति दायक बता रहे हैं बोले। इस क्रिया का भाव आधिभौतिक अंश में तो माथे को ठंडक पहुँचाना है। इतनी देर तक बैठे रहने और यज्ञकृत्य करने से माथा कुछ गरम होकर थकावट पैदा करता है और माथे की थकावट को उतारने के लिये मुखधोना अथवा माथेपर पानी का छींटा मार लेना भी ठीक है। आध्यात्मिक भाव इस क्रिया का यह है कि गृहस्थाश्रम में दोनों अपने विचारों को शान्त रख सर्वहित में लगाये रक्खें। और सब से बढ़ कर यह बात है कि उन्होंने जो अपनी गाँठ बांधी है वह मित्रतारूपी गाँठ तभी बँधी रह सकती है, जब वह अपने विचारो में शान्त रहें और सहनशीलता धारण करते हुए परस्पर कल्याण करते रहें अर्थात् मित्रता स्थिर रखने के दो साधन इन चार मन्त्रों में शान्ति रखना और कल्याण करना बतलाये गये हैं।

सूर्य्यावलोकन

यह विदित रहे कि यह चार मन्त्र "आपो हि ष्ठा०" इत्यादि वर के बोलने के हैं पश्चात् वधू वर वहाँ से उठ कर "तच्चक्षुर्देवहितं" इस मन्त्र को दोनों बोल, सूर्य का अवलोकन करें। जिस का भाव यह है कि वह सूर्यसमान विद्यारूपी तेज से युक्त हों। और नियमपूर्वक कार्यकर्त्ता हों।

यदि गृहस्थाश्रम में वह तेजस्वी हो कर न रहेंगे तो सन्तान आदिकी रक्षा तो दूर रही अपनी भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। जहाँ ऊपर उन को परस्पर व धर्मात्मा पुरुषोंके साथ शान्त रहने का उपदेश किया जाचुका है वहाँ उनको खल पुरुषों के साथ तेजस्वी हो कर रहना चाहिये। जहाँ सर्दी की आवश्यकता है वहाँ सर्दी और जहाँ गर्मी की आवश्यकता है वहाँ गर्मी होनी चाहिये।

हृदयस्पर्श

अब विवाह की सब क्रियाएँ इस क्रिया के साथ समाप्त होती हैं । वह गठजोड़ा जो किया जाचुका है वही विवाह की पुराने आर्यों की रजिष्टरी समझिये । अब इस रजिष्टरी पर ऐसा मसाला लगाना चाहिये कि जिससे वह कागज़ आयु भर न फटे । पृथ्वी भर के बुद्धिमानों ने इस बात को दृढ़रूप से निश्चय किया है कि युद्ध आदि कृत्य तब रुक सक्ते हैं जब मन में संग्राम का बीज पैदा न हो । शिक्षण का यह प्रभाव है कि एक जैनी का लड़का जान बूझ कर एक कीड़े को मारना भी नहीं चाहता—और वह भी एक प्रकार का शिक्षण है कि जिस से पति पत्नी के गृह में रोज जूता चलता रहे । इससे बढ़ कर संसार में कोई भी नरक नहीं हो सक्ता कि पतिपत्नी में कलह और संग्राम ही चलता रहे । स्वर्ग है–वह गृह, जिस में पति पत्नी सच्चे मन में एक दूसरे का हित साधते हैं । अहो ! क्या सुन्दर और भावोत्पादक शब्द हैं जिन में वर वधू परस्पर कह रहे हैं कि हमारे हृदय एक दूसरे के अनुकूल रहें । जब हृदय अनुकूल होंगे तो फिर कलह, क्लेश, कहाँ से उत्पन्न हो सक्ता है ? परस्परानुकूलता, क्लेश रोग की निवृत्ति की परमौषधि है ।

जिस समय कोई भावपूर्ण वाक्य बोला जाता है उस समय स्वाभाविकी मनुष्य की चेष्टा हाथ द्वारा उस भाव को स्थूलरूप से प्रकट करती है । क्या हम नहीं देखते कि लोग जब किसी के शिर की " कसम " खाते हैं तो अपने हाथ वा उँगली से उस के शिर का संकेत करते हैं ? यहाँ भी जहाँ वह एक दूसरे के मन वा हृदय की अनुकूलता दर्शा रहे हैं तो उस भाव को हृदय की ओर हाथ करने से उसी आन्तरिक भाव को बोधन करा रहे हैं ।

"संस्कार विधि" में लिखा है कि वर; "वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ ले जा कर उससे वधू का हृदय स्पर्श करे और "ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि.........."यह मन्त्र बोले । तथा उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी उपरोक्त मन्त्र का उच्चारण करे ।

वर का सभा से वधू केलिये आशीर्वाद का निवेदन

तत्पश्चात् वर, वधू के मस्तक पर हाथ धर के मन्त्र द्वारा यह कहता है कि यह वधू मङ्गल स्वरूप है इस के साथ आप सब मेल रक्खें और इसे मङ्गल दृष्टि से देखें, इसी घर जाने से पहिले सौभाग्य का आशीर्वाद देवें और ईश्वर करे कि आप किसी मङ्गल अवसर पर फिर भी पधारें, पति अपने प्रेम वा आशीर्वाद के भाव को बिना बोले अपना हाथ उस के मस्तक पर रखकर दर्शा रहा है ।

आगे सब लोग आशीर्वाद देते हैं और विवाहसंस्कार की महत्त्वपूर्ण क्रिया समाप्त होती है । इसके पश्चात् "विवाहसंस्कार" की उत्तर क्रिया वा शेष क्रिया आरम्भ होगी ।

उस क्रिया समाप्ति को सूचित करने के लिये आशीर्वाद के पश्चात् स्विष्टकृत् मन्त्र से एक आज्याहुति और " भूरग्नये स्वाहा " इत्यादि चार मन्त्रों से ४ आज्याहुति देवें और इस प्रकार विवाह की विधि पूर्ण होने के पीछे थोड़ा विश्राम करके विवाह की उत्तर विधि करें ।

पूर्व विधि का समय विभाग

पूर्व वा प्रथम विधि के तीन समय विभाग मुख्य कर के होने चाहियें—

(१) वह समय जब कि वर वधू, अपने अपने गृह में स्नान कर वस्त्र धारण करें और ईश्वरस्तुति तथा स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ, अपने २ गृह पर अपने २ पक्षवालों के संमुख करते हैं ।

(२) फिर बरात सहित वर का वधू के गृह में प्रवेश करना और वधू के गृह के अन्दर मधुपर्क आदि सत्कार को प्राप्त होना ।

(३) अन्दर की प्रतिज्ञा के पीछे वधू के गृह से बाहर यज्ञकुण्ड पर आ कर जनमण्डल में प्रतिज्ञा हवन आदि ले कर सप्तपदी, तथा आशीर्वाद तक क्रियाकलाप करना ।

संख्या (१) व (२) के संबन्ध में कोई नियम स्थिर नहीं किया जा सकता । प्रत्येक अपनी सुविधा और अवकाश का विचार कर के कर सकता है । सं० (३) के संबन्ध में हम केवल यही लिख सकते हैं कि इस के करने के तीन समय हो सके हैं, (१) तो प्रातः काल सूर्य्योदय से एक घंटा पीछे से आरम्भ कर दो प्रहर से पूर्व ।

(२) तीन घंटे दिन रहते हुए आरम्भ करके सूर्य्यास्त होने से पूर्व तक। विदित रहे कि सूर्य्यास्त से पूर्व इस लिये कार्य्य पूर्ण हो जाना चाहिये कि सूर्य्यावलोकन की क्रिया भी समाप्त हो सके। और प्रातः काल आरम्भकरके दो प्रहर से पूर्व समाप्त करने पर भी सूर्य्यावलोकन की क्रिया हो सकेगी।

(३) तीसरा समय दो वा ३ घंटे रात रहने से आरम्भ कर सूर्य्योदय तक वा एक घंटा दिन चढ़े तक। इस में भी सूर्य्यावलोकन हो सकेगा। इसमें से जो भी जिस को अनुकूल हो उसमें करे।

उत्तर विधि के आरम्भ होने तक विश्राम

थोड़ा वा बहुत जितना भी विश्राम लेने की ज़रूरत पूर्वविधि की समाप्ति परहो उतना वह अवश्य लें। कई लोग आज कल विश्राम लेते ही नहीं, यह भारी भूल है। लगा तार बैठने से वर वधू, उकता जाते और कभी २ रोगी हो जाते हैं। लघुशङ्का शौच आदि के रोकने से रोगों का भय है। भूख प्यास का रोकना भी ठीक नहीं।

बैठे रहने से शरीर भारी और रोगी हो जाता है। कुछ काल चला फिरी करने से ठीक हो सक्ता है, इत्यादि अनेक कारणों से ऋषियों ने विश्राम की उत्तम मर्य्यादा बाँधी थी, जिस को न समझ कर लोग, वर वधू पुरोहित आदि कार्य्यकर्ता तथा सर्व मित्रों को जो वहाँ पर बैठते हैं बीमार कर देते हैं। अँगरेज़ों में क्या अच्छी बात है कि न्यायालय में कितने ही महत्त्व का काम न्यायाधीश क्यों न कर रहा हो, दो बजे दोप्रहर के पश्चात् कलेवा (छोटी हाजरी वा जलपान) के लिये उठ ही आवेगा।

उत्तरविधि कहाँ पर हो

'संस्कारविधि' में लिखा है कि 'यह उत्तर विधि, सब वधू के घर की ईशान दिशा में……… करनी चाहिये।" गृह्य सूत्रों के पाठ से भी यही विदित होता है कि यह उत्तरविधि, पबलिक वा जनमण्डल के सामने नहीं की जाती।

इस लिये उत्तरविधि को वधू के गृह में ही करना ठीक है!

उत्तरविधि का आरम्भ

उत्तरविधि सूर्य्यास्त के पीछे तारे निकलने पर आरम्भ करनी चाहिये। प्रथम अग्न्याधान, समिदाधान कर

आधारावाज्याहुति ४ और ४ व्याहृति आहुति, सब मिल कर आठ आज्याहुति देवें और "लेखा सन्धिषु" आदि छः मन्त्रों से प्रधान होम करें।

इन मन्त्रों का भाव इन मन्त्रों के अर्थ पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अनेक प्रकार के सूक्ष्म रोगों को जो प्रायः नाना अङ्गों की सन्धियों में सूक्ष्मरूप से रहते हैं वह हवन के धूम द्वारा दूर हो सके हैं यह "पति" दर्शा रहा है।

यद्यपि वर, वधू के संमुख ओधन करके ऐसा कह रहा है। पर अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध होता है कि इस से उसके अपने रोग भी दूर हो सकेंगे॥

सूक्ष्मरूप में रोग लोहू में रहते हैं। लोहू की शुद्धि, प्राणवायु (ओक्सीजन) द्वारा होती है, प्राणवायु की वृद्धि करने और अपानवायु (कारबोनिक) को दूर करने का प्रबल साधन हवनकी गरमी और उसकी सामग्री का सूक्ष्म धूम है।

"रिटर्न टू नेचर" नामी ग्रन्थका कर्त्ता जर्मनी का एक विद्वान् "एडलोफजस्ट" महोदय,* मट्टी मलने और मट्टी के उपयोग से अनेक रोगों को दूर करने का उपदेश दे रहा है। लूईकूनी दूसरा जर्मनी विद्वान् जल के उपयोग द्वारा रोग की निवृत्ति पर जोर दे रहा है। पुराने ऋषि भी मृत्तिका और जल को शुद्धि तथा रोगनिवृत्ति का साधन मानते थे इसी लिये शौच के पश्चात् मृत्तिका से हाथ धोने और रोज स्नान करने का विधान कर गये हैं, पर इस से भी विशेष वह हवन के धूम से उन लोहू के सूक्ष्म रोगों को जो मृत्तिका, जल से भी दूर नहीं हो सकते, वायुद्वारा दूर करते थे और वह उपाय होम ही था। चरक संहिता सूत्रस्थान अ० १, सू० ८५ में स्नेह (घी) को स्नेहन, जीवन, वर्णकारक और बल वर्धक, तथा वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषों को दूर करता लिखा है। प्रायः सब रोग दोषों के बिगड़ने से होते हैं इसलिये घी जलाकर शुद्ध वायु द्वारा, जो होम से उत्पन्न होती है, सूक्ष्म रूप से अन्दर रहने वाले दोषों (रोगों) को हम दूर कर सके हैं। आजकल हवन का प्रचार उठ

*Return to Nature. By Adolf just. (Translated by Benedict Lust.)

जाने से लोग स्वयं इन बातों का अनुभव नहीं करते हैं । यही तो कारण था कि प्राचीन काल में विवाहित स्त्री पुरुष रोज़ हवन किया करते थे । फिर वर वधू ४ व्याहृति आहुति देकर वहाँ से उठकर, सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशामें जावें और वर कहे कि "ध्रुवं पश्य" अर्थात् "ध्रुव को देखिये" ऐसा बोल के ध्रुव का तारा वधू को दिखलावे और वधू, वर से बोले कि "पश्यामि" अर्थात् मैं ध्रुव के तारे को देखती हूँ । ध्रुव का तारा देखने और दिखलाने का क्या प्रयोजन है ! इसका उत्तर "संस्कार विधि" की इस निम्नलिखित टिप्पणी से विदित हो सकता है ।

"हे वधू वा वर ! जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें" इस पर और किसी विशेष व्याख्या की ज़रूरत नहीं ॥

फिर 'ध्रुवमसि' इत्यादि वाक्य से पति कुल में रह कर गृहस्थाश्रम धर्म पालन में अपनी दृढ़ता का बोधन कराती है । इस पर जो टिप्पणी इसी पृष्ठ पर दी गई है उसमें वधू, पति का और अपना नाम उच्चारण करती है जिसका भावार्थ यहहै कि मैं अमुकनामवाली अमुकनामवाले पति की हूँ । जो लोग आजकल कहते हैं कि पुरुष स्त्री को एक दूसरे का नाम कभी लेना नहीं चाहिये वह रामायण के पढ़नेसे इस बात को जान सकते हैं कि सीता जी, रामचन्द्रजी का और रामचन्द्रजी उसका नाम लेते थे । यहाँ पर गोभिल गृह्यसूत्र के कथनानुसार वधू वर का नाम अपने नाम के साथ बराबर ले रही है इस नाम लेने से उस समय बैठे हुए लोगों को उन के नामों का भी पता लग सकेगा ।

फिर वर, वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू देख कर कहे कि देखती हूँ ।

तत्पश्चात् वधू यह कहती है कि जिस प्रकार "अरुन्धती" वसिष्ठ नक्षत्र के नियमत रूप से निकट रहती है वैसे मैं अमुकनामवाली, अमुक नाम वाले आप पति के कुल में नियम बद्ध रहूँगी । वसिष्ठ नक्षत्र के पास और भी छः नक्षत्र हैं और वहसब मिल कर सप्तऋषि कहलाते हैं सप्तऋषि मानों एक परिवार की नाईं हैं, इसी तरह पति के कुल वा परिवार में दृढ़ नियमों से युक्त रहे यह भाव है ॥

ध्रुव के पहिचानने के लिये खगोल के उत्तरीय भाग में सब से अच्छा और सरल साधन सप्त ऋषि मंडल है जिसे अंग्रेज़ी भाषा में Ursa major उर्सा मेजर कहते हैं । यह एक सात ताराओं का समूह ऐसी आकृति का है जिसमें तीन तारे पुच्छ के समान और चार तारे खाट के समान प्रतीत होते हैं । पूँछ का जो अकेला अन्त का तारा है उस के मुकाबले में जो खाट के दो तारे हैं उन को मिलाने वाली रेखा यदि बढ़ाई जावे तो ध्रुव के बीचमें गुजरेगी वा यह कहो कि खाट के यह दो तारे और ध्रुव तारा एक सीध में होंगे । ध्रुव तो अपने स्थान पर निश्चल रहता है, पर यह सात तारे (सप्तऋषि) उसकी परिक्रमा करते रहते हैं । कभी यह ध्रुव के पूर्व, कभी दक्षिण, कभी पश्चिम और कभी उत्तर की ओर को होते हैं । ध्रुव को पहिले पहिल देखने के लिये इन सप्तऋषियों के देखने की ज़रूरत है । जब ध्रुव के अनेक वार देखने का अभ्यास हो जावे तो फिर मनुष्य अन्य समय में भी ध्रुव को पहचान सकता है—

खाट के वह दो तारे जो ध्रुव की सीध में रहते हैं उनमें से जो दूसरे की अपेक्षा ध्रुव के निकट है उसका नाम अत्रि और दूसरे का नाम अङ्गिरा है अङ्गिरा के संमुख के तारे को पुलस्त्य और अत्रि के संमुख के तारे को पुलह कहते हैं । यह खाट के ४ तारों के नाम पूर्ण हुए ।

पूँछ के ३ तारों में सिरे के तारे को, क्रतु बीच वाले को वसिष्ठ और उससे अगले पूँछ के तीसरे तारे को मरीचि कहते हैं ।

वशिष्ठ तारे के निकट एक छोटासा तारा है उसको " अरुन्धती " कहते हैं अरुन्धती तारा वशिष्ठ वा सप्तऋषियों से घनिष्ठ संबन्ध रखता है । इस लिये विवाह में ध्रुव और अरुन्धती की उपमा दी गई है कि वर ध्रुव के समान स्त्रीव्रत पालन में दृढ़ रहे और वधू पतिव्रतपालन में इस प्रकार दृढ़ रहे जैसा कि अरुन्धती, जो कि वसिष्ठ तारे को नहीं छोड़ता । "पश्यामि, तथा ओं अरुन्धत्यसि......" यह वाक्य वधू के बोलने का है । तत्पश्चात् वर, वधू की ओर देखकर वधू के मस्तक पर हाथ धर कर निम्नलिखित होम मन्त्रों को बोले । "ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी" इत्यादि "ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा" इत्यादि; इनका भाव यह है कि सूर्य पृथिवी और सब स्थिर अपने धर्म वा कर्तव्य पालन में ध्रुव (निश्चल) है । जिस

प्रकार पहाड़ अपने स्थान में निश्चल हैं वैसे ही गृहधर्म पालन में मेरी स्त्री मुझ पति के साथ निश्चल हो ॥

हे देवी ! तू ध्रुव (दृढ़मन वाली) है, मैं आप को दृढ़ संकल्प युक्त देखता हूँ आपको परमात्मा समर्पित कर चुका है । मुझ पति के साथ प्रजावती हो कर आप १०० वर्ष तक जीवें ।

विशेष भात का होम

फिर आचमन कर दोनों अग्नि प्रदीप्त करें और घृत तथा स्थालीपाक (भात) से आघारावाज्यभागाहुति ४ और व्याहृति आहुति चार दोनों मिला कर ८ आज्याहुति वर वधू देवें । फिर भात पर घृतसेचन कर घृत और भात को अच्छे प्रकार मिला कर दक्षिण हाथ से थोड़ा २ भात दोनों जने लेकर ४ भात की आहुति दें । फिर एक स्विष्टकृत् आहुति तथा चार व्याहृतियों की आज्याहुति देवें ।

दोनों मिल कर खावें

शेष भात को दक्षिण की ओर रख "अन्नप्राशेन" इत्यादि तीन मन्त्रों का मन में जप कर के, वर उस भात में से पहिले थोड़ा सा खावे और वधू उसी शेष भात में थोड़ा खावे ॥

इन ३ मन्त्रों को मन से जपना इसलिये कहा गया है कि इन ३ मन्त्रों के भाव पर वह विशेष ध्यान दे । इन ३ मन्त्रों में वास्तव में प्रीति के ३ अपूर्व और अत्युत्तम साधन बतलाए गये हैं ॥

[१] पहिले मन्त्र में दर्शाया है कि जिस प्रकार प्राण, अन्न से दृढ़ होते हैं वा मैत्री सम्बन्ध रखते हैं । उसी प्रकार वर वधू का हृदय [प्रेम] और मन आदि केवल सत्य की गाँठ से बँध सकते हैं ॥

लोग संसार में शान्ति और प्रेम की दुहाई मचाने से समझते हैं कि प्रेम बढ़ेगा परन्तु जब तक जीवन में हम सत्य ग्रहण नहीं करें तब तक दूसरे को हम पर विश्वास कैसे हो सकेगा ! इसलिये हमें अविश्वास को, जो प्रेमनाशक है, नष्ट करने के लिये मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य व्यवहार की ज़रूरत है । जहाँ सत्य व्यवहार है वहाँ सत्य व्यवहार करने वालों के हृदय एक दूसरे के हित वा प्रेम को धारण करते हैं ।

सभा वा समाजों के सभासद कोई लकड़ियों के गट्ठे नहीं कि किसी

भौतिक रस्से से बाँधे जावें। एक मात्र उन को प्रेम के मार्ग स्थिर रखने वाली कोई वस्तु है तो वह सत्य का ही व्यवहार है। विना सत्य के, हृदय (Heart) की उन्नति हो नहीं सकती ॥

[२] दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि प्रेम का दूसरा साधन यह है कि हम परस्पर व्यवहार में अपने आत्मा के तुल्य दूसरे के आत्मा को समझें। जो व्यवहार अपने लिये नहीं चाहते वह दूसरे के लिये भी न चाहें अर्थात् अपस्वार्थ को त्याग पूर्णप्रेम वा धर्म का आचरण करें। पहिले मन्त्र में सत्याचरण का उपदेश था। इस में प्रेम वा परोपकार का है। प्रेम के आचरण से पशु पक्षी भी मित्र हो जाते हैं ॥

[३] उक्त दो मन्त्रों में सत्य और प्रेम के आचरण का उपदेश दिया गया उस सत्य और प्रेम को स्थूल रूप में जब तक हम परिणत नहीं करेंगे तब तक वे ख़याली [मानसिक] ही रहेंगे—कर्म में प्रीति दिखाने के लिये ज़रूरी है कि हम सेवा के परम उत्तम भाव को धारण करें अर्थात् अन्न आदि द्वारा एक दूसरे के शरीर की रक्षा करें। अन्न भी भारी साधन प्रीति का है। इसी लिये एकत्र मिलकर खाने की भी क्रिया कराई गई है। सहभोज, मित्रता का भारी कारण है। बिल्ली, कुत्ते, गाय, घोड़े, आदि अनेक प्राणी हमारे पुचकारने तथा अन्न का भाग देने से मित्र हो जाते हैं, इसलिये अन्न के पाश से बँधा हुआ छूट नहीं सकता जिसको "कोमियूनिटी ओफ इन्ट्रेस्ट" अंग्रेज़ी में कहा जाता है यहाँ पर वही "अन्नपाश" है। सत्य ग्रन्थि, प्रेमपाश और अन्नपाश जहाँ हैं वहाँ ही सुख और उन्नति है ॥

युरुप के विद्वान् किसी जनमण्डल की सामाजिक उन्नति के ४ साधन मुख्य करके बतलाते हैं—

[१] धर्म का एक होना [२] परस्पर देशवासियों का मित्रभाव से बर्तना वा दूसरे के सुख दुःख को अपना, सुख दुःख समझना (३) अपने स्वार्थ की सिद्धि, दूसरे के स्वार्थ के अन्तर्गत मानना (४) व्यवहारसाधक एक भाषा का होना; यहाँ पर वर वधू को प्राचीन शब्द शैली में इन ४ महावाक्यों का ही उपदेश इस प्रकार दिया गया है—

[१] "सत्यग्रन्थिना" ऋषि लोग सत्यज्ञान को ही धर्म मानते थे और यह धर्म जहाँ एक देशवासियों को एकता में बाँध सकता है वहाँ

सर्व देश वासी मनुष्यों को भी बाँध सकता है। बिना पूर्णविश्वास के प्रीति का होना असम्भव है। अतः वह सत्यग्रन्थि विश्वास की ग्रन्थि ही है॥

(२) सब देश वासियों के सुख दुःख में अपना सुख दुःख समझ कर सब से मित्र भाव से वर्तना—यह तो ऋषि लोग उपदेश देते ही थे।

(३) परस्पर स्वार्थ का बँधा हुआ होना इसको वह "अन्नपाश" कहते थे॥

सर्व सांसारिक उन्नति, धनप्राप्ति पर है। धन, अन्नप्राप्ति का साधन है—इस लिये अन्नप्राप्ति में सब के स्वार्थ बँधे हुए हैं (४) एक भाषा तो अर्थापत्ति सिद्ध है॥

इस लिये दो वा अनेक व्यक्तियों वा समाज में प्रेम फैलाने के साधन (१) मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य का व्यवहार है (२) अपने आत्मा के समान दूसरे के आत्मा को जानना—हित वा प्रेम का व्यवहार करना है दूसरे में—अपने मित्र में पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखना (३) प्रत्येक का उद्देश्य शरीर रक्षा करने का है और उसका परम साधन अन्नप्राप्ति है। परस्पर—अन्नपाश से एक दूसरे को बाँधना मित्रता है।
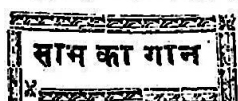
साम का गान

पश्चात् महावामदेव्य गान करें करावें और ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ करें।
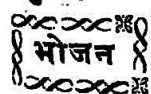
भोजन

फिर वर वधू, जो भोजन खावें वह क्षार—लवण रहित, मिष्ट दुग्ध घृत से युक्त हो। क्षार पदार्थ वीर्य पोषक नहीं हैं, उन्हें गर्भाधान करना है इस लिये ऐसा लिखा गया है।
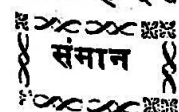
संमान

"संस्कारविधि" में लिखा है कि पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को संमानार्थ उत्तमभोजन करावे, फिर यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर—सत्कार करके विदा कर देवें॥
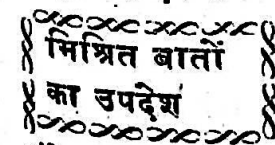
मिश्रित बातों का उपदेश

विवाह की उत्तरविधि समाप्त हुई अब मिश्रित बातों का उपदेश है। प्रथम दशघटिका अर्थात् ३ घंटे २० मिनट रात हो जाने पर बिछौना करके तीन रात्री पर्यन्त ब्रह्म-

चर्यव्रतसहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें जिससे वीर्यपात न होने पावे फिर चौथे दिवस गर्भाधान संस्कार कर रात्रि में गर्भाधान करें फिर दूसरे दिन वर पक्ष वाले वधू और वर को रथ वा गाड़ी में बिठा कर अपने घर लावें। आगे लिखा है कि यदि वधू माता पिता से जुदा होते समय आँख में आँसू भर लावे वा उदासीन प्रतीत हो तो वर "जीवम्" इत्यादि मन्त्र बोले जिस का भाव यह है कि पति स्त्री के लिये कष्ट उठायेगा और उसकी सेवा के लिये सन्तान से उसे युक्त करेगा।

रथ वा गाड़ी में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बिठावे और वर दो मन्त्रों को बोले जिसका भाव यह है कि वह वधू को निश्चय दिलाता है कि मैं पति, तुझ को सुखपूर्वक अपने घर ले जाऊँगा और यह गाड़ी दृढ़ सुन्दर और इसके घोड़े अच्छे हैं।

इस से पाया गया कि वधू को मज़बूत पहियों वाली और सब प्रकार से मज़बूत बनी हुई गाड़ी पर बिठावे।

यदि नौका पर बैठने का अवसर आवे तो उस समय सावधानी के लिये यह मन्त्र बोले "अश्मन्वती०" इत्यादि; और नौका से उतरते समय "अत्राजहाम" यह मन्त्र बोले; यह बात प्रकट करने के लिये कि ईश्वर कृपा से हमने मार्ग काट लिया।

प्रश्न हो सकता है कि गाड़ी पर बैठते समय अथवा नाव पर बैठते वा उतरते समय इन मन्त्रों के बोलने की क्या आवश्यकता है! इसका उत्तर यह है कि इन मन्त्रों का भाव उन २ भाषाओं में आज तक भी सर्वत्र भूगोल के सभ्य लोगों में बोलने में आता है। मार्गयात्रा का आरम्भ करने पर मन को सावधान तथा दृढ़ करने की आवश्यकता है और मार्ग समाप्ति पर मार्ग के कष्ट भूलने की।

मार्ग में चार मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर अथवा किसी भय के स्थान में, जैसे कि लोग प्रायः यह ललकार कर बोला करते हैं कि "ख़बरदार यहाँ पर मत आना, हम ठहरे हुए हैं" इससे बोलने वाले का उत्साह और निर्भयता बढ़ जाती है और चोर आदि ऐसे वीर वचन सुन और समझकर भाग निकलते और पशु पक्षी मनुष्य की वाणी मालूम कर के निकट आने का साहस नहीं करते वैसे ही "मा विदन्" इत्यादि

मन्त्र अपने धैर्य को बढ़ाने और दूसरों को डराने के लिये बोलने का विधान है ।

कोई यह न समझे कि वर वधू केवल दोही मार्गयात्रा कर रहे हैं और तीसरा उनके पास नहीं । चाहे उनके पास २० मनुष्य क्यों न हों तो भी भय के समय में वर पक्ष के किसी पुरुष को चोर आदि से रक्षा के निमित ऐसे २ वचन ही बोलने होंगे । इस के अतिरिक्त रात को आग को जलाये रखना जंगली पशुओं को दूर रखने के लिये काफी है और चोर भी आग जलती देख सहज से निकट नहीं आते । पहरा लगाने वाले भी डंडे की खड़खड़ाहट तथा " खबरदार सोने वालो जागते रहो " इत्यादि शब्द ही चोरों के डराने के लिये हाथ में बत्ती रक्खे हुए किया करते हैं । वीरता के शब्द बोलने वाले के पास चोर नहीं आते, प्रायः यह देखा गया है ।

आगे लिखा है कि "यदि रथ का कोई अङ्ग टूट जाय वा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में अच्छे स्थानपर निवास करें ताकि इतनेमें रथ की मरम्मत होसके और वायु के लिये "विवाहाग्नि" में व्याहृति की आज्याहुति दें, तथा मन की प्रसन्नता के लिये वामदेव्यगान करें"

जब वधू का रथ (बग्घी) पतिगृह के आगे पहुँचे तो कुलीन सौभाग्य वती स्त्रियों में से एक वधू का हाथ पकड़ कर वर के साथ रथसे वधू को नीचे उतारे । यह हाथ पकड़ कर उतारना सन्मानार्थ है । और स्वागत कारिणी मण्डली और जो हो, वह उन्हें सभा में ले जावे उस सभामण्डल के द्वार पर वर, लोगों की ओर दृष्टि करके यह कहे कि 'सुमङ्गलीरियं' इत्यादि; भाव यह है कि यह सुमङ्गली है आप आशीर्वाद दें और वह लोग "ओं सौभाग्यमस्तु" इत्यादि आशीर्वाद दें ।

पश्चात् विश्राम करके हवन करने की तैयारी करें ताकि जो अन्यग्राम वा नगर के लोग वधू के दर्शन करना चाहते हों वे भी देख सकें । जब हवन करने के लिये सभामण्डप में जावें तो प्रथम वर ' इह प्रियं प्रजया ' इत्यादि वाक्य बोल गृहाश्रम धर्म का वर्णन करता हुआ वधू को सभामण्डप में ले जावे फिर वह दोनों पूर्वस्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें, उस समय वरः—

" ओं इह गावः " इत्यादि मन्त्र को, जो धन, गौ आदि की वृद्धि का

बोधक है बोले और पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे, पीठासन का ही नाम कुर्सी है । फिर ३ आचमन करके-१६ आज्याहुतियाँ "ओं इह धृतिः स्वाहा"-इत्यादि मन्त्रों से करें। यह आठ उपयोगी बातें हैं जिन का उपदेश वधू को देने की ज़रूरत है ।

[१] नए गृह में धैर्य से रहना [२] पति के परिवार के साथ मिलाप [३] सुखवृद्धि [४] पतिप्रेम [५] पति के आश्रित जनों से मिलाप [६] पति के पदार्थों का भोग करना [७] पति को सुखदाता समझना [८] पति के साथ सहानुभूति ॥

'फिर आ नः प्रजां' इत्यादि ४ मन्त्रों में विशेष करके उन बातों का उपदेश दिया गया है कि जो माताएँ अपनी कन्याओं को भारतवर्ष तथा जापान आदि बौद्ध देशोंमें दिया करती हैं कि तुझे सासु, श्वशुर ननँद देवर आदि सब का मान करना चाहिये । (१) पूर्व मन्त्र में पति के परिवार के साथ लोगों के अतिरिक्त गाय आदि पशुओं को भी वह मङ्गल रूपहो यह उपदेश है (२) दूसरे मन्त्र में यह उपदेश है कि तू सर्वथा प्रसन्न रहा कर (३) तीसरे में है कि मनुष्य अधिक से अधिक १० सन्तान उत्पन्न कर सकता है २५ वर्ष गृहाश्रम के हैं इन में इस से अधिक सन्तान वह उत्पन्न न करे। साथही सन्तानों को योग्य उत्पन्न करे । इसलिये पूर्ण ऐश्वर्यवान् और पूर्णबलवान् दम्पती जो सुपुत्र बना सकें वही इस आश्रम को प्राप्त करें।

[४] में है कि हे देवी ! तू अपने श्वशुर, सास, ननन्द और देवरों के साथ सम्राज्ञी अर्थात् चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पूर्ण न्यायकारिणी तथा विरोध न करने वाली हो । तेरा घर एक छोटा सा राज्य है । तू इस में राणीसमान है ऐसा बर्ताव कर कि जिस से कभी विरोध न होवे, एकमात्र न्याययुक्त प्रेम से वर्ताव कर ॥

पश्चात् स्विष्टकृत होमाहुति १, व्याहृति आज्याहुति ४, और प्राजापत्या हुति १ । सब मिल कर ६ आज्याहुति दें ।

"समञ्जन्तु" इत्यादि मन्त्र को बोल कर कि हम विद्वानों के समक्ष प्रेम से रहने की प्रतिज्ञा करते हैं, वर वधू दोनों दधिप्राशन करें ।

दधि खानेका भाव यह है कि हम दोनों शान्त रहेंगे । दधि, गरमी, खुश्की को शान्त करता है। इस से भाव यह लेना है कि वैराग्नि को मन की दृढ़ता से शान्त करेंगे ॥

तत्पश्चात् वर वधू दोनों, वर के माता पिता आदि वृद्धों को प्रीति पूर्वक प्रणाम करें। फिर वामदेव्यगान करें और पुरोहित आदि विद्वानों की मण्डली स्वस्तिवाचन करे इस के पीछे सब 'ओं शान्तिः ३' बोलें और सब को सत्कारपूर्वक बिदा करें॥

यह समझना चाहिये कि जब तक यह गर्भाधान क्रिया नहीं करते तब तक उन का मुख्य विवाह नहीं हुआ। प्रतिज्ञा आदि विवाहसंस्कार है सही परन्तु गर्भाधान क्रिया ही वास्तविक विवाह है इस लिये प्रतिज्ञा रूपी क्रिया के पश्चात् गर्भाधान करें॥

(नोट) विवाह संस्कार तथा अन्य संस्कारों में भी केरोसिन व मिट्टी के तेल के लैम्प नहीं जलाने चाहियें नारियलके तेलके लैम्प वा सरसों अथवा तिल के तेल के दीपक काँच की लालटेन में रख कर उपयोग में लाये जा सक्ते हैं। केरोसिन आयल दुर्गन्धयुक्त है और मोमबत्ती चर्बी से बनती है इस लिये यह दोनों ही अशुद्ध हैं अतः आर्यों के उपयोग के लायक नहीं हैं॥

ब्रह्मादेश की स्त्रियाँ ब्रह्मा देश में वधू के पिता के घर विवाह के पीछे उस का पति रहता है; स्त्रियाँ दुकानों का काम करती हैं और पुरुष घर का; वहाँ केवल कन्या के ही जन्म पर मङ्गल मानते हैं; परन्तु भारत वर्ष में इस के विपरीत है इन दोनों में से उचित प्रथा कौनसी है?

(उत्तर) वेद में तथा सप्तपदी के सातवें वाक्य में स्त्री को पुरुष की सखी (मित्र) कहा गया है अर्थात् वह मित्रसमान उस से पूजनीय है और पति मित्रसमान वधू से पूजनीय है। जो बात स्वाभाविक है उसके विरुद्ध चल कर कभी पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हो सक्ता। यह कभी न हुआ और न होगा कि पुरुष गर्भ धारण करें प्रसूत हों और नय ही कभी हो सक्ता है कि सुन्दरता और कोमलता स्त्रियोंसे नष्ट हो कर पुरुषों में आसके। सृष्टिका नियम है कि वृक्ष की मोटी वा बाहर की कठिन छाल उस के अन्दर के कोमल भाग की रक्षा करे। काँटे, खेत के बीच में नहीं लगाये जाते किन्तु बाहर बाड़ के रूप में लगाये जाते हैं ताकि खेत के कोमल अन्न वा फल की रक्षा करें। इस प्राकृत नियमानुकूल पुरुष, जो कि कोमलता प्रधान नहीं

वह 'पति' कहलावे और स्त्री की, जो कोमलताप्रधान वा सुकुमारताकी मूर्ति है—रक्षा करै— अनेक प्रकार की दुकानों वा दफ्तरों का काम स्त्रियाँ अच्छी तरह कर सकती हैं । दक्षिण तथा गुजरात में प्रत्येक ग्राम और नगर में स्त्रियाँ दुकानों का काम उत्तमता से करती हैं और दक्षिणी स्त्रियाँ सज्जितकेश और हर्षयुक्त रहती हैं । लड़का लड़की दोनों के जन्म आदि सब संस्कारों पर समान उत्सव मनाना चाहिये , क्या यहाँ नौकर अर्थात् शूद्र वर्ण के पुरुष घर का काम नहीं करते ? क्या वे बच्चे नहीं खिलाते ! पर सब देश के पुरुषों को घर के काम पर लगा देना चार वर्णों की व्यवस्था में बाधा डालना है । घर का काम स्त्रियाँ भी कर सक्ती है; और अत्युत्तम रीति से कर सकती हैं इस लिये उन्हें घर का काम भी करना चाहिये । विवाह के पश्चात् जो पति अर्थात् रक्षक बना है उसका धर्म होना चाहिये कि वह उसकी रक्षा स्वयं धन कमा कर करै, न कि आलसी बन कर के पिता के घर में जा बैठे । निस्सन्देह पत्नी का पति गृह में आना ही ठीक है क्यों कि पति का धर्म, धन आदि से उसकी रक्षा करना है ॥

यदि आज कल उत्तरहिन्द में मुसलमानी संस्कारों के कारण हिन्दू लोग भी स्त्रियों को कहीं २ पर्दे में रखते हैं और उनके अधिकार नहीं देते तो घोर अन्याय करते हैं पर ब्रह्मा में पुरुषों पर घोर अन्याय उस देश का स्त्रीमण्डल सृष्टिक्रम के विरुद्ध चलने से कर रहा है और इस का फल वहाँ पर यह हुआ कि वहाँ क्षत्रिय वर्ण ही नष्ट हो चला है । प्रश्न यह है कि और सब काम तो स्त्रियाँ पुरुषों के समान करभी लें पर रणक्षेत्र में जाकर पुरुषों के समान जनमण्डल की रक्षा का भारी काम क्या वे कभी उत्तमता से कर सक्ती हैं ? ब्रह्मा में स्त्रियाँ सब कुछ करती हैं पर सेना में स्त्रियाँ वहाँभी भरती नहीं होतीं ! इस लिये वहाँ की सेना में जो पुरुष भरती होते हैं वह पूर्ण पुरुष से कदापि शूर वीर नहीं हो सक्ते कारण कि वहाँ पुरुषशक्ति नष्ट करने की सतत चेष्टा की जा रही है ।

वही प्रजा सच्ची उन्नति कर सक्ती है जहाँ पर पुरुषों को पूर्ण पौरुषयुक्त और स्त्रियों को वास्तविक 'स्त्री' बनाया जाता है और प्रत्येक से वे कर्म कराये जाते हैं जिन के लिये प्रकृति ने उन्हें अधिकयोग्य

बनाया है अर्थात् कठिन, कठोर और रक्षासम्बन्धी काम पुरुष अपना अहोभाग्य समझ कर करैं और घर का काम, शिशुपालन अनेक प्रकारकी दूकानों और दफ़्तरों के मृदुकार्य्य स्त्रीवर्ग करैं । इस लिये पुराने ऋषियों ने जो मर्य्यादा बाँधी थी वह सृष्टिक्रमानुकूल होने से ठीक है । जो अधिकार ब्रह्मा देश की स्त्रियों को प्राप्त हैं वहाँ अधिकार दक्षिण वा महाराष्ट्र देश में भी आर्यस्त्रियों को प्राप्त हैं परन्तु भेद यह है कि ब्रह्मा में पुरुषों का पुरुषत्व नष्ट किया जा रहा है जब कि महाराष्ट्र देश में पुरुषों का पौरुष और स्त्रियों का स्त्रीत्व नष्ट नहीं किया जा रहा किन्तु उन्नत किया जा रहा है । यदि विद्याभ्यास महाराष्ट्र में प्रत्येक कन्या करै और बाल और वृद्ध—विवाह की प्रथायें और भ्रम दूर किये जावें तो महाराष्ट्र की स्त्रियाँ और पुरुष, और भी उत्तम बन सकें ।

वेद में स्त्री के अधिकारविषय में लिखा है कि पति, पत्नी से कहता है कि 'सम्राज्ञी भव' । यह मन्त्र ऊपर भी विवाह संस्कार में आचुका है इस का अभिप्राय यह है कि—

जो उत्तम पुरुष अपने पूर्णअधिकारों से युक्त हो और जिसके अधिकारों को सहज से कोई दबा न सकै तथा जो अपने न्याययुक्त अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ हो वह पुण्यवान् पुरुष राजा है और जो अपने परोपकार युक्त पुण्यकर्मों तथा अत्युत्तम सदाचार, न्याय आदि महाव्रतरूपी गुणों के कारण अनेक राजाओं के ऊपर मुख्य राजा है तथा उन अनेक राजाओं को जो उनके अधिकारों के रक्षा करने में सहायता देवे या दे सके वह चक्रवर्ती सम्राट् कहलाता है वा यों कहो कि राजा के कुछ अधिकार यदि कोई दबा सक्ता है तो वह चक्रवर्ती सम्राट् ही दबा सक्ता है परन्तु चक्रवर्ती सम्राट् के अधिकारों को कोई भी नहीं दबा सक्ता । ऐसेही गुणों से युक्त जो स्त्री होगी वहीं "सम्राज्ञी" कहलावेगी अर्थात् जिसके स्त्रीपन, सुखभोग, मान आदि के अधिकारों को कोई भी न दबा सके । प्रत्येक वधू को वेद ने पतिकुल में रहने पर "सम्राज्ञी" कहा है । इस का भाव यह है कि पृथिवी पर कोई भी व्यक्ति किसी भी स्त्री के किसी भी अधिकार को कभी न दबा सके । जिस प्रकार श्रेष्ठ मनुष्य या श्रेष्ठ पशु 'अघ्न्य, कहलाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक कन्या विवाहित

होने और पतिकुल में जाने पर "सम्राज्ञी" पदवी धारण करती है अर्थात् सब समझ लें कि स्त्री के स्त्रीपन, सुखभोग, और मान आदि अधिकारों का कोई भी न दबा सकेगा ।

युरुप और अमरीका के वह धर्मशास्त्री, जो आज स्त्रियों को "मान देना" सभ्यता का एक लक्षण मान रहे हैं वह इन उच्च भावपूर्ण शब्दों पर ज़रा विचार करें कि वेद ने स्त्री को कहाँ तक सच्ची और पूर्ण स्वतन्त्रता और अधिकार देने का उपदेश किया है । दासी और "सम्राज्ञी" में दिन रात का अन्तर है । उक्तशब्द दर्शा रहे हैं कि पतिकुल में कोई भी वधू के किसी अधिकार को दबाने की चेष्टा स्वप्न में भी न करे किन्तु उसे कुल में "सम्राज्ञी" समझे । आर्यों के मानव धर्मशास्त्र में इसी लिये लिखा है कि—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः ।
तथा पूजार्हा गृहदीप्तयः ।

अर्थात् जिस कुल में वा देश में स्त्रियों का यथार्थ संमान होता है वहाँ धर्मात्मा और विद्वान् पुरुष वास करते हैं तथा स्त्री, पूजा और स्तुति के योग्य है वह घर का दीपक है । क्या कोई मनुष्य घर के दीपक को बुझाकर उस घर में आनन्द से रात के समय काम काज कर सक्ता है ? कदापि नहीं । इसलिये घर के दीपक की रक्षा करना ही धर्म है ।

आज Eugenics (यूजेनिक्स) शास्त्र के वेत्ता कहते हैं कि दूषित कुलों को त्याग कर परस्पर उन्नत गुण वाले दम्पती का विवाह करने से जनमण्डल का सुधार उत्तम सन्तान पैदा होने के रूप में होगा—यह सूक्ष्म विचार वैदिक ऋषियों को भली भाँति विदित था इसीलिये धर्मशास्त्र में मनु जी कहते हैं कि " तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियो रक्षेत् प्रयत्नतः" अर्थात् प्रजाविशुद्धि के लिये—उत्तम शुद्ध सन्तान उत्पन्न करने के लिये स्त्रियों की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये स्त्री को आर्यों ने देवी, सम्राज्ञी प्रजाविशुद्धिकर्त्री, गृहदीप्ति, पूजार्हा तथा स्तुति के योग्य माना है । प्रत्येक आर्य्य सैनिक, स्त्री जाति के ऊपर हथियार उठाना वा उसे दबाना पाप समझता था ।

जिस देश में स्त्रियाँ सम्राज्ञीवत् अपने अधिकारों से युक्त हैं परन्तु उन

के सम्राज्ञी होने पर वहाँ के पुरुष उनके सखा वा मित्र नहीं रहे किन्तु दास बन रहे हैं वैदिक मर्य्यादा और उपदेश की उत्तमता देखो कि जहाँ वधू, पति को मित्रसमान पूज्य समझे वहाँ पति और उसके कुल का कोई भी जन, पत्नी के किसी भी अधिकार को दबाने की चेष्टा न करता हुआ उसे सम्राज्ञी माने। नारीपूजन की सचमुच अवधि हो गई।

"सम्राज्ञी" के यौगिक अर्थ हैं कि जो सम्यक्रीति से प्रकाशमान हो। सूर्य वा दीपक को जब ही सम्यक् रीति से प्रकाशमान कह सक्ते हैं कि जब उसके प्रकाश को कोई न दबा सके। चक्रवर्ती राज्ञी को इसीलिये सम्राज्ञी कहते हैं कि उस के सम्बन्धी अधिकार, उस प्रकाश की नाईं रहैं जिन्हें कोई न दबा सके।

क्या "संस्कार विधि" के अतिरिक्त कोई बात विवाह में नहीं करनी चाहिये?

बहुत लोग ऐसी बात कहते हैं कि "संस्कार विधि" में जब वर, वधू के गृह को आता है तो उस के साथ किस प्रकार का बाजा बजता हो ऐसा लेख कोई नहीं है और इस लिये क्या विना बाजों के ही विवाह संस्कार करना चाहिये? इस के उत्तर में हम कहेंगे कि कहाँ तक "संस्कार विधि" में लेख लिखे जाते! ऐसी २ अनेक बातें लोग अपनी द्रव्य अवस्था आदि का विचार करके कर सक्ते हैं। जब स्वस्ति-वाचन और शान्तिकरण के पाठ के साथ सहावामदेव्य गान होता है तो उस गान के साथ यदि गुणीजन वादित्र (बाजे), तानपूरा (तंबूरा), स्वरा-ङ्गी (सारंगी), नारदवीणा आदि बजावें तो बहुत उचित है। बरात के सा-थ बाजे बजाने वेद विरुद्ध कर्म नहीं। इस लिये प्रत्येक गृहस्थ अपनी द्रव्य-शक्ति का चिन्तन कर के यह काम कर सक्ता है। कई लोग पूछा करते हैं कि वर को घोड़ी पर बैठाया जावे वा नहीं! घोड़ी, घोड़े की अपेक्षा सुशील होती है इस लिये उसपर बैठाना अधिक अच्छा है, पर जब ऐसा घोड़ा हो कि जिस की सवारी, वर पहिले करता रहा हो और उस के स्व-भाव से विज्ञ हो कि उपद्रव नहीं करेगा तो उस दशा में घोड़े पर बैठे जहाँ पालकी वा गाड़ी में बैठने की प्रथा है वहाँ उसीमें बैठे। जिसका जी चाहे वह घोड़े, हाथी, ऊँट आदि पर बैठे—यह कामचार (अख्त्यारी) बात है। कई कहते हैं कि वरको चाँदी का मुकुट धारण कराया जावे वा नहीं?

चाँदी वा सोने का मुकुट उन को ही धारण करना चाहिये जिनके पास इतना धन है कि वह अपना चान्दी का मुकुट बनवा सकें । दूसरे के गृह से चाँदीका मुकुट माँगकर धारण करना वा कराने की प्रथा दम्भकी वृद्धि कारक है उसका रोकना ही ठीक है । हाँ जिस के माता पिता वा वर स्वयं चाँदी वा सोने का मुकुट बनवा सकें तो उस के धारण करने में कुछ दोष नहीं । आजकल मुकुटों पर कल्पित देवताओं की तसवीरें काढ़ी होती हैं उन कल्पित तसवीरों के स्थान में सुन्दर फूल वा बेल बूँटे होने चाहियें । कई कहा करते हैं कि जब वर घोड़ी पर बैठे तो क्या उस के शिर पर कागज़ों का बड़ा छत्र (सरगश्त) जैसा कि पंजाब में धारण किया जाता है, करना चाहिये वा नहीं ! यह भी कामचार की बात है, कागज़ों कपड़ों, पत्तों आदि के छत्र, जो भी धारण करना चाहे करे । पर उस छत्र पर जो कल्पित देवताओं के चित्र अङ्कित होते हैं उनके स्थान में फूल वा बेल बूटे होने चाहियें ।

विवाह वाले गृह में ढोलक के साथ स्त्रियाँ गीत गावें वा नहीं ! (उत्तर) जब संस्कार की क्रिया हो रही है तो उस समय किसी भी गीत की ज़रूरत नहीं । उस से पहिले वा पीछे वा उन दिनों में विवाह संस्कार के समय को छोड़ कर पुरुष वा स्त्रियाँ भले ही गीत गावें ।

यह जरूरी है कि गीत असभ्य न हों ॥

[प्रश्न] विवाह संस्कारके समय लैक्चर कराने की ज़रूरत है वा नहीं ? [उत्तर] "विवाह संस्कार" की क्रिया के मध्य में वा उसके साथ २ लैक्चरों का कराना विवाह के मन्त्रों की महिमा को घटाना है । हाँ, संस्कृत वाक्यों के अर्थ वा भावार्थ सरलता से थोड़े ही काल के अन्दर जनमण्डल को, जब कि वह संस्कृत नहीं समझते हों तो समझाना उपयोगी है ।

विवाह संस्कार के समय के अन्दर, माता, पिता, गुरु मित्र, सुवक्ता, पुरोहित आदि किसी का भी स्वतन्त्र लैकचर नहीं होना चाहिये । वर, वधू के लैक्चर क्या थोड़े हैं-जो बाहर के और लैकचर संस्कार के अन्दर कराए जावें ? यदि संस्कार के अन्दर लैकचर हों गे तो "विवाह पद्धति" और "संस्कार विधि" के स्थान में एक "लैकचरपद्धति" बनाने की ज़रूरत पड़ेगी । संस्कार की क्रिया के समय मनोरञ्जक लैक्चरों का कराना शास्त्रों से श्रद्धा को हटा कर लैक्चरों पर श्रद्धा जमाना है और इसका

परिणाम अच्छा नहीं । संस्कार की क्रिया के समस्त मन्त्रों के अर्थ पढ़ने व उन का भावार्थ कुछ थोड़ी सी व्याख्यारूप में कहने के लिये किसी भी बाहर के सुवक्ता (मनोरंजक लैक्चरार) की ज़रूरत नहीं । पुरोहित जो यह कृत्य कराता है यह काम उसको ही करना चाहिये । पुरोहित उस को ही समझना चाहिये जिस के स्वरूप का वर्णन संस्कारविधि में किया गया है ।

[प्र०] संस्कार के पूर्व वा पीछे अवकाश के समय में लैक्चर कराये जावें वा नहीं । (उ०) क्या कहीं संस्कारविधि में लिखा है कि विवाह की पूर्ति नहीं होगी जब तक कि उससे पूर्व वा पीछे, किसी वक्ता का लैक्चर न कराया जावे ?

यह प्रश्न 'विवाह संस्कार' के महत्त्व को न जानने से लोग करते हैं यदि ये सोचें कि सौ लैक्चरों से भी बढ़कर एक संस्कार है तो इस प्रश्न को क्यों करें ? विवाह संस्कार से पूर्व वा पीछे किसी भी लैक्चर की ज़रूरत नहीं ।

(प्र०) क्या जब वर, वधू अपने २ गृह में स्नान कर के नये वस्त्र धारण करते हैं तो उस समय उन को फूलमालाएँ पहनानी चाहियें वा नहीं (उत्तर) यह कामचार की बात है, देश और शिष्टाचार की बात है । सत्कार के अवसरों पर गृह्यसूत्रों व स्मृति आदिकों में पुष्पमाला धारण करने का वर्णन मिलता है । इस लिये जिस की जैसी इच्छा हो वैसा करे ।

(प्र०) क्या वर वधू के कपड़े किसी विशेष फेशन (ढंग) के हों (उत्तर) कपड़ों का जो उद्देश्य है वह पूर्ण होना चाहिये, जिस फेशन में अधिक लाभ और थोड़ा व्यय हो वही उत्तम फेशन होगा । देश, काल और जिस प्रान्त में हम रहते हैं उस के शिष्टाचार को भी विचार कर यह काम करना चाहिये । दक्षिण देश व गुजरात में यदि कोई पुरुष दाढ़ी न मुंडवावे तो उस को मुसलमान समझते हैं । दक्षिण में पुरुष भी विशेष कर सदैव धोती पहिनते हैं और यदि कोई आर्य्य वा हिन्दू, पंजाब का पाजामा वा सुरवाड पहिन कर वहां जावे तो वह उस को पठान कहेंगे । इस लिये इन बातों को अपने सोच विचार से निर्णय कर लेना ठीक है ।

जो व्यापक नियम वेदों ने दर्शाए हैं उनकी बाधक ये बातें नहीं हैं। धोती बांधो वा पाजामा पहनो, इन दोनोंके करने से वेद का विरोध नहीं। पर दक्षिण में रह कर धोती बाँधना ही अधिक अनुकूल है वा पाजामा पहिनना! यह प्रत्येक का अनुभव वा विचार स्वयं ही बतला सक्ता है॥

(प्र०) कई पुरुष विवाह संस्कार के समय शास्त्रार्थ वा विशेष धर्म प्रचार करने के हेतु, उपदेशक मंडली बुलाते हैं। क्या ऐसा करना चाहिये? (उत्तर) नहीं। कारण कि आर्यों के संस्कारों से बढ़ कर कोई भी उपदेशक मंडली प्रभाव नहीं डाल सक्ती। पुराने समय में इन संस्कारों को यज्ञ समझ उनकी सफलता के लिये यत्न किया जाता था। (प्र०) क्या पुरोहित आदि को दक्षिणा देनी चाहिये वा नहीं (उत्तर) इसका उत्तर संस्कार विधि में दिया हुआ है। अवश्य शक्ति के अनुसार और मानपूर्वक देनी चाहिये।

(प्र०) क्या लड़की को वस्त्र अलंकार के अतिरिक्त बरतन खाट आदि भी देने चाहियें! (उत्तर) मनु जी ने ब्राह्म विवाह में जो लिखा है कि कन्या को वस्त्र व अलंकार से युक्त देना चाहिये उस का भाव यही है कि यथाशक्ति यह काम करना चाहिये। यदि कोई खाट और बर्तन दे सकता है तो भले ही देवे परन्तु किसी दशा में भी ऋण उठाकर यह काम नहीं करने चाहियें क्योंकि ऋणी पिता सन्तान का शत्रु होता है।

(प्र०) क्या गानमण्डली बुलानी चाहियें वा नहीं? (उत्तर) यह कामचार की बात है गान तो विवाह से शुभ अवसरों पर ज़रूर होता ही है। यदि द्रव्य शक्ति हो तो अपने ग्राम वा अन्य ग्राम, वा स्वनगर वा अन्यनगर से गानमंडली बुला सक्ते हैं। पर वह असभ्यगीत न गावे, यह खूबध्यान रहेकि वेश्याओं को कभी भी बुलाना नहीं चाहिये॥

(प्रश्न) क्या ४ फेरों के समय स्त्रियाँ भी साथ २ अपने गीत गावें?

(उत्तर) उनके गीत गाने की ज़रूरत नहीं। और उन के गाने से जो मन्त्रों का अत्युत्तम प्रभाव बढ़ाना है, उस से हट कर मनकी वृत्ति, उन के रञ्जक गान वा शब्दों में खचित हो जावे गी। इस के अतिरिक्त समय भी अधिक हो जावेगा। यह प्रश्न भी मन्त्रों के अर्थों के प्रभाव को न समझने से लोग करते हैं। जब "लाटसाहब" कूच कर रहे हों तो

उस के साथ २ किसी उत्तम गाने वालेको खड़ा कर देना वा गाने की आज्ञा देना क्या उचित हो सकता है, कदापि नहीं । लाटसाहब के शब्द यद्यपि रागी के शब्दों की अपेक्षा रञ्जक न भी हों तो भी सारगर्भित, भावपूर्ण होने से सब मनोरञ्जक गानों की अपेक्षा अधिक आदरणीय हैं । इसी प्रकार शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण सारगर्भित शब्दों की ओर लोगों की दृष्टि लेजाने के लिये ज़रूरी है कि ऐसे समय में और कोई भी गान न करें और न समाचारपत्रों को पुरुष बांचें । प्रत्युत सब एकाग्रचित्त हो कर मन्त्रों को सुनें ॥

॥ इति विवाह प्रकरण व्याख्या ॥

विवाह प्रकरण का अन्तिम परिशिष्ट भाग—

बलिवैश्वदेव सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

विवाह के अन्तर्गत जो 'गृहाश्रमप्रकरण' संस्कार विधि में दिया गया है उस में "बलिवैश्वदेवविधि" लिखी गई है, उसका लेख 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में यद्यपि मन्त्रों के रूप के समान मिलता है तथापि आहुति रखने का क्रम उतना विवरणसहित नहीं जितना कि संस्कार विधि में दृष्टिगोचर होता है । 'पञ्चमहायज्ञविधि' में तो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के समान ही समझिये ।

"सत्यार्थप्रकाश" के चौथे समुल्लास में जो कुछ इस सम्बन्ध में लिखा गया है उसका भाव यह है कि भोजन बनने पर खट्टा लवणान्न और क्षार पदार्थ को छोड़ कर घृत मिष्ट युक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलगधर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग करे । फिर मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ८४ का प्रमाण दिया है जिस का भावार्थ यह दिया गया है कि जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्यगुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से नित्य विधिपूर्वक होम करे, "ओम् अग्नये स्वाहा, इत्यादि ।

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ वार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख कर पूर्व दिशा आदि में क्रमानुसार—यथाक्रम इन मन्त्रों से भात रक्खे 'ओं सानुगाय इन्द्राय नमः' इत्यादि । इन भागोंको किसी अतिथिको दे देवे अथवा अग्निमें छोड़ देवे ॥

इस के अनन्तर दाल, भात, शाक, रोटी आदि लवणान्न लेकर छः

भाग भूमि में धरे। इस के आगे मनुस्मृति का श्लोक प्रमाण की रीति से दिया है परन्तु (१) श्वभ्यो नमः (२) पतितेभ्यो नमः (३) श्वपग्भ्यो नमः (४) पापरोगिभ्यो नमः (५) वायसेभ्यो नमः (६) कृमिभ्यो नमः ये वाक्य "संस्कार विधि" में नहीं दिये गये ॥

सत्यार्थ प्रकाश में "नमः" शब्द का अर्थ अन्न दर्शाया गया है अर्थात् कुत्ते, पापी, चाण्डाल, पापरोगी, कौवे और कृमि [चींटी आदि] को अन्न देना। इस के आगे लिखा गया है कि इस हवन करने का प्रयोजन 'पाकशालास्थवायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात, अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार करना है'

'संस्कार विधि' को पढ़ने वाले जानते हैं कि 'ओं सानुगायेन्द्राय नमः' इस से पूर्व दिशा में भाग धरना आरम्भ होता है और पूर्व के पीछे, दक्षिण, फिर पश्चिम फिर उत्तर दिशा का वर्णन आता है।

इसके पीछे 'ओं मरुद्भ्यो नमः' इससे द्वार "ओमद्भ्यो नमः' इससे जल 'ओं वनस्पतिभ्यो नमः' इससे मुसल और ऊखल फिर ईशान, नैर्ऋत्य, मध्य, ऊपर, पृष्ठ और दक्षिण में भाग धरने का वर्णन आता है।

प्रश्न यह होता है कि सत्यार्थप्रकाश में तो संक्षेप रूप से लिखा गया कि पत्तल पर पूर्व दिशा से आरम्भ कर के भाग रखते जाओ और "संस्कार विधि" में कुछ अनोखा प्रकार है, इस में ठीक कौनसा है? हम इसके उत्तर में कहेंगे कि ठीक दोनों हैं। "सत्यार्थप्रकाश" में जो लेख है वह संक्षिप्त रूप से है, संस्कारविधि में जो लेख है वह उस की अपेक्षा विस्तार रूप से है।

इन वाक्यों के दो २ अर्थ हैं, एक तो ईश्वर के गुणों के सूचक दूसरे; जैसे कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के भाषा लेख तथा 'पञ्चमहायज्ञविधि' के भाषालेख से भी पाया जाता है—विशेष गुणवाले मनुष्यों वा पदार्थों के बोधक। 'नागरिक के धर्म क्या हैं!' इसको सिखाने के लिये अनेक उपयोगी पुस्तकें बनचुकी हैं जिनमें बालकों को शिक्षण दिया जाता है कि राजा वा शासकवर्ग को कर देना प्रजाका कर्तव्य है और सुप्रबन्ध के लिये ज़रूरी है। पुराने समय में ऋषि लोग 'बलि वैश्वदेव कर्म' द्वारा सब देव कोटि के मनुष्यों से लेकर अधम से अधम कीट पर्य्यन्त को बलि [अन्नभाग] देना अपना नागरिकधर्म समझाते थे।

सब दिशाओं में तेजस्विनी दिशा पूर्व है, इसी प्रकार सब वर्णों में राजवर्ग वा क्षत्रियवर्ण तेजस्वी है । उस के लिये भाग रखना मन में उन को बतला रहा है कि हम राजकर को अपनी प्रसन्नता से देवें । छोटासा अन्न का भाग राजा के पास कर का काम नहीं दे सकता परन्तु उस भाग को होमाग्नि में आहुत करने से प्रतीत होता था कि वह भाग हवन की अग्नि वा अतिथि के मुख में डालते हुए वह राजा के लिये "प्रजा का क्या कर्त्तव्य है" इस महत् सूत्र को मन पर उसका आदर करते हुए अङ्कित करते थे । पूर्व के पीछे दूसरी दिशा दक्षिण आती है । राजा वा शासक के पीछे फिर यम वा न्यायाधीश लोग हैं जो प्रजा के दुष्ट पुरुषों को न्याययुक्त दण्ड देने से उनका सुधार करते और श्रेष्ठों की रक्षा करते हैं । फिर सदाचारी विद्वान् वा वरुण लोग हैं जो सभा आदि में धर्मशास्त्र [क़ानून] आदि निर्माण करने से जनमण्डल का कल्याण करते हैं । फिर शान्ति आदि गुणों से युक्त अध्यापक तथा उपदेशक लोग हैं जो शान्त रह कर विद्या धर्म का प्रचार करते हैं । जिस प्रकार चार दिशाएँ समस्त पृथिवी को वश में रखती हैं उसी प्रकार राजा, न्यायाधीश, धर्मशास्त्री और अध्यापक तथा उपदेशक समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं । इन को बलि [भाग] देना प्रत्येक नागरिक का धर्म है ।

"ओं मरुद्भ्यो नमः" यह कहकर दर्शाता है कि वायु बड़ी दिव्यगुणयुक्त और लाभकारी है । ऐसी उपयोगी वायु को गृह में लाने का साधन द्वार है । आज युरुप के विद्वान् "घरों में द्वार ज़रूर होने चाहियें" इस पर कितना ज़ोर दे रहे हैं । "विन्डो" शब्द "पवनद्वार" का निःसंदेह अपभ्रंश है । गृहस्थी जब वायु की हवनद्वारा शुद्धि के लिये भाग रखता था तो उस के साथ 'वायु गृहमें कहाँ से आसक्ती है ?' इस महामन्त्र को न भूले इस लिये पत्तल की उस दिशा में भाग रखने की सूचना दी गई थी जिस में अपनी पाकशाला का, जिस में बैठकर ये आहुतियाँ दीजाती हैं द्वार

होता था । कल्पना करो कि पहिला भाग पत्तलकी पूर्व दिशा में पू० के सामने नं० (१) के रूप में रक्खा दूसरा दक्षिण दिशा में तीसरा और चौथा पश्चिम और उत्तर में । अब पाँचवा भाग जो वायु संबन्धी है वह पाकशाला के द्वार की दिशा में रखना होगा यदि पाकशाला का द्वार पूर्वको हो तौ यह भाग नं० ५ पत्तल की पूर्व दिशा में रक्खा जायगा ।
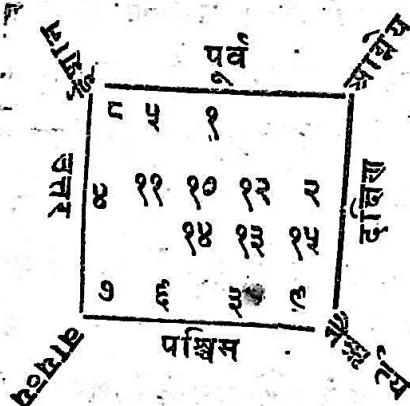
जल का महत्त्व कोई भूल न जावे और ग्राम के कूप तालाब आदि की रक्षा करनी प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और उस के निमित्त पंचायत वा म्यूनिसिपलटी को बलि [भाग] देना प्रत्येक का धर्म है इस बात को चिन्तन करते हुए वह पत्तल की उस दिशा में यह छठा भाग रक्खे जिस दिशा में कि पाकशाला में पीने का स्वच्छ जल रक्खा हुआ है । कल्पना करो कि यह जल पश्चिम की दिशा में है तो नं० [६] का भाग पत्तल पर पश्चिम दिशा में रक्खा जा सक्ता है।

फिर वनस्पति का महत्त्व चिन्तन करना है और मुसल ऊखल, जो अन्न को खाने योग्य बनाने के प्रथम साधन हैं उन पर विचार करते हुए वह [७]नं० के भाग को पत्तल के उस स्थान पर रक्खे जिस दिशा में गृह में मुसल ऊखल रहते हैं । दक्षिण देश तथा गुजरात में ग्राम के अन्दर एक भी ऐसा गृह नहीं जहाँ कि मुसल और ऊखल नियत स्थान पर रक्खे देखने में न आवें । कोई प्रश्न कर सक्ता है कि हमारे गृह में तो किसी भी पदार्थ के रखने का नियत स्थान नहीं फिर हम पत्तल की किस दिशा में भाग रक्खा करें । इस के उत्तर में हम कहैं गे कि जिन के गृह में पदार्थों के रखने के नियत स्थान नहीं उन के गृह की व्यवस्था बहुत बुरी है । बड़ी २ मेमों से हमने सुना कि युरुप में गृह प्रबंध के अन्दर दो बातें मुख्य सिखाई जाती हैं एक तो गृहस्वच्छता और दूसरे "आर्डर" अर्थात नियत स्थान पर नियत वस्तु रखना । एक जर्मन से आई हुई बाई हमें कहती थी मैं आधी रात के समय अंधेरे में अपने मकान में से सूई भी

डिब्बिया में से निकाल कर ला सक्ती हूँ । कारण कि हमारे यहाँ प्रत्येक वस्तु को नियत स्थान पर स्वच्छ करके रोज़ रखने की शिक्षा दी जाती है । इस लिये जो लोग वैश्वदेव यज्ञ करना आरम्भ करें उनको पहिले अपने गृह के पदार्थों को नियत स्थान पर रखने का स्वभाव डालना चाहिये । कल्पना करो कि किसी के गृह में पश्चिम की दिशा में मुसल ऊखल रक्खे जाते हैं वह उस गृहदिशा को चिन्तन करता हुआ पत्तल पर नं० [७] का भाग पश्चिम की ओर को रक्खे ।

जिस प्रकार दिशाओं में ईशान दिशा दृढ़ता और तेज दोनों के लिये है, उसी प्रकार गृह में धन, यश जो श्री के अर्थ हैं दृढ़ता और तेज के कारण हैं । इस लिये धन और यश का चिन्तन करता हुआ पत्तल की ईशान दिशा में यह भाग नं० (८) का रक्खे ।

दक्षिण और पश्चिम दोनों दिशाएँ तमोयुक्त हैं और इन की मध्यवर्त्तिनी दिशा नैर्ऋत्य भी वैही ही है । अतः रात्रि का नाम भद्रकाली है क्यों कि यह सब जीवों को सुला कर उन का कल्याण करती है । इस लिये रात और निद्रा का चिन्तन करता हुआ वह भाग नं० (९) को पत्तल की नैर्ऋत्य दिशा में रक्खे ।

'ब्रह्मपति, ईश्वर का नाम इस लिये है कि वह वेद का प्रकाशक है और सर्वाधार होने से उस का नाम 'वास्तुपति' है । गोलाकार में केन्द्र स्थान उस का आधार और मूल वा नाभि समझी जाती है । अतः पत्तल के मध्य के भाग में संख्या १० और सं० ११ के भागों को रक्खे ।

भौतिक देव पदार्थ, चमकने के कारण अग्निमय होते हैं और अग्नि का स्वभाव ऊपर जाने वा रहने का है, इस लिये दिव्य तेज, सूर्य की रश्मि तथा बिजली का महत्त्व वह चिन्तन करे और बिजली के आघात से स्थान को सुरक्षित करे ।

रात को उल्लू आदि पक्षी वा सिंह व्याघ्र आदि पशु आक्रमण करते हैं वे हिंसक होने के कारण बलात्कार से वा आक्रमण करके जीवों

पर ऊपर से गिरते हैं, ऐसा ज्ञान उन से बचे । इन नक्तंचर जीवों का चिन्तन करता हुआ और यह समझता हुआ कि हवन की अग्नि वा ज्वाला के दर्शन से यह नक्तंचर हिंसक प्राणी उस गृह के निकट नहीं आते जहाँ अग्नि जलती है, वह दृढ़व्रत होवे और सूर्य की रश्मियों तथा ऊपर से गिर कर मारने वाले जीवों के स्वभाव को चिन्तन करता हुआ भाग नं० १२ तथा १३ पत्तल के मध्य में कहीं भी जरा ऊपर से छोड़ कर रखदे । कारण कि यदि यह दो भाग सहज से ऊपर फेंके जावें तो पत्तल के मध्य में किसी स्थान पर पड़ेंगे ही, इस लिये (१०) के आगे (१२) (१३) का भाग धरे ।

जिस प्रकार शरीर में सर्वक्रियाओं का आधार रीढ की हड्डी है उसी प्रकार सृष्टि की पीठ ईश्वर है । पीठ नजर नहीं आती पर सब क्रियाएँ उस के आधार से होती हैं, इसी प्रकार ईश्वर नजर नहीं आता पर सब क्रियाओं का मूल है, इसी लिये यहाँ ईश्वर का नाम " सर्वात्मा " कहा गया है । और इसको चिन्तन करता हुआ पत्तल के मध्य में जो नं० १० का भाग रखा था, उसके नीचे की ओर अर्थात् उसके पृष्ठ भाग में यह भाग सं० १४ का रखे ।

पूर्व दिशा " पोज़िटिव " वा तेजः प्रधान है दक्षिण दिशा "नेगेटिव" वा तेजःप्रधान नहीं । सृष्टि के अन्दर वह ज्ञानी लोग जो विशेष कर्म काण्डी हैं वे पितृनामक हैं । तेज ज्ञान का चिन्ह है, इस लिये पूर्वदिशा ज्ञान की सूचक है । कर्म करने में ज्ञान प्रधान नहीं होता इस लिये दक्षिण दिशा कर्मकाण्ड की सूचक है ।

पितृ को बुजुर्ग कहते हैं । अनुभवी पुरुष का दूसरा नाम बुजुर्ग है । अनुभव को उपलब्ध करने के लिये आवश्यक है कि ज्ञान के अनुकूल कर्म अनेकवार किया जावे । अनेकवार कर्म करने से उसका पूरा अनुभव होता है । जब हम कहते हैं कि अमुक पूरा कर्मकाण्डी है तो इस का भाव यह होता है कि वह अमुक कर्म्म का, उस को अनेक वार करने से अनुभव रखता है ।

जो ज्ञानी होने पर कर्मकाण्डी हैं वही पितृसंज्ञा के अधिकारी हैं इन को " प्रेक्टिकल मैन " अंग्रेज़ी में कहते हैं । वह वैद्य जो केवल शब्द ज्ञान रखता है पितृ नहीं और कर्म से रहित होने के कारण उस को अनुभव प्राप्त नहीं । इस लिये पुराने आर्य अनुभवी पुरुषों अर्थात् तजुर्बेकार विद्वानों को पितृ समझते हुए उन के अनुभव से लाभ लेने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। माता, पिता, आचार्य, सद्वैद्य, रसायनशास्त्री तथा अनेक विद्याओं के सिद्धान्तों को कर्म वा प्रयोग द्वारा निश्चय करने वाले अनेक प्रकार के विद्वानों की " पितृ संज्ञा " हुवा करती थी ।

इसलिये अनेक विद्या यज्ञ, शिल्प और राज्यप्रबन्ध आदि अनेक कार्य्यों में जो अनुभव रखते हैं उन पितृलोगों के लिये भाग हो, यह चिन्तन करते हुए भाग को पत्तल की दक्षिण दिशा में रक्खे । दक्षिण दिशा में पहिले सं० [२] का भाग रक्खा जा चुका है उस के नीचे नं० १५ का भाग रखना चाहिये ।

"संस्कार विधि" में लिखा है कि "इन मन्त्रों से एक पत्तल वो थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना, यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजावे तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना" फिर कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि, इन के लिये ६ भाग लवणान्न के रक्खे और उन को ही दे देवे ।

कुत्ते से बढ़ कर न कोई चौकीदार हुआ है और न होगा । स्वामी भक्ति में कुत्ते से बढ़कर कोई भी प्राणी नहीं । जंगल में, खेत में, बँगले के अन्दर वा घर में एक कुत्ता होने से बंदर, शृगाल [गीदर] और अनेक प्रकार के प्राणी तथा चौर आदि लोग नहीं आसक्ते । कुत्तों का भी हमारे अन्न में भाग है और इस भाग को धर कर पुराने आर्य्य अपना भोजन करते थे ॥

जो मनुष्य दुराचार के कारण पतित होगया है उस से सहानुभूति करनी वा उस को अन्न का भाग देना आज भी " रिफार्मेटरी " (पतितोद्धार संस्था) का काम समझा जाता है । जो मनुष्य अधम अवस्था में हैं

उन को भोजन देना और उन की सन्तान को शिक्षण द्वारा सुधारना सभ्य मनुष्यों का काम है । पाप रोगियों के लिये हस्पताल आजकल बन गये हैं जिनमें "इनडोर" मरीज़ के तौर पर जो असाध्य रोगी दाखिल होते हैं, उन को अन्न देना प्रत्येक गृहस्थ (नागरिक) का धर्म था और अब भी राज–कर द्वारा वह भाग गृहस्थ प्रजा देती ही है ।

काक, शुद्धि कारक पक्षी है । यदि कौवों को रोज अन्न भाग मिलता रहे तो वह घर पर विना संकोच आने लगते हैं और अनेक प्रकार के अशुद्ध पदार्थों को भक्षण कर नष्ट कर देते हैं ।

चींटी और मकोड़े जिस भूमि में होते हैं वहाँ रींगने वाले विषैले छोटे २ कीड़े बिल बनाकर कम रहते हैं । इस के अतिरिक्त सूक्ष्ममल के अणुओं को यह जीव खाकर नष्ट कर देते हैं । जिससे मलिनता बढ़ने नहीं पाती । इस लिये ऐसे उपयोगी जन्तुओं को अन्न भाग देना पुराने आर्य अपना धर्म समझते थे ॥

इति विवाहप्रकरण परिशिष्टम् ।
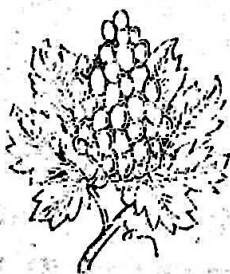
अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिः॥

वानप्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्रवधू आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके बन की ओर यात्रा की तय्यारी करे यदि स्त्री चले तो साथ लेजावे नहीं तो जेष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्ममार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना फिर पूर्व लिखे प्रमाण यज्ञशाला वेदि आदिक सब बनावे, घृत आदि सब सामग्री जोड़ के यथाविधि (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्तइध्म ०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान कर के —

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—

इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके आघारावाज्यभागाहुति ४ और व्याहृति आज्याहुति ४ चार कर के स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके स्थालीपाक बनाकर और उस पर घृत सेचन कर निम्न लिखित मन्त्रों से आहुति देवे—

ओं(१)काय स्वाहा। कस्मै स्वाहा। कतमस्मै स्वाहा। आधिमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा। अदित्यै मह्यै स्वाहा। अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा। सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा। सरस्वत्यै, बृहत्यै स्वाहा। पूष्णे स्वाहा। पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा। पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा। त्वष्ट्रे स्वाहा। त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरू-

(१) इन चारों—मन्त्र और मन्त्रांशों के ऊपर ज्यों का त्यों श्री० दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य रख दिया है।

पाय स्वाहा *। भुवनस्य पतये स्वाहा । अधिपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा †। ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। प्राणो-यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। अपानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। उदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। वाग्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। आत्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा। यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ‡। एकस्मै स्वाहा। द्वाभ्यां स्वाहा। शताय स्वाहा। एकशताय स्वाहा। व्युष्ट्यै स्वाहा। स्वर्गाय स्वाहा ‖

इन मन्त्रों से एक २ करके ४३ स्थालीपाक की आज्याहुति देके पुनः व्याहृति आहुति ४ चार देकर सामगान करके सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे।

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः ॥

---

* यजुः अ० २२। मं० ३०॥
† यजुः अ० २२। मं० ३२॥
‡ यजुः अ० २२। मं० ३३॥
‖ यजुः अ० २२। मं० ३४॥

"वानप्रस्थ संस्कार में आए हुए वेद मन्त्रों का "श्री स्वामी दयानन्द जी कृत भाष्य के अनुसार अर्थ"

"जिन मनुष्यों ने (काय) सुखसाधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (कस्मै) सुख स्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (कतमस्मै) बहुतो में जो वर्तमान उसके लिये (स्वाहा)। सत्यक्रिया (आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर (स्वाहा)। सत्यक्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये (मनः) मनकी (स्वाहा) सत्य क्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति को सिद्ध कराने हारा चैतन्य मन और (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै) विनाश रहित वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (सुमृडीकायै) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रपथ्याय) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (तुरीपाय) नौकाओं के पालने (त्वष्ट्रे) और विद्या प्रकाश करने के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पुरुरूपाय) बहुत रूप और (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया—की है वे सुखी होते हैं॥ "(भुवनस्य) संसार की (पतये) पालना करने वाले स्वामी के लिये (स्वाहा)

उत्तम क्रिया (अधिपतये) सबके अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रजापतये) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया को सब भली भांति युक्त करो ॥३२॥"

"हे मनुष्यो ! तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी (आयुः) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म और विद्या आदि देने के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (प्राणः) जीने का मूल मुख्य कारण पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (अपानः) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] श्रेष्ठ काम के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [व्यानः] सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन [स्वाहा] अच्छी क्रिया से [यज्ञेन] उत्तम काम के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [उदानः] जिससे बली होता है वह पवन [स्वाहा] अच्छी क्रिया से [यज्ञेन] उत्तम कर्म के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [समानः] जिससे अङ्ग २ में अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [चक्षुः] नेत्र [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियाँ जोकि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] अच्छे काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों [मनः] मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (आत्मा) जीव [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (ब्रह्मा) चार वेदों के जानने वाला (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के

साथ (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (स्वः) सुख (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन (यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (पृष्ठम्) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन, शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियाँ और सब से उत्तम सामग्री हो उसको यज्ञके लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त हो कर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुखको प्राप्त होवें । ३३ । "

"हे मनुष्यो! तुम लोगों को (एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (शताय) अनेक पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (एकशताय) एकसौ,एक व्यवहार वा पदार्थों के, लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्युष्टैय) प्रकाशित हुए पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (स्वाहा) उत्तमक्रिया, और (स्वर्गाय) सुखको प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तमक्रिया, भली भांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः- मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं उस ईश्वर को तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिस से संसार का सुख और मोक्षसुख प्राप्त होवे ॥ ३४ ॥ "

इति वानप्रस्थसंस्कारव्याख्याप्रकरणम् ।

वानप्रस्थ संस्कार पर एकदृष्टि—

युरुप में अनेक विद्वान् ४० वा ५० वर्ष के पीछे कमाये हुये धन में से निर्वाह करके विद्याभ्यास और पुस्तकरचन में निमग्न हो जाते हैं और उनकी यह आयु हमारे प्राचीन वानप्रस्थ लोगों के समान कई

अङ्गों में मिलती है । जैसे कि एकान्त सेवन, विषयों का त्याग, विद्या-वृद्धि और विचार । पर इतना करते हुए भी वे अर्द्धवानप्रस्थी हैं पूरे नहीं कारण कि उनको आत्मचिन्तन और और ब्रह्मचिन्तन का सुअवसर बहुत कम मिलता है । यदि आत्मचिन्तन और ब्रह्मचिन्तन का भी उनको अवसर मिलता तो एन्ड्रोजेकसन डेविश और कौन्टटालसटाय के समान पुरुष के प्रत्येक गांव वा नगर में एक दो वानप्रस्थी मिलते पर ऐसा न होने से वहां केवल पदार्थ विज्ञान की वृद्धि करने वाले एडिसन से अनेक अर्द्धवानप्रस्थी विद्यमान हैं । इन पदार्थविज्ञान की वृद्धि करने वाले महान् पण्डितों के प्रभाव से भौतिक चमत्कार, ग्रेमोफोन (शब्दधारकयंत्र) के रूप में तो बहुत निकल रहे हैं पर इनसे जीवन और मृत्यु का रहस्य नहीं खुला और नहीं खुल सकता है । सेविनसरटालने एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है जिस का नाम यह है कि "४५ वर्ष के मनुष्य को क्या जानना चाहिये" इस पुस्तक के २८४ पृष्ठ के अन्दर लेखकने यह बातें दर्शाई हैं कि:—

(१) शिर और मुंछ डाढी में श्वेत बालों का आना प्रकट कर रहा है कि अब अवस्था बदल चली ।

(२) स्मृति का कम हो जाना ।

(३) चक्षु आदि इन्द्रियों का निर्बल हो जाना ।

(४) पहिले समान श्रम न कर सकना और शीघ्र थक जाना

(५) दातों में विकार का होना

(६) विषय वासना की न्यूनता

(७) पैतृक रोगों का वृद्धि पाना

(८) पेशाब का धीमे २ आना

फिर डाक्टर विलियम एकटन आदि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि ५० वा ६० वर्ष में पुरुष प्रजा उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता—पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि इस अवस्था में विशेष मानसिक

चिन्ता नहीं करनी चाहिये और धन सम्बन्धी जोखमयुक्त काम नहीं करने चाहियें मुकद्दमे बाजी छोड़ देनी चाहिये फिर निद्रा भर कर लेनी चाहिये और पृष्ठ ७५ पर प्राणायाम करने को लिखा है। यूरुप के लोग डाक्टर गार्डनर आदि लिखते हैं कि ५० वर्ष की आयु में मनुष्य को स्त्री समाज सर्वथा त्याग देना चाहिये नहीं तो आयु घट जावेगी। स्टाल महोदय की उक्त पुस्तक बतला रही है कि ५० वर्ष की आयु में विषयों को छोड़ चिन्तारहित होने की आवश्यकता " के लोग " आदि अनेक डाक्टर बतला रहेहैं।

पर यदि कोई ६० वर्ष की आयु में पेनशन ले कर भी यूरुप में विवाह करले तो उस को कोई दण्ड नहीं मिलसकता। यदि ५० वर्ष की आयु में वहाँ लोग उक्त बातों पर न चलें तो समाज कुछ कर नहीं सकता। प्रायः १०० में ८० मनुष्य यूरुप में धन कमाते ही मरते हैं।

ऋषियों के समय में वानप्रस्थ, वृद्ध के लिये इतना ही जरूरी था जितना कि युवा के लिये विवाह, और उस समय यह ऐच्छिक विषय न था और नहीं अर्द्धरूप में था जैसा कि ऊपर लिख आये। प्राचीन आर्यों ने इसको संस्कार माना था जिसका करना या तो ५० वर्ष की अवस्था में या पोते पोती के होने पर पुरुष स्त्री दोनों के लिये जरूरी था। जो बातें आज युरुप में वृद्धों को करनी डाक्टर लोग श्रेष्ठ बतलाते हैं उनके पालन के लिये उनको प्रतिज्ञा करनी होती थी जैसी प्रतिज्ञा वानप्रस्थ की विधि दर्शा रही है। आत्मचिन्तन और ब्रह्मज्ञान के शास्त्र जिनके मनन से जीवन मृत्यु के भेद खुलते थे वेद और उपनिषद् के रूप में यहाँ विद्यमान थे—जिन पर मनन करने से वानप्रस्थी, जीवन के उद्देश को सफल कर सकते थे। वानप्रस्थ संस्कार की विधि में जो "काय स्वाहा" इत्यादि अनेक वाक्य कहकर हवन किया जाता था उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वान प्रस्थी का उद्देश्य शान्ति की जिज्ञासा और प्राप्ति थी। इस संस्कार के अन्त में ऋषि दयानन्द जी ने जो भाषा में लिखा है

वह प्रत्येक "वानप्रस्थ,, धारण करने वाले को १० वार विचार पूर्वक पढ़ना चाहिये—वह यह है किः—

"सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धरके अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जा कर, एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार, महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्माको साक्षात् करने में प्रयत्न किया करें"

मूल "संस्कारविधि" में मनुस्मृति के लेखानुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य वानप्रस्थ को भिक्षाचरण से निर्वाह करने का उपदेश है।

युरुप निवासी पुराने आर्यों के इस संस्कार पर बहुत हँसते हैं और आक्षेप के रूप में कहा करते हैं कि—

(१) मनुष्यों को जंगली बनाना
(२) भिखारी बनाना
(३) आलसी बनाना

इनके विना इस संस्कार का क्या उद्देश्य है? हम इस के उत्तर में कहेंगे कि वह (१) जंगली नहीं बनाते थे, किन्तु जिस (Goddess Nature) नेचर देवी की उपासना के तुम रात दिन मौखिक गीत गाते हो। उसी सृष्टि देवी की गोद में वह नगर, ग्राम और कृत्रिम कारखानों के शोर बकोर से बच कर स्थान पाते और विचार द्वारा नेचर और नेचर की वशकर्त्री शक्ति ब्रह्म का अनुभव करके लोगों के जीवन को अपने सच्चे जीवन से उन्नत करते थे।

(२) भिखारी तो उसको कहते हैं जो आलसी होकर कुछ उपयोगी काम न करे और दूसरों से माँग कर खावे। ऋषियों ने सामाजिक उन्नति यहाँ तक की थी कि अभी तक युरुप आदि में कहीं भी उसका चिन्ह नहीं मिलता। जिस प्रकार एक परिवार का मनुष्य यदि दूकान वा

कारखाने में काम करता हुआ रोटी खाने के समय, अपने घर से रोटी ले जावे तो उसको कोई युरुप वाली भिखारी नहीं कहेगा उसी प्रकार जिन्होंने ग्राम वा नगर को परिवार बना रक्खा था उनको अधिकार था कि ग्राम वा नगर वासियों के कल्याण के लिये अपनी तपस्या के फलों को मुफ्त देते हुए अपने गाम व नगर रूपी गृह से रोज़ खाने के समय पर अपना भोजन ले जावें।

इसके अतिरिक्त जो गृहस्थ आज वानप्रस्थ हुआ वह आज से पूर्व २५ वर्ष तक ग्राम वा नगर के ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों और संन्यासियों को रोज़ भिक्षा देता रहा है। आज उसके वानप्रस्थ होने पर उसका परिवार तथा ग्राम के सब गृहस्थ उसको अन्न देना अपना कर्तव्य समझेंगे।

परस्पर कुटुम्ब सहायक और लाइफ इन्शोरेन्स कंपनियां भी जिस काम को पूर्ण रूप से आज तक नहीं कर पाईं उसे धर्मात्मा आर्यों की वह प्रथा, पूर्ण करती थी जिसको " "भिक्षाचरण" कहते हैं।

कल्पना करो कि बम्बई में २०० बी० ए० पास मनुष्य हैं और बम्बई की मनुष्यपालयित्री समिति (म्युनिसिपल कमेटी) यह पास करदे कि यह बी० ए० रिसर्च वा अन्वेषण का काम करेंगे- यह निर्लोभी हैं इन को वेतन की ज़रूरत नहीं। केवल निर्वाहमात्र अन्न वस्त्र इनको मिला करे और वह इस प्रकार से कि जब चाहेंगे तो दिन में एक दो वार जिस किसी के मकान पर सूचना दें वही दो समय का अन्न इनको रोज दिया करे। इनके बहाने से कोई और न ले जावें इसलिये अमुक प्रकार का वेष इनको सभा से दिया गया है, जो दूसरा विना दण्डधारण नहीं करसकता बताओ ऐसी दशा में लोग उन २०० बी० ए० पास विद्वानों के त्याग और बम्बई के सर्व गृहस्थों के उदार भाव की स्तुति करेंगे वा नहीं? क्या कोई उन रिसर्च (आन्दोलन) का काम करने वालों को आलसी वा भिखारी कहेगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार पुराने वानप्रस्थी, जन मण्डल के भूषण और जनमण्डल के सच्चे सेवक होते थे, वह नगर के लिये जीते थे और नगर का अन्न उनकी सहायता के लिये तैयार था। उनको अन्न मँगाने, संभालने आदि का श्रम न करना पड़े इसलिये नगर वासियों से तैयार अन्न लेजाते थे। उनका आना डेप्युटेशन के रूप में था और उनको अन्न देना प्रत्येक अपना धर्म (ड्यूटी) समझता था।

अव्याख्यात संस्कृत भाग की संन्यास प्रकरण की क्रमसे व्याख्या

जिससे अधर्म के कामों को सर्वथा दूर कर देते हैं, वा जिस संस्कार से मनुष्य अच्छी तरह नित्य सत्कर्मों में ही स्थिर हो जाता है, वह "संन्यास" संस्कार कहलाता है, संन्यास वाले को संन्यासी कहते हैं। सन्यास संस्कार की विधि और मूल मन्त्रादि, वैदिक प्रेस अजमेर की मुद्रित मूल "संस्कार विधि" में देख लेना चाहिये ग्रन्थ-विस्तर भय से हमने यहाँ नहीं रक्खा।

(भुवनपतये) समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी के लिए (भूतानां, पतये) पञ्च महाभूतों के पति के लिए (प्रजापतये) सब प्राणियों के पालक के लिए (स्वाहा) सुहुत हो वा सत्यक्रिया हो।

(ब्रह्म) वेद से ही (होता) होता का स्वरूप बतलाया जाता है (ब्रह्म, यज्ञः) वेदही यज्ञ का विधायक है (ब्रह्मणा) वेद से ही (स्वरवः, मिताः) परिमित यज्ञस्तम्भ निरूपित होते हैं (ब्रह्मणा) वेद से ही (अध्वर्युः) यजुर्वेद का ज्ञाता (जातः) बनाया जाता है (ब्रह्मणः, अन्तः) वेद के भीतर ही (हविः) होम के योग्य पदार्थ समूह, विधि रूप से (हितम्) स्थित है।

(ब्रह्म) वेद ने ही (घृतवतीः स्रुचः) घृत वाली स्रुक्, घृत डालने के साधन बतलाई हैं (ब्रह्मणा) ब्रह्म-वेद ने ही (उद्, हिता) उत्कृष्ट कल्याण करने वाली (वेदिः) यज्ञ वेदि को बतलाया है (ब्रह्म) वेद ने ही (यज्ञश्च, सत्रं, च) बड़े और छोटे सब प्रकार के यज्ञ बतलाए हैं, और (ये, हविष्कृतः ऋत्विजः) जो हवि देने वाले ऋत्विग् हैं वे भी वेदोपदिष्ट हैं (शमिताय) ऐसे शान्ति देने वाले वेदोपदेश के लिए (स्वाहा) यह हमारी सत्य क्रिया हो॥

हे इन्द्र ऐश्वर्यशालिन् ! परमात्मन् !

(अंहोमुचे) दुःख वा पापों के दूर करने वाले (प्र, भरे) अत्यन्त पोषण करने वाले आप में, मैं (मनीषाम्) अपनी बुद्धि को (आ) सब तरफ से लगाता हूं। और (सु, त्राम्णे) श्रेष्ठ रक्षक उसी परमात्मा में (सु, मतिम्) सुन्दर बुद्धि का (आ, वृणानः) अच्छे प्रकार प्रवेश करता हुआ, मैं चाहता हूं कि आप (इदं, हव्यम्) इस हवनीय पदार्थ को (गृभाय) ग्रहण करें और आपकी कृपा से (यजमानस्य) मुझ यजमान के (कामाः) मनोरथ (सत्याः, सन्तु,) सत्य-पूर्ण हों॥

हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको ! मैं (अंहोमुचम्) दुखों को दूर करने वाले (यज्ञियानां वृषभम्) यज्ञ के हितकारक पदार्थों में श्रेष्ठ (अध्वराणाम्) सब प्रकार के यज्ञों में (प्रथमम् विराजन्तम्) मुख्यरूपसे शोभित होने वाले (अपां, नपातम्) अपने वेग से जल की रक्षा न करने वाले अर्थात् जल के शोषक प्राण वायु को (धिया) अपने बुद्धि बल से (हुवे) अच्छे प्रकार ध्यान में रखने की प्रतिज्ञा करता हूं (इन्द्रेण) परमात्मा ने (मे) मुझे (ओजः, इन्द्रियम्) प्रकाशक-इन्द्रिय मन (दत्तम्) देदिया है।

(यत्र) जिस ब्रह्मलोक में (ब्रह्मविदः) ब्रह्म- ईश्वर के जानने वाले लोग (तपसा, सह) मनो निग्रह आदि तप के साथ (दीक्षया) संन्यासाश्रम में पालनीय नियमों के कारण (यान्ति) जाते हैं (तत्र) वहाँ ही (मा) मुझे (अग्निः) पूजनीय परमात्मा अपनी कृपा से (नयतु) पहुंचावे और (अग्निः) वही परमात्मा (मे) मुझे (मेधां, दधातु) ब्रह्म लोक प्राप्ति की शुद्ध बुद्धि को देवे (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो।

"यत्र" इत्यादि पूर्ववत् । (वायुः) नित्य ज्ञानवाला (प्राणान्) प्राणों को (सूर्यः) सूर्यवत् जगत् का प्रकाशक (चक्षुः) देखने की शक्ति को (चन्द्रः) चन्द्रवत् आल्हादक (मनः) मनन शक्ति को (सोमः) सोम लता की तरह शान्ति देने वाला (पयः) दुग्ध आदि उत्तम पदार्थों को (इन्द्रः) विशिष्ट ऐश्वर्य

वाला (बलम्) बलको (आपः) जगत् का कारणीभूत सूक्ष्म तत्वविशेष व्यापक परमात्मा (अमृतम्) मुक्ति को (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता (ब्रह्म) वेद ज्ञान को (दधातु) देवे, इत्यादि रूप से सर्वत्र सम्बन्ध कर लेना चाहिये॥

(प्राणापान व्यानेत्यादि) हृदयदेशवर्ती वायु-प्राण, गुद देश वर्ती वायु-अपान, सर्व शरीर संचारी वायु—व्यान, कण्ठ देश में रहने वाला वायु-उदान, नाभिदेशस्थ-वायु समान, ये पांचों मेरे वायु, ईश्वर करे कि प्राणायामद्वारा (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों और (अहम्) मैं (ज्योतिः) जगत् के सम्बन्ध को छोड़ के प्रकाश स्वरूप और (विरजाः) रजोगुण रहित, तथा (वि, पाप्मा) पापों के मूल तमोगुण से रहित ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं॥

(वाङ् मन इत्यादि) वाणी, मन, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका, वीर्य, बुद्धि, अभिप्राय, विचार, ये सब (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों० शेष पूर्ववत्

(शिरः पाणीत्यादि) मस्तक, हाथ, पैर, पीठ, आँघे, घुटने, पेट, मूत्रेन्द्रिय, मलेन्द्रिय; ये सब० शेष पूर्ववत्॥

(त्वक्चर्मेत्यादि) त्वगिन्द्रिय, चाम, मांस, रुधिर, मेद (चर्बी) मज्जा (हड्डियों का सार) स्नायु (नाड़ी) अस्थि (हड्डी) ये सब० शेष तुल्य है।

(शब्द स्पर्शेति) शब्द आदि पांच, ज्ञानेन्द्रियों के विषय मेरे शुद्ध हों।
(पृथिव्यविति) पृथिवी आदि पांच महाभूत मेरे लिए शुद्ध हों।
(अन्नमयेति) अन्नमयादि* पांच कोश मेरे लिये शुद्ध हों।
(विविट्यै) विशेषेण विष्टि र्व्याप्तिर्यस्य ब्रह्मणः (इति सायणाचार्यः) विशेष करके व्याप्त परमात्मा के उद्देश से (स्वाहा) सुहुत हो।

---

* स्थूल शरीर—अन्नमय कोष, पांच कर्मेन्द्रियों सहित पांच प्राण—प्राणमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन मनोमय कोष; पांच ज्ञानेन्द्रिय सहित निश्चयात्मक बुद्धि वृत्ति—विज्ञानमय कोष, और सुषुप्ति का आनन्द—आनन्दमय कोष कहलाता है; ये पांचों जीव के स्वरूप को ढके हुए हैं इस लिये इन्हें कोष (मियान) संज्ञा दी गई है।

(कषोत्काय) नामरूपकर्मात्मकः कार्यप्रपञ्चः कषः (इति सायणाचार्यः) सृष्टि की आदि में जगत् के करने में उत्कण्ठित परमात्मा के लिए० (उत्तिष्ठ पुरुष०) हे पुरुष! शरीर में सोने वाले जीवात्मन्! तू (उत्तिष्ठ) आलस्य प्रमादादि दोषों को छोड़ कर परमात्मा के अनुग्रह के लिए उद्योगी बन और हे (हरित) सब प्रतिबन्धों (रुकावटों) को दूर करने वाले? (लोहित) रजो गुण के सम्बन्ध से रक्तिमा धारण करने वाले! (पिङ्गलाक्षि) तमो गुण के सम्बन्ध से अपने ज्ञान को कलुषित करने वाले? मेरे आत्मन्! अपने ही लिए शुद्धि—प्राकृतिक सम्बन्धराहित्य रूप शुद्धि को (देहि २) दे दे! अर्थात् विना विलम्ब के दे और (ददापयिता) लोगों के लिए यथार्थ ज्ञान का देने वाला हो जिससे (मे) मेरी अपनी ही चित्तवृत्तियाँ (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हो जावें० ॥ शेष पूर्ववत्। (ओम्) मैं ओम्शब्दप्रतिपाद्य वस्तुमय हो जाऊँ०।

(मनो वागिति) मन, वाणी, शरीर, और काम मेरे शुद्ध हों०।

(अव्यक्तभावै रिति) जिन का स्वरूप प्रकट नहीं है ऐसे अहङ्कार अभिमानादि दोषों से हटकर (ज्योतिः) प्रकाश मय होऊँ०।

(आत्मा ०) मेरा जीवात्मा शुद्ध हो ०।

(अन्तरात्मा) मेरा मन शुद्ध हो०।

(परमात्मा) मेरे लिये परमात्मा प्रसन्न हो०।

(ध्रुवाय, भूमाय) निश्चल और सब से बड़े परमात्मा के लिए०।

(ध्रुवक्षितये) स्थिर ज्ञान वाले के लिए (अच्युतक्षितये) एक रस हो कर जगत् में निवास करने वाले ईश्वर के लिये० इत्यादि ४९ मन्त्र तक। शेष शब्द ईश्वर और ईश्वरीय वस्तुओं के वाचक हैं—स्पष्टार्थक हैं।

हे परमात्मन्! तू (विश्वमूर्तिषु, भूतेषु) मूर्तिधारी सब प्राणियों वा भूतों में (गुहायाम्) मन रूप गुहा में (अन्तः, चरसि) भीतर व्याप्त है

(त्वम्) तूही (यज्ञः इत्यादि) यज्ञ, वषट्कार, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, प्रजापति, आपः, ज्योतिः, रस, अमृत ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः, ओम्, ये सब नाम वाला है॥ अग्रिम मन्त्रों के शब्द भी ईश्वर बोधक स्पष्ट हैं। कई २ वार इन शब्दों का अर्थ आगया है।

(सावित्रीम्, प्रविशामि) ईश्वर की ज्योति में मैं प्रविष्ट होता हूं- शेष शब्दों का अर्थ पूर्व गायत्रीमन्त्रार्थ में आचुका।

इति संन्यास प्रकरणम्॥

संन्याससंस्कार—

आजकल युरुप आदि देशों में भौतिक पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव जानने और जानकर उन से उपयोग लेने में वहां के मेधावी पण्डित रात दिन निमग्न हैं। विद्युत रेडियम, (वर्चः) एक्सरेज़ (दिव्यरश्मि) आदि दिव्य भौतिक ज्योति के नाना रूप में वह दर्शन करते हुए उनसे काम लेरहे हैं। विमानयान की सिद्धि के लिये पूर्णरूप से पुरुषार्थ किया जारहा है और जिस दिन यह सिद्धि प्राप्त हुई, उस दिन से भावी सभ्यता का रूप बदलेगा। कुछ अधिक सुख की आशा भावी सभ्यता में होगी ऐसा वहाँ के पण्डितों का कथन है।

यत्न करते २ कौन जाने कि कब इन पश्चिमी पण्डितों को—

ब्राह्मतत्व

के दर्शन हों और जिस समय दर्शन हुए उस समय यह पुराने ऋषियों के समान कह उठेंगे कि यह एक सर्व व्यापक, अतीव सूक्ष्म सत्ता सर्व भौतिक और चेतन तत्वों से दो मुख्यकारणों से विचित्र है। प्रथम यह कि सब भौतिक तत्वों समान सत्ता रखने से तत्व कहलासकती है। फिर यह कि जीव से भी अधिक चैतन्य वा ज्ञान वाली शक्ति है और सृष्टि में नियमपूर्वक रचना (डिजायन)-इसी के ज्ञान गुण का आविष्कार कर रही है। इसके अतिरिक्त समता वा आनन्द वा हार्मनि इसी शक्ति के कारण रचना में अनभव होरही है। पुराने ऋषियों ने इस महती शक्ति

का पूर्ण रूप से दर्शन तथा उपयोग किया था जिस दर्शन और उपयोग को वह " ब्रह्मोपासना " कहते थे। इस समय जिस प्रकार " विद्युत उपासना " " वाष्प उपासना " पश्चिमी विद्वान् कर रहे हैं और प्रत्येक के उपासकों के पृथक् २ स्थान पृथक् २ प्रबन्ध हैं और सबका खर्च जन मण्डल वा जन समाज पर है। उसी प्रकार पुराने समय में सबसे अतीव उपकारक—

ब्रह्मोपासना

के करने वाले संन्यासी कहलाते थे और ब्रह्मतत्वके ज्ञान द्वारा दर्शन तथा अनुभव करने से वह उस ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव की चर्चा समाचार पत्रों वा पुस्तकों द्वारा करते हुए सब से अधिक इस ब्रह्मतत्व का प्रभाव अपने जीवन में तजुरबा करके दिखाते और फिर वाणी से कहते थे- जन्म स्थिति और मृत्युका करने वाला यही ब्रह्म है, इसको उन्होंने निश्चय करलियाथा। सृष्टि (नेचर) का स्वामी यही एक ब्रह्म है, इसको वह निर्भ्रान्त रीति से जान चुके थे। इस सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म के गुण कर्म स्वभावानुसार सत्यज्ञान और जिससे मनुष्य की एक जाति में आनन्द फैले वह आचरण रूपी साधन बतलाना उन संन्यासी महात्माओं का धर्म (ड्यूटी) था। " रेडियम " (वर्च) भक्तों वा उपासकों के समान ब्रह्मोपासकों ने ब्रह्मचिन्तन में निमग्न रहने से यह निश्चयात्मक रीतिसे जानलिया था कि एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य को उसके भौतिक धन, (शरीर, पृथ्वी, जल, अन्न, वस्त्र मकान आदि) और मानसिक धन (विद्या यश आदि) से हीन करना इस सर्वोपरि ब्रह्मशक्ति के प्रयोजन, तथा उसकी रचना के मर्म को न समझने के कारण होता है। वह बतलाते थे कि जब एक समर्थ ज्ञानी पिता अपनी सन्तान के लिये घर बनाता है तो यह हो नहीं सकता कि उसका एक लड़का उस घरके आनन्द को न भोगे। यदि वह मकान १० लड़के लड़कियों के ज्ञानी, धनी, और हितैषी पिता ने बनाया हैतो १० ही उस में आनन्द कर सकते हैं। एक बड़ा लड़का जो पहिले उस गृह में प्रवेश करगया है यदि वह औरों के लिये भाग त्याग कर उस घर का भोग

न करे और ९ को ही उस गृह से निकालना चाहे वा दूसरों के स्वत्वपर अपना ही अधिकार जमाए तो इस के दो फल होंगे (१) तो यह कि ९ मिलकर वा पृथक् २ दुःख पावें ।

(२) ९ मिलकर वा पृथक् २ उस एक से लड़ें वा उसको भी सुख की नींद न सोने देवें ।

जब १० लड़कों में युद्ध मचरहा हो और कोई उनके पिता की मरजी जानने वाला उनको आकर यह युक्ति बतावे कि तुम १० ही सुख पूर्वक इस गृह में रहसकते हो, केवल इतना करो कि जितना तुम में से प्रत्येक को वास्तव में चाहिये उतना भाग लेलो शेष औरों के लिये छोड़दो अर्थात (१) तुम अपने भोग में आसक्ति न चाहो और (२) दूसरों के भोग वा स्वत्व छीनने तो दूर रहे उनके लेने की इच्छा तक मत करो तब तुम सब मिलकर सुखपूर्वक इस गृह के आनन्द को लेसकते हो अन्यथा नहीं ।

पुराने संन्यासी 'ब्रह्मोपासना से क्या महान् लाभ होता है' इस को वह इस मंत्र द्वारा चिन्तन किया करते वा कहते थे "ईशावास्य-मिदं..........इत्यादि" आज कल युरुप में धन धान्य की कमी नहीं। पर प्रश्न यह है कि क्या युरुप के सब लोग इन्द्र कुबेर बन गये ! वा अधिक संख्या दुःखियों और निर्धनों की है ? इनका उत्तर कौंट-टाल स्टाय, हेनरी ज्यार्ज, कारलायल, जनरल बूथ आदि अनेक माने हुए विद्वान् मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि जहां थोड़े इन्द्र और कुबेर बन रहे हैं वहाँ अधिक प्रजा उन भोगों से बञ्चित हैं। सूत्ररूप से यह कहा जा सकता है कि सुखी थोड़े और दुखी बहुत हैं ।

अधिक मोटरकार और दिव्ययान बढ़ने वा अधिक विमान उठाने से प्रजा का अधिक दुख दूर हो सकेगा ? नहीं, त्रिकाल में नहीं । यह दुःख एक मनुष्य दूसरे को दे रहा है भौतिक पदार्थों की वृद्धि इस दुःख को कम नहीं कर सकती । ज़रूरत है कि वहाँ "ब्रह्मोपासकों का एक महकमा

खोला जावे जो अपने प्राण हथेली पर रखे हुए लोगों को सत्य २ यह बतावें (१) कि तुम अपने निर्वाह के साधनों में आसक्त होते चले जारहे हो। इस भोगासक्ति—ऐशोआराम को छोड़ो—तपस्वी बनो। ग्राम के लोग, विलासी नहीं हैं क्या वह शारीरिक बल में तुमसे न्यून हैं! इस लिये इन "भोगों को त्याग कर भोग अर्थात् अपने भोगो में आसक्त न होओ"

(२) जब तुम आसक्ति-ऐश के भाव को छोड़ दोगे तो फिर तुमको औरों के स्वत्व छीनने की अभिलाषा उत्पन्न न होगी और यदि कुसंस्कार से हो तो समझो कि सर्व जगत्के पिता ने यह भोग केवल तुम्हारे ही लिये नहीं बनाये हैं किन्तु सब के लिये बनाये हैं क्योंकि वह सब का ईश्वर (स्वामी) है इस लिये डांका, चोरी, हिंसा, लड़ाई आदि द्वारा कभी पर-धन पर-यश लेने का संकल्प मत करो। यदि करोगे तो तुम नेचर ही नहीं किन्तु नेचर के अधिपति की मनशा के विपरीत चलने से परस्पर दुःख पाओगे और शान्ति तुम से कोसों दूर भागेगी।

युरुप में भौतिक पदार्थों के तो संस्कार बहुत किये जारहे हैं पर मनुष्य के मन का संस्कार उक्त प्रकार से करने की ज़रूरत है ताकि मनुष्य, पशुपन को प्राप्त न हो।

वे ब्रह्मोपासक, जो इस शान्ति का मङ्गलपाठ देवें किस योग्यता के होने चाहियें?

इस प्रश्नका उत्तर पुराने ऋषियोंने दिया है। वह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस तत्व को समझ कर कहते थे कि सृष्टि में सर्वथा और सदैव मनुष्य समाज के मुखिया, नेता वा 'लीडर' ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् ही होते हैं। आज युरुप भी मुक्तकंठ से मान रहा है कि प्रत्येक देश वा जन मण्डल का "स्वाभाविक लीडर" विद्वानों का मण्डल ही है, इस से अधिक युरुप नहीं बढ़ा।

पुराने आर्यों ने ब्राह्मण तथा क्षत्री और वैश्य विद्वानों को भी

अन्तिम लीडर मण्डली का सभासद् बनाने के लिये बड़ी कठिन परीक्षा वानप्रस्थ की रक्खी थी और जब इस परीक्षा से पास हो गये तो और तीन नई परीक्षा पास करने पर उन को भी लीडर मण्डल का सभासद् बनाया जाता था। वह ३ परीक्षाएँ ये थीं कि :—

१ उसने पुत्रैषणा त्याग दी
२ उसने वितैषणा त्याग दी
३ उसने लोकैषणा त्याग दी

जिस प्रकार जो डाक्टरी नहीं पढ़ा वह डाक्टरों के मंडल का सभासद् नहीं बन सक्ता, उसी प्रकार जो इन तीन इच्छाओं को नहीं त्याग सकता वह समदर्शी, ब्रह्मोपासक संन्यास मंडल में पग न रक्खे और जिसने रक्खा है उस के लिये पक्षपात, पार्टीस्पिरट और एक देशीय भाव कहां रहा! वह ब्रह्मोपासक सर्व मनुष्यों के कृत्रिम देश, संप्रदाय, और मंडली पार्टी के बन्धनों को तोड़ कर एक मात्र सत्य कह सक्ता है। उसके लिये प्राणी मात्र एक है क्योंकि वह ब्रह्मोपासना से समदर्शी हो गया है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, पार्सी, अछूत हिन्दू, यहूदी ईसाई, और मुसलमान उसकी दृष्टि में कोई नहीं। सब मनुष्य हैं और सब को सत्य और कल्याण मार्ग का उपदेश देना उसका धर्म है। पुराने समय में जब भारत में यह प्रथा तपस्वी ब्रह्मोपासक संन्यासी बनाने की थी तो वह जनमण्डल नहीं २ मनुष्य जाति के सच्चे परम नेता [लीडर] हुआ करते थे। उन की विद्या जो स्वर्ण की नाईं थी वह उनकी तपस्या के कारण कुन्दनवत् हो जाती थी। वही समय था जब एक संन्यासी दंडी महात्मा ने शकेन्द्र [सिकन्दर] से चक्रवर्ती राजा को [अपने प्राणों को जोखम में डालते हुए] निर्भयता से वह सत्य उपदेश किया था कि जिसका प्रभाव उसके हृदय पर भारी पड़ा और तृष्णा के लिये युद्ध से रुक गया।

क्या उक्त दंडी संन्यासी से सच्चे त्यागी और सत्यवक्ता उपदेशकों वा सच्चे अनेक लीडरों की पृथ्वी को अब जरूरत नहीं ? यदि है तो वानप्रस्थ और संन्यास की प्रथा को सर्वत्र जारी करने का यत्न करना चाहिये ताकि यह पृथ्वी अधिक शान्तिधाम * बनसके।

जब तक इस भारत देश में निष्पक्ष सच्चे संन्यासी विद्यमान रहे तब तक यह देश उन्नति करता रहा। उस उन्नति के समय के कई दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जिन में सबसे प्रबल यह है (१) ४ वर्ण, चार पदवियाँ मानी जाती थीं और गुण कर्म से जो जिसका अधिकारी होता था उसको दी जाती थीं। मातंग, जनश्रुति, वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि नीच कुल में उत्पन्न, ब्राह्मण वर्ण को पागये और फिर ऋषि तक बने। स्त्रियाँ उस समय गार्गी समान उच्च से उच्च विद्या तथा देवी की पदवी को धारण करती थीं। मनुष्य मात्र एक जाति समझी जाती थी।

[२] मेगेस्थनीज़ ने जो आर्य सभ्यता का वर्णन किया है, उससे पाया जाता है कि आर्य प्रजा, झूंट नहीं बोलती थी, मकानों को ताले नहीं लगाये जाते थे। चोरी नहीं होती थी, लड़कर राज द्वार में नहीं जाते थे। यह यदि प्रताप था तो उन संन्यासी वानप्रस्थ महात्माओं के सत्य उपदेशों और उनसे सहस्रांश बढ़ कर उन के जीवन, जागृति, धार्मिकजीवन का था।

(३) निष्कामकर्म की सिद्धि के लिये दो अन्त के आश्रम थे। जिनमें होकर उस समय वृद्ध संन्यासी, जनमंडल का कल्याण करते थे आज युरुप में बड़े आदमी का यह लक्षण है कि उसको बहुत आदमी जानते हों और कीर्ति ही वहाँ मुख्य कर के समझी जारही है जिसका संपादन लोगों को वहाँ व्यसन होगया है पुराने समय में गृहस्थ के पश्चात् यश के लिये चेष्टा करना ही वानप्रस्थ को गिराता था निष्काम

* वानप्रस्थ और संन्यासी ही "दुःख का मूल कारण अविद्या है" ऐसा निश्चय कर उसके ४ प्रकार के स्वरूप को जो अनित्य को नित्य इत्यादि मानना है दूर कर के शान्ति फैलासकते हैं।

परोपकार जिस प्रकार ईश्वर कर रहे हैं इसी प्रकार करना पुराने वानप्रस्थ और संन्यासी का धर्म था।

उस समय विद्या बुद्धि का प्रचार सहज में अति उत्तम रीति से इस लिये होसकता था कि आचार्य से महान् विद्वान् वानप्रस्थी, भिक्षाके अन्न पर मिल सकते थे। गुरुकुलों तथा सर्व अन्य भागों के धार्मिक तथा पक्षपात रहित निरीक्षण के लिये इन्सपेक्टरों तथा डायरैक्टरों का काम पूर्ण त्यागी और धार्मिक संन्यासी भिक्षा पाकर किया करते थे।

यदि महाराज अश्वपति को यह कहने का साहस हुआ था कि उसके राज्य में चोर, कंजूस, शराबी, अग्निहोत्र से रहित, अविद्वान्, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी कोई नहीं तो उसका एक मात्र कारण पुराने आर्यों की वर्णाश्रम मर्यादा थी जो अब लुप्त होगई है और जिस का उद्धार संन्यासी ही अपने उपदेशों से अब कर सकते हैं। महर्षि कपिलका कथन सत्य है कि जब २ उत्तम उपदेश होते हैं तब २ प्रकाश की परम्परा चलती है। वह उत्तम उपदेशक वयो वृद्ध, अनुभव वृद्ध, शान्तस्वभाव, निष्काम कर्म करने वाले पक्षपात रहित, सर्व हित साधक एक मात्र संन्यासी ही होसकते हैं। इसलिये संसार की शान्ति तथा उन्नति के लिये इस संस्कार के पुनः प्रचार करने की भारी जरूरत है।

"संस्कार विधि*" पृ० २३६ पर लिखा है कि "संन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकारार्थ विचरे,,

सच्चे संन्यासी दयानन्द जी के अन्तः करण से निकले हुए यह शब्द, अहो ! कितने सारगर्भित और भाव पूर्ण हैं! कई लोग प्रश्न किया करते हैं कि संन्यासी तो संसार छोड़ बैठा, वह काहे को किसी से बात व उपदेश करता होगा। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि "संस्कार विधि,, पृष्ठ २४३ पर जो मनुस्मृति का श्लोक दिया है उसका अर्थ यह है कि—

* यह पृष्ठ संख्या " वैदिक प्रेस अजमेर " की मुद्रित मूल " संस्कार विधि " की सर्वत्र समझनी चाहिये ॥

"चलते समय आगे २ देख के पग धरे, सदा वस्त्र से छानकर जल पीवे, सबसे सत्य वाणी बोले, अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे और जो कुछ व्यवहार करे वह मन की पवित्रता से करे।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य संन्यास के अधिकारी हैं। यह मनुजी के लेखानुसार "संस्कार विधि" में लिखागया है [पृष्ठ २४६]

पृष्ठ २५७ पर लिखा है कि संन्यास लेनेवाला पांच या छः शिरके बालों को छोड़ कर डाढ़ी मूंछ आदि मुंडन करावे। और स्नान करके अपने शिरपर पुरुष सूक्त के मन्त्रों से १०८ बार अभिषेक करे।

पुरुष सूक्त के एक बार वा कुछ अधिक पाठ से १०८ बार शिरपर छींटें दिये जासकते हैं। इस क्रिया का भाव यह प्रतीत होता है कि उसने परिव्राट् बनना है जिसके लिये [श्री १०८] लोग आदरार्थ लिखते हैं। जितना ऊंचा पद उसने धारण करना है उतने ही उसके विचार जल समान शान्त होने चाहिये। यह तो जल के छींटों का भाव समझिये। पुरुष सूक्त के मंत्र इसलिये उस समय बोले जाते हैं कि जहाँ वह मनको शान्त रक्खें वहाँ साथ ही परोपकार वृत्ति को एकदेश की सीमा से बाहर लेजावे क्योंकि पुरुष सूक्त ईश्वर को देशविशेष वा प्राणीविशेष से संबन्ध रखने हारा नहीं बताता। प्रत्युत बतलाता है कि ईश्वर विश्व वा ब्रह्माण्ड का रचक है और सर्व प्राणी मात्र का उत्पादक है। इससे वह व्यापक और सर्व देशीय भावों को दिमाग में धारण करेगा, उसके लिये १०८ बार कड़ी प्रतिज्ञा मानो कर रहा है। दीक्षा के समय बौद्ध तथा ईसाई लोग सिरपर इसी भाव से जल छींटा करते हैं। संन्यासी प्रतिज्ञा कर रहा है कि उसने—

[१] पुत्रैषणा [२] वित्तैषणा [३] लोकैषणा का त्याग करदिया।

पृष्ठ २५३ पर विधान है कि मौन होकर वह पांच सात बाल जो शिखा के रक्खे थे वह भी काट डाले। और यज्ञोपवीत हाथ में लेकर जलकी अञ्जलि भर शिखा और यज्ञोपवीत सहित जल में डाल देवे।

इसका प्रयोजन यह है कि शिखा और सूत्र का जो उद्देश्य था वह तीन आश्रमों में पूर्ण होचुका। अब वह किसी देशविशेष की उपजाति से

संबन्ध नहीं रखता है और न उसने ज्ञान, कर्म, उपासना के लिये कर्म करने हैं वह तो अब ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होने वाला है। जो बाह्य साधनों से नहीं मिलता इस लिये उन बाह्य चिन्हों की जरूरत नहीं। और जो पृष्ठ २५२ पर नाभि मात्र जल में खड़े रहकर मन्त्र जपनेका विधान है उसका प्रयोजन यह है कि संसार का मोह जल की नाईं डुबाने वाला है तथा विषयभोग की प्रबल इन्द्रियाँ अब शान्त हैं। जल से, बाहर निकलने पर वह "संन्यस्तं मया" इत्यादि वाक्यों से दर्शा रहा है कि मैंने "सब कुछ छोड़ दिया" अर्थात् मोह सागर को जो आत्मज्ञान को डुबाने वाला था छोड़ दिया है। प्रश्न होसकता है कि नाभि तक ही जल में खड़ा क्यों रहे! छाती तक क्यों न रहे? इसका उत्तर यह है कि विषय भोग की प्रबल इन्द्रियाँ नाभि से नीचे हैं, यह भी दर्शाना है कि विषय वासना अब शान्त हुई "संन्यस्तं मया" कहते हुए जो जलाञ्जली छोड़ी जाती है, यह दृढ़ त्याग के भाव को प्रकट करती है। क्योंकि जो वह मुख से कह रहा है उसी को संकेत द्वारा दर्शा रहा है। जब अञ्जली में जल लेकर फैंकदें तो फिर उसी जल को मुठ्ठी में कभी हम इकठ्ठा नहीं कर सकते, इसलिये दृढ़ त्याग की प्रतिज्ञा के भाव को प्रकट करने के लिये ऐसा किया जाता है।

नीतिकारों ने सच कहा है कि राजा तो अपने ही देश में पूजा को प्राप्त होता है परन्तु विद्वान् संन्यासी सर्वत्र। उस का कारण यह है कि राजा धनी तो अपनी प्रजा की ही रक्षा करने को है और संन्यासी का धर्म एक मात्र मनुष्य जाति में सत्य ज्ञान और प्रेम (आनन्द) बढ़ाने का है इस समय "यूनिवरसल ब्रदरहुड" (सर्वजनीन भ्रातृभाव) फैलाने की कितनी आवश्यकता समझी जाती है, परन्तु यही काम संन्यासी का है। आज तपोहीन, मान के व्यसनी लोग इस भाव को पूर्ण रूप से नहीं फैला सकते। पुराने समय में सच्चे संन्यासी इसको कर पाते थे और उसके साथ युक्ति पूर्ण सत्यज्ञान भी फैलाते थे॥

संन्यासी को जो कुसुंबी वा गेरुवे वस्त्र धारण करने का विधान है, उस वेष का एक लाभ तो यह है कि सब उनको जान सकें। इस के अतिरिक्त गेरुवे रँग में लोहू को शान्त करने और खुजली आदि दूर करने की शक्ति है। इस विषय में आयुर्वेद का मत यह है कि:—

सुवर्णं गैरिकं स्निग्धम् मधुरम् तुवरं मतम् ।
चक्षुष्यं शीतलं वल्यं व्रणरोपणकारणम् ।
विशदं कान्तिकृत्प्रोक्तं दाहं पित्तं कफं जयेत् ।
हिक्कां रक्तरुजं जूर्तिंविषं विस्फोटकं वमिम् ।
अग्निदग्धव्रणं चार्शं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

[शालिग्राम निघण्टु भूषण पृष्ठ ७३१]

अर्थ—पीला गेरू-स्निग्ध, मधुर, कषेला, नेत्रों को हितकारी, शीतल, बलकारक, व्रणरोपण कर्ता, विशद, कान्तिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रुधिर विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्निदाह, व्रण, बवासीर और रक्तपित्त को हरने वाला है।

गेरू की दो जातियाँ हैं पीली और लाल इन में से पीले गेरू के गुण ऊपर दिये जा चुके हैं आगे लाल गेरू के गुण भी लिखे जाते हैं।

गैरिकं द्वितीयं स्निग्धं मधुरं तुवरं मतम् ।
चक्षुष्यं दाहपित्तासृक्कफहिक्काविषापहम् ।

शालिग्राम निघंटु भूषण पृष्ठ ७३२

अर्थ—दूसरे प्रकार का गेरू-स्निग्ध, मधुर, कषेला, नेत्रों को हितकारी तथा दाह, रक्त पित्त, कफ, हिचकी और विष का हरने वाला है॥

कुसुम्ब के गुण भावप्रकाश में लिखे हैं कि:—

कुसुम्भं वातलं कृच्छ्रकृमिपित्तकफापहम् ॥

अर्थ—कसूम, वातकर्ता तथा मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त और कफनाशक है।

उक्त दोनों वस्तुओं के आयुर्वेदानुसार गुण ऊपर बताये गये हैं जिससे स्पष्ट है कि दोनों ही वस्तुओं का उपयोग, रक्तशोधक, नेत्र की दृष्टि को बलदाता तथा स्थिर कर्ता, कफ के विकारों को दूर कर्ता तथा विशद होने से खुश्की को दूर करके त्वचा को फटने से बचाने वाला है और प्रायः यह सब ही उपद्रव वृद्धावस्था में होते हैं। अतः गेरू और कुसुम्भ के उपयोग भी विज्ञान की युक्तियों के अनुसार ही हैं।

इति संन्यास प्रकरण व्याख्या ॥

अथान्त्येष्टिसंस्कारविधिः ॥

अन्त्येष्टि संस्कार उस को कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिस के आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग भी कहते हैं ॥

भस्मान्त ꣳ शरीरम् ॥ यजु० अ० ४० मं० १५ ॥
निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० ॥

इस शरीर का संस्कार " भस्मान्तम् " अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥१॥ शरीर का आरम्भ ऋतुदान से और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २ ॥ (प्रश्न) जो गरुड़ पुराण आदि में दशगात्र एकादशाह द्वादशाह सपिण्डीकर्म मासिक, वार्षिक, गया श्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं (उत्तर) हाँ अवश्य मिथ्या हैं क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का, वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है (प्रश्न) मरने के पीछे जीव कहाँ जाता है (उत्तर) यमालय को (प्रश्न) यमालय किस को कहते हैं (उत्तर) वाय्वालय को (प्रश्न) वाय्वालय किस को कहते हैं (उत्तर) अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में जो यमलोक लिखा है वह झूठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से; जो यम की कथा लिख रक्खी है वह भी सब मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों के नाम हैं ॥

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० १५ ॥
शकेम वाजिनो यमम् । ऋ० मं० २ सू० ५ मं० १ ॥
यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥ यजु० अ० ८ । मं० ५७ ॥

वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८ सू० २४ मं० २२ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ सू० १६ मं० ४६ ॥

यहाँ ऋतुओं का यम नाम है ॥ १ ॥ यहाँ परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥ यहाँ अग्नि का नाम ॥ ३ ॥ यहाँ वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं ॥ ४ ॥ यहाँ भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥ यहाँ परमेश्वर का नाम यम है । इत्यादि पदार्थों का नाम यम है इस लिये पुराण आदि की सब कल्पनाएँ झूठी हैं ॥ ६ ॥

विधिः-- संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥ १ ॥ दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥ २ ॥ यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥ ३ ॥ वितस्त्यवाक् ॥ ४ ॥ केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ५ ॥ द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥ ७ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० १ । अथैतां दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० २ सू० १ ॥

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियाँ उसको स्नान करावें चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीनवस्त्र धारण करावें जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिस के पास कुछ भी न हो तो उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आध मन से कम घी न देवें और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तोल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक २ मण घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा, कपूर भी यथाशक्ति ढाल पलाश आदि के

पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावें। तत्पश्चात मृतक को वहाँ श्मशान में ले जाय यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे वह श्मशान का स्थान वस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो वहाँ भूमि को खोदे मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें, शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥ १ ॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊँचा रहे ॥ २ ॥ उस वेदी का परिमाण-पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥ ३ ॥ और नीचे आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे उस वेदी में थोड़ा २ जल छिड़कावे यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उसमें नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियाँ चिने जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियाँ धरे लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियाँ चिने जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत तपा और छानकर पात्रों में रक्खे उस में कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे लम्बी २ लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चाँदी सोने के अथवा लोहे के हों जिन चमसों में एक छटाँक भर से अधिक और आधी छटाँक से न्यून घृत न आवे उन्हें खूब दृढ़ बन्धनों से दण्डों के साथ बाँधे पश्चात् घृत का दीपक कर के कपूर में लगाकर शिर से आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य २ में अग्निप्रवेश करावे, अग्निप्रवेश करा के:—

ओमग्नये (१) स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं लोकाय

---

(१) इन शब्दों का अर्थ सरल है और पूर्व कर भी आए ॥

स्वाहा । ओमनुमतये स्वाहा । ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० ३ सू० २५ ।

इन पांच मन्त्रों से आहुतियाँ देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवे तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जायँ । जहाँ "स्वाहा" आवे वहाँ आहुति छोड़ देवें ॥

अथ वेदमन्त्राः॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥ २ ॥ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः । आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥ अग्नेर्वर्म परिगोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च । नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥ ४ ॥ यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः । कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० मं० १० सू० १६ मं० ३ । ४ । ५ । ७ । १३ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ॥ यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥ ७ ॥ मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहाऽन्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥ ८ ॥ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः

संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ॥९॥ अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य स्वाहा ॥१०॥ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥११॥ संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥१२॥ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥१३॥ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा ॥१४॥ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत । स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा ॥१५॥ यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥१६॥ ऋ० मं० १० सू० १४ ॥ कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् । हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥१७॥ ऋ० मं० १० सू० २० मं० ९ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने १७ सत्रह २ आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥ अग्नये स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥ वायवे स्वाहा ॥५॥ दिवे स्वाहा ॥६॥ सूर्याय स्वाहा ॥७॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥८॥ चन्द्राय स्वाहा ॥९॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥१०॥ अद्भ्यः स्वाहा ॥११॥ वरुणाय स्वाहा ॥१२॥ नाभ्यै

स्वाहा ॥१३॥ पूषाय स्वाहा ॥ १४ ॥ वाचे स्वाहा ॥ १५ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥१६॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥१८॥ चक्षुषे स्वाहा ॥ १९ ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥ २० ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥२१ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥२२॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ त्वचे स्वाहा ॥२४॥ त्वचे स्वाहा ॥ २५ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २७ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३४ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ रेतसे स्वाहा ॥ ३८ ॥ पायवे स्वाहा ॥ ३९ ॥ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ प्रयासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ संयासाय स्वाहा ॥ ४२ ॥ वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ शुचे स्वाहा ॥ ४५ ॥ शोचते स्वाहा ॥ ४६ ॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ तप्ताय स्वाहा ॥ ५२ ॥ घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ भेषजाय स्वाहा ॥ ५६ ॥ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ३९ ॥

इन ६३ तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् पृथक् देके निम्न लिखित मन्त्रों से आहुति देवें ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा

शरीरैः स्वाहा ॥१॥ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥२॥ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥३॥ तपसा ये अनाधृष्यास् तपसा ये स्वर्ययुः। तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥४॥ ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः॥ ये वा सहस्रदक्षिणास् ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥५॥ स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी यच्छास्मै शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥६॥ अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ॥७॥ यमः परोवरो विवस्वांस्ततः परं नातिपश्यामि किञ्चन। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान स्वाहा ॥८॥ अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते। उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥९॥ इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे। ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् स्वाहा ॥१०॥ अथर्व० कां० १८। सू० २॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकरः—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥१॥ पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥२॥ य एतस्य पथो गोप्तारस् तेभ्यः स्वाहा ॥३॥ य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥५॥ ख्यात्रे स्वाहा ॥६॥ अपाख्यात्रे स्वाहा ॥७॥

अभिलालपते स्वाहा ॥८॥ अपलालपते स्वाहा ॥ ९॥ अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥११॥ अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥ आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता । आसीदताꣳ सुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ यमं गाय भङ्ग्य श्रवो यो राजाऽनपरोध्यः । येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५ ॥ हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान् । अश्वाननश्नतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥ यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत् । यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥१७॥ यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैकऋषिर्विजानते स्वाहा ॥ १८ ॥ त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत् । गायत्री त्रिष्टुप्छन्दाꣳसि सर्वा ता यम आहिताः स्वाहा ॥१९ ॥अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् । वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥ वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः । ये चेह सत्ये नेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ते राजन्निह विविच्यन्तेथा यान्ति त्वामुप । देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणाँश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥ यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः । अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥ उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहꣳ रिषम् । एताꣳ स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥ यथा ऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः । यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥ न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव । अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥ तैत्ति० प्रपा० ६ अनु० १—१० ॥

इन छब्बीस आहुतियों को करके ये सब (ओम् अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से लेके (मृत्यवे स्वाहा) तक, एक सौ इक्कीस आहुति हुईं अर्थात् ४ जनों की मिल के ४८४ चारसौ चौरासी और जो दो जने आहुति देवें तो २४२ दोसौ बयालीस; यदि घृत विशेष हो तो पुनः इन्हीं एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायँ यावत् शरीर भस्म न हो तावत् देवें पुनः सब जने वस्त्र व प्रक्षालन स्नान करके जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उस के घर की मार्जनलेपन प्रक्षालनादि से शुद्धिकरके स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ और ईश्वरोपासना करके इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहाँ अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहाँ स्वाहा शब्द का उच्चारण कर के सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिस से मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्न रहे यदि उस दिन रात्रि होजाय तो थोड़ी सी आहुति देकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्ति वाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुतियाँ देवें तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठा के उस श्मशानभूमि में कहीं पृथक् रख देवे, बस इस के आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है क्योंकि पूर्व (भस्मान्तꣳ शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं है, हाँ यदि वह संपन्न हों तो अपने जीते जी वा मरेपीछे उनके सम्बन्धी वेदविद्या, वेदोक्तधर्म का प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्तधर्मोपदेशक प्रभृति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है ॥

इत्यन्त्येष्टिसंस्कारविधिः ॥

इति श्री १०८ दयानन्द सरस्वती कृत मूल संस्कारविधिः ।

अन्त्येष्टिसंस्कार के संस्कृत भाग की क्रम से व्याख्या—

(संस्थिते) मरजाने पर (भूमिभागम्) पृथिवी के एक देशको (खानयेत) खुदावे (दक्षिणपूर्वस्यां, दिशि) आग्नेयी दिशा में, (दक्षिणापरस्यां, वा) अथवा नैऋती दिशा में ॥ १ ॥ (दक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जाय वह (प्रागुदक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा के पूर्व की ओर झुका हुआ हो (वा) अथवा (प्रत्यग् दक्षिणाप्रवणम्, इति, एके) कोई आचार्य मानते हैं कि वह नैऋती दिशा की ओर हो ॥ २ ॥ (यावान्, उद्बाहुकः, पुरुषः) जितने परिमाण में ऊँचे को भुजा उठाने वाला मनुष्य होता है (तावद्, आयामम्) उतने परिमाण में वह गढ़ा लम्बा होना चाहिये ॥ ३ ॥ (वितस्त्यवाक्) १२ अङ्गुल नीचे खुदना चाहिए ॥ ४ ॥ (पुरस्तात्) पूर्व (इति, उक्तम्) यह कह चुके हैं कि (केशश्मश्रुनखलोमानि) शिर के बाल, डाढ़ी, मोंछ, नख, और रोम, मृतक के कटवा देने चाहिएँ ॥ ५ ॥ (द्विगुल्फम्) बहुत (बर्हिः, आज्यम्, च) कुशा और घृत, इसमें चाहिएँ ॥ ६ ॥ (अत्र) इस प्रेतकर्म में (दधनि) दही में (सर्पिः) घृत को (आ, नयन्ति) मिला कर लाते हैं (आहुति देनेको) (एतत्, पित्र्यम्) यह पितृसम्बन्धिकर्म (पृषदाज्यम्) पृषदाज्यनामक है ॥ ७ ॥ (अथ) फिर (एतां, दिशम्) उस दक्षिण दिशा की तरफ (अग्नीन्, नयन्ति) अग्नि ले जाते हैं (यज्ञ पात्राणि, च)और यज्ञपात्र भी लेजाने चाहिएँ ॥ ८ ॥

हे जीव ! (धर्मेण) धर्म–स्वकृतकर्म के अनुकूल (चक्षुः) तेरा नेत्र, अपने कारणी भूत (सूर्यम्) सूर्य को (गच्छतु) प्राप्त हो और (आत्मा) प्राण (वातम्) बाह्यवायु को प्राप्त हो, और यदि तू ने मुक्त्यनुकूल कार्य्य नहीं किए हैं तो तू (द्यां, च, गच्छ) अन्तरिक्ष को प्राप्त हो (चकारो वार्थकः) अथवा (पृथिवीं, च) पृथिवी को ही प्राप्त हो (वा) अथवा (अपः, गच्छ) जलों को प्राप्त हो (यदि, तत्र) जो वहाँ (ते, हितम्) तेरा कर्मफल, ईश्वरद्वारा स्थापित हुआ हो तो, अथवा

कर्मानुकूल (शरीरैः) शरीर के अङ्गों को ग्रहण करके (ओषधीषु) ओषधियों में (प्रति, तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥१॥

हे जीव! तेरा शरीर ही उत्पन्न होकर मरता है और तेरा (भागः) शरीरादि से विलक्षणस्वरूप (अजः) अजन्मा-नित्य है, तू (तम्) उस अपने स्वरूप को (तपसा) दानाध्ययनादिरूप तपसे (तपस्व) ईश्वर करें कि तप्त करे। (ते) तेरे (तम्) शरीररूप भाग को (शोचिः) अग्निहोत्र की ज्वाला (तपतु) तपावे और (ते) तेरे (तम्) उस जीवरूप भाग को (अर्चिः) ईश्वरीय प्रकाश, प्रकाशित करे। हे (जातवेदः) परमात्मन्! (ते) तेरे अधीन (याः) जो (शिवाः, तन्वः) कल्याण करने वाली मनुष्यों की मूर्तियाँ हैं (ताभिः) उन्हीं से (एनम्) इस प्रेत जीव को (वह) लेजा अर्थात् मनुष्यों की योनि ही दे (उ) और (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक को इसे प्राप्त करा ॥२॥

हे (अग्ने) परमात्मन्! (यः) जिस जीवका शरीर भाग (ते) तेरी आज्ञा के अनुकूल (आ,हुतः) चिता में रक्खा हुआ है और (स्वधाभिः) घृतादि हवनीय पदार्थों से (चरति) व्याप्त होरहा है, उस जीवकी (अव) रक्षा कर और (पितृभ्यः) माता पिताओं की सेवा के लिए (पुनः) फिर भी (सृज) उत्पत्ति कर (शेषः) शरीर के नाश होजाने पर अपने स्वरूप भूत जीवसे अवशिष्ट हुवा यह (आयुर्वसानः) आयु को धारण करता हुआ (उप, वेतु) हमारे समीप प्राप्त हो और हे (जातवेदः) उत्पन्नपदार्थमात्र के ज्ञाता परमात्मन्! (तन्वा) सुन्दर शरीर के साथ यह जीव (सं, गच्छताम्) संगत हो ॥३॥

हे जीव! अपने (वर्म) शरीररूपी ढक्कन या कवच को (गोभिः) गोविकार-घृतादि पदार्थों के साथ (अग्नेः) अग्नि से (परि, व्ययस्व) सब ओर से भस्मी भूत कर। और द्वितीय जन्म में ब्रह्मचर्यादिसम्पादन करके (पीवसा, मेदसा) स्थूल मांसादि से अपने आपको (सम्, प्र, ऊर्णुष्व) अच्छे प्रकार ढक। (न, इत्) नहीं तो (त्वा) तुझे (हरसा,

धृष्णुः) अपने तेज से दबाने वाला [जहृप्राणाः] घृतादि से वार २ प्रसन्न जैसे होने वाला [दधृक्] प्रगल्भ [वि, धक्ष्यन्] विशेष कर जलाने वाला यह अग्नि, तेरे शरीर को [परि, अङ्ख्याते] बहुत वार प्राप्त होगा अर्थात् यदि तू सत्कर्मों से जीवन्मुक्त न हुआ तो वार २ जन्म मरण को ग्रहण करना होगा ॥४॥

हे (अग्ने) भौतिकाग्ने ! (त्वम्) तूने (यम्) जिस शरीर को (सम्, अदहः) अच्छे प्रकार जला दिया है (तम्, उ) उसी शरीर को (पुनः) फिर (निर्वापय) शान्त कर अर्थात् परिमित अग्नि जलाना चाहिए जो नियत समय में शरीर को जला कर शान्त कर दे (अत्र) इस स्थान में (कियाम्बु) कुछ जल (रोहतु) उत्पन्न हो और (व्यल्कशा, पाकदूर्वा) विविधशाखावाली पकी हुई दूब पैदा हो ॥ ५ ॥ हे जीव ! (प्रवतः) धर्मात्माओं को (महीः) सुखोचित भोग प्रदेशों में (अनु, परेयिवांसम्) क्रम से मरणान्तर प्राप्त कराने वाले (बहुभ्यः) बहुत से सुखार्थियों के लिए (पन्थाम्) सन्मार्ग को (अनुपस्पशानम्) बतलाने वाले (यमम्) जन्म मरणादि द्वारा संयम में रखने वाले (जनानां, राजानम्) सब मनुष्यों के राजा को, जिस से कि (वैवस्वतं, संगमनम्) सूर्यादि की अच्छी तरह गति होती रहती है, उसको (हविषा) पुरोडाशादि पदार्थों से (दुवस्य) आज्ञापालनरूप सेवा किया कर ॥ ६ ॥ (प्रथमः) सब में मुख्य (यमः) परमात्मा (नः) हम प्रजाओं के (गातुम्) शुभाशुभकर्मों को (वि, वेद) जानता है । अतिशयज्ञान के सम्बन्ध से परमात्मा का (एषा, गव्यूतिः) यह मार्ग-शुभाशुभकर्म जानने का मार्ग (न, अप, भर्तवै, उ) किसी से भी नहीं हटाया जा सकता (यत्र) जिस ईश्वरनिर्दिष्ट मार्ग में (नः) हमारे (पूर्वे, पितरः) पूर्व के पितृ लोग (परेयुः) गए हैं (एना) इसी मार्ग से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुए सब प्राणी (पथ्याः, स्वाः) अपने २ अनुकूल कर्मफलों को (अनु) पीछे से प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ हे जीव ! (मातली) समृद्धिशाली पुरुष, जैसे (कव्यैः) कवियों से (स्वाधे यत्) और (अङ्गिरोभिः) प्राणविद्या के जानने वालों से जैसे (यमः) इन्द्रियों का संयम करने वाला

और (ऋक्वभिः) ऋचा वाले ईश्वरीय स्तोत्रों से जैसे (बृहस्पतिः) बड़ा विद्वान् (वावृधानः) प्रवृद्ध-प्रसन्न होता है, वैसे तू भी हो (च) और (यान्) जिन को (देवाः) विद्वान् लोग (वावृधुः) प्रसन्न करते हैं (च) और (ये) जो (देवान्) विद्वानों को, प्रसन्न करते हैं, वे परस्पर सुखी रहते हैं। उनमें से (अन्ये) एक देवता लोग (स्वाहा) स्वाहा शब्दोच्चारण पूर्वक हवनआदि से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे पितृ लोग आदि (स्वधया) पितृ आदिकों के लिए प्रदेय अन्नादि से प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ (यम) इन्द्रियों के संयम करने वाले जीव ! यदि तेरे कर्मों के फल भोगने अवशिष्ट हैं तो (इमम्, प्रस्तरम्) इस विस्तीर्ण संसार को फिर (आ, सीद) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और [अङ्गिरोभिः, पितृभिः] प्राणविद्या जानने वाले जगत् के रक्षक लोगों के साथ [सं, विदानः) मेल को प्राप्त होकर, विचर । (त्वा) तुझे (कविशस्ताः) विद्वानों से प्रशंसित (मन्त्राः) वेद मन्त्र (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों । और (राजन्) सद्गुण से प्रकाशित हुआ तू (एना, हविषा) ऐसे हवनीय पदार्थों से, लोगों को (मादयस्व) प्रसन्न कर ॥९॥ हे (यम) संयमी जीव ! पुनः तू (इह) इस संसार में (यज्ञियेभिः) यज्ञोपयोगी (अङ्गिरोभिः) प्राण विद्या से सहायक (वैरूपैः) विविध प्रकार के पदार्थों के साथ (आ, गहि) आ । और अपने कार्यों से प्राणियों को मादयस्व) प्रसन्न कर । (यः, ते, पिता) जो तेरा पालक है उस (विवस्वन्तम्) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा का, मैं (हुवे) अपने मन में स्मरण करता हूं, वह परमात्मा (अस्मिन्, बर्हिषि, यज्ञे) इस कुशयुक्त यज्ञ के होते हुए (आ, निषद्य) स्मृत्यारूढ होकर, हमें प्रसन्न करे ॥१०॥ (यत्र) जिस स्थान में (नः) हमारे (पूर्वे, पितरः) पूर्वज पिता पितामहादि (परेयुः) गए हैं (पूर्व्येभिः, पथिभिः) अनादि काल से प्रवृत्त उन्हीं श्रेष्ठ मार्गों से हे जीव ! (प्रेहि २) उसी स्थान को तू अच्छे प्रकार जा । और (उभा, राजाना) दोनों प्रकाशमान (स्वधया, मदन्ता) शुद्ध अन्नादि दान से प्रसन्न होने वाले (यमम्) परमात्मा (च) और (वरुणं, देवम्)

अपने शुद्ध आत्मदेव को (पश्यसि) ईश्वर करे कि देखे ॥ ११ ॥ हे जीव ! (अवद्यम्) पापको (हित्वाय) छोड़कर अपने कर्मानुकूल (पुनः) फिर (अस्तम्) इस संसार रूप गृह में (एहि) आ (पितृभिः) माता पिताओं के साथ (संगच्छस्व) संगति कर (सं,यमेन) इन्द्रियनिरोध से और (इष्टापूर्तेन) यज्ञ, तथा कूपादिनिर्माणरूप परोपकार कर्मों से (परमे, व्योमन्) उत्कृष्ट-स्थान विशेष में स्थितहो । ईश्वर करे कि (सुवर्चाः, तन्वा) सुन्दर चमकने वाले शरीर के साथ (संगच्छस्व) तू संगत हो ॥ १२ ॥ हे श्मशान में आए हुए पुरुषो ! (अपइत,) तुम श्मशान से हटजाओ (वीत) और विशेष करके चलेजाओ (वि, सर्पत, च) और इस स्थान को छोड़ कर दूर २ देशों में फैल जाओ (पितरः) पूर्वज संरक्षकों ने (अस्मै) इसी मृतक के लिये (एतं, लोकम्) इस स्थान को (अक्रन्) बनाया है (यमः) परमात्मा ने भी (अस्मै) इसी मृतक के लिये (अहोभिः अद्भिः अक्तुभिः) दिन, रात और जल ही से (व्यक्तम्) शोधित इस (अवसानम्) दहनस्थान को (ददाति) दिया है ॥ १३ ॥ हे जीवो ! (यमाय) परमात्मा की आज्ञा पालने के लिए (सोमम्) सोमलतादि ओषधियों को (सुनुत) खैंचाकरो फिर (यमाय) ईश्वराज्ञापालनार्थ (हविः) हवनीय पदार्थों को (जुहुत) अग्नि में छोड़ा करो (अग्निदूतः) अग्नि है दूत-हवनीयवस्तुओं को पहुंचाने वाला जिसमें ऐसा यह (अरंकृतः) बहुत से द्रव्यों से अलंकृत (यज्ञः) यज्ञ (ह) निश्चय रूप से (यमम्) यम को-वायुमण्डलादि को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

हे जीवो ! (यमाय) वायु शोधन वा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (घृतवत्) घृतमिश्रित (हविः) हवनीय पदार्थों का (जुहोत) हवन किया करो (च) और (प्रतिष्ठत) ईश्वर की उपासना भी किया करो क्यों कि (देवेषु) सब देवों में (सः) वह ईश्वर ही (नः) हमें (प्रजीवसे) उत्तम रूप जीने के लिये (दीर्घम्, आयुः) दीर्घ आयु को (आ,यमत्) देगा ॥ १५ ॥ हे जीवो ! (यमाय, राज्ञे) सब जगत् के राजा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (मधुमत्तमं, हव्यं) बहुत ही मीठे होम के योग्य पदार्थों

को जुहोतन) होमाकरो। (पूर्वजेभ्यः) सृष्टि की आदि में उत्पन्न (पूर्वेभ्यः) हम सब से पहले वर्तमान (पथिकृद्भ्यः) सन्मार्ग के निरूपक (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिए (इदं नमः) यह हमारा प्रत्यक्ष रूप से नमस्कार हो, ऐसा व्यवहार करो॥ १६ ॥ हे जीवो! (यामः) याति गच्छति अस्मिन् इति यामः संसाररूपो रथः। प्राणिसमुदाय जिस में बैठ कर बहा जारहा है ऐसा संसार रूप रथ (कृष्णः) काला तमोगुणमय और (श्वेतः) सत्व गुणमय (अरुषः) प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित (ब्रध्नः) बहुत बड़ा ऋजुः धीरे २ चलने वाला (उत) और (शोणः) रक्तवर्ण-रजोगुणमय (यशस्वान्) ऐश्वर्य कीर्ति वाला वा अनेक प्रकार के धनवाला है इस (हिरण्यरूपम्) सुवर्णादि से युक्त संसाररूप रथ को (जनिता) सर्वोत्पादक परमात्मा ने ही (जजान) उत्पन्न किया है॥ १७ ।

(साधिपतिकेभ्यः) जीव सहित (प्राणेभ्यः) प्राणोंके लिये (स्वाहा) सुहुत हो, वा सत्यक्रिया हो, वा स्वाहाशब्द का प्रयोग किया करो। आगे के सब शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं। अग्रिम (ब्रह्महत्यायै) का अर्थ है ब्रह्महत्या की निवृत्तिके लिए (द्यावापृथिवीभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी की शुद्धि के लिये इत्यादि श्री स्वामीजी कृत यजुर्वेद भाष्य में स्पष्ट है॥१॥

(एकेभ्यः) किन्हीं २ पितृलोकों के लिए, उनकी रुचि के अनुसार (सोमः, पवते) सोमलता का रस दिया जाता है एके (कोई) (घृतम्) घी का ही विशेष कर (उपासते) उपभोग करते हैं और (येभ्यः) जिनके लिए (मधु) शहद आदि मिष्ट पदार्थ (प्र, धावति) प्राप्तहोता है, वे सब उत्कृष्ट कोटिके पुरुष हैं, ईश्वर करे कि हे जीव! तू (तान्, चित्, एव, अपि) उन्हीं को ही (गच्छतात्) प्राप्त हो॥२॥

(ये, चित्) जो कोई (पूर्वे) पूर्वज (ऋतसाताः) सत्य का व्यवहार करने वाले हैं, (ऋतजाताः) यज्ञ करने वाले हैं (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले-प्रचार करने वाले हैं, ऐसे ही (तपस्वतः, ऋषीन्) तपस्वी

ऋषियों को, वा (तपोजान्, अपि) उन तपस्वियों से [उत्पादित लोकों को, हे (यम) संयम करने वाले जीव ! ईश्वर कृपा से तू (गच्छतात्) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

(तपसा) अपने धर्मार्थ क्लेश सहन करने से (ये) जो (अनाधृष्याः) किसी से नहीं दबाए जा सकते, [ये] जो [तपसा] शीतष्णादि द्वन्द्व सहन रूप तप से (स्वर्येयुः) स्वर्ग-उत्तम लोकों को प्राप्त हुए (ये) जो (महः) बड़ा (तपः) तप (चक्रिरे) कर चुके हैं ० शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

(ये, शूरासः) जो शूरबीर (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) लड़ाई करते हैं और (ये) जो (तनूत्यजः) शरीर छोड़ देते हैं । (वा) अथवा (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) यज्ञादिकों में हजारों वस्तुओं का दान करते हैं ० शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

हे (पृथिवि) पृथिवि ! (अस्मै) इस मृतकादि के लिए (अनृक्षरा) कण्टकादिरहित (निवेशनी) विस्तृत स्थान देने वाली (स्योना) सुख देने वाली, ईश्वर करे कि (भव) हो और (अस्मै) इस जीव के लिए (सप्रथाः) विस्तीर्ण (शर्म) सुख को (यच्छ) दे । अर्थात् मृतकादि के लिए विस्तृत और सब तरह अनुकूल पृथिवी होनी चाहिये ॥ ६ ॥

हे (जीवाः) जीवो ! (इमम्) इस जीवके देह को (गृहेभ्यः) घरों में ही रहने के लिए (अत्र) इस के कर्मों के प्रतिकूल (अरुधन्) तुम लोगों ने घेर रक्खा था, परन्तु यह कर्मानुसार मरण पा चुका है यह लौट कर नहीं आसकता (ततः) इस कारण से (परिग्रामादितः) फिर अपने समूह आदि बना कर (निर्वहत) संसार में निर्वाह करो । (प्रचेताः, यमस्य) उत्कृष्ट ज्ञान वाले परमात्मा का (मृत्युः दूतः, आसीत्) मृत्युदूत है, उस ने (पितृभ्यः) चन्द्रकिरणों में वा वायु मण्डल में जाने के लिए (असून्) इसके शरीरस्थ प्राणों को (गमयाञ्चकार) पृथक् कर दिया है अतः अब शोक करना व्यर्थ है ॥ ७ ॥

हे जीवो ? तुम ऐसा समझो कि— (यमः) सब जगत् को नियम में रखने वाला (परोवरः) बड़ों से भी बड़ा (विवस्वान्) सूर्यवत् तेजस्वी,

परमात्मा है (ततः, परे) उस से बड़ा (किञ्चन) किसी वस्तु को भी (न, अति, पश्यामि) मैं ठीक प्रकार से नहीं देखता हूं । (यमे) परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त ही (मे, अध्वरः) मेरा यज्ञादि परोपकारी कर्म (अधि, नि, विष्टः) स्थापित हुआ है और (भुवः) पृथिव्यादि मण्डल को भी (विवस्वान्) परमात्मा ने ही (अनु, आ, ततान) अनुकूल रूप से अच्छे प्रकार विस्तृत किया है ॥ ८ ॥

(असृताम्) प्रलयकाल पर्यन्त नित्यरूप से रहने वाली सरण्यू-सूर्य की गति को (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के कार्यसम्पादनार्थ, विद्वानों ने (सवर्णाम्, कृत्वा एकसा स्वरूप वाली समझ करके (अप, अगूहन्) अपने हृदय में छुपा रक्खा है अर्थात् जान लिया है और उस को (विवस्वते, अददुः) सूर्य के अधीन समझा है (उत) और (यत्, तत्, आसीत्, सरण्यूः) जो वह प्रसिद्ध सूर्य की गति है, वही (अश्विनौ) प्राण और अपान वायु को (अभरत्) पोषण करती है और (द्वा, मिथुना) दो दिन रात्रि आदि रूप जोड़ों को (अजहात्, उ) बनाकर छोड़ती ही रहती है, अर्थात् दिन रात्रि की तरह, स्त्री और पुरुषों का प्रतिदिन वियोग और संयोग होता ही रहता है इस से शोक करना व्यर्थ है ॥ ९ ॥

हे जीवगण ! (ते, असुनीताय) तेरे--प्राणों को प्राप्त हो चुकने वाले मृतशरीर को (वोढवे) वहन करने के लिए—सद्गति प्राप्त करने के लिए (इमौ, वन्ही) स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की अग्नियों को मैं ईश्वर (युनज्मि) युक्त करने की आज्ञा देता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों वन्हियों के द्वारा तू अपने शरीर को (यमस्य, सादनम्) वायु मण्डल के स्थान को (च) और (समितीः) श्रेष्ठ गतियों को (अव, गच्छतात्) प्राप्त हो ॥ १० ॥

(रयिमते) अरोगता और हीरा आदि रूप धन सम्पादन करने वाले (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो । (रोगों का नाशक और हीरा आदि में ज्योति पहुंचाने वाला अग्नि ही है) ॥ १ ॥

हे (पुरुषस्य, सयावरि) पुरुष के—सूक्ष्मशरीर विशिष्ट पुरुष के साथ आने वाली कर्म संस्कार शक्ति ! (अघानि) पापों को (अपेत्) हटाकर ही, हम (मृज्महे) आत्मशोधन की प्रतिज्ञा करते हैं (जरसः, पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (अत्र) इस संसार में (यथा) जिस प्रकार से (नः) हमारे बीच में (अपरः) कोई पाप (न, आयति) न आवे, वैसे ही हम निष्पाप होने की प्रतिज्ञा करते हैं ॥ २ ॥ (ये) जो (एतस्य) इस मृत पुरुष के लिङ्गशरीर के (पथः) मार्ग के (गोप्तारः) रक्षा करने वाले चन्द्रकिरण, वायु आदि हैं (तेभ्यः) उनके लिए० ॥ ३ ॥ (रक्षितारः) रक्षा करने वाले ओषधि आदि पदार्थ० शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥ (अभि, रक्षितारः) सब प्रकार से रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुण० शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥ (ख्यात्रे) कीर्तियों के प्रकट करने वाले के लिये । (अपाख्यात्रे) अपकीर्ति के प्रकट करने वाले के लिए । (अभि, लालपते) विद्वानों के संमुख जीवों के सुकृत को अच्छे प्रकार कहने वाले के लिए । (अप, लालपते) जीवों के सुकृत को न कहने वाले के लिए । (कर्मकृते, अग्नये) इस अग्निहोत्रादि कार्य के करने वाले अग्नि के लिए । (अत्र) यहाँ (यम्) जिस उपयुक्त वस्तु को (न, अधीमः) नहीं स्मरण करते हैं (तस्मै) उस वस्तु के लिये । (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अग्नि के लिए (सुवर्गाय, लोकाय) सुन्दर स्थान की प्राप्त्यर्थ । (यमः, ह, देवः) जगत् को नियम में रखने वाला प्रसिद्ध देव (सुमनाभिः, ऊतिभिः) प्रशंसनीय रक्षाओं के साथ, वा स्तुतियों से, हमें (आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । (वा) और (इह) यहाँ--संसार में (प्र, यताभिः) वेदों में नियत स्तुतियों से (अक्ता) सम्बद्ध--हमारी वेला हो । (मम) मुझ यजमान के (सु, प्र, यते, ह, बर्हिषि) अच्छे प्रकार नियमित और प्रसिद्ध विस्तीर्ण यज्ञों में (ऊर्जाय) अन्नादि की सिद्धि के लिये (जात्यै) उत्तमजाति--जन्म मिलने के लिये (शत्रु हत्यै) कामादि शत्रुओं का नाश करने के लिये, (किए हुए उन यज्ञों में) स्त्री समुदाय और पुरुषसमुदाय (आ, सीदताम्) ईश्वर करे कि बैठा करें ॥ १३ ॥

(यः) जो यम (कौष्ठ्यः) कोष्ठ—सम्पूर्ण धनके योग्य है और (एकः, इत्) एकही (अस्य, पार्थिवस्य, जगतः) इस पृथिवी में होने वाले चराचर जगत् का (वशी) वश में करने वाला है और (यः) जो (अन-परोध्यः, राजा) किसी से न रोका जाय ऐसा प्रकाशमान है उसी (यमम्) नियामक परमात्मा के प्रति, हे जीवगण! (भङ्ग्यश्रवः) संगीतशास्त्रोक्त रीति के योग्य और श्रवणीय गीतविशेष को (गाय) गान किया कर १४॥

"यमम्०" इत्यादि पूर्ववत्। (येन) जिस ईश्वर ने (आपः) जल वा जगत् के सूक्ष्म कारण, (नद्यः) नदियाँ (धन्वानि) जलशून्यदेश, धारण कर रक्खे हैं और (येन) जिसने (दृढ़ा, पृथिवी) इस स्थूल पृथिवी को धारण किया है, उसी के उद्देश्य से गान किया करो॥ १५॥

(यमः, राजा) जो जगत् का नियामक राजा है, वही (अनःशतः) प्राणाधार असंख्य जलोंका देने वाला हमें (दानम्) दानशक्ति को देवे। वही राजा (हिरण्यकक्ष्यान्) चमकीले प्रदेशों वाले (सुधुरान्) अच्छे भार वाले (हिरण्याक्षान्) सुन्दर—विशुद्ध व्यवहार वाले (अयःशफान्) लोहमय पदार्थ जिनमें गतिसाधन-शफ खुर जैसे हैं ऐसे (अश्वान्) वेगसे चलने वाले पृथिव्यादिमण्डलों के (अभि, तिष्ठति) सब तरफ़ से स्थित है॥ १६॥

(यमः) नियामक ईश्वरने (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण कर रक्खा है और (यमः) यम ने ही (इदं, विश्वं, जगत्) यह सब जगत्, धारण कर रक्खा है। (यमाय) यम के नियम के ही अनुकूल (सर्वम्, इत्) सब ही (तस्थे) स्थित है (यत्) जो कुछ (प्राणत्, वायुरक्षितम्) चेष्टा करने वाला—वायु से रक्षित है वह सब॥ १७॥

(यथा) जैसे (पञ्च) पांच—महाभूत पृथिव्यादि और (यथा) जैसे (पंचदश) १५ तिथियाँ (षट्) छः ऋतुएँ वसन्तादि और (यथा) जैसे (ऋषयः) वशिष्ठादि नामक चलने वाले ७ सात तारे, वर्तमान हैं तथा उस सब प्रकारको (सः) वह पुरुष (ब्रूयात्) कहनेको समर्थ होगा, (यः) जोकि (यमम्) ईश्वरीय नियम को (विद्यात्) जानेगा (यथा) जैसे

कि (एकः, ऋषिः) एक ही सर्वज्ञ परमात्मा (वि,जानते) अच्छी तरह जानता है, वैसेही ॥ ईश्वर ही सब जगत् का नियन्ता है-यथोचित रूप से प्रवर्तक है, ईश्वर के माहात्म्यको जानकर कुछ कह सकता है ॥ १८ ॥

(त्रिकद्रुकेभिः) त्रिकद्रुक नाम के यज्ञ विशेषों से (षट्, उर्वीः) छः वस्तुओं को अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधि, बल और सत्यवाणी इन ६ वस्तुओं को (पतति) प्राप्त होता है । (बृहत्) सब से बड़ा—ब्रह्म (एकम्, इत्) एक ही है (गायत्री, त्रिष्टुप्, छन्दाँसि) गायत्री, त्रिष्टुप् आदि नामक छन्द और (सर्वा, ता) सब जगत की वस्तुएँ (यमे, आहिता) परमात्मा में ही स्थित हैं (इति सायणाचार्यः) ॥ १९ ॥

(पञ्चभिः, मानवैः) मनुष्य सम्बन्धी पञ्च महाभूतों के संयोग वियोग से (अहरहः) प्रतिदिन (गाम्, अश्वम्, पुरुषं, जगत्) गौ, घोड़े, मनुष्य आदि रूप जगत् को (नयमानः) अवस्थान्तर को प्राप्त कराता हुआ (वैवस्वतः, यमः) सूर्यादि का नियामक ईश्वर (न, तृप्यति) तृप्ति—बस हो चुका—ऐसी तृप्ति को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

(वैवस्वते, यमे, राजनि) सूर्यादि नियामक परमात्मा के राजा होते हुए ही (ये) जो (इह) इस संसार में (च शब्दोवाक्यालङ्कारे उ शब्दश्च पादपूरणे) (सत्येन, इच्छन्ति) सचाई के साथ अपने व्यवहारों की इच्छा करते हैं (च) और (ये) जो (अनृतवादिनः) झूठ बोलने वाले हैं (ते, जनाः) वे उभय प्रकार के पुरुष, सुख और दुःख भोगने के लिये (वि, विच्यन्ते) पृथक् २ किए जाते हैं ॥ २१ ॥

हे (राजन्) प्रकाशमान परमात्मन् ! (इह) इस संसार में (ते) वे दोनों प्रकार के पुरुष-धार्मिक और अधार्मिक (वि, विच्यन्ते) मरणानन्तर पृथक् २ किये जाते हैं (ये, देवान्, नमस्यन्ति) जो विद्वानों को नमस्कारादि से सत्कृत करते हैं (च) और जो (ब्राह्मणान्, अप, चित्यति) ब्राह्मणों की-वेदवेत्ताओं की सेवा करते हैं, वे (त्वाम्, उप, यान्ति) तेरे सामीप्य को प्राप्त होते हैं (अथ) और जो विरुद्धाचारी हैं वे संसार में गिरते हैं ॥ २२ ॥

(यस्मिन्, सुपलाशे, वृक्षे) जिस सुन्दर ढाक जैसे संसाररूप वृक्ष में (ऊपर से सुन्दर मालूम हो और भीतर से निःसार हो–सुगन्ध रहित हो) (देवैः) विद्वानों से ही (यमः) परमात्मा (सं, पिबते) अच्छे प्रकार देखे जाते हैं (अत्र) इसी संसार में (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक (नः) हमारा (पिता) पितृतुल्य रक्षक (पुराणः) पुराणी–अनादिकाल से प्रवृत्त सूर्यादि निर्माण की रीतियों को ही (अनु, वेनति) अनुकूलता से चलाए रहता है, उसी के लिये (स्वाहा) धन्यवादपूर्वक सुहुत हो ॥ २३ ॥

ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेशः—हे जीवगण! तुम्हारे लिए ही (पृथवीम्) इस पृथिवी को (उत्,तभ्नोमि) अच्छी तरह प्रतिबद्ध किए हुए हूं। हे पृथिवि! (त्वत्, परि) तेरे ऊपर (इमं, लोकम्) इस प्राणि समूह को (नि, दधन्) स्थापित करता हुआ (मो, अहं, रिषम्) मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता (एतां, स्थूणाम्) इस जगद्व्यवहार रूपी स्तम्भ को (ते, पितरः) तेरे समुदाय में जो विज्ञान प्रचारादि द्वारा संरक्षक हैं, वे (धारयन्तु) धारण करें–चलावें (अत्र) इस संसार में (ते) तेरे लिए (यमः) प्रजा को नियम में रखने वाला संयमी पुरुष (सादनात्) स्थिति करने के हेतु से, स्थान को (मिनोतु) परिमित करे बनावे ॥ २४ ॥

(यथा) जैसे अहानि दिन (अनुपूर्वम्) अनुक्रम से--सिलसिलेवार (भवन्ति) होते रहते हैं और (यथा) जैसे (ऋतवः) वसन्तादि ऋतुएँ (ऋतुभिः) उत्तरोत्तर ऋतुओं के साथ (क्लृप्ताः) सम्बद्ध हो कर (यन्ति) आते जाते रहते हैं और (यथा) जैसे (पूर्वम्) पूर्व पुरुष को (अपरः) दूसरा पुत्रादि (न, जहाति) नहीं छोड़ता है। (एव) ऐसे ही, हे (धातः) प्रजापते! (एषाम्) इन सब प्राणियों के (आयूंषि) जीवनों को (कल्पय) सम्पादन करने की शक्ति दे। २५ ॥

हे (अग्ने) अग्ने! परमात्मन्! (ते) तेरी सृष्टि में (मर्त्यः) कोई भी मनुष्य (तनुवै) अपने शरीर के लिये (क्रूरम्) प्राणीघातक व्यापार को

(नहि, चकार) न करे (कपिः) बन्दर की तरह चेष्टा करने वाला यह रजोगुणी जीव (पुनः) विशेष कर (तेजनम्) अपने उत्साह को (बभस्ति) दीपित करता रहे। (गौः) गौ (इव) जैसे (जरायुः) जेरको, उत्साह से रक्षा करती है, वैसेही उत्साह से अपनी रक्षा करता रहे, हे (अग्ने) परमात्मन्! (नः) हमारे (अघम्) पाप, दुर्व्यसन, और दुःखों को, कृपाकर (अप, शोशुचत्) पृथक् करके जला दीजिए और (रयिम्) हमारे धनोंको (शुशुध्या) विशेष कर शुद्ध कीजिये अर्थात् हम अधर्म से धन इकट्ठा न करें० शेष तुल्य, (मृत्यवे) स्वकर्मानुसार होने वाले इस मृत्यु-प्रपावियोग के लिए यह अन्तिम (स्वाहा) सुहुत हो॥२८॥

इत्यन्त्येष्टि प्रकरणम् ॥

श्रीमत्पण्डित नन्दरामतनूजेन-आगरानिवासिना- भीमसेन शर्मणा विरचिता संस्कारचन्द्रिका पूर्तिं गता ॥

अन्त्येष्टि संस्कार की व्याख्या।

भारतवर्षीय आर्य्यों में आदि सृष्टि से लेकर आज तक जलाने की प्रथा चली आरही है* "मोडर्न क्रीमेशन–इट्स हिस्टरी एन्ड प्रैक्टिस" नामी प्रसिद्ध पुस्तक के रचियिता सर टोम्पसन महोदय ने दर्शाया है कि यूरो के इटली आदि देशों में प्राचीन काल में यही प्रथा थी, इस की दिनों दिन यूरप में अब वृद्धि हो रही है और सब से उत्तम एक मात्र यही जलाने की क्रिया हो सकती है। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् जिन को पश्चिमी लोग आज कल के वहाँ के तत्त्ववेत्ताओं का मुकट मानते हैं वह हर्बर्ट स्पेन्सर थे। जब इनका स्वर्गवास हुआ तो इनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार इनका मृतक शरीर जलाया गया जिसका भारी प्रभाव पड़ा। अब लंडन में सरकारी श्मशान बन गया है और सैकड़ों मुरदे पदार्थविज्ञान (सायंस) से प्रेम रखने वालों के प्रत्येक वर्ष जलाए जाते हैं।

---

* Modern Cremation its History and Practice, by Sir H. Thompson. F. R.C.S.M.B.—London.

मृतकशरीर जलाने के दो मुख्य लाभ हैं उनको यूरोप की पण्डित मण्डली मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर चुकी है। वे लाभ यह हैं:—

(१) मृतकशरीर के जलाये जाने से किसी भी संचारक अथवा भयंकर रोग के रहने वा फैलने का भय नहीं रहता क्योंकि आग से बढ़ कर कोई भी रोगनाशक पदार्थ नहीं है।

(२) थोड़े से स्थान में एक वर्ष में हज़ारों मुर्दे जलाये जा सकते हैं। क़ब्र स्थानों के निमित्त सदैव के लिये व्यर्थ भूमि रुक जाने से कृषि कर्म तथा नगरों की आबादी को हानि पहुंचती है।

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १५ में लिखा है कि मृतकशरीर को जला कर भस्म कर देना चाहिये और यही बात अन्त्येष्टि संस्कार के मूल की बोधक भी है।

जो विधि संबन्धी सूत्र दिये हैं उन में यह बातें पाई जाती हैं—

(१) पहिले सूत्र में दर्शाया है कि जलाने की वेदी आग्नेयी दिशा वा नैऋत्य दिशा में हो ।

इस का भाव यह है कि श्मशान वा वेदी वस्ती की आग्नेयी वा नैऋत्य दिशा में बनानी चाहिये ।

(२) दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जावे वह दक्षिण दिशा में पूर्व की ओर झुका हुआ हो अथवा नैऋत्य दिशा की ओर हो ।

दूसरे सूत्र में विकल्प पक्ष से यह दिखाया है कि यदि आग्नेयी वा नैऋत्य कोणमें ठीक २ न भी बनावें तो आग्नेयो वा नैऋत्य कोणों में किसी एक के निकट हो ।

(३) जितने परिमाण में ऊंचे को भुजा उठाये हुए मनुष्य होता है, उतने परिमाण में वह गढ़ा लंबा होना चाहिये ।

इस का भाव यह है कि वेदी मनुष्य के कद से एक हाथ अधिक लंबी होनी चाहिये ।

(४) १२ अंगुल नीचे गहरी होनी चाहिये ।

(५) सिर के बाल, डाढ़ी, मूंछ, नख और अन्य बाल मृतक के कटवा देने चाहियें ।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाल, नख आदि यदि कैंची से काट दिये, जावें तो स्नान कराने वालों को उस के स्नान कराने में सुविधा होगी नहीं तो केश, डाढ़ी के बाल, ठीक २ धोने में कठिनाई पड़ती है । पर आज कल लोग इस पर नहीं चलते, उसके न चलने का भी कारण यह है कि वह मृतक के कटे हुए बाल भी तो फिर पृथक् लेजा कर या तो शव के साथ जलाने वा दूर जंगल में गढ़े में गाड़ने होंगे । उस अड़चन से बचने के लिये लोग बाल काटते नहीं ।

(६) कुशा और घृत दोनों अधिक परिमाण में इस में चाहियें ।

कुशा और घृत दोनों ही विषवाशक हैं यह आयुर्वेद के मूलग्रन्थ चरक और सुश्रुत दोनों का मत है ।

(७)* दही में घृत मिलाकर आहुति देनी चाहियें।

(८) फिर दक्षिण दिशा की तरफ़ अग्नि लेजाते हैं और यज्ञपात्र भी लेजाने चाहियें।

दक्षिण दिशा से अभिप्राय श्मशान का है, जो बस्ती की दक्षिण दिशा को होता है। इसका भाव यह है कि यज्ञपात्र और अग्नि कहीं से लेजानी चाहिये। गुजरात देश में एक हँडिया में आग पर उपले रखकर ले जाते हैं। किसी और शव से आग लेना ठीक नहीं इस लिये आग और यज्ञपात्रों का प्रबन्ध करके श्मशान में जाना चाहिये।

इन सूत्रों के पश्चात् भाषा में जो लेख है उसका सार यह है कि:—

(१) सती के मृतक शरीर को स्त्रियाँ और पुरुष के मृतक शरीर को पुरुष स्नान करावें और चन्दन आदि सुगन्ध लेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें।

---

*सुनने में आया है कि यदि किसी मकान आदि में आग लग जावे तो तुरन्त ही उस अग्निदग्ध स्थान के ऊपर थोड़ा सा दही डालने से अग्नि का बल अधिक नहीं बढ़ता। तथा प्रत्यक्ष यह भी देखने में आया है कि आग से शरीर जल जाने पर उस जले हुये स्थान पर दही बाँधते हैं जिस से उस स्थान का अग्निजनित दाह शान्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि दही के उपयोग से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई गर्मी या दाह को कम करते हैं। यहाँ घी में दही मिलाने का अभिप्राय यह है कि अन्त्येष्टिकर्म के आरम्भ में ही अग्नि घृताहुतियों से इतनी प्रचण्ड न हो जावे कि आगे निकट बैठे या खड़े होकर भी शेषक्रिया समाप्त करनी कठिन वा असम्भव हो जावे क्योंकि यह तो निश्चय ही है कि थोड़ी ही देर में लकड़ियें अधिक होने के कारण अग्नि की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जावेगी। अतः दही मिलाने का अभिप्राय अग्नि की प्रचण्डता को रोकने के लिये ही है। सूत्रकार ने घृत और कुश तो बहुत परिमाण में लेना लिखा है पर दही के विषय में ऐसा विधान न होने से जानना चाहिये कि आरम्भ की ५। १० आहुतियों के लिये लेना चाहिये जो कि पावभर ठीक होगा।

(२) जितना उस के शरीर का भार हो उतना घृत और यदि अधिक ले सकें तो अधिक लेवें।

श्रीमान् लोग शरीर के जितना चंदन भी लें। सेर भर घी के लिये १ रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर लेना चाहिये।

घृत में चंदनचूरा यथाशक्ति डालें।

कपूर की लकड़ी वा पालाश आदि की बड़ी २ लकड़ी शरीर के भार से दूनी लेनी चाहियें।

(३) यदि पुरानी वेदी बनी हुई न हो तो नई वेदी भूमि में खोदे। श्मशान का स्थान वस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैऋत्य कोण में हो।

(४) मृतक का शिर उत्तर, ईशान वा वायव्य कोण में और पग दक्षिण, नैऋत्य वा आग्नेय में रहें।

(५) मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिरकी ओर थोड़ा ऊँचा रहे।

(६) वेदी का परिमाण—पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी।

(७) नीचे आधा हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे। उस वेदी में थोड़ा २ पानी छिड़कावे यदि गोबर उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उस में नीचे आधी वेदी तक लकड़ियाँ चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियाँ धरे।

(८) लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खें चारों ओर वेदी खाली रहे और तथा ऊपर चन्दन, पलाश आदि के काष्ठ, बराबर चिने। वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियाँ चिने जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत को—ता, छान कर पात्रों में रखे।

(९) उन घृतपात्रों में कस्तूरी आदि पदार्थ मिलावे।

(१०) चार मज़बूत लम्बे डंडों के साथ चार लकड़ी वा लोहे के

चमचे जिस एक चमचे में आधी छटांक से ऊपर एक छटाँक घी आवे लोहे के तार वा लोहे की कीलों से दृढ़ बांधे ।

(११) फिर घृत का दीपक जला कर कपूर में आग लगा शिर की ओर से अग्निदाह आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य२में अग्नि प्रवेश करावे ।

व्याख्या ।

उपर्युक्त दो गृह्य सूत्रों में श्मशान, वस्ती के दक्षिण वा दक्षिण के दायें बायें कोण में हो ऐसा पाया जाता है । इस का कारण यह है कि भारतवर्ष में जहाँ तक हम को अनुभव हुआ है उत्तर और पश्चिम की ओर से वायु चलती रहती है दक्षिण अथवा उसके दोनो कोणों से, जिनको आग्नेयी, और नैर्ऋत्य, कहते हैं पवन प्रायः नहीं चलती । इस लिये मृतक शरीर के जलने की वायु वस्ती में न जावे ऐसा प्रयोजन प्रतीत होता है । तीसरे सूत्र में जो शव से एक हाथ लम्बी वेदी खोदने को कहा है वह उचित ही है । चौथे सूत्र में जो बारह अंगुल खोदनी लिखी है वह भी उचित ही है क्योंकि यदि इतनी गहरी न खोदी जावेगी तो लकड़ियाँ अग्नि के ताप से गिर पड़ेंगी । अमृतसर में हमने देखा है कि लोग कुछ भी गहरी वेदी नहीं खोदते केवल भूमी पर शव जलाते हैं, इस लिये उन को लोहे के कई डण्डे चिता के पास लकड़ियों को गिरने से रोकने के लिये लगाने पड़ते हैं । गुजरात में प्रायः वेदी खोद कर जलाते हैं, यहाँ उन डंडों के लगाने की जरूरत नहीं होती । सूत्र ५, ६, ७, और ८ की व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं अब जो "संस्कारविधि" का भाषा लेख है उसके संबन्ध में कुछ कहना है—वहाँ लिखा है कि 'मृतक शरीर को इस प्रकार रक्खे कि उसका शिर उत्तर वा उसके दो कोण अर्थात् ईशान व वायव्य में रहे और पग दक्षिण वा नैर्ऋत्य वा आग्नेय कोण में हों जिस प्रकार पृथ्वीपर उत्तर ध्रुव में विद्युत् का पुंज है उसी प्रकार शरीर में, शिर में विद्युत रहती है । शिर की विद्युत् जो मृतक शरीर को छोड़ती हुई अपने भंडार की ओर उत्तर को जा रही है वह सहज रूप से जा सके । वेदी ढलवाँ हो अर्थात् शिर की ओर, पग की ओर से कुछ ऊंची

रहनी चाहिये । यदि शिर की ओर कुछ ऊंची न रक्खी जायगी तो जिस समय अग्नि टाँगों वा पग में प्रवेश करेगी तो टांगें, जैसा कि लोग जानते हैं, पीछे को सुकड़ती हैं और उस समय शिर पीछे को कुछ धक्का सा पाकर गिर वा सटक सकता है । ग्रामों में लोग कहा करते हैं कि मुरदा उठ खड़ा होता है अर्थात् अपनी जगह से सटक जाता है । इस सटकने के रोकने के लिये दो उपाय किये जाते हैं (१) तो शिर की तरफ़ ज़रा ऊंची रहे ताकि टांगों के सुकड़ने पर शिर पीछे को न सटक सके (२) छाती और शिर के ऊपर मोटी २ भारी लकड़ियाँ रक्खी जावें और शिर तथा छाती के गिर्द ज़मीन से वहाँ तक आने वाली लकड़ियाँ भी ढालू हों । अग्नि प्रवेश होने पर, अग्नि प्रदीप्त करने के लिये ५ मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ देवे ।

फिर चार मनुष्य पृथक् २ खड़े होकर आहुति डालते जावें । यह खड़े होने वाले उस ओर से बचकर खड़े हों जिधर की वायु हो । इन चार मनुष्यों को सहायता देने के लिये बारी २ से और मनुष्य इनका हाथ बटाते रहें ताकि सब बारी २ विश्राम ले सकें । गरमी के दिनों में चिता से दूर रहकर अधिक लंबे बांसों से काम लेना चाहिये । वर्षाऋतु में किसी बड़ आदि वृक्ष के नीचे चिता हो वा डंडे लगा कर उस पर लोग छत बना रक्खें । मन्त्र पढ़ने वाली मंडली उचित स्थान पर खड़ी वा बैठ कर मन्त्र पढ़ सकती है । कई देशों में जब शव को उठाते हैं तो "राम राम सत्य है" ऐसा शब्द उठाने वाले बोलते चले जाते हैं, यह सुन कर लोग रस्ते से हट जाते हैं, कई विद्वान् उसकी जगह "ओम् ओम् सत्य है" ऐसा बोलने लग गये हैं । इस से उठाने वाले ईश्वर का नाम लेते हुए मानो लोगों को सूचना दिये जारहे हैं कि मृतक ले जारहे हैं । कई लोग वृद्ध पुरुष या स्त्री की मौत पर आगे बाजे बजाते चले जाते हैं । "संस्कारविधि" में यह बातें नहीं लिखीं, लोग अपनी बुद्धि, द्रव्य, शक्ति और देश काल का विचार कर स्वयं कर सकते हैं ।

हमने एक सूत्र ग्रन्थ में पढ़ा था कि जिस के यहां मौत होगई हो उसके घर में ज्ञाति वाले वा मित्र लोग उस दिन भोजन पहुंचावें । यह

क्या ही अच्छी बात है । क्योंकि शोक के मारे घर वाले कैसे बना सकते हैं ? आज कल हिंदुओं में रिवाज़ भी है कि सगे सम्बन्धी उस दिन वा दो तीन दिन रोटी आदि अपने घर से पका कर भेज देते हैं । फिर उसी ग्रन्थ में लिखा था कि रात को सगे तथा मित्र सोने के लिये जाया करें । हिंदुओं में यह प्रथा जारी है, दस दिन तक सोने के लिये मित्र सगे जाते और धैर्य बँधाते हैं । संस्कारविधि में यह बातें नहीं लिखी गईं इस लिये कई पुरुष उन उत्तम और युक्तियुक्त बातों को भी केवल यह कह कर कि संस्कारविधि में इनका लेख नहीं बन्द कर रहे हैं । ऋषि दयानन्द जी कहाँ तक व्यवहार और शिष्टाचार की बातें लिखते जाते ।

तीसरे वा चौथे दिन अस्थि चुनने के लिये प्रातःकाल मित्रमंडल वा सम्बन्धियों का आना आवश्यक है । यदि सब इकट्ठे हो कर हवन आदि के पश्चात् कुछ द्रव्य की सहायता दें, जैसा कि रिवाज है तो कई लोग इसको पुराने फैशन की बात कह कर बंद करना चाहते हैं, परन्तु "फेमिलीरिलिफ फन्ड" वा "कुटुम्ब सहायक भंडार" के सभासद् (मेम्बर) होना बुरा नहीं समझते ।

शोक पालने की एक साधारण अवधि कम से कम ४ दिन तक की देशकालानुसार नियत करने की ज़रूरत है ।

यह ठीक है कि स्त्रियाँ, पंजाब वा गुजरात की स्त्रियों के समान "स्यापा" न करें अर्थात् छाती कूट कर रोवें पीटें नहीं । पर इन ४ वा दश दिन में यदि उन्हीं मन्त्रों की व्याख्या कोई धार्मिक पुरोहित कर के सुनाता रहे जिन मन्त्रों द्वारा कि मृतक संस्कार किया गया था वा इस के साथ वेद वा उपनिषदों की कोई व्याख्या की जावे तो अत्यन्त उचित है ।

पृथ्वी के सब देशों में कुछ न कुछ शोक चिन्ह होतेहैं । युरोप में काला कपड़ा भुजा पर बांधना शोक का चिन्ह है । सब समाचारपत्र आज कल काली रेखाओं के अन्दर किसी मृत्यु का वर्णन करना समय के फैशन के अनुकूल समझते हैं । पर यदि किसी अंग्रेज़ी के प्रेमी आर्य सन्तान से कहा जावे कि ४ दिन तक बिना पगड़ी वा शिरोवेष्टन के रहना यही शोक चिन्ह है तो इसको "ओल्ड फेशन" कह कर टालदेते हैं । हमारा कभी लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं कि व्यर्थ पुरानी प्रथा की हर एक बात की पुष्टि करनी

चाहिये । पर शिष्टाचार और व्यवहार के उन नियमों को जो व्यर्थ नहीं पर पुराने हैं निर्मूल भी नहीं करदेना चाहिये ।

महर्षि दयानन्द जी पूर्ण रीति से जानते थे कि लोग अपनी बुद्धि से उचित व्यवहार की उपयोगी बातों को स्वयं ही करलेगें इस लिये उन्हों ने विस्तार से यह बातें वर्णन नहीं कीं ।

हिंदुओं में श्रीमान् लोग ऐसे शोक पर मृतककी कीर्ति वा अपने पुण्य के रुचे भाव से दान किया करते हैं । उस में से दान का बहुत सा भाग दान पात्रों को नहीं मिलता महर्षि दयानन्द जी ने बड़ी दूरदर्शिता से इस संस्कार के अन्त में यह लिख दिया कि जो दान किया जावे वह इस प्रकार हो। "वेद विद्या , वेदोक्त धर्म का प्रचार अनाथ पालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रभृतिके लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है" यदि महर्षि दानसंबन्धी संक्षिप्त रीति से यह सूचना न कर जाते तो कदाचित् कई लोग मृतक के नाम पर वा स्वयं दान करने के लिये "संस्कार विधि" का लेख पूछते !

गुजरात देश में यह बहुत बुरी चाल है कि जवान, बूढ़े सब की मौत पर ज्ञाति को "जमनवार" अर्थात् मिठाई आदि का भोजन दिया जाता है। यह प्रथा सर्वदा बन्द होनी चाहिये । मारवाड़ में भी मौत पर न्यात भोजन वा "मौसर" (जमन वार) की प्रथा है, वह भी बन्द होनी चाहिये । इन जमनवारों में गरीबों के दीवाले निकल जाते हैं, इत्यादि कुरीतियाँ बन्द होनी ज़रूरी हैं ।

कई नगरों और गावों में हमने देखा है कि मृतक के साथ नंगे पाँव जातेहैं और कई नगरों में जूते पहन कर जाने की प्रथा है हमारे विचार में काँटा, कंकड़, कीचड़,कींच तथा गर्मी आदि से बचने के लिये जूते पहन कर जाने की प्रथा अच्छी है आजकल बड़े २ नगरों में छतरी ले जाने की प्रथा जारी होगई है कई स्थानों में स्त्रियें और बच्चे भी श्मशान में जाते हैं कई जगह स्त्रियाँ घर से बाहर किसी कूप वा तालाब पर नहाने जाती हैं परन्तु श्मशान में नहीं जातीं गर्भिणी स्त्री का तो श्मशान में जाना भी ठीक नहीं । इसी प्रकार छोटे बच्चों का वा लड़के लड़कियों का जाना भी ठीक नहीं कई स्थानों में गावों के लोग गङ्गा के तट पर ले जाने के लिये बैलगाड़ी में मृतक रख बहुत कष्ट उठाते हैं जिस के उठाने की कोई ज़रूरत नहीं । कई प्रश्न करते हैं कि मुर्दे को स्नान कराने की प्रथा क्यों है ? इस के उत्तर में हम कहेंगे कि शरीर के नाना अंगों और रोम २ में मरने वाले का मल निकलता है, यदि मृतक शरीर के ऊपर पानी डाला जावे तो उसका यह मल बहुत कुछ जल बहा कर ले जा सकता है । यही

मृतक स्नान है। यह जरूरी नहीं कि हाथ से ही कोई मल २ कर उसके अङ्ग को धोवे यदि कहीं रगड़ने की ज़रूरत होतो एक छोटी सी लकड़ी को गीला कपड़ा बांध कर काम में लासकते हैं। इस के लिये अंगोछे [टुवाल] से शरीर को पोंछ डालते हैं। इस प्रकार का स्नान साधारण रोग से मरे हुए मृतक को कराया जाता है।

पर जो कोई महामारी [प्लेग] विष आदि के कारण मरा हो उस को वैद्य डाक्टर वा अनुभवी वृद्ध लोगों की अनुमति अनुसार यदि मृतक का नंगा करना वा स्नान कराना वा उस के कपड़े उतारना उचित न हो तो नहीं कराना चाहिये। ऐसे मृतक के ऊपर कम्बल, लोई वा शाल अथवा कोई ऊनी कपड़ा डाल देना और उस ऊनी कपड़े पर कपूर तथा जटामांसी (बालछड़) यथोचित डाल छोड़े और उठाते समय कम्बल सहित उसको उठा कर तख्ते वा गाड़े, वा गाड़ी आदि पर रखें। प्लेगादि से मरे हुए मृतक शरीर के उठाने वाले शिर के बालों से ले पग के नख पर्य्यंत सब शरीर पर भली प्रकार घी मललें, और कपड़े ऊन के बने हुए पहिने। अपने हाथों को कपूर से मललें और कपूर तथा बालछड़ अपने किसी पहिने हुए वस्त्र में ज़रूर रखलें जूता भी पहन लें। ज़रूरी है कि वह भूखे न हों थोड़ा सा घृत युक्त भोजन किया हुआ हो।

इस के साथ ही उन को अपने मन को दृढ़ करने की ज़रूरत है क्यों कि वैद्य और डाक्टर लोग कहते हैं कि:—

(१) जिन की इच्छाशक्ति प्रबल हो, वा जो मन में यह कहें कि हम को रोग नहीं लगेगा वह रोगियों की सेवा करते हुए स्वयं रोगी नहीं होते।

(२) पर इच्छाशक्ति एक अंग है। दूसरा अंग सावधानी अर्थात् अपने शरीर पर घी का मलना इत्यादि है जो ऊपर लिख आये वह सावधानी ज़रूर करें। यदि अपने शरीर पर मलने के लिये घी न मिल सके तो तेल मल सकते हैं।

प्लेग वाले मकान को शुद्ध करने के लिये ज़रूरी है कि अच्छी प्रचंड आग उस में जलाई जावे और उस के सब द्वार खुले रखे जावें। कुछ दिनों के लिये उस मकान में न रहें। प्लेग के दिनों में प्रत्येक सोने बैठने के गृहखंड (कमरे) से प्रचंड आग का जलाना और उस में घी, जटामांसी, धूप, गूगल का डालना उपयोगी है वा यह कहो कि इस सामग्री से युक्त बृहत् हवन गृह के प्रत्येक खंड में किया जावे। जहाँ कुछ न मिले वहाँ लकड़ियाँ ही जला छोड़ें।

अपूर्व वेदमन्त्र।

अन्त्येष्टि संस्कार करते हुए जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, उन के अर्थों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वह कैसे अपूर्व मन्त्र हैं, आजकल

युरोप में विद्वान् इस वैदिक सिद्धांत को मान चुके हैं कि सत्यपदार्थ का नाश नहीं होता भौतिक पदार्थों की वास्तव में उत्पत्ति और मृत्यु नहीं होती रूपान्तर होने का नाम ही उत्पत्ति और मृत्यु है ऐसा वह जान गये हैं। इससे बढ़ कर वह नहीं अनुभव कर सके, पर इन वेदमंत्रों ने किस उत्तमता से दर्शाया है कि जीव आत्मा का नाश नहीं होता जीव ने यदि एक शरीर से संयोग छोड़ा है तो ईश्वर के नियमानुकूल और शरीर को प्राप्त होगा। थोड़े दिन हुए कि हमने एक पत्र में पढ़ा था कि युरोप में १००—१०० वर्ष के बुड्ढों के अनुभव यह कह रहे हैं कि वह इस अवस्था में भी मरना नहीं चाहते थे। यह अनुभव सिद्ध कर रहा है कि जीव नित्य है। बाल्यावस्था में खेल में आनन्द अनुभव होता था, यौवन में धन कमाने में, पर बुढ़ापे में वह दोनों आनन्द अनुभव नहीं होते, क्योंकि वह शारीरिक अवस्था के अन्तर्गत थे, उनकी स्मृति तो अनुभूति रूप से रहती है पर वह साक्षात् अनुभव के रूप में जरावस्था में नहीं रहते। यदि किसी भाव का साक्षात् अनुभव बाल, यौवन और जरावस्था में बराबर ताजा बना रहता है तो वह यही अनुभव कि "मैं हूं और मैंने मरना नहीं चाहा न मरना चाहता हूं"

हम बूढ़े होगये पर हमारा यह अनुभव कि "मैं हूं और मैं न मरू" सदैव वैसा का वैसा ही बना रहा। यह बात दर्शा रही है कि आत्मसत्ता पर शरीर की वृद्धि क्षय का प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा नित्य है, सत्य है, इस लिये उस की सत्ता का साक्षात् अनुभव आयु भर प्रत्येक मनुष्य को एक रस रहता है।

यह आत्मा मलमूत्र रूपी शरीर में रह कर उस को नियम में रखता था। यही शरीर में चेतन सत्ता थी। मरने पर यह आत्मा अन्य शरीर अपने नियमानुकूल धारण करता है, इन दार्शनिक बातों का विधान इन मन्त्रों में अति उत्तम रीति से किया गया है। इन मंत्रों की पूर्ण व्याख्या के लिये २०० पृष्ठ भी कम हैं, इस लिये इस स्थान पर वह व्याख्या न करते हुए हम इस विषय की जिज्ञासा करने वालों को न्याय दर्शन और वेदान्त दर्शन पढ़ने और मनन करने की अनुमति देंगे।

उक्त मन्त्र जो श्मशान में पढ़े जाते हैं शोक निवृति के लिये भी अपूर्व मानसिक औषधि का काम देते हैं॥

इति अमृतसर निवासि श्री० म० आत्मारामकृता व्याख्या पूर्तिंगता॥

शुद्धि पत्र

मङ्गलाचरण से

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	९	जानानां	जनानां
३	१५	उड़तेह	उड़ते हैं
४	१९	ऐश्वर्य को	ऐश्वर्य की
५	२	मीले	मीळे
६	१	सोमं	सोमं स्वस्ति
„	१०	भवन्तु	स्वस्तये भवन्तु
„	१३	आनन्द	आनन्द के
७	८	यज्ञियां	०
८	११	क्ति मि	क्तिभि
„	२४	समुह	समूह
१५	१	यजत्र:	यजत्रा:
१६	२४	बृहति	बृहती
१७	९	वरुणं	वरुणो
१७	२१	जिष्णु	जिष्णु:
१८	९	ग्रवाण:	ग्रावाण:
१८	२३	(शम्	(शम्)
१९	२	शमन्त	शम्
२२	२	मृणा	मृणां
„	५	देवहित	देवहितम्
२४	२३	लोका	लोक
२६ (नोटमें)		का० प्र०	क०—का०
३३	१७	संस्कारमें	संस्कार
३९	१४	स्विष्टम्	स्विष्टम्
„	१६	इत्त	दत्त
४०	१४	आती	जती
„	२१	पराजन्	राजन्
„	२२	मृढय	मृडय
४१	८	वश्वे	विश्वे
„	११	शस्तिया:	शस्तिपा:
५९	२५	जल का	नल का
६५	४	विद्ध	वृद्धि
„	६	वेदों	ये दो
६६	९	ग्रस्ति	ग्रस्त
६७	१४	अग्नि	अग्नि को
६९	२७	दर से	दूर से
७२	२३	नर	भर
„	२७	अठिध	अवधि
७४	१	बहुत	बहुत हों
६	५	यदस्य	यदस्य (२)
७	१५	स—य	समय

गर्भाधान के संस्कृत प्रमाणों का भाषार्थ ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३	पुष्करसजी	पुष्करस्रजौ
३	१४	पृथिवी,	(पृथिवी,
३	३५	शत्र	शत्रु
४	३४	सीध	सीधे
४	३५	मल	मेल
७	३	उस	उस में पाते हैं
७	११	मनु	०
७	१३	मनुस्मृति में	०
७	३०	सूर्याअवलोकन	सूर्यावलोकन
८	१	वदारम्भ	वेदारम्भ
८	१	ता	तो
९	३२	ह	हैं
१०	२	पड़गी	पड़ेगी
१०	२	शद्रों	शूद्रों
१०	६	मुदे	मुर्दे
११	७	अछूत	अछूत
१२	२२	वचा	बचा
१३	२३	झूट	झूंठ

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	२४	झट	झूंठ
१४	१	अग	अङ्ग
१४	९	घोड़े ही–थोड़ेही दिनपीछे	
१४	९	एज	एक
१४	१६	अष्टविधि–अष्टविध	
१५	१२	पृष्ठ	१ पृष्ठ
१६	१	क़दियें	क़ैदियें
१६	२१	तल	जल
१८	१३	डक्टर	डाक्टर
१९	१	वाक्यासें–वाक्यों में	
१९	३३	पतिकर्न	पति कर्म
१९	३६	धम(डपटी)	धर्म ड्यूटी
२०	२४	सुगन्धि	सुगन्धि
२१	९	कर	करें
२२	१	कम	कर्म
२२	१४	वदमन्त्र	वेदमन्त्र
२२	३२	दता है	देता है
२३	२७	करतो	करेतो
२३	२८	ह	है
२४	१	काय	कार्य
२४	८	करलना	करलेना
२४	१४	खादिष्ट	स्वादिष्ट
२४	२०	पृथवी	पृथ्वी
२६	१५	हुए	हुए ही
२६	२७	ल	ले
२६	२९	सब भूत	सर्वभूत
२७	१३	चेष्ठाओं	चेष्टाओं
२७	१८	वसे	वैसे
२७	१४	सकोह	स को ह
२८	२३	कर	करें
३०	१	गभ	गर्भ
३१	१७	प्रजा	प्रजां
३१	१७	जनये	जनय
३१	१७	इन्द्राणाव	इन्द्राणीव
३१	१९	सत्र	सूत्र
३१	२४	स्तनभिः	स्तनूभिः
३१	३७	प्राणा	प्रारणा
३२	१	भवाय	भावार्थ
३२	१	प०	पृ०
३२	२६	चा	बचा
३४	१४	सवौषधी	सर्वौषधी
३६	१४	कहवे	कहे
३६	२२	पत्नीकी	पत्नी के
३८	१	वीय	वीर्य
३८	३०	उत्पन	उत्पन्न
३८	३७	(१५३ पृष्ठसेः)	(१५३ पृष्ठ)
३८	१०	करने हारी	करने हारा
४१	१४	म	गुरु
४२	१	गभ	गर्भ
४४	१५	शब्दा	शब्दों
४५	२०	ज्योतीरग्रा	ज्योतिरग्रा
४७	१	क	के
४७	१२	[उपपसस्त्रे]	[उपप्रसस्त्रे]
४७	३०	स्वद्र हो	स्वद्रु हो
४७	३०	सन्पृचः	सम्पृचः
४७	३१	मूरीन्	सूरीन्
४७	३३	ऋ०	ऋ०
४८	१	वसे	वैसे
४९	७	असा	जैसा
५०	८	उसको	उनको
५१	२९	व्यख्या	व्याख्या
५२	११	व	वह
५३	२२	नियम सं०३	०
५४	१	रोकन	रोकने
५४	१३	अर	और
५४	२४	द्रोल	द्राल

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
५४	२६	आतव	आर्तव
५५	१	वत्तमान	वर्त्तमान
५५	८	स्त्री को पुरुष	स्त्री का
५५	१६	अमक	अमुक
५५	३२	आतव	आर्तव
५५	३३	आयगण	आर्यगण
५६	३२	ह	हैं
५७	८	होरही	होरही है
५८	११	स्त्रा	स्त्री
,,	३३	गभा	गर्भा
५९	२	शीघ्नता	शीघ्रता
६०	२७	यवा	युवा
६१	१६	ह	है
		ऐसे ही अन्त्र	
६१	३१	अनुलपनाद्	अनुलेपनाद्
६२	२९	भर्त्तु	भर्त्तुः
६३	१५	अथ	अर्थ
६४	१	एश्वय्य	ऐश्वर्य्य
,,	५	निद्या	निन्द्याः
६५	२९	नकर	नकरे
६८	१	(अथ)	(अर्थ)
,,	६	वीय	वीर्य
६९	१	वीय	वीर्य
,,	३०	मर्थ	अर्थ
७०	१४	चलता है	चलाता है
७०	३४	वाला	वालों
७१	५	वसे	वैसे
,,	३२	हीता	होता
७२	१	वणनकियाह	वर्णनकियाहै
,,	२०	वित्तितेश्रता	वित्तश्रतेश्रिता
,,	३२	वीय	वीर्य
७३	१९	कलेगा	कर लेगा
७४	१३	यनान	यूनान
७५	१७	ब	वह
,,	३२	पयन्त	पर्यन्त
७६	१	परुष	पुरुष
७७	१०	मेथुन	मैथुन

पुंसवन संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	कर	करे
,,	१७	प्रजापविः	प्रजापतिः
२	३०	अश्व	आश्व
३	२४	मन्त्रा	मन्त्रे

पुंसवन के संस्कृत प्रमाणों का भावार्थ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२८	पमांसौ	पुंमांसौ
२	१३	हे	हों
,,	१७	स्त्रषूयम्	स्त्रैषूयम्
,,	२१	(अचीक पत)	(अचीक्लृपत)
,,	२७	उपस्यन्द्रिय	उपस्थेन्द्रिय
३	२३	गभ	गर्भ
३	३४	पस्तक	पुस्तक
४	१०	सूत्र कर	सूत्र कार
,,	१२	तीसर	तीसरे
,,	,,	निर्भरह	निर्भरहै
४	२४	अग्न्यधन	अग्न्याधान
,,	३४	छोड़	छोड़े
४	३७	वसा	वैसा
५	७	गभ	गर्भ
६	१८	हदये	हृदये
७	१	पूण	पूर्ण
८	३५	गभ	गर्भ
		(ऐसे ही अन्यत्र)	
९	१४	(चक्षः)	(चक्षुः)
१०	२७	सामन	समान
१२	३४	ठहर	ठहरे

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	१	श्रणी	श्रेणी
१६	१२	मरा	मेरा
१७	१	स	से
,,	५	उद्धृत	उद्धृत
१८	२	हा	हो
,,	१४	शुक्र	शुक्र
१८	३४	खिलाव	खिलावे
१८	२८	दुध	दूध
,,	३२	बर	बूरे
१९	६	हुई	हुई

सीमन्तोन्नयन संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	मल	मूल

सीमन्तोन्नयन की हिन्दी व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	गभिणी	गर्भिणी
,,	२६	मूलपष्ठ	मूलपृष्ठ
२	७	मनि	मुनि
४	२५	सत्र कार	सूत्र कार
६	१	म पति	मैं पति
,,	,,	पूण मासी	पूर्ण मासी
,,	३	जाकि	जोकि
,,	,,	का	को
,,	१२	(सुभग)	(सुभगे)
,,	३३	सदव	सदैव
७	३४	लिय	लिये
९	६	जड़ा	जटा
१०	२८	सूय	सूर्य
,,	३२	यक्त	युक्त
११	१	वश्वानर	वैश्वानर
,,	१९	घतादि	घृतादि
,,	२८	धम	धर्म
१२	१	तल	तैल
,,	४	तल	तैल

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	,,	बाला	बालों
१३	२१	आयुवेद	आयुर्वेद
१३	२३	चिन्हा	चिन्हों
१३	३७	नगे	नंगे
१४	३०	खिचड़ा	खिचड़ी
१५	२९	नदेखे !	देखे !
१५	३३	दष्ट	दृष्ट
१६	१	ह	है
१६	१	उद्दश्य	उद्देश्य
१६	३४	रखता	रखती
१६	३४	कृतकाय	कृतकार्य
१७	१	लना	लेना
१७	१	म	में
१७	१८	संक्षप	संक्षेप
१८	८	बच्च	बच्चे
१९	१३	हआ	हुआ
१९	२७	स्त्रा	स्त्री
१९	३३	सत्र	सूत्र
२१	१	दव	दैव
२१	१६	पूवजन्म	पूर्वजन्म
२१	१९	जसे	जैसे
२१	१९	निवृत्ति	निवृत्त
२२	४	पर्व	पूर्व
२२	३३	विपरीलीत वचराण होगी	विपरीता चरणवाली होगी
२२	३४	वद	वेद
२३	१	[हैडि०] सीमन्त नयम	सीमन्तोन्नयन
२३	११	तपरया	तपस्या
२३	२५	देवानोंछ	देवानांछ
२४	९	गहस्था श्रम	गृहस्थाश्रम
२४	१८	मत्रादि	मन्त्रादि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४५	३	यरुप	यूरुप
४५	९	बोलन	बोलने
४७	३	समाप	समीप
४७	१९	यक्त	युक्त
४८	२९	शभ	शुभ
५०	३१	मन्त्रा	मन्त्रों
५१	३२	आंखा	आँखों
५२	१७	नसार	नुसार
५३	३०	ठाक	ठीक
५४	११	तल	तैल

समावर्तन संस्कार मूल

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	४ [नोट]	व्रत	व्रत
२	१८	बठ	बैठ
,,	२६	घड़	घड़े
३	१०	बाल	बोल
३	१५	वरण	वरुण
३	२०	भृण्ण	भृष्णु
४	४	गृ० स०	गृ०सू०

समावर्तन—संस्कृत० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
७	१५	पित	पितृ
७	२५	यशोधास्य	यशोधास्ये
७	२८	संयक्त	संयुक्त
८	१	पुष्पा	पुष्पों
८	१७	वाल	वाले

समावर्तन सं० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
९	१२	आदमिया	आदमियों
११	१०	ओर का	ओर को
११	१४	हा सकेगा	हो सकेगा
११	१६	गह.........	गृह.........

समावर्तन संस्कार व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१०	राहत	रहित
१२	२५	शरार	शरीर
१३	२	वड़	बड़े
१४	२	अग्नि	अग्नि
१४	८	दुरुपयोग और	और दुरुयोग
१७	३३	होता	हो तो
१८	८	पा वेष्टन	पादवेष्टन
२२	३३	एक	किये
२२	१ [नोट में]	वद्य	वैद्य
२३	१४	पर	पैर

मूल विवाह संस्कार—

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	उत्तमही	उत्तम हो
१	१८	आय	आयु
१	१९	वाले हा	वाले ही
१	२४	सत्यतद	सत्यंतद्

अन्त्येष्टि प्रकरणम् ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४६	९	प्रपा	प्राण

अन्त्येष्टि सं० व्याख्या—

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४७	५	युपरो	युरोप
४७	१३	अंग्रेजी का नोट नीचे चाहिये	
४८	२६	विषवाशक	विषनाशक

इति ।

विशेष प्रार्थना—

प्रिय वाचकवृन्द ! इस शुद्धि पत्र के अनन्तर्भूत भी, जो हिन्दी भाषा की मात्राओं की और की अशुद्धियाँ हैं, वे सहज ही में ध्यान में आ जावेंगी और जो मन्त्रादि में कोई रह गई होंगी वे भी तत्तत् निर्दिष्ट स्थानों पर देखने से दूर हो सकेंगी—इस प्रेस की निर्बलता को अब की वार क्षमा कीजिए ।

सलज्ज—विनीत—संशोधक ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	३०	सख	सुख
३	२८	इसक	इसके
६	१०	आचाय	आचार्य

संस्कृत भाषार्थ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	निमलता	निर्मलता
२	८	[ब्रह्मचयम्]	[ब्रह्मचर्यम्]
२	१०	जला !	जलो !
२	२३	सवात्पादक—	सर्वोत्पादक
३	१९	पूववत्	पूर्ववत्

उपनयन संस्कृत० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	दानों	दोनों
१	१४	शलाकहनेका—	शैलीकहनेका
२	९	स्कलों	स्कूलों
३	१४	गढ़	गूढ़
३	२४	९	८
३	२४	९	८
३	२६	९	८
३	२६	९	८
४	२१	दती	देती
४	२९	दसरा	दूसरा
६	७	रह	रहे
७	३२	कि	०
९	१२	म	में
९	२०	छड़ाता	छुड़ाता
११	१८	काय्यों का	कार्य्यों का
११	१९	का	को

वेदारम्भ संस्कार सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	सर्यो	सूर्यों
३	१	कंध	कंधे
३	७	भगर्गो	भर्गो
३	१४	दुःखों	दुःखों
४	४	दा	दो
४	२१	भूाम	भूमि
४	२१	स	से
४	२१	केशा	केशों
६	९	हाम	होम

वेदारम्भ संस्कृत भाषार्थ ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
८	११	वाल	वाले
८	२४	त	तू
८	२७	जा	जो

वेदारम्भ व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२	३	जनश्रति	जनश्रुति
१६	४	युराप	युरोप
१७	१८	पकार से	प्रकार से
„	२४	सचन	सेचन
१९	१३	वाप्य	वाष्प
„	२१	पर्ण	पूर्ण
„	२९	नहां	नहीं
„	„	म	में
२३	५	उसके	उनके
२४	४	पर्व	पूर्व
„	८	सनना	सुनना
२९	१	वाला	वाली
„	४	आतो	आंतों
„	१९	व्यथ	व्यर्थ
„	२६	वच	वचे
३०	१५	मंज	मुंज
„	३०	नहां	नहीं
३३	२२	दसरे	दूसरे
३६	३	ह	है
३६	१०	यरुप	यूरुप
३६	१०	व लोग	वे लोग
३६	१०	सताम	सन्तान
३६	१६	अग	अङ्ग
३६	२४	वष	वर्ष
३९	९	कूकर	कूकर
४३	१४	वाल	वाले
४४	३१	कद	कूद

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५	२७	रवाहेब	साहेब
७	१	बठे	बैठे
७	४	हासकती	हो सकती
८	३०	ह	हैं
९	३४	यक्ति	युक्ति
१०	१३	स्पश	स्पर्श
१०	१५	हो जाताह	होजाते हैं
११	४	श्राय	श्रायु

निष्क्रमण संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	जा	जो
२	१५	शद्ध	शुद्ध

हिन्दीभाष्य की व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	५	शक्लपक्ष	शुक्लपक्ष
२	१४	शद्ध	शुद्ध
३	१	हदय	हृदय
३	१५	सूंघताहं	सूंघता हूँ
३	२८	श्रार	श्रौर
५	(हेडिंग)	हिकी	हिन्दी
५	१०	श्राव !	श्रावे !
६	९	पड़गा !	पड़ेगा !

अन्नप्राशन संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	त्रादि	सूत्रादि
२	१८	बझ	बूझ
३	२०	पदाथ	पदार्थ

चूडाकर्म मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२१	श्रथ	श्रर्थ
२	१	दानों	दोनों
२	२	पोल	बोल

संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	३०	राग	रोग
३	२१	स	से
५	१४	[illegible]	उर्द
६	१०	(क्षरेण)	(क्षुरेण)
६	१८	मली	मैली
७	१	पूछ	पूंछे
७	१	कपड़	कपड़े
७	२२	कशों	केशों
७	२२	(वपतु)	(वपतु) काटे
७	२५	(चक्षषे)	(चक्षुषे)
७	२९	(क्षरा)	(क्षुरा)
८	२८	सन्दर	सुन्दर
९	१	चाक	चीक
९	१	उठग	उठेंगे
९	२२	यज	यजु०
१०	१८	क्षरे	क्षुरे
११	२३	स्थाना	स्थानी
१२	२३	श्राय	श्रायु
१३	२०	मंडन	मूंडन
१३	२०	पूरस	पूर्व
१५	२६	दभ	दर्भ
१५	२६	छने	छूने

कर्णवेध संस्कार की व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	गृह्यसत्र	गृह्यसूत्र
१	२४	प्रवश्य	प्रवेश्य
२	१	सूय	सूर्य
२	११	श्रंडवद्धि	श्रंडवृद्धि
२	२४	जा	जो
२	२७	श्रंगठ	श्रंगूठे
३	८	वींधन	वींधनेसे
३	१०	हाता है	होता है
३	१७	सनो	सुनो
४	३१	बठे	बैठे
५	२१	वद्ध	वृद्ध
६	१	वद	वेद
६	१	म	में

उपनयन मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	यज्ञपवीतं	यज्ञोपवीतं

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४	२०	तल	तैल
२४	२७	वड़	वड़े
२४	२८	सुश्रत	सुश्रुत
२४	२२	उन्नानि	उन्नति
२५	१९	कृत	कृत्य
२०	१९	कृत	कृत्य
२६	१९	द्वितीय,	द्वितीय
		परशुराम,	परशुराम-
२६	३४	मडे	मूंडे

जातकर्म संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	क	के
३	२९	०	ओ०
४	२८	त्वापषे	त्वायुषे
५	१	का	को
		वलो	श्रुष्यक्षनो

जातकर्म संस्कार हिन्दी भाष्य की व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	७	लिख हः—	लिखे हैं:—
२	८	मृद	मृदु
„	२५	बढ़ान	बढ़ाने
८	१	आयुवद्धक	आयुवर्द्धक
„	३३	आयवृद्धि	आयुवृद्धि
१०	२२	वष	वर्ष
१०	२९	वद)	वेद)
„	„	म	मैं
„	१२	[सत्	[तत्
„	३४	पथ्वी	पृथ्वी
„	४	लए	लिए
१४	४	अत्युक्त	अत्युक्त
„	६	[व]	[वै]
१४	३१	पराने	पुराने
१५	१	सदव	सदैव
१५	३२	स्पश	स्पर्श
१५	३४	स	से

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१९	[जषस्व]	[जुषस्व]
१६	३३	व	वै
१७	२५	बच्च	बच्चे
१८	२५	सांहता	संहिता
१९	१	अथ	अर्थ
१९	३	वदिक	वैदिक
१९	२६	जकाम	जुकाम
१९	३४	मिंडल	मंडल
२१	१७	ज्ञानयों	ज्ञानियों
२३	२४	सत्रकार	सूत्र कार
२४	११	कर	करे
२६	३०	कटी	कुटी
२६	३१	मंग	मूँग
२८	९	पर्व	पूर्व
२८	१६	प्रसत	प्रसूत
२८	२१	लोह	लोहू
२९	१	कोयल	कोयले

नामकरण संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२३	अथ	अर्थं
२	१४	ओंप्रतिपदे(१)—	ओंप्रतिपदे
३	२	लेक	लेके

नामकरण व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१४	(सदेत)	(समीक्षेत)
१	२५	अयज	अयुज
२	४	जुमान्त	गुमान्त
२	५	धनसंयुक्त—	धनसंयुक्त
२	१	संस्कार तथा—	संस्कृत तथा
३	५	सगमता	सुगमता
३	५	यक्त	युक्त
३	८	सनने	सुनने
३	२२	शाक	शोक
४	१२	हा	ही
४	२४	भावपर्ण	भावपूर्ण
४	३०	गृह वद्य	गृह वैद्य

मिलने का पता—
भीमसेन शर्म्मा, महाविद्यालय, ज्वालापुर,
ज़िला सहारनपुर U. P.